स्वर्ण-सूत्र

क्षमा की भावना

हम सब लोगों का परमपिता परमात्मा है, अतएव हम सब आपस में भाई-भाई हैं और हम सब पर परमात्मा का एक समान प्रेम है। वह किसी से पक्षपात नहीं करता, किसी से कम या किसी से अधिक प्रेम नहीं करता। सब पर उसका एक समान अनुग्रह है। इस कारण मैं दूसरे से क्यों ईर्षा द्वेष रखूँ। जैसे दूसरा व्यक्ति परमपिता का कृपापात्र है, वैसा ही मैं। अपनी योग्यता और कुशलता से जिस प्रकार मैं धन वैभव यश कीर्ति का उपार्जन करता हूँ, उसी प्रकार अपनी योग्यता और कुशलता से मेरा अमुक सहयोगी भी उपार्जन करता है, अतएव ईर्षा द्वेष का कोई कारण नहीं दीखता। मेरा सहयोगी मेरा हक नहीं छीनता, मेरे प्रति कोई अनिष्ट विचार नहीं रखता और हानि के लिए कोई प्रयत्न नहीं करता, फिर मैं ईर्षा द्वेष की भावना से उसका कुछ क्या बिगाड़ सकता हूँ, इससे तो मेरा ही मन और शरीर जलता है, मुझे ही व्याकुलता होती है, मेरे रोम-रोम का रक्त जलता है, मैं ही भस्म हुआ जाता हूँ।

अब मैं सचेत हो गया हूँ और ईर्षा द्वेष की भावना का कुप्रभाव जान गया हूँ। अब मैं इस घातक मानसिक कोढ़ से मुक्त होने के लिए स्वयं को क्षमा करता हूँ और आत्म शुद्धि के लिए भगवान् से क्षमा माँगता हूँ और दृढ़ निश्चय करता हूँ कि अब मैं किसी के प्रति ईर्षा द्वेष के भाव नहीं रखूँगा। अब तक ईर्षा द्वेष के द्वारा मैंने बड़ी भूल की। इस भूल के लिए मैं स्वयं को क्षमा करने के साथ-साथ, अमुक सहयोगी से क्षमा माँगता हूँ।

मैं अब सब लोगों के प्रति सब प्रकार की ईर्षा द्वेष की भावना से मुक्त हो गया हूँ, मेरा मन अब सर्वथा निर्मल हो गया है और जिनसे मैं ईर्षा द्वेष रखता था उनसे प्रेमपूर्वक व्यवहार करता हूँ। उनके प्रति मेरे मन में अब कोई भी पुराना विचार नहीं है। अपने मन को मैं ही अब तक मलिन बनाये रहा, अन्य किसी ने मुझे कोई हानि नहीं पहुँचाई। मैं अब सत्य को जान गया हूँ, और सत्य के आश्रित होकर ही मैं प्रेम से अपने जीवन को संतुलित करता हूँ।

मैं सब प्राणियों को क्षमा करता हूँ, वे मुझे क्षमा करते हैं। संसार में मेरा कोई भी द्वेषी नहीं। मैं किसी पर भी अपनी अवनति या हानि का आरोप नहीं लगाता। मैं किसी की उन्नति में कभी अपना अपमान नहीं मानता हूँ, वरन् उसकी उन्नति देख प्रसन्न होता हूँ। मुझमें अब दूसरों की उन्नति देखकर कोई परेशानी नहीं होती, वरन् दूसरों की उन्नति देखकर मुझे उत्साह मिलता है, और मैं अपनी उन्नति के लिए, प्रयत्नशील होने के लिए, प्रेरणा प्राप्त करता हूँ। दूसरों की उन्नति देखकर मैं उत्साहित होता हूँ, और उनसे सहानुभूति रखकर, सहयोग प्राप्त कर अपनी कुशलता को जाग्रत करने का अवसर पाता हूँ।

क्षमा की भावना से अब मैंने अपने मन को निर्मल कर लिया है और निर्मल होने से मेरी उन्नतिशील प्रतिभा जाग रही है। जैसे अन्य लोग अपनी प्रतिभा से उन्नति करते हैं, मैं भी अपनी प्रतिभा का साक्षात्कार करूँगा। मैं जान गया हूँ कि जीवन ईर्षा द्वेष करने के लिए नहीं, वरन् अपनी-अपनी प्रतिभा सिद्ध करने के लिए है। अतएव यह सत्य जानकर मैं ईर्षा द्वेष की भावना से मुक्त हो गया हूँ और परम संतुष्ट हो गया हूँ।

नित्य प्रातः उठने पर, तथा रात को सोते समय, ईर्षा द्वेष से मुक्त होने के लिए क्षमा की भावना मन में स्थिर करें।

संस्थापक

स्वर्गीय डॉ० दुर्गाशङ्कर नागर

ॐ

कल्पवृक्ष

अध्यात्म-विद्या का मासिक पत्र

सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत ।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥ गीता ॥

वर्ष ३१ } उज्जैन, जनवरी सन् १९५३ ई०, सं० २००९ वि० { संख्या ५

ईर्षा-द्वेष से मुक्ति

सम्पादक

किसी व्यक्ति के प्रति शंका, संदेह और ईर्षा रखना भी मन का एक घातक रोग है। ईर्षा की जलन से, ईर्षा करने वाले का मन और शरीर जलता रहता है, और उसके व्यावहारिक जीवन में भी अन्तर आ जाता है। ईर्षा की भावना जब मन में घर कर जाती है तो उससे हमें लाभ नही, वरन् हमेशा नुकसान ही होता है क्योंकि चिन्ता के समान ईर्षा की भावना भी आग के समान है। वरन् चिन्ता से भी अधिक शक्तिशाली। किसी की उन्नति या भलाई देख कर, और जब कि हमारी वैसी उन्नति या भलाई नहीं होती, तब हम अकारण उस व्यक्ति से ईर्षा करने लगते है, अर्थात् हम अपनी अवनति के कारण उसको दोष देते हैं, उससे सहानुभूति या प्रेम नहीं रखते। उसकी उन्नति हमे खटकती है, और हम अपनी उन्नति या भलाई का उपाय नहीं करते वरन् अपनी क्रियात्मक शक्ति को बिना कारण ईर्षा में खर्च करके नष्ट करते रहते हैं।

ईर्षा, चिन्ता, द्वेष, मन के ऐसे रोग हैं कि मनुष्य अपने को रोगी नहीं स्वीकार करता है। मनुष्य अपने आप को, इनके प्रभाव में आकर धोखा देता है। यह सब मनुष्य के

ानसिक असंतुलन से होता है। जिस व्यक्ति
 हम ईर्षा करते हैं, द्वेष करते हैं, वह हमें
ास्तव में कोई नुकसान नहीं पहुँचाता, वह
मसे शायद ईर्षा भी नहीं करता, परंतु
भवतः हमारी भलाई चाहता है, और हम
र्षा की भावना से, उसका भी कुछ नहीं
ागाड़ सकते, प्रत्युत अपने ही मन और
रीर को जलाते हैं। मनुष्य की बहुत कुछ
न्नति इस घातक भावना से स्वयं नष्ट हो
ाती है, क्योंकि रचनात्मक प्रवृत्ति को काम
 न लगाकर व्यर्थ ईर्षा में खर्च कर
ते हैं।

ईर्षा द्वेष की भावना प्राय: बचपन से ही
न में प्रवेश कर जाती है। बचपन की
ाभाविक प्रवृत्ति उच्छृङ्खल और उद्दण्ड
ाने से भाई-भाई और भाई बहिन में खेल
ल में बात बिगड़ जाने पर माता पिता
क्सर जब छोटे बच्चे का पक्ष लेकर उससे
यार करते और बड़े को फटकार बताते हैं,
था ज्यों ज्यों एक बच्चा बड़ा होता जाता है
यों त्यों माता पिता का प्रेम और देख रेख
सके प्रति कम होती जाती है और सब से
ोटे बच्चे पर अधिक प्रेम होता है, इसी
यावहारिक और स्वाभाविक विषमता को
खकर, अपने अनुज के प्रति ईर्षा उत्पन्न हो
ाती है।

अन्तर्मन में, अनजाने में, यह भावना
चोर की तरह घुस कर हमारी शिव सुन्दर
रचनात्मक भावनाओं को जलाती हुई जीवन
को बेकार बना देती है। जिसके प्रति हम
ईर्षा द्वेष रखते हों, यदि ईमानदारी से
हम गंभीरतापूर्वक विश्लेषण करने बैठें तो
मालूम होगा कि वह व्यक्ति वास्तव में बिल्कुल
निर्दोष है, और अवनति, अप्रसन्नता या सब
हमारे जीवन में सब अशुभ परिणामों का
दोष हम पर ही है।

जीवन में सर्वथा सम्पन्न और सुखी
दिखने वाले लोग भी इस चोर से बचे नहीं
हैं। बच्चे को, माता पिता के बढ़ते हुए
विषम व्यवहार से माता पिता के प्रति नहीं,
वरन् अनुज के प्रति ईर्षा होती है। ईर्षा
द्वेष के विचार, मन में जड़ जमा कर उतना
ही नुकसान करते हैं जैसे खेत में उगी हुई
घास फूस काँटे आदि, फसल को उगने,
पुष्पित फलित नहीं देते।

हम धन वैभव यश कीर्ति चाहते हैं,
परतु यदि हमें न मिलकर, यह किसी दूसरे
को मिले तो इसमें हमारा क्या बिगड़ा, और
हम अमुक व्यक्ति से ईर्षा रख कर अपनी
नीयत क्यों बिगाड़ें ? ईमानदारी से सोचने
पर स्पष्ट हो जायगा कि ईर्षा का कारण
स्वयं अपनी ही अयोग्यता है। यदि हम ईर्षा
के बदले, अमुक सहयोगी से प्रेम कर, उसकी
उन्नति के लिए परमात्मा को धन्यवाद दें,
उसकी उन्नति से प्रसन्न होकर उसकी और
परमात्मा की प्रशंसा करें, तो उसके साथ
साथ हमारा भी बहुत भला हो। हमें स्वयं
मानसिक शांति मिलेगी और उस व्यक्ति से
प्रेम और सहानुभूति मिलेगी। ईर्षा द्वेष से
मुक्त होने का और सुखी होने का यही
एकमात्र सहज मानसिक साधन है। केवल
जरा सी वृत्ति का फेर, भावना को बदल देने
से ही इतना सब हो जायगा।

अपने आपको, ऐसे कुविचार के लिए
क्षमा करके, परमात्मा से क्षमा माँगो और
उस व्यक्ति से भी निष्कपट स्पष्ट भाव से
क्षमा माँगो। क्षमा की भावना से बड़ा कल्याण
हो जायगा। अपने मन का मैल धुल जायगा,
ईर्षा द्वेष की अग्नि बुझ जायगी, रचनात्मक
शक्ति का उदय होगा, उस व्यक्ति की
सहानुभूति और ईश्वर की क्षमा भी तभी
प्राप्त हो जायगी।

सारे जीवन भर ईर्षा द्वेष में जलते रहे
तो भी न तो अपना भला होगा, न किसी

ा भला हुआ है। जीवन थोड़े दिनों का है, ौर यह थोड़े दिनों का जीवन ईर्षा द्वेष के लए नहीं मिला है। यदि जीवन भर ईर्षा ेष ही करते रहेंगे, तो कुछ फायदा न उठा केंगे।

जिससे आप ईर्षा द्वेष रखते हैं, क्या निष्कपट और स्पष्ट भाव से उससे क्षमा माँगने की हिम्मत आप में है? पहले अपने ापसे, एकान्त में, मौन में, ईमानदारीपूर्वक अपना यह कषाय स्वीकार कर स्वयं आत्मा ा क्षमा माँगो, फिर भगवान् से क्षमा माँगो, फिर उससे क्षमा माँगने की हिम्मत हो जायगी।

एक सच्ची कहानी है। एक फौजी सिपाही दुश्चरित्र था, उसे कई वार दण्ड दिया गया, परन्तु उसका सुधार न हुआ। वह विगड़ता ही गया। उस पर हर वार नये पुराने अपराध पर मुकद्दमा चला करता। फौज के अफसर उसे बार बार दण्ड देते देते परेशान हो चुके थे। पुनः एक अपराध पर उस पर मुकद्दमा चला। अधिकारी इस बार भ्रांत थे कि वार वार इसे कितनी सजा, और किस हद तक दी जाय!

विलायत से एक नये कप्तान आये थे। उनके हाथ में सब मुकद्दमों के कागज दे दिये गये। कप्तान ने सिपाही के सब पूर्व अपराधों और सजाओं का अध्ययन कर कहा, "इसे हमेशा सजा मिलती रही है, इसे क्षमा कभी नहीं मिली, अस्तु इस वार इसे क्षमा दी जाती है।" इस निर्णय पर सभी अधिकारी स्तब्ध रह गये। फौजी अदालत से क्षमा पाकर अपराधी निकला तो उसकी आँखों से आँसूओं की धारा वह रही थी। क्षमा प्राप्त होने पर उसमें आत्म जागृति हो गई, फिर उसने कभी कोई अपराध नहीं किया, कभी अदालत में न आया।

ईर्षा और द्वेष को क्षमा से शुद्ध करो। इसके लिए नित्य ईर्षा द्वेष से मुक्त होने के लिए क्षमा की भावना को रात को सोते समय धीरे धीरे मन में दुहराकर सो जाया करें तथा प्रातः उठने पर भी बोलकर पश्चात् अन्य कार्य आरंभ किया करें।

महत्वपूर्ण सूचना

तेईसवाँ आध्यात्मिक साधन समारम्भ

आध्यात्मिक मण्डल एवं कल्पवृक्ष मासिक पत्र के संस्थापक स्व० सन्त नागरजी के पूर्व आयोजन के अनुरूप आध्यात्मिक साधन का तेईसवाँ समारम्भ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया और चतुर्थी, वि० सं० २०१०, तदनुसार ता० १६, १७, १८ एवं १९ मार्च, १९५३ ई०, सोमवार, मंगलवार, बुधवार और बृहस्पतिवार को होना निश्चित् हुआ है। यह समारोह प्रतिवर्षानुसार, शहर से दो मील बाहर, एकान्त क्षिप्रातट गंगाघाट स्थित साधनालय के प्रांगण में होगा। देश के दूर दूर के प्रान्तों से जिज्ञासु, सत्संगी, अभ्यासी साधक एवं विद्वान् यहाँ एकत्रित होते हैं जिनके समागम एवं अनुभव विनिमय से जीवन में अद्भुत परिवर्तन होता है और जीवन को सर्वतोमुखी समुन्नत बनाने में बड़ी सहायता मिलती है।

जीवन की रोज रोज की व्यापारिक और व्यावहारिक उलझनें और झंझटें तो चलती ही रहती हैं तथा श्वास निकल जाने और आँखें बंद हो जाने के बाद भी चलती रहेंगी। हम जो कुछ रोज हाय हाय करते हुए दौड़ धूप करते रहते हैं, केवल वही हमारे जीवन का उद्देश्य नहीं है।

हमारा यह अवतार कुछ भी आत्म विकास कर लेने के लिए अनमोल अवसर है जो एक बार शरीर छूट जाने पर फिर दुबारा इसी रूप में नहीं मिलेगा। हमारा उद्देश्य क्या है और उसके लिए हमें क्या प्रयत्न अथवा साधन करना चाहिए, तथा सुख शांति और उन्नति के लिए कैसा व्यवहार करना चाहिए, इन्हीं विषयों पर चर्चा की जाती है। सभी विचार और धर्म के लोग यहाँ आते हैं और उनके ज्ञानवर्धक भाषणों से शरीर और मन के आरोग्य, आत्मबल एवं आत्म ज्ञान की अनुभूति पाने में नवीन प्रेरणा और सहायता मिलती है। अतएव आध्यात्मिक सत्संगप्रिय जिज्ञासुओं एवं साधकों से साग्रह निवेदन है कि ऐसे अवसर पर पधारकर चार दिन के सत्संग द्वारा समाधान और अनुभव का लाभ लें। नित्य प्रार्थना, प्रवचन, भजन-कीर्तन, जप, यज्ञ, स्वाध्याय के अतिरिक्त योगाभ्यास, योगासन, प्राणायाम, प्राकृतिक चिकित्सा के साधनों द्वारा शरीर को शुद्ध और स्वस्थ करने, रोग दूर करने और आत्मोन्नति की व्यावहारिक शिक्षा मिलती है।

प्रवेश शुल्क प्रति-व्यक्ति एक रुपया, तथा चार दिन का भोजन खर्च छः रुपये, इस प्रकार मनीआर्डर द्वारा सात रुपये शीघ्र भेज देना चाहिए। लोग अक्सर विना पहले रुपया भेजे और विना पूर्व सूचना दिये आ जाते हैं इससे प्रबन्ध में कठिनाई होती है। भोजन दिन में एक वार दोपहर को, तथा रात्रि में स्वल्प दुग्ध फलाहार होगा। बिस्तर, आसन, जलपात्र तथा कोई अन्य व्यक्तिगत आवश्यक वस्तु और स्वाध्याय के लिए इष्ट सद्ग्रन्थ अपने साथ लावें। दैनिक कार्यक्रम इस प्रकार है :—

प्रातःकाल

५ से ६ तक प्रार्थना

८ से १० तक योगासन, व्यायाम

१० से ११ तक मौन जप, हवन

मध्याह्न

१२ से १२॥ तक मध्याह्न उपासना

अपराह्न

१ से ४॥ तक भोजन, विश्राम, स्वाध्याय

४॥ से ५॥ तक प्राकृतिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक चिकित्सा पर भाषण

५॥ से ६॥ तक आनन्द पर्यटन, सायंकृत्य

सायंकाल

७॥ से १०॥ तक सामूहिक प्रार्थना, व्याख्यान आदि

१०॥ से ५ तक शयन

व्यवस्थापक

तेईसवाँ आध्यात्मिक साधन समारम्भ

कल्पवृक्ष कार्यालय, उज्जैन

संसार के आश्चर्य

आचार्य श्री नरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ

अहन्यहनि गच्छन्ति ।
भूतानि यममन्दिरम् ॥
शेषाः स्थिरत्वमिच्छन्ति ।
किमाश्चर्यमतः परम् ॥

(युधिष्ठिर यक्ष प्रश्न के उत्तर में)

हम प्रतिदिन देखते हैं कि प्राणिमात्र यम के मन्दिर में जाते हैं किन्तु जो पीछे रहते हैं वे अपना स्थिरत्व चाहते हैं अर्थात् यह चाहते हैं कि चाहे कोई यम-मन्दिर मे जाये, चाहे कोई मृत्युमुख मे पड़े किन्तु हम पीछे ऐसे के ऐसे बने रहें, हमको कभी यममन्दिर जाने का अवसर न आये। क्या पीछे रहने वालों की बुद्धि पर आश्चर्य नहीं ? इससे भी बढ़कर कोई आश्चर्य हो स[illegible] है ? अरे प्राणी, तू क्यो मृत्यु से डर[illegible] स्मरण रख कि मृत्यु डरनेवाले को नहीं छोड़ता। आज हो, कल हो, अ[illegible] जब कभी सौ वर्ष के पश्चात् भी क्यो [illegible] वह कभी किसी को छोड़नेवाला न[illegible] संसार में जो जो भी जन्मा है वह म[illegible] अवश्य, इसलिए मृत्यु से भयभीत न हो[illegible] स्वच्छ शुद्ध भाव से अपना कर्तव्य [illegible] जा और जब मृत्यु का बुलावा आये झट तैयार हो जा कि "आया जी" "तैयार हूँ जी।"

परमहंस योगानन्दजी की महासमाधि

लॉस एंजलीस (अमेरिका) स्थित आत्म साक्षात्कार संस्था के सस्थापक परमहंस योगानन्दजी ने ता० ७ मार्च, १९५२ को महासमाधि ले ली। उस दिन अमेरिका स्थित भारतीय राजदूत श्रीमान् और श्रीमती सेन, और कौंसल जनरल आहुजा का स्वागत करके, भाषण देते हुए, कुछ समय में ही उन्होंने अकस्मात् शरीर छोड़ दिया।

परमहंस योगानन्दजी का जन्म भारत में गोरखपुर में १९वीं शताब्दि के अंतिम वर्षों मे, १८९०-१९०० के बीच में हुआ था। उनके पिता श्री भगवती चरण घोष, बंगाल नागपुर रेलवे के बड़े अधिकारी थे। योगानन्दजी ने कलकत्ता विश्वविद्यालय से सन् १९१४ में बी० ए० किया। उन्होंने अपना अन्तिम ध्येय "आत्म साक्षात्कार" बना लिया था, अतएव गुरु की खोज में लगे और भाग्य से उन्हें गुरु मिल गये—स्वामी श्री युक्तेश्वर गिरि जी। [illegible] आश्रम में वे गुरु के पास रहने लगे [illegible] कठिन साधना करने लगे, और वहाँ इ[illegible] नाम स्वामी योगानन्द रखा गया। प[illegible] उनका नाम मुकुन्दलाल घोष था। [illegible] १९३६ तक ये स्वामी कहलाये और तब [illegible] द्वारा इन्हें परमहंस का पद दिया ग[illegible] निर्विकल्प समाधि होने पर ही कोई परम[illegible] पद पाता है। जब स्वामी योगानन्दजी ने [illegible] वर्ष तक पश्चिम में रहकर योग-प्रचार [illegible] अपने आपको इस योग्य सिद्ध कर दि[illegible] तभी उनके गुरु ने इन्हें परमहंस पद दिय[illegible] इसके लिए गुरु के बुलाने पर वे अग[illegible] १९३५ मे भारत वापस आये थे क्यों[illegible] गुरु श्री युक्तेश्वर गिरि जी को भी अपन[illegible] महासमाधि का पूर्व ज्ञान हो गया थ[illegible] उन्होंने ९ मार्च १९३६ को महासमाधि ली[illegible] सर्वप्रथम स्वामी योगानन्दजी ने योग-प्रचा[illegible]

के लिए सन् १६२० में पश्चिम की यात्रा की, और परमहंस पद के लिए केवल एक बार गुरु के बुलाने पर, १५ वर्ष बाद, अगस्त १९३५ में भारत वापस आये, और साल भर रहकर, अगस्त १६३६ में अमेरिका वापस चले गये, तब से उन्होंने जननी

परमहंस योगानन्द जी

७ मार्च १६५२ को, महासमाधि से एक घण्टा पूर्व लिया गया चित्र

जन्मभूमि के पुनः दर्शन नहीं किये। जून १९३५ में अमेरिका से चलकर स्वामी जी इगलैण्ड, स्कॉटलैण्ड, यूरुप और फिलस्तीन होते हुए भारत में आये थे। और अरुणाचल के महर्षि रमण से मुलाकात कर महात्मा गांधीजी के पास तीन दिन वर्धा में भी रहे।

पहले जब स्वामी जी अमेरिका नहीं गये थे सन् १९१७ में दिहिका (बंगाल) में उन्होंने एक पाठशाला खोली थी जिसमें सर्वप्रथम सात बालक आये थे। स्वामी जी के कार्य की प्रशंसा कासिमबाजार के महाराजा श्री मणिन्द्रनाथ नन्दी के कानों तक पहुँची, और इनका उत्साह देखकर महाराजा ने इन्हें रांची में विद्यालय के लिए अपना महल और उसके साथ २५ एकड़ भूमि भी दी, जहाँ स्वामी जी ने योगद सत्संग ब्रह्मचर्य विद्यालय की स्थापना सन् १९१८ में की। इस विद्यालय की स्थापना प्राचीन ऋषि आश्रम व्यवस्था के आधार पर की। इसमें केवल एक सौ विद्यार्थियों के लिए स्थान था किन्तु पहले वर्ष ही प्रवेश के लिए दो हजार विद्यार्थियों के आवेदनपत्र आये।

सन् १९२० में बोस्टन (अमेरिका) में

उदार विचारकों का एक सर्वधर्म सम्मेलन हुआ था, उसी के निमंत्रण पर भारत की ओर से सर्वप्रथम स्वामी योगानन्द जी वहाँ गये थे। तभी से स्वामी जी का विदेश में योग-प्रचार का श्रीगणेश हुआ। वहाँ पर उनके प्रवचन के पश्चात् जनता में रुचि जागी। तब तक लोग योगविद्या के सिद्धान्तों और साधना के विषय में प्रायः कुछ नहीं जानते थे, अब तो वहाँ योग साधन लोकप्रिय विषय हो गया है। सम्मेलन में भाषण के पश्चात् स्वामी जी ने आत्म साक्षात्कार साधना पर बहुत से भाषण दिये, फिर तो इन्हें लगभग न्यूयार्क, बफालो, राशेस्टर, फिलाडेल्फिया, पिट्सबर्ग, मियामी, वाशिंगटन, शिकागो, डिट्रॉइट, इंडियानापोलिस, क्लीवलैण्ड, सिन्सिनटी, मिनियापोलिस, सेंटपॉल, डेन्वर, साल्टलेक सिटी, सियेटल, स्पोकेन, पोर्टलैण्ड, सानफ्रांसिस्को, लॉस एंजलीस, सान डीगो, आदि शहरों में लाखों लोगों ने इनके प्रवचन सुने। दस हजार से अधिक लोगों ने अमेरिका में योग साधना की स्वामी जी से स्वयं दीक्षा ली।

लॉस एंजलीस में स्वामी जी का एक बड़ा आश्रम १८ एकड़ जमीन के विस्तार में है जिसके अन्तर्गत उपशाखाएँ भी हैं, सारे अमेरिका में कई शहरों में आत्म साक्षात्कार संस्था की शाखाएँ हैं।

परमहंस योगानन्दजी ने "योगी की आत्मकथा" पुस्तक लिखी है जो सन् १९४६ में प्रकाशित हुई और न्यूयार्क फिलासाफिकल लाइब्रेरी द्वारा तीन बार छप चुकी है, और लन्दन में दो बार प्रकाशित हो चुकी है। अतिरिक्त यह पुस्तक फ्रेंच, जर्मन, स्वीडिश, डच, इटालियन, स्पेनिश और बंगाली भाषाओं में छप चुकी है।

युवक संन्यासी स्वामी योगानन्द जब अमेरिका गये थे, तब एक पाई भी लेकर नहीं गये थे, न वहाँ इनका कोई परिचित या मित्र था। इनका सर्वेसर्वा केवल ईश्वर था।

७ मार्च को, महासमाधि के दिन, सैकड़ों अतिथियों के बीच, बृहत् भोज आयोजन में भाग लेकर, सम्भाषण करते हुए अकस्मात् उन्होंने शरीर छोड़ दिया। वे कभी-कभी कहा करते थे, मैं बिस्तर पर पड़े रहकर नहीं मरना चाहता, मैं तो जूते पहने हुए (अर्थात् खड़े हुए, चलते फिरते) भगवान् और भारत की चर्चा करते हुए मरना चाहता हूँ, और वास्तव में यही हुआ।

योगी की आत्मकथा पुस्तक में, ८७वें अध्याय में स्वामी जी ने स्वामी प्रणवानन्द जी के महाप्रयाण का वर्णन लिखा है। प्रणवानन्द जी ने २००० व्यक्तियों को भोज देने के पश्चात् प्रवचन दिया था और उसी समय अकस्मात् शरीर त्याग दिया था। वैसा ही स्वामी योगानन्दजी का महाप्रयाण हुआ। पहले उन्होंने कह दिया था कि मेरी मृत्यु के पश्चात्, आत्म साक्षात्कार संस्था को ही तुम सब लोग गुरु मानना। वे कहा करते थे, मनुष्य के मन में अथाह शक्ति है, मन की शक्ति से मनुष्य कुछ भी कर सकता है। प्रयत्न और साधना से ही आत्म साक्षात्कार अथवा परमात्म दर्शन हो सकता है, केवल किसी धर्म में विश्वास कर लेने या धर्मग्रंथों की पूजा से नहीं; परमात्मा की कृपा पर परमात्म दर्शन निर्भर नहीं, वरन् अपने प्रयत्न से होता है।

गत तीन वर्षों से परमहंस जी सार्वजनिक सेवा कार्य से कुछ खिंचे हुए रहा करते थे, और कभी-कभी कहा करते— "मेरे जीवन का कार्य अब पूरा हो चुका।" हमारे धर्मग्रंथों में लिखा है कि सच्चे ईश्वर भक्तों को अपने निर्वाण का पूर्व ज्ञान हो जाया करता है। परमहंस जी ने अपने

अनेक शिष्यों को पहले सांकेतिक भाषा में कह दिया था कि मार्च महीने में, "चल देंगे।" परन्तु शिष्यों को इसका स्पष्ट अर्थ समझ में नहीं आया और किसी ने विश्वास भी न किया। मेक्सिको शहर में आत्म-साक्षात्कार संस्था के शाखा संचालक श्री कारों ने परमहंसजी के प्रयाण का समाचार पाकर लिखा है—बातचीत के सिलसिले में परमहंसजी ने अनेक बार मुझसे कहा था कि "मुझे कुछ दिन उधार मिले हुए हैं, जगज्जननी जगदम्बा तो मुझे कई बार पुकार चुकी है, मेरा समय पूरा हो चुका, मैं चाहे जितनी खींचातानी करूँ, यदि मैं अपनी इच्छा से शरीर न छोड़ूँगा तो जगदम्बा मुझे खींच लेगी।

७ मार्च को परमहंस जी के शरीर त्याग के पश्चात् २७ मार्च को उनका शरीर देखने पर वैसा ही सजीव सतेज दीख रहा था। यह बात कोई जानता न था। ११ मई को दो अधिकारियों के बीच टेलीफोन से बात हुई तब उन्होंने यह भेद खोला। योगी लोग योगसाधन द्वारा शरीर को भी तेजोमय बना लेते हैं। विरले योगी ऐसे ऊँचे पद पर पहुँचते हैं। दो ईसाई सन्त भी इस श्रेणी में विख्यात हैं। योगसाधन द्वारा नहीं, वरन् अपनी अन्य विशेष शक्तियों द्वारा अपने शरीर को निर्मल और इतना सतेज कर लेते हैं कि मृत्यु के बाद भी शरीर की सजीव आभा बहुत काल तक बनी रहती है। एक ईसाई सन्त जॉन का निर्वाण सन् १५९१ में हुआ था, उनके शरीर को १८५९ में निकालकर देखा गया था, और २५० वर्ष बाद तक भी शरीर में कोई विकार उत्पन्न नहीं हुआ था। सन्त टेरेसा का शरीर अब भी स्पेन में अल्बा के गिरजे में रखा हुआ है, चार सौ वर्ष हो गये, वह शरीर भी अब जैसा का तैसा है। वैसा ही परमहंस जी के शरीर में २० दिन बाद तक कोई विकार दृष्टिगोचर नहीं हुआ। इसका रहस्य, सरकारी अधिकारी ने प्रगट किया है, और इस सम्बन्ध में पत्र प्रकाशित किया है। परमहंस जी का शरीर तब तक न तो सड़ा, न सूखा, न कहीं उसके रंग में कोई अन्तर मालूम हुआ। योगबल के इस चमत्कार पर लोग आश्चर्य कर रहे हैं। "योगी की आत्मकथा" में परमहंस जी ने लिखा है—पाश्चात्य लोगों में योग के सम्बन्ध में बहुत भ्रम फैला हुआ है। जो लोग योग की आलोचना करते हैं, उन्होंने कभी दृढ़ता और लगनपूर्वक साधना नहीं की। योग में पूर्व पश्चिम की सीमा या संकीर्णता कुछ नहीं है, योग तो प्राण और सूर्य के प्रकाश के समान सर्वहितकारी और व्यापक है। जब तक संसार में मनुष्य का मन चञ्चल रहेगा तब तक उसे संयम के लिए योग साधन का आश्रय लेने की आवश्यकता होगी।

७ मार्च को, भारतीय राजदूत का स्वागत कर, बृहत् भोज का आयोजन पूरा होने पर, उस समय रात के साढ़े नौ बजे थे, जब कि अपनी प्रभावपूर्ण वाणी से धीरे धीरे, अपनी बनाई हुई अंग्रेजी कविता "मेरा हिन्दुस्तान" का थोड़ा ही अंश उन्होंने सुनाया था, अकस्मात् उन्हें कुछ दिव्य प्रेम का आवेश हुआ, आँखें उठाकर ऊपर देखा, फिर दाहिनी तरफ धराशायी हो गये।

गत तीन वर्षों से वे पुनः भारतदर्शन का विचार कर रहे थे, और भारत यात्रा की चर्चा छिड़ने पर वे कहा करते, "यदि जगज्जननी जगदम्बा की इच्छा हो तभी जाना हो सकता है। पासपोर्ट की कार्यवाही पूरी हो जाने पर "क्वीन मेरी" प्रसिद्ध जहाज में उनके लिए तीन बार स्थान 'रिजर्व' सुरक्षित किया जा चुका था, प्रथम अक्टूबर १९५० में, फिर अक्टूबर १९५१ में, तथा पुनः अगस्त १९५२ में। परन्तु वे अगस्त १९५२ तक न ठहर सके।

—विश्वामित्र वर्मा

यज्ञ मर्म

श्री बिहारीलाल जी डालमिया

यज्ञ शब्द य+ज+ञ अक्षरों से बना है, जिसका अर्थ है, यजन, मिलना, युक्त करना, तन्मय होना, पूजना, यम करना, संयम करना, कर्षण करना इत्यादि। य का अर्थ विचारने से, शक्ति, ब्रह्म, वायु, जो, यावन्मात्र, और ज्ञ का अर्थ जानना, जनाना (ज्ञान देना) जताना, ज्ञान आदि। इसलिए यज्ञ = यावन्मात्र दृश्यादृश्य पदार्थ है तावन्मात्र का ज्ञान कराने वाला आदि।

चेतन ब्रह्म को यज्ञ कहते है क्योंकि वह अपनी इच्छाशक्ति (Will Power) तथा क्रियाशक्ति (Acting Power) के यजन द्वारा अखिल ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति, स्थिति तथा लय करता है। यज्ञ को यम इसलिए कहा कि चैतन्यगत यज्ञ द्वारा सूर्यों का हर, सूर्यगत यज्ञ द्वारा अनंत ब्रह्माण्डों का आकर्षण, निराकरण तथा स्तंभन रूप से निग्रह हो रहा है। यज्ञ को धर्म कहा है क्योंकि चैतन्य की यज्ञरूप स्फुरणशील प्रकृति है जो त्रिगुणात्मक हो, अपनी आकर्षण, निराकरण तथा स्तंभन शक्ति से सब को धारण किये हुए है।

यज्ञ को प्रजापति कहा है क्योंकि चैतन्य का स्फुरणशील यज्ञ ही सब की उत्पत्ति आदि का कारण है।

हवनीय द्रव्य - रोगनाशक, शोधक, पौष्टिक, सौगंधिक, वृष्टिकारी होते हैं। यज्ञ से आत्मा के दिव्य संस्कार जागृत होते हैं और जीवन के अनेक क्षेत्रों में उन्नति और सफलता प्राप्त करने के साधन करने के लिए प्रेरणाएँ मिलती हैं।

यज्ञ द्वारा अग्नि के प्रज्वलन से वायु हल्का हो ऊपर को जाने, तथा उसके स्थान पर अन्यत्र का वायु आने लगता है, इस प्रकार वहाँ का वायु शुद्ध हो जाता है। इस प्रकार उष्णता द्वारा वायु ऊर्ध्वगामी होता है, यथा संसार के समग्र द्रव और दृढ़ पदार्थ वाष्प बन कर उड़ जा सकते हैं,- अग्नि पर रखा हुआ जल तथा धूप में रखे हरे पत्तों का रस उड़ कर ऊपर चला जाता है। वाष्प हल्का होने के कारण, सूक्ष्म होने के कारण ही ऊर्ध्वगामी होता है। यथा शीतवात से ग्रस्त मनुष्य अग्नि तापता है तो अग्नि की किरणें शरीर में प्रवेश कर शीत वात को खींच वाष्प बना कर ऊपर उड़ा देती है और मनुष्य रोगमुक्त हो जाता है, इस प्रकार शरीर की अन्तर्गत वायु निराकरण से बाहर का शुद्ध वायु शरीर में आकर्षण होने से शरीर में शुद्ध वायु का संचार होने लगता है। पञ्चाग्नि तापने वाले साधु इसी कारण बहुधा हृष्टपुष्ट, बलवान्, चैतन्य तथा निरोगी पाये जाते हैं।

यज्ञ में पलाश, पीपल, वड़, गूलर, आक आदि की समिधा डालने का कारण यह है कि इनके द्वारा अग्नि शीघ्र प्रगट होती है, अग्नि इन्हे शीघ्र भक्षण कर जाती है, इनके वृक्ष अधिक परिमाण में जलवायु को कर्षण करते हैं, और ये सब शान्ति, पुष्टि, वल, वीर्य, निरोगता आदि गुणों के दाता हैं।

यज्ञ में यव, दूध, दही, शुद्ध घृत, मधु, शर्करा आदि द्रव डालने से, ये द्रव्य भी शान्ति पुष्टि निरोगता, वल, वीर्य, तेज के दाता हैं, जिसमें यव, दूध दही विशेष कर शोधक कर्षक तथा जठराग्निवर्द्धक हैं। शर्करा, घृत, दूध विशेष कर शान्ति, पुष्टि, वल, वीर्य, बुद्धि तेज के वर्द्धक हैं। यव दधि, घृत वृष्टिकारी हैं, मधु विशेष कर

संयोगी पदार्थों के गुणों का वाहक है, रक्षक तथा उत्तेजक है।

यज्ञ में शुद्ध घृत की धारा छोड़ने से अग्निगत कर्षण शक्ति का तेज, उन पदार्थों के सूक्ष्म गुणों को लेते हुए हमारे शरीर में प्रवेश कर जाता है, शेष का सार अग्नि अपनी किरणों द्वारा हममें पहुँचाती है। उनकी सुगंध आदि को वायु अवघ्राण रोम-कूप आदि द्वारा हममें पहुँचाता है। मधु का सूक्ष्म सार उनके गुणों की रक्षा करता हुआ सम्पूर्ण शरीर में फैलाता तथा अमृत की रक्षा करता है।

पृथ्वी पर घी गिर जाना अशुभ, और तेल का शुभ इस लिए माना जाता है कि घृत की धार में होकर पृथ्वीगत कर्षण शक्ति का तेज हममें नहीं आ सकता, वरन् उल्टे हमारा तेज पृथ्वी मे चला जाता है। किन्तु तेल की धार में होकर पृथ्वीगत तेज हममें आ सकता है, पर जाता नहीं। किसी घी या तेल (देशी) के बड़े कारखाने में जा कर देखिए, घृत भरने वाले बलहीन रोगी के समान, तथा तेल भरने वाले निरोगी के समान दिखाई देंगे, क्योंकि इन दोनो के हाथ से, काम करते समय थोड़ा बहुत घी तेल जमीन में गिरता है। पहलवान लोग अखाड़े में तेल ही डालते हैं, घृत नहीं।

जिसके घर में चिरकाल अग्नि रहती है वहाँ का दुष्ट वायु नष्ट होकर शुद्ध वायु आता रहता है, जिससे वह गृहस्थ कुटुम्ब सदा सुखी रहता है। अतएव हरेक गृहस्थ को अपने घर अग्निकुण्ड में दिन रात अग्नि-उपस्थित रखना धर्म है।

यज्ञ द्वारा वृष्टि होने का कारण यह है कि यज्ञ विशेष कर ऐसे समाधि हव्यादिक से किया जाता है जो विशेष कर जल वायु के वाष्प अधिकता से बनाते हैं, और स्वयं अग्नि तो सब की वाष्प बनाती ही है किन्तु वह मधु घृत आदि द्रव्यों के कारण विशेष रूप में वाष्प बनाने में समर्थ हो जाती है फिर वह वाष्प आकाश में जा शीतल पवन से स्पर्श कर जलरूप होकर बरसती है।

यज्ञ में शुद्ध घृत के बदले तेल लेने से हानि है क्योंकि शुद्ध घृत की वाष्प शीतल, तथा जल को शोषण न करने वाली होने से शीघ्र वृष्टिकारी होती है। तैलादिक की वाष्प शुष्क तथा जल को शोषण करने वाली होने से अवृष्टिकारी है। तभी तैलपान से प्यास अधिक लगती है, घृतपान से नहीं, वरन् तरावट रहती है।

सब युगों में नित्यप्रति बड़े बड़े यज्ञ होने दुर्लभ हो जाते हैं इसलिए छटाक आधपाव से लेकर शक्ति भर घृत का हवन नित्य करना प्रत्येक मनुष्य के लिए धर्म कहा गया है, जिससे अनायास ही देश भर में रोज बड़े बड़े यज्ञो के बराबर कार्य हो जाया करता था, किन्तु अब छोटे छोटे यज्ञ भी न होने के कारण, तथा बड़े बड़े यज्ञों के लिए शुद्ध घृत आदि सामग्रियों की, महँगाई के कारण न जुट पाने के अभाव के कारण यज्ञ नहीं हो रहे, इसी परिणाम से हम सब दुःखी हो रहे हैं।

खौलते हुए कुछ जल के ऊपर बर्फ से भरा पात्र लटका दो, वाष्प उस पात्र की पेंदी को छूकर जलरूप हो वापस बरसने लगेगी। किन्तु केवल जल की वाष्प ही वर्षा का कारण नहीं। वायु की वाष्प उससे अधिक वृष्टिकारी है। अधिक बारूद भड़कने से उसके द्वारा वायु की वाष्प बनती है तथा उदान वायु (हाइड्रोजन) दग्ध होता है जिससे भयकर वृष्टि हो सकती है जैसा कि पहले भयंकर गोला बारूद के युद्धकाल में वृष्टियाँ अधिक हुई थी। इस पुरातन विज्ञान को भारत काम में नहीं लेता जब कि विश्व के कई राष्ट्र कृत्रिम वर्षा के लिए लाखों रुपये

खर्च कर वर्षा के लिए प्रयत्नशील हैं। जब इस पुरातन विज्ञान की क्रिया द्वारा उदान वायु (हाइड्रोजन) को दग्ध करने वाले पदार्थों से यज्ञ किया जाय, अर्थात् जिन पदार्थों में हाइड्रोजन की मात्रा विशेष रूप से विद्यमान हो तो अधिक वृष्टि हो सकती है।

अश्वमेध यज्ञ का अर्थ यों है। अश्=उपजाना, ठहराना, नसाना; व=वहनशील सूक्ष्म वाष्परूपी वायु (मेघ) ज्ञान होना, जय करना, अर्थात् उपजाने, ठहराने तथा नसानेवाले सूक्ष्म वाष्परूपी वहनशील ४९ अश्वों का ज्ञान सहित जय कराने वाले यज्ञ को अश्वमेध यज्ञ कहते हैं।

गोमेध यज्ञ—विद्युत् शक्ति तथा इन्द्रियों के जय कराने वाले यज्ञ को गोमेध यज्ञ कहते हैं।

नरमेध यज्ञ—आवागमनकारी तत्वों के जय कराने वाले यज्ञ को नरमेध यज्ञ कहते हैं।

इन्द्र यज्ञ—मेघजं विद्युत् के यजन करने वाले यज्ञ को इन्द्र यज्ञ कहते हैं जिसके द्वारा वृष्टि हो सकती है।

ब्रह्म यज्ञ—जिसके द्वारा विवर्द्धनशील आकर्षण शक्ति, तथा उसके तेज का यजन किया जाता है।

रुद्र यज्ञ—जिसके द्वारा निराकरण शक्ति तथा उसके तेज का यजन किया जाता है।

उपरोक्त भिन्न भिन्न प्रकार के यज्ञों में घोड़े, आदमी, गौ इत्यादि की आहुति दी जाती थी, ऐसा अर्थ वेदशास्त्रों की अपार महिमा और गुणों से द्वेष रखने वाले तथा भारतीयता और उसके सनातन सूक्ष्म विज्ञान को नष्ट करने वालों ने प्रचारित किये हैं। किसी प्रकार के यज्ञ में किसी प्रकार भी किसी जीव की आहुति नहीं दी जाती। यथाश्रुति कथनं :—

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवस्तानि
धर्माणि प्रथमान्यासन्

अर्थात् सब देव यज्ञ द्वारा यज्ञ को यजते हुए, उनको या उनके सनातन धर्मों को पूर्ववत् विद्यमान रखते हुए; अर्थात् यज्ञ से यज्ञ, यज्ञ से तेज, तेज से यज्ञ, और तेज से तेज का यजन हुआ करता है, तो भी उनकी या उनके पूर्व धर्मों की स्थिति पूर्ववत् बनी रहती है।

———

अपने आप

श्री सुदर्शनसिंह

जगत् में साधारणतया परमाणु हैं। समस्त पदार्थों का निर्माण परमाणुओं से हुआ है। यहाँ तक इतना स्थूल विवेचन है कि कोई भी आसानी से समझ सकता है। पंचभूतों की सत्ता विज्ञान ने विलीन कर दी है। जल आज मिश्रित वस्तु है। मूलतत्व नहीं। यदि परमाणुओं का भी विश्लेषण करें तो वे इलक्ट्रान और प्रोटान से बने हैं, जो कि विद्युत् मात्र हैं। विद्युत् का अर्थ है गति, उष्णता और प्रकाश। ये तीनो एक गति ही के रूपान्तर हैं। ऋण और धन विद्युत् का अर्थ है, गति की क्रिया और प्रतिक्रिया। जहाँ दोनों एकरूप हो जाते हैं, गति या लहर मात्र रहती है, वहाँ उसे इथर कहते हैं। कह सकते हैं कि विद्युत् के त्रिरूप को पुराकाल में प्रकृति के त्रिगुण नाम से सम्बोधित किया गया और इथर को महान् के नाम से। गति + उष्णता + प्रकाश, यही जगत् के कारण हैं। गति की क्रिया और प्रतिक्रिया अर्थात् ऋण विद्युत् + धन विद्युत्, यही अहं है। 'मैं' का केन्द्रीकरण और 'त्वं' का वहिर्भाव। इथर इन सबका धारक है। महान् है। विज्ञान इसके आगे मूक हो जाता है। लेकिन इथर भी तो गतिशील है, उसमें भी तो लहरें हैं। जहाँ गति है, वहाँ स्थिरता की कल्पना स्वाभाविक है। गति स्वयं कोई तत्व नहीं। किसी तत्व में, किसी तत्व की गति होती है। गति का कारण होता है और गति स्वतः स्थिरता की अपेक्षा करती है। गति का संघर्ष प्रकाश है और प्रकाश तथा उष्णता पर्याय मात्र हैं। इस प्रकार प्रश्न उठेगा कि इथर गति है या इथर गतिशील है ? इथर गतिशील है, स्वयं गति नहीं। क्योंकि वह गति का वाहक माना जाता है। गति कहाँ ? मानना होगा कि इथर से भी परे कुछ है जिसमें इथर गतिशील है। फिर इथर यदि गतिहीन हो जाय तो उस तत्व से पृथक् रहेगा या नहीं। इथर को तो हम जानते ही इसलिए हैं कि वह गतिशील है। गति का वाहक है। गति से पृथक् होने पर वह इथर नहीं रहेगा। वह अपने परे के तत्व से एक हो रहेगा। यही तत्व है प्रकृति। इथर या महान् उसका कार्य है। तव क्या मूलतत्व एकरस जड़ प्रकृति ही है ? इसका उत्तर यदि 'हाँ' में दिया जावे तो यह बाधा होगी कि एकरस जड़ पदार्थ में गति क्योंकर हुई ? एक एवं एकरस जड़ प्रकृति में तो गति सम्भव नहीं। अतः उसमें गतिदाता की अपेक्षा है। इस प्रकार हम चेतन तक पहुँचते हैं। किन्तु प्रश्न यह अव भी रहता है कि चेतन एक हैं या अनेक। सांख्य के अनेक पुरुष और एक प्रकृति को मानना जीवों की अनेकता को देखते हुए स्वाभाविक हो जाता है। लेकिन यदि जीव अनेक और स्वतन्त्र हों, तो वे सब अपने अपने ढंग से प्रकृति को प्रेरित करेंगे। इससे प्रकृति में कोई क्रम और व्यवस्था नहीं रह सकेगी। संसार हमें इसके विपरीत बात बतलाता है। यहाँ पकी व्यवस्था है। इसका अर्थ है कि जीव अपने अपने ढंग से प्रकृति को नहीं प्रेरित करते। वे एक व्यवस्था में रहकर प्रकृति को प्रेरित करते हैं। यहाँ व्यवस्था हमें स्वतः व्यवस्थापक ईश्वर तक पहुँचा देती है। प्रकृति, अनेक जीव, एक ईश्वर, यह हुआ योग का तत्व विवेचन। देखना यह है कि ईश्वर जीवों को दूर रहकर प्रेरित करता है या निकट से ? दूर से प्रेरित करता है किसी

सातवें आसमान में बैठकर तो उसके और जीव के बीच मे मध्यस्थता किसकी है? प्रकृति की? ऐसा नहीं हो सकता। जड़ प्रकृति जीव पर आज्ञा नहीं चला सकती। यदि वह टेलीग्राफ के समान केवल सदेश-वाहक हो तो जीव उसे अस्वीकार कर सकता है और तब जीवों को दण्ड देने के लिए ईश्वर को स्वयं भागे भागे फिरना होगा। फिर वह सफल व्यवस्थापक नहीं हो सकेगा। जीव और ईश्वर के बीच में फिरश्ते प्रभृति चेतन सन्देश-वाहक मानने पर एक तो उनका प्रत्यक्ष नहीं होता, दूसरे फिर यही शंका उठेगी कि वे विद्रोह करें तो ईश्वर क्या करेगा? क्योंकि चेतन तो सक्रिय, विचारशील होगा। वह अकारण किसी की पराधीनता क्यों स्वीकार कर लेगा? इस संकट से बचने के लिए मानना पड़ेगा कि ईश्वर जीव के भीतर से ही उसे संचालित करता है। वह विभु है। इतने असंख्य जीव जो पूरी प्रकृति में फैले हैं, उनमें व्यापक ईश्वर स्वतः प्रकृति में व्यापक हो गया। ईश्वर जीव और प्रकृति दोनों में व्यापक है, यह परिणाम निकला। व्याप्य अपने व्यापक से भिन्न नहीं होता, इस अकाट्य न्याय से यहाँ आकर जीव और प्रकृति दोनों हवा हो जाते हैं। केवल ईश्वर ही बच रहता है। एकमात्र ईश्वर ही है। ईश्वर से प्रकृति, जीव और जगत् कैसे हुआ? यह है सबसे बड़ी उलझन। ईश्वर में विकार या परिणाम होकर ये बने तो चेतन का परिणाम जड़ कैसे? और यदि जड़ हो भी गया तो जितने अंश में परिणाम हुआ, उतने अंश में तो फिर वह अपने पूर्व रूप से व्यापक रहा नहीं। वहाँ तो उसका हो गया परिणाम। फिर इस परिणाम का उसमें व्यापक रहकर वह संचालक कैसे हो सकता है? यहाँ तो पुनः वही अनेक जीवों एवं जड़ प्रकृति के अशृङ्खल व्यवहार की आपत्ति आती है। अतः ईश्वर में परिणाम होना तो स्वीकार किया नहीं जा सकता। केवल ईश्वर है, एकरस, विभु, चेतन, अपरिणामी। इस जीव और प्रकृति की कोई मूलतः सत्ता नहीं। परन्तु ये प्रतीत तो हो रहे हैं? अवश्य ये प्रतीत हो रहे हैं, अतः ये प्रतीति हैं—केवल प्रतीति मात्र। यह प्रतीति क्यों? यहाँ बुद्धि मूक हो जाती है। उत्तर मीमांसा भी यहीं तक आती है। प्रतीति अज्ञान से कहने पर प्रश्न होगा कि अज्ञान किसे? और क्यों? इसका कोई ठीक उत्तर है नहीं। वस्तुतः बुद्धि की यहाँ गति नहीं। ये प्रश्न उठते भी नहीं यहाँ तक आकर। अज्ञान नष्ट तो हो ही जाता है और नष्ट हो जाने पर उसका कारण जानने की जिज्ञासा शेष नहीं रहती। किन्तु यहाँ आने से पूर्व मानव इस विषय में जितना ही सिर मारता है, वह उतना ही अधिक उलझता जाता है। कोई निश्चित उत्तर बुद्धि से न पाकर वह अनेक प्रकार की भ्रान्त धारणाएँ करने लगता है और फिर उन्हीं में उलझ जाता है। यह ठीक है कि यदि वह ईमानदारी से सत्य का अभीप्सु बना रहे, अपने वर्षों के श्रम से निर्णीत विचारों का भी निर्दयता से विश्लेषण करता रहे, उन्हें प्रति क्षण सत्य के लिए त्याग देने को प्रस्तुत रहे तो वह अवश्य ही सत्य को प्राप्त कर लेगा। सत्य उससे छिपा नहीं रह सकता। सत्य को प्राप्त करने का एकमात्र उपाय अभीप्सा तथा उसके द्वारा आये विचारों का तटस्थ विश्लेषण। और कोई भी क्रिया, चाहे वह कितनी भी पवित्र क्यों न हो, सत्य को तनिक भी निकट लाने में समर्थ नहीं हो सकती। क्योंकि विचार और कर्म दो पृथक् तथ्य हैं और उनका परस्पर कोई समन्वय सम्भव नहीं।

मन जड़ है या चेतन ?

श्री चन्द्रकला बहिन माणिकलाल पाठक

दर्शनकारों के मत के अनुसार मन जीवात्मा का एक जड़ साधन माना गया है किन्तु यजुर्वेद के शिवसङ्कल्प वाले छह मन्त्रों मे मन के जो गुण धर्म स्वभाव या क्रिया वर्णित है, उससे मन एक जड़ तत्त्व नहीं वरन् चेतन क्रियात्मक तत्व मालूम होता है। इस प्रकार एक ही शरीर में मन और जीवात्मा नामक दो चेतन एक ही समय में संचालक रूप से एक ही स्थान में मानने का कोई प्रबल कारण नहीं हो सकता। अतएव मेरी समझ में आत्मा, जीवात्मा के मन आदि शब्द एक ही चेतन को दर्शानेवाले पर्याय-वाची शब्द हैं क्योंकि गुण धर्म स्वभाव से तीनों एक ही तत्त्व रूप मालूम होते हैं।

हिन्दू शास्त्रों में आत्मा परमात्मा का ऐक्य और भिन्नत्व, अद्वैत और द्वैतवाद अपनी जड़ें जमा कर बैठे हैं, उसी प्रकार जीवात्मा और मन के सम्बन्ध में मतभेद प्रचलित है।

बहुत से लोग मन और आत्मा को अलग अलग तत्त्व बतलाते हैं, और कई लोग उनको अलग शब्द से सम्बोधन करते हुए वास्तव में एक ही मानते हैं।

देहधारी के शरीर को चलानेवाला, चैतन्यशील रखनेवाला शरीर से अलग तत्त्व प्राणीमात्र के शरीर में बसा हुआ है, वह तत्त्व क्या है? कैसा है? एक है या दो? क्या दूसरे सहायक मण्डल से संयुक्त है? शरीर के किस भाग में उसका अधिष्ठान और प्रतिष्ठा हुई है? इत्यादि बातों का निर्णय हमारे शास्त्रकार या पाश्चात्य विद्वान् नहीं देते।

शरीर की संचालक विभूति अतीव अद्भुत है। जिसे हम मैं, मेरा मन, मेरा आत्मा, कहते हैं, वह कौन है? कैसी वस्तु है? किसमें से बनी हुई है? उसका स्वरूप कैसा है? शरीर के किस भाग में विराजता है? मन और आत्मा अथवा जीवात्मा के नाम से ख्यात वह वस्तु एक है या अलग अलग? शरीर को जीवित रखने वाला, शरीर में बसा हुआ चैतन्य एक है कि एक से अनेक?

जीवात्मा के साथ मन का स्थायी सम्बन्ध माना जाता है। मन के बिना आत्मा कुछ भी कर सकता नहीं है। मन ही जीवात्मा के सभी कार्य करनेवाला कार्य-भागी, वकील या बैरिस्टर है। जीवात्मा की सभी छोटी बड़ी प्रवृत्ति का प्रेरक मन ही माना गया है फिर भी आश्चर्य है कि ज्ञान-युक्त मानसिक और शारीरिक क्रिया करने वाले मन को स्वभावतः जड़ मानते हैं।

जब मन ही मनुष्य के सब कार्यों का कर्त्ता है तो जीवात्मा की प्रवृत्ति क्या है? जड़ मन का इतना प्रभाव है तो चैतन्य आत्मा का असर तो इससे अधिक होना चाहिए। तो जीवात्मा का प्रभाव क्या है? मन मनुष्य के उद्धार और अधःपतन करनेवाला है, तारक और डुबानेवाला है, सुख दुःख देनेवाला है, इस रीति से मन को कर्त्ता-हर्त्ता माना जाता है, और आत्मा की क्रियाशक्ति या सामर्थ्य कुछ भी बताया नहीं जाता, उसे सिर्फ द्रष्टा के रूप में माना है, तो ऐसा द्रष्टा किस काम का जो अपने को गड्ढे में गिरने से बचा न सके? वह तो ग्राहक एवं आधीन गुलाम ही रहा करे, और मन मस्त बनकर जीवन को चाहे जैसे फना कर दे, तो उसका द्रष्टा या अधिष्ठाता जीवात्मा कुछ भी न कर सके, यह अजीब बात है।

जड़ मन से, चेतन आत्मा की शक्ति कम मानी जाती है, वह रस्सी से बँधी गाय के सदृश है, सभी प्रकार से कर्म का कर्त्ता मन है, तो फल का भोक्ता कौन ? मन को माना जाय तो ठीक है, किन्तु कर्म मन करे, फल भोगना पड़े आत्मा को, यह कैसा न्याय ?

फिर भी मन को जड़ माना जाता है। तो क्या जड़ मन में स्वयं विचारने की या इतनी शारीरिक और मानसिक ज्ञानयुक्त क्रिया करने की शक्ति है ? उसमें भाव ग्रहण और प्रदर्शित करने का सामर्थ्य है ? इस तरह जड़ वस्तु में ज्ञानयुक्त स्वयं शक्ति की शक्यता सम्भव है ? जड़ वस्तु आप ही विचारयुक्त क्रिया करने के लिए शक्तिमान् हो तो सभी जड़ वस्तुएँ वैसी क्रियाशील होनी चाहिए। पर ऐसा तो कभी दिखाई नहीं देता, शरीर से आत्मा निकल जाने के पश्चात् शरीर निष्क्रिय क्यों बन जाता है ? जड़ मन क्रियाशील है तो जड़ प्राकृत शरीर भी आत्मा के बिना क्रियाशील रहना चाहिए। परन्तु कहीं भी जड़ प्रकृति की ज्ञानयुक्त स्वयं संचालन शक्ति देखने में आती नहीं है, इससे सिद्ध होता है कि मन प्राकृत पदार्थ जड़ या आत्मा से अलग कोई भिन्न तत्व नहीं है।

मान लीजिए कि जीवात्मा के साथ मन जाता है, तो आत्मा का विशेषण अस्पृश्य, अशोष्य, अदाह्य, अजर, अमर का कथन मारा जाता है, क्योंकि जड़ तत्व रूपान्तर धर्मी है। जीवात्मा को अनादि और अविनाशी मानेंगे तो उसके साथ जड़ मन का संयोग योग्य नहीं है। यदि मन को चेतन मानें तो जीवात्मा और मन, दो चेतन एक साथ किस तरह रह सकेंगे ? और उन दोनों में कर्म का कर्त्ता और सुख दुःख का भोक्ता तथा पुनर्जीवन की पदवी को पानेवाला कौन ? जीवात्मा या मन ? परिमित ज्ञानवाले सूक्ष्म स्वरूप आत्मा के साथ जड़ मन का सहयोग अनादि और अनन्त सम्भव नहीं है। उसी तरह जीवात्मा और मन इन दोनों चैतन्य का निकट सम्बन्ध भी शक्य नहीं है। एक ही स्थान में आत्मा परमात्मा के सिवाय इस प्रकृतिजन्य शरीर मंदिर में जीवात्मा और मन, इन दो चेतन देवों को शरीर के अधिष्ठाता मानने को जी नहीं चाहता। इन सभी बातों से यह सिद्ध होता है कि जीवात्मा और मन एक ही वस्तु है और वही शरीर मंदिर में बसे हैं। वही जीवन चलानेवाला, जीवन की आवश्यकताओं को पूरनेवाला और प्रगतिकाल में देखभाल करनेवाला द्रष्टा है।

आत्मा एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता
श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा
कर्त्ता विज्ञानात्मा पुरुषः॥ प्रश्नोपनिषत्

शरीर के संचालक देव शरीर में बसा हुआ चेतन देव जिसको हम जीवात्मा के नाम से पहचानते हैं वही देखनेवाला, स्पर्श करनेवाला, सुननेवाला, सूँघनेवाला, स्वाद लेनेवाला, मनन करनेवाला, जाननेवाला, क्रियाएँ करनेवाला, कार्य के कारणरूप और ज्ञाता ज्ञानयुक्त है, बुद्धि आदि ज्ञान के साधन हैं। ज्ञानमय, ज्ञान जिसका स्वभाव है वह पुरुष जो शरीरपुरी में बसा हुआ आत्मा है, वही है जीवात्मा।

आत्मा, जीवात्मा, और मन बुद्धि चित्त अहंकारादि अंतःकरण चतुष्टय एक ही तत्व का सूचक, एक ही द्रव्य को समझानेवाला एकार्थ वस्तुवाचक शब्द है और सभी आत्म तत्व के विशेष गुण को दर्शानेवाला गुण वाचक नाम है।

अन्तःकरण चतुष्टय कहकर जीवात्मा का चार गुण ही बताया है परन्तु इससे बढ़कर गुण मानसशास्त्र द्वारा हमारी समझ

में आया है—प्रेम, दाम्पत्य वात्सल्य, भक्ति भाव, दया परोपकार, शौर्य, स्वाभिमान, सौजन्य, स्वदेशाभिमान, संगीत, गणित, कला, न्याय, नीति, अध्यात्मरति, औदार्य, आशा, आत्मनिष्ठा, तर्क, तुलना, प्रेरणा, मैत्री आदि चरार्तीम गुण हैं, इन सभी गुणों से आत्मा की प्रतीति होती है।

आत्मा की सभी वृत्तियाँ, और मन बुद्धि चित्त अहंकार आदि कोई अलग अलग तत्त्व के प्राकृत पदार्थ नहीं हैं, परन्तु एक ही जीवात्मा की अलग-अलग शक्तियों के नाम और वृत्ति हैं। ये वृत्तियाँ जीवात्मा के आश्रित रहती हैं, वे उससे भिन्न नहीं हैं।

इस प्राकृत दुनिया में स्थूल साधन बिना, जीवात्मा कुछ भी कार्य नहीं कर सकता है। यह यथार्थ है और इसीलिए जीवात्मा को इस प्राकृत दुनिया में कार्य करने के लिए हमेशा प्राकृत शरीर की जरूरत पड़ती है, और वह परमात्मा ने आत्मा को दिया है। मगज के साधन से ही आत्मा या मन अपने भाव को प्रगट करता है तथा अन्य प्राणी के प्रति भाव दिखलाते हैं, और पार्थिव पदार्थों की गुणाकृति को ग्रहण करता है, लेकिन अन्त में प्राकृत शरीर और अप्राकृत आत्मा अलग हो जाते हैं। अप्राकृत चैतन्य आत्मा के साथ जड़ प्राकृत संयोग सदा के लिए सम्भव नहीं है। इस तरह सिद्ध होता है कि जीवात्मा के साथ सम्बन्ध रखनेवाला मन जड़ नहीं है। आत्मा या मन एक ही विभूति है।

यह देह छोड़ने के बाद भी जीवात्मा के साथ जड़ मन का सम्बन्ध मान लीजिए तो जीवात्मा का अविभाज्य गुण नष्ट होता है क्योंकि जड़ पदार्थ का गुण संयोग-वियोग जन्य है। इस तरह चेतन जीवात्मा के साथ जड़ मन का हमेशा के लिए संयोग किसी तरह सम्भव नहीं है। वास्तव में वाच्य भेद के सिवा जीवात्मा और मन एक ही तत्त्व हैं।

आवश्यक सूचना

१—"कल्पवृक्ष" अथवा पुस्तकें मँगाने के लिए डाकखर्च सहित मूल्य मनीआर्डर से भेजिए। वी० पी० मत मँगाइए। इससे आपको और हमें, पैसे और समय की बचत होगी।

२—अपना पता बदलवाने के लिए पुराना और नया पता, ग्राहक नम्बर सहित लिखें।

३—"कल्पवृक्ष" का वार्षिक मूल्य समाप्त होने की सूचना मिलने पर अगले वर्ष का मूल्य २॥) हमें फौरन मनीआर्डर से भेज दें। "कल्पवृक्ष" वी० पी० से मँगाने की आदत छोड़ दें, ग्राहक रहना स्वीकार न हो तो कृपया एक पोस्टकार्ड से सूचना दे दें। धन्यवाद!

४—"शिव सन्देश" पुस्तक वी० पी० द्वारा नहीं भेजी जायगी। इसके लिए डाक खर्च सहित ११) पहले भेज दीजिए। कल्पवृक्ष के प्रत्येक प्रेमी पाठक को यह पुस्तक मँगा लेनी चाहिए क्योंकि एक बार खत्म होने पर दुबारा नहीं छपेगी।

शीतकाल में आहार

श्री व्रजभूषण मिश्र, एम्० ए०, बी० टी०, विद्यालंकार

जाड़ा आया और खाने का सुख प्रारम्भ हुआ। तरह तरह के फल शाक व अन्न इस मौसम मे मिलने लगते हैं। भोजन परिपाक भी किंचित् तीव्र हो जाने से सरल हो जाता है और लोग ऐसा समझने लगते हैं कि इसमें तो मनमानी खाने की छूट रहती है। ऐसी स्थिति में यदि सावधानता न रक्खी गई तो उस समय यदि बीमारी ने जोर न डाला तो आगे चलकर वह होली के बाद अवश्य अपने पहले किये हुए अनाचार का परिणाम सूद सहित भोगेगा। इस लिए हमें अपने भोजन में ऐसे तत्वों को अवश्य रख लेना चाहिये जिससे विसर्जन क्रिया भी ठीक होती रहे। इसके लिये नीचे लिखे उपाय काम मे लाये जा सकते हैं। हर आठवें या पन्द्रहवें दिन पूरा या एक समय का उपवास रक्खा जा सकता है। भोजन मे कच्चे पदार्थों का समावेश पके अन्न के साथ किया जा सकता है। पत्तीदार साग जिसमें स्फोक की मात्रा अधिक होती है काम में लाया जा सकता है।

आजकल तरह तरह के पौष्टिक पदार्थ बादाम का हलुआ, पिश्ते की वर्फी और इसी प्रकार के अन्य पदार्थ खाने को दिये जाते हैं। ऐसा करने से यदि खाया हुआ पूरा पच न पाया और बचा हुआ अंश निकल न पाया तो लाभ के स्थान पर हानि ही होती है। पोषण उसमे है जिसको हम खाकर पूरा पूरा पचा सकें यदि हम खाए हुए को पचा नहीं पाते तो सबसे अधिक पौष्टिक तत्व भी हमारे लिये लाभप्रद नहीं होगा बल्कि हानि ही करेगा। इसी लिये गताङ्क में १५ मिनट में ऐसे व्यायाम क्रम को संगठित कर दिया है जिससे साधारणतया मनुष्य अपना भोजन अच्छी तरह से पचा ले।

अब यहाँ पर उन खाद्य पदार्थों का वर्णन किया जा रहा है जो इस ऋतु के आकर्षण हैं। आशा है, पाठकगण इससे लाभ उठायेंगे।

बैगन :—शीत में सबसे अधिक सहूलियत से प्राप्त होने वाला साग बैगन है जिसे भाँटा भी कहते हैं। यह पदार्थ बहुत ही स्वादिष्ट होता है। वायु का अंश इसमें विशेष होने से हींग और अदरख या सोंठ की मात्रा मे कमी नहीं करनी चाहिये। बहुधा इसके साथ मूली या आलू मिलाया जाता है जो इसमे स्वाद तो ला ही देते हैं और भोजन की पूर्णता भी कर देते हैं। आलू में पुत्तनक (प्रोटीन) होने से आलू-बैंगन सपूर्ण भोजन हो सकता है। बैगन के टुकड़ों को बेसन में लपेट कर चिकने में तला जाता है। यह स्वादिष्ट तो होता है पर पचने मे भारी होता है इस लिये इसका उपयोग कभी-कभी करना चाहिये। बैगन के टुकड़ो को तेल में भूँज कर भाजा बनाने की प्रथा भी स्वाद की तृप्ति के लिये तो उचित है पर पाचन की दृष्टि से कठोर है।

गोभी :—गोभी सस्ती और स्वादिष्ट होने से अधिकतर इसके गुण को मसालों द्वारा कम कर दिया जाता है—गोभी तीन प्रकार की होती है—फूल गोभी, पात गोभी और गाँठ गोभी। ये तीनों कच्चे भी खाए जा सकते हैं। यदि ये पदार्थ अच्छी तरह पच नहीं पाते तो हानि पैदा करते हैं। अतः गाँठ गोभी कम खानी चाहिये। पत्तीदार गोभी में सब खाद्योज मिलते हैं; इसमें

कैरोटीन नामक पदार्थ विशेष मिलता है जिससे चर्मरोगों में विशेष लाभ होता है। शरीर में बढ़ी हुई अम्लता को कम करने में विशेष लाभकर है। दमा व गठिया में भी लाभकर पाया जाता है। फूल गोभी में क्षोज की मात्रा पर्याप्त होती है। फूल और सागं होने के कारण यह जीवनप्रद है और खाद्योज 'अ' का अच्छा स्रोत है। इसमें कर्बोज ५·३% है इसमें अम्लहारी होना प्रगट होता है। इसमें ३·५% पुत्तनक होता है इसलिये पुत्तनक की मात्रा अधिक न हो जाय इस ओर ध्यान देना चाहिये। १·३% लोहा होने के कारण यह अच्छा खाद्य है। गाँठ गोभी बहुत कम लाभदायक है। उसका प्रयोग कम होना चाहिये।

सेम :—सेम भी सस्ता साग है। इसमें १·६% लोहा होता है; २% वसा है इस लिये सुपाच्य भी है। इसमें सब प्रकार के खाद्योज मिलते हैं जिनमें खाद्योज 'अ' मुख्य है। मधुप्रमेह में यह लाभकर है। दमा, छाती की जलन व खट्टी डकारों में सेम का रस सफलतापूर्वक दिया जा सकता है।

गाजर :—कैरोटीन के कारण गाजर का स्थान ऊँचा हो गया है। गाजर टमाटर करमकल्ला (पात गोभी) मिला कर खाने से खाद्योज 'अ' की कमी नहीं रह सकती। शारीरिक विकास व रोगाणुओं के आक्रमण से बचाव में यह विशेष लाभकर है। नासूर का तो यह एक प्रकार का काल है। गाजर का हलुआ खाने से उसका खाद्योज 'अ' नष्ट हो जाता है। आँतों के घाव की यह अचूक औषधि है। पित्त-दोष, पाडु गुर्दे के रोग में इसका रस लाभकर होता है। गाजर का मुरब्बा उसका अचार आदि बनाकर उसके लाभ को कम कर दिया जाता है।

लौकी :—लौकी बहुत जल्दी पचती है। इसमें प्रस्फुरक (फॉस्फोरस) और चूना (Calcium) विशेष पाया जाता है। खाद्योज 'ब' की तो भरमार है। यह मूत्रवर्द्धक है, गुर्दे के रोगों को ठीक करता है। कोष्ठबद्धता का काल और पाचक यंत्रों का मित्र है। राजयक्ष्मा के रोगी को भी इसका रस दिया जाता है। इसके समान ही लाभकर टिंडा भी है। इसको पकाने में अधिक मसाला नहीं डालना चाहिये।

मूली :—कच्ची नरम मूली अधिक घावों को ठीक करती है। इसका ५ तोले रस गन्ने के रस के साथ लिया जाय तो खाँसी गठिया और बवासीर के लिये लाभकर है। कच्ची मूली पांडु रोग के लिये काल है। पथरी और गठिया के लिये मूली के पत्तों का रस लाभकर है। चूना, प्रस्फुरक, लोह व ओषजन का यह प्रधान गढ़ है। स्वयं तो कठिनाई से पचती है पर आँत में एकत्र अनावश्यक अंश को हटाने में विशेष लाभप्रद है। इसको कच्चा खाना श्रेष्ठ है। जौनपुरी मूली जो अपनी लंबाई-मुटाई के लिये प्रसिद्ध है अच्छा भोजन है, चर्म रोगों का भी इससे अंत समझना चाहिये।

शलजम :—सेम की तरह इसमें क्षार अधिक है। यह सुपाच्य और भूख बढ़ाने वाला है। इसके पत्ते में खाद्योज 'अ' और चूना होता है इसलिये पत्ते के साथ ही इसको पकाना चाहिये। कार्बोज व श्वेतसार न होने के कारण मधुमेह वालों के लिये विशेष लाभप्रद है।

चुकन्दर :—खाद्योज 'ब' 'स' लोहा और चूना इसमें मिलता है। पथरी के निकालने में यह सहायक होता है। पेशाब की जलन, गुर्दों की सूजन में इसका रस बहुत लाभ करता है।

मटर की फली :—हरी मटर आजकल बहुत स्वाद देती है। इसमें पुत्तनक व कर्बोज बहुत होता है। खाद्योज 'अ' 'ब' 'स', लोहा

चूना प्रस्फुरक खूब मिलता है। आग में भूनने की बजाय पानी में पकाना अच्छा है। वायु-वर्द्धक होने के कारण इसमें अदरख डाल देना हितकर है। यह भारी होता है अतः कम खाना चाहिये। अनुपात में रोटी और चावल की मात्रा में कम कर देनी चाहिये।

आलू :- सब सागों का राजा है आलू। चावल की अपेक्षा आलू अच्छा है। चावल खाने वालों को आलू कम खाना चाहिये। इसके बजाय यह कहना चाहिये कि चावल कम कर आलू खाना हितकर है। सोडा और पोटाश जैसे क्षार पदार्थ होने के कारण यह अम्लनाशक है। आलू को उबालना, उबले हुए पानी को फेंकना, छिलका हटाना और फिर भूनना आलू की हत्या करना है। राख में भूने हुए आलू सब से लाभप्रद हैं। आलू का रस बच्चों के लिये लाभप्रद है। जब अन्न न पचता हो तो आलू सफलतापूर्वक दिया जा सकता। इसके साथ स्फोक की दृष्टि से पत्तीदार साग लेना हितकर है।

पत्तीदार साग और फल आदि के विषय में आगे कभी लिखने का अवसर प्राप्त हुआ और भगवदिच्छा हुई तो लिखा जायगा।

ब्रह्मचर्य और सन्तति नियमन

स्वामी सत्यभक्त जी

[कुछ पाठकों ने अक्टूबर में कल्पवृक्ष पर सम्मतियाँ देते हुए अनेक सुझाव दिये हैं, कुछ ने ब्रह्मचर्य के विषय में लेखों की माँग की है। सब धर्मों मे ब्रह्मचर्य की बहुत महिमा गाई है क्योंकि ब्रह्मचर्य ही जीवन की नींव है, ब्रह्मचर्य ही जीवन है। स्वामी सत्यभक्त जी को आप लोग जानते होंगे। स्वामी जी अफ्रिका गये थे वहाँ ता० ४-३-५२ को सत्संग मे बैरिस्टर भट्ट से हुए वार्तालाप को हम पाठकों के विचारार्थ "सङ्गम" से उद्धृत कर यहाँ देते हैं।—सं०]

प्रश्न—सन्तति नियमन में कृत्रिम निरोध की क्या आवश्यकता है? ब्रह्मचर्य से सन्तति नियमन क्यों न किया जाय?

उत्तर—इस मामले में साधारण गृहस्थ ऋतुगामी से अधिक संयमी नहीं हो सकता पर अगर वह वर्ष में एक बार भी मिले तो भी साल दो साल में एक बच्चा आ जायगा। बीस से पैंतालीस वर्ष की उम्र तक में दस पन्द्रह बच्चे हो जायँगे। तब सन्तति नियमन क्या होगा? जवानी के पचीस तीस वर्ष मे सिर्फ तीन चार बार ही रति-प्रसंग करनेवाले कितने व्यक्ति मिलेंगे? ऐसी हालत में ब्रह्मचर्य से सन्तति नियमन की बात कहनेवाले सन्तति नियमन के विरोधी ही समझे जायँगे। वे इस प्रश्न को टालना चाहते हैं या स्वपरवञ्चना करते हैं।

प्रश्न—क्या इस तरह नपुंसक होकर सन्तति नियमन करना ठीक है?

उत्तर—सन्तति नियमन के लिए जो छोटा सा आपरेशन किया जाता है उससे मनुष्य नपुंसक नहीं होता। नपुंसक तो तब कहलावे जब वह रति-प्रसंग के योग्य न रहे। पर इस प्रकार का आपरेशन कराने वाला व्यक्ति उतना ही योग्य रहता है जितना कि आपरेशन न कराने वाला व्यक्ति। स्त्री को दोनों अवस्थाओं के भेद का पता ही नहीं लगता, इसलिए उसे नपुंसक कहना गलत है। तन और मन से वह वैसा ही समर्थ

रहता है जैसा आपरेशन के पहिले था। कुछ सुशिक्षित व्यक्तियों ने इस प्रकार के आपरेशन कराये हैं और इस बात को कई वर्ष हो चुके हैं। इससे कहा जा सकता है कि यह क्रिया किसी भी तरह हानिकर नहीं है। इसकी प्रक्रिया यह है कि अण्डकोष और वीर्यकोष से जो वीर्य आता है, उसमें अण्डकोष के वीर्य में ही वे जीवाणु होते हैं जिनसे सन्तान पैदा होती है। आपरेशन के द्वारा यह सूक्ष्म शिरा काट दी जाती है जिसके द्वारा अण्डकोष के जीवाणु वीर्य सहित ऊपर जाकर वीर्य से मिलकर संभोग के समय निकलते हैं। यह आपरेशन बात करते करते पाँच दस मिनट में हो जाता है, इसमें क्लोरोफार्म नहीं लेना पड़ता। आपरेशन होने पर संभोग में वीर्य तो निकलता है पर उसमें उत्पादक जीवाणु नहीं रहते। इससे नपुंसकता का कोई संबंध नहीं।

प्रश्न—इससे व्यभिचार बढ़ेगा, लोग चाहे जिसकी पत्नी ले जायेंगे।

उत्तर—जब आपरेशन से नपुंसकता आती ही नहीं है तब पत्नी को असंतोष क्यों होगा? और वह किसी दूसरे के साथ क्यों भागेगी? हाँ, जो पत्नी को संतुष्ट नहीं कर सकता उसकी पत्नी भाग सकती है, पर वह तो आपरेशन के पहले भी भाग सकती है। ऐसी दुर्घटनाओं का सन्तति नियमन के आपरेशन से कोई संबंध नहीं है। जब पत्नी के बहुत बच्चे हो जाते हैं और पत्नी का स्वास्थ्य तथा घर की आर्थिक स्थिति सन्तति नियमन की आवश्यकता का अनुभव कराते हैं तभी आपरेशन किया जाता है। इससे पत्नी असन्तुष्ट नहीं, संतुष्ट ही होती है, इसमें भी उसके भागने का कारण नहीं है। व्यभिचार बढ़ने की बात जिस दृष्टिकोण से कही जाती है उसमें भी हानि की अपेक्षा लाभ ही ज्यादा है। विवाहिता स्त्रियों में तो व्यभिचार वृद्धि का कारण ही नहीं है। सन्तति नियमन से लोग विवाहिता स्त्रियों से व्यभिचार करने लगेंगे इसका क्या कारण है? बिना आपरेशन कराये भी आज ऐसी स्त्रियों के साथ व्यभिचार करने में कोई विशेष बाधा नहीं है क्योंकि सन्तान होने का डर विवाहिता स्त्री को नहीं होता। सन्तान किसी की हो पर पति के मौजूद रहने से न स्त्री बदनाम होती है न उसका पति। इस प्रकार व्यभिचार वृद्धि का सन्तति नियमन के आपरेशन से कोई सम्बन्ध नहीं।

रही विधवाओं की बात। सो युवती विधवाएँ काम वासना वश में न रहने पर ही इस मार्ग को अपनाती हैं और उस समय वे इस बात को भूल जाती हैं कि इससे गर्भ रह सकता है। इस प्रकार विधवा विवाह की रोक से जितना व्यभिचार बढ़ सकता है उतना तो बढ़ता ही है। वह सन्तति नियमन का आपरेशन हो तो भी होगा, न हो तो भी होगा। आपरेशन से इतना फायदा अवश्य है कि व्यभिचार होने पर भी गर्भ न रहने से भ्रूण हत्या न होगी, और इस कारण से जो नारी की दुर्दशा होती है या की जाती है वह भी न होगी। इस प्रकार आपरेशन से लाभ ही होगा।

प्रश्न—क्या ब्रह्मचर्य की आप आवश्यकता नहीं समझते?

उत्तर—परिमित समय के लिए ब्रह्मचर्य तो पालना ही पड़ता है, इसलिए उतना आवश्यक कहा जा सकता है, पर असली आवश्यक है शील और निरतिभोग। शील पालन का अर्थ है व्यभिचार न करना, निरति भोग का अर्थ है इतना भोग न करना जिससे शक्ति क्षीण हो जाय, बीमारी बढ़ जाय या इतना समय नष्ट हो जाय कि आवश्यक कर्त्तव्य के लिए समय कम पड़ने

लगे। शील और निरति भोग का पालन किया जाय तो ब्रह्मचर्य जरूरी नहीं है। हाँ, साधनामात्र से या किसी विशेष साधना के लिए कोई ब्रह्मचर्य रखता है तो भले ही रखे। पर स्वयं में ब्रह्मचर्य का कोई मूल्य नहीं। कोई आदमी यह कहे कि मैं ब्रह्मचारी हूँ, तो मैं कहूँगा कि ठीक है, उसका मजा तुम्हें कोई आता हो तो लूटो। पर मेरे लिए या जनता के लिए उसका कोई मूल्य नहीं। हाँ, मैं यह जरूर जानना चाहता हूँ कि ब्रह्मचारी रह कर तुमने ज्ञान कितना पाया है, संयम शान्ति आदि कितनी पाई है, जन-सेवा का कार्य कितना किया है? बस इसी ज्ञान, संयम, सेवा का मूल्य है। चाहे वह ब्रह्मचारी रहकर प्राप्त किया जाय चाहे सम्भोगी बनकर प्राप्त किया जाय। इन गुणों का ब्रह्मचर्य से कोई सम्बन्ध नहीं। इसी लिए मैं ब्रह्मचर्य को कोई महत्व नही देता। वह स्वयं कोई धर्म नहीं है। हाँ, शील और निरतिभोग आवश्यक है।

प्रश्न—क्या आप सम्भोग में पाप नहीं मानते?

उत्तर—जो स्वपर सुख का विरोधी है, वह पाप है। सो इसमें किसके सुख का विरोध है? स्त्री पुरुष को तो इसमे आनन्द ही आता है, और तीसरे को तो इससे मतलब ही क्या है? इस प्रकार जब वह किसी को दुःख नहीं देता तब उसमें पाप क्या? बल्कि सम्भोग को पाप मान लिया जाय और दुनिया के सब आदमी इस पाप को छोड़ बैठें तो मानव समाज एक पीढ़ी में ही समाप्त हो जाय। ऐसी हालत में सम्भोग को पाप कहने की अपेक्षा ब्रह्मचर्य को ही पाप कहना पड़ेगा।

प्रश्न—ब्रह्मचर्य से तेज बढ़ता है, वीर्य शरीर में रहकर खून में तथा सब धातुओं में ओज बढ़ाता है। शास्त्रों में ब्रह्मचर्य की महिमा खूब बताई है, सो क्या झूठ है?

उत्तर—वह सब अर्थवाद है। साधु संस्था के द्वारा जब श्रमणों को क्रान्ति कराने की जरूरत थी और इसके लिये युवक साधुओं का निर्माण भी आवश्यक था, तब ब्रह्मचर्य को महत्व देना पड़ा। क्योंकि सपत्नीक साधु संस्था उस समय क्रान्ति का बोझ नहीं उठा सकती थी, न व्यभिचारिणी साधु संस्था से यह कार्य हो सकता था। ब्रह्मचर्य के सिवाय गति नही थी। इसलिए ब्रह्मचर्य की प्रशंसा खूब अतिशयोक्ति के साथ की जाय यह जरूरी था। वह सब क्षम्य है। यों ओज बढ़ाने आदि की बात में कोई जान नहीं है। वीर्य न खून में मिल सकता है, न हड्डी में। वैद्यक शास्त्र के अनुसार रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेद, मेद से हड्डी, हड्डी से मज्जा, और मज्जा से वीर्य बनता है।

इस प्रकार मांस से हड्डी बन सकती है, हड्डी से मांस नही। वीर्य अन्तिम धातु है, वह अन्य किसी धातु में नहीं मिल सकता। अब इसको जरा व्यवहार मे देखे। संसार में जितने मनुष्य दीर्घायु हुए हैं और आज कल पाये जाते हैं, उनमें ब्रह्मचारी एक फीसदी भी नहीं है। ब्रह्मचारी कहलाने वालों का स्वास्थ्य, सपत्नीक लोगों के स्वास्थ्य से अच्छा नहीं पाया जाता। कर्मठता में भी ब्रह्मचारी बाजी नहीं मार पाते। उनके चेहरों को देखो तो उसमें तेज की अपेक्षा छाया (मुरझायापन) ही अधिक दिखाई देगी। ब्रह्मचर्य से यदि उम्र आदि न बढ़ती हो, तो इस दृष्टि से उसकी प्रशंसा का क्या मूल्य है? खैर, यहाँ तो सन्तति नियमन का विचार करना है, सो उसकी सफलता भौतिक उपायों से ही संभव है, और उसी का हमें अवलम्बन लेना चाहिये। इसका आपरेशन

बम्बई में ३०) लेकर डाक्टर कर देते हैं। खूब प्रचार किया जाय तो यह कार्य दस दस रुपये मे होने लगेगा।

प्रश्न—यह कार्य आध्यात्मिक शक्ति से न कर भौतिक शक्ति से करना पामरता है।

उत्तर—जो कार्य जिस शक्ति से अच्छी तरह हो सके उसे उसी शक्ति से करना चाहिये। शक्तियों की अपनी अपनी सीमा है। बहुत से कार्य आध्यात्मिक शक्ति से हो सकते हैं, पर भौतिक शक्ति से नहीं हो सकते। बहुत से कार्य भौतिक शक्ति से हो सकते हैं, आध्यात्मिक शक्ति से नहीं हो सकते। ज्ञान से हम हृदय का अंधेरा दूर कर सकते हैं, पर कमरे का अंधेरा दूर करने के लिए भौतिक दीपक ही चाहिये। यह पामरता नहीं है, कार्य कारण भाव का विवेक है। इसके सिवाय इसका भी ध्यान रखना चाहिये कि जो कार्य आम जनता से कराना है उसे भौतिक रूप में ही पेश करना पड़ेगा। व्यावहारिकता को भूलना न चाहिये।

रोगमुक्ति की आत्मकथा

साधनालय में पन्द्रह दिन

श्री मदनलाल

मैं करीब पाँच-छः साल से संग्रहणी से बीमार था। मेरा पेट फूलता, और खड़े होने पर पेट मे दर्द होता था। भूख न लगती, जो कुछ खाता वह दस्त के रास्ते यों ही निकल जाता, और बहुत जोर लगाने पर दिन में ३-४ काले से दस्त होते थे। करीब पाँच साल पहले जब मैं बीमार हुआ तो मुझे जुलाब दिया गया था उससे दिन में रोज ३०-४० दस्त लगे थे; मैं बहुत कमजोर हो गया था और आँखों की ज्योति भी चली गई थी। उस वक्त डाक्टरी इलाज से मुझे दिखने तो लग गया लेकिन पेट ठीक न हुआ। इन्दौर व उज्जैन के सभी प्रसिद्ध डॉक्टर वैद्यों से इलाज करा चुका। रोग किसी ने न बताया, सिर्फ इंजेक्शन या दवा बताते और देते, इसमे मेरे तीन-चार हजार रुपये खर्च हो गये। मैं ठीक न हुआ। कोई पीलिया बताता, कोई कहता टी० बी० हो गया है। इसकी जाँच के लिए मैंने बी० सी० जी० का टीका लगवाया, इससे मेरे हाथ में एक बड़ा फोड़ा हो गया, पीव निकलने लगा। जानकार लोगों ने टी० बी० बताया। मै बहुत घबराया, और सोलह-सत्रह की उम्र में ही मैं जीवन से निराश हो चुका था। एक बड़े डॉक्टर ने तो मुझे अण्डा खाने को कहा, कि अण्डा खाये बिना तुम्हारा रोग नहीं जा सकता।

मेरे एक जानकार हितैषी ने मेरे पिताजी को मुझे यौगिक और प्राकृतिक चिकित्सा कराने की सलाह दी। और एक रोज पिताजी मुझे ताँगे में लेकर गंगाघाट साधनालय (उज्जैन) में गये। वहाँ पर वर्मा जी (चिकित्सक) ने मुझे एक मास रहने के लिए कहा और बताया कि उपवास द्वारा चिकित्सा होगी। मैंने ता० १० सितंबर को प्रवेश किया और दूसरे दिन से उपवास आरंभ हुआ। मुझे केवल नीबू रस मिश्रित जल (और इच्छा हो तो थोड़ा शहद मिलाकर) पीने को आदेश दिया गया, और पानी ही पानी दिन भर पीने को कहा गया। मैं पीने लगा। दिन भर में ३-४ नीबू पूरे हो जाते। शाम को एक काला व कड़ा दस्त हुआ, दूसरी बार पतला दस्त हुआ। दिन भर में दो सेर पानी पिया। दूसरे दिन एक

बँधा हुआ दस्त, और दो पतले दस्त हुए, काली गाँठें निकलीं। इससे मुझे कमजोरी आ गई। स्वाद बदलने के लिए, शहद के बजाय, पानी मे नमक मिलाकर पीने की आज्ञा चिकित्सक से लेकर शाम से नमकीन नीबू पानी पीने लगा, रात को पेडू पर मिट्टी की पट्टी रखी गई। तीसरे दिन, जो भी नमकीन पानी मैं पीता, सब दस्त हो जाता। उपचारक ने मुझे खूब पानी पीने को कहा था, परंतु मुँह का स्वाद बिगड़ा रहने के कारण मैं नीबू रस में नमक डालकर थोड़ा पानी पीता रहा, थोड़ा काला नमक भी लिया, इससे पेशाब बन्द हो गई, और सारे बदन पर, विशेष कर पाँवो में सूजन आ गई। पाँव बहुत भारी मालूम होते। घर के लोग इस विचित्र चिकित्सा-क्रम से, मेरी सूजन देखकर बहुत घबराये, और मुझे वापस ले जाने की बात चलने लगी। चिकित्सक से बातचीत के सिलसिले में, मुझे अपनी गलती मालूम हुई कि मैंने पानी बहुत कम पिया था, और नमक लिया था, इस कारण मूत्राशय बिगड़ जाने से विकार फैल गया और सूजन आ गई। कुछ बाहरी उपचार भी हुए, सेक और पट्टी; तथा एक वनस्पति पीसकर शरीर पर उसका लेप भी किया गया, परन्तु चिकित्सक ने सूजन का भीतरी कारण बताकर, बाहरी उपचार व्यर्थ बताया। पेशाब बन्द होने पर मुझे ६ पतले और कुछ काले दस्त हुए। सूजन के लिए, तथा पेशाब लाने के लिए चिकित्सक ने मुझे मूली के पत्तों को पीसकर उसका रस पिलवाया और ककड़ी मूली खाने को दिलाया। इससे पेशाब शुरू हुई, और क्रमशः सूजन कम होती गई। रात को पेडू पर पट्टी रखी गई। चौथे दिन नीबू मिश्रित गरम पानी, तथा फिर गोमूत्र से ऐनिमा द्वारा आँतों को साफ किया गया। बचा हुआ विकार निकल गया। मूली ककड़ी खाना चालू रहा, पेशाब खूब होने लगी और सूजन नहीं रही। पाँचवें दिन बँधा हुआ साफ दस्त हुआ। मुझे दूध देने की बात चली। बराबर मात्रा मे पानी डालकर, दिन भर मे आधा सेर दूध, मुझे दिया गया। ककड़ी और मूली भी। मुझे दूध कभी पचता न था, दूध से मुझे सदैव घृणा थी, बीमारी में डाक्टर वैद्य इस कारण मुझे हमेशा छाछ देते रहे, और मेरी भी धारणा बन गई थी कि दूध कभी मुझे न पचेगा। छठवें दिन तीन पाव दूध, उसी क्रम से पानी सहित दिया गया, मोसम्मी का रस भी पानी के साथ लिया; मूली और ककड़ी खाई। दस्त ठीक बँधा हुआ आने लगा। सातवें दिन एक सेर दूध, परन्तु पानी कम डालकर, तथा दिन भर में चार केले, और ककड़ी भी खाई। पैरों पर सूजन करीब करीब नहीं थी। आठवें दिन से बिना पानी का दूध और चार केले, लौकी, पालक, तोरई-नेनुआ का उबाला हुआ साग भी लेने लगे। मूली टमाटर भी खाने लगा। फिर कुछ दिनों बाद सवा सेर दूध, पाँच-छः केले, और दलिया चावल भी खाने लगा।

पहले मैं एक फर्लाङ्ग चलने पर थक जाता था। इलाज कराने के पहले मेरा वजन ८३ पौंड था। यद्यपि इलाज के दिनो में मेरा वजन कम हो गया था, १५ दिन बाद तौलने पर ८० पौंड मालूम हुआ। यद्यपि पहले से मेरा वजन अब ३ पौंड कम हो गया, मुझे फुर्ती और हल्कापन मालूम होता है, और मैं सुबह ठण्डे पानी से स्नान करके, (जब कि मै हमेशा गरम पानी से नहाया करता था) आश्रम से दो मील दूर घर, २०-२५ मिनट मे, चला जाता हूँ, और शाम को भी पैदल वापस आता हूँ। इस प्रकार

मैं दिन भर में ५-६ मील मजे में चल लेता हूँ। थकान बिलकुल नहीं मालूम होती।

ठण्डे पानी से स्नान और दुग्धपान, जो कभी न किया था, जिससे मै डरता था, वह अब मेरी खास दिनचर्या बन गया है। इस पन्द्रह दिन में मुझे जो लाभ हुआ, वह आज तक किसी अन्य इलाज से नहीं हुआ। इस खुशी में साधनालय में "रसोई" का आयोजन हुआ, इसमें मेरे उन हितैषी को भी निमंत्रित किया गया जिनकी प्रेरणा से मैं यहाँ प्राकृतिक उपचार कराने को आया था, तथा चिकित्सक भी उपस्थित थे। हितैषी ने चिकित्सक को, मुझे १५ दिन में ही नीरोग एवं स्वस्थ कर देने के लिए धन्यवाद दिया, तो चिकित्सक ने कहा, मैंने कुछ नहीं किया, प्रकृति ने इलाज किया है, और वास्तव में प्रथम पाँच दिनों में ही इनका इलाज हुआ है, शेष दस दिन तो शक्ति आने में लगे।

मेरे परिचित लोग अब मेरा स्वास्थ्य देखकर, और इस विचित्र उपचार पर, आश्चर्य कर रहे हैं। मैं मानता हूँ कि मेरा तो कायाकल्प हो गया। मैं व्यायाम और योगासन भी करने लगा हूँ, और अब मुग्दर चलाने की तैयारी है। मुझे नया जीवन और नया उत्साह मिला है। साधनालय में रहने की मुझसे कोई किराया नहीं लिया गया, और चिकित्सा की कोई फीस या भेंट भी मुझसे नहीं ली गई।

प्रमाणित रूप से मालूम हुआ है कि बीमारी हालत में मदनलाल की ऐसी दशा हो गई थी कि यमलोक की यात्रा की तैयारी में वैतरणी पार करने के लिए चार बार गौ दान उसके हाथ से कराया जा चुका था। अभी नवम्बर में उसका वजन ९० पौण्ड है।

—विश्वामित्र वर्मा

प्रश्नोत्तरी

१—बीकानेर से एक सज्जन ने जुकाम, खाँसी और श्वेत प्रदर का पेटेण्ट इलाज पूछा है।

सब रोगों का कारण एक होता है, वह है भोजन, और रहन-सहन में असंयम से एकत्रित हुआ विकार। और इन सबका पेटेण्ट इलाज है, शरीर से विकारों को निकालकर शरीर को भीतर से साफ रखना और भोजन तथा जीवन को संयमित बनाना। विकार कहाँ है, कैसा है, कब से है, कितना है, उसी के अनुकूल उसको निकालने में समय लगेगा। शरीर मे यत्र तत्र भीतर बाहर लक्षण भेद से जो सैकड़ों रोग कहे जाते हैं वे वास्तव में एक ही हैं। इसके लिए प्राकृतिक चिकित्सा साहित्य पढ़िये और प्राकृतिक चिकित्सक का सम्पर्क कीजिए।

२—टंकारा (मोरवी) से चञ्चला बहिन ने आपत्ति की है: "स्मरण शक्ति को उन्नत बनाना" (जुलाई ५२) लेख में आप लिखते हैं कि स्मृति कोई वस्तु नहीं है। भाई आपको मालूम नहीं है किन्तु स्मृति जीवात्मा का एक गुण है।

हाँ, बहिनजी, स्मृति कोई वस्तु या शक्ति नहीं है, वरन् जीवात्मा का एक गुण है। यदि वह वस्तु होती तो पंचभूत, पंचकोष, पंचप्राण, में कहीं किसी रूप में शब्द स्पर्श रूप रस गंध द्वारा जानी जाती; और वह

स्वयं कोई शक्ति होती तो उसमें गति होती। अतएव आपके और हमारे कथन में कोई अन्तर नहीं मालूम होता। यथा विद्युत् कोई वस्तु नहीं, प्रेम-आनन्द कोई वस्तु नहीं, ईश्वर कोई वस्तु नहीं।

३—विजयनगर से एक साधारण स्थिति के विद्यार्थी ने पूछा है कि नमक हमारे स्वास्थ्य के लिए किस हद तक आवश्यक है? यदि इसका प्रयोग न किया जाय तो क्या परिणाम होगा?

हम जो कुछ खाते हैं उससे रक्त बनता है। स्वस्थ मनुष्य के रक्त में एक भाग अम्ल और चार भाग क्षारीय रहता है। भोजन के सब पदार्थों में प्रकृति ने अपने रहस्यमय हिसाब से अम्ल और क्षार उपस्थित किये हैं अतएव उचित मेल के पदार्थ, अन्न, फल साग खावें तो अतिरिक्त नमक खाने की बिल्कुल जरूरत नहीं है। अतिरिक्त नमक और खटाई मसालों से ही रक्त के अम्ल-क्षार अनुपात में विषमता होती है और रोग होता है। प्राकृतिक मेलयुक्त भोजन से यह अनुपात सहज ही कायम रखा जा सकता है। अतिरिक्त नमक खटाई खाने की आदत तो बचपन से माता पिता और समाज द्वारा डाली जाती है, और अलग से नमक खटाई खाना जहर खाने के समान है। शरीर को स्वभावतः वह आवश्यक नहीं, परन्तु शरीर की रहस्यमय आत्म-रक्षण शक्ति इस विष को धीरे-धीरे सहन करती है। मनुष्य के अतिरिक्त कोई भी जीव अलग से नमक नहीं खाता फिर भी सब मजे में और स्वस्थ रहते हैं। कितने ही प्रकृति प्रेमी मनुष्य हैं जो अलग से बिल्कुल नमक नहीं खाते, और चालीस वर्ष से नमक शकर मिर्च मसाला छोड़े हुए हैं तथा भोजन को उबालते भूनते भी नहीं, पानी मे भिगाकर कच्चा ही खाते है।

४—जयपुर से एक जिज्ञासु साधक लिखते हैं—मैं प्रातःकाल नियमित रूप से नित्य हवन करता हूँ किन्तु हवन से मुझे स्फूर्ति नहीं मिलती, न मन लगता है। हवन में मेरा पूर्णरूप से विश्वास श्रद्धा कैसे हो? सब मन्त्रों से हवन करने से समय अधिक लगता है, बार-बार घड़ी पर दृष्टि जाती है। जप भी नियमित करता हूँ। समय के विचार से बेचैनी होती है। एकाग्रता नहीं होने पाती।

जिस काम में श्रद्धा नहीं है उसमें मन न लगना स्वाभाविक है। श्रद्धा विश्वास न होते हुए भी अमुक काम करना, मन की साधना है। क्रमशः स्थिरता होगी, परन्तु समय का ध्यान छोड़ दें, अल्प समय में ही जितना जो कुछ बने उतना निश्चिन्त होकर एकाग्रतापूर्वक करें; सब करने के बन्धन और समयाभाव के विचार में न पड़ें। केवल एक गायत्री मन्त्र से ही ७, ११, २१, अथवा ५१ आहुति दें, और मन्त्र के अर्थ का ध्यान करते रहें। अर्थ और एकाग्रता के बिना किया कार्य निरर्थक होता है। जप करते हुए भी अर्थ का ध्यान करें। इसका फल अवश्य होगा और आगे की योजना के लिए अन्तःप्रेरणा होगी।

५—क्या अधिक खाँड़ में थोड़ा घी मिलाकर हवन किया जा सकता है? अन्य समिधा न मिलने पर क्या एरण्ड की लकड़ी से हवन कर सकते हैं?

हाँ, अपने सामर्थ्य के अनुसार, अन्य द्रव्य न मिले तो खाँड़-घृत से हवन कर सकते हैं, जौ तिल चावल भी थोड़ा मिश्रित कर लें तो अच्छा। एरण्ड की समिधा से रोग विशेष की दशा में, वैद्यक अनुसार अनुकूल रोग पर ही हवन किया जा सकता है, साधारणतया रोज नहीं।

६—हवन के समय गायत्री मन्त्र में

"ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ स्वाहा" कहा जाता है। इसमें आदि, मध्य और अन्त में, तीन बार ॐ क्यों आता है?

'ॐ' प्रणव है, केवल जप के लिए या ध्यान के लिए है, आहुति के समय केवल मंत्र के साथ स्वाहाकार उच्चारण होता है। फिर भी 'ॐ' जपरूप से मौन, मन में बोलकर शेष मंत्र से स्वाहा करें; अथवा बोलें तो कोई पाप नहीं है। शुभ सदा शुभ है।

७—'पितृयान और तिलाञ्जलि' (सितम्बर '५२) के लेख में परलोकवासी आत्मा को चर्चिल, हिटलर, रूजवेल्ट तो मिल गये, लेकिन बेचारे को भीष्मपितामह, धर्मराज, विदुर, वसिष्ठ, विश्वामित्र नहीं मिल सके! लेख लिखने का तौर तरीका जरा ऐसे ढङ्ग का होना चाहिए कि मुझ जैसे मूर्ख भी उसमें विश्वास प्राप्त कर सकें। हो सकता है कि परलोकवासी आत्मा भारत की न होकर, इँगलैण्ड, जर्मनी या अमेरिका की हो।

भाईजी, आपकी शंका उचित है। जैसे इस संसार में अपनी-अपनी बुद्धि और संस्कार के अनुसार सबका अपना-अपना मानस-स्तर होता है, क्षेत्र होता है, उसी के अनुसार, मरने पर, गति अनुसार स्तर और क्षेत्र होता है। निम्न स्तर व निम्न संस्कार वालों को इस जीवन में जब आत्मज्ञान नहीं होता, तो मरकर, पंचभूत से मुक्त होकर, अपनी पार्थिव और निम्न वासनाओं के कारण वे परलोक में कई सौ वर्ष तक निम्न स्तर में रहते हैं। सन्त महात्मा ज्ञानी तो उच्च पद पाकर मुक्त हो जाते हैं, वे भला क्योंकर मिलते। यह विषय सचमुच अजीव-गरीब और ऐन्द्रिक ज्ञान से परे है। यही कारण है कि नरसंहारक आत्माएँ निम्न स्तर पर होने के कारण मिल गईं और धर्मपरायण उच्चपद में या मुक्त होने के कारण नहीं मिले, ऐसा ही समझिए।

८—मेरा नम्र निवेदन है कि "कल्पवृक्ष" का अपना निजी प्रेम नहीं है। अतएव एक वार इसी दिसम्बर के अंक में कृपया एक विज्ञप्ति इस आशय की निकालें कि कल्पवृक्ष का प्रत्येक ग्राहक यथाशक्ति इतनी सहायता करे कि कल्पवृक्ष का निजी प्रेस हो जाय। चन्दे की रकम पाँच रुपये से कम तो बिल्कुल ही न हो जो कि मुझ जैसे गरीब आदमी भी बर्दाश्त कर सकें। और दानी मानी सेठ साहूकार राजे महाराजे तो जितना भी अधिक में अधिक दे सकें उतना ही ठीक हो। यदि आप उचित समझें तो उन मान बड़ाई के बुभुक्षों का नाम भी मय चन्दे के प्रकाशित कर सकते हैं, और नाम तो अपने को शायद इसलिए भी प्रकाशित करना ठीक होगा कि लोग कहीं अपने को "चन्दा डकार खाँ" के नाम की उपाधि से सुशोभित न कर सकें।

भाई जी, आपने कल्पवृक्ष को निजी प्रेस बनाने की योजना, हमें आत्मनिर्भर बनाने तथा कल्पवृक्ष को घाटा न हो, संभवतः इसी विचार से लिखी है; धन्यवाद। परन्तु घाटा पूरा करने और आत्मनिर्भर बनने के लिए लोगों से इस प्रकार "भीख माँगना" कहलाता है। इसमें हमारा क्या मूल्य रह जायगा? भीख माँगने वाला तिनके और रुई से भी हलका होता है। हम जानते हैं कि यूरुप अमेरिका जैसे भौतिकवादी और दुश्चरित्र तथा भ्रष्ट कहे जाने वाले देशों में बहुत सी ऐसी संस्थाएँ हैं जो कभी याचना नहीं करतीं, याचना करना उनकी नीति नहीं। उनकी सेवाओं और प्रेरणा से जिन्हें लाभ होता है वे स्वयं अपनी श्रद्धा और सामर्थ्य के अनुसार भेंट भेज देते हैं। एक

एक संस्था में प्रतिवर्ष कई लाख रुपयों का जमा-खर्च होता है। अतएव चन्दा माँगना हम शर्म की बात समझते हैं। यदि कल्पवृक्ष उपयोगी और लाभदायक है, यदि पाठक इसे हरा भरा फूलता फलता देखना चाहते हों, इसकी छाया और फल से लाभ उठाया हो और आगे उठाना चाहते हों तो इसको सींचने को उन्हें अपने भीतर से स्वयं प्रेरणा होगी। और जब जब भी कोई लोग कुछ देते हैं तो उनका नाम प्रकाशित किया जाता है। दिल्ली, विक्टोरिया हास्पिटल से श्रीमती डॉ० शारदा विश्वनाथन ने दस रुपये भेजे हैं, धन्यवाद!

९—क्या भारत में कोई ऐसा आश्रम या पाठशाला है जहाँ पुरानी हिन्दू संस्कृति पद्धति से शिक्षा दी जाती हो, वेद पुराण पाठन व ब्रह्मचर्य पालन की शिक्षा दी जाती हो?

भाई जी, यद्यपि लोगों के विचारों के विकास से जमाना अब बहुत बदल गया है, भारतीय पुरानी सस्कृति अब भी मौजूद है, भारतीयों के रक्त में और रिवाज तथा खान पान में बसी हुई है। भारत तो जहाँ का तहाँ है, और भारतीय भी भारत में हैं। वेद पुराण भी मौजूद हैं, आप पढ़ सकते हैं। आश्रम और गुरुकुल तो बहुत से हैं परंतु हम नहीं कह सकते कि कहाँ आपको संतोष होगा। दुनिया तो आगे भाग रही है, आप पीछे लौटना चाहते हैं क्या? आगे बढ़ने वाले उन्नति करते हैं, पीछे लौटनेवाले कहाँ जाते हैं? आप निम्नलिखित से पत्र-व्यवहार करें :—

१—स्वाध्याय मण्डल, किल्ला पारडी, सूरत। २—गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर (सहारनपुर), उ० प्र०। ३—गुरुकुल कांगड़ी, हरद्वार, उ० प्र०।

१०—अगर सब लोग ब्रह्मचर्य पालन करें व अपनी मुक्ति के लिए सब साधु महात्मा बन जायें तो फिर संसार कैसे चलेगा?

आपका प्रश्न बहुत अच्छा है किन्तु भ्रामक धारणा भरी हुई है। आपका मतलब अखण्ड ब्रह्मचर्य मालूम होता है। विचार कीजिये, ब्रह्मचर्य क्या है? ब्रह्म क्या है? ब्रह्म का काम है, सृष्टि करना, रचना करना। वही ब्रह्मचर्य का हेतु है। अखण्ड ब्रह्मचर्य से क्या होगा? उससे मनुष्य हजार दस हजार वर्ष भी जिये तो क्या लाभ? गोदाम में भरा हुआ अन्न नहीं उगता या फसल देता, जब तक उसे खेत में न बोया जाय। ब्रह्मचर्य पालन के लिए साधु महात्मा त्यागी संन्यासी बनने से मुक्ति नहीं मिलती, यह तो निरा भ्रम है। मुक्ति तो अपने ज्ञान में, भावना और व्यवहार में है। मुक्ति की ऐसी खोजवाले तो संसार में ही रहते हैं, शरीर मन इन्द्रियों के स्वाभाविक आवश्यक कर्म करने पड़ते हैं। मुक्ति तो इनसे करने पर ही मिलती है। अपने स्वाभाविक कर्म करते हुए भावना से मुक्त रहें, आश्रित न रहें। अखण्ड ब्रह्मचर्य पालने वाले साधु महात्मा ढोंगी हैं, उनसे संसार नहीं चलेगा, उनका अनुकरण करने वाले, उनके साथ ही गढ़े में गिरने। और जो लोग अखण्ड ब्रह्मचर्य और ऐसी मुक्ति की शिक्षा देते है, वे उन संसारियों की ही कमाई खाते हैं जो ब्रह्मचर्य खण्डित कर संसार चलाते हैं। अकेले वे कुछ नहीं करते।

११—कहीं गंगातट पर एक उद्यानमय व्यायामशाला है। उसके लिए सचालक लिखते हैं कि एक त्यागी और सेवा भावी व्यायाम शिक्षक की आवश्यकता है जिसे रहने का स्थान और वेतन भी मिलेगा।

१—योगासन, प्राणायाम, नेति नौलि उड्डीयान धौति। २—आधुनिक पाश्चात्य व्यायाम—जिमनास्टिक, पेरेलल बार, डम्बेल, तीरन्दाजी, घुड़सवारी, तैरना, शूटिंग जानते हों।

इस योजना में पूर्व पश्चिम के साधनों का गठबन्धन है। यौगिक स्वास्थ्य साधन तथा पाश्चात्य साधनों में भेद है और इन दोनों का साधक विरला ही होगा। हाँ, ये दोनों प्रकार के साधक अलग अलग तो बहुत से मिलेंगे। ऐसे साधकों से अनुरोध है कि वे हमसे पत्र व्यवहार करें।

Registered No. N. 277

आध्यात्मिक मंडल, उज्जैन, म० भा०

की

निम्नलिखित शाखाओं में मानसिक, आध्यात्मिक एवं प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा मुफ्त इलाज होता है :—

स्थान प्रबन्धक और उपचारक

१ कोटा (राजपूताना) श्रीयुत् पं० नारायणरावजी गोविंद मावर, प्रोफेसर ड्राइंग, श्रीपुरा
२ हींगनघाट (सी० पी०)—आयुर्वेदाचार्य शोभालालजी शर्मा।
३ उदयपुर (१) (राजस्थान) संचालक आयुर्वेदाचार्य पं० जानकीलालजी त्रिपाठी, चिन्तामणि कार्यालय भूपालपुरा, प्लाट नं० २०९।
उदयपुर (२) लाला भैरारामजी, मार्फत श्री देवराज, टी. टी. ई. रेलवे क्वार्टर्स, बी।२, रेलवे स्टेशन
४ खरगोन (मालवा प्रांत) श्री गोकुलजी पंढरीनाथजी सराफ मंत्री आध्यात्मिक मंडल।
५ अजमेर (राजपूताना) पं० सूर्यभानुजी मिश्र, रिटायर्ड टेलिग्राफ मास्टर, रामगंज।
६ सीहोर कैन्ट (भोपाल) बाबू डिगम्बरलालजी व लक्ष्मीचन्दजी जैन, नम्बर ८० बजाजखाना।
७ नसीराबाद (राजपूताना)—चाँदमलजी बजाज।
८ दोहरी घाट स्टे. ओ. टी. आर. (आजमगढ़ उ. प्र.) ब्रांच लक पं० क्षमानन्दजी शर्मा साहित्यरत्न
९ मन्दसौर (मध्य भारत) दुलारचन्द भंडारी रिटायर्ड इन्स्पेक्टर जनकूपुरा।
१० मिट्ठी सेठी (देहरादून पो० प्रेमनगर) महावीर प्रसादजी त्यागी।
११ सरगुजा स्टेट (सी० पी०) लालजीप्रसादजी गुप्त।
१२ रतलाम (मध्य भारत)—साहित्यभूषण पं० माधवचन्द्रजी उपाध्याय, एजन्ट कोआपरेटिव बैंक।
१३ गोंदिया (मध्यप्रान्त) लक्ष्मीनारायणजी मालपोते, बी० ए० एल-एल० बी वकील।
१४ नेपाल धर्ममनीषी, साहित्यधुरीण डा० दुर्गाप्रसादजी भट्टराई, डी० डी० दिल्ली बाजार।
१५ पोलादखुर्द (व्हाया अकोदिया मंडी)—स्वामी गोविंदानन्दजी।
१६ धार (मध्य भारत)—श्री गणेश रामचन्द्र देशपांडे, निसर्ग मानसोपचार-आरोग्य-भवन धार।
१७ खंभात (Cambay) श्री लल्लूभाई हरजीवनजी पंड्या।
१८ राजगढ़ ब्यावरा [मध्य भारत] श्री हरि ॐ वत्सजी।
१९ केकड़ी (अजमेर) पं० किशोरीलालजी वैद्य तथा मोहनलालजी राठी।
२० बुढ़वल (ओ. टी आर. जिला बाराबंकी) पं० रामशंकरजी शुक्ल बुढ़वल शुगर मिल्स।
२१ इन्दौर—श्री बाबू नारायणलाल जी सिंहल, बी० ए०, एल-एल० बी० श्री सेठ जगन्नाथ जी की धर्मशाला, संयोगितागंज।
२२ आलोट-विक्रमगढ़ (मध्य-भारत) अध्यक्ष सेठ ताराचन्दजी, उपचारक अनोखीलालजी मेहता।
२३ अटरू (कोटा) राजस्थान—पं० मोहनचंद्रजी शर्मा।
२४ बारां (कोटा राजस्थान)—पं० मदनमोहनजी तथा सेठ भैरूलालजी।

व्यवस्थापक व प्रकाशक—डॉ० बालकृष्ण नागर, कल्पवृक्ष कार्यालय, उज्जैन (मध्य भारत)
मुद्रक—भक्त सज्जन, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद-२

वर्ष ३१ | संख्या ६

KALPA-VRIKSHA

A MAGAZINE OF DIVINE KNOWLEDGE

फरवरी '५३ | सं० २००९

१ वेकार मन को एकाग्र कैसे करें ?—संपादक ... १
२ महत्वपूर्ण सूचना—तेईसवाँ आध्यात्मिक साधन समारंभ ... ३
३ संसार के आश्चर्य—आचार्य श्री नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थ ... ५
४ हिमालय के अंचल से—स्वामी शिवानन्द जी ... ५
५ शिव मन्त्र रहस्य—पं० रामलालजी पहाड़ा ... ६
६ ईश्वर के अतिरिक्त मैंने क्या जाना ? श्री विश्वामित्र वर्मा ... ७
७ प्रश्नोत्तरी ... ९
८ समस्या परामर्श ... १२
९ पाठकों के अनुभव ... १३
१० कल्पवृक्ष पर आपकी सम्मति ... १४
११ क्या प्राकृतिक चिकित्सा सर्वसमर्थ है ?—डॉ० लक्ष्मीनारायण जी टण्डन, एम० ए० एन० डी० ... १६
१२ सूखी लकड़ी हरी हो गई ... १९
१३ बस, हँसो !—श्री "हास्यावतार" ... २२
१४ क्या आपने पढ़ा है ? ... २४
१५ सन्त नागर स्मृति दिवस ... २४
१६ सन्त नागर जी से मैंने क्या लिया ?—पं० कृष्णदेव शर्मा, एम० ए० ... २६
१७ स्वर्ण-सूत्र—कर्मठ जीवन की भावना ... कवर के दूसरे पृष्ठ पर

सम्पादक—बालकृष्ण नागर

स्वर्ण-सूत्र

कर्मठ जीवन की भावना

काम न करते हुए, बेकार रहकर इधर-उधर भटकने से अब मुझे अनुभव हो गया है कि बेकार मनुष्य की, अस्थिर मनुष्य की कद्र या इज्जत, संसार में खोटे पैसे की तरह, कहीं नहीं होती। जिस प्रकार खोटा रुपया किसी के पास नहीं टिकता, कोई उसकी इज्जत नहीं करता। अब मेरी समझ में आ गया है और मैंने देख लिया है कि सारा संसार कर्म रत है, और प्रत्येक जीव कर्म करता है, प्रत्येक प्राणी अपने क्षेत्र में दत्तचित्त एकाग्र होकर, स्थिरतापूर्वक कार्य करता है और कर्मठ व्यक्ति की ही इज्जत होती है, वे कुछ कर जाते हैं और श्रेष्ठ होते हैं।

आज मैं सब आलस्य का त्याग कर काम में लगता हूँ। मुझे अब भाग्य पर भरोसा नहीं रहा। भाग्य बेकारों और अस्थिर मनवाले का कुछ सुधार नहीं कर सकता। अपना सुधार तो अपनी स्थिरता और एकाग्रतापूर्वक कर्म करने से होता है। अब मैं जान गया हूँ कि कर्म करने से ही संसार में मनुष्य का महत्त्व बढ़ता है, अतएव अब मैं चिन्ताओं और व्यर्थ की अकर्मण्य धारणाओं को त्याग कर कर्म करने में धुनपूर्वक दृढ़ हो जाता हूँ।

मैं आज के दिवस का स्वागत करता हूँ, और जो भी काम मेरे सामने आवेगा उसे हर्ष पूर्वक निवटाऊँगा, तथा बहुत अधिक काम होने पर भी नहीं घबराऊँगा और एक-एक करके सबको पूरा कर डालूँगा।

मैंने जान लिया है कि मनुष्य भाग्य के आधीन नहीं है, परन्तु कर्म करके अपना भाग्य स्वयं बनाता है। मैं अब परिश्रम से घबराता नहीं हूँ, परिश्रम मेरे लिए अभिशाप नहीं, वरदान स्वरूप है, मैं प्रेमपूर्वक परिश्रम करता हूँ क्योंकि परिश्रम ही जीवन है, बेकारी मौत है। परिश्रम से जीवन स्वस्थ और सुखी, आनन्दमय तथा पूर्ण बनता है। परिश्रम और कर्म ही भगवान् की पूजा और संसार की सेवा है। परिश्रम और कर्म से स्वास्थ्य मिलता है, आयु बढ़ती है, बेकारी से शरीर और मन रोगी, निर्बल होकर आयु कम होती है।

अब मैं जीवन का एक क्षण भी बेकार न जाने दूँगा। जिस गति से वसन्त ऋतु में पतझड़ होता है और पुनः नई शाखाएँ और पत्ते आते हैं, उसी नवीनता और उत्साह की गति से मैं अब कार्य करूँगा। मुझे अब काम करने में, मन को कार्य में स्थिर करने में झुँझलाहट या बेचैनी नहीं होती, वरन् मैं कार्य आने पर उत्साह का अनुभव करता हूँ। मुझे जीना है, अतएव एकाग्रतापूर्वक काम करने से ही मैं आनन्दपूर्वक जी सकूँगा।

मैं चाहे कैसी भी सुखी संपन्न परिस्थिति में होऊँ, पर जब तक मैं स्थिरतापूर्वक काम न करूँ तब तक मेरा कोई महत्त्व नहीं। मैंने जान लिया है कि मनुष्य पद से महान् नहीं बनता, परन्तु कर्म करके महान् पद पाता है।

संस्थापक

स्वर्गीय डॉ० दुर्गाशङ्कर नागर

ॐ

कल्पवृक्ष

अध्यात्म-विद्या का मासिक-पत्र

सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥ गीता ॥

वर्ष ३१ } उज्जैन, फरवरी सन् १९५३ ई०, सं० २००९ वि० { संख्या ६

बेकार मन को एकाग्र कैसे करें ?

सम्पादक

बहुत से लोग पूछते हैं कि मन को स्थिर कैसे किया जाय। मन बड़ा चचल है अथवा संसार की रचना में अनेक कामों और वस्तुओं में अजीब आकर्षण है, मन हटाने का प्रयत्न करते हुए भी मन नहीं हटता, उसी ओर दौड़ता है। और मन को जहाँ लगाना चाहते हैं वहाँ नहीं टिकता, उस काम के पास तक नहीं फटकता। मन के साधन से ही सब कुछ है, पर मन नहीं साधता, जो काम या वस्तु मन को प्रिय लगती है उस पर भी थोड़ी ही देर तक टिकता है, अधिक समय में घबरा जाता है।

लोग ऐसे ही प्रश्न पूछते हैं, ऐसी ही बाते करते हैं, और पत्र-व्यवहार में भी यही लिखते हैं कि "मेरा मन एक काम में अधिक समय तक नहीं टिकता। मेरा मन वहाँ से दूसरे विषयों की ओर भटकने लगता है। इस मन को एक विषय पर अधिक काल तक कैसे स्थिर रखा जाय ?"

हर एक आदमी की यही समस्या है। बेकार आदमी का मन भी बेकार हो जाता है। काम करनेवाले आदमी भी यदि कुछ काल तक बेकार रहे या बीमार पड़ जायं तो पश्चात् काम करने में रुचि नहीं होती।

रुचि के बिना काम नहीं होता। और काम के बिना जीवन बेकार बना रहता है।

जब भी मन जरा इधर उधर भटके या बेकार हो तो उसको काम में साधना, किसी भी छोटे मोटे रुचिकर काम मे लगा देना एक साधारण साधन है। किसी गम्भीर विषय के चिंतन में मन न लगे, किसी एक विशेष बात पर विचारधारा न लगे, अथवा किसी एक काम को हाथ लगाने का मन न हो, तो उस समय किसी चित्र, या कोई प्रिय वस्तु को गौर से सांगोपांग देखने का प्रयत्न करें, फूल, घास, मकान, कपड़े, या किसी पेड़ या वस्तु की बनावट को बारीकी से देखें, अधिक बारीकी से उसके अन्तरतम भाग की बनावट में नजर को प्रवेश करें।

बिना देखी हुई वस्तु की अपेक्षा देखी जाने वाली वस्तु पर दृष्टि की एकाग्रता सहज होती है, फिर जहाँ जहाँ दृष्टि जायगी वहाँ वहाँ मन भी जायगा। दृष्टि की स्थिरता के साथ मन की स्थिरता होने लगेगी। रुचिपूर्वक देखने से ही एकाग्रता बढ़ सकती है।

एकाग्रता का यह प्रारम्भिक साधन है। इसके पश्चात् उस देखी हुई वस्तु को नजर के सामने से हटाकर, मन में उसे देखने का प्रयत्न करना एकाग्रता का दूसरा साधन है जो परोक्ष ध्यान के रूप में हो सकता है।

मन को किसी विषय पर लगाये बिना कुछ नहीं हो सकता। जीवन में हर एक काम में मन लगाने की आवश्यकता है। यदि हम मन को किसी विषय या काम में न लगावें तो मन बेकार हो जायगा, उसके साथ शरीर भी बेकार रहेगा। मन और शरीर की शक्तियाँ, उपयोग न होने से बेकार जायँगी और जीवन बेकार हो जायगा।

जिस प्रकार मोटर गाड़ी का एञ्जिन केवल चला देने से मोटर नहीं चल जाती, केवल अपने धुन में गति की आवाज करती वहीं खड़ी रहती है, उसी प्रकार मन भी हमारे शरीर और जीवन का एञ्जिन है, अपने भीतर ही स्थित मन किसी धुन में गुनगुनाया करे तो शरीर उठ बैठ भी नहीं सकता, कोई काम नहीं कर सकता, उसे तो एक मार्ग पर चलना होगा। मन के साधन और स्थिरता बिना जन्म लेना व्यर्थ सा होता है। मन किसी काम में नहीं लगता हो तो उपर्युक्त साधन आरम्भ करके लाभ उठावें। जीवन बेकार रहने के लिए नहीं है, मन या शरीर भी बेकार रहने के लिए नहीं है। यदि हम मन से कोई काम न लें तो वह निश्चय ही बेकार होकर सब संसार और जीवन को नीरस बना देगा।

मन में व्यर्थ की कोई बात जम जाने से भी बेकारी और नीरसता आ जाती है। मन को लगातार काम में लगाये रहना भी उतना हानिकर है जितना कि मन को बिल्कुल बेकार रखना, अतएव मन की चंचलता एक प्रकार से जीवन के विधान में यद्यपि स्वभावतः आवश्यक है, किसी एक दशा में बहुत अधिक काल तक होने से पागलपन हो जाने की दशा होती है।

एक महिला ने लिखा है, "मेरी दूकान में सैकड़ों प्रकार की वस्तुएँ थीं, वे सब अलग-अलग जगहों पर रखी रहती थीं, उन सब के भाव भी अलग अलग थे, मेरा अस्थिर मन इस दूकान को न सँभाल सकता था इसलिए मैंने केवल एक ही वस्तु की दूकान लगाई और केवल एक ही वस्तु को थोक तादाद में बेचना आरम्भ किया। मेरा मन अब एक ही वस्तु के व्यापार में एकाग्र है।"

इस महिला का कथन कितना सत्य है। हमारा जीवन और संसार एक बड़ी दूकान

के समान और सैकड़ों कामों से भरा हुआ है, हमारा मन इन सब को एक साथ नहीं सँभाल सकता इसलिए हमें एक एक विषय, काम या वस्तु को साधना चाहिए।

एक साधे सब सधै।
सब साधे सब जाय ॥

जो लोग मन की अस्थिरता अथवा भटकने की शिकायत करते हैं, वे या तो बेकार हैं, या वे बहुत सा काम एक ही बार कर लेना चाहते हैं। अतएव ऐसे बहुधन्धी या बेकार लोगों को केवल एक रुचिकर काम को साधना अच्छा होगा।

मन की स्थिरता और एकाग्रता से ही, केवल एक विषय या काम को लेकर संसार में महापुरुषों ने बड़े बड़े काम किये हैं। महात्मा गांधी के एकमात्र "अहिंसा" व्रत से भारत का हजार वर्ष का इतिहास बदल गया, समस्त भारत की जनता में नवीन श्वास का संचार हुआ।

महत्वपूर्ण सूचना

तेईसवाँ आध्यात्मिक साधन समारम्भ

आध्यात्मिक मण्डल एवं कल्पवृक्ष मासिक पत्र के संस्थापक स्व० सन्त नागरजी के पूर्व आयोजन के अनुरूप आध्यात्मिक साधन का तेईसवाँ समारम्भ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया और चतुर्थी, वि० सं० २०१०, तदनुसार ता० १६, १७, १८ एवं १९ मार्च, १९५३ ई०, सोमवार, मंगलवार, बुधवार और बृहस्पतिवार को होना निश्चित् हुआ है। यह समारोह प्रतिवर्षानुसार, शहर से दो मील बाहर, एकान्त क्षिप्रातट गंगाघाट स्थित साधनालय के प्रांगण में होगा। देश के दूर दूर के प्रान्तों से जिज्ञासु, सत्संगी, अभ्यासी साधक एवं विद्वान् यहाँ एकत्रित होते हैं जिनके समागम एवं अनुभव विनिमय से जीवन में अद्भुत परिवर्तन होता है और जीवन को सर्वतोमुखी समुन्नत बनाने में बड़ी सहायता मिलती है।

जीवन की रोज रोज की व्यापारिक और व्यावहारिक उलझनें और झंझटें तो चलती ही रहती हैं तथा श्वास निकल जाने और आँखें बंद हो जाने के बाद भी चलती रहेगी। हम जो कुछ रोज हाय हाय करते हुए दौड़ धूप करते रहते हैं, केवल वही हमारे जीवन का उद्देश्य नहीं है। हमारा यह अवतार कुछ भी आत्म विकास कर लेने के लिए अनमोल अवसर है जो एक बार शरीर छूट जाने पर फिर दुबारा इसी रूप में नहीं मिलेगा। हमारा उद्देश्य क्या है और उसके लिए हमें क्या प्रयत्न अथवा साधन करना चाहिए, तथा सुख शांति और उन्नति के लिए कैसा व्यवहार करना चाहिए, इन्हीं विषयों पर चर्चा की जाती है। सभी विचार और धर्म के लोग यहाँ आते हैं और उनके ज्ञानवर्धक भाषणों से शरीर और मन के आरोग्य, आत्मबल एवं आत्म ज्ञान की अनुभूति पाने में नवीन प्रेरणा और सहायता मिलती है। अतएव आध्यात्मिक सत्संगप्रिय जिज्ञासुओं एवं

साधकों से साग्रह निवेदन है कि ऐसे अवसर पर पधारकर चार दिन के सत्संग द्वारा समाधान और अनुभव का लाभ लें। नित्य प्रार्थना, प्रवचन, भजन-कीर्तन, जप, यज्ञ, स्वाध्याय के अतिरिक्त योगाभ्यास, योगासन, प्राणायाम, प्राकृतिक चिकित्सा के साधनों द्वारा शरीर को शुद्ध और स्वस्थ करने, रोग दूर करने और आत्मोन्नति की व्यावहारिक शिक्षा मिलती है।

प्रवेश शुल्क प्रति व्यक्ति एक रुपया, तथा चार दिन का भोजन खर्च छः रुपये, इस प्रकार मनीआर्डर द्वारा सात रुपये शीघ्र भेज देना चाहिए। लोग अक्सर बिना पहले रुपया भेजे और बिना पूर्व सूचना दिये आ जाते हैं इससे प्रबन्ध में कठिनाई होती है। भोजन दिन में एक बार दोपहर को, तथा रात्रि में स्वल्प दुग्ध फलाहार होगा। बिस्तर, आसन, जलपात्र तथा कोई अन्य व्यक्तिगत आवश्यक वस्तु और स्वाध्याय के लिए इष्ट सद्ग्रन्थ अपने साथ लावें। दैनिक कार्यक्रम इस प्रकार है :—

प्रातःकाल

५ से ६ तक प्रार्थना
८ से १० तक योगासन, व्यायाम
१० से ११ तक मौन जप, हवन

मध्याह्न

१२ से १२॥ तक मध्याह्न उपासना

अपराह्न

१ से ४॥ तक भोजन, विश्राम, स्वाध्याय
४॥ से ५॥ तक प्राकृतिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक चिकित्सा पर भाषण
५॥ से ६॥ तक आनन्द पर्यटन, सायंकृत्य

सायंकाल

७॥ से १०॥ तक सामूहिक प्रार्थना, व्याख्यान आदि
१०॥ से ५ तक शयन

व्यवस्थापक

तेईसवाँ आध्यात्मिक साधन समारम्भ
कल्पवृक्ष कार्यालय, उज्जैन

आवश्यक सूचना

१—"कल्पवृक्ष" अथवा पुस्तकें मँगाने के लिए डाकखर्च सहित मूल्य मनीआर्डर से भेजिए। वी० पी० मत मँगाइए। इससे आपको और हमें, पैसे और समय की बचत होगी।

२—अपना पता बदलवाने के लिए पुराना और नया पता, ग्राहक नम्बर सहित लिखें।

३—"कल्पवृक्ष" का वार्षिक मूल्य समाप्त होने की सूचना मिलने पर अगले वर्ष का मूल्य २॥) हमें फौरन मनीआर्डर से भेज दें। "कल्पवृक्ष" वी० पी० से मँगाने की आदत छोड़ दें, ग्राहक रहना स्वीकार न हो तो कृपया एक पोस्टकार्ड से सूचना दे दें। धन्यवाद !

४—"शिव सन्देश" पुस्तक वी० पी० द्वारा नहीं भेजी जायगी। इसके लिए डाक खर्च सहित ११) पहले भेज दीजिए। कल्पवृक्ष के प्रत्येक प्रेमी पाठक को यह पुस्तक मँगा लेनी चाहिए क्योंकि एक बार खत्म होने पर दुबारा नहीं छपेगी।

—व्यवस्थापक

संसार के आश्चर्य

आचार्य श्री नरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ

व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयन्ति।
रोगाश्च शत्रव इव प्रहरन्ति देहम्॥
आयुः स्रवति भिन्नघटादिवाम्भः।
लोकस्तथाप्यहितमाचरतीति चित्रम्॥
(भर्तृहरि)

बुढ़ापा बाघन की तरह फाड़ खाने को तैयार हो रहा है। रोग शत्रु की तरह शरीर पर प्रहार कर रहे हैं। जैसे फूटे घड़े में से पानी कम होता जाता है इसी प्रकार आयु कम होती जा रही है तो भी आश्चर्य है कि लोग अपना अहित करना और औरों के अहित को साधने की चेष्टा नहीं छोड़ते। इनको कौन समझाए। पता नहीं मृत्यु कब उठा ले जायगा। क्षण भर का भी तो विश्वास नहीं है। स्वार्थ को तो हर कोई साधता है पर अपने स्वार्थ साधन के लिए दूसरे के स्वार्थ पर आघात करने वाले अधम पुरुष को क्या कहा जाय। संसार में आकर पाप से डरता हुआ जो पुरुष जीवन व्यतीत करता है वह पुरुष उत्तम है। पापात्मा भी जो अपयश, अपकीर्ति, निन्दा से डरता रहता है वह पुरुष मध्यम कोटि का है। जिसको किसी पाप को अथवा अपराध को करते हुए भय नहीं लगता, लज्जा नहीं आती वह तो अधमाधम पुरुष है। इसलिए पुरुष को सदा धर्माचरण का ध्यान रखना चाहिए। जो पुरुष धर्माधर्म का ध्यान रखकर चलेगा, शुद्ध भाव से वर्तेगा मृत्यु उसको डरा नहीं सकता।

हिमालय के अंचल से

स्वामी शिवानन्द जी

आप अश्लील (गन्दी) बातें सुनते हैं, अश्लील बातें करते हैं और अश्लील गाने गाते हैं और गन्दे व्यक्तियों का संग करते हैं, तो आपकी बुद्धि भी उसी गुण को पा लेती है। जैसे आग के ऊपर रख देने से कोई भी वस्तु आग के किसी भी रूप को धारण कर लेती है, उसी प्रकार बुराइयों के पास रहने से आपका मन, आपकी वाणी, आपके कर्म जरूर प्रभावित हो जावेंगे। परन्तु यदि आप भगवान् के नाम का जप करें तो वह आपको पहले पहल फिजूल ही मालूम देगा, किन्तु कालान्तर में उस नाम के पीछे छिपी हुई महान् सदाचार और आदर्श लीला की कथाएँ आपके जीवन को बिलकुल बदल ही देंगी और आप अध्यवसाय कर अभ्यास करते-करते उसी नाम के आदर्श के अनुसार बन जाओगे। राम बनना हो तो राम भजो और काम के लिए काम भजो। जैसी गति होगी, वैसी ही मति भी होगी, ऐसा जग में सदा से चला आया है। यही पुरानी कहावत है और शास्त्र भी यही कहते हैं कि राम को भजने वाला राम के ही समान सुन्दर और आदर्श आचरण को प्राप्त करता है और कृष्ण का उपासक भी कृष्ण के महान् और सुन्दर आचरण और जीवन को प्राप्त होता है। जिस प्रकार सिनेमा प्रेमी नित्य सिनेमा देख-देखकर सिनेमा के नायकों की याद करता हुआ उन्हीं के समान हाव-भाव करने लगता है और उन्हीं के समान जीवन बिताना चाहता है। और कालान्तर

में उनके ही समान आचरण से पतित हो जाता है, ठीक उसी प्रकार भजन, कीर्त्तन और सत्संग और कथाश्रवण करने वाला व्यक्ति कालान्तर में निःसन्देह राम के महान् जीवन की प्राप्ति करता है। वह मोक्ष हो, चाहे कुछ और।

शिवमन्त्र रहस्य

पं० रामलाल जी पहाड़ा

ॐ नमः शिवाय

कोई इसे पञ्चाक्षरी, और कोई ॐ सहित षडाक्षरी मानते हैं। किन्तु ॐ को गिनती में लेना ठीक नहीं क्योंकि वह परम-तत्व पृथक् ही रहता है और अपनी सत्ता से मन्त्र को चैतन्य करता है। प्रथम यह जानना आवश्यक है कि सृष्टि में पञ्चमहाभूत क्षिति जल पावक गगन समीर ही अक्षर है। ये सदा पुरुष के साथ प्रकृति के गर्भ में अवस्थित रहते हैं। अतः ये पञ्चाक्षर व्यक्त किंवा अव्यक्त दशा में रहकर सबका कल्याण करते हैं। मन्त्र सदा मनन के लिए रहता है, अतः मनन योग्य कुछ आशय यहाँ दे रहे हैं जिससे मननशील पाठकों की कुछ सेवा हो जावे।

शब्दार्थ—ॐ = अ (भूर्लोक, शरीर); उ (भुवर्लोक मन); म् (स्वर्लोक, आत्मा)

नमः = अन्न, आयु, वित्त, चित्तवृत्ति का सुभाव।

शिवाय = कल्याण के लिए।

भावार्थ १.—भूर्लोक में अन्न से शरीर रक्षाकर कल्याण के लिए अपना जीवनोत्सर्ग करते रहें।

भुवर्लोक में सद्विचारों से मन को सब के कल्याण मे लगावें।

स्वर्लोक में अपनी योग्यता से सब का कल्याण करते रहें।

२. हम सब का कल्याण करने के लिए अन्न लेकर आयु ठीक रखे। वित्त एवं चित्त-वृत्ति सत्कार्यों में लगाते रहें।

३. पञ्चाक्षरों की पूरी शरण में रहकर हम चित्तवृत्ति को सब के कल्याण साधन की ओर झुकाते रहें।

ईश्वर के अतिरिक्त मैंने क्या जाना ?

श्री विश्वामित्र वर्मा

कहा जाता है, सारा संसार और जीवन कल्पना का रूप है, विचारों का नाटक है, जैसा हम विचार करते हैं वैसा ही हमको भासता है।

कहा जाता है, दुःख और सुख हमारे मन की कल्पना है और ये हमारे मन में से, हमारी कल्पना से ही उत्पन्न होते हैं।

आइये, इसकी सचाई देखें।

७० वर्ष के एक ज्ञानवृद्ध सज्जन मिले। मैंने उनसे पूछा, अपने जीवन में ईश्वर के अतिरिक्त आपने क्या जाना ? ईश्वर को जानकर, दूसरी कौन सबसे महत्वपूर्ण बात जीवन में आपने जानी ?

छूटते ही तपाक से वे बोल उठे—जीवन में व्यावहारिक दृष्टि से जो सब से महत्त्व-पूर्ण बात मैंने ईश्वर के अतिरिक्त सीखी है, वह है वस्तुस्थिति का शुभ मूल्यांकन। अर्थात् परिस्थिति में शुभ बातों का स्मरण रखना और उस पर सदा प्रसन्न रहना। देखो न, जीवन में लोग जो उदास और परेशान नजर आते हैं वे केवल अपने एक-मार्गी विचारों के कारण ! वह है, उनकी केवल दुःख दर्शन की भावना। यदि वे इसके विपरीत केवल शुभदर्शन की भावना का अभ्यास करें तो वे सुखी रहें। इसलिए जीवन का सुख दुःख सब अपनी ही कल्पना का रूप है। जीवन वास्तव मे न तो सुख है, न दुःख है। जीवन अपनी कल्पना का नाटक है।

मैंने पूछा—सो कैसे ?

वे बोले—कल हमारे यहाँ प्रार्थना मण्डली में एक सज्जन आये थे। बात बात में वे कहने लगे, "अजी साहब, क्या कहें, व्यापार बहुत मंदा हो रहा है, नौकरी मिलना भी बहुत मुश्किल हो रहा है, लड़ाई के जमाने में रुपया तमाम सस्ता दीखता था, अब गायब हो रहा है, पानी नहीं बरसता, दैव का भी कोप है, विकट परिस्थिति है, कैसे गुजर होगी, क्या होगा, क्या करेंगे, क्या कहा जाय ?" इतना कहते कहते रोनी-सी शकल बना ली।

वे विद्वान् थे अतः मैंने उन्हें सँभालते हुए कहा, "मगर आप तो विद्वान् हैं, आप पर तो इन बातों का असर न होना चाहिये। आपकी दृष्टि में तो ये बातें बिल्कुल साधारण हैं। विद्वान् तो वही है जो भ्रान्ति और उलझनों में न फँसने पावे, वरन् उन्हें सुलझाकर सरल बना दे। इसी में तो विद्वत्ता है।

मेरी विद्वान् की इस परिभाषा को वे मान गये। फिर मैंने कहा, आओ देखें जीवन मे क्या नफा नुकसान है ? वह मान गया। मैंने एक कागज लेकर उसमें जमा खर्च के स्थान पर "अच्छी बातें' और "बुरी बातों" का लेखा जोखा करना आरंभ किया। मैंने कहा, अब बोलो, अच्छी बातें कौन सी हैं, और बुरी बातें कौन सी हैं। सब लिखूँगा।

वे बोले, जो कुछ है वे सब "बुरी बातों" के लेखे मे लिखा जायगा, अच्छी बातें तो लिखाने योग्य कुछ हैं ही नहीं।

मैंने कहा, खैर, जो भी हो, यथास्थान लिखी जायगी। अच्छा तो "बुरी बातें' ही शुरू करो। और "बुरी बातों" के लेखे में मैंने लिखा—दो महीने से मकान भाड़ा नहीं चुकाया है, एक बुरी बात तो यह हुई, है न ?

वह बिगड़ उठा—मैंने कब कहा कि मकान भाड़ा दो महीने से नहीं चुकाया।

मैंने अनजान बनते हुए पूछा—तो एक महीने का न दिया होगा!

वह बोला—अजी नहीं जी, आप क्या बात कर रहे हैं? मैंने सब किराया चुका दिया है कुछ भी देना बाक़ी नहीं है।

मैंने कहा—तब तो यह "अच्छी बात" हुई, लिख लूँ न? अच्छा अब दूसरी "बुरी बात"—"मेरा दिल बहुत धड़कता है।"

वह तपाक से बोल उठा—नहीं जी, दिल तो मेरा बिलकुल ठीक है, मैं परीक्षा करा चुका हूँ, यह तो निरा भ्रम था।

मैंने कहा—तब तो इसे "अच्छी बात" में लिखना चाहिये। आपने किराया भी दे दिया, और आपका दिल भी ठीक है।

वह बोला—तुम हो बेवकूफ! भला ऐसी बातें भी कोई महत्व की हैं?

मैंने कहा—तो जब तुम पर २-४ महीने का किराया सिर पर हो, दिल धड़कता हो, क्या तब अच्छी बात होगी? विद्वान् होकर तुम अपने जीवन की अच्छी बातों का मूल्य समझने लग जाओ तो "बुरी बातें" कहने या विचारने का अवसर ही न आवे। मेरी बातें तुम्हें बेवकूफ जैसी मालूम होती हैं और निश्चय ही तुम्हारे साथ दुनिया के सब लोग "हाँ" में "हाँ" मिलाने लग जायँ तो सब की रोने जैसी शकल नजर आवे। भगवान् को धन्यवाद दो, और स्वयं को धन्य मानो कि मेरा दिल ठीक है, मेरा घर है, और घर में घरवाली है, और उसकी गोद में सुकुमार फूल है, और रोज गरम रोटी मिलती है। जीवन की होती बीती बातों को सुख का आयोजन मानो। तन्दुरुस्ती हजार न्यामत, हुस्न परस्ती लाख इबादत। तुम्हारे पास तन्दुरुस्ती है और संसार की हरेक वस्तु और परिस्थिति से प्रेम करते हो, सर्वत्र सुन्दरता देखते हो, तो बस यही ईश्वर का ज्ञान है, तुम संसार के उच्च पद पर आसीन हो, फिर वहाँ कौन सी बुरी बात, और क्या चिन्ता? कैसी व्याकुलता?

यह जीवन कल्पना का नाटक है। अपने हृदय में शुभ संगीत धारण करो, वह मधुर संगीत तुम्हारे ओठों से झरे, तथा आँखों में दिव्य सौन्दर्य का तेज हो। शुभ विचार करोगे तो शुभ बोलोगे, सौन्दर्य देखोगे तो ये आँखें स्वयं सुन्दर बनकर चमकेंगी। मनुष्य जो कुछ सोचता है वह होकर ही रहता है। सब कुछ उसके विचार में ही है, विचार से बाहर कुछ नहीं।

क्या तुम्हारे जीवन में कभी ऐसा दिन आया जिस दिन घर में चूल्हा न जला हो? भविष्य की रोटी की चिन्ता के कारण ही तुम बुरी बातों का लेखा कर रहे हो न? किन्तु संसार के इतिहास में अब तक कितने आदमी भूख से, रोटी न मिलने के कारण मर गये हैं, तथा खूब रोटी खाकर रोगी होकर कितने मरे हैं, इन दोनों का लेखा क्यों नहीं करते? बेवकूफ कौन है? तुम जो भविष्य की रोटी की चिन्ता में बुरी बातें करते हो क्या तुम्हें रोटी नहीं मिलती? तुम पत्थर काँटे खाते हो, जो ऐसी बुरी बातें मन में रखते और मुँह से निकालते हो? यही तुम्हारी नास्तिकता है। अपने जीवन की शुभ और आनन्दपूर्ण घटनाओं का स्मरण कर परमात्मा को उन सब के लिए धन्यवाद दो, स्वयं को धन्य मानो, और आस्तिक बनो। जो अपने को आस्तिक मानता है, ईश्वर को मानता है, उसके मन में या जीवन में चिन्ता या अशुभ के समावेश की गुंजायश नहीं रह सकती। विचार करो, क्या तुम आस्तिक हो?

प्रश्नोत्तरी

१—"मन को वश में करने के अनोखे उपाय" लेख, (नवम्बर ५२) में श्री लालजी राम शुक्ल ने लिखा है—"जब हमारा मन बार बार किसी विशेष ओर जावे तो हमें समझना चाहिये कि हमारा उसी ओर जाना आवश्यक है," इस पर शङ्का होती है कि हमारा मन बार बार व्यभिचार की ओर जाता है तो उसे जाने दें ? भोग की ओर जाने दें ? इसको तो जितना ही भोग दिया जायगा उतना ही प्रबल होता जायगा, कभी इसकी तृप्ति नहीं होगी।

आपका और सबका मन रोज रोज बार बार स्वादिष्ट भोज्य पदार्थों की ओर जाता है, उसे रोककर घास पत्ती खाने की बात करने लग जायँ तो यह प्रश्न करने की उतनी गुञ्जायश न रहेगी। भोजन से शरीर बनता है, और उसी के अनुसार मन और इन्द्रियों की प्रवृत्ति होती है। जैसा बीज वैसा फल, यह तो स्वाभाविक बात है। जीवन मे भोजन से भी तो कभी तृप्ति नहीं होती। जिस दिन तृप्ति हो जाय उस दिन भोजन बन्द हो जाय और जीवन भी फिर खत्म हो जाय। मुर्दे को सब प्रकार से तृप्त समझिये, अथवा जो कहता है कि मैं सर्वथा तृप्त हो गया, उसे गतिहीन समझिये। अतृप्ति से ही गति होती है, अतृप्त रहना ही जीवित रहना है। आगे चलना है। जैसा फल खाना है जैसी फसल चाहिये, वैसा बीज बोवें। वासना, भोग, व्यभिचार रोकने की बात सभी कहते हैं, भोजन और विचार संयम की बात सोचिये। इस संबध में यद्यपि मनुष्य को ज्ञान बहुत हो चुका है, परन्तु व्यवहार और संयम साधना में पशु पत्ती उससे बहुत अच्छे हैं।

२—"मन को वश में करने के अनोखे उपाय" के संबंध में प्रो० लाल जी राम शुक्ल ने लिखा है कि, "बालक अपनी प्रभुता जमाने के लिए हठ करता है। यदि हठी बालक को सभी काम उसके हठ के अनुसार करने दिया जाय तो उसकी हठ की मनोवृत्ति ही नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार हठी मन की बात है, जब मन किसी बात के लिए हठ करता है तो उस बात से मन को रोकना मानसिक समस्या को जटिल बनाना है। जब मन किसी हठ को न छोड़ता हो तो मन को उसी काम को अधिक से अधिक करने देना चाहिये जिसको मन करना चाहता है।" यह एक अनोखा उपाय बताया गया है और इसी विचार की पुष्टि में कई एक उदाहरण भी दिये गये हैं। क्या यह एक निजी विचार है, कल्पना है, मनोरञ्जन का साधन है, या अनुकरणीय विषय और अनुसरणीय सिद्धान्त है ? कल्पना है तो सराहनीय है, परन्तु अनुकरणीय सिद्धान्त है तो इसकी पुष्टि में अन्य महर्षि व ग्रन्थकार का मत भी है ? हमने तो पढ़े सुने हैं कि मनः संयम सर्वसम्मत उपाय है, यथा 'अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते,' 'अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः' 'सत्संगति, रामभक्ति, हरिनाम सकीर्तन', आदि। किन्तु आपके उपाय का अनुभव करते करते कहीं अधःपतन तो नहीं हो जायगा ? मनुष्य जन्म बड़ा दुर्लभ है। मद्य, मास, मैथुन, स्तेय, अविद्या, इत्यादि अकार्यों के लिए हठीमन इनके निरन्तर अभ्यास से कैसे वश मे हो जायगा ? यदि आपका विचार और सिद्धान्त ठीक है तो वाममार्गी मद्य मांस मैथुन को धर्म का अंग मानकर जी भर कर विषयानन्द लेनेवाले शीघ्र ही मन को वश में करके प्रभुप्राप्ति कर लेते होंगे; तो क्या हम

उनके मत को ग्रहण कर लें, मन फिर वश में हो जायगा ?

शुक्ल जी ने उक्त लेख में जो कुछ लिखा है, वह कल्पना नहीं, मनोवैज्ञानिक तथ्य है और, हठी मन के विषय को लेकर हठी लोगों के विषय में लिखा गया है। सर्वसाधारण के लिए अनुकरणीय नहीं है। महर्षियों और ग्रन्थों तथा ग्रन्थकारों की बात, और माता पिता आदि गुरुजनों का उपदेश भी जो न माने, वह चाहे बालक हो या प्रौढ़, उसे अपने हठ या हठी वृत्ति के अनुसार जो भी करने न दिया जाय तो वह व्यक्ति और भी अधिक जटिल बन जाता है; अतएव उसे छूट दे देने से जब वह कुछ भी करेगा तो उसे उस कर्म का फल अवश्य मिलेगा, उसे पुस्तक और उपदेश आदेश की अपेक्षा स्वानुभव से सीख मिलेगी, फिर उसे जो मंजूर होगा उसका मार्ग आप ही निकाल लेगा। एक बात और है। महर्षियों, ग्रन्थकारों ने जो भी लिखा है वह भी कल्पना से नहीं लिखा, वरन् स्वानुभव से लिखा है। आग में जिनका हाथ पहले जल न चुका हो, जो आग के पास कभी न गया हो, जिसने आग न देखी हो, वह आग को न जानता हो तो दूसरों को कैसे उपदेश दे सकेगा कि आग में हाथ मत डालना, जल जाओगे। इस संबंध में केवल किसी का उपदेश मानकर जो चुपचाप अनुसरण करने लगते हैं, उनकी अपेक्षा हठ द्वारा अनुभव पाये हुए व्यक्ति की सीख अधिक मूल्यवान होती है। एक बालक द्वारा संन्यास, वैराग्य, त्याग, ब्रह्मचर्य आदि की शिक्षा सुनने की अपेक्षा तीन आश्रम पार करके संन्यासी बने हुए की शिक्षा अधिक मूल्यवान, सारभूत और अनुकरणीय होगी। यदि वही बालक, तीन आश्रम पार किये बिना, अपने जीवन-विधि के चौथे चरण में पहुँचकर भी वैसा उपदेश करे तो उसका उपदेश खोखला और अग्राह्य होगा। उपदेश की अपेक्षा अनुभव का मूल्य अधिक होता है, और अनुभव से ही सिद्धान्त बनता है और अनुकरणीय होता है। अधःपतन तो अतिक्रमण से होता है।

३—इच्छा का कैसे नाश करें ? मन को कैसे मारें ? मन को ढीला या शिथिल कैसे करें ? वासना को कैसे नष्ट करें ?

आग से पानी गरम होकर उसकी भाफ जिस प्रकार गतिमान होकर बहुत से कार्य करती है, उसी प्रकार आग के समान मनुष्य में इच्छा का स्थान है। इच्छा से जीवन गतिवान होता है, अतः इच्छा को मारना निर्जीव बनना है। जो जीवित है, जीवित रहना चाहता है उसे इच्छा होना स्वाभाविक है। इच्छा को मारना अपनी हत्या करने के समान है। जिसमें इच्छा न रह जायगी वह जीकर अपने लिए या संसार के लिए क्या कर सकेगा ? मुर्दे को देखो, उसकी इच्छा, मन, वासना सब मरे होते हैं। मन ही तो मनुष्य है, और मन को मारने की बात भी मनुष्य और संसार सबको खत्म कर देने की सी बात है। वासना को नष्ट नहीं किया जा सकता, कोई नहीं कर सका, जो कहता है कि "मैंने कर दिया है," वह पाखण्डी है, पत्थरवत् जड़ है, नपुंसक है, या झूठ बोलता है। और जो उसको नष्ट करने का प्रयत्न करेगा वह या तो पागल हो जायगा या स्वयं नष्ट हो जायगा। सृष्टि की प्रकृति वासनामयी है, वासना से ही उत्पत्ति है, वासना उत्पत्ति का हेतु है, खिलवाड़ के लिए नहीं। वासना व्यर्थ नहीं है परन्तु सृष्टि की, विधाता की सबसे जबरदस्त, शक्ति है। उसकी सृष्टि में यह सबसे आवश्यक शक्ति है। वासना से उत्पन्न जीव की वासना की ओर गति होना ऋतु-अनुकूल स्वाभाविक और आवश्यक है,

परन्तु सब ऋतुओं में चौबीस घण्टे अस्वाभाविक है और उत्पत्ति तथा जीव को पुष्ट बनाने के बदले उसके नाश का कारण होगी। मन को ढीला या शिथिल करने का विचार छोड़ दो। मन, सारंगी सितार या वीणा के तार के समान है जिसको अधिक कस देने से वह टूट जाता है, और ढीला करने से ठीक स्वर नहीं निकलता। विधाता ने मन, इच्छा, इन्द्रियाँ और वासना आवश्यक जानकर ही हमें दिया है।

४—नवंबर ५२ के अंक में "सूर्य किरणों से इलाज" लेख में "थर्मोलम्" यंत्र का जिक्र आया है। यह यंत्र कहाँ मिलता है, मूल्य क्या है, किस किस रंग के शीशे भारत में मिलते है? उक्त यंत्र का पूर्ण विवरण दें।

भारत मे काँच के कारखानों को रंगीन काँच और बोतलें बनाने का थोक आर्डर देने पर, हमें आशा है कि वे बना सकेंगे, उचित रंग की पहचान भी देनी चाहिये। वैसे तो बड़े बड़े शहरों में नीला, नारंगी, हरा काँच और बोतलें अक्सर मिलती हैं परंतु लाल, पीला, बैंगनी काँच और बोतलें बहुत कठिनाई से मिलती हैं। सूर्य किरण चिकित्सा यहाँ अथवा किसी भी देश में सरकार द्वारा प्रतिपालित या अधिकृत न होने के कारण इस चिकित्सा की सामग्री की माँग नगण्य है। थर्मोलम् यंत्र भी बिकने वाला नहीं है। लकड़ी की एक कुर्सी या चौकी बनवाइये-जिसमे आवश्यकतानुसार सुभीते से लेटा या बैठा जा सके। उसके दोनों बगल तथा सामने या ऊपर काँच के आकार के बराबर, चौखटे बने हों जिनमें आसानी से अमुक आवश्यक रंग के काँच लगाये अथवा निकाले जा सकें, और किसी भी अंग पर रंगीन सूर्य प्रकाश डालने के लिए उक्त अंग के सामने उसमें काँच लगाया जा सके और दूसरे रंग का प्रकाश देने के लिए उस काँच को निकाल कर दूसरा काँच लगाया जा सके। इसलिए सब काँच एक ही नाप के होना आवश्यक होगा। और बैठने अथवा लेटने के दो प्रकार के थर्मोलम् भी बनाये जावें तथा ऐसा हो कि मोटे या दुबले व्यक्ति को प्रकाश इस प्रकार दिया जा सके कि काँच उसके अंग से बहुत निकट अथवा आध इंच दूरी पर हो, जैसे कि कोई चादर या कम्मल ओढ़ता है।

व्यक्तिगत और पारिवारिक

समस्या परामर्श

मेरी उम्र २८ वर्ष है, वकालत का विद्यार्थी हूँ, माँ बाप है, सुशीला पत्नी और बच्चे हैं, सुखी परिवार है, कविता करता हूँ, संगीत प्रेमी हूँ। परन्तु मेरा जीवन चिन्ताओं से भारी है, हँसना चाहते हुए भी नहीं हँस सकता हूँ। ईर्षा और आत्महीनता की भावना में गलता रहता हूँ। मैं शुष्क, दब्बू और डरपोक बन गया हूँ। मैं बहुत पुस्तकें पढ़ चुका हूँ, मंत्रजप, गायत्री साधना आदि सब कुछ कर चुका हूँ। भगवान् के वरदानों को भी अभिशाप के रूप में उपभोग करता हूँ, जानता हुआ भी सर्वथा पंगु हूँ। विलासी, व्यसनी, नास्तिक नहीं हूँ, फिर भी मेरा जीवन ऐसा क्यों है और क्या उपाय किया जाय ?

"सा विद्या या विमुक्तये," विद्या तो वही है जिससे त्रितापों से और बन्धनों से मुक्ति मिले। "यस्मिन् विज्ञाते सर्वं विज्ञातं भवति," जिसके जान लेने से सब कुछ ज्ञात हो जाय। यदि विद्या और ज्ञान प्राप्त करने से यह सब कुछ न हो तो वह विद्या और ज्ञान व्यर्थ है, अथवा अपनी मनोवृत्ति का दोष है। आधुनिक शिक्षा में यह एक बड़ी भारी कमी है कि उससे संसार का चाहे सब ज्ञान विज्ञान हो जाय, आत्मविकास नहीं होता, आत्मविज्ञान की शिक्षा नहीं मिलती। मनुष्य जो कुछ जानता या करता है उससे सुख संतोष आनन्द शान्ति न मिले तो उसे त्याग देना चाहिये, अथवा अपनी मनोवृत्ति बदलकर सब कुछ देखना और करना चाहिये। पुराने रोगियों को हवा बदलने के लिए कहा जाता है उससे विचार परिवर्तन भी हो जाता है। विचार ही जीवन है, विचार ही संसार है। जीवन अनमोल है, शांति अनमोल है। संसार के काम तो मरते दम तक खत्म न होंगे, संसार तो मरने के बाद भी चलता रहेगा। पुस्तकें कितनी भी पढ़ो, खत्म न होंगी, जीवन खत्म हो जाय, काम खत्म न होगा। जीवन की अपेक्षा कर्म बड़ा है, कर्म पर ही जीवन निर्भर है, और कर्म होता है विचार से। पुस्तक में स्वास्थ्यकर पदार्थों के गुण पढ़ लेने मात्र से उनका गुणलाभ न मिलेगा जब तक कि उन्हें खाकर पचाया न जाय, इसी प्रकार तस्वीर में व्यायाम देख लेने मात्र से कोई स्वस्थ या पहलवान नहीं बन जाता जब तक स्वयं व्यायाम न करे। आप शिक्षित हैं, विचारशील हैं परन्तु चिन्ताग्रस्त हैं। चिन्ता करते रहना, विचार करने की विकृत कला है। इस प्रकार जब इतने समय तक चिन्ता करते रहने से आपको कोई लाभ नहीं हुआ, तो इस कला को छोड़ देना चाहिये। बहुत अच्छा हो कि आप समय निकालकर कुछ दिनों के लिए अपने कार्य क्षेत्र से दूर बाहर निकलकर सत्संग करें, आत्मविकास के लिए विचार परिवर्तन का यह सहज साधन है। ईर्षा, आत्महीनता की भावना से किसी की न उन्नति हुई, न विकास हुआ। मकान के ऊपर से कूदकर नीचे ही गिरेगा, आसमान में नहीं जायगा। सब कुछ पढ़कर भी आप अभी तक आस्तिक नहीं बन पाये। ईर्षा, आत्महीनता, शुष्कता, दब्बूपन, डरपोकपन सब नास्तिकता है। इसी अंक में पढ़िये "ईश्वर के अतिरिक्त मैंने क्या सीखा," तथा "बस हँसो," और उसके अनुसार आस्तिक बनने का अभ्यास कीजिये।

पाठकों के अनुभव

ईश्वरनिष्ठा :

ग्राहक नं० १७१३ : मेरी आयु इस समय ४० वर्ष से अधिक है। प्राणी स्वार्थ परायण है। स्वार्थ में विघ्न उत्पन्न हो परिस्थिति प्रतिकूल हो जाती है तब मनुष्य ईश्वर की ओर देखता है। ऐसे अवसर पर अदृष्ट सहायता, ईश्वर की प्रत्यक्ष सहायता या व्यापकता सिद्ध होती है। मैंने भगवान् की सर्वव्याप्त सत्ता सर्वज्ञता को कई बार जाना है। मेरे कण्ठमाला निकली, एक वर्ष तक मवाद निकलता रहा, डाक्टरों ने असाध्य रोग कह दिया, सब कुछ किया, लाभ नहीं हुआ। अन्त में यह बात सूझी कि अपने को ईश्वर के अर्पण करो। बस मैं रोज प्रार्थना करने लगा, भगवन् मैं तेरा हूँ, शरण में ले, चाहे जो करे। बस, मैं छः मास में ठीक हो गया।

मैंने बाल्यावस्था मे, अपनी बाल भावना के अनुरूप, अमुक आदर्श के लिए प्रार्थना की। वे बातें सब प्रगट हुईं और २५ वर्ष बाद आज विद्यमान हैं।

मैं यमुना स्नान करने गया था। तैरना नहीं आता था, साथियों की देखा देखी ताव में आकर कूद पड़ा। २-३ बार ऊपर नीचे आया, उस दशा में इधर संसार, उधर शून्य का साम्राज्य। वह दशा अकथनीय है। किसी साथी ने धक्के देकर बचाया—ईश्वरेच्छा !

गायत्री की कृपा :

एक जिज्ञासु पाठक ने लिखा है :—

मेरी पत्नी इस समय ३० वर्ष की है, ७ बच्चों की माता बन चुकी है। किन्तु ९ सितम्बर १९५२ को जो बच्चा प्रसव हुआ वह "गायत्री जप" से कितना सहज हुआ, उस आनन्द को मेरी पत्नी पत्र द्वारा व्यक्त नहीं कर सकती। इसके पहले जो छः बच्चे दो लड़के, चार लड़कियों के प्रसव समय उसे जो वेदना होती थी, उसमें प्रत्येक बार उसका नूतन जन्म ही होता था। इस सातवें बार प्रसव समय मैं स्वयं भी घर पर मौजूद नहीं था, मेरे मित्र ने मुझे बुलाने को तार भेजा था। बच्चे के जन्म से तीन महीने पूर्व ही मेरी पत्नी को यह शक था कि इस डिलीवरी में मैं नहीं बचूंगी। अपनी प्रसव वेदना को ध्यान में रखकर ही उसी समय से गायत्री मन्त्र की छः माला, मध्य रात्रि के समय शुरू कर डेढ़ दो घण्टे में पूरी किया करती थी। उसी के फलस्वरूप इस बार उसे कोई कष्ट नहीं हुआ, बच्चा स्वस्थ है। इससे अधिक चाहिये भी क्या ? यह है वेदमाता गायत्री के क्षणिक काल के जप का प्रभाव !

सार बात

डॉक्टर दुर्गाशंकर जी नागर ने मेरे जीवन में क्या किया ? मेरा तो ध्रुव दृढ़ मत है कि मेरे मस्तिष्क में ऐसे आध्यात्मिक विचार न भरे होते, जैसे कि आज हैं, तो जैसी वर्तमान परिस्थिति से हम गुजर रहे हैं, तो, या तो मैं पागल हो गया होता या आत्महत्या करना पड़ता। परन्तु हम बड़ी शान्ति से दिन गुजार रहे हैं। बस और नहीं लिखना चाहता। सार बात लिख दी।

—ग्रा० नं० ५५३

हमारे मित्र ने गायत्री पुरश्चरण का सङ्कल्प किया था, करने लगे, फिर उनका पौत्र मरने लायक बीमार हो गया, गायत्री प्रार्थना से बच गया। हँसी अपने ऊपर आती है जब बिना प्रयास व अल्प प्रयास से बहुत कार्य सिद्ध होता है। दूसरे पर हँसी आती है जब प्रयास बहुत हो परन्तु कार्य सिद्धि अल्प होती है या नहीं होती है। यह सब गायत्री जप करने और न करने का परिणाम है।

—ग्राहक नं० ३१०३

"कल्पवृक्ष" पर आपकी सम्मति

इस संबंध में हमारे पास अनेक पाठकों के पत्र आये हैं। कुछ ने हमारी "सम्मति" की माँग पर आलोचना की है, आगरा से एक सज्जन लिखते हैं—इस पत्र में आपको कमी का अनुभव हो रहा है, अपने में कुछ शंका अनुभव कर रहे हैं। नागर जी ने इस पत्र को केवल सत्य का प्रचार तथा विचार-शक्ति का पाठ पढ़ाने के लिए निकाला था। क्या आप सत्य प्रचार में सम्मति की आवश्यकता समझते हैं? यदि हाँ, तो यह आप की जबरदस्त कमजोरी है जिससे डाँवाडोल हो रहे हैं, मेरी नजर में सिवाय दूकानदारी के और कुछ नजर नहीं आता। क्या सत्य का प्रचार अरुचिकर तथा कुरूप है? जो आपने इसको रोचक तथा सुन्दर बनाने की योजना माँगी है?........अजमेर से एक प्रतिष्ठित सज्जन लिखते हैं, "आपने यह प्रश्न किया कि कल्पवृक्ष में क्या कमी है? लेकिन आप हमेशा दूसरों को उच्च विचार रखने का आदेश देते हैं, फिर आप में यह कमी का विचार क्यों पैदा हुआ?........ लाभ बतलाते हुए लिखा है, "कल्पवृक्ष ने मेरे जीवन को बदलने में Search Light का काम किया है। विचारों की कला इसी से सीखी। मेरा एक मित्र उदासीन खिन्न रहा करता था, विचारों के परिवर्तन से उसके चेहरे पर भव्य तेज है, निराशा को वह अब नास्तिकता समझता है........मेरे विचार में वर्ष में एक या दो बार इसका विशेषांक निकालना आवश्यक है......लेख वेदान्ती और दार्शनिक दृष्टि से लिखे जाते हैं जो साधारण पुरुषों को नीरस विषय होता है, एक दो स्तम्भ आध्यात्मिक चमत्कारिक कहानियों का आवश्यक है। कहानी के पीछे एक बड़ा मनोवैज्ञानिक रहस्य छिपा हुआ है।........कविता और भजन भी होना चाहिए।........मैं २५ साल से कल्पवृक्ष का ग्राहक हूँ, दस साल से अन्धा हूँ, अन्धा होने पर भी मेरे पास जब कल्पवृक्ष आता है तो उसको पढ़वाकर बहुत प्रसन्न होता हूँ।........जनता का शिक्षित अंश बहुत थोड़ा है, जीवन संग्राम में जुटा होने से इस शिक्षित अंश का बहुत थोड़ा अंश संस्कृत श्लोकों की अपेक्षा, मानसिक झंझटों से ऊबकर, सरल मनोरंजक साहित्य चाहता है। विद्यार्थी मात्र 'बालस्तंभ' पढ़ेगा। क्या कल्पवृक्ष में ऐसा आकर्षण नहीं पैदा किया जा सकता कि वह स्टेशनों पर व्हीलर के स्टाल पर भी खूब बिके?........अध्यात्म चमत्कार की कहानियाँ मनोविनोद के लेख आदि का अन्य अखबारों से कटिंग ही दिया जाय, मनुष्यमात्र घटनाप्रिय होता है।...........कल्पवृक्ष पढ़ने से जो लाभ हुआ है, वह यदि मूर्तिमान् वस्तु हो तो दिखाई जाती। हाँ, यह कह सकता हूँ कि यदि कहीं पारस पत्थर हो तो वह इसके सामने काँच या मिट्टी का ढेला समझा जाना चाहिये।........ इसका मूल्य भी बढ़ाया जाय।

इस प्रकार बहुतों ने बहुत सी सुझाव और रुचि की बातें लिखी हैं। कल्पवृक्ष को एक व्यक्ति अपनी रुचि के अनुसार प्रकाशित करे तो वह सार्वजनिक लाभ का प्रतीक नहीं कहा जा सकता। यह पत्र सर्व साधारण के लाभ के लिए प्रकाशित किया जाता है अतः सब के हित का दृष्टिकोण आवश्यक है, इसीलिए सम्मति माँगी गयी। पाठक अपने लाभ के लिए यह पत्र मँगाते हैं अतएव सुझाव देते हुए उन्हें स्पष्टरूप से सब कुछ कहने का हक है। हमें इसमें कम-

जोरी का विचार या शंका करने की बात नहीं है। यह पत्र चाहे पारस पत्थर से भी मूल्यवान हो परन्तु उसका पारखी ग्राहक न हो तो उससे किसी को क्या लाभ ? और उस वस्तु के अस्तित्व या मूल्यवान होने का महत्व ही क्या ? उसका होना या न होना बराबर है। परन्तु संसार की कोई वस्तु स्वयं अपने लिए नहीं होती, वरन् दूसरों के उपयोग और लाभ के लिए होती है। कद्र और कीमत तो ग्राहक ही जानता है, अतएव ग्राहकों से सम्मति माँगी गई। चमत्कारिक घटनाएँ, मनोरंजक कहानी, कविता, भजन, मनोविनोद, बालस्तंभ आदि के स्तभ तो आजकल बहुत से दैनिक साप्ताहिक मासिक पत्रों में होते हैं। कहानी, कविता, भजन, मनोविनोद आदि का प्रभाव अस्थायी मनोरंजनमात्र होता है, एक बार ही पढ़ लेने पर वे पुरानी हो जाती हैं। आकर्षण की बात हमारे समझ में नहीं आई, यह तो जमाने की हवा और अपनी अपनी रुचि पर, ऋतु और अवस्था परिस्थिति के अनुसार निर्भर है। आकर्षण कोई आदर्श और उपयोग की चीज नहीं है। वेद शास्त्र, उपनिषदों, तथा कहानी, उपन्यास, अभिनय सिनेमा, में आधुनिक जन समुदाय के आकर्षण की तुलना कीजिए। कहिए इन दोनो में कौन आकर्षक है, कौन उपयोगी है और किसको नष्ट कर दिया जाय, जो निरुपयोगी और विकर्षक हो ?

विशेषांक और मूल्य बढ़ाने की बात हमारे लिए बहुत बड़ी है। हमारा भारत प्राचीन आदर्शवादी, अध्यात्मवादी आदि है, धर्म और नीति परायण है, श्रद्धालु है, फिर भी शिक्षा बहुत कम है, गरीबी और अशिक्षा बहुत है, भारत की जन संख्या में कल्पवृक्ष के ग्राहक, एक लाख व्यक्ति पीछे एक व्यक्ति है। अपनी पुरानी आर्थिक कठिनाई का परिचय अगस्त अंक में हम दे चुके हैं। प्रति वर्ष, साधारण मासिक प्रकाशन में ही हमे दो ढाई हजार रुपये का घाटा रहता है, फिर विशेषांक निकालने की गुञ्जायश कहाँ से हो ? और फिर भी इस 'पारस पत्थर' के कितने पारखी ग्राहक होंगे ? यूरुप अमेरिका को भारत के लोग भ्रष्ट, दुश्चरित्र, नास्तिक, अधार्मिक, और भौतिकवादी समझते हैं जब कि वहाँ, धार्मिक और व्यावहारिक वेदान्त का साहित्य, मासिक पत्र आदि कई गुना परिमाण में हैं, और हरेक आध्यात्मिक पत्र के कई लाख ग्राहक हैं, और हरेक व्यक्ति स्वयं खरीद कर पढ़ता है, वे किसी मित्र या परिचित-अपरिचित से थोड़ी देर के लिए अखबार की भीख नहीं माँगते। भारत मे न तो इतने पढ़ने वाले हैं न इतने पत्र हैं, जो पढ़ने वाले हैं उनके पास पैसा नहीं है, जिनके पास धन है, उन्हें इसके प्रचार में रुचि नहीं है। अखबारो से कटिंग लेकर छापने का महत्व हम नहीं समझते। मनुष्यमात्र घटनाप्रिय होता है, हम मानते हैं, और इसके अनुसार सच्ची घटनाओं के उल्लेख कल्पवृक्ष में छपते ही रहते हैं।

कल्पवृक्ष की एक फाइल देखने को मिली जिससे मैं इतना प्रभावित हुआ कि वर्णनातीत है। मुझे नवजीवन मिला, तथा ऐसी अन्तःप्रेरणा हुई जिससे जीवन की सुख शान्ति जो सदा मेरे लिए अप्राप्य थी, अब सन्निकट हुई। मेरा सम्पूर्ण परिवार आपके पत्र से पूर्ण रूप से प्रभावित हो गया है। मैंने जीवन में अनेक आध्यात्मिक ग्रंथ देखे परन्तु इतना प्रभावशाली मेरे लिए कोई नहीं बन सका। मैं आजीवन इसका ग्राहक बना रहूँगा।

—ग्राहक नं० २६८

क्या प्राकृतिक चिकित्सा सर्वसमर्थ है ?

डॉ० लक्ष्मीनारायण जी टण्डन, एम० ए० एन० डी०

एक कहावत है, "मर्ज का इलाज है, मौत का नहीं।" कोई भी डॉक्टर वैद्य हकीम मर्ज से लड़ सकता है, मौत से नहीं। यह तो स्वतः सिद्ध है कि एक सीमा के बाद रोगी अच्छा नहीं किया जा सकता। प्राकृतिक चिकित्सा भी इसके अपवाद स्वरूप नहीं है। यह निर्विवाद सत्य है कि प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा समस्त रोगों का उपचार एवं अच्छा किया जाना संभव नहीं। प्रकृतिपति (विधाता) के अतिरिक्त प्रकृति की समस्त वस्तुएँ और बातें अपूर्ण हैं। प्रत्येक वस्तु की क्षमता एवं शक्ति की एक सीमा होती है। कुछ स्थितियों में तो प्राकृतिक चिकित्सा कुछ कर ही नहीं सकती। यदि मनुष्य की हड्डी टूट जाय तो प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा उसे ठीक करना संभव नहीं है। कुछ रोगों एवं स्थितियों में चीर फाड़ का सहारा लेना ही पड़ता है। जो प्राकृतिक चिकित्सक यह दावा करते हैं कि वे प्रत्येक रोग या स्थिति पर प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा काबू पा सकते हैं वे झूठे और अज्ञानी हैं, जनता को धोखा देते हैं और स्वयं को भी धोखा देते हैं।

जिस प्रकार विद्यार्थियों को सिखाई जाने वाली प्राथमिक चिकित्सा First Aid स्वयं इलाज नहीं फिर भी इलाज में बहुमूल्य सहायता के रूप में सफल है, उसी प्रकार निश्चय ही प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा हम कुछ रोगों या स्थितियों में उन्हें और भी शीघ्र ठीक होने में सफलतापूर्वक सहायता दे सकते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा सहायक के रूप में तो सदा ही निर्विवाद ठोस वस्तु है। कैंसर के अन्तिम पद में प्राकृतिक चिकित्सा कभी भी सफल और उपयोगी नहीं होगी किन्तु इसके द्वारा रोगी की मृत्यु कम कष्टदायक अवश्य होगी। मृत्यु अनिवार्य है किन्तु कम पीड़ा और कष्ट के साथ मरना (Easy death) भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। प्राकृतिक चिकित्सा का महत्व इसी दृष्टिकोण से है।

मैं तो प्राकृतिक चिकित्सा शब्द का ही विरोधी हूँ। मैं तो प्राकृतिक जीवन कहने का पक्षपाती हूँ, और यही उचित भी है। मान लीजिए हम सूर्य की धूप और गरमी द्वारा अपना रोग दूर करते हैं, वायु का खुल कर प्रयोग करते हैं, जल के विविध उपचारों से लाभ उठाते हैं, गहरी साँस लेते हैं, प्राणायाम, योगासन व्यायाम करते हैं, भोजन-संबंधी प्राकृतिक नियम का पालन करते हैं, तो यह तो हमारा कर्त्तव्य ही है, इसे चिकित्सा कहने की कहाँ गुंजायश है? यह हमारा बड़ा दुर्भाग्य है कि जो हमें साधारणतया करना चाहिए, उसका हमें ज्ञान नहीं है, और यदि है भी तो आलस्य, प्रमाद, इन्द्रिय निग्रह के अभाव में तथा परिस्थितिवश हम नहीं करते, हम प्रकृति से दूर होते जाते हैं। फिर जब हम प्राकृतिक जीवन व्यतीत करना आरंभ करते हैं, प्रकृति के अधिक निकट आते हैं, जो हमें करना चाहिए था पर नहीं करते थे और अब सौभाग्यवश ज्ञान हो जाने पर अथवा परिस्थिति द्वारा बाध्य होने पर भी, करने लगे हैं, तो इसे हम प्राकृतिक चिकित्सा कहने लगे हैं। 'चिकित्सा' शब्द का 'प्राकृतिक' शब्द के साथ उपयोग ही यह बात प्रमाणित करता है कि हम इतने अज्ञानी, कर्त्तव्यच्युत और प्रकृति से इतने दूर हो गये हैं कि आज हम यदि प्राकृतिक जीवन फिर से व्यतीत करने लगे हैं तो उसे ही प्राकृतिक

चिकित्सा कहने लगे हैं। सूर्योदय से पूर्व उठना, नित्य नियमित वायु सेवन, सूर्य की प्रथम रश्मि सेवन, सूर्य नमस्कार, व्यायाम, प्राणायाम, पूजा पाठ ध्यान, ठीक से स्नान, एनिमा या किसी उचित प्रकार से कब्ज आदि न रहने देना, नियमित तथा व्यवस्थित खान पान, रहन सहन, जागना सोना, विश्राम परिश्रम आमोद आदि हमारा कर्त्तव्य है, अतः प्राकृतिक जीवन है, प्राकृतिक चिकित्सा नहीं। और आश्चर्य नहीं होगा कि हमें बताना पड़ता है कि धूप का सेवन यों करो, स्नान यों करो, जल इतना ऐसा और इस इस समय पियो आदि।

संक्षेप में कहना यह है कि आप प्राकृतिक जीवन या प्राकृतिक चिकित्सा कहें, मनुष्य जीवन में सुख सुविधा शान्ति ही पहुँचायेगी, वह उपादेय ही होगी। अतः इस दृष्टिकोण से प्राकृतिक चिकित्सा प्रत्येक रोग में लाभ-प्रद है ही। स्नान आदि की साधारण बातों को जब हम वैज्ञानिक रूप में जनता के सामने रखते हैं तो वही वायु स्नान, सूर्य स्नान, जल स्नान, वाष्प स्नान, पृथ्वी स्नान आदि कहलाने लगता है, वही प्राकृतिक चिकित्सा हो जाता है।

पर इस प्राकृतिक चिकित्सा के द्वारा कुछ रोगों तथा स्थितियों में पूर्ण लाभ असंभव है। हाथीपाँव, कैंसर तथा क्षय के अन्तिम पद में, ऐसे नाशात्मक रोगों में प्राकृतिक चिकित्सा असफल होगी। पागल-पन या हड्डी की टूटफूट, अन्धापन, बहिरापन, जन्मजात अभाव या अन्य कुछ अभाव जैसे कोई जन्म से विकलांग पैदा हुआ हो, उस अंग की पूर्त्ति, या वृद्धावस्था में गिरे हुए दांत फिर से उगाना, इस चिकित्सा द्वारा संभव नहीं। कुछ रोग या अभाव तो प्राकृतिक चिकित्सा क्या किसी भी चिकित्सा से दूर नहीं किये जा सकते।

एक बात और है। आदर्श प्राकृतिक जीवन व्यतीत करने वालों तथा प्राकृतिक चिकित्सा के मानने वालों को भी कुछ रोगों का शिकार होना पड़ता है। साधारण ज्वर जूड़ी, शरीर के किसी भाग में दर्द आदि से कभी उन्हें भी पीड़ित होना ही पड़ता है, पर भेद केवल इतना है कि रोग उन्हें बहुत कम होते हैं और होने पर अपेक्षाकृत शीघ्र अच्छे हो जाते हैं। आचार्य विनोबाभावे ही आजकल (२० दिसंबर ५२ के समाचारपत्र से ज्ञात) १०४-१०५ डिग्री तक ज्वर से पीड़ित रहे हैं। राजर्षि टण्डन जी भी कभी-कभी ज्वर जूड़ी आदि से पीड़ित थे। महात्मा गांधी भी यत्रतत्र अस्वस्थ हो जाते थे। यह दूसरी बात है कि हालत चिन्ताजनक होने पर भी अपने सिद्धान्त के अनुसार वे दवा खाने पीने से इन्कार कर देते थे। अत्यधिक बाध्य किये जाने पर ही आचार्य विनोबा भावे ने २१ दिसवर को दवा ली थी। राजर्षि टण्डन जी को भी इसी वर्ष (सन् १९५२) प्रयाग के अस्पताल में भी भरती होना पड़ा। एक सुप्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक के एक निकट रिश्तेदार को 'अपेंडिसाइटिस' (आँतों में सूजन या फोड़ा) हुआ, उन्होंने उसे मेडिकल कॉलेज में चीरफाड़ के लिए भरती कराया। "स्वयं प्राकृतिक चिकित्सक होकर अस्पताल की शरण क्यों ?' पूछने पर बोले, "प्राकृतिक चिकित्सा में बहुत लंबा समय लगेगा, और यह निजी बात है, मैं खतरा (Risk) नहीं ले सकता। लेख लिखने, लेक्चर देने और व्यवसाय के लिए इलाज करने की दूसरी बात है। किन्तु यह वास्तविक सत्य है कि जो मुझे इतने दिनों के गहरे अनुभव के बाद मालूम हुआ है, कि प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा समस्त रोगों

का उपचार संभव नहीं है। और जिन रोगों का उपचार संभव भी हैं उनमें भी कोई प्राकृतिक चिकित्सक यह दावा तो कभी कर ही नहीं सकता कि मैं इस रोग को अच्छा कर ही लूँगा।" यह है नग्न सत्य। संभव है कि कुछ प्राकृतिक चिकित्सक मेरे इस सत्य कथन से बिगड़ें या सहमत न हों। पर वास्तविकता को जबरदस्ती छिपाने से कोई लाभ नहीं। हम रोग कह कर जिससे डरते हैं वह प्रकृति द्वारा हमारे अन्दर संचित मल तथा विकारों को निकालने का प्रयत्न है, उसी क्रिया का नाम रोग है। जब शरीर के अन्दर विजातीय विकार सीमा से अधिक संचित हो जाता है, हमारे अन्दर की पराकाष्ठा हो जाती है तो स्फोट के रूप में दारुण रोग से हम धराशायी हो जाते हैं, जब शरीर सहन करने मे असमर्थ हो जाता है, जब प्राकृतिक तत्वों का पूर्ण रूप से विघटन हो जाता है, तब प्रकृति जीर्ण-शीर्ण—जिसकी मरम्मत और सुधार संभव नहीं है, ऐसे शरीर से हमें मुक्ति दिला देती है। इसी का नाम मृत्यु है।

"चकबस्त" लखनवी ने कितना सत्य कहा है :—

"जिन्दगी क्या है ? अनासिर में जहूरे तरतीब,
मौत क्या है ? इन्हीं अजजा का परेशां होना।'

एक नियमित प्रथा व्यवस्थित क्रम से पञ्चतत्वों का एकत्रीकरण है जीवन, और इनका अस्तव्यस्त होना तथा पूर्ण विघटन ही मृत्यु है। ये समस्त बातें प्रमाणित करती हैं कि समस्त रोगों का उपचार तथा जिन रोगों में प्राकृतिक चिकित्सा कारगर भी है, उनमें भी एक सीमा के बाद, यह चिकित्सा संभव नहीं है, पूर्ण सफल नहीं है।

हमारे शरीर के अन्दर कुछ ऐसी क्रियाएँ होती रहती हैं, जिनसे कुछ ऐसे विष उत्पन्न होते रहते हैं कि उनकी क्रिया प्रतिक्रिया से मनुष्य को रोगी होना और मरना ही पड़ेगा। प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा अपनी आयु बढ़ा ले, स्वास्थ्य को चिरस्थायी बना लें, यह एक सीमा तक संभव है, पर रोग होवे ही नहीं, मृत्यु होवे ही नहीं, यह संभव नहीं है। कुछ रोगों मे प्राकृतिक चिकित्सा संभव ही नहीं है, पर प्राकृतिक चिकित्सा से उत्तम कोई चिकित्सा नहीं। इन दोनों का सम्बन्ध हमारे शरीर की बनावट Metabolism से है।

मान लीजिए आप भोजन सुधार द्वारा प्राकृतिक चिकित्सा के पक्षपाती हैं। फल यह होगा कि धीरे धीरे आपका रक्त अधिक शुद्ध होगा, सञ्चित मल शरीर से निकलेगा, शरीर अधिक पुष्ट होगा, उसकी सहनशक्ति Vitality and Resistance Power बढ़ेगी, शरीर के अन्दर मल निष्कासन और निर्माण कार्य कहीं अधिक तेजी और सफलता से होगा। इस प्रकार जिन रोगों में प्राकृतिक चिकित्सा सफल नहीं है, रोग को दूर करने में और शरीर की मरम्मत मे यह चिकित्सा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में सहायक होगी। अतः प्राकृतिक चिकित्सा का साथ अन्य उपचारों में भी कराना पड़े तो नहीं छोड़ना चाहिए।

प्राप्ति स्वीकार

"कल्पवृक्ष" अगस्त अङ्क मे घाटे का विवरण पढ़कर कतिपय लोगों ने हमें वार्षिक मूल्य ५) से १५) तक कर देने की सलाह दी है। अहमदाबाद से कल्पवृक्ष के एक प्रेमी ग्राहक ने अपने मित्रों के सहयोग से इस पत्र के सहायतार्थ १००) भेजे हैं, वह हम धन्यवादपूर्वक स्वीकार करते हैं।

—व्यवस्थापक

रोगमुक्ति की आत्मकथा

सूखी लकड़ी हरी हो गई

करीब ६-७ वर्ष से मेरे पेट में दर्द रहा करता था। उस समय लड़कपन में मैंने कुछ चिन्ता नहीं की। गरीबी असहाय दशा में भोजन में अनियमितता, असंयम और दुर्व्यसनों की संगति से मेरी तकलीफ बढ़ी, मुझे दस्त लगने लगे। पिछले आठ महीनों में दस्त के कारण मेरे शरीर का सब सत्व प्रायः निचुड़ सा गया और इस १८ वर्ष की उम्र में ही शरीर जर्जर होने से मैं बूढ़ा हो गया। आठ महीने वैद्यजी की पुड़ियों के साथ सौंफ का अर्क एक दर्जन बोतल, लोहासव चार बोतल, और दर्जनों मोसम्मी का रस तथा साबूदाने की खीर, पिया खाया और साथ साथ शरीर सूखकर एक कंकाल मात्र रह गया जिसे आप तस्वीर में देख रहे हैं। अन्न छोड़े ६ महीने हो गये, मुझे सफेद और पतले दस्त होते। दस्त के समय पेट बड़ी जोर से दुखता और मैं जोर से चिल्लाकर पेट पकड़कर बैठ जाता। दवाओं का कुछ असर न देख मैं और माताएँ मेरी ओर से निराश सी हो बहुत चिंतित थीं। वैद्यजी ने किसी से मेरे विषय में तो कह दिया था कि "यह मर जायगा।" आठ महीने उनकी दवा के साथ, दिन रात में लोहासव और सौंफ के अर्क के सिवा, लगभग पाव भर दूध के साथ जायफल घिसकर तथा पाव भर मोसम्मी का रस मेरे पेट में जाता, और दिन रात में बड़ी मुश्किल से पाव भर पानी मेरे गले उतरता। गले में काँटे से चुभते थे, और जीभ भी लाल हो गई थी। मुझे न कुछ खाने की रुचि रह गई, न पीने की। मेरा शरीर एक खोखली सन्दूक की तरह हो गया।

मेरा एक समवयस्क साथी मदनलाल भी कई वर्षों से ऐसी ही बीमारी से बहुत इलाज कराकर जीवन से निराश हो चुका था परन्तु गंगाघाट साधनालय में कुछ दिन रहकर जब दवा के बिना, प्राकृतिक उपचार
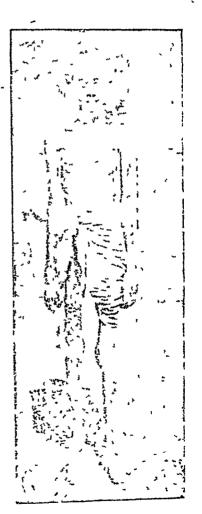
से वह पाँच दिन में रोगमुक्त होकर अल्पकाल में स्वस्थ होकर खाने पीने चलने फिरने लगा तब उसके चमत्कार को देख मेरा भाग्य भी अचानक एक रोज जाग उठा। मेरे कंकाल को देखकर किसी को आशा न

थी कि मैं अब आगे जिन्दा रहने के लिए खड़ा हो सकूँगा और कुछ संसार देखूँगा। परन्तु उस दिन प्रातःकाल निश्चय कर लिया कि अब जीऊँगा या मरूँगा, अब साधनालय ही जाऊँगा।

मगलवार १८ नवम्बर को मेरी माँ मुझे मदनलाल की बूआ के साथ ताँगे में लेकर चिकित्सक वर्माजी को दिखलाने, शहर से दो मील बाहर, साधनालय में ले आईं। घर से चलने के पूर्व ही अनुमान हो चुका था कि डॉक्टर वैद्य भी मेरे कंकाल का इलाज करने को हाथ लगाने से हिचकिचायेंगे, अतएव साधनालय में क्या आशा की जाय? अस्तु वर्माजी ने मेरा पेट टटोलकर, मुझसे कुछ इतिहास पूछने के बाद कह दिया, "तुम अच्छे हो जाओगे। जब सुभीता हो, यहाँ आकर कुछ दिन रहो।"

बस, मुझे तो वरदान मिल गया। ऐसी निश्चयात्मक बात किसी डॉक्टर वैद्य को किसी मरीज से कहते नहीं सुना। वे तो दवा देते हैं, अच्छे हो जाओ तो अपना भाग्य है या दवा की कृपा। अस्तु, तुरन्त माँ और बूआ, मुझे साधनालय में छोड़कर सामान लेने वापस शहर चली गईं। उसी दिन एक बार मेरे पेडू पर मिट्टी की पट्टी रखी गई। दवा सब बन्द कर दी गईं, केवल नीबू शहद मिश्रित कुनकुना पानी मैं दिन रात जब तब पीने लगा। जहाँ कि पहले सिर्फ पाव भर पानी जाता था, अब मैं सेरों पानी पीने लगा। दूसरे दिन सुबह और शाम, दो बार पट्टी रखी गई। इस प्रकार दो दिन में तीन बार पट्टी रखने के बाद मुझे जो दस्त लगे उनमें काला काला मल और कुछ काली गाँठें निकलीं, जो दवा देने पर भी पिछले आठ महीनो तक कभी न निकली थीं। तीसरे दिन एनिमा द्वारा मेरी आँतों की पूरी सफाई की गई। वैसे तो पट्टी रखने से दो दिनों में ही मेरे पेट का विकार निकल जाने से आँतो का कई जगह का दर्द जाता रहा था, और एनिमा के बाद, नाभि के पास दाहिनी तरफ आँत का दर्द भी जाता रहा। बस, वर्माजी ने कहा, अब तुम अच्छे हो गये।

अब मुझे पालक का पानी और साग मिला। फिर मुझे १-१ केला और एक पाव दूध आधा पानी मिलाकर मिलने लगा। पपीता भी मिला, परन्तु मेरी जबान मूली के स्वाद को सहन न कर सकी। मुझे खूब भूख लगने लगी और क्रमशः दूध और केले का क्रम बढ़ने लगा। पहले जो सफेद और पतले दस्त होते थे, अब खाया हुआ पचकर पीला और बँधा हुआ कुछ ढीला दस्त आने लगा। तबियत में हल्कापन और शांति का अनुभव होता। मुझे खूब नींद आती, और मैं बिना सहारे स्वयं दस्त के लिए दूर जाने लगा। मेरा यह चित्र साधनालय में आने के आठ दिन बाद लिया गया है जब कि मैं केला दूध लेता और चल फिर लेता था। यहाँ आने पर उस दिन मेरा वजन ५० पौण्ड था, इसे मेरी हड्डियों का वजन समझिए। परन्तु अब वजन कुछ बढ़ा हुआ मालूम होता, मेरी नसों में खून दौड़ता मालूम होता। मैं दिन को अधिकतर धूप में रहता, और नित्य सुबह सरसों के तेल से धूप में मेरी मालिश हुआ करती। मेरी नाड़ी तेज चलने लगी, दिल धड़कने लगा, और मुझे पुनर्जीवन मालूम होने लगा। मैं सफेद आया था और अब चमड़ी लाल दिखने लगी। मेरी खूराक भी बढ़ी, और दस दिन में एक सेर दूध और ६ केले पर आ गया, तीन दिन तो मैंने यह खूराक अच्छी तरह हजम की और दस्त भी अच्छे आये, परन्तु फिर पेट भारी मालूम होने लगा और मेरी सुस्ती को देख वर्माजी ने पेट टटोला

और अजीर्ण देखकर पुनः उपवास का हुक्म दे दिया। तीन दिन उपवास के बाद मैं फिर क्रमशः केले दूध पर आ गया।

महीनों अन्न छोड़े होने के कारण सुस्वादु भोजन की ओर मेरी तृष्णा जागी और मैं बातें करते रोज अन्न की राह देखने लगा। मेरी रुचि और उत्कण्ठा देखकर, मुझे एक रोज एक तोला दलिया मिला, वह मैंने कठिनाई से गले उतारा, नित्य के दूध केले के सामने एक तोला दलिया की मात्रा कुछ भी न थी, फिर भी मैं न खा सका। सुस्ती आ गई, और दूसरे दिन से मुझे पानी के समान पतले दस्त दिन रात बार बार होने लगे। इस प्रकार लगातार आठ दिन तक पानी पानी गन्दा दस्त होता रहा। एक तोले अन्न का इन दिनों इतना भयङ्कर प्रभाव हुआ कि मैं बहुत कमजोर और लाचार हो गया, आवाज मंद हो गई, मैं मुर्दार हो गया। दस्त रोकने के लिए कोई दवा नहीं दी गई, केवल पट्टी रखी जाती, और नीबू शहद का पानी दिया जाता। इस बीच में मेरे पेट में नाभि के पास दाहिनी ओर दर्द होता रहा। एनिमा से मेरी आँतें भी रोज साफ की जातीं परन्तु लगातार दस्त लगने से गुदा मे दर्द होता, आम्र (काँच) सी निकलने लगती, और एनिमा देते समय रबर की पतली नली भी चुभती, मैं चिल्लाता।

मैं जानता हूँ कि शहर में यदि किसी को इस प्रकार पानी के समान दस्त होने लगें तो उसे रोकने के लिए डॉक्टर वैद्यों के पास दौड़धूप और दवा में किसी रईस का धन भी पानी की तरह बहने लगे, परन्तु यहाँ मेरा दस्त रोकने की कोई कोशिश नहीं की गई, उल्टे तीन दिन तक मुझे गाजर का रस पिलाया गया जिससे सब मल निकल जाय। आँतों से मल निकालने का रोज प्रयत्न किया गया, और जितना अधिक दस्त होता, चिकित्सक निश्चिन्त और प्रसन्न दीखते, कहते, "अच्छा हुआ, ठीक है।" इन आठ दिनों तक मुझे भूख का पता न लगा। मेरी माँ मुझे कुछ खाने को देने के लिए चिकित्सक से पूछती तो कहा जाता, भूख लगने पर विचार किया जायगा। अस्तु नवें दिन मुझे भूख मालूम हुई। मुझे मूली के पत्तों का रस, टमाटर का रस, दिया गया और एक महीने में अब मैं क्रमशः पुनः ४ केले और आधा सेर दूध पर आ गया हूँ, और गन्ने चूसता हूँ। मुझसे एक तोला अन्न, दलिया हजम नहीं हुआ, इसका कारण मेरे पेट मे नाभि के पास दर्द से मालूम हुआ कि आँतों में कहीं भीतर फोड़ा है, इस कारण नरम फल और रसाहार पर हूँ और इससे मेरी आँतों में अब कोई दर्द नहीं मालूम होता। धीरे धीरे खून बढ़ रहा है। मुझे अच्छी भूख लगती है। भूख और समय के अनुसार मैं मूली के पत्तों का रस, टमाटर का रस, केला, दूध और गन्ना चूसता हूँ।

पहले तो मैं तीन दिन में ही अच्छा हो गया था परन्तु दो बार भूल का परिणाम भोगकर अब मैंने अन्न की बात करना छोड़ दिया है। मैंने समझ और अनुभव ले लिया है कि सुस्वादु भोजन की जरूरत नहीं है, और अनेक प्राणियों की तरह, साग फल पर रहकर मैं पुनर्जीवन लाभ कर सकता हूँ।

मैं मानता हूँ कि मैं मौत के मुँह से वापस आया हूँ। अथवा मानिये कि मैं सूखी लकड़ी की दशा में था, अब प्राकृतिक चिकित्सा की कृपा से हरा हो गया हूँ। मुझे जीवन दान मिला। मैंने पुनर्जन्म पाया है। मैं इसका जीवित प्रमाण हूँ। मेरी माँ कहती है कि मेरा नया जन्म हुआ है। इस समय मेरी उम्र डेढ़ महीने की है। मैं प्रसन्न हूँ,

मेरी माँ प्रसन्न है। मुझे देखनेवाले चमत्कार मानते हैं।

साधनालय में रहने का न तो मुझसे कुछ किराया लिया गया, और न उपचार की कोई फीस ली गई।

—अनन्त नारायण
मगरमुँहा, उज्जैन

बस, हँसो !

श्री 'हास्यावतार'

आप नर हो या नारी, शिशु हो या वृद्ध, ब्रह्मचारी हो या गृहस्थ, राजा हो या रंक, अमीर हो या फकीर, योगी हो या यती, अथवा संसार के अन्तिम किनारे पर बैठे हुए संन्यासी हो, चाहे जो हो, चाहे जिस दशा या परिस्थिति में हो, यदि मेरी एक सलाह मानो तो बस, हँसो।

परिभाषा : और वह हास्य कैसा हो ? मर्यादाशील, लज्जायुक्त, स्त्रियों के समान सहज स्मित नहीं, जिसमें मुँह का केवल थोड़ा सा ही विकास हो ऐसा भी नहीं, किन्तु जोर से हा हा..हा..हा, ऐसा पूरा मुँह फाड़कर जिसमें एक अमरूद प्रवेश कर जाय, अथवा गुलाबजामुन या नागरशाही लड्डू आ जाय, इतना मुँह तो फटना ही चाहिए, जिससे कि हृदयस्तर के सब पर्दे एक साथ खुल जायँ और आँख में से हास्य का झरना झरने लगे, तब तक मुक्त कण्ठ से, बस, हँसते ही रहो।

प्रतिदिन एक बार भी इस प्रकार हँसोगे तो इस हास्य में क्या दैवी शक्ति या चमत्कार है वह स्वयं ही विदित हो जायगा। मेरी तो यहाँ तक मान्यता है कि हास्य ही विश्व का आनन्द है, अर्थात् आनन्द नाम की कोई सुलभ इष्ट वस्तु है तो वह है हास्य। यही हास्य सुख का शिरोबिन्दु है। वास्तव में हास्य ही संसार का सार है, शेष कुछ भी निःसार कहा जावे, इसीलिए मैं बार बार कहता हूँ कि बस—हँसो।

औषधि : हास्य के सिवा, संसार के श्रम को दूर करने वाली जगत् में दूसरी औषधि नहीं है। दुनिया की विपत्तियों को भुलाकर जीवन का सच्चा सुख देने वाला एकमात्र हास्य ही है। इसीलिए यदि जीवन के वास्तविक आनन्द का अनुभव करना चाहते हो, कुटुम्ब क्लेश के नित्य श्रम से दुःखित हो, आपत्ति और विडम्बनाओं को सहज ही दूर करना चाहते हो, मस्तिष्क से शोक संताप का आवेश दूर करना चाहते हो, ससार के दुःख से घबरा कर संन्यास लेने, या वैरागी बनने या आत्मघात करने का भी विचार करते हो, तो भी एक बार तो हास्य का अनुभव करो। बस हँसो।

जिस प्रकार पृथ्वी के भीतर से झरना बाहर निकलता है, हास्य भी वैसा ही मन को स्वच्छ करने वाला एक प्राकृतिक झरना है जिसमें आनंद का स्रोत खुलता है, और सब को सजीव सा कर देता है। हँसो, और देखो कि आपका मन उसी क्षण शांत होता है या नहीं। हँसो और देखो कि उसी क्षण आपका श्रम दूर होता है या नहीं। हँसो और देखो कि उसी क्षण तुम्हारा मन प्रफुल्लित होता है या नहीं। हँसकर देखो कि चिंताओं का विष एक क्षण में नाश होता है या नहीं। हँस कर देखो कि संसार दुःख रूप है या सुख रूप ? हँस कर देखो कि तुम्हारी शोक सागर मे डूबी हुई नौका तरती है या नहीं ?

बस यह हास्य संसार के सब विक्षेप, विडम्बना और प्रतिकूल संयोगों का पराजय करके आनंद दिखाने वाली एकमात्र अमर औषधि है। बस, हँसो।

निरोगी जीवन : आनन्दी, खुश-मिजाजी, और हँसमुख मनुष्यों का जीवन, मुफलिस, दीन दुःखी अथवा बिगड़ा हुआ नहीं रहता जिससे उसका जीवन शीघ्र शोक संतप्त होकर चकनाचूर हो जाय। हास्य की मूर्त्तियाँ हमेशा स्वस्थ और निरोगी रहते हैं। कहा है :—

चिन्ता चिता समाख्याता, बिन्दुमात्र विशेषत:।
चिता दहति निर्जीवं, चिन्ता दहति सजीवकम्॥

इससे, जो तुम अपने जीवन को इस प्रकार चिन्ता की भट्टी मे नहीं झोंकना चाहते तो, वस, हसो।

महौषधि : मेरा तो विचार है कि हास्य एक खरा डॉक्टर है, खरा वैद्य है, खरा हकीम है। यती के यंत्र, और ओझा के मंत्र, हास्य है। हास्य में सब रोग नाश करने की अजब शक्ति है। असाध्य और अगम्य रोगों को कान पकड़ कर भगाना हो, तो हास्य के समान कोई दूसरी महौषधि नहीं है। इसीलिए, बस हँसो।

एक औषधि पीने या लगाने से एक ही रोग भागता है, किन्तु हास्य तो शरीर के सब स्नायुओं, ग्रंथियों, और अंग उपांगों पर असर करता है इससे सब आंतरिक और बाह्य रोगों का नाश होता है। इसलिए, दिल खोल कर, वस, हँसो।

हास्य और सूर्य : हास्य मे सूर्य के समान, शुद्ध करने का, तथा नवीन शक्ति प्रदान करने का एक अजीव गुण है। हृदय में समाये हुए शोक व चिंता रूपी कीचड़ का शीघ्र विनाश करता है! हास्य में सूर्य के सब रंग हैं अर्थात् हास्य शुद्ध, स्वच्छ और शुभ्र है, सूर्य किरणों के समान सदा निर्मल प्रकाशरूप है।

इस प्रकाश में दुःख शोक आदि की काली छाया, दाग वा अंधकार टिक नहीं सकता। इसी लिए, आनन्दी, सुखी, निरोगी बनना हो तो, बस, रोज हँसो।

हास्य की लोकप्रियता : हँसमुख मनुष्य को सब लोग चाहते हैं। सबलोग उससे मित्रता करना चाहते हैं; वह विश्वप्रिय होता है। हँसनेवाला जहाँ जायगा वहाँ अपने हास्य से धूमधाम कर नया जीवन का संचार सब के दिल में कर देता है। हँसनेवाला मनुष्य संसार मे सुख और आनन्द को बिखेरता है। वह सर्वत्र आनन्द देखता है, आनन्दमय बनाता है।

नियम : क्रिया और प्रतिक्रिया, घोष और प्रतिघोष, आघात और प्रत्याघात, यह प्रकृति का अनिवार्य नियम है। इसके अनुसार जब तुम आनन्द मे होगे, हँसोगे, तब आसपास का वातावरण भी हास्य से आनन्दमय बन जायगा, और जितने लोग उस क्षेत्र मे होंगे सब प्रकार उस हास्य का बिजली के समान अचूक प्रभाव होगा। तुम्हारे हास्य से वायु भी तरंगित हो जायगा और तुम स्वत: प्रतिध्वनित दिव्यगान सुनोगे। तुम हँसोगे तो पक्षियों की वाणी में भी उल्लास पाओगे। वृक्षों और लताओं को भी आनन्द से लहराते हुए देखोगे। नदियाँ भी हँसते बहते नजर आयेंगी। इस प्रकार हास्य से तुम सर्वत्र आनन्द स्वरूप परमात्मा का साक्षात्कार करोगे। इसलिए, वस हँसो।

स्मृति ने आत्मा को आनन्द स्वरूप बताया है : प्रज्ञानं आनन्दं ब्रह्म। इसलिए तुम आत्मा हो तो, वस, हँसो। आत्म प्रकाश फैलाओ।

क्या आपने पढ़ा है ?

पानी पर चलनेवाले महात्मा

एक जहाज समुद्र में कहीं जाते हुए टापू के पास से गुजर रहा था। जहाज में एक ईसाई धर्माचार्य भी यात्री थे, उन्होंने उस छोटे टापू में तीन व्यक्ति देखे। उन तीनों से मिलने और धर्मोपदेश करने की प्रेरणा से कप्तान से कहकर जहाज रुकवाया और नाव द्वारा टापू में पहुँचे। उन तीनों से मिलकर पूछा, "आप ईश्वर की सेवा प्रार्थना कैसे करते हैं?" एक बुड्ढा बोला, हम ईश्वर की सेवा तो जानते नहीं, किसी तरह अपने को पाल लेते हैं और कहा करते हैं, "तीन तुम, तीन हम, हम पर दया रखना मालिक।" तब धर्माचार्य ने कहा, तुम्हारी प्रार्थना ठीक नहीं है, हम तुमको शास्त्रानुकूल प्रार्थना सिखाते हैं।

धर्माचार्य ने उन तीनों को प्रार्थना सिखाने में दिन भर माथा पचाया और शाम होते जहाज पर आकर आगे चल दिये। जहाज रवाना हुआ ही था, देखते हैं कि वे तीनों महात्मा समुद्र पर तीव्र गति से, पाँव उठाये चलाये बिना, जहाज के पीछे चले आ रहे हैं। जहाज रुकवाया, परन्तु जहाज रुकने न पाया और तीनों महात्मा आकर धर्माचार्य से कहने लगे, "हे ईश्वर के दूत, तुम्हारी सिखायी प्रार्थना हम भूल गये, फिर से सिखाओ।" तब धर्माचार्य ने पृथ्वी तक झुककर उन तीनों का प्रणाम किया, बोले, "हम आपको सिखाने योग्य नहीं हैं।" यह कथा "आध्यात्मिक जीवन के रहस्य" में छपी है। इसके अतिरिक्त बहुत से उपयोगी लेख और अनुभूत साधन हैं जिससे जीवन में स्वास्थ्य, उन्नति, सुख शान्ति प्राप्त हो सकती है। ग्यारह रुपये मनीआर्डर भेजने पर यह पुस्तक कल्पवृक्ष कार्यालय से घर बैठे प्राप्त हो सकती है।

मौत का वारण्ट

हम मजदूर को पैसा देकर उससे कसकर दुगुना काम लेना जानते हैं परन्तु अपने शरीर को भोजन देकर इससे काम न लें तो मुफ्तखोरी है। मुफ्त का भोजन कैसे पचे? ऐसे मुफ्तखोरों को भोजन करने का हक नहीं जो भोजन पचाने के लिए कसरत या परिश्रम नहीं करना चाहते। तन्दुरुस्ती के आगे मौत का कोई वश नहीं चलता। परमात्मा ने हमें इतने वर्ष की आयु दी है और किसी बहाने से हमें, उतना समय पूरा होने पर मार डालता है; यह धारणा बिल्कुल गलत है।

एक अमेरिकन दादी भारत भ्रमण करने आई थीं। ५२ वर्ष की उम्र में उनका लिवर कठोर हो गया, जलोदर हो गया। बहुत से डाक्टरों से इलाज कराया, परन्तु सब से निराश होना पड़ा। वे लोग पेट में छेद कर के पानी निकाला करते थे। पाँच सप्ताह प्राकृतिक चिकित्सा कराई। पेट का सब पानी पेशाब बनकर निकल गया। वह देवी हल्की और नई हो गई। सब को ताज्जुब हुआ। उसने कहा, डाक्टरों ने मुझे मौत का वारण्ट दे दिया था परन्तु मैं फाँसी के तख्ते पर से वापस आ गई। मुफ्तखोरी से बचने और कायाकल्प चिकित्सा से नया खून बनाने का यह वृत्तान्त "पौरुष और कायाकल्प" में है। कल्पवृक्ष कार्यालय से यह पुस्तक २) में मिलती है। "आध्यात्मिक जीवन के रहस्य" के साथ इसे १३) भेज कर आप मँगा सकते हैं।

आध्यात्मिक मण्डल, खरगोन में

सन्त नागर स्मृति दिवस

दिनांक २७-१०-५२, तदनुसार कार्त्तिक शुक्ल ९, को स्व० नागर जी की पुण्यतिथि गणपति जी की धर्मशाला में, मनाई गई और इसे एक विशेष पर्व के समान महत्त्व देकर प्रार्थना, यज्ञ, प्रवचन, योगासन आदि सहित दिन भर का कार्यक्रम सम्पन्न किया जिस प्रकार आध्यात्मिक साधन समारंभ होता है। प्रातःकाल ६ वजे सामूहिक प्रार्थना हुई, पश्चात् मन्त्री जी ने नागर जी का आध्यात्मिक मण्डल, खरगोन पर प्रेम बताते हुए, परिचयपूर्वक कहा, "नागर जी के इस निर्वाण को मैं जन्म कहूँ या मृत्यु, क्योंकि सन्त तो जन्म मृत्यु से परे रहते हैं, उनका तो प्रादुर्भाव जिज्ञासुओं के लिए होता है। सन्त नागर जी ने हमें जीवन भर हँसते रहने का पाठ सिखाया है। स्थूल स्तर में वे हमसे दूर थे, किन्तु निर्वाण होने पर सूक्ष्म होकर वे व्यापक हो गये और हमारे निकट आ गये हैं। इस मण्डल पर उनका इतना प्रेम था कि सं० २००७ के "गीता जयन्ति महोत्सव" पर वे अस्वस्थ होते हुए भी यहाँ पधारे थे।" भाषण के बाद गीता अध्याय १५ का सामूहिक पारायण हुआ। गीता मन्दिर के मन्त्री जी ने अपने सहयोगियों सहित गीता स्तोत्र कहे, और एक पद बड़े मधुर व गदगद कण्ठ से गाया। काशीनाथ जी दिंडोरकर ने योगासन, क्रियाएँ व सूर्य नमस्कार का प्रदर्शन किया। मध्याह्न समय यज्ञ होने के बाद गीता अध्याय १५ (पुरुषार्थ बोधिनी) के मन्त्रों से भी आहुति दी गई। मध्याह्न उपासना के पूर्व "मौन" रह कर सन्त जी को श्रद्धांजलि दी गई, तथा सेठ बालकृष्ण जी, भूतपूर्व अध्यक्ष ने सन्त नागर जी में दैवी सम्पदा के लक्षणों का वर्णन किया। कुन्दा नदी के घाट की सफाई के विषय में भाई रामचन्द्र जी मुंशी को सन्त प्रेरणा हुई थी जिसके फलस्वरूप कार्त्तिक में एक मास तक गीता मन्दिर के सदस्यों और राष्ट्रीय स्वयं सेवक सङ्घ के सदस्यों ने सारा घाट दो घण्टे रोज के परिश्रम से साफ कर डाला।

सायं प्रार्थना के बाद श्री वल्लभदास जी घाटी ने दो पद गाये। श्री पढरीनाथ जी वकील ने नागर जी के जीवन चरित्र पर प्रकाश डाला। उपस्थित जनता ने सन्त जी के जयघोष के साथ कार्यक्रम समाप्त किया।

—शोभाराम मन्त्री, आध्यात्मिक मण्डल, खरगोन।

उदयपुर में सन्त नागर जयन्ति

दिनांक १४-९-५२ को श्री गीता आश्रम मे प्रातः ५॥ वजे सामूहिक प्रार्थना हुई, पश्चात् "प्रार्थना के महत्व" पर श्री आनन्दी लाल जी शर्मा, बी०ए० का सारगर्भित भाषण हुआ। फिर बड़े उत्सव से यज्ञ हुआ। बाद में श्री मणिराम जी पोस्ट मास्टर एवं लाला जेसाराम जी ने गुरुदेव नागर जी के जीवन का महत्व प्रभावशाली भाषा में बताया। उपस्थित सज्जनों में प्रमुख श्रीमान् दशोरा साहब, निर्वाचन व जन-गणना-विभाग के सुपरिण्टेण्डेण्ट, राजस्थान व अजमेर; प्रोफेसर श्री भटनागर, भूपाल कालिज; श्री प्रिंसिपल साहब आयुर्वेदिक कालिज, वैद्य प्रेमशंकर जी, डॉ० भटनागर, गवर्नमेण्ट प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्र; प्रेमिव सोसायटी के सदस्य; गौतम सघ के तथा श्री एकलिंग प्रार्थना मण्डल के सदस्य, उपस्थित थे। तथा सूचना न पाकर भी अनेक प्रमुख व्यक्तियों ने आकर इस आयोजन में भाग लिया। परस्पर

परिचय के बाद आरती हुई, प्रसाद वितरण के बाद कार्यक्रम समाप्त हुआ।

—जानकीलाल त्रिपाठी, आयुर्वेदाचार्य।

इस प्रकार भारत में यत्रतत्र अनेक स्थानों में स्व० सन्त नागर जी के उपकृत भक्तों व प्रेमियों ने छोटे मोटे आयोजन कर मौन तथा ध्यान द्वारा स्व० सन्त को अपनी श्रद्धांजलियाँ अर्पित कीं, प्रार्थना, यज्ञ, प्रवचन के कार्यक्रम सम्पन्न किये। इस आशय के समाचार सूचक पत्र हमें उनसे प्राप्त हुए हैं।

—विश्वामित्र वर्मा

सेवामूर्ति संत नागर जी से मैंने क्या लिया ?

श्री कृष्णदेव जी शर्मा, एम० ए०, सिद्धान्त शास्त्री

कई वर्ष पूर्व श्री विश्वामित्र वर्मा के संपर्क से 'कल्पवृक्ष' पढ़ने का सुअवसर प्राप्त हुआ और मैं 'आध्यात्मिक मंडल' की ओर आकृष्ट हुआ। प्रेमनगर के श्री महावीर प्रसाद जी त्यागी की कृपा व प्रभाव से यह आकर्षण बढ़ने लगा। त्यागी जी की सादगी, मिलनसारी, स्वास्थ्य एवं सेवा-भाव प्रशंसनीय हैं। तदनन्तर मण्डल व डा० नागर जी के कार्यों की चर्चा स्वर्गीय मित्रवर श्री योगेश्वर जी गुलेरी से हुई। उन्होंने छूटते ही कहा, "I owe my very life to Dr. Nagar. He is a great man;" अर्थात् "मेरा तो जीवन ही डा० नागर की बदौलत है। वे एक महापुरुष हैं।" और उन्होंने अपने पक्षाघात से आक्रान्त होने और सब डाक्टरों के जवाब देने पर उज्जैन जाकर डा० नागर जी की कृपा से चमत्कारपूर्ण रीति से स्वास्थ्य-लाभ की कथा कह सुनाई कि किस प्रकार एक रात्रि को लगभग १२॥ बजे अचानक उन्होंने अपने को पूर्ण स्वस्थ पाया और किस प्रकार वे उसी समय अपने मित्र के साथ हर्षातिरेक से दौड़े हुए श्री नागर जी को धन्यवाद देने पहुँचे तो श्री नागर जी को अपने प्रयोग में संलग्न पाया। इसी प्रकार की अन्य भी कई घटनाएँ उन्होंने सुना डालीं। धीर वीर नागर जी के ऊपर यज्ञ समय कुछ रोगिणी स्त्रियाँ गाली देतीं या थूक भी देतीं तो वे निर्विकार ही रहते थे।

इन सब बातों से नागर जी के प्रति मेरी श्रद्धा नित्यप्रति बढ़ने लगी। ओ३म् प्रकाश जी कपूर (देहरादून) के सत्संग में विनय और प्रेम का जो भावसागर उमड़ते देखा तो नागर जी के दर्शन तथा उनके सत्संग में सम्मिलित होने की उत्कंठा अत्यंत तीव्र हो गई। अंत में मैंने स्वयं 'आध्यात्मिक मंडल' का सदस्य होने का निश्चय किया और अपनी एक शिष्या को भी सदस्या बनवा दिया। साधन भी आरंभ किया। इस बीच नागर जी से जो पत्र व्यवहार हुआ उससे बड़ा उत्साह व शांति प्राप्त हुई और कई गुत्थियाँ सुलझ गईं। उनकी रची 'प्रार्थना' पुस्तक तथा 'आत्मप्रेरणा' के साधन के विलक्षण चमत्कार देखे। कुछ संस्थाओं में मनोमालिन्य आदि दूर करने में सफलता तथा आकस्मिक अर्थलाभ आदि कुछ घटनाओं का अनुभव इसी साधना के फलस्वरूप प्रतीत हुआ।

अंत में १९५१ के साधन समारंभ में सम्मिलित होने का स्वर्णावसर भी प्राप्त हुआ।

देहरादून से श्री कृष्णाकुमारी जी तथा मैं उज्जैन पहुँचे। कुछ ऐसा आकर्षण सा लगा कि मैं देहरादून में रुक न सका। साधन आश्रम में पहुँचते ही जो सुन्दर आध्यात्मिक वातावरण और प्रेममय दृश्य का अनुभव हुआ वह आजीवन भूला नहीं जा सकता। ताँगे से उतर कर जो आगे बढ़ा तो सन्त नागर जी की शान्त, सौम्य, तेजस्वी, प्रेम-मयीमूर्त्ति को मुस्कराते हुए, एक पुराने तख्त पर बिना किसी बिछौने के, विराजमान् देखा। मैंने अन्य संतों आदि के दर्शन भी किये हैं, किंतु जो सादगी इनमें देखी वह स्व० महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज तथा आचार्य विनोवा भावे को छोड़ और किसी में नहीं पाई। खादी का एक सादा कुरता और धोती पहिने यह महान् संत अतिथियों के आगत स्वागत तथा उत्सव की व्यवस्था का संचालन ऐसे सहज भाव से कर रहा था मानों सब कुछ स्वयमेव हो रहा है। उनके मुख पर बहुत ध्यान देने पर भी आतुरता या चिंता-भार के कोई भी चिह्न दृष्टि-गोचर न हुए। तथापि एक एक अतिथि को अनुभव होता था मानो वे उसकी खोज खबर निजी स्नेह के साथ ले रहे हैं। इसमें पूज्या माता जी के सहयोग का सुंदर योग तो था ही।

उन्होंने कृपा करके हम लोगों को विशेष रूप से बातचीत के लिए समय दिया। और बैठे कहाँ ? प्याऊ के पीछे पेड़ की छाया में एक फटे हुए टाट पर हम तीनों बैठ गये। रह रहकर मन ही मन मैं उस संत की महान् नम्रता व सादगी पर विमुग्ध हो रहा था। आज कहाँ इतने प्रभाव, शक्ति, व सम्मानपूर्ण पद के साथ ऐसी सादगी देखने को मिलेगी !

उनके उत्साहित करने पर श्री कृष्णा कुमारी जी ने व मैंने भाषण भी दिये और आज मैं उन क्षणों को स्मरण करके अपने को धन्य मानता हूँ जो उनके सम्पर्क में बीते। एक शिक्षा और मिली। बातचीत के जोश में मैं एक मित्र के अवगुणों की चर्चा की ओर प्रवृत्त होने लगा तो उनकी कुछ ऐसी विचित्र उपेक्षा पूर्ण मुद्रा हो गई कि मैं अपनी भूल समझ कर प्रसंग परिवर्त्तन के लिए बाध्य हो गया।

यश अथवा अर्थ-लिप्सा तो नागर जी में नाम मात्र को भी न थी। मंडल अथवा कल्पवृक्ष संबंधी जब कोई इस प्रकार की अर्थयोजना उनके सामने रक्खी जाती थी तो वे सदैव यही उत्तर देते थे कि हमारा उद्देश्य सेवा करना है न कि व्यापार से धन कमाना।

मैं ऐसे महासंत को शतशः प्रणाम करता हूँ। शब्दों में ठीक ठीक यह वर्णन करना कठिन है कि मैंने उनसे क्या लिया। परन्तु मेरा हृदय यह अनुभव करता है कि मैं स्व० नागर जी का अत्यंत ऋणी हूँ। भगवान् कृपा करें कि ऐसे संत हमारे देश में जन्म लेकर हमें उपकृत करते रहें।

———

अमूल्य उपदेश

विचारशक्ति को ईंट वा पत्थर की दीवालें नहीं रोक सकतीं। तुम जहाँ चाहो अपने विचारों की लहरें भेज सकते हो।

राजयोग ग्रंथमाला

अलौकिक चिकित्सा विज्ञान

अमेरिका में योग प्रकाशक बाबा रामचरक जी की अंग्रेजी पुस्तक का अनुवाद चित्रमय छपा है। इसमें मानसिक चिकित्सा द्वारा अपने तथा दूसरों के रोगों को मिटाने के अद्भुत साधन दिये हैं। मूल्य २) रुपया, डाक खर्च ॥)

सूर्य किरण चिकित्सा

सूर्य किरणों द्वारा भिन्न-भिन्न रंगों की बोतलों में जल, तैल तथा अन्य औषधि भर कर सूर्य की शक्ति संचित कर तथा रंगीन काँचों द्वारा सूर्य की किरणें व्याधिग्रस्त स्थान पर डाल कर अनेक रोग बिना एक पाई भी खर्च किये दूर करना तथा रोगों के लक्षण व उपचार के साथ पथ्यापथ्य भी लिखे गये हैं। नया संस्करण मूल्य ५) रुपया, डाक खर्च ॥=)

संकल्प सिद्धि

स्वामी ज्ञानाश्रमजी की लिखी हुई यथा नाम तथा गुण सिद्ध करने वाली, सुख, शांति, आनन्द उत्साह वर्द्धक यह पुस्तक दुबारा छपी है मूल्य २) रुपया, डाक खर्च ।=)

प्राण चिकित्सा

हिन्दी संसार में मेस्मेरिज्म, हिप्नाटिज्म, चिकित्सा आदि तत्वों को समझाने व साधन बतलाने वाली एक ही पुस्तक है। कल्पवृक्ष के संपादक नागरजी द्वारा लिखित गम्भीर अनुभव-पूर्ण तथा प्रामाणिक चिकित्सा के प्रयोग इसमें दिये गये हैं। जीवन में इस पुस्तक के सिद्धांतो से दीन-दुखी संसार का उपकार कर सकेंगे मूल्य २) रुपया, डाक खर्च ।=)

प्रार्थना कल्पद्रुम

प्रार्थना क्यों तथा किस प्रकार करना चाहिये। दैनिक सामूहिक प्रार्थना द्वारा अनिष्ट स्थिति से मुक्त होने व दूरस्थ मित्रों व मृत आत्माओं को शांति व अनोखा सदेश दिलाने वाली आज के संसार में अपूर्व पुस्तक है। मूल्य ॥) आना।

आध्यात्मिक मण्डल

घर बैठे आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त करने व साधन करने के लिए यह मण्डल स्थापित किया गया है, जिससे स्वयं शारीरिक व मानसिक उन्नति कर अपने क्लेशों से मुक्त होकर दूसरों का भी कल्याण कर सकें। सदस्य बनने वालों को शिक्षा व साधन के लिए प्रवेश शुल्क १०) रुपये हैं और निम्नलिखित पुस्तकें दी जाती हैं :—

१—प्राण चिकित्सा २—प्रार्थना कल्पद्रुम ३—ध्यान से प्राण चिकित्सा ४—प्राकृतिक आरोग्य विज्ञान ५—आरोग्य साधन पद्धति ६—आध्यात्म शिक्षा पद्धति ७—त्राटक चार्ट ८—ॐ दर्शन ९—आत्म प्रेरणा १०—कल्प वृक्ष एक वर्ष तक। ११—अमूल्य उपदेश।

कोई भी सदाचारी व्यक्ति प्रवेश फार्म मँगा कर सदस्य बन सकता है।

अमूल्य उपदेश

कल्पवृक्ष में पूर्व प्रकाशित अमूल्य उपदेशों का दूसरा संस्करण। मूल्य १)

स्व० पं० शिवदत्त शर्मा की पुस्तकें

गायत्री महिमा ॥) सोहम् चमत्कार ॥)
अग्निहोत्र विधि ॥) ध्यान की विधि ॥)
आरोग्य आनन्दमय जीवन ॥।) ॐ कार जप ॥)

विश्वामित्र वर्मा द्वारा लिखित नई पुस्तकें

प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान

रोग क्यों तथा कैसे होता है, तथा दवा दारु, चीर फाड़, और जड़ी बूटी के बिना, दाम कौड़ी खर्च के बिना कैसे जाता है, विख्यात डाक्टरों का अनुभव मूल्य १॥)

यौगिक स्वास्थ्य साधन १)

प्राकृतिक स्वास्थ्य साधन

स्वास्थ्य के नये साधन, पौरुषवर्धक नये व्यायामों के २६ चित्र, भोजन की काया कल्प कारक नवीन वैज्ञानिक व्याख्या तथा नुस्खे। मूल्य २)

आत्म सिद्धि

अथवा दिव्य व्यवहारिक अध्यात्म आत्म-विकास द्वारा उन्नति और सफलता प्राप्त करने के व्यावहारिक साधन १)

दिव्य स्मृति

दुःखी थके, उलझनों में फँसे, ऊबे और निराश लोगों के लिए दिव्य प्रेरणाएँ। मूल्य ॥)

जीवन का सदुपयोग (चार्ट) ।)
षड्ऋतु भोजन चर्या (चार्ट) ।)
दिव्य भावना-दिव्य वाणी (चार्ट) ।)

मिलने का पता—कल्पवृक्ष कार्यालय, उज्जैन, (मध्य भारत)।

वर्ष ३१ **KALPA-VRIKSHA** मार्च '५३
संख्या ७ A MAGAZINE OF DIVINE KNOWLEDGE सं० २०१०

१ प्रसन्नता महौषधि है—सपादक १
२ महत्वपूर्ण सूचना—तेईसवाँ आध्यात्मिक साधन समारभ ... ३
३ ससार के आश्चर्य—आचार्य श्री नरदेव जी शास्त्री, वेदतीर्थ .. ५
४ हिमालय के अचल से—स्वामी शिवानन्द जी ... ६
५ उच्च चेतना का प्रभाव—श्री हेनरी थॉमस हेमलिन ७
६ ध्यान रहस्य—श्री ज्वालाप्रसाद खरे ८
७ पाप क्या है ?—श्री लॉवेल फिलमोर १३
८ व्यभिचार और मानसिक रोग—प्रो० लालजी राम शुक्ल ... १५
९ क्या तुम जीवित हो ?—श्री विश्वामित्र वर्मा १९
१० मैं टी० बी० से मुक्त हुआ—श्री रघुवीरसिंह जी २१
११ सेंक से लाभ—डॉ० लक्ष्मीनारायण जी टण्डन, एम० ए० एन० डी० .. २३
१२ क्या आपने पढ़ा है ?—भस्मक रोग और भूत २५
१३ नवरात्र समारोह—श्री व्रजभूषण मिश्र, एम० ए०, बी० टी० ... २६
१४ मराठी सूत्र २८
१५ स्वर्ण-सूत्र—प्रसन्नता का अभ्यास कवर के दूसरे पृष्ठ पर

सम्पादक—बालकृष्ण नागर

स्वर्ण-सूत्र

प्रसन्नता का अभ्यास

मैंने देख लिया है और जान लिया है कि चिन्ताओं और निराशा के विचारों से मुझे सदा अंधेरा ही मालूम पड़ा है, न तो कोई रास्ता सूझा और न मेरी समस्याएँ सुलझीं। चिन्ताओं और निराशा ने बड़ा अनर्थ किया, मेरी सब प्रसन्नता और खुशी छीन ली।

अब मैं आज से चिन्ताओं और निराशा के विचारों को त्याग देता हूँ और परम पिता परमात्मा के शरणागत होकर उसकी कृपा और आशीर्वाद में ही, सांसारिक झंझटों से मुक्ति और स्वर्गीय सुख मानता हूँ। परमपिता की शरण में, उसकी इच्छा में उसकी कृपा और आशीर्वाद से मेरा सदा भला ही होगा, यही समझकर मैं अब प्रसन्नता धारण करता हूँ।

कल कोई भी समस्या रही हो, गत वर्ष कैसा भी दुःख रहा हो, अब इस वर्ष आज के दिन को नया जीवन मानकर मैं प्रसन्नतापूर्वक उसका स्वागत करता हूँ। कल की समस्याओं और गत वर्ष के दुःख से आज मैं मुक्त हूँ। मुझ पर अब भूतकाल की बातों और संसार की उलझनों का बन्धन नहीं है।

परमपिता का प्रेम और आशीर्वाद पाकर अब, नवीन विचार परिवर्तन द्वारा मैंने अब नया जन्म धारण कर लिया है। भूतकाल का दुःख, झंझटें और समस्याएँ चली गईं, संसार की बाहरी परिस्थितियों का प्रभाव मुझ पर अब नहीं रह गया क्योंकि अब मैं मन वचन कर्म से विश्व के संचालक पालक विधाता की शरण में समर्पित हो चुका हूँ। संसार में मेरा अपना अलग कुछ दुःख या झञ्झट नहीं है, सब परमात्मा का है, उसी की योजना से होता है अतएव इसमें मुझे चिन्ता या निराशा धारण करने का कोई कारण नहीं।

अब तो मैं हर एक विचार के साथ मुस्कराता हूँ, हर एक व्यक्ति से बात करते मुस्कराता हूँ, हर एक काम करते मुस्कराता हूँ। मेरी प्रसन्नता से दूसरे लोग भी प्रसन्न होते हैं। मुझे मुस्कराते देख वे भी मुस्कराने लगते हैं। प्रसन्नता और मुस्कराहट से मैत्री बढ़ती है, उनका सहयोग प्राप्त होता है, मेरे और सब के जीवन में आनन्द का संचार होता है। यही परमात्मा की कृपा और आशीर्वाद है। अब मेरे हृदय में निराशा का अंधकार या मन में चिन्ताओं के बादल नहीं छा सकते क्योंकि मैं मुस्कराता रहता हूँ। मेरा हृदय प्रफुल्लित हो गया है, मस्तिष्क के सब कोष आशा और उत्साह से विद्युत्मय हो गये हैं।

प्रसन्नता सबसे बड़ी चमत्कारिक महौषधि है, यह मैंने अनुभव कर लिया है अतएव मैं सर्वत्र सब परिस्थितियों में प्रसन्न रहता हूँ। प्रसन्नता में बड़ी आकर्षण शक्ति है। प्रसन्नता—मुस्कराहट, जीवन का जीता जागता जादू है। यह जादू जीवन की कड़वी बातों को मीठा बना देता है, चिन्ता और निराशा द्वारा मुर्दार बने व्यक्ति में नवजीवन का संचार करता है। अहा! मैं अब जीवित हो उठा हूँ, मैं प्रसन्नतापूर्वक सब परिस्थितियों का स्वागत करता हूँ।

नित्यप्रति अपने व्यवहारों में प्रसन्नता का अभ्यास इस भावना द्वारा कीजिए।

संस्थापक

स्वर्गीय डॉ० दुर्गाशङ्कर नागर

ॐ

कल्पवृक्ष

अध्यात्म-विद्या का मासिक-पत्र

सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥ गीता ॥

वर्ष ३१ } उज्जैन, मार्च सन् १९५३ ई०, सं० २०१० वि० { संख्या ७

प्रसन्नता महौषधि है

संपादक

सालोमन ने कहा है, हृदय प्रसन्न रहे तो यह एक महौषधि का काम करता है। हम लोग इस उपदेश को प्राय: सुनते आये हैं और विश्वास भी करते हैं कि हृदय की प्रसन्नता महौषधि है, परन्तु अपनी चिन्ताओं, कठिनाइयों और मुसीबतों में इसे आजमाया नहीं।

पिछली लड़ाई के जमाने में एक व्यक्ति अपने देश, सारे संसार की युद्ध जनित परिस्थिति और अपने पारिवारिक जीवन पर उसका कुप्रभाव विचार कर इतना चिन्तित हो गया मानो उसके मन में अन्धकार के बादल छा गये हों। उसे हर समय, हर बात में, हर विचार में निराशा और अन्धकार दिखाई देता। उसकी इस निराशा और अन्धकारमय भावना का प्रभाव उसके मन और शरीर पर इतना क्रमश: बढ़ गया कि घर में बात बात में पत्नी से चिढ़ता और लड़ता, बाल-बच्चों पर क्रोध करता, मित्रों से तथा ऑफिस में, प्राय: जिससे भी वह मिलता जुलता, जरा जरा सी बात में झगड़ पड़ता, उत्तेजित हो जाता। कभी कभी वह कहता, मुझे अब कुछ नहीं सुहाता, सब कुछ बुरा लगता है, ऐसा लगता है कि मेरे मन

और हृदय में, शरीर और जीवन में कोई जहरीला कीड़ा (घुन) लग गया है जो मुझे खाये और सड़ाये डाल रहा है।

यह सच बात है, निराशा की अन्धकारमय भावना का विष ही उसे लग गया था। उसकी पत्नी शान्त स्वभाव की थी और "प्रसन्नता महौषधि है" शीर्षक एक लेख कहीं पढ़ा था जिससे उसे मालूम हुआ कि निराशा के विचार अधिक काल तक रखने से मनुष्य की स्नायु में जहर सा घुल जाता है और मनुष्य को बेकार बना देता है। पत्नी ने पति को प्रसन्न रहने की सलाह दी, तो मर्द होकर औरत का उपदेश सुनना और उसे मान लेना उसको अच्छा न लगा, इसमें अपमान समझ वह झगड़ उठा। घर से एक दिन जब निकल कर किराये की मोटर पर सवार हो वह ऑफिस जा रहा था तब मोटर अकस्मात् एक मन्दिर के सामने रुक गई। मन्दिर में संध्या को किसी डॉक्टर का प्रवचन होने वाला था सो दरवाजे पर काले तख्ते में लिखे हुए विषय, "प्रसन्न रहो तो खुश रहोगे' पर उसकी दृष्टि पड़ी। अकस्मात् उसे विचार आया कि मेरी पत्नी मुझे प्रसन्न रहने का उपदेश देती है, यह उसी का षड्यंत्र है, उसी ने यह "बोर्ड" लिखवा कर यहाँ रखवाया है और मोटर यहाँ खड़ी करवाई है, तथा मेरे लिए ही प्रवचन का आयोजन किया है। परन्तु फिर सोचा, नहीं, ऐसा भला सब वह मेरे लिए कैसे कर सकती है? शाम को ऑफिस से घर लौट कर, वह पत्नी सहित, 'प्रसन्नता" का प्रवचन सुनने आया। प्रवचन सुनकर उसने प्रसन्न रहने का प्रयोग आरम्भ कर दिया। कुछ ही हफ्तों मे उसके व्यवहार और बातचीत में बड़ा परिवर्त्तन हो गया और उसने स्वयं स्वीकार किया कि मैं अब बिलकुल अच्छा हूँ। उसकी पत्नी भी कहती है कि उनका व्यवहार अब बिलकुल ठीक है।

प्रसन्नता अमृत है, निराशा विष है, इससे हड्डियाँ भी सूख और गल जाती हैं। प्रसन्नता हमारे अन्दर मौजूद है, इसके लिए हमें दवा खरीदने, या देवताओं से पाने के लिए तीर्थ भटकने की जरूरत नहीं है। प्रसन्नता इसी जीवन में इसी लोक में प्राप्य, हमारे भीतर भरा हुआ अमृत है, और रोग दूर करने, चिन्ताओं, कठिनाइयों तथा मुसीबतों को भगाने और जीवन को सुखमय बनाने की अमोघ, अचूक महा औषधि है। दवा का असर हम पर चाहे न हो, देवता का आशीर्वाद चाहे हमें न प्राप्त हो, परन्तु प्रसन्नता की भावना का हमारे मन, शरीर के अणु अणु, प्रत्येक स्नायु और जीवन की परिस्थितियों पर अचूक होता है। प्रसन्नता से शरीर का रक्त रोगहर और बलवान होकर मुख तेज आलोकित होता है और इससे संसार के लोग हमारी ओर आकर्षित होकर हमारे मित्र और सहायक बन जाते हैं। चिन्ता और निराशा से, रक्त में एक प्रकार के विषाक्त कीटाणु पैदा हो जाते है, और काले बादलों की तरह वे सारे रक्त प्रवाह में छाये रहते हैं। इसी कारण जीवन अन्धकारमय हो जाता है।

वास्तव में हमारा जीवन बाह्य घटनाओं से उत्पन्न परिस्थितियों या देवताओं की अकृपा या भूत प्रेतों ग्रहों के उपद्रव से नहीं बिगड़ता, वह तो हमारी स्वयं दूषित भावना, और दूषित भावना से उत्पन्न दूषित व्यवहार से बिगड़ता है। जो लोग अपने आप में तथा परमात्मा पर विश्वास नहीं करते वे ही लोग चिन्तित और निराश होकर, दुःखी और रोगी होकर सर्वत्र भटकते फिरते हैं। चिन्ता और निराशा, नास्तिकता का लक्षण है। केवल परमात्मा को न मानने से ही

नहीं, स्वयं अपने में विश्वास न करने से मनुष्य महा नास्तिक बन जाता है, क्योंकि स्वयं सर्वशक्ति सम्पन्न, समर्थ और अमृत से भरा हुआ होकर भी वह उसका सदुपयोग न करते हुए दुःखी हो रहा है और दूसरो को तथा ईश्वर को दोष देता है।

हमारे जीवन मे प्रसन्नता का प्रभाव कैसे बढ़े ? इसके लिए कागज पेंसिल लेकर जीवन के सुख दुःख की गिनती कर उसका हिसाब लिखो। लोगों को अपनी अच्छी बातों का विचार नहीं होता, बुरी बातों का विचार जल्दी आता है। रोग और दुःख बढ़ने का यही कारण है कि मनुष्य अपने विचारों में कठिनाइयो और मुसीबतो का ही हिसाब जोड़ता रहता है।

पुरानी सुख की बातों, घटनाओं तथा बाल-बच्चों, पशु-पक्षियों और मित्रो से प्राप्त प्रसन्नता के अवसरों की याद करो, और कुछ देर तक रोज ऐसी भावनाओं में निमग्न होने का अभ्यास करो।

मान लो तुम्हे सारा वैभव प्राप्त है वह सब चला गया तो कितने दुःखी होओगे। समझ लो कि सब पुनः वापस मिल गया तो कितनी खुशी होगी। बस, तुम्हे सब कुछ प्राप्त है, खुश हो जाओ। वर्ना अप्रसन्न होने से सब छिन जायगा।

परमात्मा से, अपनी प्रार्थना में, कोई चीज की भीख मत माँगो, जो कुछ तुम्हारे पास है उसके लिए उसे धन्यवाद देते हुए उसका सदुपयोग करो। इतना मानसिक अभ्यास एक महीने ही कर देखो, क्या है—स्वय आश्चर्य करोगे।

महत्वपूर्ण सूचना

तेईसवाँ आध्यात्मिक साधन समारम्भ

आध्यात्मिक मण्डल एवं कल्पवृक्ष मासिक पत्र के संस्थापक स्व० सन्त नागरजी के पूर्व आयोजन के अनुरूप आध्यात्मिक साधन का तेईसवाँ समारम्भ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया और चतुर्थी, वि० सं० २०१०, तदनुसार ता० १६, १७, १८ एवं १९ मार्च, १९५३ ई०, सोमवार, मंगलवार, बुधवार और बृहस्पतिवार को होना निश्चित् हुआ है। यह समारोह प्रतिवर्षानुसार, शहर से दो मील बाहर, एकान्त क्षिप्रातट गंगाघाट स्थित साधनालय के प्रांगण में होगा। देश के दूर दूर के प्रान्तों से जिज्ञासु, सत्संगी, अभ्यासी साधक एवं विद्वान् यहाँ एकत्रित होते हैं जिनके समागम एवं अनुभव विनिमय से जीवन में अद्भुत परिवर्तन होता है और जीवन को सर्वतोमुखी समुन्नत बनाने में बड़ी सहायता मिलती है।

जीवन की रोज रोज की व्यापारिक और व्यावहारिक उलझनें और झंझटें तो चलती ही रहती हैं तथा श्वास निकल जाने और आँखें बंद हो जाने के बाद भी चलती रहेंगी। हम जो कुछ रोज हाय हाय करते हुए दौड़ धूप करते रहते हैं, केवल वही हमारे जीवन का उद्देश्य नहीं है। हमारा यह अवतार कुछ भी आत्म विकास कर लने के लिए अनमोल अवसर है जो एक बार शरीर छूट जाने पर फिर दुबारा इसी रूप में नहीं मिलेगा। हमारा उद्देश्य क्या है और उसके लिए हमें क्या प्रयत्न अथवा साधन करना चाहिए, तथा सुख शांति और उन्नति के लिए कैसा व्यवहार करना चाहिए, इन्हीं विषयों पर चर्चा की जाती है। सभी विचार और धर्म के लोग यहाँ आते हैं और उनके ज्ञानवर्धक भाषणों

से शरीर और मन के आरोग्य, आत्मबल एवं आत्म ज्ञान की अनुभूति पाने में नवीन प्रेरणा और सहायता मिलती है। अतएव आध्यात्मिक सत्संगप्रिय जिज्ञासुओं एवं साधकों से साग्रह निवेदन है कि ऐसे अवसर पर पधारकर चार दिन के सत्संग द्वारा समाधान और अनुभव का लाभ लें। नित्य प्रार्थना, प्रवचन, भजन-कीर्तन, जप, यज्ञ, स्वाध्याय के अतिरिक्त योगाभ्यास, योगासन, प्राणायाम, प्राकृतिक चिकित्सा के साधनों द्वारा शरीर को शुद्ध और स्वस्थ करने, रोग दूर करने और आत्मोन्नति की व्यावहारिक शिक्षा मिलती है।

प्रवेश शुल्क प्रति व्यक्ति एक रुपया, तथा चार दिन का भोजन खर्च छः रुपये, इस प्रकार मनीआर्डर द्वारा सात रुपये शीघ्र भेज देना चाहिए। लोग अवसर बिना पहले रुपया भेजे और बिना पूर्व सूचना दिये आ जाते हैं इससे प्रबन्ध में कठिनाई होती है। भोजन दिन में एक बार दोपहर को, तथा रात्रि में स्वल्प दुग्ध फलाहार होगा। बिस्तर, आसन, जलपात्र तथा कोई अन्य व्यक्तिगत आवश्यक वस्तु और स्वाध्याय के लिए इष्ट सद्ग्रन्थ अपने साथ लावें। दैनिक कार्यक्रम इस प्रकार है :—

प्रातःकाल

५ से ६ तक प्रार्थना

८ से १० तक योगासन, व्यायाम

१० से ११ तक मौन जप, हवन

मध्याह्न

१२ से १२॥ तक मध्याह्न उपासना

अपराह्न

१ से ४॥ तक भोजन, विश्राम, स्वाध्याय

४॥ से ५॥ तक प्राकृतिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक चिकित्सा पर भाषण

५॥ से ६॥ तक आनन्द पर्यटन, सायंकृत्य

सायंकाल

७॥ से १०॥ तक सामूहिक प्रार्थना, व्याख्यान आदि

१०॥ से ५ तक शयन

व्यवस्थापक

तेईसवाँ आध्यात्मिक साधन समारम्भ

ल्पवृक्ष कार्यालय, उज्जैन

आवश्यक सूचना

१—"कल्पवृक्ष" अथवा पुस्तकें मँगाने के लिए डाकखर्च सहित मूल्य मनीआर्डर से भेजिए। वी० पी० मत मँगाइए। इससे आपको और हमें, पैसे और समय की बचत होगी।

२—अपना पता बदलवाने के लिए पुराना और नया पता, ग्राहक नम्बर सहित लिखें।

३—"कल्पवृक्ष" का वार्षिक मूल्य समाप्त होने की सूचना मिलने पर अगले वर्ष का मूल्य २॥) हमें फौरन मनीआर्डर से भेज दें। "कल्पवृक्ष" वी० पी० से मँगाने की आदत छोड़ दें, ग्राहक रहना स्वीकार न हो तो कृपया एक पोस्टकार्ड से सूचना दे दें। धन्यवाद!

४—"शिव सन्देश" पुस्तक वी० पी० द्वारा नहीं भेजी जायगी। इसके लिए डाक खर्च सहित ११) पहले भेज दीजिए। कल्पवृक्ष के प्रत्येक प्रेमी पाठक को यह पुस्तक मँगा लेनी चाहिए क्योंकि एक बार खत्म होने पर दुबारा नहीं छपेगी।

—व्यवस्थापक

संसार के आश्चर्य

आचार्य श्री नरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ

पुण्यस्य फलमिच्छन्ति ।
पुण्यं नेच्छन्ति मानवाः ॥
फलं पापस्य नेच्छन्ति ।
यत्नात् कुर्व्वन्ति मानवाः ॥
(महात्मा विदुर धृतराष्ट्र के प्रति)

पुण्य का फल कौन नहीं चाहता, सब कोई चाहता है। पर सच्चे हृदय से पुण्य के काम कितने मनुष्य करते हैं, बहुत कम, बहुत कम। और पाप का फल कौन चाहता है, कोई नहीं, कोई नहीं; किन्तु आश्चर्य कि लोग पाप डर कर करते हैं, प्रयत्नपूर्वक करते हैं, जान-बूझकर करते रहते हैं। ऐसे व्यक्तियों को क्या कहा जाय। पाप हँसते-हँसते करते हैं पर जब फल भुगतने की बारी आती है तब मुँह फाड़ कर रोने लगते हैं—यह नहीं जानते कि :—

पुण्यं कुर्वन् पुण्य कीर्तिः ।
पुण्यमेवाश्नुते फलम् ॥
पापं कुर्वन् पाप कीर्तिः ।
पापमेवाश्नुते फलम् ॥

मनुष्य पुण्य करता हुआ पुण्य के कारण नाम कमाता है और पुण्य का फल पुण्य ही पाता है। दूसरी ओर पाप करता हुआ पापी पाप कर्म के लिए लोक में निन्दित होता है और पाप का फल दुख पाता है। जिन कर्मों से मनुष्य चढ़े वही पुण्य कर्म, जिन कर्मों से मनुष्य गिरे वह पाप कर्म। अधिक क्या कहा जाय।

श्री नागर जी दृढ़ ईश्वर विश्वासी भक्तिशील पुरुष थे। उनके सब कार्य दृढ़ ईश्वर विश्वास तथा आत्मविश्वास पर चलते थे। गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी स्थितप्रज्ञ थे, सुख-दुःख आते थे पर उनका कोई प्रभाव नहीं था। मेरा उनका परिचय बीस वर्षों से था। मैं जब कभी उज्जैन जाता था उन्हीं के आश्रम का अतिथि रहता था। इस युग में जब कि सर्वत्र धर्म के बन्धन ढीले पड़ रहे हैं, ईश्वर विश्वास में ढिलाई आती जा रही है, आत्मविश्वास की मात्रा न्यून होती जा रही है, तब जनता में प्रार्थना द्वारा पुनः भक्ति भाव तथा श्रद्धा के आवाहन करने का उनका दृढ़ सङ्कल्प अपने मधुर फल ला रहा है। उन्होंने अपने जीवनकाल में सहस्रों वहमियों के वहमों को, भूतप्रेत की लीला समझी जानेवाले उपद्रवों को केवल प्रार्थना तथा इच्छाशक्ति के बल पर दूर करके सहस्रों कुटुम्बों के दुःखों को दूर किया।

नागर जी गम्भीर व्यक्ति थे। उनकी व्यवहार कुशलता तथा स्वभाव की मधुरता देखते ही बनती थी। उनका आतिथ्य भाव प्रशंसनीय था। "कल्पवृक्ष" तो उनका स्मारक है ही, तथापि उनका साधनाश्रम चलता रहे तो वह भी एक बड़ा काम होगा।

देहरादून
फाल्गुन कृ० ६,
२००८ वि० सं०

(आचार्य) नरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ,
सदस्य विधान सभा, उत्तर प्रदेश।

हिमालय के अंचल में

स्वामी शिवानन्द जी

किसी कवि ने कहा है—अहा ! संसार कितना सुन्दर है, जहाँ सुन्दर फूल खिलते और सुंदर नदियाँ प्रवाहित होती और सुन्दर ऋतुएँ नृत्य करती हैं। तो भी लोग कहते हैं कि संसार नश्वर है, दु:खमय है और क्षणिक है, असत्य है।

आप लोगो में बहुत से लोग ऐसे विचारो के होंगे और सोचते होंगे कि ऋषि-मुनियों ने इतने सुन्दर संसार को असत्य और अन्य विशेषणों से क्यो कर पुकारा। मेरे पास इसका उत्तर है। जिस प्रकार एक सुअर मैले से भरे हुए गट्टर में ही आनन्दित रहता है और यदि उस सुअर में भी उपरोक्त कवि के समान कवित्व-शक्ति होती तो वह भी लिखता—अहा ! मेरा संसार कितना सुन्दर है, जहाँ इतना आनन्ददायक जीवन है (गट्टर), जहाँ भोजन के लिए इतना सुन्दर पदार्थ है (मल), फिर भी मनुष्य इसकी सुन्दरता को स्वीकार नहीं करता और न इसके आनन्द को लेने के लिए आतुर ही रहता है। उल्टे वह मेरे जीवन के आनन्द को घृणा की दृष्टि से देखता है।

जिस प्रकार सुअर का संसार सुअर को तो सबसे प्रियकर है, परन्तु वह मनुष्य के लिए प्रियकर नहीं, उसी प्रकार मनुष्य का सीमित संसार भी ज्ञानी की दृष्टि में तुलनात्मक-दृष्टिकोण से नगण्य ही है। जिस प्रकार आप जागने पर अपने स्वप्नों को स्वप्न समझकर झूठा समझते हैं, उसी प्रकार जब मनुष्य सांसारिकता से जागता है, तो उसके लिए संसार भ्रम के अतिरिक्त कुछ भी नहीं रहता। जो संसार सुअर के लिए सत्य है, महान् है, वह मनुष्य के लिए तुच्छ है और घृणित है—जो जीवन मनुष्य के लिए महान् है, सत्य है, वह जीवन ज्ञानी के लिए असार है और क्षणभंगुर है,-और जान लो जिस जीवन का ज्ञानी अनुभव करता है, उस जीवन के आनन्द से अनन्तकोटि गुणा आनन्द परात्पर जीवन मे है, जिसमें समाहित हो जाना समस्त-आनन्द की प्राप्ति कर लेना है, जिसके परे और कुछ नहीं और जो सभी सुखों, सभी आनन्दों और सभी अमरताओं की चरमसीमा है। यही सत्य है, यही सत्य है।

दोनों ही सत्य है, दोनों ही सत्य है।—सं०

उच्च चेतना का प्रभाव

श्री हेनरी थॉमस हेमलिन, इंग्लेण्ड

[संपादक श्री हेनरी थॉमस हेमलिन, इग्लेण्ड में विचार विज्ञान समीक्षा (Science of Thought Review) नामक व्यावहारिक मानसशास्त्र विषयक मासिक पत्र गत ३१ वर्षों से प्रकाशित कर रहे हैं। आध्यात्मिक चिकित्सक, भाई माण्डस् के निमंत्रण पर वे लन्दन गये थे, वहाँ उन्हें जो अनुभव हुआ वह उनकी जबानी सुनिए। —सं०]

"जब मैंने भाई माण्डस् के कमरे में प्रवेश किया तब वे ध्यानस्थ थे। इस ध्यानावस्था में उनका मुखमण्डल मुझे स्वर्गीय आनन्द से भरपूर और प्रकाशित दीख रहा था। उन्हें देख, बिना कुछ बोले, मैं भी ध्यान में बैठ गया। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मैं एक विचित्र महाशक्ति से पूर्ण आकाश में व्याप्त हूँ, और वह शक्ति विद्युत की जबरदस्त लहर के समान मेरे मेरुदण्ड में प्रवेश कर गई, और मस्तिष्क में भरपूर समा गई। मेरा सारा शरीर इस शक्ति से भर गया, नख शिख तक। शक्ति प्रवेश और संचार के समय मुझे बिजली से छू जाने का सा अनुभव हो रहा था। अब जब वह शरीर के नस नस में नख शिख तक व्याप्त हो गई तब बिजली से छू जाने का आभास क्रमशः क्षीण होकर मुझे अभूतपूर्व स्वर्गीय शांति का अनुभव हुआ।

इसके पश्चात् हम दोनों कुछ समय स्थिर रहे, फिर एक बड़े कमरे में प्रवेश किया, और उसके भीतर ऊँचे मञ्च पर जा बैठे। वहाँ उपस्थित सभा मण्डल के लोगों में स्वर्गीय शांति छा रही थी, उस वातावरण में मेरी चेतना एक अपूर्व उच्च-भूमिका में थी। भाई माण्डस् ने लगभग आधा घण्टा तक भाषण दिया, और लोगों को बताया कि इस मौन ध्यान द्वारा अपनी चेतना को ईश्वरीय उच्च भूमिका तक कैसे ले जावें जहाँ कि हमें जीवन, संसार और हरेक व्यक्ति की पूर्णता का आभास हो। यह आधा घण्टा का समय मुझे मुश्किल से दस मिनट के समान लगा।

प्रवचन के पश्चात् भाई माण्डस् ने रोगियों की चिकित्सा करना आरंभ किया। मैंने देखा कि रोगियों की रीढ़, कन्धे, गर्दन, घुटनों की हड्डियों पर जो सूजन (Arthritis) थी वह कुछ मिनटों के उपचार से अच्छी हो गई, दर्द भी जाता रहा। मैंने देखा दोनों आँखों के 'मोतिया बिन्दु' (Cataracts) भी तत्काल अच्छे हो गये। पेट के घाव भी अच्छे हो गये, और बहिरे लोगों को कुछ कुछ सुनाई भी पड़ने लग गया। परंतु मुझे यह नहीं मालूम, और मैं पश्चात् इसकी जाँच भी न कर सका कि उन रोगियों को केवल उस क्षण तात्कालिक लाभ मालूम हुआ अथवा रोग बिलकुल हमेशा के लिए दूर हो गया।

भाई माण्डस (Brother Mandus) ने उन रोगियों से कहा, जैसी चेतना (आत्म भावना) तुम्हारी इस समय यहाँ थी, ऐसी ही चेतना हमेशा रखो, उच्च ईश्वरीय चेतना में लीन रहो, प्रेम का विचार करो, सारे संसार से निष्कपट निर्मल प्रेम कर प्रेम की चेतना में रमे रहो, सूर्य के प्रकाशवान् अंश की तरह जगमगाते हुए विचरो, और

इसी पूर्णता से ओतप्रोत रहो तो तुम्हारे रोग दूर हो जायँगे और तुम्हारी शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती जायगी।

*जब भाई माण्डस् उपचार कर रहे थे, उच्च चेतना का आदेश दे रहे थे, तब मैंने यही समझा कि वे सबके संकीर्ण विचारों की गठरी खोलकर उसे विकसित कर रहे हों, उनके विचारों के बंधन खोल रहे हों, उन्हें मुक्त कर रहे हों, पृथ्वी से उठाकर उन्हें असीम आकाश के शक्ति-लोक में उड़ाने का प्रयत्न कर रहे हो। स्वर्गीय जीवन का विचार करो, पार्थिव बन्धनों, रोग दुःख आदि से मुक्त हो जाओगे, यही उनके शब्दों का सार था।

मुझे एक महिला मिली जिसने बताया कि उसकी दोनों आँखों में मोतिया बिन्दु था, पिछले महीने भाई माण्डस् के उपचार से उसकी दोनों आँखें ठीक हो गईं, और मैंने देखा, उसकी दोनों आँखें चमक रही थीं। आँखें पाकर अब वह एक 'सत्य मण्डल' के अन्तर्गत डॉक्टर के पास अवैतनिक स्वयं सेविका का कार्य कर रही है।

H. T. Hamblin Science of Thought Review,
Bosham, Chichester, England.

* मन एवं मनुष्याणां कारण बन्ध मोक्षयोः।

ध्यान रहस्य

श्री ज्वालाप्रसाद जी खरे

यं यं वाऽपिस्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौंतेय सदा तद्भाव भावितः।
गीता ८—६

हे कौन्तेय! अन्त समय जिस-जिस भाव (नाम) का स्मरण करता हुआ मनुष्य देह को त्यागता है, वह मनुष्य उस भाव में ध्यान लगाने के कारण इस भाव को ही पाता है।

यों तो प्रत्येक प्राणी किसी न किसी शुभाशुभ ध्यान में प्रत्येक दशा में रमते रहते हैं, चूंकि मनुष्यात्मा में विशेष ज्ञान है, इस लिए यह बहुत सोच समझ कर अपने सम्बन्धित कार्यों का ध्यान कर सकता है। मनुष्य को स्वतन्त्र अधिकार है कि शुभाशुभ कैसे ही ध्यान में विचरे।

ध्यान का प्रभाव यह होता है कि जो भी ध्यान किया जावे, मन उसकी वैसी क्रिया प्रतिक्रिया बनाना (अर्थात् अनुमान) शुरू कर देता है। जैसे यदि हमारा ध्यान भय में चला जावे तो भय उत्पन्न करने वाले सामान तैयार होने लगेंगे। फिर जितना ज्यादा संयम ध्यान में हो जावे उतना ही ज्यादा असर मन और शरीर पर पड़ता जावेगा और फल भी वैसा तैयार होगा।

इसी प्रकार यदि हम आयुर्वेद का ध्यान करते हैं तो वैद्य बन जाते हैं, विद्या का ध्यान करते हैं तो विद्वान्। जिस कला का भी ध्यान हम करते हैं उसी कला में हम निपुण हो जाते हैं। यदि हम राम का ध्यान करें तो राम बने, कृष्ण का ध्यान करें तो कृष्ण बने, यदि हम ब्रह्म का ध्यान करें तो ब्रह्म (आत्मतत्व) बने। इसी तरह प्रत्येक उपासनाओं और ध्यान को समझना चाहिए।

अव्यक्तं व्यक्ति मापन्नं मन्यन्ते माम बुद्धयः।
परं भाव मजानन्तो ममा व्यय मनुत्तमम्।
गीता ७-२४

मेरे परम अविनाशी और परम स्वरूप को न जाननेवाले, बुद्धिहीन लोग मुझ इन्द्रियातीत को इन्द्रियगम्य अवतार धारण करनेवाला जानते हैं। इसी से उनको नाशवान फल मिलता है। उपरोक्त श्लोक का यही भाव है कि श्रीकृष्ण को जिसने अनन्त आत्मा माना है उसने अनन्त फल पाया है। और जिसने अवतारधारी इन्द्रियगम्य माना है उसे जजाल (आवागमन का चक्कर) मिला है।

यदि हम कामचेष्टा करते हैं तो कामोद्दीपन शरीर में हो जाता है। जब क्रोध का ध्यान करते हैं तो क्रोध आक्रमण करने लगता है। अर्थात् जैसा जैसा हमारा ध्यान होता है वैसी वैसी क्रिया सञ्चालन होकर कार्य करना और बनना शुरू कर देती है। सब सुख और दु:ख का कारण हमारा ध्यान है और ध्यान का मूल साधन हमारे विचार या शब्द या इच्छा है।

गंदे विचारों से गंदा ध्यान होने लगता है और अच्छे विचारों से अच्छा।

प्रत्येक वस्तु या कार्य उत्पत्ति के पहिले ध्यान, विचार, शब्द या इच्छा है।

जिस स्थान में शब्द, विचार या इच्छा या ध्यान सूक्ष्म से जाग्रत होते हैं, उसका नाम मन है। कार्य रूप में परिणत कराने वाली, इच्छा में आये हुए शब्दों को इधर-उधर ले जाने वाली प्राणशक्ति है। इस प्रकार शब्द या इच्छा मन और प्राण जीव की योग शक्तियाँ जीव को प्रत्येक शुभाशुभ कार्य कराने में सहायक होती हैं।

यह प्रत्येक मनुष्य का स्वभाव है, चाहे वह विद्वान् हो चाहे मूर्ख, जब उस पर कोई कठिन विपत्ति या सांसारिक उलझन आक्रमण करती है और अपने से और अपने सहायकों से नहीं सुलझती दिखाई देती है तो वह स्वाभाविक सत्य की तरफ दौड़ता है, अर्थात् सत्य सत्ता का ध्यान करता है। यद्यपि उसने सत्य को पहिले से नहीं चुन रक्खा है और न जानता है कि सत्य कहाँ है, और कैसे हमारी विपत्ति को सुनेगा। इसका वह ध्यान न देकर सत्य और न्याय की शरण ताकता ही है, चाहे वह उसकी आड़ से अपनी भावनानुसार बच सके, चाहे न बच सके, परन्तु विपत्ति आक्रमण के भार से इतना सोच लेता है कि हमसे बढ़कर शक्तिमान कोई है जो हमारे कुसमय में सहायक होगा।

चूँकि ध्यान में यह रहस्य छिपा है कि जैसा जिस विषय का ध्यान किया जावे 'ध्येय' (सत्य) अपना रूप धारण ध्याता की भावनानुसार करने लगता है। यदि ध्याता के मन में कोई शंका उत्पन्न न हो तो उसकी विपत्ति निवारण का पूरे सांगोपांग से ध्येय तैयार हो जाता है। जैसे "प्रह्लाद के खंभे का नृसिंह" अर्थात् हिरण्यकश्यप की धारणा का विरुद्ध रूप। क्योंकि प्रह्लाद की धारणा यह थी कि वह (सत्य आत्मा) चैतन्य ज्ञान भंडार सब में है जिस रूप से भी मेरी रक्षा हो सकेगी 'सत्य' खंभे से वही रूप प्रगट करेगा। यह ध्यान प्रह्लाद का कतई न था कि उस आत्मा का रूप नृसिंह जैसा है।

यह (नृसिंह) रूप हिरण्यकश्यप के शंकित और कुत्सित विचारों और प्रह्लाद की सत्य की ताकत के भय से प्रह्लाद की आत्मा ने धारण किया है।

चूँकि आत्मा सब जगह भीतर बाहर है और इसी आत्मशक्ति से प्रत्येक शक्तियाँ अपने अपने अधिकार की शक्ति रखती हुई बर्तती हैं। इसलिए एक सत्य धारण के ध्यान से 'शक्ति' ध्याता के भावनानुसार प्रगट होती है, चूँकि प्रह्लाद और हिरण्यकश्यप की सत्य धारणा की शक्तियों से

नृसिंह रूप बना है, जो एक की मारक और दूसरे की पालक थी, क्योंकि एक की सत्य धारणा अशुभ थी और दूसरे की सत्य धारणा शुभ थी।

इसी तरह अगर हम भूतों प्रेतों को सत्य समझ कर उनकी शरण लेते हैं तो वे हमारी उतनी ही आपत्ति दूर कर सकते हैं जो उनके अधिकार में हैं, यदि वे शरणागत पर ज्यादा प्रसन्न हो जावें तो अपनी बराबरी का वैभव भी दे सकते हैं, अर्थात् उसे भूत प्रेत ही बना लेंगे। यदि हम किसी काल्पनिक देव की शरण सर्वशक्तिमान् समझ कर लेते हैं तो वे भी प्रकृति के नियमो से भयभीत न होकर अर्थात् प्रकृति के कानून से विवश होकर शरणागत की आपत्ति समूल न नष्ट कर सके।

यान्ति देव व्रता देवान् पितृन्यान्ति पितृव्रताः।
भूतानियान्ति भूतेज्यायान्ति मद्याजिनोपिमाम।
गीता ९-२५

अर्थात् देवताओं के पूजनेवाले देव गति को प्राप्त होते हैं, पितरों के पूजक पितृगति को पाते है भूतों के पूजने वाले भूतो को पाते हैं। और मेरे (ईश्वर-आत्मा) पूजने वाले मुझे पाते हैं।

प्रत्येक शक्ति किसी न किसी ताक़त से विवश है, प्रकृति के नियमों को तोड़ने में प्रत्येक शक्ति असमर्थ है।

अब देखना और समझना यह है कि वह कौन सा सत्य है और सर्वशक्तिमान है जो प्रकृति की कानून और मर्यादा को भी मिटा सकता है और सत्य का कोई रूप रंग देखा नहीं है। सत्य को (मनुष्यात्मा) सत्य ही तलाश सकता है जो मनुष्य की कल्पना के अन्दर है। अगर ऐसा न होता तो एक ही किस्म,-एक ही रास्ता महात्मा लोग उस-सत्य का बतलाते, जो अनेकों देखने में आ रहा है जिसका मतलब यही है कि सत्य के मार्ग अनेक नहीं हैं, बल्कि कल्पनाएँ अनेक हैं, यही कारण है कि एक ही सत्य और नित्य की अनेक कल्पनाएँ की जा सकती हैं। जैसे तुलसीदास जी का, कबीर का, बुद्ध का, सूरदास, प्रह्लाद, शम्शतबरेज़ (मुहफकीर) की अलग अलग कल्पनाएँ हैं। योग विद्या कोई दूसरा राग गा रही है, जंजालों में फँसे हुए वीर अर्जुन को सत्य देव श्रीकृष्ण ने रणभूमि मध्य में कोई दूसरा सत्य बताया था। इस थोड़े से उदाहरण से साधक को सत्य का स्वरूप समझ लेना चाहिए।

सत्य की कल्पना अनेक दिखाई देने से बुद्धि भ्रम में पड़ जाती है और यह निश्चय नहीं कर पाती कि कौन सा रास्ता ठीक है, इसी से साधक साधन में शिथिल बना रहता है किसी में दृढ़ न होने से सिद्धि नहीं मिल पाती।

इसलिए सत्य के तलाश के जिज्ञासु को स्वानुभव करना चाहिए कि जिस सत्य का कोई निश्चित रास्ता नहीं समझ पड़ता वह कल्पनातीत, असीम, अनादि, अनंत ठहराया जा सकता है। ऐसी हालत में अपनी कल्पना शक्ति काम देती है, क्योंकि कल्पना शक्ति न जानी हुई वस्तु या संख्या को जना देती है। अंकगणित, बीजगणित, ज्योतिष के कठिन से कठिन प्रश्न कल्पना से सहज में हल हो जाते हैं। चूँकि अंकगणित इत्यादि सीमित होने से कल्पना में आ जाते हैं, परंतु असीम कैसे कल्पना में लाया जावे। उसके लिए महात्माओं का अनुभव इस प्रकार है कि :—

आत्मा ही सत्य और नित्य है। आत्मा का साकार स्वरूप शब्द है। वह प्रत्यक्ष शब्द ओ३म् है जिसे गीता प्रमाणित करती है।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं सयाति परमां गतिम्।
गीता ८-१३

ॐ इस एकाक्षर ब्रह्म का जो अंतिम देह त्यागते समय स्मरण करते हैं, वे अवश्य मोक्ष रूप परम पद पाते हैं।

उपरोक्त श्लोक के आधार पर किसी किसी महात्मा ने नाम जपने पर ही जोर दिया है जैसे कि रामायण में कहते हैं :—

साधक नाम जपहिं लव लाये।
होहिं सिद्ध अणिमादिक पाये।
रटहिं नाम-जन आरत भारे।
मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारे।
मंत्र महा मणि विषय व्याल के।
मेटत कठिन कुअंक भाल के।

किसी किसी महात्मा का अनुभव इस प्रकार है कि:—

(१) अनन्त आत्मा त्रिगुणात्मक माया के आश्रित होकर कुछ शुभाशुभ संकल्प ले कर किसी निश्चित काल के लिए शरीर देश में आ जाता है, इसलिए समष्टि आत्मा (परमात्मासत्य) का ध्यान व्यष्टि आत्मा (शरीर देशवासी) में ही बन सकता है क्यों कि शरीर सीमित है। जिसे गीता सिद्ध करती है—

अजोऽपि सन्नव्य यात्मा भूता नामीश्वरो-
ऽपिसन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्म मायया।
गीता ४–६

अर्थ—यद्यपि मैं (आत्मा) अजन्मा अविनाशी और भूतमात्र का ईश्वर हूँ तथापि अपने स्वभाव के कारण अपनी माया के बल से जन्म ग्रहण करता हूँ।

अँग्रेजी अनुवाद ऐनीबीसेण्ट

Though unborn, the impesishable Self, and also the Lord of all beings, brooding over nature, which is Mine own, yet I am born through My own Power.

Maya means power of thought.

माया का अर्थ है—विचार की शक्ति।

(२) असीम का यदि पता लगाना चाहते हो तो सीमित (उपासना) का ध्यान करो। सीमित वस्तु के देखने से विस्तीर्ण का ज्ञान विकास होता है। जैसे यदि कुल दुनिया को घर बैठे देखना है तो दुनिया के नक्शे को देख लो, दुनिया की कल्पना अपने आप मन म खिंच जावेगी।

(३) ध्यान सीमित का ही किया जा सकता है। चूँकि हम (आत्मा) शरीर देश या ब्रह्माड में हैं और शरीर सीमित है, इससे असीम, अनादि, अनंत को अपने मे ही ढूँढ़ना चाहिए।

(४) अपने आप का तलाश लगा लेना ईश्वर को प्राप्त कर लेना है।

(५) अनंत विश्वाकाश (विस्तीर्ण शून्य) में जिस तरह सूर्य, चंद्र, तारागण, पृथ्वी इत्यादि (अचंभादायक कारखाने) सर्व-शक्तिमान चैतन्य, ज्ञान सागर की दी हुई चाबी (शक्ति या आज्ञा) से प्राण पवन या जीवन शक्ति द्वारा अचूक काम करते नजर आ रहे हैं उसी प्रकार शरीराकाश मे भी नाभि हृदय मस्तिष्क इत्यादि में जो कारखाने हैं वह भी हमारी (आत्मा) आज्ञा से प्राण शक्ति द्वारा काम करती हुई हम देख रहे हैं, शरीर सो रहा है, मशीनें बराबर काम कर रही है। अर्थात् पूरे ब्रह्माड का छोटा रूप एक हमारा शरीर है।

जिस तरह चाबी, शक्ति, कम या खत्म हो जाने से या प्रभू की आज्ञा या इच्छा होने से बाहरी ब्रह्माड नष्ट होते रहते हैं और नवीन तैयार होते रहते हैं, उसी प्रकार शरीर की शक्ति कम या खारिज हो जाने से या शरीर में रहने का हमारा संकल्प जो कि मायावश हम भूले रहते हैं खतम हो जाने से शरीर ब्रह्माड भी नष्ट हो जाता है

और फिर नवीन संकल्प द्वारा नवीन शरीर तैयार होता है।

शरीर देश की मशीनें हमारे कुत्सित विचारों से फेल होती हैं, वही मलिन संकल्प पूरा करने को दूसरा मलिन शरीर लेना पड़ता है, शरीर और उसकी मशीनों के रचयिता, कर्त्ता धर्त्ता, विधाता हम (आत्मा) हैं न कि अन्य कोई काल्पनिक देव।

(६) शरीर देश के नाभि, हृदय, मस्तिष्क के कमल चक्रों या कारखानों में ध्यान करने से विस्तीर्ण का पता चलने लगता है अर्थात् अच्छा संयम या मन लगने से शरीर ही में स्थूल देखने में आ जाता है।

जितनी वस्तुएँ द्रष्टिवान और अद्रष्टिवान हम वाहर देखते, सुनते, अनुभव करते हैं वही सव हमारे शरीर में भी हैं। जिसे गीता सिद्ध करती है :—

इहैकस्थं जगत्कृत्स्न पश्याद्य सचरा चरम्।
मम देहे गुड़ाकेश यच्चान्यद् द्रष्टु मिच्छसि।
गीता ११-७

हे गुड़ाकेश मेरी (ईश्वर शरीरधारी) इस देह में संपूर्ण चराचर जगत् को एक ही स्थान पर एकत्र देख और भी जिन वस्तुओं को तू देखना चाहता है उन सबको देख ले।

(७) जिस तरह सूक्ष्म बीज (वीर्य) में इतना वड़ा वृक्ष और शरीर छिपा रहता है, उसी प्रकार शरीर देश वासी आत्मा में भी अनंत ज्ञान प्रकाश सागर परमात्मा छिपा वैठा है। जिस तरह नियमानुसार वीर्य से काम लेने पर शरीर या वृक्ष प्रगट हो जाता है, इसी तरह गुरुओं के बताये हुए नियमों पर चलने से परमात्मा हमें दीख पड़ता है। अर्थात् आत्मा ही सब का बीज है।

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्।
बुद्धि बुद्धिमता मस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्।
गीता ७-१०

हे पार्थ! मैं (आत्मा) संपूर्ण प्राणियों का सनातन वीज अर्थात् उत्पत्ति का कारण हूँ, मैं बुद्धिमानो में बुद्धि रूप और तेजस्वियों में तेज रूप हूँ।

(८) हमारा मन सव ऋद्धि और सिद्धियों का खजाना है। इसलिए असंख्य जन्म के थके हुए, निरंतर काम करने वाले मन को विश्राम देने से (एकाग्र करने से) इसका गुप्त (ऋद्धि सिद्धि) खजाना खुल जाता है।

श्रुति विप्रति पन्नाते यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधा वचला बुद्धिस्तदा योग मवाप्स्यसि।
गीता २-५३

लौकिक और पारमार्थिक फल श्रवण करके भ्रमित हुई आपकी बुद्धि जिस समय आत्मा में निश्चल होकर स्थित हो जावेगी उसी समय तुमको तत्वज्ञान (समाधिलोक) पैदा होगा।

(९) दूसरे के धर्म या वार्ता को सुनकर अपनी बुद्धि को भ्रम में मत डालो। सब संशय छोड़कर अपने शरीर के अंदर हृदय कमल में कुछ समय का नियम बनाकर ध्यान करना शुरू कर दो। कुछ रोज समझ में न आने से, रास्ता चल देने से आगे का रास्ता अपने आप दीख पड़ेगा।

(१०) अलग ईश्वर मानने से या अपने आप में ईश्वर मानने से, मानने वाला वही हो जाता है जैसा कि उसने माना है।
गीता १७-३

पाप क्या है ?

श्री लॉविल फिल्मोर, यूनिटी, अमेरिका

यह स्मरण रखो कि पाप परमात्मा की पूर्ण सृष्टि मे उसका बनाया हुआ नहीं है, वरन् सब कुछ अच्छा, पवित्र और पूर्ण है। पाप कोई सार वस्तु नहीं, कोई सत्य नहीं, वरन् सत्य का अभाव ही पाप है और इसका वास केवल मनुष्य के मन में है।

मनुष्य अपने आप को नहीं जानता कि मैं सत्यनारायण का अंश, उसका पुत्र 'नर' हूँ। यह न जानना, अपने आप का अज्ञान ही पाप है। इसी कारण वह अपने परमपिता के अनुरूप नर से नारायण नहीं बन पाता—मन से, वचन से या कर्म से।

छोटे बच्चे एक रात में बड़े होकर मनुष्य नहीं बन जाते। बचपन से बड़े होते होते वे स्वभाववश तथा अज्ञानवश बहुत सी भूलें करते हैं, और माता पिता उन्हें क्षमा कर देते हैं, यह जानकर कि बच्चा अभी अनजान है, आगे चलकर धीरे धीरे समझदार हो जायगा और अच्छा वर्ताव करने लगेगा।

हम सब लोग इतनी बड़ी उम्र के, स्वयं कई बच्चों के माँ बाप बनकर, बुजुर्ग होकर भी परमपिता की दृष्टि में उसके बच्चे ही हैं और धीरे धीरे अपना आत्मविकास कर रहे हैं कि हम भी परमपिता के समान 'नर से नारायण' बन जायँ। इस परम आदर्श को पहुँचने में हम भी बहुत सी भूलें करते हैं, इन भूलों को ही हम पाप कहते है।

पाप दो प्रकार का होता है, एक भूल (अज्ञान) से किया हुआ, दूसरा जानबूझकर किया हुआ। अनजान में होने वाले पाप (भूल) को जिस प्रकार हमारे माता पिता क्षमा कर देते हैं, उसी प्रकार परमपिता भी हमें क्षमा करता है, हमें धिक्कारता नहीं। भले और समझदार लोग भी भूल कर बैठते हैं। शास्त्र मे दो प्रकार की आज्ञा है, अमुक काम मत करो, अमुक काम करो। उदाहरण के लिए (१) किसी से घृणा मत करो, (२) सब से प्रेम करो। इनमें से केवल एक करना और दूसरा न करना भी अंशतः भूल है। अर्थात् यह संसार ईश्वर का है, और संसार से प्रेम करने में लोग इतने आसक्त और लिप्त हो जाते हैं कि अपने आपको और ईश्वर को, भूल जाते हैं। इसी वैभवासक्ति का विचार करके ही यीशु मसीह ने कहा था कि सुई के छेद में से ऊँट सहज ही निकल सकता है परन्तु धनवान् व्यक्ति को स्वर्ग में प्रवेश करना कठिन है क्योंकि उसकी आसक्ति धन में है, उसे त्यागना उसके लिए कठिन है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि धन और धनवान् व्यक्ति का तिरस्कार किया गया हो, परन्तु आसक्ति और त्याग भावना की बात है। धन बुरा नहीं है, धन में आसक्ति बुरी है, जो धन में भरोसा रखता है, परमात्मा में उतना भरोसा नहीं रखता तो धनासक्ति के कारण उसका आत्म-विकास अवरुद्ध हो जाता है।

जिस प्रकार माता पिता बच्चों को सुखी सम्पन्न देखना चाहते हैं, परमपिता परमात्मा नहीं चाहता कि हम गरीब मोहताज और दुःखी हों। वह चाहता है कि हमारे पास सब वैभव हो, परन्तु हम उस वैभव को दिव्य भाव से भोगें कि वैभव हमें परमात्मा से प्राप्त हुआ है और वह परमात्मा द्वारा दिया हुआ प्रसाद है। इस प्रकार वैभव को प्रसाद रूप आध्यात्मिक तत्व मानकर भोगता है उसे फिर सब कुछ मिल जाता है। परमात्मा ने संसार में जो भी वैभव दिखेर रखा

है वह हमारे सदुपयोग के लिए है; इसलिए नहीं कि हम उनमें आसक्त और आश्रित होकर उनके गुलाम बन जायँ।

संसार की अच्छी वस्तुओं, भोजन वस्त्र आदि, तथा अन्य बातों में, पाप नहीं है, अथवा जो वस्तुएँ मनुष्य के लिए आवश्यक उपयोगी हैं उनमें पाप नहीं है। पाप केवल मनुष्य के मन में है, उसकी धारणा में है कि वह ईश्वर के प्रति और संसार के प्रति कैसे भाव रखता और वर्तता है।

माता पिता बच्चे के प्रेम के मोहताज नहीं, ईश्वर भी हमारे प्रेम का भूखा नहीं, हमारे प्रेम पर आश्रित नहीं, वरन् हम ईश्वर के प्रेम के आश्रित हैं जैसे माता पिता के प्रेम पर बच्चे आश्रित रहते हैं। माता पिता बच्चों के प्रेम पर आश्रित नहीं, तो इसका यह अर्थ नहीं कि माता पिता यद्यपि बच्चों से प्रेम करते रहें और बच्चे परवाह न करें। प्रेम से प्रेम बढ़ता है, बच्चे माता पिता से जितना अधिक प्रेम करेंगे उतना ही अधिक उन्हें प्रेम मिलेगा। यही बात ईश्वर से प्रेम करने के सम्बन्ध में समझो। यदि हम अपना तन मन धन सब उसको समर्पण कर दें, मनसा वाचा कर्मणा उसके ही हो जायँ तब तो हमें परमपिता का सारा वैभव मिल जाय। परन्तु वैभवासक्ति में भूले हुए हम इन बातों का भरोसा नहीं करते।

मनुष्य भूत और भगवान्, दोनों की पूजा सेवा एक साथ नहीं कर सकता। यदि हम भगवान् की पूजा सेवा आरम्भ कर दें तो भूत हमारी सेवा करने लग जायगा, परन्तु भूत के सेवा करने से भूत ही प्राप्त होगा, भगवान् का प्रेम और वैभव नहीं।

अपराधों की गिनती भी पाप के अन्तर्गत है। परन्तु मनुष्य जब मनसा वाचा कर्मणा भगवान् को समर्पण हो जाय तो अपराध या पाप रह ही न जाय, क्योंकि कोई किसी से घृणा ईर्षा द्वेष भय या क्रोध न रखेगा, तो किसी को किसी चीज या बात की कमी न रह जायगी। जैसे माता पिता की हर बात में आज्ञा मानने वाली सन्तानें परस्पर सुख सन्तोष से रहती हैं, परमपिता के विधान, प्रेम और समर्पण भाव से रहने वाले लोग इस संसार में भाई-चारे से, एक कुटुम्ब के समान रहेंगे।

Lowell Fillmore.
Unity,
Lee's Summit. Mo.
U. S. America

व्यभिचार और मानसिक रोग

प्रो० लालजीराम शुक्ल, एम० ए० बी० टी०

संसार के सभी धर्म-ग्रंथों में व्यभिचार को पाप बताया गया है। पाप से मनुष्य को अनेक प्रकार के मानसिक और शारीरिक क्लेश होते हैं। जिस काम को दूसरे की आँख बचाकर करना पड़े वह पाप है। छिपाने की मनोवृत्ति से अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न होता है और इससे मानसिक कमजोरी हो जाती है। व्यभिचार करने वाले व्यक्ति की इच्छाशक्ति कमजोर हो जाती है। जब मनुष्य की इच्छाशक्ति कमजोर हो जाती है तो कोई भी विचार मन में आ जाने पर वह मन से बाहर नहीं निकलता। व्यभिचार को छिपाने की इच्छा रहने के कारण मनुष्य सदा दूसरों से डरा करता है। व्यभिचार दण्डनीय है। जब व्यभिचारी बाहर से दण्डित नहीं होता तो वह अपने आप से ही दण्डित होने लगता है। उसे अकारण भय उत्पन्न हो जाता है। जिस व्यक्ति की नैतिक भावना प्रबल नहीं है व्यभिचार के लिए समाज से दण्डित होता है, पर जिस व्यक्ति की नैतिक भावना प्रबल है वह अपने आप से ही दण्डित होता है। ऐसे व्यक्ति को अनेक प्रकार के मानसिक अथवा शारीरिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

किशोर बालकों में अनेक प्रकार के व्यभिचार की प्रवृतियाँ रहती हैं। जब अच्छे घर के बालक इन प्रवृतियों के वश में होकर किसी प्रकार का व्यभिचार कर बैठते हैं तो उनके मन मे अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न होता है। उनका नैतिक मन उन्हें कोसने लगता है। इसके प्रतिकार स्वरूप काम वासना का दमन होता है। प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया होती है। किसी प्रकार के व्यभिचार के लिए जितनी प्रबल आत्म-भर्त्सना किसी व्यक्ति को होती है उतनी ही प्रबल आदर्शवादी मनोवृति उस व्यक्ति में उत्पन्न हो जाती है। यह आदर्शवादिता कामवासना का दमन करती है। इस दमन के कारण उस व्यक्ति की मानसिक शक्ति किसी विकृत रूप से बाहर निकलने का मार्ग खोजती रहती है। जब मनुष्य में आदर्शवादिता आ जाती तो वह अपने चरित्र को इतना ऊँचा बनाने की चेष्टा करता है कि वह अपने पुराने व्यभिचार के कृत्य को स्मरण न कर सके। पर इस प्रकार की आत्म-विस्मृति से मानसिक शक्ति का सम्पूर्ण शोध न होकर उसका अवरोध होता है अतएव यह शक्ति मानसिक रोग का रूप धारण कर लेती है।

आदर्शवादी व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति से लड़ा करते हैं। जब मनुष्य आदर्शवादी बन जाता है तो वह अपने आपको ऊँचा उठाने मात्र से संतोष नहीं करता वह दूसरे लोगों को उठाने का प्रयत्न भी करता है। इसके परिणामस्वरूप ससार के अनेक लोगों से द्वन्द्व करना पड़ता है। वह दूसरे लोगों के चरित्र की नुक्ताचीनी में अपना समय व्यतीत करने लगता है। इस प्रकार की मनोवृति का उदय होना एक प्रकार की मानसिक बीमारी है। जिस व्यक्ति को दूसरों के सुधार के बिना चैन न मिले उसे विक्षिप्त मानना चाहिए। यह अपने ही दोषों का दूसरे लोगों पर आरोपण होने के कारण उत्पन्न होती है। जिस व्यक्ति को अपने व्यभिचार की भावना जितनी दबी रहती है वह उतना ही दूसरे लोगों के चरित्र की कमी से परेशान रहता है। कितने लोग

अपने कुटुम्बियों अथवा मित्रों के चरित्र की त्रुटियो से परेशान रहते हैं और कितने राष्ट्र भर का सुधार का भार अपने ऊपर ले लेते हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से एक ही व्यक्ति को हमें सुधारना है और वह है अपना आप; दूसरो के सुधारने की प्रवल मनोभावना की उत्पत्ति एक प्रकार का मानसिक रोग है जो कि दलित व्यभिचार की भावना के आरोपण के कारण उत्पन्न होता है।

व्यभिचार की दलित भावना से अकारण भय की उत्पत्ति भी होती है। साँप का भय, कीटाणुओं का भय, भूत का भय अथवा अँधेरे का भय, अकेले रहने का भय, रेल की सीटी का भय आदि इसी से उत्पन्न हो जाते हैं। लेखक के एक विद्यार्थी को साँप का अकारण भय था। इसके मानसिक अध्ययन से पता चला कि उसमें वड़ी ही आदर्शवादिता थी। वह योगाभ्यास करता था। इसी समय उसे यह रोग उत्पन्न हो गया। साँप का भय वास्तव में व्यभिचार की मनोवृत्ति के दमन का परिणाम था। पुराने कृत्य के कारण वह न केवल व्यभिचार से डरता था वरन् कामवासना से भी डरता था। वह इसका दमन करता था। जब कामवासना का दमन होता है तो वह शत्रु के रूप में प्रकाशित होती है। साँप कामवासना का प्रतीक है। अत्यधिक साँप का भय कामवासना के दमन का सूचक है।

हिन्दू-मुसलमान दंगे का भय भी हिन्दुओं के लिये कामवासना की शत्रुता का प्रतीक है। जो हिन्दू जितना ही आदर्शवादी होता है उसे हिन्दू-मुस्लिम दंगे का उतना ही अधिक भय होता है। इस प्रकार के भय से कभी कभी पूर्ण विक्षिप्तता व्यक्ति को आ जाती है।

जब तक मनुष्य किसी प्रकार के व्यभिचार में लगा रहता है उसे मानसिक रोग उत्पन्न नहीं होता है। व्यभिचार के कारण उसका समाज में स्थान भले ही गिर जाय अथवा उसे किसी प्रकार का भौतिक रोग उत्पन्न क्यों न हो जावे उसे मानसिक रोग उत्पन्न नहीं होता। मानसिक रोग मानसिक अन्तर्द्वन्द्व की अवस्था में ही उत्पन्न होता है। जब मनुष्य की नैतिक बुद्धि उसे एक ओर ले जाती है और उसकी पाशविक प्रवृत्तियाँ उसे दूसरी ओर ले जाती हैं तो मानसिक अन्तर्द्वन्द्व की अवस्था उत्पन्न हो जाती है। जब तक यह अन्तर्द्वन्द्व ज्ञात मन में होता है तब तक कल्याणकारी होता है। बिना इस प्रकार के अन्तर्द्वन्द्व के किसी भी मनुष्य के चरित्र का विकास नहीं होता। आत्म-संयम की शक्ति के विकास के लिये इस प्रकार का अन्तर्द्वन्द्व होना अत्यन्त आवश्यक है। पर जब इस प्रकार का अन्तर्द्वन्द्व आन्तरिक मन में चलने लगता है तो यह मानसिक बीमारी का कारण हो जाता है। मानसिक बीमारी किसी भारी संवेगपूर्ण घटना के कारण उत्पन्न होती है। इस घटना के कारण ज्ञात मन पर चलने वाला अन्तर्द्वन्द्व एकाएक रुक जाता है। पाशविक प्रवृत्ति का इस समय एकाएक दमन होता है। इससे एक ओर आदर्शवादिता उत्पन्न हो जाती है और दूसरी ओर मानसिक विक्षेप की सामग्री तैयार हो जाती है। उक्त सिद्धान्त को स्पष्ट करने के लिए एक उदाहरण देना आवश्यक है। इन उदाहरणों से यह देखा जायगा कि व्यभिचार के कारण एक ओर व्यक्ति में आदर्शवादिता आई और दूसरी ओर उसे विक्षिप्तता भी उत्पन्न हुई।

लेखक एक धनी और सुशिक्षित घर के नवयुवक से कुछ दिनों से परिचित था।

एक दिन उसके पिता मिले और उन्होंने कहा कि उस नवयुवक की बड़ी ही बुरी हालत है। वह चल फिर नहीं सकता है। वह घर भर के लोगों को परेशान कर डालता है। इस युवक से पहले से ही लेखक का मैत्रीभाव था। वह उसके पास गया। इस समय इस युवक को भारी पेट का और हृदय का रोग था। वह इसके मारे बेचैन था। डाक्टर लोगों की परीक्षा से रोग का कोई पता नहीं चलता था। वे लोग कहते थे कि उसे किसी प्रकार का रोग है ही नहीं। युवक की आयु २२ वर्ष की थी। वह काफी हट्टा कट्टा था। पर वह बिस्तर से उठ बैठ नहीं सकता था।

इसके रोग के इतिहास को जानने से पता चला कि इसका रोग तीन साल पुराना है। उसे पहले भी इसी प्रकार की बीमारी हो चुकी थी। इधर उधर जाने से बीमारी कुछ कम हो गई थी। लेकिन जड़ से नहीं गई थी। इसकी बीमारी का प्रारम्भ एक समय अँधेरे में डर जाने से हुआ था। जब यह युवक कमरे के ऊपर सो रहा था तो वह किसी आवाज को सुनकर अन्धकार में बाहर आया और वहाँ एकाएक चिल्ला उठा और बेहोश हो गया, कुछ देर के बाद उसे होश तो आ गया पर उसके मन की अवस्था विचलित हो गई। अब उसका पढ़ने लिखने में मन नहीं लगने लगा। उसने पढ़ाई छोड़ दी और कुछ रोजगार करने लगा, पर उसमें भी कोई सफलता प्राप्त न हुई। उसका मन और भी बेठिकाने होता गया। पीछे उसे हृदय के रोग आदि की बीमारी उत्पन्न हो गई।

रोगी के मन में अनेक प्रकार के सन्देह आते रहते थे। उसे कीटाणुओं से भय था। वह बड़ा ही प्रतिभावान व्यक्ति है, पर अपने मन को काबू में नहीं कर सकता था। उसके मानसिक अध्ययन से पता चला कि जब वह किशोर बालक था तो बिस्तर में पड़े पड़े कामवासना सम्बन्धी कल्पनाओं में विचरण करता और उन्हीं के कारण उसका कभी कभी वीर्यपात हो जाता था। पीछे उसने एक प्रतिष्ठित व्यक्ति की बनाई पुस्तक में पढ़ा कि जो व्यक्ति हस्तमैथुन करता है वह नपुंसक हो जाता है और शरीर निकम्मा हो जाता है। इस प्रकार के विचार का उसके मन में भारी प्रभाव पड़ा। अब उसका कामवासना रमण करना बंद हो गया वह आदर्शवादी बन गया। उसने हर एक प्रकार से अपने आप को उठाने का प्रयत्न किया। वह स्वयं आदर्शवादी घर का व्यक्ति था अतएव उसकी लगन उसी ओर हो गई। इधर उसका अन्तर्द्वन्द्व ज्ञात मन में न होकर अज्ञात मन में होने लगा। एक समय आया जबकि उसके जीवन में भय की घटना घटित हुई। इसके बाद उसकी मानसिक व्यथाओं ने विक्षिप्तता का रूप धारण कर लिया।

जब तक मनुष्य अपनी चेतना के द्वारा अपने मानसिक अन्तर्द्वन्द्व को सँभाले रहता है तब तक वह स्वस्थ दिखाई देता है, पर जब चेतना में इस अन्तर्द्वन्द्व को दबाकर रखने की शक्ति नहीं रह जाती तो उसे विक्षिप्तता आ जाती है। उक्त युवक के डर जाने के बाद उसे शारीरिक रोग उत्पन्न हो गया। यह शारीरिक रोग कल्पित था। पर उसकी पीड़ा वास्तविक रोग जैसी ही थी। अतएव डाक्टरों को इस रोग का समझना कठिन था। उक्त व्यक्ति का शारीरिक रोग, जैसे जैसे उसकी दवा करने की चेष्टा की गई, बढ़ता गया। वास्तव में उसे मानसिक उपचार की आवश्यकता थी। उसके मन में नपुंसकता का भाव बैठ गया था और इसी प्रकार शारीरिक निकम्मेपन का भाव भी दृढ़ता से उसके आन्तरिक मन ने पकड़

लिया था। इस बात का रोगी को ज्ञान भी न था।

इस रोग की चिकित्सा रोगी से मैत्री भावना पैदा करके उसके संदेहों को दूर करने से हो गई। धीरे धीरे रोगी ने अपने आपको लेखक के समक्ष खोला। उसने अपने जीवन की सभी गाथायें लेखक से कह सुनाईं और लेखक को उसके सन्देहों को अनेक दृष्टान्त देकर अलग करना पड़ा। इस कार्य में चार पाँच महीने का समय लगा। जब मनुष्य का आन्तरिक मन किसी बात को एक बार पकड़ लेता है तो चाहे वह कितनी ही निराधार और बुद्धि के प्रतिकूल क्या न हो जल्दी से छोड़ता नहीं। इतना ही नहीं, जिस व्यक्ति की मानसिक ग्रन्थियाँ जिस प्रकार की होती हैं उसी प्रकार के विचार भी उसके बन जाते हैं। ये विचार उसकी मानसिक ग्रन्थियों की रक्षा करते रहते हैं। किसी भी व्यक्ति की मानसिक ग्रन्थियाँ एकाएक नहीं खुलतीं। मानसिक ग्रन्थियों के खुलने के लिए कई दिनों तक शान्त मन से रोगी से बातचीत करने और उसे अपने भावों को प्रकाशित करने का अवसर देने की आवश्यकता होती है।

आत्म-स्वीकृति के बिना मनुष्य की मानसिक ग्रन्थियाँ नष्ट नहीं होतीं। पर आत्म-स्वीकृति कराना एक साधारण काम नहीं है। मनुष्य अपने कुकृत्य को भुलाना चाहता है, उसे उस कुकृत्य को स्मरण कराना अत्यन्त कठिन काम है। इतना ही नहीं, जब तक रोगी का प्राकृतिक भावनाओं के प्रति दृष्टिकोण नहीं बदल जाता उसमें आत्म-स्वीकृति करने का साहस नहीं होता। पर दृष्टिकोण को बदलना रोगी को पुनः शिक्षित करना है।

व्यभिचार और सदाचार, व्यक्ति की मानी हुई वस्तु ही है। पर ये धारणायें वैयक्तिक नहीं हैं ये समष्टिमन की धारणायें हैं। मनुष्य चाहे व्यक्तिगत रूप से किसी प्रकार के कर्म को बुरा न माने, पर यदि जिस समाज में वह रहता है अथवा पूरा मनुष्य समाज ही उसे बुरा मानता है तो उसे ऐसे काम को करने से वैसा ही दुःख होगा जैसा कि उसके बुरे मानने से होता। मानव समाज में प्रचलित नैतिक भावों के प्रतिकूल आचरण करने से मनुष्य अपने आप में अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति उपस्थित कर देता है जिसके कारण अनेक प्रकार के मानसिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। जहाँ कहीं अत्यधिक आदर्शवादिता देखी जाती है, वहाँ विरुद्ध भावों का दमन होता है। यह दमन पुराने अनुभव के प्रतिकार रूप से होता है। इस प्रतिकार के रूप में जो वासना का दमन होता है उससे मानसिक विच्छेद बढ़ता है। आदर्शवादी भाव और पाशविक भावनाओं में फिर इतनी विषमता उत्पन्न हो जाती है कि मनुष्य की चेतना दोनों में सामञ्जस्य स्थापित करने में असमर्थ हो जाती है।

प्राप्ति स्वीकार

एक अज्ञात गीताप्रेमी द्वारा, गीता प्रेस गोरखपुर, से प्रेषित हमें श्रीमद्भगवद्गीता की ५१ प्रतियाँ प्राप्त हुईं। ऐसे निष्काम सत्साहित्य प्रचार की भावना के लिए हम उन्हें धन्यवाद देते हैं और स्वागत करते हैं। जिनके पास वितरणार्थ उपयोगी साहित्य हो, अवश्य भेजें।

—व्यवस्थापक

क्या तुम जीवित हो ?

श्री विश्वामित्र वर्मा

मैदान में जन-समुदाय के बीच रहकर तुम्हारा अस्तित्व खोया हुआ सा रहता है। दुनिया की भीड़ में तुम्हारा महत्व क्या है ? इस भीड़ मे सब लोग तुम्हे तभी देख सकेंगे जब कि तुम भीड़ वालो से कुछ ऊँचे होओ, स्वयं लम्बे ऊँचे होओ, या किसी मञ्च पर, मीनार पर खड़े होओ। मञ्च पर, मीनार पर या पहाड़ पर पहुँचने के लिए चढ़ाई तो करना ही पड़ेगा। उच्च-पद पर पहुँचना जनसाधारण की अपेक्षा विशेष पद पाना वैभव पाना—यही सफलता है। किसी भी क्षेत्र मे सफलता पाने का यही अर्थ है, जिस प्रकार सफलता मिलती है उस प्रकार प्रयत्न करना। प्रयत्न अनेक प्रकार का होता है, किसी की खुशामद करना, सिर्फारिश पाना, इत्यादि, परन्तु कर्मठ होने के लिए चाहिए—लगन। दृढ़तापूर्वक लगन। जब तक तुम संसार के मौज मजे में, मोहजाल मे परम्परागत सकीर्णता और शर्म तथा आत्महीनता की भावना मे डूबे हो तब तक कुछ प्रयत्न नहीं करते, तब तक कुछ नहीं पाते, केवल कल्पना भले ही करते रहो।

सारे संसार में, जीवन में बहुत कम लोग सफल होते हैं। और जो लोग किसी क्षेत्र में सफल होते हैं, किसी विशेष प्रतिभा को प्रदर्शित करते हैं, उस क्षेत्र के इतिहास में उनका नाम उल्लेखनीय होता है। अब प्रश्न है कि केवल कुछ लोग या विरले लोग ही सफलता का उच्चपद क्यों पाते हैं, बाकी लोग क्यों नहीं पाते ? यह एक मनोवैज्ञानिक प्रश्न है, और इसका एकमात्र मनोवैज्ञानिक उत्तर यह है कि लोगों में जितनी प्रतिभा है उसका दसवाँ हिस्सा बड़ी मुश्किल से प्रदर्शित करते हैं, इसका अर्थ यह हुआ कि एक गाँव मे एक किसान या एक नगर का एक साहूकार यदि सौ वर्ष जीकर मरता है तो उसे दस वर्ष की उम्र में ही मरा समझिये। इस हिसाब से मन से संकुचित, अपने क्षेत्र मे ही संकुचित कहकर, जब तक वह विशालता के क्षेत्र में नहीं आता, अपनी लोकोपकारी सर्वांग और सर्वोपयोगी प्रतिभा या सम्पद् का प्रदर्शन नहीं करता, उसे निर्जीव ही समझना युक्त होगा। इस हिसाब से केवल अपने पैतृक या परिस्थिति प्रदत्त धंधे में लगे रहकर सौ वर्ष के जीवन तक कोई पेट भरता रहे तो उसके जीवन का कोई महत्व नहीं हुआ। और उसको सौ वर्ष तक एक प्रकार से निर्जीव ही समझना चाहिए।

मनुष्य में बहुत सी प्रतिभा है, सब में प्रतिभा होती है, प्रतिभा कोई पैतृक देन नहीं है, परमात्मा की विशेष कृपा नहीं है। कहा जाता है कि मस्तिष्क में लगभग तीन सौ प्रकार की कला या प्रतिभा होती है। कितने आश्चर्य, शर्म और दुःख की बात है कि संसार के इतिहास मे थोड़े लोगों को विचित्र और विशेष कार्यकर लोकप्रिय होते देखकर हम में उनके समान कुछ करने के लिए प्रेरणा भी नहीं जागती। मन मे एक साधारण लहर सी उठती है कि हम भी ऐसे विख्यात हों। मानो मानस वाटिका मे कुछ सुगंधि आ गई। कुछ करने को हाथ पाँव नहीं उठता, बोलने को मुँह नहीं खुलता कि हमारे मन में कौन सी कल्पना अथवा योजना भरी हुई है जिसे कार्यान्वित करने से समाज का या देश का कल्याण होगा, अथवा राष्ट्र की समस्याएं सुलझ

जायँगी। इसका कारण है संकीर्णता और शर्म के संस्कार, तथा अन्य ऐसे ही परम्परागत संस्कार जो हमें कूपमण्डूक बने रह कर सन्तुष्ट रहने को बाध्य करते हैं। ये संस्कार हमारे जीवन के घातक हैं, हमारे समाज के घातक हैं, हमारे देश के घातक हैं, मानवता के घातक हैं। यह घातक मानसिक रोग है, देशव्यापी, परम्परागत मानसिक रोग है। यह रोग बड़ी भारी कमजोरी है। इस कमजोरी से जीने का कोई महत्व नहीं। यह कमजोरी आत्म विकास की बाधक और जीवन की घातक है। आत्मशक्ति, अपनी प्रतिभा प्रदर्शित कर संसार में कुछ अनोखा काम कर जाना, नवइतिहास का निर्माण कर जाना ही महत्व का जीवन है। कोठी या गोदाम में भरा हुआ गेहूँ तभी ऊगेगा, सैकड़ों गुना फसल देगा और देश को पुष्ट करेगा, जब कि उसे खेत में बोया जाय। यही बात तिजोरी में भरे हुए धन और मस्तिष्क में छिपी हुई सुप्त प्रतिभा के विषय में कही जा सकती है। पृथ्वी रत्नगर्भा है, और वे रत्न प्रयत्न से ही निकाले जाते हैं।

तुम मनुष्य हो। मनुष्य में शक्ति है, शक्ति न होती तो वह जी न सकता। तुममें आकांक्षा है, आकांक्षा न होती तो इतने बड़े न होते और तुममें मस्तिष्क भी न होता; और चाहे पाँच ज्ञानेन्द्रियों में से तुम्हारी एक ही इन्द्रिय बाकी बची हो, एक ही उँगली, एक ही टाँग और एक ही फेफड़ा बचा हो, फिर भी संसार तुम्हारा अस्तित्व है, तुम्हारा महत्व है, तुम कुछ कर सकते हो। जब तक तुम जीवित हो, चाहे जिस दशा में, जहाँ जीवित रहो, कुछ कर सकते हो, क्योंकि तुम्हारी आकांक्षा और प्रतिभा जीवित है, मरी नहीं। और तुम्हारा आत्म-तत्व हर हालत में पूर्ण है, तुम्हारी प्रतिभा पूर्ण है। चाहे तुम्हारा दिल कितना भी टूट गया हो, परन्तु जब तक दिल धड़कता है तब तक इस कर्मठ संसार में तुम्हारा मूल्य है।

जरा आत्म-विचार करो, गंभीरता पूर्वक विचार करो कि इतने दिनों तक तुम्हारा कितना जीवन अकारण ही नष्ट हो गया। अब निश्चय करो कि अब एक क्षण भी नष्ट न होने दूँगा। तीन सौ प्रकार की प्रतिभा में से अपनी विशेष रुचि की प्रतिभा का निश्चय कर अनुकूल आदर्श का उपार्जन करो। और कोई ऐसा आदर्श मत स्थिर करो जिसकी पूर्ति में वर्षों लग जायँ, परन्तु ऐसा आदर्श स्थिर करो जिसके लिए तुममें तुरन्त उत्साह और साहस जाग्रत हो जाय, जिसे तुम शीघ्र ही सिद्ध करो। तुम्हारे जीवन का, सफलता की सीढ़ी में यह पहला चमत्कार होगा, और इसके सिद्ध होते ही तुम्हारा आलस्य, संकीर्णता, शर्म, बाधाएँ, सब भाग जायँगी।

याद रखो, जीने का अर्थ है, कुछ करना। यदि तुम जीवित हो और जीना चाहते हो तो आलस्य, शर्म, संकीर्णता, हीनता, छोड़ो और अपनी प्रतिभा प्रदर्शित करो।

तुम इच्छा भर, पेट भर भोजन करते हो, तो श्वास से छाती को भी खूब भरो। भोजन की अपेक्षा तुम्हें प्राण की अधिक आवश्यकता है। और जीने के लिए, सफल होने के लिए, छाती भर कर खूब श्वास लेते हुए, जी भर कर अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करो, अपनी महत्वाकांक्षाओं को सिद्ध करो, यही तो जीवन है, यही हो सफलता है।

रोगमुक्ति की आत्मकथा

मैं टी० बी० से मुक्त हुआ

श्री रघुवीरसिंह

मैं १९२६ में रेलवे ए० वी० स्कूल कोटा राजस्थान में सहायक अध्यापक की हैसियत से रखा गया था। काम धाम की ज्यादती या अनुभवहीनता या खानपान की अव्यवस्था या किसी भी कारण से मुझे क्षय रोग (टी० बी०) हो गया। रेल्वे के डॉक्टर के निर्णय के बाद मैं अपने वतन हैद्राबाद स्टेट में आया और यहाँ के बड़े से बड़े टी० बी० स्पेशलिस्टों से मुलाकात की, उन्होंने भी वही निर्णय दिया। उस वक्त उनके बताये हुए इन्जेक्शनो और गोलियो और दूसरी-दूसरी दवाओं मे मुझे अपनी तीन महीने की तनख्वाह खर्च करनी पड़ी। इस तरह एक तो बीमारी, दूसरे आश्रितों की परवरिश, आर्थिक संकट वगैरह से मैं बहुत परेशान था फिर भी बीमारी और डॉक्टरों को क्या कह सकता था ? लाचारी से उधार ले लेकर खर्च चलाकर दवाएँ खरीदनी पड़ीं।

एक इन्जेक्शन लिया, गोलियाँ गटकना शुरू किया, दवाएँ पीना शुरू किया। चार दिनों बाद दूसरे इन्जेक्शन की बारी आई। फिर कोटा रेल्वे दवाखाने में गया। डॉक्टर साहब कुछ लिख रहे थे, दो घण्टे इन्तजार करना पड़ा। बार-बार याद दिलाई कि इन्जेक्शन की बारी है, कृपया इन्जेक्शन दे दीजिये। जवाब मिलता, जरा ठहरो। आखिरकार मदरसे का वक्त हो गया, मैंने उठकर कहा, स्कूल जाना है, समय हो गया, कृपया आज्ञा दें। डॉक्टर साहब ने जवाब दिया, "जाओ, कल आओ।" मेरी स्वाभिमानी भावनाएँ जागृत हो गई। उचित अनुचित जली कटी सुनाकर मैंने बचे हुए ११ इन्जेक्शन्स और दूसरी कुल दवाएँ उन्हें देकर कहा, "मेरी तरफ से आप किसी गरीब टी० बी० के रोगी को ये सब दे देना, और अब मैं भविष्य में कभी भी रोगी बन कर दवाखाने न आऊँगा।" मेरी भावनाएँ भड़कीं। मैंने, टी० बी० क्या है, क्यों होता है, वगैरह विषयों पर हिन्दी, मराठी, गुजराती, उर्दू, इंग्लिश आदि भाषाओं में, जो पुस्तकें मिलीं, खरीदा, पढ़ा। अध्ययन के बाद उस पर चलकर अनुभव किया। जैसे जैसे अनुभव बढ़ता, शंकाएँ बढ़तीं, बीमारी बढ़ती, खर्च अखराजात बढ़ते, परेशानियाँ बढ़तीं। खर्च से परेशान होकर मुझे प्राइवेट ट्यूशन्स बढ़ाने पड़े। स्कूल में अपने विषयों को इतनी दिलचस्पी से पढ़ाया कि प्राइवेट पढ़ाने की जरूरत ही न होती, और उसे देखकर मेरी आमदनी काफी बढ़ी। साथ ही बीमारी भी। आखिरकार इस रोग से परेशान होकर, Eat, Drink, and Enjoy अर्थात् खाओ पियो मौज करो वाली कहावत पर चल पड़ने और जल्द ही मौत के मुँह मे जाने को मैंने निश्चय कर अपने आपको तैयार कर लिया। बाजार जाकर कीमती कीमती कपड़ा खरीदा, दर्जी की दूकान पर जाकर सिलने को दिया। घर से निकलकर बाजार जाने तक में इतना थक गया था कि उसी दूकान पर लेट गया। लेटकर मैंने करवट पलटी। करवट क्या पलटी, मेरे भाग्य पलट गये। देखा, एक फटी पुरानी सी, गई बीती हालत की छोटी सी पुस्तक जिसके मुखपृष्ठ पर "कल्पवृक्ष" लिखा है। उस पुस्तक को उठा लिया, भीतर देखा, एक लेख मिला, "क्षय का सरल

इलाज।" चूँकि यह लेख मेरी बीमारी से संबंधित था, उसे ही पढ़ा। सरल इलाज वाकई में सरल था और सरल है। उस लेख का भावार्थ था, "धूप में बैठकर सरसों के तेल की मालिश करो, ठण्डे जल से स्नान करो, गहरा श्वासोच्छ्वास लो, खाने पीने और रहन सहन में तबदीली।"

मुझे आपके इस इलाज से पूरा लाभ हुआ। मेरी हर चीज का इस इलाज से खूब मेल जम गया। सवेरे ट्यूशन के बच्चों को सात से दस बजे तक धूप मे लेकर बैठता, उन्हें हिसाब पढ़ाता जाता, सरसों के तेल की मालिश करता जाता। स्नान कर, खाना खा, पाठशाला जाता। चार बजे स्कूल से छूटकर घूमने जाता, खूब दीर्घ श्वास लेता छोड़ता, शाम को फिर बच्चों को खुली हवा मे इंग्लिश हिन्दी पढ़ाता, सो जाता। इस तरह बच्चों की पढ़ाई खूब होती, मुझे आमदनी खूब होती, और इस प्राकृतिक इलाज से दिन ब दिन बीमारी कम होते खत्म हो गई और मैं एकदम तन्दुरुस्त बन गया।

इसके बाद १९३२ में रेल्वे स्कूल की नौकरी से हटकर हैद्राबाद स्टेट में अपने निजी स्कूल में पढ़ाना शुरू किया और साथ साथ टी० बी०, लकवा, श्लीपद, बवासीर, हाइड्रोसील, हिस्टीरिया आदि असाध्य रोगों का प्राकृतिक उपचार करता रहा और गुजरात, कठियावाड़, राजपूताना प्रान्तों में भ्रमण कर उपचार किया।

आपकी प्रकाशित पत्रिका मेरी जीवनदाता बनी, और इस मार्गदर्शिका के सम्पादक प्रकाशक सन्त नागर जी का लाभ लेने भी मैं सेवा में हाजिर हुआ था और तीन दिन पश्चात् आदेश लेकर मैं गुजरात लौटा।

पाठकों के अनुभव

कल्पवृक्ष का वार्षिक मूल्य ३॥) कर दिया जायं तो घाटा भी पूरा हो जायगा, और ग्राहक भी बने रहेंगे।

एक साल मेरे टान्सिल हो गये थे, मैंने स्व० डॉ० दुर्गाशंकर नागर जी को पत्र लिखकर पूछा, उन्होंने शीतली प्राणायाम करने को आदेश दिया। मैंने करना शुरू किया, गरमी से होते थे, सो अब नहीं होते। जब से कल्पवृक्ष मँगाया तब से क्रोध बहुत शांत हो गया है। भक्ति की तरफ श्रद्धा बहुत हो गई है। मैं नाक से पानी पीकर मुँह से निकालता था इसको १३–१४ वर्ष किया जिससे सिर में दर्द कभी नहीं हुआ, जुकाम नहीं हुआ। बम्बई के एक प्रसिद्ध योगाश्रम वालों ने मुझे यह करने को मना किया कि बम्बई की तर जलवायु में यह क्रिया (नेति) आवश्यक नहीं। तब से सिर में दर्द रहता और जुकाम भी हो जाया करता है।

—भूरामल खण्डेलवाल, बम्बई

उत्तर—आप वह क्रिया पुनः आरम्भ कर दीजिए।

सेंक से लाभ

डॉ० लक्ष्मीनारायण जी टण्डन, 'प्रेमी'

शिशु को जब हल्की चोट लग जाती है, तो यदि माता पिता मुँह से कपड़ा फूँककर चोट के स्थान पर रख देते हैं तो बच्चा प्रसन्न हो जाता है, और पूछने पर कहता है कि चोट ठीक हो गई। यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि केवल विश्वास द्वारा अनेक रोग चले जाते हैं। बच्चे को यह विश्वास होता है कि 'फुक्का' देने से चोट अच्छी हो जाती है, अतः 'फुक्का' देने के बाद वह अनुभव करता है कि मेरी चोट अच्छी हो गई। यह साधारण बात इस बात को प्रमाणित करती है कि प्रकृति द्वारा सेंक से लाभ होने का नियम निर्विवाद सत्य है। आँख में जब तिनका या भुनगा आदि चला जाता है तो हम कपड़े को मुँह की भाप से गरम करके आँख पर रखते हैं, इससे हमें राहत मिलती है और तिनका या भुनगा भी बाहर आ जाता है। सेंक भी प्राकृतिक चिकित्सा का एक अंग है।

सेंक सूखी होती है, और गीली भी। ईट, पत्थर या रेत को गरमकर, कपड़े से लपेटकर, उससे हम सेंकते हैं। रुई या कपड़े को गरम करके भी हम उससे सेंकते हैं। शीशे या रबड़ की बोतल में पानी भरकर उससे भी सेंक दी जाती है। यह सब सूखी सेंक हुई। कपड़े या रुई को गरम पानी में भिगोकर स्थान विशेष को सेंकना गीली सेंक के अन्तर्गत है। सूखी सेंक की अपेक्षा गीली सेंक अधिक लाभप्रद होती है। सूखी सेंक कोषाणुओं को नाश करता है पर गीले सेंक से ऐसा नहीं होता या बहुत कम होता है। जीवनी ठण्डक से रहती है बढ़ती है। गर्मी से जीवन का नाश होता है। पाठक इन शब्दों को न पकड़े, इनके भाव को देखें। उदाहरणार्थ पस (Pus) जितना बनना चाहिये उससे अधिक सेंक से बढ़ता है। गीली सेंक से खून की गरमी कभी नहीं बढ़ेगी पर सूखी सेंक से बढ़ सकती है। गीली सेंक के बाद तो फिर पुल्टिस की भी आवश्यकता नहीं रह जाती। पुल्टिस से भी तो एक प्रकार की सेंक पहुँचाई जाती है। चोट में गरम हल्दी चूना लगाकर कपड़ा बाँधना, भीतरी चोट या फोड़े आदि में आटे या बेसन की गरम रोटी बाँधना, या बरगद पीपल आदि के पत्तों में तेल, घी और नमक आदि लगाकर गरम करके बाँधना आदि सब सेंक ही के रूप हैं।

बहुत तेज ज्वर में, ज्वर को कम करने के लिए रबड़ की बोतल में बरफ भरकर माथे पर रखते हैं। यह भी सेंक है। गीली सेंक के तीन तरीके होते हैं—१. सीधी गीली सेंक, २. गरम गीली सेंक और ठण्डी पट्टी (सर्द गर्म सेंक) बराबर क्रम क्रम से; ३. तीन मिनट गरम सेंक और सिर्फ आधे मिनट ठण्डी सेंक, और इसी प्रकार क्रमशः।

उदाहरणार्थ यदि पेट में फोड़ा बना है, भीतर ही फूटा है और मवाद नहीं निकल सका है तो मृत्यु अनिवार्य है, सेक से कुछ न होगा। पर यदि अपेंडिसाइटिज है तो १५ मिनट बरफ की सेंक, और ५ मिनट गरम सेंक दें; वैसे ही जिगर के फोड़े में १५ मिनट गरम सेंक और ५ मिनट ठण्डी सेंक दें। टब (नाँद) में गरम पानी डालकर रोगी को बैठावें, स्मरण रहे कि पानी का तापक्रम गिरने न पाये, इसके लिए बार बार थोड़ा थोड़ा गरम पानी उसमें डालते रहें जिससे

तापक्रम एक सा बना रहे। आँतों सम्बन्धी कष्टों तथा शूल के दर्द आदि में गरम पानी का एनिमा दें फिर पेड़ू पर भाफ स्नान करावें। फिर गरम पानी के टब में बिठा दें। इससे इन रोगों में लाभ होगा। एनिमा भी आँतों के लिए एक प्रकार की सेंक है।

दाँत के दर्द में मिट्टी गरम करके लगावें। सूखी गरम रुई से भी सेंक कर सकते हैं। गले में दर्द हो तब गरम ईंट आदि से सेंक देते हैं, परंतु गरम सूखी सेंक के बदले गरम पानी की पट्टी से सेंक दें तो अधिक अच्छा हो। वैसे ही जब कर्ण मूल में जब दर्द हो और सूजन भी, तो पहले १० मिनट गरम, फिर १० मिनट ठण्डी सेंक दें। गरम और ठण्डी सेंक का क्रम बराबर चले।

इन उदाहरणों से सेंक द्वारा उपचार का महत्व बताया गया है। छोटे शिशु को माँ अपनी छाती से लगाकर अपने शरीर की गर्मी द्वारा उसे सेंक पहुँचाती है। इससे शिशु को लाभ होता है। हम सूर्य की धूप में बैठते हैं, यह भी एक प्रकार की सेंक है जो प्राकृतिक रूप से हमारे शरीर को मिलती है।

आजकल अनेक प्रकार के वैज्ञानिक ढंग से बिजली के द्वारा सेंक होती है, यथा लघु लहरी (Short Wave) में भीतर से गरमी शुरू होकर ऊपर आती है। दूसरी सूक्ष्म किरण (Ultra Violet) मे ऊपर से गरमी शुरू होकर भीतर गर्मी जाती है। इन्हीं किरणों की गरमी से बीज पैदा होते हैं, इसी से विटामिन 'डी' पैदा होता है। नकली तौर पर इसका लैम्प बनाते हैं। कैंसर में इन्हीं किरणों से इलाज होता है।

यदि कोई चीज खूब गरम लाल कर लें तो तीक्ष्ण (Infra-red-Rays) किरणें पैदा होंगी। सूर्य किरणों में सात रंग होते हैं—बैंगनी, आसमानी, नीला, हरा, पीला, नारंगी और लाल। इन किरणों को वैज्ञानिक यंत्रों से देखा जा सकता है, धूप के समय वर्षा होने पर पानी की बूँदों से सप्तरंग 'इन्द्रधनुष' आसमान में दिखाई देता है। आदि और अंत से आगे सूक्ष्म और तीक्ष्ण किरणें आँखों से दिखाई नहीं देतीं। नीले और लाल के बाद सूक्ष्म तीक्ष्ण किरणें होती हैं जो साधारण सफेद या रंगीन किरणों से कहीं अधिक लाभदायक होती है। प्रातः निकलते सूर्य से हमें वे सूक्ष्म किरणें Ultra violet rays मिलती हैं। इसी से हमारे धर्मग्रन्थों में सूर्य प्राणायाम या सूर्य नमस्कार को महत्व दिया गया है। वह धर्म का एक अंग बना दिया गया था। प्रातः सूर्योदय से निवृत्त होकर नंगे बदन निकलते सूर्य की सूक्ष्म रश्मियों का सेवन करें। यही कारण है कि महर्षियों ने प्रातः काल उठना धर्म (कर्त्तव्य) कहा है। नदी स्नान का भी इसी से महत्व है। प्रातः शुद्ध वायु और सूर्य रश्मियाँ, गले तक बहते जल में स्नान, चलने फिरने का व्यायाम, स्नान के बाद सूर्य के सम्मुख बैठकर हवन, प्राणायाम पूजा पाठ आदि, फूल तथा चन्दन आदि सुगंधित सात्विक वस्तुओं से, एक पंथ दो काज होते हैं। प्रातः यदि चित्त प्रसन्न रहता है तो दिन भर प्रसन्न रहेगा। यह सब जल, वायु तथा सूर्य रश्मियों की प्राकृतिक सेंक का सुखद परिणाम है।

अमूल्य उपदेश

ब्रह्म न तो जड़ है न चेतन। न सगुण न निर्गुण। न एक न अनेक। वह केवल है, बस इतना जानो।

क्या आपने पढ़ा है ?

भस्मक रोग और भूत !

एक ३५ वर्ष की स्त्री को बच्चे हुआ करते परन्तु बच्चों को सूखा रोग हो जाया करता और ३–४ मास में वे मर जाया करते थे। तीन चार बच्चे मर गये। एक दिन स्त्री पुरुष दोनों ने मुझे सब वृत्तान्त कहा। मैंने स्त्री को गहरी नीली बोतल का पानी दिन में तीन खुराक पीने को दिया और क्रम जारी रखा। स्त्री ने पुनः गर्भवती हो नवें मास हृष्टपुष्ट बालक का प्रसव किया जो अब दो वर्ष का और तन्दुरुस्त है।

एक स्त्री, उम्र लगभग ३५ वर्ष, का पेट बहुत भारी हो गया था और उसमें अन्दाजन दो सेर वजन का गोला मालूम होता था, शंका थी, गर्भ है, और वह मोटी हो जाने से कठिनाई से चल फिर सकती थी। उसे चार खुराक नित्य सुनहरी बोतल का पानी चार मास तक दिया। गर्भधारण का भय मिथ्या हुआ, पेट कोमल हो गया, गोला नष्ट हो गया, सब कष्ट दूर हो गये, वह मजे में चलने फिरने लगी।

जब पित्त तेज होकर सब शरीर में आतश पैदा होती है तो मनुष्य १०–२० व्यक्तियों की खुराक एक दिन में खा जाता है, इतना खाने पर भी वह निर्बल और क्षीण होता जाता है, इसे भस्मक रोग कहते हैं। हल्की नीली बोतल का जल प्रति दो दो घण्टे में ढाई तोला चार छः खुराक देने से लाभ होगा। इस प्रकार बहुत से रोगों के लक्षण, उपचार और पथ्यापथ्य "सूर्य किरण चिकित्सा" पुस्तक में स्व० गोविन्द बापू जी टोंगू ने अपने दीर्घकालीन गंभीर अनुभव से लिखे हैं। कल्पवृक्ष कार्यालय को पाँच रुपये दस आने भेजकर यह पुस्तक आप घर बैठे प्राप्त कर अपना और दूसरे दुःखियों का आप सहज ही इसके द्वारा उपकार कर सकेंगे। कोई दवा या डॉक्टर वैद्य हकीम की जरूरत नहीं।

कल्पवृक्ष कार्यालय में गत तीस वर्षों से मानसिक रोगों का इलाज होता आ रहा है, इसमें भूत प्रेत बाधा से पीड़ितों का उपचार भी सम्मिलित है। एक महाराष्ट्र सज्जन के मुँह से रक्त की गाँठें गिरती थीं, अपना इलाज कराने आये थे, भूत प्रेतो से दुःखी लोगों की चिकित्सा देखकर मजाक उड़ाते कि यह सब ढोंग है और भूत प्रेत झूठ है। एक दिन सायंकाल को वे कुरसी पर बैठे थे कि एकाएक चिल्लाये, नीचे कूद पड़े, बेहोश हो गये। मूर्च्छित अवस्था में ही बोलने लगे—क्या आप इस व्यक्ति के इतिहास से परिचित हैं ? यह बड़ा विश्वासघाती और निर्दयी मनुष्य है। मैं अमुक महाराष्ट्र ब्राह्मण की लड़की (इंदौर की) हूँ। ये सज्जन मेरे प्रायवेट शिक्षक थे, तत्वज्ञानी हैं, यह देख इनसे मेरा प्रेम हो गया और इनसे ही विवाह करने की इच्छा हुई और ये मेरे प्रस्ताव से सहमत भी हो गये। फिर ये अपने घर (दूसरे शहर) चले गये, मैंने लिखा किन्तु एक पत्र का भी उत्तर इनने नहीं दिया। मैं स्वयं मोटर से इनके यहाँ गई तो मुझे देखकर ये घर से चल दिये। इनकी माँ से बातचीत कर मैं लौट आई और इनके दुर्व्यवहार से मुझे संताप हुआ, मैंने आत्मघात करने के लिए अफीम खा ली और पिता से सब हाल कह दिया। डॉक्टर को बुलाया गया और इनको बुलाने को भी तार दिया पर ये मेरी मृत्यु के बाद पहुँचे। तब से इनको राजयक्ष्मा का रोग मेरे ही कारण है। तब से मैं इनके साथ हूँ, आजन्म इनके साथ रहूँगी, मेरा इनसे

सम्बन्ध हो चुका है ये अब दूसरा विवाह नहीं कर सकते। यदि कुछ कार्य हुआ तो इनकी मृत्यु हो जायगी। जिनके यहाँ ये ठहरे हैं उनसे आप पूछिए कि रात को इनका क्या हाल होता है। मैं इनसे तत्व ज्ञान की चर्चा किया करती हूँ।

जिनके यहाँ ये सज्जन ठहरे थे उनसे प्राइवेट में कहा गया कि आप किसी दिन देखिए रात को ये क्या करते हैं। उनसे पता लगा कि ये स्वयं अपने आप बातें किया करते हैं और मालूम होता है कि किसी स्त्री से संभाषण कर रहे हैं।

इनके घर वालों को तार देकर बुलाया और पूछा तो घटना सत्य निकली। इनकी माता को समझा दिया कि इनके विवाह की कोशिश न करें। तब से इनकी दशा सुधरने लगी और रोगमुक्त हो गये।

स्व० सन्त नागर जी ने ऐसे विचित्र लक्षण वाले रोगियों की चिकित्सा और सिद्धान्त तथा साधन अपनी अनुभवपूर्ण पुस्तक प्राण चिकित्सा में दिये हैं, इसका मूल्य दो रुपये है। ढाई रुपये भेजकर आप इसे घर बैठे प्राप्त करें। सूर्य किरण चिकित्सा के साथ इसे मँगाने में कुछ बचत होगी।

नवरात्र-समारोह

श्री व्रजभूषण मिश्र, एम० ए० बी० टी०

जिस प्रकार शीत आदान काल होता है उसी प्रकार ग्रीष्म प्रदान काल होता है जिसमें शीतकाल में अनावश्यक संचित पदार्थ बाहर निकल जाय और जो आत्मसात् के योग्य पदार्थ है वह अपना लिया जाय। इस कार्य का प्रारंभीकरण नवरात्रि से ही विशेषतया होता है। यही वसन्त की ऋतु है। यदि नवरात्र का अनुष्ठान ठीक से कर लिया गया तो फिर ग्रीष्मकालीन बीमारी चेचक, प्लेग, लूह, हैजा आदि के होने की संभावना जाती रहती है। यही सोच विचारकर प्राचीन आचार्यों की नवरात्रि व्यवस्था अत्यन्त उत्तम, आवश्यक व उपयोगी प्रतीत होती है।

नवसंस्कृति के नाम से नवीनता के प्रति आकर्षण और प्राचीनता के प्रति रूढ़िवाद के अपशब्द से तिरस्कार किए जाते हैं जिससे संहारकारी रोगों का दिनोंदिन प्रसार होता दिखता है। नयी संस्कृति तो स्व-की तृप्ति करने को उत्तेजित करती है और प्राचीन इसके विपरीत स्व के संयम की प्रेरणा देती है। भोग और संयम का प्रश्न है। इन्द्रिय और विवेक का प्रश्न है। विवेकी संयम पसन्द करेगा क्योंकि भोग की इतिश्री होती ही नहीं। एक भोग से दूसरे, दूसरे से तीसरे और फिर विविध इन्द्रियों की तृप्ति और इन्द्रियाँ अशक्त—सबका अन्त होता है हाहाकार लालच में पड़े रहना।

संस्कृति के नाम से, धर्म के नाम से, परम्परा के नाम से चिढ़ हो तो उसे छोड़िये। विज्ञान के नाम पर, नकद सौदे के नाम पर, एक हाथ दे उस हाथ ले के नियम के अनुसार भी नवरात्रि समारोह का मनाना आवश्यक है। उत्तम तो यह है कि इस काल में उपवास रक्खा जाय, यदि सम्भव न हो तो एकाहार, रसाहार, फलाहार किया जाय और पेट को साफ करने के निमित्त एनिमा

ले लिया जाय । यदि आत्मशक्ति दैवी-शक्ति को बढ़ाने की इच्छा हो तो विशेष पाठ, विशेष जप, विशेष क्रिया भी कर लेनी चाहिए। ऐसा करने से ६ महीनें के रोगों से छुटकारा मिल जायगा और तन तन्दुरुस्त व मन बलिष्ठ हो जायगा।

मराठी सूत्र

१—सब शास्त्र पढ़े हों पर अपने पेट की रोटी बनाना न आता हो, उसकी अपेक्षा मूर्ख रसोइया अच्छा जो रोटी बनाकर स्वयं खाता और दूसरों को भी खिलाता है। शास्त्रों की अपेक्षा रोटी बड़ी है जिससे जीवन पुष्ट हो। रसोइया भूखा नहीं मरता।

२—उदारता के विस्तार की सीमा नहीं। उदारता से, मनुष्य मरकर भी अमर रहता है।

३—पत्नी का चुनाव करता हो तो केवल आँखों से ही न कर लें, कानों के द्वारा करें।

४—करोगे तो तरोगे। काम के बिना कमाई नहीं।

५—भय दूर करो, फिर जय निश्चित है।

६—कुछ ऐसा काम करो कि मरने के बाद भी तुम्हारी कीर्ति रहे।

७—सदाचार के समान दूसरा व्रत नहीं।

८—निश्चय की मुट्ठी सवा लाख की होती है।

९—कामचोर बनना, भिखारी बनने का लक्षण है।

१०—शुभ काल और शुभ दिन आज ही है। जिसे कुछ करना है वह मुहूर्त के लिए बैठा नहीं रहता।

११—जिन्हें काम करना है, और जो काम करने वाले हैं उन्हें बकवाद के लिए समय नहीं मिलता। जो बकवाद करते हैं वे अकर्मी हैं।

१२—केवल सिर हिलाने से काम नहीं चलता, हाथ पाँव हिलाइए।

१३—प्रयत्न करने से परमेश्वर भी मिल जाता है, फिर दुनिया के काम क्यों प्रयत्न से न सिद्ध हों?

१४—प्रयत्न कितना ही थोड़ा हो, व्यर्थ नहीं जाता।

१५—आलसी के लिए कोई वकील नहीं मिल सकता, मित्र सैकड़ों मिलेंगे।

१६—सद्गुण होना बड़ी बात है, पर उसका प्रदर्शन करना भूल है।

१७—जन्म मिला है जीने के लिए, मरने के लिए नहीं।

१८—जो काम में दृढ़ रहता है उसी का काम सिद्ध होता है।

१९—सोचो, अब तक क्या किया? कब क्या करोगे? कुछ निश्चय करो, और करो।

२०—जवानी में अविश्रान्त परिश्रम करनेवाले को वृद्धावस्था में विश्राम (सुख) मिलता है।

राजयोग ग्रंथमाला

अलौकिक चिकित्सा विज्ञान

अमेरिका में योग प्रकारक बाबा रामचरक जी की अंग्रेजी पुस्तक का अनुवाद चित्रमय छपा है। इसमें मानसिक चिकित्सा द्वारा अपने तथा दूसरों के रोगों को मिटाने के अद्भुत साधन दिये हैं। मूल्य २) रुपया, डाक खर्च ॥)

सूर्य किरण चिकित्सा

सूर्य किरणों द्वारा भिन्न-भिन्न रंगों की बोतलों में जल, तैल तथा अन्य औषधि भर कर सूर्य की शक्ति संचित कर तथा रंगीन काँचों द्वारा सूर्य की किरणें व्याधिग्रस्त स्थान पर डाल कर अनेक रोग बिना एक पाई भी खर्च किये दूर करना तथा रोगों के लक्षण व उपचार के साथ पथ्यापथ्य भी दिये गये हैं। नया संस्करण मूल्य ५) रुपया, डाक खर्च ॥=)

संकल्प सिद्धि

स्वामी ज्ञानाश्रमजी की लिखी हुई यथा नाम तथा गुण सिद्ध करने वाली, सुख, शांति, आनन्द, उत्साह वर्द्धक यह पुस्तक दुबारा छपी है मूल्य २) रुपया, डाक खर्च ।=)

प्राण चिकित्सा

हिन्दी संसार में मेस्मेरिज्म, हिप्नाटिज्म, चिकित्सा आदि तत्वों को समझाने व साधन बतलाने वाली एक ही पुस्तक है। कल्पवृक्ष के संपादक नागरजी द्वारा लिखित गम्भीर अनुभवपूर्ण तथा प्रामाणिक चिकित्सा के प्रयोग इसमें दिये गये हैं। जीवन में इस पुस्तक के सिद्धांतो से दीन-दुखी संसार का उपकार कर सकेंगे मूल्य २) रुपया, डाक खर्च ।=)

प्रार्थना कल्पद्रुम

प्रार्थना क्यों तथा किस प्रकार करनी चाहिये। दैनिक सामूहिक प्रार्थना द्वारा अनिष्ट स्थिति से मुक्त होने व दूरस्थ मित्रों व मृत आत्माओं को शांति व अमोघ सन्देश दिलाने वाली आज के संसार में अपूर्व पुस्तक है। मूल्य ॥) आना।

आध्यात्मिक मण्डल

घर बैठे आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त करने व साधन करने के लिए यह मण्डल स्थापित किया गया है, जिससे स्वयं शारीरिक व मानसिक उन्नति कर अपने क्लेशों से मुक्त होकर दूसरों का भी कल्याण कर सकें। सदस्य बनने वालों को शिक्षा व साधन के लिए प्रवेश शुल्क १०) रुपये हैं और निम्नलिखित पुस्तकें दी जाती हैं:—

१–प्राण चिकित्सा २–प्रार्थना कल्पद्रुम ३–ध्यान से प्राण चिकित्सा ४–प्राकृतिक आरोग्य विज्ञान ५–आरोग्य साधन पद्धति ६–अध्यात्म शिक्षा पद्धति ७–त्राटक चार्ट ८–ॐ दर्शन ९–आत्म प्रेरणा १०–कल्प वृक्ष एक वर्ष तक। ११–अमूल्य उपदेश।

कोई भी सदाचारी व्यक्ति प्रवेश फार्म मँगा कर सदस्य बन सकता है।

अमूल्य उपदेश

कल्पवृक्ष में पूर्व प्रकाशित अमूल्य उपदेशों का दूसरा संस्करण। मूल्य २)

स्व० पं० शिवदत्त शर्मा की पुस्तकें

गायत्री महिमा ॥)	सोहम् चमत्कार ॥)
अग्निहोत्र विधि ॥)	ध्यान की विधि ॥)
आरोग्य आनंदमय जीवन ॥।)	ॐ कार जप ॥)

विश्वामित्र वर्मा द्वारा लिखित नई पुस्तकें

प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान

रोग क्यों तथा कैसे होता है, तथा दवा दारू, चीर फाड़, और जड़ी बूटी के बिना, दाम कौड़ी खर्च के बिना कैसे जाता है, विख्यात डाक्टरों का अनुभव मूल्य १॥)

यौगिक स्वास्थ्य साधन १)

प्राकृतिक स्वास्थ्य साधन

स्वास्थ्य के नये साधन, पौरुषवर्धक नये व्यायामों के २६ चित्र, भोजन की काया कल्प कारक नवीन वैज्ञानिक व्याख्या तथा नुस्खे। मूल्य २)

आत्म सिद्धि

अथवा दिव्य व्यावहारिक सद्यम आत्मविकास द्वारा उन्नति और सफलता प्राप्त करने के व्यावहारिक साधन १)

दिव्य सम्पत्ति

दुःखी थके, उलझनों में फँसे, श्रांत और निराश लोगों के लिए दिव्य प्रेरणाएँ। मूल्य ॥)

जीवन का सदुपयोग (चार्ट) ।)

षड्ऋतु भोजन चर्या (चार्ट) ।)

दिव्य भावना-दिव्य वाणी (चार्ट) ।)

मिलने का पता—कल्पवृक्ष कार्यालय, उज्जैन, (मध्य भारत)।

Registered No N. 277

आध्यात्मिक मंडल, उज्जैन, म० भा०

की

निम्नलिखित शाखाओं में मानसिक, आध्यात्मिक एवं प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा मुफ्त इलाज होता है।

स्थान प्रबन्ध और उपचारक

१ कोटा (राजपूताना) श्रीयुत प० नारायणजी गोविंद माथर, प्रोफेसर कालेज, श्रीपुरा
२ डोंगरघाट (सी० पी०)—आयुर्वेदाचार्य शोभालालजी शर्मा।
३ उदयपुर (१) (राजस्थान) संचालक आयुर्वेदाचार्य पं जानकीलालजी त्रिपाठी, चिन्तामणि कार्यालय भूपालपुरा, प्लाट नं० २०९।
उदयपुर (२) लाला जेठारामजी, मार्फत श्री देवराज, टी. टी. ई. रेलवे क्वार्टर्स, बी।२, रेलवे स्टेशन
४ खरगोन (मालवा प्रांत) श्री गोकुलजी पंढरीनाथजी सर्राफ मंत्री आध्यात्मिक मंडल
५ अजमेर (राजपूताना) पं० सूर्यभानुजी मिश्र, रिटायर्ड टेलिग्राफ मास्टर, रामगंज
६ इंदौर केन्द्र। भोपाल। बाबू दिगम्बरदासजी बालमुकुन्दजी जैन, नम्बर ८० बजाजखाना।
७ नसीराबाद (राजपूताना)—चाँदमलजी बजाज।
८ दोहरी घाट स्टे. ओ टी आर (आजमगढ़ उ. प्र.) संचालक पं० [illegible] शर्मा [illegible]
९ मन्दसौर (मध्य-भारत) [illegible]
१० [illegible]
११ सरगुजा स्टेट [illegible]
१२ रतलाम (मध्य भारत)—शाण्डिल्यभूषण प० [illegible] उपाध्याय, एजेन्ट कोआपरेटिव बैंक।
१३ गोंदिया (मध्यप्रान्त) लक्ष्मीनारायणजी मालपोते, बी० ए० एल-एल० बी वकील।
१४ नेपाल-धर्मनाथी, साहित्यधुरीण डा दुर्गाप्रसादजी भट्टराई, डा० डां डिल्ली बाजार।
१५ पीलाखुर्द (व्हाया अकोदिया मंडी)—स्वामी गोविंदानन्दजी।
१६ धार (मध्य भारत)—श्री गणेश रामचन्द्र देशपांडे, निसर्ग मानसोपचार आरोग्य-भवन धार।
१७ खम्भात (Cambay) श्री लल्लूभाई हरजीवनजी पंड्या।
१८ राजगढ़ ब्यावरा [मध्य भारत] श्री हरि-ॐ सत्संगजी।
१९ [illegible] (अजमेर) पं० किशोरीलालजी वैद्य तथा सोहनलालजी राठी।
२० बुढ़वल (ओ. टी. आर. जिला बाराबंकी) पं० रामशंकरजी शुक्ल बुढ़वल शुगर मिल।
२१ इन्दौर—श्री बाबू नारायणलाल जी सिंहल, बी० ए०, एल-एल० बी० श्री सेठ [illegible] जी की धर्मशाला, संयोगितागंज।
२२ आलोट-बिल्लगढ़ (मध्य-भारत) अध्यक्ष सेठ ताराचन्दजी, उपचारक अनोखीलालजी मेहता।
२३ अटरू (कोटा) राजस्थान—प० मोहनचंद्रजी शर्मा।
२४ बारां (कोटा राजस्थान)—पं० मदनमोहनजी तथा सेठ भैरूलालजी।

व्यवस्थापक व प्रकाशक—डॉ० बालकृष्ण नागर, कल्पवृक्ष कार्यालय, उज्जैन (मध्य भारत)
मुद्रक—भक्त सज्जन, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद-२

वर्ष ३१
संख्या ८

KALPA-VRIKSHA

A MAGAZINE OF DIVINE KNOWLEDGE

अप्रैल '५३
सं० २०१०

१ अपना ही विचार—संपादक १
२ हिमालय के अंचल से—स्वामी शिवानन्द जी २
३ संसार के आश्चर्य—आचार्य श्री नरदेव जी शास्त्री ४
४ मैंने ईश्वर को कैसे जाना ?—श्री डेरेक नेविल ५
५ परमेश्वर का वैज्ञानिक परिचय—श्री रणछोड़ दास जी उद्धव ... १५
६ मन की गठरी खोलो—श्री कुमारी केट सिमन्स १८
७ योगासन सम्बन्धी ज्ञातव्य—डॉ० लक्ष्मीनारायण टण्डन ... २०
८ महासत्य—श्री विश्वामित्र वर्मा २२
९ प्रश्नोत्तरी २४
१० क्या आपने पढ़ा है ?—हाथ फेर कर रोग दूर करना ... कवर के दूसरे पृष्ठ पर
११ स्वर्ण-सूत्र—आत्मनिष्ठा की भावना

नागर

स्वर्ण-सूत्र

आत्मनिष्ठा की भावना

अब तक मैं तुच्छ और हीन बना हुआ दूसरों से दबता ही रहा हूँ, और इसका फल यह हुआ कि मैं हमेशा दूसरों की बात सुनता मानता स्वीकार करता रहा और दबता ही रहा हूँ। मुझे हमेशा "हाँ" कहते हुए कभी "ना" कहते नहीं बना, मुझमें इतना भी आत्मबल न हुआ कि मैं कभी किसी की बात इनकार कर, अपनी बात को दृढ़तापूर्वक महत्व दे सकूँ। इस कारण हर एक क्षेत्र मे मेरी उन्नति रुकी रही।

अब मुझे आत्मजागृति हो गई है। मैं अब दूसरों के आगे नहीं झुकूँगा, तुच्छ और हीन नहीं बनूँगा, क्योंकि अब मैं जान गया हूँ कि उन लोगों में जो महत्वाकांक्षाएँ और आत्मतत्त्व है, वही मुझमें है। मैं अपने आपको तुच्छ और हीन मानकर उनसे दबूँगा, अपनी भावनाओं को दबाऊँगा तो वे लोग हमेशा मुझे दबाते ही रहेंगे और स्वयं मुझसे ऊँचे ही उठते रहेंगे। परन्तु अब मैं भी उनके समान सत्यनिष्ठ, आत्मनिष्ठ और महत्वाकांक्षी हो गया हूँ, फिर अब किसी से दबने की क्या आवश्यकता? यह हीनता पाप है। मैं अब यह पाप नहीं करूँगा। दूसरे लोग मुझे कुछ भी खोटे वचन कहें, मेरी आलोचना करें, निन्दा करें तो भी मैं उनकी बातें नही सुनूँगा और उसके प्रभाव से विचलित नही होऊँगा, अपना आपा नहीं खोऊँगा। मैं अब सत्यनिष्ठ, आत्मनिष्ठ हो गया हूँ और अच्छी तरह समझ गया हूँ कि संसार के लोग अपनी अपनी अज्ञान बुद्धि से दूसरो की निन्दा, आलोचना किया करते हैं। उनकी अज्ञान बुद्धि से मैं प्रभावित नहीं होता हूँ क्योकि मैं अब जान गया हूँ कि झुकने और दबनेवाले को दुनिया झुकाती और दबाती है। झुको तो दुनिया झुकाएगी। झुकाओ तो दुनिया झुकेगी।

अब तो मेरी यह भावना है कि—

रहूँ अडोल अकम्प निरंतर, तन मन दृढ़तर बन जाऊँ।
इष्ट वियोग अनिष्ट योग में, सहनशीलता दिखलाऊँ॥

अपने वार्तालाप और व्यवहार में सत्यनिष्ठ होकर, इस "आत्मनिष्ठा की भावना" को सदैव ध्यान में रखिए।
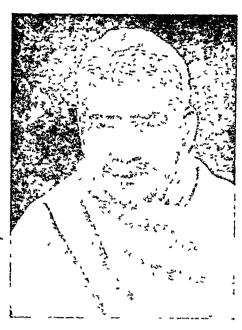
संस्थापक

स्वर्गीय डॉ० दुर्गाशङ्कर नागर

ॐ

कल्पवृक्ष

अध्यात्म-विद्या का मासिक-पत्र

सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥ गीता ॥

वर्ष ३१ } उज्जैन, अप्रैल सन् १९५३ ई०, सं० २०१० वि० { संख्या ८

अपना ही विचार

संपादक

किसी के जीवन में जो भी सुख दुःख या भली बुरी बातें होती हैं, वे सब अपने अपने विचारों के परिणाम हैं। इसका यह अर्थ लगावें कि तुम जो कुछ चाहते हो वही प्राप्त करोगे, जो नहीं चाहते वह तुम्हें जबरदस्ती कोई नहीं दे सकता। किन्तु मुसीबत मनुष्य पर जबरदस्ती, बिना बुलाये आती है। अब प्रश्न यह है कि मुसीबत आने पर उससे तुम्हारे मन पर कैसी प्रतिक्रिया होती है। मुसीबत या कठिनाई आने पर तुम अपनी आशावादी प्रवृत्ति को बटोर कर उत्साहपूर्वक उससे भिड़ जाते हो, या मुसीबत को गालियाँ देते, अपनी कमजोरी, लाचारी बताकर चुप बैठे रहते हो? इस परिस्थिति में लाभ या हानि होना अपनी मनोवृत्ति पर ही निर्भर है। यदि तुम कमजोरी, लाचारी की भावना में भ्रान्त और किंकर्तव्य-विमूढ़ होकर बैठे रहोगे तो मुसीबत तुम्हें दबा बैठेगी। यदि उठकर उत्साह से बुद्धिबल से उसका सामना करोगे, तो वही तुम्हारे लिए एक नया वरदान बन जायेगी।

हमारी बात दूसरे लोग नहीं मानते, यह कोई महत्व की बात नहीं है, परन्तु दूसरे लोग हमारी बात पर जैसा व्यवहार करते हैं उससे हमारे विचारों पर क्या प्रतिक्रिया होती है, यह

बड़े महत्व की बात है, इसी में हमारी लाभ हानि का सौदा होता है। हमारी प्रतिक्रिया का ही फल हमें मिलता है। किसी साल किसी क्षेत्र में वर्षा न हो तो आसमान के भरोसे बैठे रहनेवाले किसान भूखों मरेंगे, मुसीबत को रोते रहेंगे, परंतु उत्साह से पानी का प्रबन्ध कर सिंचाई करनेवाले सुनहली पकी फसल काटते हैं, जीते हैं और प्रसन्न रहते है। जहाँ रेगिस्तान है, उपजाऊ भूमि नहीं है, वर्षा नहीं है, वहाँ अपने परिश्रम और उद्योग के बल पर ही तो जीते हैं। अथवा जहाँ खेती के साधन नहीं हैं वहाँ अन्य उद्योग करते हैं। केवल खेती करने के लिए ऐसे क्षेत्रों में दैव के भरोसे बैठे रहने वाले तो एक ही फसल में खत्म हो जायँ। इसी दैव" के भरोसे रहने का दूसरा नाम अकर्मण्यता अथवा निकम्मापन है। निकम्मी वस्तु में जंग लगता है, वह जल्दी सड़ गल कर खत्म हो जाती है, सूखे पेड़ की तरह। निकम्मे लोग भी जल्दी मरते हैं। मुसीबत का कोई दोष नहीं, वह तो हमारा बुद्धिबल और उत्साह जाग्रत करने, हमें कर्मठ बनाने के लिए आती है। आसमानी प्रकोप और अपना दुर्भाग्य समझ कर बैठे रहने से तो हम स्वयं मिट जायँगे। दूसरों के व्यवहार और बातों पर हमारा कोई अधिकार नहीं, हम उन पर कुछ नहीं कर सकते, किन्तु अपने आप पर संयम रख सकते हैं और उनके कुप्रभाव से बच सकते हैं। कोई गाली देता है, तो उसे स्वीकार करके हम अशांत हो जाते हैं, स्वीकार न करे तो नहीं होते। यह तो हमारे मानने या न मानने का परिणाम है जिससे मान-अपमान का विचार होने से, हमें भला या बुरा लगता है। किसी बुरी, अप्रिय बात को स्वीकार करने, मानने से ही उसका प्रभाव हम पर अधिकाधिक बढ़ता है, और हमें दबोच देता है, अथवा हम उसे मानकर अपने विचार से ही दुःखी, हीन बन जाते हैं। इन सब कुप्रभावों से बचने का उपाय हमारे अन्दर ही है—हमारा विचार।

अपना जीवन और संसार सब अपने विचारों का ही खेल है और विचारों के अनुसार ही भासता है।

छोटे बड़े लड़के आपस में मिल जुलकर प्रसन्नता से खेलते हैं, युवकों का समाज भी एक है, प्रौढ़ भी ३०-४० की अवस्था तक, शामिल हो जाते हैं, जब तक कि उनमें प्रसन्नता और उमंग रहती है। चालीस के बाद उनमें गंभीरता आ जाने पर बच्चों, लड़कों और युवकों से उनका मेल नहीं बैठता, अतएव ऐसी दशा में उनका अपना विचार ही जीवन का सहारा और साथी होता है। खेल कूद मनोरंजन में, कम उम्र में गाली या डाँट फटकार को सुनकर थोड़ा सहकर पश्चात् भूल जाते हैं, परन्तु अधिक उम्र होने पर गंभीर विचारक हो जाने से इन छोटी छोटी बातों का गहरा असर हो जाता है जिससे दुःख अपमान की भावना होती है।

इससे यह आवश्यक हो जाता है कि उम्र बढ़ने के साथ साथ हम अपने विचारों को उसी प्रकार हलका रखें जिससे दूसरों की बातों का प्रभाव हम पर न पड़ सके। विचारों का संग्राम ही जीवन संग्राम है। बाह्य जीवन संघर्ष को शांत करने के लिए पहले आत्म-विचार की भावना से अपने विचार-संघर्ष को बचावें।

हिमालय के अंचल से

स्वामी शिवानन्द जी

यह कभी भी न समझना कि जप, कीर्त्तन, भजन, योगसाधनादि आध्यात्मिक-कृत्य केवल मात्र विरक्त समुदाय के लिए ही हैं—हम संसार-व्यक्तियों के लिए नहीं और यह भी नहीं कहना कि हमें समय नहीं मिलता और अधिक काम होने के कारण, अधिक चिन्ता होने के कारण अवसर नहीं प्राप्त होता। मैं इसको कामचोरी कहूँगा। मुझे अच्छी तरह मालूम है कि आपके पास सब कुछ घरेलू काम कर लेने पर भी काफी समय रहता है, जिसका आप दुरुपयोग करते रहते हैं फिर भी दलील पेश करते हैं कि समय नहीं मिलता। मैं आपसे किस प्रकार कहूँ कि आप फलाँ-फलाँ समय पर जप और अन्य साधनाएं करो। यह तो आपको ही निश्चित करना होगा। किसी को सुबह के समय अवसर मिलता है, किसी को रात के समय मिला करता है—अतः अपनी-अपनी सुविधा के अनुसार ऐसा समय मुकर्रर कर लो कि आप रोजाना कुछ न कुछ विचार कर सकें। नित्यप्रति जप के लिए समय निश्चित कर लीजिए, प्रेम और भावना से जप करना प्रारम्भ कीजिए। आपको थोड़े ही समय के अन्दर किसी अनन्त शक्ति की अनुभूति होगी और आप प्रत्यक्ष देखेंगे कि यही शक्ति आपको आपके नित्य के जीवन में रास्ता बतलाएगी और जब कभी आप कुछ भूल चूक कर बैठेंगे, यही शक्ति आपको तुरन्त सावधान कर आयन्दा के लिए सचेत कर देगी। यही सिद्धि आपको प्रत्येक कार्य में सफल बनाएगी और जब कभी आप इन नाम-रूपों से संन्यास लेना चाहोगे और विरक्त होना चाहोगे तो आपको उद्बोधन और आश्वासन देगी—कहना नहीं होगा कि यह शक्ति बालक, युवा, वृद्ध, विरक्त, रोगी, स्त्री तथा सभी को जीवन में सफलता, तुष्टि-पुष्टि, भक्ति-मुक्ति, शान्ति और मंगल देगी—और परलोक में आपके जीवन के सुखों को निरन्तर और अबाध रखेगी। भोजन करते हो तो भजन भी अवश्य करो। भोजन भले ही छोड़ दो पर भजन न छोड़ो।

संसार के आश्चर्य

आचार्य श्री नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ

धर्मं करोमीति करोत्यधर्मं।
अधर्मं कामश्च करोति धर्मं॥
उभे ह्येते कर्मणी न प्रजानन्।
सजायते म्रियते चापि देही।

देखो आश्चर्य की बात कि समझ रहा है कि धर्म कर रहा हूँ पर कर रहा है अधर्म, क्योंकि उसको धर्माधर्म का विवेक ही नहीं। धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म समझ बैठा है। विपरीत ज्ञान में धर्माधर्म का विवेक कहाँ!

इसी धर्माधर्म के यथार्थ विवेक के न होने से अज्ञ पुरुष जन्म-मरण के बन्धन अथवा चक्र में फँस जाता है और रोता रहता है अपने कर्मों को। संसार में जो भी दुःख है वह अज्ञान, मिथ्याज्ञान, अथवा विपरीत ज्ञान के कारण है। अज्ञान, मिथ्याज्ञान, विपरीत ज्ञान हटे तब मनुष्य को यथार्थ ज्ञान होने से बुद्धि का दोष हटे, बुद्धि का दोष हटने से मनुष्य की यथार्थ मार्ग में प्रवृत्ति हो—यथार्थ मार्ग में प्रवृत्ति हो

तब जन्म-मरण का बन्धन छूटे, जब जन्म-मरण का बन्धन छूटे तब दु:ख कहाँ।

इसलिए ज्ञानी गुरुओं की सेवा में श्रद्धा-पूर्वक जाकर अज्ञान, मिथ्याज्ञान, विपरीत ज्ञान का निवारण करके यह जानना चाहिए कि कौन से कर्म करने चाहिए, कौन से कर्म विशेष रूप से करने योग्य हैं, कौन से कर्म त्याज्य हैं, तब जाकर उद्धार होगा। क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि मनुष्य अविवेक से धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म समझकर निःशङ्क होकर वर्तता रहे और सुख चाहता रहे। सबसे बढ़कर यह कि अधर्म के लिए धर्म अर्थात् अपनी विपरीत मनोकामना की सिद्धि के लिए यज्ञ, हवन, दान, पुण्य करने लगे। शत्रु मर जाय इसलिए जप-तपादि का अनुष्ठान करने लगे। मनुष्य जन्म जैसा सर्वश्रेष्ठ जन्म पाकर कैसे कैसे निकृष्ट कर्म करता है। इस नश्वर किन्तु अनमोल शरीर के मूल्य को ही नहीं समझ रहा है। नहीं समझ रहा है तो खाओ धक्के, भोगो नरक, पड़ो जन्म मरण के चक्कर में। फिर ईश्वर को क्यों दोष दे रहे हो? प्रारब्ध को क्यों कोस रहे हो? गुरुजनों की निन्दा क्यों कर रहे हो? समझो, सोचो, बुद्धि से काम लो।

मैंने ईश्वर को कैसे जाना?

श्री डेरेक नेविल

मैं जब अपने जीवन की विभिन्न परि-स्थितियों का विचार करता हूँ जिनमें से होकर मैंने ईश्वर का आभास पाया है तो वे साधारण घटनाएँ मालूम होती हैं। साधारण, फिर भी दिव्य।

कलियों का विकसित होकर फूल बनना, वृक्षों के पत्ते झड़कर क्रमशः कुछ ही दिनों में नये पत्ते पूर्ववत् आ जाना, और साधारण सी दिखने वाली हरी घास जिसे हम पैरों तले रगड़ते जाते हैं, पशुओं और पक्षियों का प्रेम, उनकी भिन्न-भिन्न प्रकार की आवाज और बोली, वर्षा की बूँदों का रिमझिम गान, और अपने घर के बच्चों के मुखमण्डल की आभा, उनकी मुस्कान, उनके भाव, उनकी दृष्टि, उनकी चञ्चलता, छोटे बड़े—सबमें भिन्नता और साथ ही सामञ्जस्य, पेड़ों पर फूल के बाद फल लगना, हरे से पीले और लाल होना, पत्तों का रंग बदलना, और हरेक ऋतु में पृथ्वी, चन्द्र की गति, मौसम के खेल और प्रभाव तथा सूर्य और नक्षत्रों की नियमितता बस यही स्वर्ग है, यही ईश्वर है।

सृष्टिचक्र कितना नियमित और सूक्ष्म है, कि मनुष्य उसको जानता है, और हिसाब लगाकर पहले से ही "पञ्चाङ्ग" में छाप देता है, अमुक दिन सूर्योदय, सूर्यास्त, चन्द्रकला और ग्रहण की तारीख और समय। यह सब मनुष्य के विचार का खेल नहीं है। सृष्टि ऐसी है तभी तो मनुष्य ऐसा विचारता और जानता है। यह मनुष्य के विचार या ज्ञान का महत्व नहीं, सत्ता की, अस्तित्व की बात है।

यदि विचार पर सब निर्भर होता तो मैंने बड़े बड़े लोगों के बहुत से बड़े बड़े लेक्चर सुने हैं, वे सब क्यों याद नहीं आते? यदि यह सब लोगों के परिश्रम व कर्म पर निर्भर होता, तो पूर्वकाल के महापुरुषों ने जो आत्मोत्सर्ग किया वह क्यों न याद आया? यदि कहो कि ज्ञान विज्ञान पर निर्भर है, तो संसार की सारी

किताबें पढ़ डालो, प्रयोगशाला में जीवन बिता दो, फिर भी नतीजा शून्य रहेगा।

यह कहने बताने या सुनने की बात नहीं है। मौन होकर स्रष्टा की सृष्टि की मौन गति को देखो—सब विचार गायब होता है—स्वर्ग पहुँच गये, ईश्वर को देख लिया। यही स्वर्ग है, यही ईश्वर है। इसी स्वर्ग का विचार करो, यहीं ईश्वर को देखो। यह रोज रोज दिन रात चौबीसो घण्टे, बारहो महीने, जीवन भर हर समय प्राप्त है। फिर आत्मविचार करो और आत्मदर्शन करो। इस बड़े विचित्र विश्व में हम भी है और हम यह सब कुछ देखते जानते भी नहीं देखते जानते यह कितनी विचित्र बात है। फिर हमारे अस्तित्व का महत्व भी क्या रहा! यह सब देखने जानने और विचार करने से ही हमारे अस्तित्व का महत्व होता है।

परमेश्वर का वैज्ञानिक परिचय

श्री रणछोड़दास 'उद्धव'

महामना मदनमोहन मालवीय जी ने लिखा है कि—जगत् में सबसे उत्तम और अवश्य जानने योग्य कौन है? ईश्वर। आपका लिखना यथार्थ है, किन्तु जगत् में जगदीश्वर के विषय में भिन्न-भिन्न मतावलम्बियों के द्वारा झगड़े हुए है एवं समय-समय पर होते रहते हैं, इसीलिए आपने ही अपनी पुस्तक के अंत में धर्मशील जन से यह अपेक्षा की है कि—'समस्त जगत् को यह निश्चय करा दे कि सबका ईश्वर एक ही है और वह अंशरूप से न केवल सब मनुष्यों में किन्तु समस्त जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज अर्थात् मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग और विटप—सब में समान रूप से अवस्थित है और उसकी सबसे उत्तम पूजा यही है कि हम प्राणी मात्र में ईश्वर का भाव देखें, सबसे मित्रता का भाव रक्खें और सब का हित चाहें। सर्वजनीन प्रेम से इस सत्य ज्ञान के प्रचार से ईश्वरीय शक्ति का संगठन और विस्तार करें। जगत् से अज्ञान को दूर करे, अन्याय और अत्याचार को रोकें और सत्य, न्याय और दया का प्रचार कर मनुष्यों में परस्पर प्रीति, सुख और शान्ति बढ़ावें।' राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी भी अपने अनुभव की देन दे गये है कि—

'ईश्वर अल्ला तेरे नाम,
सब को सन्मति दे भगवान।'

अतएव इन महानुभावों की शुभेच्छानुसार राष्ट्रधर्मप्रेमी बुद्धिमानों की सेवा में ईश्वर-विषयक कुछ वैदिक विज्ञान की दृष्टि के विचार एवं प्रमाण निवेदन कर देना चाहता हूँ।

ईश्वर न मानना भ्रम है

जो लोग ईश्वर को बिलकुल नहीं मानते हैं, वे भ्रम में है। क्योंकि वे भी अपना अस्तित्व यानी जीवित रहना चाहते हैं, ज्ञान यानी जानना चाहते हैं और आनंद भोगना तो चाहते ही हैं। इन्हीं तीनों को शास्त्र 'सत, चित और आनंद' अर्थात् सच्चिदानंदस्वरूप ईश्वर मानता है।' अतएव मानवमात्र का उद्देश ईश्वरप्राप्ति ही हो जाता है। ईश्वर न मानने वाले लोग उक्त दृष्टि से शुद्धबुद्धि को स्थिर कर सोचेंगे तो वे ईश्वर को माननेवाले ही ज्ञात होंगे। जगत् में सच्चिदानंद स्वरूप ईश्वर को न मानने वाला कोई मनुष्य हो ही नहीं सकता। अज्ञानयुक्त ज्ञान से ऐसा भ्रम हो जाता है कि—'मैं ईश्वर को नहीं मानता हूँ।' ऐसे लोग अपने जन्म और जीवन को भी दोषरूप मानते हैं, ज्ञान-विज्ञान की अवहेलना करते हैं एवं दुःख ही उनका उद्देश हो जाने से जगत में भी दुःख करते हैं। अतः वे उक्त प्रकार से विचार करके अपने भ्रम को त्याग दें।

ईश्वर माननेवाले मत

ईश्वर को माननेवाले मतों में भी कुछ ईश्वर को दूर मानते हैं और संसार को त्याज्य मानते हैं। कुछ व्यापक ईश्वरवादी ईश्वर को सर्वत्र तो मानते हैं परन्तु विश्व से पृथक् मानते हैं एवं जगत् को मिथ्या मानने से त्याज्य समझते हैं। वैदिकधर्मी ईश्वर को विश्वरूप मानते हैं और संसारयात्रा आनंदपूर्वक करते हैं। वे द्वन्द्वभाव को त्यागकर अनन्य भाव धारण करते हैं एवं चारों वेदों के महावाक्य स्वरूप 'पुरुष एवेदं सर्वं' यानी 'पुरुष ही यह सब है' अर्थात् सम्पूर्ण विश्व ईश्वर का ही रूप है ऐसा मानते हैं एवं तदनुसार मानवमात्र को नारायण का स्वरूप समझ कर स्वकर्म द्वारा उसकी सेवा करते हैं। वैदिक ईश्वर के विषय में वेदभाष्यकार पूज्य पंडित श्री०दा० सातवलेकरजी ने 'ईश्वर का साक्षात्कार' नामक सुन्दर और सरल भाषा में ग्रन्थ लिखा है। तीन रुपये उसकी कीमत है तथा करीब ३०० वेदमंत्रों का विवेचन करके इस विषय को सप्रमाण सिद्ध किया है। उसका अनुशीलन कर एकतत्व का दर्शन करना मानव के लिए अत्यंत आवश्यक है। पाठकों से प्रार्थना है कि वे इस ग्रंथ को पढ़कर अवश्य लाभ उठायें।

ईश्वर-दर्शन

हिन्दी गीताविज्ञानभाष्य भूमिका में पं० मोतीलाल जी शर्मा भी ईश्वर-दर्शन के विषय में लिखते हैं कि—"उदाहरण के लिए अध्यात्म संस्था को अपने सामने रखिए। इस संस्था में आत्मा और शरीर यह दो भाग हैं। आत्मा इस शरीर का प्रभु है, ईश्वर है। यही दो विभाग आपको आधिदैविक संस्था में मानने पड़ेंगे। महाविश्व उसका शरीर है। विश्व के पर्व में स्थित रहनेवाला क्षराक्षरगर्भित वही अव्यय इसका आत्मा है। दोनों की समष्टि ईश्वर है। हम जिस महाविश्व के दर्शन कर रहे हैं, वह साक्षात् ईश्वर के दर्शन हैं। शरीर ही चक्षु का विषय बनता है। आत्मा आँख से देखने की वस्तु नहीं है। इस दृष्टि से विश्वरूप ईश्वर के शरीर के दर्शन करना ईश्वर का प्रत्यक्ष कहा जा सकता है। इसी विश्वशरीर के कारण उसे विश्वात्मा, विश्वेश्वर, जगदाधार, जगन्नियन्ता, जगदीश्वर, विश्वम्भर इत्यादि उपाधियों से विभूषित किया गया है।

ईश्वर ज्ञानप्रधान है, जगत् विज्ञानप्रधान है, मध्यस्थ जीव उभयात्मक यानी ज्ञानविज्ञान वाला है। ज्ञानप्रधान आत्मा भगवान् है। यह उस छोर में है, यही प्रथमपर्व है। विज्ञानप्रधान विश्व अन्तिम पर्व है। यह विश्व ही उस ज्ञान मूर्ति भगवान् की उपनिषत् यानी बैठने की जगह है। यदि आप भगवान् से साक्षात्कार करना चाहते हैं तो आपको विश्वलक्षण उपनिषत् की ही अराधना करनी पड़ेगी। निराकार भगवान् की प्राप्ति साकार विश्व की उपासना से ही होगी। वह आपको मिलेगा अवश्य, परन्तु यहीं, इसी शरीर में, इसी विश्व में, विश्वान्तर्गत इन्हीं भौतिक पदार्थों में। श्रुति में कहा है—

एष सर्वेषु भूतेषु गूढात्मा न प्रकाशते।
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः॥
(केनोपनि ३।१२)

इनके अनुसार वह इन्हीं भूतों में प्रतिष्ठित है। बुद्धियोग ही उसके दर्शन का उपाय है।

भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति। (केन० २।१३)

धीर-बुद्धियोगी इन भूतों में ही उसे पाकर मुक्त होते हैं। यदि आपने यहीं, इसी शरीर से उसे प्राप्त न किया तो विनाश है। इसी जगह ढूँढ़िए। मिलेगा, अवश्य मिलेगा। यदि आपने यहीं उसे पा लिया तो आपका जीवन धन्य है।"

उपर्युक्त वैदिक दोनों पंडित (श्री सातवलेकर जी और मोतीलाल जी) में ईश्वर-दर्शन सिद्धान्त की एकवाक्यता पाई जाती है। दोनों विद्वान् महाशय जीवित अवस्था में ही ईश्वर के दर्शन होना आवश्यक समझते हैं, एवं उस

ईश्वर को प्रकट बताते हैं। विचार करने से यह ज्ञात हो जाता है कि जगत् में जगदीश्वर को गुप्त रखने से ही 'गुरुडम' फैलता है। नामधारी गुरु लोग भोले भक्तों को अपने काल्पनिक तर्कजाल में डालकर तन-मन-धनादि का हरण किया करते हैं। एवं इस 'अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः' वाली अन्धपरम्परा को ही गुप्त ज्ञानमार्ग मानते हैं। वे लोग कहते हैं ब्रह्म परोक्ष है। वैदिक कहते हैं—ब्रह्म साक्षात् प्रत्यक्ष है। अस्ति का किसे बोध नहीं? यह अस्ति ही तो ब्रह्म है। महर्षि कठ कहते हैं—

"नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा।
अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते॥
अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्तत्वभावेन चोभयोः।
अस्तीत्येवोपलब्धस्य तत्वभावः प्रसीदति॥"
(कठोपनि० २।३।१२।१३)

अर्थात् 'वाणी मन और चक्षु के द्वारा यह प्राप्त करना अशक्य है। 'वह है' इस रूप से ही उसे जानना योग्य है तथा दोनों के तत्वज्ञान से भी उसको जान सकते है। 'अस्ति'—"है" ऐसा जानने पर उसका तत्वस्वरूप प्रसन्न हो होता है। अवैदिक गुरु कहते हैं—

'भोजन जो कुछ मिले, सो खावे,
प्राणन का पालन हो जावे,
सब जग झूठी माया साधो।'

वैदिक ऋषि कहते हैं—

'अजितं जेतुमनुचिन्तयेत्, न क्वचिदप्यलं बुद्धिमादध्यात्'

"तुम्हारे पास जो वस्तु नहीं है, उसे प्राप्त करने की चेष्टा करते रहो। कभी अलं (सतोष) मत करो।" बढ़े चलो, भूमा की उपासना करते रहो। अस्ति ब्रह्म का रूप जहाँ भूमा यानी बड़ा है, नास्तितत्व वहाँ अल्पता से सम्बन्ध रखता है। आस्तिक दर्शन के अनुसार भूमा ही सच्चा सुख है एव अल्पता ही दुःख है। जैसा कि—

"यो वै भूमा तत्सुखं, नाल्पे सुखमस्ति, भूमानमित्युपास्व।"
(छां० उपनिषत् ७।२३।१)

इत्यादि उपनिषद् के सिद्धान्त से स्पष्ट है। भूमा बहुत्व का नाम है। इस बहुत्व का एकमात्र अस्तिलक्षण आत्मा के साथ ही सम्बन्ध है। अल्पता कमी है। इसकी स्थिति का सम्बन्ध नास्तिलक्षणा विश्वसम्पत्ति के ही साथ है। "इदमस्ति" (यह है) इस अस्तिज्ञान का परिचय देनेवाला एकमात्र सूर्यदेवता है। सूर्यसत्ता ही अस्तिभाव की प्रतिष्ठा है। जब सूर्य अस्त हो जाता है तो सम्पूर्ण अस्तिप्रपञ्च नास्तिभाव में परिणत हो जाता है। विश्वसत्ता की भी प्रतिष्ठा यही सूर्य है एव हमारी आत्म-सत्ता का आश्रय भी यही सूर्य है। जैसा कि—

"सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च" (ऋ० १।११५।१) इत्यादि श्रौतसिद्धान्तों से स्पष्ट है।

जगदीश्वर सूर्य है

सचमुच यह बड़ा ही चमत्कार है कि जो आत्मा हमारे अस्तिलक्षण आत्मा की प्रतिष्ठा है, वही आत्मा नास्तिलक्षण शरीर किंवा भौतिक पदार्थों की भी प्रतिष्ठा है। जहाँ सूर्य अपने एकरूप से हमारा आत्मा बना हुआ है, वही सूर्य एक दूसरे रूप से भौतिक पदार्थों का उत्पादक बनता हुआ हमारा शरीर बना हुआ है। सूर्य के यही दोनों विरुद्धरूप क्रमशः मित्र और वरुण नाम से प्रसिद्ध हैं।

पहले सूचित किया है कि ईश्वर ज्ञानप्रधान है और जगत् विज्ञान प्रधान है। सूर्य इन दोनों का समन्वय सिद्ध कर रहे हैं। ज्ञान और विज्ञान का एकीकरण अर्थात् आत्मा एव विश्व का सम्मिश्रण होना चाहिए। विश्वविज्ञान उत्तम, परन्तु जब उसके मूल में आत्मा प्रतिष्ठित रहे। आत्मज्ञान सर्वश्रेष्ठ, परन्तु विज्ञानमूला विश्वविभूति नष्ट न हो जाय। एवं अर्थात् भारत केवल ज्ञान के पीछे पड़ा है और

पश्चिम केवल विज्ञान पर पागल हो गया है। दोनों ही ईश्वर के आधे-आधे अंग को मानते हैं अतएव दोनों आधे आस्तिक हैं। अवश्य ही हमें उस उपाय का अन्वेषण करना पड़ेगा, जिसके प्रभाव से विश्वासक्ति का दुःख आक्रमण न करे एवं विश्वसंपत् सम्बन्धी सुख न हटे। यह उपाय है एकमात्र ज्ञान एवं विज्ञान की समष्टिरूप बुद्धियोग।

बुद्धि और सूर्य

वह बुद्धियोग सम्यक् प्रकार से सर्वरूपी सूर्य भगवान् का ध्यान करने से प्राप्त होता है, यह हमने 'सक्रिय-सन्ध्या-साधन' में सूचित किया है। क्योंकि स्वय परब्रह्म के यानी ईश्वरात्मा के अव्यय, अक्षर और क्षर यह तीन रूप हैं। विश्वदृष्टि से वही तीन सस्थाएँ क्रम से अव्यक्तसंस्था, व्यक्ताव्यक्तसंस्था तथा व्यक्तसंस्था इन नामों की अधिकारिणी हैं। स्वयभू और परमेष्ठी यह पर्व अव्यक्तसंस्था से सम्बन्ध रखता है, सूर्य व्यक्ताव्यक्तसंस्था से सम्बन्ध रखता है एवं चन्द्रमा और पृथ्वी व्यक्तसंस्था से सम्बन्ध रखते हैं। प्रथम संस्था अव्ययप्रधान है, दूसरी अक्षरप्रधान है एवं तीसरी क्षरप्रधान है। अव्ययप्रधानसंस्था में अमृत की प्रतिष्ठा है, क्षरप्रधानसंस्था में मृत्यु की प्रतिष्ठा है और अक्षरप्रधानसंस्था में अमृत तथा मृत्यु दोनों की प्रतिष्ठा है। अध्यात्म संस्था में प्रत्यगात्मा यानी आध्यात्मिक ईश्वर, शारीरिक आत्मा यानी जीवात्मा और शरीर ये तीन विभाग है। इन तीनों का उक्त तीनों आधिदैविक सस्थाओं से सम्बन्ध है। अव्ययसंस्था प्रत्यगात्मा की प्रतिष्ठा है, अक्षरसंस्था शारीरिक आत्मा की प्रतिष्ठा है और क्षरसंस्था शरीर की प्रतिष्ठा है। जब तक जीवात्मा क्षरसंस्था मे रहता है, तब तक उसे जन्म-मृत्यु के प्रवाह में प्रवाहित रहना पड़ता है। क्षरसंस्था से अलग होकर जब यह अक्षरसंस्था में चला जाता है तो क्षर ग्रन्थि से मुक्त हो जाता है; यही इसकी सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य एवं सायुज्यलक्षणा अपरा-मुक्ति है। उसी बुद्धियोग की कृपा से जब यह उस परलक्षण अव्ययसंस्था में चला जाता है तो —

"परेऽव्यये सर्व एकी भवन्ति"

"परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥"

इत्यादि श्रौत-सिद्धान्तों के अनुसार पर अव्यय में लीन होता हुआ परामुक्ति को प्राप्त हो जाता है। सीधी भाषा में यह कि जब तक जीवात्मा चन्द्रगर्भिता पृथ्वी के आकर्षण में है तब तक यह बद्ध है, मृत्युभाव से युक्त है। सूर्य में पहुँचने के अनंतर यह मुक्त है एवं सूर्य के ऊपर जाने पर यह ब्रह्म में लीन है। वह बुद्धि वाङ्मयी प्रकृति ही है। सोलह कला वाले पुरुष की बाहर की प्रकृति प्राण, आप, वाक्, अन्न और अन्नाद भेद से पाँच भागों में विभक्त है। इन पाँचों प्रकृतियों से क्रमशः स्वयम्भू, परमेष्ठी, सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी इन पाँच पुरों का विकास होता है। ये ही पाँचों आधिदैविक पुर अध्यात्मसंस्था में अंशरूप से स्थित होकर अव्यय, महान्, बुद्धि, मन एवं प्राणात्मा इन नामों से प्रसिद्ध होते हैं। इस स्थिति से पाठकों को यह विदित हो गया होगा कि वाङ्मयी तीसरी प्रकृति ही सूर्यरूप में परिणत होकर बुद्धि नाम से प्रसिद्ध होती है।

भगवान् सूर्य

सूर्य से ऊपर परमेष्ठी एवं स्वयंभू में अमृतत्व की प्रधानता है, सूर्य से नीचे पृथ्वी एवं चन्द्रमा में मृत्युतत्व की प्रधानता है तथा बीच के सूर्य में अमृत और मृत्यु इन दोनों का सम्बन्ध है—'निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।' अमृत ज्ञान है, विद्या है। मृत्यु कर्म है, अविद्या है। सूर्य में दोनों का सम्बन्ध है, इसलिए सौरी बुद्धि में भी विद्या और अविद्या इन दोनों धर्मों की सत्ता सिद्ध हो जाती है। विद्या और अविद्या दोनों ६-६ भागों में विभक्त है। विद्या के ६ रूप ज्ञान, वैराग्य, धर्म, ऐश्वर्य, यश और श्री

इन नामों से प्रसिद्ध है। अविद्या के ६ रूप अज्ञान, आसक्ति यानी राग-द्वेष, अभिनिवेश, यानी आवेश, अस्मिता यानी अविकास, अपयश और अलक्ष्मी इन नामों से प्रसिद्ध है। यहीं विद्याभाग भग नाम से प्रसिद्ध है और यहीं अविद्याभाग मोह नाम से कहे गये है। जैसा कि कहा है—

"ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान-वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥"

उक्त ६ भगों में से धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य इन चारों भगों का विकासभूमि सूर्य है एवं चारों के विरोध अभिनिवेश अज्ञान, आसक्ति और अस्मिता ये मोहलक्षण चारों अविद्याभाग भी सूर्य से ही संबंध रखते हैं। यश और अपयश का चन्द्रमा से संबंध है तथा लक्ष्मी और अलक्ष्मी का आपोमय परमेष्ठीमण्डल से संबंध है अध्यात्मक्रम के अनुसार लक्ष्मीरूप कान्तिका और श्रीहीनता का स्थूल शरीर से संबंध है तथा यश और अपयश का मन से संबंध है। बाकी चारों भगों और मोहों का बुद्धि से सम्बन्ध है। कारण स्पष्ट है कि सूर्य ही बुद्धि का उत्पादक है, चन्द्रमा ही मन को पैदा करनेवाला है और परमेष्ठी का आप यानी पानी ही "अद्भ्यः पृथिवी" इस श्रौत सिद्धान्त के अनुसार पृथिवी बना है। पृथिवी ही स्थूल शरीर का उत्पत्ति स्थान है। सूर्योपनिषद् में भी सूर्य को जगत् की उत्पत्ति का हेतु होने का वर्णन है—

"सूर्याद्भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि च।
सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च ॥६॥

अर्थात् सूर्य से प्राणी उत्पन्न होते हैं, सूर्य में पोषण पाते हैं तथा सूर्य में लीन होते हैं, जो सूर्य है वह मैं ही हूँ। उक्त प्रमाण से सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, रक्षणकर्ता विष्णु और प्रलयकर्ता शिव भी सूर्य ही सिद्ध हो जाते हैं। सूर्य अपने अमृत और मृत्यु भाग से विश्व के प्रकाशक बने हुए है। जब तक सूर्य हैं, तभी तक विश्व है। जिस दिन सूर्य न रहेगा, उस दिन प्रलय का साम्राज्य हो जायगा। "यह विद्या (ज्ञान) है और यह अविद्या (कर्म) है' इस प्रकार से संसार में समष्टि और व्यष्टि रूप से जिन ज्ञान और कर्म का साक्षात्कार कर रहे हैं, वह हमारे विज्ञानघन सूर्य भगवान की महिमा है। 'अहं सूर्य इवाजनि।' इस प्रकार विद्या और अविद्यारूप से हम विज्ञानात्मा सूर्य भगवान् के साक्षात दर्शन कर रहे हैं।

अध्यात्म में ईश्वर-दर्शन

उक्त सूर्यविकसित विश्वरूप ईश्वर की ईश्वरता ज्ञान, कर्म और अर्थ भेद से तीन तन्त्रों में विभक्त है। इन तीनों ऐश्वर्यों से ईश्वर सब का ईशिता (स्वामी-अध्यक्ष) बनता हुआ सम्पूर्ण विश्व में विकसित हो रहा है। ऐश्वर्यभाजन इसी ईश्वर के अंश का नाम जीवात्मा है, अतएव इसमें भी उन ईश्वरीय धर्मों का आगमन स्वतः सिद्ध है। वेद ने ईश्वर की ईश्वरता के सम्बन्ध में जहाँ ज्ञान, कर्म और अर्थ ये तीन तन्त्र माने है, वहाँ उपवेदभूत आयुर्वेद ने इन्हीं तीनों को काल, कर्म और अर्थ नामों से कहा है। मन ही कलात्मक शिव है, यही कालचक्र है, शिरोयन्त्र ही इसकी प्रतिष्ठा है प्राण ही कर्म है यही ब्रह्मा है, हृदययन्त्र ही इसकी प्रतिष्ठा है तथा वाक् ही अर्थ है, यह विष्णु है नाभियन्त्र ही इसकी प्रतिष्ठा है। इस प्रकार शरीरसंस्था के तीनों यन्त्रों के द्वारा हम ईश्वर की ईश्वरता के साक्षात् दर्शन कर रहे हैं।

मन-प्राणवाङ्मय ईश्वर प्रजापति जैसे ज्ञान से सर्वज्ञ, क्रिया से सर्वशक्तिमान एवं अर्थ से सर्वविद् बनता हुआ सर्वमूर्ति या पूर्णमूर्ति बन रहा है, इसी प्रकार उसका अंश मन प्राणवाङ्मय जीवप्रजापति भी 'पूर्णमदः पूर्णमिदं' "यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह" ... सोऽहम्-योऽहं सोऽसौ' इत्यादि प्रमाणों के अनुसार ईश्वर के ज्ञान, क्रिया और अर्थ इन तीनों विभूतियों से पूर्ण है। हमारे ...

मध्य में अस्मिता का आवरण आ गया है। इसीलिए हम अपने अंशी की ईश्वरता को भूल रहे हैं। हम भूल जाते हैं कि—सूर्य हमारे सामने है, त्रैलोक्य इसके प्रकाश से प्रकाशित है 'सूर्य आत्मा०' इस सिद्धान्त से हम उसीके एक अंश हैं—अवयव हैं। हम यह प्रत्यक्ष देखते हैं कि यदि हमें हमारे वास्तविक इतिहास का पता लग जाता है तो हमारे आत्मा में अपने आप नवीन बल का संचार हो जाता है। उदाहरण के लिए आज के भारतवर्ष को ही लीजिए। हमें अपने मौलिक रहस्यरूप सत्य इतिहास से वंचित रखते हुए आरंभ में ही मिथ्या इतिहासों के द्वारा हमारे यह संस्कार बना दिये गये कि—"हम पहले—पूर्वयुग में मूर्ख थे, असभ्य थे, जङ्गली थे, जड़ पदार्थों की उपासना करनेवाले थे एवं विज्ञानशून्य थे।" परिणाम यह हुआ कि आज इस मिथ्यासंस्कार रूप अस्मिता के आवरण से हम उस पूर्व ऐश्वर्य को भूलते हुए भ्रमवश अस्मिता-प्रचारकों का ही गुणगान करने लगे। भारत के इतिहास पर जयपुर राजपंडित महामहोपदेशक स्वर्गीय श्री मधुसूदन जी ओझाजी के 'इन्द्रविजय', 'विज्ञानविद्युत्' आदि ग्रन्थ इतिहास एवं विज्ञान-प्रेमियों को अवश्य देखने चाहिए। उनसे अवश्य आत्मा में अपूर्व विकास का अनुभव होगा और ईश्वर से अनन्यता होगी।

सबका ईश्वर या आत्मा सूर्य ही है

'ईशावास्यमिदं सर्वं० (यजुर्वेद ४०।१) "यह सब ईश की सत्ता से युक्त है, अतः उससे त्यक्त भाग ही भोग करो, अन्य वस्तु की इच्छा मत करो।" क्या संसार में कोई ऐसा पदार्थ है, जो ईश्वर सत्ता से पृथक् हो जाय? जबकि—"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।" 'ईश्वर सब भूतों के हृदय में है।' "ब्रह्म वेदं सर्वम्" 'ब्रह्म ही यह सब है' इत्यादि सिद्धान्त सर्वत्र मानते हैं, तो ऐसी अवस्था में—"तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा" 'उससे त्यक्त से पालन कर' यह कैसे कहा गया? इस प्रश्न का समाधान "प्रवर्ग्यविद्या" में किया है। यज्ञपुरुष में आहुत होनेवाला अन्न "ब्रह्मौदन" और "प्रवर्ग्य" भेद से दो प्रकार का है। ब्रह्मौदन (ब्रह्म के खाने के भाव) से यज्ञपुरुष अपना स्वरूप सुरक्षित रखता है एवं प्रवर्ग्य (त्यक्त) से संपूर्ण विश्व-प्रजा को उत्पन्न करता है। यह प्रवर्ग्य ईश्वर प्रजापति का यश है। प्रजापति की प्रजा में प्रजापति की सत्ता नहीं है किन्तु प्रजा में प्रजापति के यश की सत्ता है। जो स्थिति देशाधिपति की है, वही स्थिति विश्वाधिपति की है। प्राजापत्यतन्त्र ही राजतन्त्र की प्रतिष्ठा है। प्रजा की सारी सम्पत्ति शास्ता राजा की मानी जाती है, परन्तु प्रवर्ग्यरूप से। राजकोष (खजाना) मात्र ही 'राजा का ब्रह्मौदन है। ग्राम नगरादि प्रवर्ग्य हैं। इनमें राजा की सत्ता व्याप्त है। राजा के द्वारा त्यक्त इसी प्रवर्ग्य का सारी प्रजा भोग करती है। यही 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा' का उत्तर है।

यह प्रवर्ग्य भाग "उच्छिष्ट" नाम से प्रसिद्ध है। यही सबका उपादान यानी मुख्य कारण है। इसी आधार पर "उच्छिष्टात् सकलं जगत्" यह कहा जाता है। हिरण्यगर्भमूला सृष्टि के अनुसार विश्वकेन्द्रस्थ सूर्य को सबका संचालक माना जाता है। यज्ञप्रजापति सूर्यात्मक बनकर ही विश्वप्रजा का निर्माण करता है। कारण यही है कि षोडशीपुरुष नाम से प्रसिद्ध चिदात्मा का सूर्य में ही विकास होता है। पारमेष्ठ्यसोम इसमें निरंतर आहुत होता रहता है। इसी आधार पर सूर्य के लिए—'सूर्यो ह वा अग्निहोत्रम्' (शत० २।५।६।५) कहा जाता है। इस यज्ञपुरुष का स्वरूप बतलाती हुई श्रुति कहती है—

चत्वारि शृङ्गा, त्रयो अस्य पादा, द्वे शीर्षे, सप्त हस्तासो अस्य।

त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां आविवेश॥ —ऋ० ४।५८।३

'इसके चारों वेद सींग (यज्ञ के रक्षक) हैं—'सैषा त्रयी विद्या यज्ञः' (शत० १० कां०), प्रातःकाल का सूर्यतेज गायत्र है। मध्याह्न का तेज सावित्र है एवं सायंकालीन सूर्य का तेज सारस्वत है। प्रतिष्ठास्वरूप ये ही तीन सवन उसके पाँव हैं। (ये तीनों सूर्य की कांतियाँ क्रमशः गायत्री, सावित्री और सरस्वती देवियाँ हैं। पूर्वोक्त ब्रह्मौदन और प्रवर्ग्य ये दो मस्तक हैं। खगोल विद्या के अनुसार सौरमण्डल—गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप् और जगती इन सात छन्दों (अहोरात्र-वृत्त या पूर्वापरवृत्त) पर स्थित है। क्रांतिवृत्त-स्वरूप एक पहियेवाले सुनहरी (हिरण्मय-आग्नेय) रथ का एक अश्व है। उसी के वृत्तभेद से सात नाम हैं। 'एको अश्वो वहति सप्त नामा।' (ऋ० सं०) के अनुसार उक्त छन्द ही सात अश्व हैं। ये ही छन्दोमूर्ति सात अश्व उसके सात हाथ हैं। मंत्र, कल्प यानी विधान और ब्राह्मण इन तीन मर्यादाओं से बँधा हुआ यह सूर्य 'चित्रं देवानामुदगात्०' (यजुः सं० ७।४२) के अनुसार सम्पूर्ण देवताओं का संचालक होता हुआ महादेव है। "आयं गौः पृश्निरक्रमीत्" (यजु० ३।६) के अनुसार यही यज्ञमूर्ति वृषभ सबका आत्मा बना हुआ है। उक्त 'चत्वारि शृंगा०' मंत्र अनुगममंत्र है अतः इसके कई अर्थ होते हैं।

ईशसत्ता अंदर और बाहर के सम्बन्ध से दो प्रकार से विश्व के पदार्थों में स्थित रहती है। ईश्वर का जो अंश प्रवर्ग्य बनकर जीवसंस्था का उपादान बन जाता है, वह ईश्वरसत्ता अन्तर्यामसत्ता कहलाती है एवं व्यापक सत्ता का जो सम्बन्ध प्रवर्ग्यरूप जीवों के साथ होता है, वह सत्ता-सम्बन्ध 'बहिर्याम' नाम से कहा जाता है। दूसरे शब्दों में ब्रह्मौदनरूप से ईश्वरसत्ता से सारे जीव या सारे पदार्थ व्याप्त हैं, इसलिए तो 'ईशावास्यमिदं सर्वम्' इस वाक्य का समन्वय हो जाता है एवं प्रवर्ग्यरूप से सब पदार्थ उसकी सत्ता से भिन्न हैं, अतः 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा' इसका विरोध नहीं होता।

'सूर्य आत्मा० के अनुसार पार्थिव प्राणियों की आत्मसत्ता के अधिष्ठाता भगवान् भास्कर ही हैं। "बृहद्धतस्थौ भुवनेष्वन्त.' (ऋ० सं० ६।७।९) "आदित्यो वै विश्वस्य हृदयम्' (शत० ६।१-२।४७) इत्यादि श्रुतिसिद्धान्त के अनुसार विश्व के केन्द्र में बृहतीछन्द नाम से प्रसिद्ध विषुव किंवा विषुवद्वृत्त (इक्वेटर लाइन) पर स्थिर रूप से तप रहे हैं। विज्ञान शास्त्र के अनुसार सूर्य में ज्योति, गौ और आयु इन तीन मनोता (उन-उन पदार्थों में उन-उन मण्डलों के मन ओतप्रोत होते हैं) देवताओं की सत्ता मानी जाती है। ये तीनों मनोता क्रम से देवसृष्टि, भूतसृष्टि और आत्म-सृष्टि के संचालक बनते हैं। ज्योतिर्भाग से ३३ प्रकार के देवों का विकास होता है। यही देवयज्ञराशि "ज्योति-ष्टोम" नाम से प्रसिद्ध है। पञ्चविधभूतों का जनक गोतत्व है। यही "गोष्टोम' यज्ञ का अधिष्ठाता है। ३६००० भेदवाला मुहूर्तप्राणयुक्त आयुभाग आत्मसृष्टि का कारण बनता हुआ "आयुष्टोम" यज्ञ के स्वरूप का आधार बनता है। सूर्य में १२ प्राणों की सत्ता मानी जाती है। वही १२ प्राण "द्वादश आदित्य' नाम से प्रसिद्ध हैं। अथवा पृथक् पृथक् नाम, रूप और कर्मयुक्त बारह प्राणसमष्टि को ही सूर्य कहते हैं। इन प्राणों में सबसे श्रेष्ठ अधिष्ठाता प्राण "इन्द्र" कहलाता है। "मघवा" नाम से प्रसिद्ध यही सर्वश्रेष्ठ सूर्य का इन्द्रप्राण आयुरूप में परिणत होकर आत्मा की प्रतिष्ठाभूमि बनता है। इसी आधार पर इन्द्र-प्रतर्दनसंवाद में इन्द्र के लिए—

"तं मामायुरमृतमित्युपास्व" (कौ० उप-निषद् ३।२)

यह कहा गया है। आयुस्वरूप बनानेवाला वह इन्द्रप्राण उसी बृहतीछन्द (विषुवद्वृत्त) पर स्थित है, अतएव महर्षि महीदास ने इस इन्द्र-

प्राण को 'धूर्त प्राण' नाम से व्यवहृत किया है (रो० आ० २। इस प्राण का दर्शनी पात्र) मन और वाक् है। बिना मन और वाक् के वह एक क्षण भी नहीं रह सकता। मन के सम्बन्ध से सौरप्राण ज्ञानशक्ति का अधिष्ठाता बनता हुआ पार्थिवप्रजा में ज्ञान का प्रसार करता है। इसी अभिप्राय से इन्द्रप्राणघन सूर्य के लिए 'धियो यो नः प्रचोदयात्'' यजुः सं० २२।६ 'आदित्य उद्गीथः'' (छां उ० २ प्र० ०० ख०) इत्यादि कहा जाता है। प्राणमय होने से सौरइन्द्र क्रियाशक्ति का अधिष्ठाता बनता हुआ पार्थिवप्रजा में क्रियाशक्ति का प्रसार करता है इसी आधार पर "प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः' (प्रश्नोपनिषद् १।) यह कहा जाता है एवं वाङ्मय होने से सौरइन्द्र अर्थशक्ति का अधिष्ठाता बनता हुआ अर्थशक्ति का सञ्चालक बनता है। इसी वाक्‌वत्ता को लक्ष्य में रखकर 'वाग्वा इन्द्रः' (कौ० ५।७ 'वाक् पतङ्गाय धीयते' (यजुः ३।६) इत्यादि कहा जाता है। इस प्रकार आयुरूप आत्मस्वरूप बनानेवाले सौर इन्द्र का मन-प्राण-वाङ्मयत्व भली भाँति सिद्ध हो जाता है। मन प्राण वाङ्मय आयु से आत्मसृष्ट होती है। अतएव आत्मा का "स वा एष आत्मा वाङ्मयः प्राणमयो मनोमयः'' (बृ उ० १।५।३) यह लक्षण किया है, इसलिए सबका आत्मा सूर्य ही है।

सूर्य-सदन

भारत में पहले दिव्यप्राण की परीक्षा के लिए सिन्धु सरस्वती के तट पर बसी हुई सरस्वती नगर में विशाल सूर्य-सदन था। उस स्तूपाकार शिलामय सूर्यमंदिर में वैज्ञानिक महर्षि वसिष्ठादि सूर्यसञ्ज्ञक दो चक्रवाले यन्त्र से सूर्य-ज्योति की परीक्षा करते थे। सूर्यविज्ञान से आधिदैविक, आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक सिद्धियाँ सम्पादन की थीं विज्ञानशाला की सूर्यप्रतिमा से अन्य देवों की प्रतिमापूजा का आरम्भ हुआ था। किन्तु सूर्यचक्र तो विज्ञानार्थ ही था। पूज्य पं० मधुसूदनजी ओझा विद्यावाचस्पति प्रणीत 'इन्द्रविजय' ग्रन्थ में वैदिक प्रमाण देते हुए इस विषय को विस्तार से लिखा है। उसमें सूचित किया है कि

"जगति हि सृष्टिविधाने यद्वैचित्र्यं प्रदृश्यते क्वापि।

तस्यैष एव सूर्यः कारणमस्तीत सिद्धान्तः॥

(।७॥ पृष्ठ ४६)

जगत् में सृष्टिविधान के विषय में कहीं भी जो विचित्रता देखते है उसका कारण यह सूर्य ही है यह सिद्धान्त है।' आकाश के सूर्य में कौन-कौन से पदार्थ हैं और उनसे कैसे विश्व उत्पन्न होता है, यहाँ नानाभेद कहाँ से पैदा हुए, कैसे यहाँ वायु बहता है एवं कैसे बन्द हो जाता है, कैसे यहाँ मेघ वृष्टि के लिए आते हैं और चले जाते हैं, यह सब जानने के लिए भूमि पर सूर्य की स्थापना करके दो चक्रों के प्रभाव से सब पदार्थों की परीक्षा करते थे। दोनों चक्रों से सूर्य किरणों को संश्लेषण विश्लेषण करके नानाभाववाले सब विज्ञान को यहाँ प्राप्त किया था। (इंद्रविजय विज्ञानभवन तृतीय प्रसंग पृ० ६ श्लोक १८ से २१) भगवान् इंद्र एक सूर्यचक्र स्वर्ग में ले गये थे एवं वहाँ स्थापित करके भूमि पर शांति की थी तथा अपनी कीर्ति बढ़ाई थी। उक्त ग्रंथ के पृष्ठ ६६ पर यह लिखा है—

'इत्थं भगवानिन्द्रः स्वर्गेऽप्येकं स सूर्यमानीय।
कीर्तिं स्वामप्रथयद् भूमौ शांतिं च संस्थाप्य।७॥

माननीय मत मार्तण्ड को मानते हैं

'इन्द्रविजय' ग्रंथ के द्वितीय प्रसङ्ग में विदेशियों का मत खंडन करते हुए यह सिद्ध किया है कि—'भारतीय आर्य परदेश से यहाँ नहीं आये हैं और उनका लक्षण लिखा है—

ओंकार एष येषां सर्वश्रेष्ठो मंत्र आराध्यः।
येषां भिन्नमतानामप्यत्रास्त्येकबन्धुत्वम्॥

येषां शास्त्रं वेदश्चातुर्वर्ण्ये विभाजितो धर्मः।
धेनुर्गङ्गाराध्या तेषां देशोऽस्ति भारतं वर्षम् ॥१॥

जिनका सामान्य ओंकार उपासनामंत्र है, भिन्नमत होते हुए भी जिनका परस्पर बन्धुत्व है जिनका शास्त्र वेद है, जिनका धर्म चार वर्णों में विभाजित है एवं गो और गङ्गा की भक्ति करते हैं, उनका भारतवर्ष देश है।' शास्त्रार्थ महारथ पं० श्री माधवाचार्यजी शास्त्री ने भी अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असंभव इन तीन दोषों से रहित हिन्दू का लक्षण लिखा है। यथा—

ओंकारमूलमन्त्राढ्य: पुनर्जन्मदृढाशय: ।
गोभक्तो भारतगुरुर्हिन्दुर्हिंसनदूषकः ॥
(माधव दिग्विजय)

अर्थात् 'ओंकार को मूलमन्त्र माननेवाला, पुनर्जन्मविश्वासी गोभक्त, जिसका प्रवर्तक भारतीय हो और हिंसा को निन्द्य माननेवाला 'हिन्दू' कहा जाता है।' उक्त लक्षण सनातनी, आर्यसमाजी, सिक्ख, जैन और बौद्ध इन पाँचों संप्रदायों में समान गति से घटित होता है। आर्य और हिन्दू के उक्त लक्षणों से पहला लक्षण ओंकारमंत्र माना है। ओंकार सूर्य की मूर्ति है। इसी ओंकार से त्रैलोक्य का विकास हुआ है। यही चर और अचर की प्रतिष्ठा है। छांदोग्य उपनिषद् १-५-१ में कहा है कि—

'आदित्य उद्गीथ एष प्रणव ओमिति ह्येष स्वरन्नेति।'

इसमें ओंकार को सूर्य सिद्ध किया है। उक्त पाँचों हिन्दूमत ओंकार को मानते हैं। सनातनी प्रत्येक मंत्र के साथ ओंकार का योग आवश्यक मानते हैं। अतः उनका यह परम पवित्र सर्ववेदबीजभूत प्रधान मन्त्र है। आर्यसमाजी तो 'ओं' के सर्वाधिक उपासक हैं, स्वामी श्री दयानंदजी ने सत्यार्थप्रकाश में इसे परमात्मा का निज नाम माना है। उनका ध्वज भी 'ओं' से चिह्नित होता है। सिक्खों के धर्मग्रन्थ में सर्वप्रथम 'एक ओंकार सद्गुरु प्रसाद' यही मंगलाचरण मिलता है। जैनियों का गुरुमंत्र 'ओं नमो अरिहंताणम्' इत्यादि है, बौद्धों का भी प्रधानमंत्र 'ओं मणिपद्मे हुम्' है इसी प्रकार सभी 'ओं' को मूलमन्त्र मानते हैं एवं 'ओं' सूर्यमूर्ति होने से उक्त हिन्दूमत सूर्योपासक सिद्ध हुए।

हिन्दू ही नहीं मुसलमान और ईसाई आदि के धर्मग्रन्थों से भी ईश्वर सूर्य ही सिद्ध होते हैं। क्योंकि अनादि वैदिकधर्म ही सृष्टि का मौलिक या आदि धर्म है। इस विषय की खोज भाषाशास्त्र की दृष्टि से भी अनेक विद्वानों ने की है, उनमें से श्री गणपतराव दा० गोरे, ३७३ मंगलवार 'पा' कोल्हापुर के 'कुरान-बाइबल में सूर्योपासना' आदि अनेक लेखों में से कुछ प्रमाण उद्धृत किये जाते हैं। कुरान में अल्लाह का स्वरूप सत्य कहा है—

"अल्लाह हु वल्ल हक्क" कुरान ३१।३०।

'वह अल्लाह हक्क सत्य है।' ऋग्वेद ४।३१।२ में परमात्मा को 'सत्य', ऋ० १।१६४।४६ में 'एक सत्' और कई स्थानों पर 'सत्यम्' भी कहा है। 'अल्ला' शब्द संस्कृत है, इसका अर्थ माता है। 'अलं जाति' के अनुसार इसका अर्थ—संसार के लिए या संसार में सर्वत्र परिपूर्ण रहनेवाला तथा संसार की आवश्यकताओं को बराबर रखनेवाला होता है। यह सूर्य की शक्ति सूर्या भी है, और इसलिए स्त्रीलिंगी है! अल्लाह यानी सुदासुद+आ= प्रतिदिन स्वयं आनेवाला = सूर्य।

'ला, इलाह, इल्, अल्लाह' यानी उषा के बिना अल्ला नहीं (उषा के बिना सूर्य नहीं) इडा—इला अर्थात मैत्रावरुणी—सूर्य की पुत्री उषा ही है। (वैदिकधर्म मासिक, पैजार सं० २००६ पृष्ठ १७३ से १८१ तक) कुरान में परमात्मा का नाम रहीम भी है जिसका अर्थ हिन्दी तथा मराठी भाष्यकारों ने दयावन्त किया है। यह रहीम शब्द 'रवि' (सूर्य) शब्द का ही बिगड़ा हुआ रूप है! सूर्य हर प्रकार से 'दयावन्त'

प्रसिद्ध है। (वै० धर्म वर्ष २५, अं० ३ पृष्ठ १६५) ।

बाइबल का सोने का बछड़ा = वेद का सोने का अण्डा सूर्य है। निर्गमन ३२।२४ के अनुसार सोने का बछड़ा हारून ने अग्नि में डाल कर निकाला और फिर उसकी हवन द्वारा पूजा आरंभ हुई। वेद ने इसे सोने का अण्डा = सूर्य कहा है और उससे सृष्ट्युत्पत्ति निम्न प्रकार बताकर उसकी हवन द्वारा पूजा करना भी सिखाया है —

हिरण्यगर्भः प्राजापत्यः ऋषिः। कः (प्रजापतिः) देवता।
हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम् ॥ (ऋ० १।१२१।१)।

अर्थ— जिस प्रकार प्रतिदिन सूर्योदय से पूर्व उषाकाल आता है, उसी प्रकार सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व कई लाखों वर्षों का उषाकाल अरुण = हारून आया था। इस उषारूपी अग्नि में वह सोने का बछड़ा = अण्डा पकता वा बनता रहा। तत्पश्चात् जब वह बछड़ा वा अण्डा अरुणाग्नि में ढलकर तैयार हुआ तो मन्त्र कहता है कि (हिरण्यगर्भः) वह सोने का अण्डा (समवर्त्तत) [आकाश में अपनी कील पर] चक्कर काटने लगा। (भूतस्य जातः) फिर वह चराचर सृष्टि को उत्पन्न करके (एकः पतिः आसीत्) उसका एक ही स्वामी था। (सः पृथिवीं उत इमां द्यां दाधार) उसने [हमारी] पृथिवी को और इन [मंगल, बृहस्पति आदि आठ] ग्रहों को धारण किया। अतः (कस्मै देवाय) उस प्रजापालक देव के लिए हम (हविषा विधेम) हवन-यज्ञ करके उपासना करें ॥१॥

सूर्य की उपस्थिति में ही प्रातः सायं हवन करने का विधान है, रात को नहीं। इससे स्पष्ट होता है कि हवन सूर्य के लिए ही किया जाता है। इसी कारण से हिन्दुओं में रात को मरे हुए को प्रातःकाल जलाने की प्रथा है। बाइबल के निर्गमन ३२।५-६ से भी पता चलता है कि पूर्वकाल में इस बछड़े की पूजा यहूदी भी होम से करते थे।

ऋग्वेद १।१२३।११ का वचन है— 'सुसङ्काशा मातृमृष्टेव योषा।' अर्थ—(मातृमृष्टा) माता द्वारा अनुलेपन की गई (सुसंकाशा योषा एव) सुदर्शनीय युवा स्त्री के समान [उषा]। यहाँ का स्त्री लिंग योषा शब्द बाइबल में जाकर किस प्रकार पुल्लिंग बनकर ईसा के अर्थों में प्रयुक्त है, सो अब देखिए —"मर्यम वही थी जिसने प्रभु [ईसा] पर सुगंधित तेल लगाया और उसके चरणों को अपने बालों से पोंछा। बाइबल के योहन ११।२ का आधार ऋ० १।१२३।११ है। वेद का स्त्रीलिंगी योषा बाइबल में आकर यू.पू योषा वा ईसा पुरुषलिंगी शब्द बन गया है।

"मर्यम का अपने केशों से अपने पुत्र [सूर्य] के चरण पोंछना" इस वाक्य का अर्थ है "उषा का अपनी किरणों से सूर्य के चलने के साधनों को शुद्ध और पवित्र बनाना।" वैज्ञानिकों का कथन है कि सूर्य काले रंग का है, परन्तु वह एक चमकीली वायु से सदा आवृत्त रहने के कारण चमकता रहता है। वेद इसी चमकीली वायु को उषा कहता है। (वैदिक धर्म वर्ष २५, अङ्क ११ पृष्ठ ५५५ से ५६० तक)

उक्त प्रमाणों से सिद्ध होता है कि मनुष्यमात्र के ईश्वर सूर्य ही हैं। ॐ, अग्नि, अल्ला, ईसा, ऋषभ, बुद्ध, गणपति, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गायित्री, सावित्री, सरस्वती, लक्ष्मी, काली, राम, कृष्ण, गोविंद, रवि और रब ये सब सूर्य के एवं उनकी शक्तियों के नाम हैं। अतः बिना एक सर्वेश्वर को स्वीकार किये संसार में, समाज में, राष्ट्र में एवं व्यक्ति में शान्ति स्थापित नहीं हो सकती। तथा बिना ईश्वर को माने एवं बिना उसकी आज्ञापालन किये मित्रता, समता, दया और प्रेम के भाव

प्रकट नहीं हो सकते और न विना इन भावों के संसार की व्यवस्था ही हो सकती है। इसके लिए ईश—विद्याप्रकाशक वेदमन्त्रों का मनन करना मानव का प्रमुख कर्तव्य है। कम से कम ईशोपनिषद् जैसे कुछ सूक्तों का स्वाध्याय तो अवश्य करें। उनसे निज कर्तव्य का बोध होगा, कर्तव्यपालन में दृढ़ता होगी, अकर्मण्यता दूर होगी, हम सब ईश्वर के पुत्र हैं यह ज्ञात होगा एवं उक्त उद्देशों को लक्ष्य में रखकर स्वशक्ति के अनुसार स्वकर्म में निष्काम बुद्धि से प्रवृत्ति होगी तथा इसके प्रचार से यहाँ व वहाँ सर्वत्र सच्चा सुख और शाश्वत शान्ति प्राप्त होगी। अतः सब मानव मिलकर स्तुति करें—

"रघुपति राघव राजाराम।
ऋषभ, बुद्ध औ, गोविंद, श्याम।
ईश्वर, अल्ला, ईसा नाम।
सबको सन्मति दे रविधाम॥"

आवश्यक सूचना

कल्पवृक्ष का मई-जून का अंक, साधन समारंभ का संयुक्तांक, होगा, और वह जून मास में प्रकाशित होगा। अतएव ग्राहक मई मास में धैर्य रखें और शिकायत न करें कि मई का अंक हमें नहीं मिला।

—व्यवस्थापक कल्पवृक्ष

मन की गठरी खोलो

कुमारी केट सिमन्स

खेल का मैदान ही केवल एक ऐसा स्थान है, जहाँ खेल (बाज़ी) के समय ही अनेक राष्ट्रों के खिलाड़ी परस्पर हँसी खुशी मिलते हैं, खेल के नियम मानते हैं और खुशी-खुशी ईमानदारी से अपनी हार जीत मानते हैं। बाज़ी के ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय खेलों को देखने हजारों लोग जाते हैं और जीतनेवाले खिलाड़ियों की तारीफ सभी देशवाले करते हैं।

अब जनसाधारण को बात लीजिए। खेल के इस मैदान के अतिरिक्त अब व्यवहार वार्तालाप में पारस्परिक सत्यनिष्ठा नहीं रह गई, कानून के सामने न्यायालय में भी नहीं। उभयपक्ष के लोग कानून की सहायता लेकर अपनी-अपनी बात के सत्य होने की दुहाई देते हैं। कृष्ण, रामचन्द्र, सुकरात, प्लेटो और ईसामसीह के जमाने में जिस प्रकार लोग व्यक्तिगत स्वार्थ और रुचि को [illegible] रखकर शुद्ध तर्कयुक्त वाद-विवाद करते हुए परस्पर के विचारों को सुनते-समझते थे, उनका ध्येय एक था, केवल सत्यनिष्ठा, वह अब [illegible] नहीं रह गया है! आज का युग बहुत शिक्षित और सभ्य कहलाता है, परन्तु फिर भी कितने विवाद और झगड़े होते हैं। हरेक आदमी [illegible] लग जाता है। हरेक व्यक्ति समझता है कि हमारा विचार ठीक है जो [illegible] ठीक करते हैं, दूसरों का [illegible] गलत है, और उनका काम अनुचित है। एक देश [illegible] अपनी संस्कृति को उच्च और [illegible] दूसरों की संस्कृति को [illegible] और गलत। [illegible] के ऐसे विचार टूट जावें तो दुनिया के

कानून, न्यायालय और शासन भी उठ जाय फिर किसी भय, नियंत्रण या बन्धन अनुशासन की जरूरत न रह जाय।

जहाँ व्यक्तिगत रुचि, स्वार्थ और पाखण्ड होगा, वहाँ सत्य नहीं टिकेगा। जो लोग सत्य पर स्थिर रहते हैं, वे स्वार्थ से ऊचे उठे होते हैं. अपनी रुचि या स्वार्थ का वहाँ कोई महत्व नहीं रहता, और ऐसे लोग खुले दिल, निष्पक्ष होकर दूसरों की बात को सुनते समझते और मानते हैं। जब तक ऐसी सत्यनिष्ठ वृत्ति उभय पक्ष की न हो जाय तब तक किसी को भी बहस से कुछ लाभ नहीं होता, बकवादमात्र रहता है।

हिमालय के सर्वोच्च शिखर गौरीशंकर की चढ़ाई करना, और पृथ्वी के उत्तरी दक्षिणी ध्रुव प्रदेशों की खोज करना सचमुच विकट साहस का काम है, परन्तु मनुष्य के मनोदेश की खोज करना, उससे भी विकट है। धर्माचरण जब रूढ़ि और रिवाज के रूप में ढल गया, बुद्धि निरपेक्ष आचरण बन गया, अर्थात् "ऐसा करो, वैसा करो, ऐसा मानो, वैसा मत मानो" की परम्परा में केवल अन्धे बनकर विश्वास करने की वस्तु बन गया तो मानव समाज मानो अन्धकूप में जा गिरा।

परमात्मा को इस तरह नहीं माना जा सकता। केवल कह देने से कि परमात्मा है उसको मानो, मनुष्य, सच पूछो तो, परमात्मा को नहीं मान सकता जब तक वह परमात्मा को जान न ले, अथवा पा न जाय, आत्मसात् न कर ले। दूसरे द्वारा कहा हुआ ज्ञान हम केवल सुनकर मान लें, यह हमारे लिए सार्थक न होगा जब तक कि हम स्वयं न जान लें। जिस ईश्वर को जाना नहीं, उस पर केवल विश्वास करना, भ्रम में पड़ना है।

An unknown God means a misunderstood God

बोलने अर्थात् आत्मविचार प्रदर्शन की आजादी, और परस्पर के विचारों को सत्यनिष्ठ और खुले दिल होकर सुनने की आजादी का इस युग में केवल प्रचार मात्र हो रहा है, विकास और व्यवहार में यह बात अब तक आई नहीं है। संसार में असंख्य लोग एकान्त में अकेले रहते है, तथा समाज और भीड़ भाड़ के संसार में रहते हुए भी असंख्य लोग अकेले हैं, घर परिवार में रहते हुए भी लोग अकेले हैं, अर्थात् अकेले इसलिए कि उनके मन की बात उनके मन में ही रहता है वे अपने मन के दुःख सुख की बातें आकांक्षा, या किसी निजी विषय की चर्चा दूसरों से करने में हिचकते हैं, ऐसे विषयों की चर्चा घर समाज में कोई उठाता ही नहीं, क्योंकि दूसरों को किसी के दुःख सुख की बातें या निजी विचार सुनने में रुचि नहीं, मतलब नहीं। इस प्रकार घर समाज के भीड़ भाड़ में रहते हुए भी जब तक लोगों के मन की गठरी बँध रहेगी, लोग परस्पर को न समझ पायेंगे, तो ईश्वर को कैसे विश्वास करके जान सकेंगे या पा सकेंगे? इसीलिए तो कहा गया है कि जो अपनी आँख के सामने, प्रत्यक्ष अपने भाई से प्रेम नहीं करता, वह आँख से ओझल, परोक्ष परमात्मा से कैसे प्रेम करेगा? जो प्रत्यक्ष अपने भाई से घृणा करता है, और कहता है कि मैं परमात्मा की पूजा करता हूँ, वह झूठा है, पाखण्डी है।

लोग अक्सर किसी से किसी के विषय में कोई बात सुनकर एकदम उस व्यक्ति के विषय में एक विशेष प्रकार की धारणा अपने मन में स्थिर कर लेते हैं, कि अमुक व्यक्ति ऐसा है, वैसा है, और किसी प्रमाण के बिना, स्वयं देखे जाने बिना, उसको वैसा समझने लग जाते हैं, स्वयं सत्यनिष्ठ निष्पक्ष होकर उस पर आगे विचार नहीं करते कि यह बात कहाँ तक सत्य अथवा झूठ है। इस विचार की तो कोई कद्र ही नहीं।

बचपन भोलेपन का जीवन है, परन्तु बढ़कर

ज्यों ज्यों बड़े लोगों के सम्पर्क में और शर्म संकीर्णता रूपी सभ्यता के आवरण में आते जाते हैं त्यों त्यों उनके मन की गठरी भी बँधनी शुरू हो जाती है। जब बड़े लोग ही परस्पर दिल खोलकर बात या व्यवहार नहीं करते, और छोटों को शिक्षा देते हैं कि सच बोलो, तो बच्चों का विकास कैसे हो सकता है। शिक्षा का प्रभाव कम होता है, प्रचलित व्यवहार को देखकर वे अधिक सीखते हैं। यही बात है कि पुस्तकों में माथा कूटने की अपेक्षा सिनेमा द्वारा जनसाधारण की वृत्ति सहज ही शिक्षित होती है।

यदि हम परस्पर से दिल खोलकर, निष्कपट निष्पक्ष और सत्यनिष्ठ होकर विचार परामर्श करें और इस प्रकार दिल से दिल मिलाकर परस्पर को जान ले तो ईश्वर को जान लिया समझिए, वर्ना ईश्वर बहुत बहुत दूर है। अन्यथा ईश्वर को ग्रन्थों और तीर्थों मन्दिरों में कितना भी ढूंढ़ो, प्रवचन सुनो, पूजा जप तप कीर्तन करो, चिल्लाओ गाओ, सब व्यर्थ बकवाद और सिर फोड़ना है।

आजकल मनोविश्लेषण का जमाना है। मन का रोगी डॉक्टर के पास अपने मन का विश्लेषण कराने, मन की गठरी खुलवाने जाता है। डॉक्टर (मनोवैज्ञानिक) उस मनोरोगी से अनेक प्रकार के प्रश्न पूछता है, और रोगी हफ्तों, महीनों तक, बातचीत में विचारों की लुकाछिपी जब तक करता रहता है, अपने मन की बात नहीं कहता, तब तक उसका इलाज भी भला कैसे हो? उसके मन में से छिपी हुई दुःखद बात नहीं निकलती, मानों किसी थैले में कोई पदार्थ भरकर उसके मुंह पर कार्क लगा दिया गया हो। जिन लोगों से दिन रात परस्पर मिलना जुलना होता रहता है, उनसे भी व्यवहार वार्तालाप में संकीर्णता रखे, दिल खोलकर बात न करें, और दिल खोलकर दूसरों की बात न सुने समझे, तब तक सहानुभूति की आशा नहीं की जा सकती, और प्राप्त भी नहीं हो सकती। आजकल संसार के असंख्य लोगों के मानसिक और शारीरिक रोगों की यही जड़ है।

जब तक मानव के मन की गठरी नहीं खुलेगी, परस्पर के मन नहीं मिलेंगे, तब तक संसार में ये रोग नये नये विकट रूपों में प्रगट होते रहेंगे। परस्पर भाई भाई को जाने बिना मनुष्य अज्ञानवश केवल ईश्वर की कल्पना और विश्वास करता हुआ हजारों वर्षों तक व्यर्थ ही जप तप पूजा कीर्तन तीर्थयात्रा आदि करता रहेगा। परमात्मा को जानना और उसकी पूजा का अर्थ है विश्व और विश्व के लोगों को जानना और उनकी पूजा करना। प्राचीन ऋषि महर्षि "ईशावास्य मिदं सर्वं यत्किञ्चिज्जगत्यां जगत्"—मानते थे। यह तो केवल पढ़ने प्रवचन करने की नहीं, व्यवहार में लाने की बात है।

योगासन सम्बन्धी ज्ञातव्य

डॉ० लक्ष्मीनारायण जी टण्डन, एम० ए०

योगासन के अभ्यास से शरीर में लघुता, कर्मण्यता, घनत्व, दोष-क्षय, अग्निवृद्धि, रोग-नाश, स्फूर्ति, आत्मबल आदि अनेक लाभ होते हैं। इन्हें चिरकाल तक करते रहने से यथेष्ट लाभ होता है। ब्रह्मचर्य पालन के बिना हानि भी सम्भव है। सभी आसन प्रत्येक दशा में हर एक के लिए निश्चित रूप से हितकर ही होंगे, यह दृढ़तापूर्वक नहीं कहा जा सकता। अनुभव से जाना गया है कि पूर्ण फलप्रद एवं विश्वस्त आसनों से भी हानि हुई है। साधारण दृष्टि से यद्यपि आसनों के करने का विधान बालक युवा वृद्ध, रोगी निरोगी, सबल निर्बल, गर्भिणी आदि तक को है, तथापि परिस्थिति का पूर्ण अध्ययन कर उपर्युक्त निर्धारण आवश्यक है। 'देखा देखी साधे योग, छीजे काया बाढ़े रोग' कहावत स्मरण रखना चाहिए। वैसे, रोगों का नाश योगासनों से होता है।

इसके अतिरिक्त भद्रासन, स्वस्तिकासन, दण्डासन, सोपाश्रयासन, पर्यंकासन, कौंच-निषदनासन, हस्तिनिषदनासन, उष्ट्र निषद-नासन, समसंस्थानासन, स्थिर सुखासन, और यथा सुखासन आदि अनेकानेक आसनों द्वारा भी स्वास्थ्य लाभ किया जा सकता है।

आसनों के नाम

१—ताड़ासन, २—हस्तपादांगुष्ठासन, ३—पादहस्तासन, ४—कोणासन, ५—उत्कटासन, ६—गरुड़ासन, ७—पादांगुष्ठासन, ८—चक्रासन, ९—वातायनासन, १० वीरासन, ११—पद्मासन, १२—सिद्धासन, १३—बद्ध पद्मासन, १४—गोमुखासन, १५—उत्थित पद्मासन, १६—वकासन, १७—कुक्कुटासन, १८—लोलासन, १९—गर्भासन, २०—वज्रासन, २१—आकर्ण धनुरासन, २२—सुप्त-

आसनों द्वारा रोगनाश

रोग	आसन
१. अजीर्ण	जानुशिरासन, चक्रासन, मयूरासन, उष्ट्रासन, सर्वाङ्गासन, शीर्षासन।
२. बद्धकोष्ठ	कपालासन, सर्वाङ्गासन, पश्चिमोत्तान आसन।
३. कास	पश्चिमोत्तानासन, अर्धसर्वाङ्गासन, जानुशिरासन, शीर्षासन।
४. श्लेष्मा, दीर्घदृष्टि	कपालासन, शीर्षासन, अर्ध सर्वाङ्गासन।
५. शिरोरोग, रक्तदोष	शीर्षासन, अर्ध सर्वाङ्गासन।
६. मेदोरोग	ताड़ासन, सर्वाङ्गासन, शीर्षासन, कोणासन।
७. जीर्ण ज्वर	चक्रासन, शीर्षासन, मयूरासन, मत्स्येन्द्रासन।
८. उन्माद	सूर्यभेदनाशन, शीर्षासन।
९. उदर रोग	जानुशिरासन, सूर्यभेदनाशन।
१०. कटिशूल	उष्ट्रासन, कोणासन, जानुशिरासन, पश्चिमोत्तान।
११. ग्रन्थिशोथ	धनुरासन, शीर्षासन।
१२. शोथ	अर्ध सर्वाङ्गासन, शीर्षासन, कपालासन।
१३. प्लीहा वृद्धि	मयूरासन, चक्रासन, वृश्चिकासन, सर्वाङ्गासन।

वज्रासन, २३—धनुपासन, २४—चतुष्कोणासन, २५—प्राणासन, २६—मत्स्येन्द्रासन, २७—एकपादशिरासन, २८—द्विपादशिरासन, २९—एकहस्त भुजासन, ३०—द्विहस्त भुजासन, ३१—पश्चिमोत्तानासन, ३२—कन्दर्पडासन, ३३—त्रिकोणासन, ३४—जानुशिरासन, ३५—उत्तानपादासन, ३६—पवनमुक्तासन, ३७—मत्स्यासन, ३८—सर्वाङ्गासन, ३९—उर्ध्व-सर्वाङ्गासन, ४०—लोलांगुलासन, ४१—मयूरासन, ४२—हंसासन, ४३—सर्पासन, ४४—शलभासन, ४५—शीर्षासन, ४६—उर्ध्व-पद्मासन, ४७—वृश्चिकासन, ४८—शवासन।

आसन ८४ अथवा स्वस्थ स्वाभाविक दशा में बैठे हुए स्थल जल एवं नभचर प्राणियों की स्थिति देखते हुए असंख्य आसन हैं। प्रयत्न से, उन्हें देखकर सीख सकते हैं। परंतु ४८ या ८४ प्रधान हैं।

आवश्यक ज्ञातव्य

१—आसनों का अभ्यास प्रत्येक व्यक्ति समानरूप से करके लाभ उठा सकता है।

२—आसन प्रायः शरद और वसन्त ऋतु में विशेष लाभप्रद हैं।

३—मुख्य समय प्रातःकाल, तथा गौण सायंकाल है।

४—स्थान स्वच्छ, धूलधुआँ रहित, एकान्त शान्त, समतल हो।

५—आसन हमेशा नित्य कर्म से निवृत्त हो खाली पेट ही करें।

६—केवल लंगोट या यथावश्यक वस्त्र पहन कर करें।

७—आसन सबल निर्बल, रोगी निरोगी, बाल युवा वृद्ध, स्त्री पुरुष, सभी जाति वर्ण के लोग निरापद रूप से कर सकते हैं।

८—मनोयोगपूर्वक करने से ही लाभ होता है।

९—यह विद्या शनैः शनैः अभ्यास बढ़ाते हुए करना चाहिए। सब एकदम शीघ्रतापूर्वक नहीं।

१०—किसी भी दशा में दिनान्तर न होवे। नित्य करें।

११—अपनी प्रकृति अनुसार, बुद्धि से गंभीरतापूर्वक विचार करके ही अनुकूल आसन का अभ्यास करें।

१२—आसन के लिए हलका रुईदार गद्दा हो तो अच्छा।

१३—किसी भी आसन को क्रमशः धीरे धीरे बढ़ाकर पूर्णता लावें। अन्यथा अति आचार करने से स्नायु और अस्थि पर अनुचित प्रभाव पड़ सकता है।

१४—दैनिक तैलाभ्यङ्ग स्नान बहुत हितकर है।

१५—रूखा भोजन सर्वथा वर्जित है। घृत दुग्ध पौष्टिक पेय आवश्यक है।

१६—मादक वस्तुएं एवं व्यसन सर्वथा वर्जित हैं।

१७—सात्विक भोजन ही ग्राह्य है। मिर्च मसाले आदि नहीं।

१८—अखण्ड ब्रह्मचर्य अनिवार्य है।

१९—युक्ताहार विहार (शयन) चेष्टाएँ सम हों।

२०—आरम्भ में सुगम आसन, फिर शनैः शनैः शक्ति बढ़ने के अनुसार क्लिष्ट आसन करें।

२१—भोजन हलका सुपाच्य हो, गरिष्ठ नहीं।

२२—आसन करने के कुछ दिनों पश्चात भूख बढ़ने पर भी भोजन की मात्रा सीमित रहे।

२३—जो अपने मन को सन्मार्गानुगामी न बना सके, विषय वशीकार न हो, वे वृथा समय नष्ट न करें, आसनों का अभ्यास न करें।

२४—मन सदा प्रसन्न शान्त रखें और

लाभ के लिए कर्त्तव्य समझ कर आसन करें। लाचारी से जबरदस्ती नहीं।

योगासनों का अभ्यास किसी न किसी प्रकार की सिद्धि का दाता है। रोगनाश आदि ऐहिक सुखों के अतिरिक्त अणिमा महिमा, लघिमा गरिमा, प्राप्ति प्राकाम्य, ईशित्व वशित्व आदि सिद्धियाँ, जन्म मरण चक्र से मुक्ति तक प्राप्त हो सकती है। केवल आठों अंगों पर पूर्ण अधिकार करने की देर है, फिर आगे उन्नति ही उन्नति होती है। पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए अनुभवी एवं विद्वान् गुरु की शरण की अपेक्षा दत्त चित्त होकर करनी आवश्यक है। यह परम गुह्य (गोपनीय) विषय है। बाजीगर का ऐन्द्रजालिक खेल नहीं है जो प्रकट में गली गली या बाजार में प्रदर्शन के लिए हो। अधिकारी व्यक्ति को इसमें हाथ डालना चाहिए। सर्वसाधारण भी इससे लाभ उठा सकते हैं, पर नियमों का पूर्णता से पालन करने तथा इन्द्रिय संयम के साथ ही। प्रतिकूल तथा अनुपयुक्त प्रयोग से हानि होगी।

महासत्य

श्री विश्वामित्र वर्मा

कभी कभी एक बात से, एक प्रेरणा से, एक अनुभव से मनुष्य के जीवन में महान् परिवर्तन हो जाता है। यह परिवर्तन एक क्षण में ही हो जाता है, और मनुष्य कुछ का कुछ हो जाता है, मानो उसके भीतर दबी सुलगती हुई आग ने दावानल का रूप धारण कर लिया हो अथवा मानो ज्वालामुखी पर्वत फूट पड़ने के समान अचानक उसके मन में या हृदय में, कोई बहुत पुरानी पड़ी हुई चिनगारी ने विस्फोट कर दिया हो।

इस कथन का यह अर्थ नहीं कि अमुक प्रेरणा से रोगी मनुष्य एक क्षण में एकदम मोटा तगड़ा लम्बा भीमकाय अथवा गरीब मनुष्य वैभवशाली हो जाता हो, परन्तु अमुक प्रेरणा से वह मन में अपने आपको स्वस्थ अनुभव करने लगता है, और रोग दूर हो जाता है, (क्योंकि रोग वस्तुतः मूलतः मानसिक होते हैं। ज्ञान और आत्मसंयम न होने के कारण मनुष्य अनजान में अनेक प्रकार के शारीरिक या मानसिक असंयम करता है जिसके फलस्वरूप रोग होते हैं); तथा वह निराशा निरुत्साह से मुक्त होकर रचनात्मक प्रवृत्ति के मार्ग में लग जाता है जिससे वह क्रमशः दरिद्र से वैभवशाली होता है।

संसार में जितने उपकारी या महापुरुष हुए हैं वे प्रायः इसी प्रकार हुए हैं। रोगी को रोगमुक्त होने के लिए केवल एक उचित शब्द—आशीर्वाद, और हीन को महान् बनाने के लिए केवल एक ही परामर्श—प्रेरणा काफी होती है। सारी दुनिया में ग्रन्थों में उपदेश भरे पड़े हैं, उपदेश देनेवाले भी बहुतेरे हैं, परन्तु उनको विरला कोई माननेवाला ही व्यवहार में लाकर ऊँचे उठता है।

एक उदाहरण है, अमेरिका के प्रसिद्ध आध्यात्मिक-चिकित्सक हेनरी विक्टर मार्गन (Henry Victor Morgan) का, जिन्हें कोई ऐसा रोग हो गया था कि डॉक्टरों ने जवाब दे दिया था कि हमसे कुछ नहीं बन सकता। तब मार्गन साहब ने आत्म-विचार किया, "जो कुछ परमात्मा के विषय में सत्य है, वही मनुष्य के विषय में भी सत्य है। (परमात्मा ने शब्द से सृष्टि की, तो मनुष्य भी

अपने शब्द से शरीर में स्वास्थ्य निर्माण कर सकता है।) अस्तु, "बस, मुझे यह रोग अब नहीं होगा," वे अपने आप बोल उठे। और उनकी अन्तरात्मा भी तत्काल बोल उठी—"हाँ, तुम अब रोगी नहीं रहोगे।" और सचमुच ऐसा ही हुआ और स्वस्थ होकर, दूसरों की चिकित्सा करने के लिए उन्होंने अपना जीवन समर्पण कर दिया, और ८७ वर्ष की उम्र तक वे इस "महासत्य" का प्रसार आध्यात्मिक चिकित्सा द्वारा करते रहे।

इस प्रकार रोगमुक्त होने के विषय में ईसाई धर्म ग्रन्थों में आदेश है कि संकल्प विकल्पों और क्लिष्ट विश्वासों को छोड़कर अपने मन को भोला बनाकर एक महासत्य पर विश्वास करो। जितना ही अधिक तुममें ज्ञान का अहंकार होगा उतना ही कम तुम पर प्रभाव होगा। क्योंकि स्वयं मनुष्य दूसरे मनुष्य को रोगमुक्त नहीं कर सकता, अर्थात् मनुष्य के मस्तिष्क में जो ज्ञान भरा हुआ है उसके द्वारा वह असाध्य रोग को नहीं दूर कर सकता। यदि वह अपना अहंकार निकाल फेके, तो वही मनुष्य "दिव्य चेतना के प्रवाह" का माध्यम बन सकता है और उसके द्वारा तात्कालिक चिकित्सा के चमत्कार हो सकते हैं। अतएव जिस प्रकार छोटा सा बालक अपने पिता पर श्रद्धा रखते हुए आश्रित रहता है उसी प्रकार मनुष्य को परमपिता पर श्रद्धा रखकर आश्रित रहना चाहिए। चिकित्सक और रोगी दोनों के लिए यही एक शर्त है।

कोई मनुष्य किसी का रोग नहीं दूर कर सकता। ईसामसीह भी नहीं कर सके। वे तो खुले आम कहते थे कि "मैं कुछ नहीं करता हूँ परन्तु परमपिता मेरे द्वारा सब कुछ करता है।" यदि ईसामसीह समझते कि मैं लोगों को रोगमुक्त करता हूँ, तो चिकित्सा के चमत्कार न होते, जो कि हुए हैं।

"तुममें शक्ति है, तुम शक्ति के पुत्र हो, शक्ति के अवतार हो, जो परमेश्वर के विषय में सत्य है, वही तुम्हारे विषय में भी सत्य है', यह इस नवयुग का सन्देश है, और वेद-वेदान्त में पढ़े सुने हुए तत्त्वमसि, सोऽहम्, अहं ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्म, सर्वं खल्विदं ब्रह्म, आदि महावाक्यों का, आजकल के युग में, आजकल की भाषा में, प्रत्येक व्यक्ति के विषय में यह महासत्य घोषित हो रहा है। इसी शक्ति के ज्ञान और साक्षात्कार से संसार के रोगियों और दरिद्रों का उद्धार होगा, परन्तु श्रद्धा चाहिए। ईसामसीह कहा करते थे, "विश्वास करो, विश्वास करनेवाले के लिए सब कुछ सम्भव है। जो कुछ मैं करता हूँ (मेरे द्वारा होता है) वह तुम भी कर सकते हो (तुम्हारे द्वारा भी हो सकता है)। इससे भी बड़े बड़े काम तुम कर सकोगे। सब कुछ संभव है, यदि हम "संभव" में विश्वास करें।"

सौ दो सौ वर्ष पूर्व लोग विश्वास नहीं करते थे कि मनुष्य आसमान में उड़ेगा, दूर की बातें घर बैठे सुनेगा देखेगा, परन्तु आज सब कुछ होता है।

तब क्या कुछ भी रोग होने पर, यहाँ सूजन या दर्द होने पर भी, हम डॉक्टर के पास न जायँ? तब क्या देश की रसायनशालाओं और औषधालयों को बन्द कर दिया जाए और डॉक्टरों को बेरोजगार कर दिया जाय!

नहीं, डॉक्टर वैद्य हकीम के पास अवश्य जाकर सहायता लेनी चाहिए। देश के कानून के अनुसार उन पर जनता को रोगमुक्त करने और स्वास्थ्य की व्यवस्था करने का नियोग है, परन्तु जब रोग इतना दुःसाध्य तथा असाध्य प्रतीत हो कि डॉक्टर कहते हैं कि हम कुछ नहीं कर सकते, तब परमपिता परमेश्वर की शरण जाने से रोगमुक्ति के लिए मार्ग खुला रहता है। परमपिता सब कुछ कर सकता है, उसकी शरण जाने से सब कुछ सम्भव है, और होता है।

एक व्यक्ति साल्वेशन आर्मी (मुक्ति फौज : ईसाइयों की एक संस्था) का कई वर्षों से मेम्बर था। समयान्तर से उसे शरीर में कोई रोग मालूम हुआ। डॉक्टरों ने बताया कि बड़ा ऑपरेशन (चीर फाड़) करना पड़ेगा, नहीं कराओगे तो तीन महीने में मर जाओगे। डॉक्टर-वाक्य-महावाक्य !

परन्तु ये महाशय धर्मपरायण थे। उनका विश्वास था कि दो हजार वर्ष पूर्व ईसामसीह ने चिकित्सा के जो चमत्कार दिखाये थे वे आज भी हो सकते हैं, जो पहले सत्य और संभव था, वह आज भी सत्य और संभव है. अतः मैं विना चीर फाड़ के अच्छा हो सकता हूँ।

यह सब सोच विचारकर वे साल्वेशन आर्मी के कप्तान के पास गये, और धर्म ग्रन्थ के वचनों पर श्रद्धा प्रकट करके अपना विचार सुनाया कि आप उसी प्रकार मेरी चिकित्सा कीजिए। कप्तान बोले—वे तो पुराने जमाने की बातें हैं, आजकल वैसे चमत्कार नहीं होते।

तब महाशय ने कप्तान से पूछा—कौन कहता है कि आजकल वैसे चमत्कार नहीं होते ? क्या धर्म ग्रन्थों में जो लिखा है वह आज सत्य संभव नहीं ? तो फिर उस पर क्यों विश्वास और प्रचार किया जाता है ? क्या धर्म ग्रन्थ के वचन आज झूठे सिद्ध होंगे ? जो दो हजार वर्ष पूर्व सत्य था, वह आज यदि सत्य न हुआ तो मैं खुले बाजार में जाकर इस लोकव्यापी पाखण्ड का भण्डाफोड़ करूँगा।

कप्तान साहब कुछ न कह सके। और यह महाशय कप्तान साहब से निबटकर एक दूसरे व्यक्ति के पास पहुँचे जो इनकी ही तरह साल्वेशन आर्मी के मेम्बर थे, और उससे पूछा, क्योंजी, तुम धर्म ग्रन्थों में चिकित्सा चमत्कार के वचनों की सम्भवता पर विश्वास करते हो ?

इस मेम्बर ने भी वही कहा, कि ये बातें पुराने जमाने में होती थीं, आजकल इनका कोई सरोकार नहीं।

परन्तु ये (रोगी) महाशय बोले—देखो जी, मुझे रोग है, इसके इलाज के लिए मैं ठीक वही करना चाहता हूँ, जैसे धर्मग्रन्थ में वचन हैं, यदि मैं रोगमुक्त न हुआ तो इस किताब की असत्यता का भण्डाफोड़ बीच बाजार में करूँगा।

अन्त में उनका मित्र उनकी चिकित्सा करने पर राजी हो गया। ये (रोगी) महाशय बोले—अच्छा, तो तुम्हारे घर में थोड़ा सा तेल है ? हो तो लाओ।

थोड़ा सा जैतून का तेल मिल गया। बोले, अच्छा, इस तेल को मेरे सिर पर डाल दो, और प्रार्थना करो।

दोनों ने ही भोले मन से श्रद्धालु होकर प्रार्थना की, और तत्काल ही (रोगी) महाशय को शान्ति का अनुभव होने लगा। वे तुरन्त अच्छे हो गये, फिर कभी उन्हें वह रोग नहीं हुआ। जब कि डॉक्टरों के वचन से वे तीन महीने में ही मर गये होते।

प्रश्नोत्तरी

१—आपके कल्पवृक्ष ने मेरा सत्यानाश कर दिया। मैंने उसमें गायत्री मंत्र की बड़ी प्रशंसा पढ़ी। मैं गायत्री मन्त्र से 'सुत वित नारि' आदि सब वस्तुओं से अल्पायु में ही वञ्चित हो गया। अब मैंने तीन परिभाषाएँ अपने अनुभव से प्राप्त की हैं। यदि मैं गलती पर हूँ तो मुझे उचित सलाह दें वर्ना ऐसे व्यर्थ के लेख न लिखा करें।

ईश्वर—ऐश्वर्य छीननेवाला

धर्म—धक्के देने वाला

गायत्री—गा = जाय या गई

—य = जिससे

— त्री = तीनों (सुत वित नारि)

भाई जी, ईश्वर धर्म और गायत्री का आपने अनुभव कर लिया, इससे स्त्री पुत्र धन चले गये, परन्तु सत्यानाश अभी नहीं हुआ, क्योंकि अभी तो आप बचे हैं, अतएव ईश्वर, धर्म और गायत्री को धन्यवाद दीजिए कि आप बाकी बच गये वर्ना तब सत्यानाश कहनेवाला भी न बचता। हम तो समझते हैं कि ईश्वर, धर्म और गायत्री के सहारे और कृपा से ही आप बाकी बचे हैं। अभी आप अल्पायु हैं अतएव अभी आप को बहुत जीने और बहुत कुछ करने का मौका है। जन्म तो सब का अकेले ही होता है, स्त्री पुत्र धन तो बाद में प्राप्त किये जाते हैं, और यदि ये चले जायँ तो पुनः प्राप्त किये जा सकते हैं। इस अनुभव को सत्यानाश न कहकर, इससे नवीन प्रेरणा और उत्साह लेकर आप नया जीवन पुनः आरम्भ करें और ईश्वर धर्म तथा गायत्री का यह लाभ समझें कि आपको अपनी आत्मशक्ति और उत्साह बटोर कर जीवन में दुबारा कुछ करने का अवसर मिला है। यदि आप ईश्वर धर्म और गायत्री से रूठ भी गये हों और इन पर श्रद्धा न हो तो भी, अपनी आत्मशक्ति के द्वारा भी सब कुछ कर सकते हैं। और हम तो समझते हैं कि जीवन और आत्मशक्ति किसी को स्वतन्त्र नहीं होते वरन् ईश्वर धर्म और गायत्री से ही प्राप्त होते हैं, इनसे पृथक् नहीं। आपने जो भी नुकसान उठाया है उसका कारण जप नहीं, वरन् व्यवहार में अपनी वृत्ति की गलती से।

२—मन और इन्द्रियों पर अधिकार हो, उपाय बतावें। संकल्प विकल्प बहुत उठते हैं इनको रोकने का उपाय बतायें। एकान्त में आप ही आप बड़बड़ाया करता हूँ।

मन और इन्द्रियों पर अधिकार तो है ही, क्योंकि आप खाते पीते लिखते पढ़ते होश से बात करते और सब काम करते हैं, तभी तो आपको अपने होश का इतना ज्ञान है। वर्ना जिसके मन और इन्द्रियों पर अधिकार नहीं होता, वह पागल हो जाता है, सो तो आप नहीं हुए। रहा एकान्त में बड़बड़ाने की बात सो संकल्प विकल्प के कारण होता है—स्पष्ट ही है। इसके लिए आप एकान्त छोड़ समाज में रहें और कुछ काम या सत्संग वार्तालाप, जप स्वाध्याय, आदि करते रहें, प्राकृतिक सृष्टि का अवलोकन करें, फूल, फल, वृक्ष, पृथ्वी, आसमान, अनेक जीवों की प्रकृति देखें, सत्संग में मनोरंजन का विषय निकालें तब मन को संकल्प विकल्प के लिए फुरसत न मिल पायेगी।

३—वेश्यागमन से पाप होता है, क्या यह बात सही है? एक साहब इस बात को नहीं मानते, और एक महात्मा कहते हैं कि एक बार में १२ वर्ष का पुण्य क्षीण होता है। कौन सी बात सही मानी जावे? और पाप क्यों होता है? और पुण्यात्मा बनने के लिए क्या किया जाय? जिसके स्त्री न हो उसे क्या उपाय करना चाहिए? सब से बड़ा पाप क्या है? सबसे बड़ा पुण्य क्या है?

ईश्वर ने संसार में सब कुछ अच्छा बनाया है, उसका जो विधान है वह सृष्टि चलाने के लिए सब प्राणियों में समरूप से है परंतु मनुष्य संसार का राजा है और सब प्राणियों में अपने को बड़ा मानता है इसलिए वह सब कुछ अतिशय और अनियम से करता है उसकी यह उद्दण्डता ही पाप है। सौ सुनार की, एक लुहार की। अर्थात् उन महात्मा से पूछिए कि बाहर एक बार और घर में सौ बार में कितना पाप पुण्य का हिसाब है? मनुष्य कुछ भी करे, उसका भला या बुरा, कुछ नतीजा अवश्य होगा, वह सुखदायी होगा या दुःखदायी होगा। पाप तो वह है जिससे हमारा शरीर सूख जाय, रोग हो, यहाँ तक कि जीवन नष्ट हो जाय। हमारी समझ में जितना पाप बाहर होता है उससे अधिक घर में होता है। जिसके पास स्त्री न हो उसे विवाह अवश्य करना चाहिए, यह ईश्वरीय विधान और समाज की व्यवस्था है, तथा आत्मविनिमय का पवित्र संबंध है और इसी आदर्श को लेकर निभाना चाहिए तभी पुण्यात्मा बन सकते हैं। अन्यथा दोनों का जीवन सूख जाय तब बाहर से अधिक घर का पाप कहा जायगा। पाप तो बहुत से हैं, खूब ठूँस ठूँस कर खाना, और अगट शगट अनाप शनाप दिन भर खाते रहना, हमारी समझ में सब पापों की जड़ है। फिर क्रोध, ईर्षा, द्वेष, घृणा, चिन्ता, वासना, चिड़चिड़ाहट, भय इत्यादि भी पाप है, क्वांरापन और वैधव्य भी पाप है। क्योंकि इनसे शरीर सूखता है, शक्ति व्यर्थ नष्ट होती है। प्रसन्न, स्वस्थ रहते हुए अधिकाधिक जीने के लिए आत्मरक्षा के साधन सात्विक वृत्ति से करते रहना हम सबसे बड़ा पुण्य समझते हैं।

४—सबसे जल्दी और सहज सिद्ध होने वाला मन्त्र कौन सा है? कितना जपना चाहिए और अन्त में कैसे मालूम हो कि मंत्र सिद्ध हो गया, देवता प्रसन्न हो गया, कार्य सिद्ध हो जावेगा?

मंत्र कोई मशीन या कला की वस्तु नहीं जो अमुक समय पूरा होने पर बन जाय। मंत्र अर्थात् विचार, कोई सात्विक भावना या दिव्य संकल्प। बार बार अमुक मंत्र दोहराने से मतलब है अमुक संकल्प पर मन को एकाग्र करना, जिससे मन उसके अनुरूप संस्कार में रँग जावे, नवीन चरित्र और संस्कार का निर्माण हो। इस विषय में नहीं कहा जा सकता कि कितना जप किया जाय। असली तात्पर्य है मन की एकाग्रता सिद्ध होने से, संस्कार निर्माण से। न कि देवता या ईश्वर को प्रसन्न करना। देवता या ईश्वर खुशामद नहीं चाहते, वे तो सबसे सर्वदा प्रसन्न हैं, नाराज होने लगे तो देवत्व ईश्वरत्व कैसा? असल में अमुक दिव्य संकल्प से (मंत्र से) मन को एकाग्र कर आत्मदेव को प्रसन्न करना है, स्वयं चंचल मन को स्थिर कर प्रसन्न होने का साधन करना है। 'सोऽहम्' मंत्र को हम सबसे जल्दी और सहज साध्य समझते हैं। बिना ओठ हिलाये या बोले, श्वास भीतर लेते समय 'सो', तथा श्वास बाहर निकालते समय 'हम्' की भावना निरन्तर करते रहना, सोऽहम् का जप है। इसके लिए 'सोऽहम् चमत्कार' पुस्तक पढ़िए जो कल्पवृक्ष कार्यालय से ॥=) में घर बैठे प्राप्त की जा सकती है। सब कार्य देवता की प्रसन्नता पर नहीं, वरन् मन की स्थिरता से करने से सिद्ध होते हैं।

५—आत्मा शरीर से निकलने के बाद कहाँ जाती है, उसे कैसे बुलाया जा सकता है? पत्नी से अत्यंत प्रेम था, उसके मरने से बहुत परेशान हूँ। बहुत से अनेक प्रकार के स्वप्न भी देखता हूँ।

आत्मा कोई व्यक्तिरूप या वस्तु नहीं जिसका कहीं आवागमन हो। मरने पर, अपने अपने संस्कार स्वरूप संकल्प शरीर, सूक्ष्म शरीर रहता है और अपने मनोविकास के अनुरूप उसे

पार्थिव बंधन से क्रमशः मुक्ति का बोध होता है। शरीर नष्ट हो जाने पर वास्तव में इस भौतिक संसार से किसी का कुछ संबंध या मतलब नहीं रह जाता। अतएव हमें मरे हुए लोगों को भूल जाना चाहिए, और याद आने पर "ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः" की भावना करते हुए शान्ति की लहरें अपने विचारों द्वारा उनकी शान्ति के लिए भेजना चाहिए। शरीर के रहते जीते जी के नाते, और सम्बन्ध मतलब रहता है, बाद में मोहवश उनकी याद करते रहने से, स्वयं को तथा उनको भी दुःख और पार्थिव बन्धन सा बना रहता है। इस संकल्प विकल्प के कारण ही स्वप्न आते हैं अतएव आपको उनकी याद छोड़ कर उनकी शान्ति के लिए शुभ भावना प्रेरित करना चाहिए। मृतात्मा से संवाद के तरीके भी हैं परन्तु इस दृष्टि से हम ऐसा करना ठीक नहीं समझते। मरे हुओं को इस संसार में किसी भी प्रकार बुलाने की कोशिश न करना ही अच्छा है।

६—जनवरी ५३ के अंक में "ब्रह्मचर्य और सन्तति नियमन" लेख को पढ़कर बहुत से पाठकों को "कल्पवृक्ष" में ऐसा विषय छपना पसंद नहीं आया। उनकी दृष्टि में यह लेख अनुचित है, अश्लील है, गंदा है, असभ्य है, घृणास्पद है, और लोगों ने कहा है कि ऐसा लेख अब तक नहीं छपा था, अब क्यों छपा? एक डाक्टर ने भी लिखा है और 'आपरेशन' पर आपत्ति की है।

ब्रह्मचर्य का विषय सचमुच इतना पुराना और प्रतिष्ठित है कि वह हमारे जीवन की नींव है और जन्म से लेकर कम से कम २५ वर्ष की आयु तक पालने का विधान है, पश्चात् २५ वर्ष उसका उपयोग। परन्तु आजकल वैज्ञानिक सभ्यता के आडम्बरयुक्त युग में दूध घी सात्विक भोजन और शुद्ध विचार सत्संग के अभाव में, उपन्यास, सिनेमा, कला, डालडा वनस्पति, शक्कर, बरफ, चाय, सिगरेट के प्रचार में यह हो ही नहीं पाता। मशीन, बिजली द्वारा हवा पानी भोजन [illegible], और आवागमन के इस अप्राकृतिक जीवन से संयम नहीं होता, इसी कारण संसार की आबादी घास की फसल की तरह हर साल बढ़ रही है, लोगों के भोजन और रहने के लिए स्थान की समस्या इसी कारण खड़ी होती है, इसी असंयम के मूलभूत कारण से ही समस्त [illegible] राष्ट्रों में परस्पर संघर्ष, युद्ध और फलतः बढ़ी हुई आबादी का विनाश होता है।

जब पहले कोई अपूर्व बात होती है या परम्परा विरुद्ध आविष्कार होता है तो रूढ़िवादी उसको नहीं मानते, विरोध करते हैं स्वाभाविक है। अँग्रेजों ने रेल निकालने के पहले यदि देश के लोगों से राय ली होती कि हम ऐसी रेल बनावेंगे जिसमें सब जाति व धर्म के लोग बैठ, खा, पी, सब को छू और सो सकेंगे तो शायद हिन्दू कभी रेल निकालने की राय न देते क्योंकि इससे वे भ्रष्ट हो जाते, परन्तु रेल निकली तो धीरे धीरे सब एक साथ बैठने खाने पीने सोने लग गये, और नल का पानी पीने लगे।

"ब्लेड बैंक" रक्त भण्डार में स्वस्थ लोगों का रक्त इकट्ठा किया हुआ रखा रहता है और किसी को आकस्मिक दुर्घटना से बहुत सा रक्त निकल जाने पर जब उसका [illegible] मालूम होता है तब रक्त भण्डार का रक्त देकर उसे जीवित रखा जाता है। शरीर के भीतर कोई हड्डी या अन्य अंग टूट फूट बेकार हो जाते हैं, किसी मुर्दे के वे पूरे अंग [illegible] निकालकर सुरक्षित रखे हुए, [illegible] शरीर में लगाकर उसे जिन्दा रखा जाता है। मरे हुए लोगों की [illegible] निकाल कर अंधों को लगाई जाने लगी हैं और [illegible] भी अब संसार का [illegible] लगे हैं। जिस तरह [illegible] मशीन का कोई [illegible]

जाने पर उसी रूप का दूसरा नमूना बनाकर जोड़ देने से वह चलने लगता है, उसी प्रकार यह शरीर भी एक यन्त्र है और मनुष्य की भलाई के लिए कुछ भी करना घृणास्पद नहीं है। और ऐसा कभी नहीं हुआ, अब ऐसा क्यों होता है, इस प्रकार विचार की गुञ्जाइश नहीं रह जाती। जब जीवन ही इस वैज्ञानिक युग में इतना अप्राकृतिक हो गया है कि संयम नहीं सधता और देश की आबादी के लगातार बढ़ने से संघर्षकारी समस्याएं बढ़ती जाती हैं तो उसको हल करने के लिए अप्राकृतिक और "घृणास्पद" (?) साधन भी क्यों न व्यवहार में लाये जायँ? अभी तो नहीं, किन्तु यदि असंयम की गतिविधि ऐसी ही रही तो इस "घृणास्पद" रीति से सन्तति नियमन करने के लिए भविष्य में गवर्नमेण्ट द्वारा सर्वमान्य कानून बनाना पड़ेगा, और सन्तान उत्पादन के लिए लायसेंस भी लेना पड़े। और इससे आगे, दाम्पत्य व्यवस्था की अवहेलना भी की जाय तो असम्भव नहीं। क्योंकि जिस प्रकार मनुष्य के विभिन्न अङ्ग दूसरों के उपयोग के लिए अस्पतालों में रक्त भण्डार के समान जमा रहते है, उसी प्रकार मनुष्य का "बीज" भी इकट्ठा कर "बीज भण्डार" होंगे और मनुष्य के मरने के ५, १० या ५० वर्ष बाद भी उस "बीजारोपण" से किसी भी स्त्री द्वारा सन्तान उत्पन्न हो सकेगी। ईमानदारीपूर्वक संयम करते रहने पर भी, 'बीज' में उत्पादक जीवाणु न होने अथवा अन्य किसी कारण से जिनको एक भी सन्तान न हो, उन्हें यह विषय अखरना स्वाभाविक है, परन्तु जिस आधुनिक युग के असंयमी गृहस्थ के बारह लड़कियाँ हों उनके लिए 'आपरेशन' द्वारा असंयम के अभिशाप से मुक्ति मिल जायगी, तथा सन्तानहीन भी यदि सामाजिक खेती के हेतु "बीज भण्डार" से लाभ उठावें तो माँ बनने की भूख तो मिट जायगी परन्तु पिता की भावनाओं की कल्पना करना कठिन है।

ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में कल्पवृक्ष में बहुत वर्षों से कोई लेख न देखकर कुछ पाठकों की इस विषय में वैज्ञानिक रुचिकर ज्ञान पाने की जिज्ञासा हुई और उनकी माँग पर ही उक्त लेख पाठकों के "विचारार्थ" छापा गया कि पाठकों पर इस "बातचीत" की क्या प्रतिक्रिया होती है। संसार में जो नई, परम्परा के विरुद्ध, और अपनी मानसिक या व्यावहारिक आदत के विरुद्ध बात हो वह अश्लील, गंदी, अनोखी, असभ्य, घृणास्पद आदि प्रतीत होती ही है, परन्तु यह ध्यान रहे, कि उक्त "वार्तालाप" एक बैरिस्टर तथा एक स्वतन्त्र विचारक के बीच हुआ था। पाठकों को जो भी इस विषय में आपत्तियाँ हों, दिल खोलकर निस्सङ्कोच लिखें और उक्त वार्तालाप और विचारों के प्रवर्त्तक से टक्कर लें।

क्या आपने पढ़ा है ?

हाथ फेर कर रोग दूर करना

सन्त पैट्रिक ने आँखों पर हाथ रखकर अंधों को अच्छा कर दिया था। सन्त बर्नार्ड ने एक ही दिन में ११ अंधों और १८ लूलों को अच्छा कर दिया, और कोलोन नगर में १२ लूलों, ३ गूँगों और १० बहिरों को ठीक किया, और यह सब केवल हाथ फिराकर अच्छा किया गया था। एक राजा लोगों को छूकर उनकी अँतड़ियों तथा तिल्ली के रोगों को दूर किया करता था। क्रेस्पेशियन का बादशाह हाथ फिराकर शिर पीड़ा, पंगुता, अंधेपन इत्यादि कष्ट दूर कर देता था। हेड्रियन अपस्मार के रोगियों को अँगुलियों के स्पर्श से ही चंगा करता

था। श्रीफल राजा रोगी पर हाथ फेरते ही उसे तुरन्त अच्छा कर देता था। प्राचीन काल में इंग्लैण्ड और फ्रांस के राजा 'राजस्पर्श' से कण्ठमाला के समान गले के रोगों को दूर करते थे। इंग्लैण्ड में 'राजशूक' नामक एक रोग था जो राजा के स्पर्श से ही दूर होता था। हेप्सवर्ग के दरबारी तुतलेपन को चुम्बन से दूर करने में विश्वास रखते थे। प्लिनी का कथन है कि प्राचीन समय में कुछ लोग छूकर ही सर्प-दंश की पीड़ा हटा देते थे। इंग्लैण्ड में 'ग्रेड रेक' इसी पद्धति से प्रायः सब प्रकार के रोगों को दूर करता फिरता था। उसकी सफलता को देखकर लोग उसे घमण्डी समझकर कष्ट देने लगे। जो केवल राजा के स्पर्श से ही ठीक होते थे उन रोगों को भी उसके द्वारा दूर किये जाते देखकर लोगों ने उसे राज्यपद के लिए पाखण्डी समझा। सत्रहवीं सदी में एक माली लेन्हर्ट ने लन्दन की गलियों में लोगों के व्यथित अवयवों को अँगुलियों से छू-छूकर अद्भुत चिकित्सा शक्ति दिखलाई थी। सन् १८१७ में सिलिसिया में रिचर नामक चौकीदार ने हाथ से छूकर हजारों मनुष्यों के रोग दूर किये।

समय समय पर सभी देशों के लोगों में प्राण चिकित्सा का प्रचार रहा है और जिन लोगों में आराम पहुँचाने का काफी आत्म-विश्वास था वे विशेष देन-युक्त माने जाते थे। पर खेद की बात तो यह है कि यह 'देन' मनुष्य मात्र में सामान्य रूप से है और जिसमें इसके प्रति दृढ़ आत्मविश्वास है, और जो इस काम में अधिक उत्साह रखता हो वह इस शक्ति को प्रकट कर दिखा सकता है। ईसा से २५०० वर्ष पहले के योगेश्वरों ने इस चिकित्सा को विज्ञान का रूप दिया और उनके ज्ञान की ज्योति का सारे संसार मे प्रसार हुआ।

इस चिकित्सा शक्ति को कैसे जाग्रत किया जाय, और किस प्रकार साधन करके अनेक रोग दूर किये जायँ, इत्यादि सिद्धान्त और साधन 'अलौकिक चिकित्सा विज्ञान' पुस्तक में विस्तार से दिये गये हैं। यह पुस्तक, अमेरिका में योग विद्या का प्रचार करने वाले बाबा रामचरक जी की अँग्रेजी पुस्तक का हिन्दी अनुवाद है, जो चित्रमय, छपी है। अमेरिका में यह पुस्तक अँग्रेजी में आजकल बारह रुपये की है, परन्तु हिन्दी में कल्पवृक्ष कार्यालय (उज्जैन) से २॥) में आपको घर बैठे मिल जायगी। इसके सिद्धान्तों को पढ़कर, साधन का अभ्यास कर आप भी अपनी शक्ति से, हाथ फेरकर या छूकर दूसरों के रोग दुःख दूर कर सकते हैं, तथा अपना भी रोग दुःख दूर करने के साधन भी इसमें दिये गये हैं।

राजयोग ग्रंथमाला

अलौकिक चिकित्सा विज्ञान

अमेरिका में योग प्रचारक बाबा रामचरक जी की अंग्रेजी पुस्तक का अनुवाद चित्रमय छपा है। इसमें मानसिक चिकित्सा द्वारा अपने तथा दूसरों के रोगों को मिटाने के अद्भुत साधन दिये हैं। मूल्य २) रुपया, डाक खर्च ॥)

सूर्य किरण चिकित्सा

सूर्य किरणों द्वारा भिन्न-भिन्न रंगों की बोतलों में जल, तैल तथा अन्य औषधि भर कर सूर्य की शक्ति संचित कर तथा रंगीन काँचों द्वारा सूर्य की किरणें व्याधिग्रस्त स्थान पर डाल कर अनेक रोग बिना एक पाई भी खर्च किये दूर करना तथा रोगों के लक्षण व उपचार के साथ पथ्यापथ्य भी दिये गये हैं। नया संस्करण मूल्य ५) रुपया, डाक खर्च ||=)

संकल्प सिद्धि

स्वामी ज्ञानाश्रमजी की लिखी हुई यथा नाम तथा गुण सिद्ध करने वाली, सुख, शांति, आनन्द, उत्साह वर्द्धक यह पुस्तक दुबारा छपी है मूल्य २) रुपया, डाक खर्च ।=)

प्राण चिकित्सा

हिन्दी संसार में मेस्मेरिज्म, हिप्नाटिज्म, चिकित्सा आदि तत्वों को समझाने व साधन बतलाने वाली एक ही पुस्तक है। कल्पवृक्ष के संपादक नागरजी द्वारा लिखित गम्भीर अनुभवपूर्ण तथा प्रामाणिक चिकित्सा के प्रयोग इसमें दिये गये हैं। जीवन में इस पुस्तक के सिद्धांतों से दीन-दुखी संसार का उपकार कर सकेंगे मूल्य १) रुपया, डाक खर्च ।=)

प्रार्थना कल्पद्रुम

प्रार्थना क्यों तथा किस प्रकार करनी चाहिये। दैनिक सामूहिक प्रार्थना द्वारा अनिष्ट स्थिति से मुक्त होने व दूरस्थ मित्रों व मृत आत्माओं को शांति व अनोखी संदेश दिलाने वाली आज के संसार में अपूर्व पुस्तक है। मूल्य ॥) आना।

आध्यात्मिक मण्डल

घर बैठे आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त करने व साधन करने के लिए यह मण्डल स्थापित किया गया है, जिससे स्वयं शारीरिक व मानसिक उन्नति कर अपने क्लेशों से मुक्त होकर दूसरों का भी कल्याण कर सकें। सदस्य बनने वालों को शिक्षा व साधन के लिए प्रवेश शुल्क १०) रुपये हैं और निम्नलिखित पुस्तकें दी जाती हैं:—

१—प्राण चिकित्सा २—प्रार्थना कल्पद्रुम ३—ध्यान से आम चिकित्सा ४—प्राकृतिक आरोग्य विज्ञान ५—आरोग्य साधन पद्धति ६—अध्यात्म शिक्षा पद्धति ७—त्राटक चार्ट ८—[illegible] दर्शन ९—आत्म प्रेरणा १०—कल्प [illegible] एक वर्ष तक। ११—अमूल्य उपदेश।

कोई भी सदाचारी व्यक्ति प्रवेश फार्म मँगा कर सदस्य बन सकता है।

अमूल्य उपदेश

कल्पवृक्ष में पूर्व प्रकाशित अमूल्य उपदेशों का दूसरा संस्करण। मूल्य ~)

स्व० पं० शिवदत्त शर्मा की पुस्तकें

गायत्री महिमा ॥) सोऽहम् चमत्कार ॥)

अग्निहोत्र विधि ॥) ध्यान की विधि ॥)

आरोग्य आनन्दमय जीवन ॥।) ॐ कार जप ॥)

विश्वामित्र वर्मा द्वारा लिखित नई पुस्तकें

प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान

रोग क्यों तथा कैसे होता है, तथा दवा दारू, चीर फाड़, और जड़ी बूटी के बिना, दाम कौड़ी खर्च के बिना कैसे जाता है, विख्यात डाक्टरों का अनुभव मूल्य १॥)

यौगिक स्वास्थ्य साधन १)

प्राकृतिक स्वास्थ्य साधन

स्वास्थ्य के नये साधन, पौरुषवर्धक नये व्यायामों के २६ चित्र, भोजन का [illegible] नवीन वैज्ञानिक व्याख्या तथा नुस्खे। मूल्य १)

आत्म सिद्धि

[illegible] व्यावहारिक साधन [illegible] विकास द्वारा उन्नति और सफलता प्राप्त करने के व्यावहारिक साधन १)

दिव्य सम्पत्ति

दुःखी थके, उलझनों में फँसे, [illegible] और निराश लोगों के लिए [illegible] प्रेरणाएँ। मूल्य ।)

जीवन का सदुपयोग (चार्ट) ।)

[illegible] भोजन चर्या (चार्ट) ।)

दिव्य भावना-दिव्य [illegible] (चार्ट) ।)

मिलने का पता—कल्पवृक्ष कार्यालय, उज्जैन, (मध्य भारत)।

Registered No. N. 277

व्यवस्थापक व प्रकाशक—डॉ० बालकृष्ण नागर, कल्पवृक्ष कार्यालय, उज्जैन (मध्य भारत)
मुद्रक—भक्त सज्जन, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद–२

वर्ष ३१ | संख्या ९-१०

KALPA-VRIKSHA

A MAGAZINE OF DIVINE KNOWLEDGE

मई जून १९५३ | सं० २०१० वि०

१ धन्यवाद—संपादक १

२ तेईसवाँ आध्यात्मिक साधन समारम्भ—श्री पं० गोपीवल्लभ जी उपाध्याय ... ३

प्रथम दिवस
असतो मा सद्गमय
अध्यात्म विद्या का रहस्य
प्राकृतिक चिकित्सा
यह सब क्या है ?
स्वरोदय की साधना
लय योग
अध्यात्म साधन

द्वितीय दिवस
तमसो मा ज्योतिर्गमय
ज्ञान के विविध स्वरूप
लोक कल्याण की साधना
आयुर्वेद में प्राकृतिक चिकित्सा
हम क्या हैं और क्या करें !
काव्य में अध्यात्म

तृतीय दिवस
ध्यान योग
वेदों का स्वाध्याय
यज्ञ की उपयोगिता
मानसिक चिकित्सा
जीवन का सदुपयोग.
जीवन कैसे बिताया जाय ?
नाम स्मरण

चतुर्थ दिवस
ॐ शान्ति शान्ति शान्ति
ध्यान और जप
प्राकृतिक चिकित्सा के अनुभव
शरीर के उद्गार.
सत्संग से आत्मलाभ
कल्पामृत पान
आध्यात्मिकता का प्रसार

३ देश विदेश से सन्देश ११

४. आय-व्यय विवरण ४३

सम्पादक—बालकृष्ण नागर

स्वर्ण-सूत्र

आत्म साक्षात्कार की भावना

मैं विश्वास करता हूँ कि परमात्मा परमसत्य है। मैं विश्वास करता हूँ कि परमात्मा प्रेम है। और मैं परमात्मा के सत्य और प्रेम का प्रतिरूप हूँ। मैं सत्य और प्रेम का रूप हूँ। मेरा रूप सत्य और प्रेम है। अर्थात् मैं परमात्म का सत्य और प्रेम रूप साक्षात् प्रतिनिधि हूँ। मैं परमात्मा के सत्य और प्रेम का चैतन्य साक्षी हूँ। मैं परमात्मा का दिव्य साक्षी हूँ। जहाँ परमात्मा है वहाँ मैं हूँ। जहाँ मैं हूँ वहाँ परमात्मा है। अतएव जो परमात्मा है वही मैं भी हूँ।

मैं क्रमशः परमात्मतत्व का ही अपने में विकास कर रहा हूँ। मैं पूर्ण मुक्त आत्मा हूँ। मुझ पर कोई पैतृक, सांसारिक, भूख प्यास, भय या मनोविकारों का बन्धन नहीं है क्योंकि मैं सूक्ष्म आत्म रूप, परमात्मा का प्रतिनिधि हूँ। मैं सर्वथा पूर्ण स्वतन्त्र हूँ और परमात्मैक्य भाव में लीन रहते हुए ही आत्म साक्षात्कार की इस सत्य भावना मे आत्म-निष्ठ रहता हूँ।

यह शरीर मेरा पवित्र मन्दिर है। इसके रोम रोम, अणु अणु में आत्मा का चैतन्य भाव है।

मैं सत् चित् आनन्द रूप जीवन का प्रतिनिधि हूँ। सत्य मेरा रूप है, मैं प्रेम का अवतार हूँ।

जैसा परमात्मा है वैसा मैं हूँ। जैसा मैं हूँ वैसे ही इस संसार के सब प्राणी हैं। परमात्मा सर्वव्यापक सबमें ओतप्रोत है, वैसे ही मैं अभेद रूप से, राग द्वेष रहित भावना से सब में आत्मभाव से ओतप्रोत हूँ। जैसा परमात्मा है, वैसे ही सब प्राणी हैं, वैसा ही मैं हूँ।

यह सारा विश्व परमात्मा का विराट् रूप है। परमात्मा मेरा विराट् रूप है।
ईशा वास्यमिदंसर्वम्। सर्वं खल्विदं ब्रह्म।
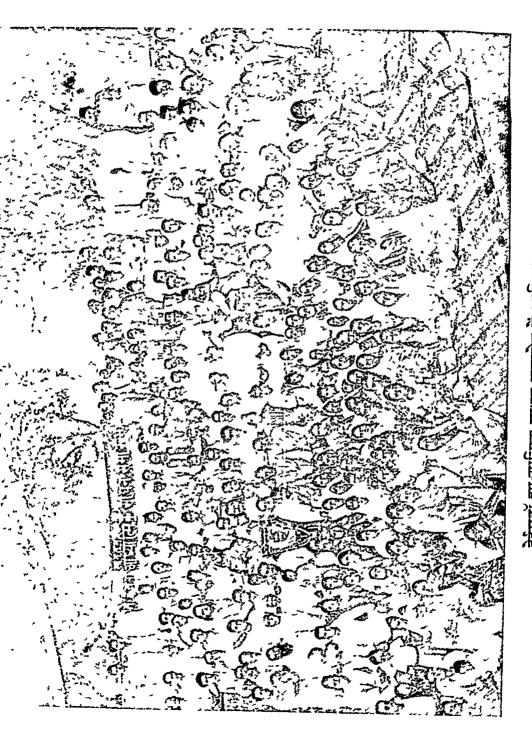
तेईसवाँ आध्यात्मिक साधन समारोह में उपस्थित सदस्यगण

संस्थापक
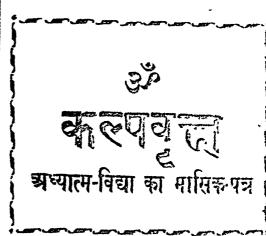
स्वर्गीय डॉ० दुर्गाशङ्कर नागर

साधन समारम्भ अंक

सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥ गीता ॥

वर्ष ३१ } उज्जैन, मई-जून सन् १९५३ ई०, सं० २०१० वि० { संख्या ९-१०

धन्यवाद

सम्पादक

मंगलमय परमात्मा की कृपा और प्रेरणा तथा जिज्ञासुओं के संयोग, मित्रों और प्रेमियों के सहयोग, एवं विद्वानों, योगियों, सन्त और साधकों की कृपा और सहयोग से आध्यात्मिक साधन समारम्भ का तेईसवाँ समारोह आनन्द पूर्वक सम्पन्न हुआ।

यद्यपि प्रतिवर्षानुसार साधन समारम्भ होने की सूचना लगातार तीन मास तक कल्पवृक्ष में प्रकाशित होती रही, समारंभ होने से पूर्व हमारे पास केवल ३२ व्यक्तियों ने समारंभ खर्च का शुल्क भेजा था परन्तु समारंभ शुरू होने के एक दिन पहले ही, अमावस्या की सन्ध्या तक बाहर से बिना सूचना दिये हुए लगभग ८० अज्ञात अध्यात्म प्रेमी और साधक गंगाघाट आश्रम के प्रांगण [illegible] समारम्भ स्थल पर पहुँच गये। और समारंभ के [illegible] दिन तक लोग आते रहे क्योंकि [illegible] उन्हें सांसारिक झंझटों से [illegible] सका था, अथवा रास्ते में किन्हीं [illegible] से उन्हें रुक जाना पड़ा था। कुछ लोग [illegible] पूर्व ही दूर दूर से आकर धर्मशाला [illegible] में ठहरे थे। अमावस्या को संख्या [illegible] आगन्तुक जानकर हमें बड़ा [illegible] हुई [illegible] साधकों की संख्या २०० से अधिक [illegible]

इस वर्ष किन्हीं [illegible] से [illegible] होने के कारण हमारे [illegible]

स्वामी विष्णुतीर्थ जी महाराज, स्वामी जगदीश्वरानन्द जी वेदान्तशास्त्री, स्वामी ओंकारानन्द जी समारंभ में उपस्थित जिज्ञासुओं को अपना ज्ञान प्रसाद देने को यद्यपि न आ सके, उन्होंने अपने सन्देश और शुभ कामनाएँ भेजकर हमारा उत्साह बढ़ाया इसके लिए मैं उन्हें हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

इस वर्ष महिदपुर श्री रामविश्रामधाम के आचार्य श्री 'उद्धव' जी, तथा नीमाड़ के सन्त पं० रामलालजी पड़ाड़ा ने जिज्ञासुओं पर गंभीर ज्ञान की वर्षा की। स्वामी प्रीतमदास जी महाराज ने नाम स्मरण और सत्संग की महिमा का रहस्य बताकर मुक्तिरस की वर्षा की। अतिरिक्त वेदान्तरत्न ठा० शेरसिंहजी दीक्षित, प्राध्यापक श्री बद्रीनारायण जी, श्री त्रिवेणी प्रसादजी वाजपेयी, स्थानीय ब्रह्मविद्या समाज के अध्यक्ष श्री प० चाँदनारायण जी राजदां, आयुर्वेदाचार्य पं० वासुदेवजी शास्त्री, श्री मद्रासी बाबा, इन्दौर के मानसिक चिकित्सक डॉ० उदयभानुजी, नरसिंहपुर के प्राकृतिक चिकित्सक डॉ० राठौर, ने अपने गम्भीर ज्ञानानुभव से जिज्ञासुओं को जीवन के जो व्यावहारिक साधन बताये और हठयोगी स्वामी नारायण प्रकाशजी तथा सत्यात्माजी ने शरीर को स्वस्थ और रोगरहित रखने के जो साधन बताये उनका व्यवहार करने से साधकों का सचमुच बड़ा कल्याण होगा। इन सबको मेरा हार्दिक धन्यवाद।

दूर दूर से कतिपय अध्यात्म प्रेमी और विद्वान् परिस्थितवश जो समारंभ नहीं आ सके उन्होंने अपनी शुभ कामनाएं और सन्देश भेजकर हमारा उत्साह बढ़ाया और अपने घर बैठे हुए भी यहाँ के जिज्ञासुओं को प्रेरणा दी उन्हें भी मैं प्रणाम करता हूँ और हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। इनमें हमारे राष्ट्रपति देशरत्न डॉ० राजेन्द्रप्रसाद जी उप-राष्ट्रपति डॉ० स० राधाकृष्णन् जी, मध्यभारत के मुख्य मन्त्री श्री मिश्रीलालजी गंगवाल, वेदाचार्य श्री सातवलेकर जी आचार्य श्री नरदेव जी शास्त्री, स्वामी विष्णुतीर्थ जी, भारत प्रसिद्ध मनोविज्ञानी पं० लालजी राम शुक्ल; तथा विदेशों से इंग्लेण्ड के रहस्यवादी सम्पादक श्री हेनरी थॉमस हेमलिन एवं रहस्यवादी लेखक श्री रिचार्ड व्हाइटवेल, और क्रियात्मक सत्य की प्रवर्तक माननीया लेडी काउन्टेस आफ मेयो, तथा अमेरिका की यूनिटी संस्था के अध्यक्ष श्री लावेल फिलमोर के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

साधन समारम्भ के प्रथम अधिवेशन से, मालवमयूर संगीतरत्न पं० शालिग्राम जी शर्मा के कोकिल कण्ठ भजनों से अब तक २३ वर्ष तक प्रतिवर्ष आनन्द वर्षा होती रही है उनकी हम पर और जिज्ञासुओं पर इस कृपा का मैं बहुत आभार मानता हूँ; साथ ही विश्वबन्धु कीर्तनाचार्य बन्धुद्वय पं० सुन्दरलाल जी एवं अम्बालाल जी याज्ञिक भी समारम्भ में अपने भजन कीर्तन और उपदेश देते हुए ज्ञान भक्ति और आनन्द की वर्षा बहुत वर्षों से करते आ रहे हैं, उनके इस सहयोग और कृपा के लिए मैं हृदय से धन्यवाद देता हूँ। स्थानीय माधव महाविद्यालय के प्राध्यापक एवं विख्यात कवि श्री शिवमंगल सिंह 'सुमन' जी ने अपनी प्रतिभाशाली कविताओं से गम्भीर अध्यात्म भाव का संचार श्रोताओं में किया, अतएव आपको इस उत्साहवर्धक सहयोग के लिए मैं उन्हें हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

कितने ही उदार जिज्ञासु और अध्यात्म प्रेमी लक्ष्मी पुत्रों ने, दूर रहकर भी, संसार व्यवहार के कारणवश समारोह में सम्मिलित न हो सकने पर सहायतार्थ जो पत्रपुष्प अर्पित किया है उनके नाम सहित समारम्भ के आय-व्यय विवरण में प्राप्ति स्वीकार हम प्रकाशित कर रहे हैं। उन्हें भी इस आर्थिक सहायता से उत्साह देने के लिए मैं हृदय से बहुत धन्यवाद देता हूँ।

दूर दूर से बहुत कष्ट और व्यय उठाकर समारोह में आये हुए सभी सन्त विद्वानों, योगी एवं साधकों एवं सहयोगियों का मैं बहुत आभार मनाता हूँ जिन्होंने मेरा उत्साह बढ़ाया और समारोह को सफल किया।

ॐ सहनाववतु सहनौ भुनक्तु सहवीर्यं करवावहै।

तेजस्विनावधीमस्तु मा विद्विषावहै।

—बालकृष्ण नागर

तेईसवाँ आध्यात्मिक साधन समारम्भ

क्षिप्रातट पर अपूर्व ज्ञानसत्र

प्रतिवर्ष की भाँति कल्पवृक्ष संस्था द्वारा संचालित साधनालय के प्रांगण में साधन समारंभ के तेईसवें समारोह का श्रीगणेश संवत् २०१० वि० की वर्षप्रतिपदा के शुभ ब्राह्म मुहूर्त में हुआ। इस बार भी नगर तथा बाहर से मिलाकर लगभग दो सौ स्त्री पुरुष साधकों ने समारंभ में भाग लिया। इन्दौर देवास उदयपुर जोधपुर नागपुर नरसिंहपुर भोपाल पाचोरा बुरहानपुर नासिक अजमेर हैदराबाद हरीज होशंगाबाद बड़वानी बड़ोदा कन्नोद जबलपुर मेरठ बमारा हैदराबाद अहमदाबाद बम्बई कोटा रतलाम मक्सी खम्भात गोगुंदा करेली दूनी पचोर बीना खरगोन पवारखेड़ा देहली भीलवाड़ा सिहोरा पीलीभीत राऊ महू इटावा अछलदा जवसिया महिदपुर आदि विभिन्न स्थानों से साधकगण पधारे थे। सब साधकों के ठहरने, भोजन, जल एवं प्रकाश का यथानियम प्रबन्ध किया गया था।

ब्राह्ममुहूर्त में घण्टी बजने पर नैमित्तिक कार्य से निवृत्त होकर पाँच बजे संयमशाला में साधकगण उपस्थित हुए और मालवमयूर संगीतरत्न श्री शालिग्राम जी के मधुर भजन से कार्यारम्भ हुआ। प्रातःकालीन वैदिक प्रार्थना, गीतापाठ, भजन एवं नाम संकीर्तन के पश्चात् कल्पवृक्ष के सम्पादक डा० बालकृष्णजी नागर ने अपने निवेदन में बताया कि विगत २२ वर्षों से यह साधन समारम्भ होता आ रहा है और इस अवसर पर स्व० पूज्य पिता जी द्वारा आप लोगों को अपूर्व उपदेशपूर्ण प्रवचन का लाभ प्राप्त होता रहा है और उससे साधकों ने स्फूर्ति लाभ किया है।

असतो मा सद्गमय

आज के युग में मानव समाज कितनी कठिनाइयों से घिरे हुए जीवन व्यतीत कर रहा है यह कहकर बतलाने की आवश्यकता नहीं है फिर भी मनुष्य शांति प्राप्त करने के लिए यथाशक्ति प्रयत्नशील रहता ही है। यहाँ आकर भी आप सब शांति प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना चाहते हैं। शारीरिक मानसिक और आध्यात्मिक तीनों प्रकार की शांति प्राप्त करना ही इस समारम्भ का उद्देश्य है। यहाँ शारीरिक शान्ति, स्वस्थता के लिए प्रतिदिन आसन प्राणायाम व्यायाम की शिक्षा दी जाती है। मानसिक शांति के लिए विविध विषयों पर विद्वान् एवं अनुभवी साधकों के विचार सुनने का सुअवसर भी यहाँ प्राप्त होता है, तथा आध्यात्मिक शांति के लिए आत्मचिंतन, यज्ञ, उपासना आदि सत्कर्मानुष्ठान यहाँ होते हैं। अतएव यहाँ एकत्र होकर हमें न कुछ ऐसी वस्तु ले जाय, जो आपके लिए वर्ष भर तक काम देती रहे। यहाँ सीखी हुई क्रियाएँ और सुनी हुई प्रेरणाएँ व्यवहार में लाने का प्रयत्न करना चाहिए। वर्तमान अशांति का निवारण करके शांति पाने का एकमात्र साधन प्रार्थना ही हो सकती है, अतएव इसके लिए हमें प्रभु से प्रार्थना करनी चाहिए।'

इसके बाद स्व० सन्त नागरजी का एक पूर्व प्रवचन "असतो मा सद्गमय" पढ़कर सुनाया गया और अंधकार या असत् से सत् की ओर ले जाने के लिए परमात्मा से प्रार्थना करते हुए सदैव इसी का चिन्तन करते रहने की प्रेरणा की गई। साथ साथ यह भी बताया गया कि अमेरिका में युद्ध विरोधी संस्थाएँ इस प्रकार कार्य कर रही हैं। उन लोगों ने युद्ध सम्बन्धी कठिनाइयों का स्वयं अनुभव किया है अतः वे समस्त अमरीकियों को उपदेश दे रहे हैं कि वे किसी भी युद्ध सामग्री को तैयार करने में मदद

न दें क्योंकि पिछला युद्ध ही वर्तमान अशांति एवं विविध प्रकार के कष्टों का कारण है। चीजों के भाव बढ़ जाना भी युद्ध का ही परिणाम है। युद्ध से होने वाली हानियों का जो उन्होंने अनुभव किया है वह हमें जरा भी नहीं हुआ। कोई लोग गांधी जी का नाम लेकर जो छल कपट एवं जनता को ठगने का प्रयत्न करते हैं वे उसका दुरुपयोग करते हैं। महात्मा जी ने सत्य का पालन करते करते प्राण तक दे दिये किन्तु वे अपने व्रत से जरा भी न डिगे। इस प्रकार उन्होंने योगशास्त्र के पाँचों यम—अहिंसा सत्य अस्तेय शौच इन्द्रियनिग्रहादि का पालन करते हुए हमारी प्राचीन परम्परा को ही निभाया है। अतएव "असतो मा सद्गमय" की भावना को अपना चिन्तनसूत्र बनाना चाहिए।"

पश्चात् याज्ञिक बन्धुद्वय श्री सुन्दरलाल अग्रवाल जी ने "भजन कर अन्तरध्यान हो" का संगीत प्रभावशाली ढंग से गाकर सुनाया। श्री शालिग्राम जी ने "कर्मन की गति न्यारी" भजन सुमधुर स्वर में गाया। पश्चात् महिदपुर रामविश्रामधाम के आचार्य श्री रणछोड़दास जी उद्धव ने

अध्यात्म विद्या का रहस्य

का विवेचन करते हुए कहा "इस समारम्भ का उद्देश्य आत्मतत्त्व का ज्ञान प्राप्त करना है और वह ज्ञान प्राप्त हो जाने पर उसका सर्वत्र प्रचार करना है। यह कार्य यहाँ सुचारु रूप से हो रहा है। मनुष्य जीवन की सफलता के लिए अध्यात्म विद्या की प्राप्ति ही उद्दिष्ट है। गीता में भगवान् ने कहा है, "अध्यात्म-विद्या विद्यानां" अर्थात् समस्त विद्याओं में अध्यात्म विद्या मैं हूँ। अन्य देशों में और भारत में यही अन्तर है कि हमारे यहाँ अध्यात्म को प्रधानता दी गई है जब कि अन्य देशों में भौतिकता को महत्व दिया जा रहा है। हमारे देश का नाम ही इस अर्थ गौरव का सूचक है। भारत शब्द के भा का अर्थ है आत्मा, और उसमें रत अर्थात् लवलीन होना ही अध्यात्म सूचक है। अर्थात् अध्यात्म में लीन रहनेवाले ही सच्चे अर्थ में भारतीय हैं। भारत की धार्मिकता का प्रभाव ही आज उसे संसार के लिए त्राणकर्त्ता सिद्ध कर रहा है। हम अध्यात्म विद्या द्वारा उस परमात्मा का ज्ञान पाने का प्रयत्न करते हैं, जब कि पाश्चात्य लोग केवल भौतिक विज्ञान द्वारा शांति पाने के उद्योग में लगे हुए हैं। हमारे यहाँ ईश्वरीय वाणी—वेद के निर्दिष्ट मार्ग से साधक इस दिशा में अपने पथ पर अग्रसर होता है, और पाश्चात्य लोग मनुष्य द्वारा बनाये गये लोहे के यन्त्रों का सहारा लेते हैं किन्तु इससे उस परमात्मतत्व की प्राप्ति कदापि नहीं होती, क्योंकि मनुष्य की कल्पना से बने हुए स्थूल यांत्रिक साधन अस्थायी और नाशमान होते हैं, वे ईश्वरीय तत्व की बराबरी कदापि नहीं कर सकते। मनुष्य अल्पज्ञ है, सर्वज्ञ तो केवल परमात्मा ही है। इसलिए उपनिषद् में कहा गया है कि हे अमृतपुत्रो, वेदवाणी, अमृतवाणी को सुनो!' क्योंकि परमात्मा की वाणी के द्वारा ही यथार्थ मार्ग का ज्ञान हो सकेगा। अर्थात् "नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय" के अनुसार उस परमात्मा को जानने का अन्य कोई मार्ग नहीं है। वैसे तो संसार में अनेक मार्ग दिखाई देते हैं; किन्तु वास्तव में वे अलग-अलग नहीं वरन् एक ही मार्ग का अनेक शाखाओं के रूप में है। आदि सृष्टि हमारे देश के हिमालय पर्वत पर ही होने के प्रमाण मिलते हैं और यहीं से मानव धर्म का संसार में प्रचार हुआ। अर्थात् हमारे ऋषि-मुनियों द्वारा ही इस ज्ञान का प्रचार हुआ किन्तु मनुष्यों की संख्या बढ़ने पर परस्पर झगड़े होने लगे और तब लोग इधर उधर चले गये। ऐसे लोगों में वेद की आज्ञा न माननेवाले ही अधिक थे। और वे स्वेच्छाचारी होकर समाज-व्यवस्था को अस्तव्यस्त कर समाज में अशांति उत्पन्न कर देते थे। ऐसे ही लोगों में 'वेन' राजा भी था, जिसे स्वेच्छाचारी बन जाने पर प्राण

दंड दिया गया था। हमारे यहाँ समाज का शासन करने के लिए दो प्रकार के शासक होते थे—एक सम्राट् दूसरे परिव्राट्! इनमें सम्राट् के हाथ में वर्ण धर्म के पालन कराने की सत्ता थी और परिव्राट् का आश्रय धर्म पर अधिकार होता था। अर्थात् राजाओं से भी ऊपर परिव्राटों का स्थान था इन्हीं के द्वारा हमारा धर्म चलता था। इस प्रकार परिव्राट् की संपूर्ण विश्व में सत्ता चलती थी। क्योंकि 'परि' शब्द का अर्थ है संपूर्ण और 'व्राट' का आशय है 'छोड़ देना।' अर्थात् सब संकुचित भावों को छोड़कर जाने वाला परिव्राट् कहा जा सकता था।

भारत के प्रसिद्ध महापुरुष स्वामी रामतीर्थ ने मनुष्य की चार श्रेणियाँ बतलाई हैं—परिव्राट् का दायरा विस्तृत होता है, जब कि मनुष्य का दायरा (क्षेत्र) अत्यन्त संकुचित होता है। मनुष्य की प्रथम श्रेणी पत्थर के रूप में है। अर्थात् जो केवल स्वार्थ में ही निमग्न रहते हैं, वे किसी का उपकार नहीं कर सकते। इसलिए उन्हें पत्थर की उपमा दी गई है। राजा लोग भी मनुष्य हैं और वे भी पत्थर में ही परिमार्जित हो सकते हैं, किन्तु उन्हें हम 'हीरे' कह सकते हैं। हीरा भी पत्थर ही है। इस प्रकार जो मनुष्य पत्थर की तरह अपने ही विचारों में लगा रहता है, वह स्वार्थी या पेटार्थी है। वह बहुत ही धीरे धीरे उन्नति करता है। पत्थर के बाद मनुष्य का उन्नत रूप 'वनस्पति' की तरह होता है जो कि अपने कुटुम्ब का पोषण करते हैं। कुटुम्ब के बाद जाति का भला करनेवाले पशुरूप-मानव हैं। इसके बाद ही उसका आत्मिक विकास आरम्भ होता है। इसके बाद जो राष्ट्र या देश का भला करते हैं, वे चन्द्रमा की तरह होते हैं। उन्हें चन्द्रमा की उपमा देने का आशय यही है कि "चन्द्रमा मनसो जातः" के अनुसार चन्द्रमा की उत्पत्ति विराट् पुरुष के मन से हुई है और 'मननात् मनुष्यः' के कारण मननशील होने से ही मनुष्य मनुष्य कहलाता है। अतः जो अपने स्वरूप को बिना जाने संकुचित क्षेत्र में रहता है, वह मनुष्यत्व की पूर्णता को नहीं प्राप्त कर सकता। उसे वेद वचन पर विश्वास नहीं होता और न वह ईश्वर चिन्तन ही करता है। अतएव हमें यथार्थ मनुष्य बनने का प्रयत्न करना चाहिए। मनुष्य के पश्चात् महात्मा बनना तो बहुत ही कठिन है। राष्ट्रभक्त बन जाने से भी कोई महात्मा नहीं बन सकता।

आज के इस संघर्ष युग में अपने देश की उन्नति के लिए प्रयत्न करना प्रत्येक का कर्तव्य है; किन्तु मनुष्य से ऊपर की श्रेणी के लोग ही महात्मा कहे जा सकते हैं। वे "उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्" के अनुसार अपना क्षेत्र संसारव्यापी मानते हैं जब कि साधारण मनुष्य अपने सीमित क्षेत्र का ही विचार कर सकता है। अतएव क्रमशः हमें उन्नति करते जाकर अपने स्वरूप को पहचानना चाहिए। हमें इसके लिए वेद की शरण लेना चाहिए और त्रिविध शांति की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना उचित है। क्योंकि आध्यात्मिक शांति न होने पर आप किसी को कुछ नहीं दे सकते। अर्थात् जिसके पास कुछ है ही नहीं, वह दूसरों को क्या दे सकेगा!

योग साधना के पाँच नियमों में स्वाध्याय को भी स्थान दिया गया है। उसका आशय है वेदादि सद्ग्रन्थों का अध्ययन करना। किसी बात को 'पहले जानो और फिर करो' स्वामी विवेकानन्दजी ने भी यही कहा है कि पहले से पूरी तरह जानकर ही कर्म करना अच्छा है। 'ज्ञात्वा कर्माणि कुर्वीत' अतएव जानकर कर्म करने का प्रयत्न कीजिए। हमें आध्यात्मिकता का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। बिना जाने कर्म करने से ही अशांति होती है। लोग स्वय- अपनी कल्पना, विचार करने से ही नये नये पंथ चला रहे हैं। किन्तु मनुष्य कोटि से ऊपर उठकर महात्मा बनने का प्रयत्न करना

चाहिए। जब वह महात्मा बन जाता है, तब उसको 'सूर्य' की उपमा दी जाती है। चन्द्रमा तो पन्द्रह दिनों तक क्षयवृद्धि पाता है; किंतु सूर्य तो सदैव समान रूप से प्रकाशित रहता है। स्वामी रामतीर्थ ने भी वेद का भली भाँति मनन किया था। वेद में कहा है "सूर्य आत्मा जगत स्तस्थुषश्च" अर्थात् समग्र संसार की आत्म सूर्य है। किन्तु वैज्ञानिक लोग तो सूर्य को भौतिक दृष्टि से देखते हैं। किन्तु हमारे ऋषि मुनियों ने उसे आध्यात्मिक दृष्टि से देखा है। और इसलिए गायत्री मंत्र द्वारा सूर्य की उपासना का प्रचलन किया गया है। अतएव गायत्री की साधना द्वारा हमें आध्यात्मिक, राष्ट्रीय एवं विश्व तीनों प्रकार की शांति प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। इस प्रकार सूर्य-चन्द्रमा का हमें अनुसरण करना चाहिए। अर्थात् सूर्य चन्द्रमा की तरह हमें दान देना चाहिए और अहिंसा, ज्ञान और संगठन करना चाहिए। इस प्रकार हमें महात्मा बनने का प्रयत्न करना चाहिए।

इसके पश्चात् भजन गाया जाकर प्रातः काल का कार्यक्रम समाप्त हुआ। तदनन्तर स्नानादि से निवृत्त होकर संयमशाला में उपस्थित साधकों को आसन प्राणायाम एवं स्वास्थ्य सुधार के लिए आवश्यक व्यायाम की क्रियाएँ श्री हठयोगी सत्यात्माजी ने सिखलाई। तत्पश्चात् दुग्धपान कर थोड़ी देर विश्राम करके पुनः संयमशाला में यथानियम हवन, भजन, सूक्तपाठ आदि यथाविधि सम्पन्न किये जाने पर मध्याह्न उपासना की गई। तत्पश्चात् गीतापाठ, भावना आदि पढ़कर सुनाये गये। तदनन्तर भजन आदि होकर युनिटी स्कूल (अमेरिका) की दैनिक भावना पढ़ने से पूर्व उस संस्था का डॉ० बालकृष्ण जी नागर ने परिचय देते हुए बताया कि किस प्रकार केवल प्रार्थना के बल पर श्री फिलमोर ने उस संस्था को सर्वसाधन संपन्न बनाया और आज उसकी ओर से आबाल वृद्ध सबके लिए आध्यात्मिक उपदेश देनेवाले अलग-अलग पत्र निकलते हैं। दैनिक भावनाएँ नाम के पत्र में भी इसी प्रकार की भावना दी जाती हैं और वे यहाँ प्रतिदिन पढ़ी जाती हैं।

इसके बाद भोजनोत्तर, विश्राम, सत्संग आदि में चार बजे तक का समय व्यतीत किया गया। तीसरे प्रहर गंगाघाट के पटाङ्गण में 'प्राकृतिक चिकित्सा' का कार्यक्रम आरम्भ किया गया। खभात के लल्लुभाई हरजीवन पंड्या ने चर्पट पंजरी स्तोत्र तथा चेतावनी सुनाई। तत्पश्चात् शालिग्रामजी का भजन हुआ। इसके बाद गोगुन्दा (मेवाड़) के श्री कृष्णगोपाल जी व्यास ने

प्राकृतिक चिकित्सा

पर अपने अनुभव सुनाते हुए कहा कि "आज के युग में नाना प्रकार की चिकित्साएँ चलती रहने पर भी रोगों की संख्या बढ़ती ही जा रही है। रोगों के साथ दवाइयाँ भी बढ़ती जा रही हैं। किन्तु दवाइयों के द्वारा रोग दबा दिये जाते हैं, मूल से वह नहीं मिटता। भारत में सबसे अधिक बाल-मृत्यु होती है। बच्चों को टीका लगाकर भीतर से निकलती हुई गर्मी को रोकने का प्रयत्न किया जाता है। किन्तु ऐसा करते हुए, प्रायः रोग के साथ साथ रोगी की भी मृत्यु हो जाती है। आयुर्वेद के विद्यार्थी के नाते एक बार स्वतः अपने पेट में दर्द होने पर मैंने प्राकृतिक चिकित्सा का सहारा लिया और इस विषय का साहित्य पढ़कर प्राप्त ज्ञान के अनुसार पेट पर मिट्टी की पट्टी बाँधकर अपने को रोग से मुक्त कर लिया। इसके बाद इस विषय का और भी साहित्य पढ़कर मैंने कई असाध्य रोगियों को रोगमुक्त किया। हमारे यहाँ एस० डी० ओ० महाशय अधिक देर तक शीर्षासन करने से रोगी बन गये थे। उन्हें प्रारंभ में दो दिन उपवास में गरम पानी पिलाया। इसके बाद एनिमा से मलाशय शुद्ध करके मिट्टी की पट्टी, वाष्पस्नान

दिया और उनके मन में से स्वस्थ न हो सकने की भावना को निकाल दिया। इस प्रकार उन्हें पूर्ण स्वस्थ करके फिर नौकरी पर लगा दिया गया। (यहाँ आपने बनारस की साँप वाली घटना सुनाकर बताया कि) अनावश्यक सन्देह की भावना मन में दृढ़ हो जाने पर स्वस्थ मनुष्य भी रोगी बन जाते हैं और कभी कभी प्राण भी खो बैठते हैं। प्राकृतिक-चिकित्सा में आत्म-विश्वास की मुख्यरूप से आवश्यकता होती है। सब रोगों की जड़ अप्राकृतिक आहार ही है। आहार के असंयम से ही रोगों की उत्पत्ति होती है। इसलिए भोजन को जीवन से अधिक मत समझो। नींबू के उपयोग को प्राकृतिक उपचार में प्रधानता दी गई है। पाचन प्रणाली को ठीक करने का यही एक मात्र साधन है।"

इसके बाद स्वामी प्रकाशानन्दजी ने संसार की विचित्रता दिखाते हुए पूछा कि

यह सब क्या है?

लोग प्रश्न करते हैं कि जीवन में सन्तोष और सुख कैसे हो? किन्तु असल रास्ते को छोड़कर उल्टे रास्ते पर जाने से वह कैसे प्राप्त हो सकेगा! मनुष्य में जन्म लेने के साथ ही उसकी जिज्ञासावृत्ति जागृत होती है और वह प्रत्येक वस्तु को देखकर प्रश्न करता है "यह क्या है?" और उसकी यह रट जीवन भर चलती रहती है। इस विषय को समझाने का नाम ही योग है। जिस प्रकार मोटर को अलग-अलग बुद्धि के लोग भिन्न भिन्न रूप में देखते और समझते हैं; उसी प्रकार क्रमशः अनुसंधान करते हुए मनुष्य ईश्वर तक पहुँच जाता है। योग के द्वारा मनुष्य अपने आत्मा या परमात्मा को देख सकता है। योग के द्वारा धर्म के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान भी हो सकता है। योग के चार पाद बताये गये हैं यथा साधनपाद, समाधिपाद, विभूतिपाद और कैवल्य या मोक्षपाद। इनमें से पहले दो पादों पर विशेष विचार किया जाता है। योग की व्याख्या करते हुए कहा गया है 'योगश्चित्तवृत्ति निरोध' अर्थात् चित्त की वृत्ति निरोध करने अथवा एक विषय में लगा देना ही योग है। योग के लिए अष्टांग की साधना की जाती है। इसमें ५ यम और ५ नियमों का पहले अभ्यास करना पड़ता है। लोग कहते हैं कि हमने भोग को भोगा। किन्तु वास्तव में भोग ने ही उसे भक्षण किया है। इसी प्रकार मनुष्य दिन-रात माया के चक्र में फँसा हुआ घूम रहा है। ऐसी दशा में उसे सुख शान्ति कैसे मिल सकते हैं! (यहाँ आपने वेदमंत्र और कुरान की आयत की तुलना करते हुए बतलाया कि) बिना परोपकार एवं तप के कोई योगी नहीं बन सकता यहाँ फिर प्रश्न होता है कि योग क्या है? संसार दृश्य है और आत्मा द्रष्टा है। बाहर के दृश्य आँखों की पुतली द्वारा मस्तिष्क में प्रविष्ट होकर उनकी छाया मन पर पड़ती है। अतएव चित्त की वृत्ति को पलट कर बाहर से भीतर की ओर ले जाना ही योग है, जीव संसार की माया के फेर में पड़ कर असावधान रहता है। अतएव सावधान होने पर ही उसे समुचित ज्ञान हो सकता है। मनुष्य का चित्त संसार के व्यवहार में फँस जाता है। ऐसी दशा में उसे शांति कैसे मिल सकती है? अर्थात् जीवन में कोई ठोस कार्य करके जाने से ही जन्म सफल कहा जा सकता है। डॉ० नागर जी की योग साधना ही आप सब को यहाँ आकृष्ट कर इस साधना के प्रयत्न में लगा रही है। इसमें भी योग कारणी-भूत है। जंगल में दूध दुहने वाले को क्या हाथ लग सकता है? सारांश, परोपकार की भावना से ही उद्धार हो सकता है! दूसरों को सुख पहुँचाना कर्तव्य है।"

आपके पश्चात् बुरहानपुर के गणपतदासजी कदवाने ने

'स्वरोदय की साधना'

पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा कि सबसे सरल योग स्वरयोग है। इसके द्वारा मनुष्य अपना

हो सकता है। महात्मा चरणदास जी ने, जोकि पंद्रहवीं शताब्दि में हुए हैं 'ज्ञान-स्वरोदय' नाम की छोटी सी पुस्तक रचकर इस विषय को सरलता से समझाया है। स्वरोदय की साधना में सूर्य-चन्द्र अथवा इड़ा-पिंगला नाड़ी या दायें-बायें स्वर का ज्ञान रखते हुए खान-पान एवं साधना करने से अमरत्व का प्राप्ति हो सकना बताया है। स्वरोदय में बतलाया गया है कि दिन को चन्द्र (बायाँ) रात को सूर्य (दायाँ) स्वर चलने से मृत्यु टल सकती है। शुक्ल और कृष्ण पक्ष में तीन तीन दिन के क्रम से सूर्य चन्द्र के स्वर चलते हैं। और उनकी साधना से प्रत्येक साधक लाभ उठाकर स्वस्थ रह सकता है।

महात्मा चरणदास जी के गुरु शुकदेव जी थे। दोनों के काल में हजारों वर्ष का अन्तर है किंतु स्वरोदय के द्वारा शुकदेव जी अमर होने से वे चरणदास जी को दीक्षा दे सके होंगे। समर्थ रामदास स्वामी कुबड़ी को बगल में रखकर स्वर बदल सकते थे। चरणदास जी ने सात स्वरों का ज्ञान प्राप्त करने से सब काम सिद्ध हो जाने की बात कही है। सीधा स्वर चलने पर भोजन करना चाहिए और बायाँ स्वर चलने पर पानी पीने से स्वस्थ हो सकता है, जो रोग है वह दूर हो जायगा।

यहाँ "शिवस्वरोदय" ग्रंथ की चर्चा करते हुए आपने बतलाया कि यह ग्रन्थ प्रत्येक जिज्ञासु को अवश्य देखना चाहिए। नित्य के व्यवहार में आप स्वरों का ध्यान रखेंगे तो कोई रोग न होगा। स्वर बदलने के लिए ही भोजन के पहले और बाद में बायीं करवट लेटने का विधान किया गया है, बगल में कोई कठोर पुस्तक दबाने से भी स्वर बदल सकता है। अतः स्वर का ध्यान रखकर चलें।

आवश्यक सूचना

१—"कल्पवृक्ष" अथवा पुस्तकें मँगाने के लिए डाकखर्च सहित मूल्य मनीआर्डर से भेजिए। वी० पी० मत मंगाइए। इससे आपको और हमें, पैसे और समय की बचत होगी।

२—अपना पता बदलवाने के लिए पुराना और नया पता, ग्राहक नम्बर सहित लिखें।

३—"कल्पवृक्ष" का वार्षिक मूल्य समाप्त होने की सूचना मिलने पर अगले वर्ष का मूल्य २॥) हमें फौरन मनीआर्डर से भेज दें। "कल्पवृक्ष" वी० पी० से मँगाने की आदत छोड़ दें, ग्राहक रहना स्वीकार न हो तो कृपया एक पोस्टकार्ड से सूचना दे दें। धन्यवाद!

४—"शिव सन्देश" पुस्तक वी० पी० द्वारा नहीं भेजी जायगी। इसके लिए डाक खर्च सहित ११) पहले भेज दीजिए। कल्पवृक्ष के प्रत्येक प्रेमी पाठक को यह पुस्तक मँगा लेनी चाहिए क्योंकि एक बार खत्म होने पर दुबारा नहीं छपेगी।

—व्यवस्थापक

सायंकालीन उपासना

सायंकाल को श्री शालिग्राम जी के भजन तथा याज्ञिक बन्धुओं के "प्रभु तुम चंदन हम पानी" शीर्षक भावपूर्ण भजन के पश्चात् यथा-नियम प्रार्थना, नामसंकीर्तन, ध्वनिगान, मेरी भावना आदि हो जाने पर मद्रासी बाबा का प्रवचन हुआ। आप हिंदी भाषा में ठीक ढंग पर अपने विचार प्रकट नहीं कर सकते थे; फिर भी आपने अपने विचारों को प्रकट करने का यथाशक्ति प्रयत्न किया। आपने बतलाया कि गीता के उपदेशानुसार "यत्करोषि यदश्नासि यद्दासियत्। यत्तपस्यसि कौंतेयतत् कुरुष्व मदर्पणम्" अर्थात् जो कुछ कर्म करो उसे मेरे (प्रभु के) अर्पण कर दो। इससे न तुमको दोष लगेगा और न उसके फल के लिए चिंता ही करनी होगी। अतएव सब भगवान् को अर्पण कर मैं तो अपने को मुक्त ही मानता हूँ।

"लययोग"

प्राणवायु के रूप में ही परमात्मा सब में वास करता है। इस प्रकार हम सब परमात्मा रूप हैं। (यहाँ आपने पंचतत्व के पंचीकरण की चर्चा की तथा पंचतत्वों की क्रमशः उत्पत्ति बताकर ब्रह्म में ही सब को समाविष्ट बताया और उन्हीं के मिश्रण से सब की उत्पत्ति बतलाई। आपने कहा कि भक्त के द्वारा भगवान् की आराधना की जाने से ही भगवान् भगवान् रहते हैं। अतएव हम ही आत्मा और हम ही परमात्मा हैं। हम ही ब्रह्म हैं। परमात्मा ही हम सब की रक्षा करता है। अन्न रसमय पुरुष है। इस विषय में मन को लगा देने या लय कर देने का नाम ही योग है।

विश्वव्यापी परमात्मा के स्वरूप को अनुभव करने पर परमात्मा को चैतन्य रूप में अनुभव करने की साधना और भक्ति आदि का उसमें लय करने का नाम ही योग है। (यहाँ आपने 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' की व्याख्या की) योग को आपने परमात्मा के पास पहुँचने की एक सीढ़ी बताया। परमात्मा में चित्त को लय करने से हम योगेश्वर भी बन सकते हैं। भक्ति या उपासना में दृढ़ एवं सच्ची भावना होने के लिए आपने कृष्ण के भगवद्दर्शन हो सकने वाला उदाहरण देकर बताया कि जब तक उसे मूर्ति रूप में समझा तब तक कुछ नहीं हुआ। किन्तु जब उस मूर्ति को प्रत्यक्ष सुगन्ध देती हुई अनुभव किया तभी कृष्ण के दर्शन हो गये।

इसी प्रकार अहंतत्व छोड़ने पर ही परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है। स्वरयोग या स्वरोदय भी परमात्म प्राप्ति का साधन है। आत्मभावना की साधना से ही मनुष्य मुक्त हो सकता है। योग वासिष्ट के अनुसार पुरुषार्थ करने से ही इष्टफल की प्राप्ति हो सकती है। वैसे तो सभी नाम परमात्मा के हैं, "तस्य वाचकः प्रणवः' के अनुसार प्रणव 'ॐ' ही परमात्मा का मुख्य नाम है। अतएव जिसमें अनुकूलता जान पड़े उसी की साधना द्वारा परमात्मा में लय कर दो। इसी का नाम योग है। मन को साध्य वस्तु में लय करने का नाम ही योग है। इसी में साधन की सफलता है। परमात्मा में अपने को लय करना ही साधना है। इस प्रकार परमात्मा आप में लय हो जायगा और आप परमात्मा में। प्रत्येक साधक अपने भगवान् की महत्ता को श्रेष्ठ (सिद्ध) बताने का प्रयत्न करते हैं। किन्तु सभी के मतानुसार परमात्मा में लय होने का नाम योग बताया गया है सारांश, ईश्वर की प्राप्ति का सच्चा साधन अपने आपको उसमें लय करना ही है।

आपके प्रवचन के पश्चात् देहरादून श्री ठा० शेरसिंह जी दीक्षित ने अपने

"अध्यात्म साधन"

सम्बन्ध विचार प्रकट करते हुए बताया कि "एको देवो सर्वभूतगुहः" अर्थात् वह एक परमात्मा ही सब प्राणियों में समान रूप से व्याप्त है। अतएव उसे जानने का प्रयत्न करना है, इसका

परम कर्त्तव्य है। अध्यात्मशास्त्र में इसकी दो विधियाँ बतलाई गई हैं (१) विधिमुख, (२) निषेध मुख। हमारे यहाँ देहाभिमान या अहंकार को मलिन माना है। अतः देहाभिमान को छोड़कर आत्माभिमान की ओर प्रवृत्त होने से ही आत्मदर्शन हो सकता है। परमात्मा के दर्शन न हो सकने का कारण प्रतिबन्ध है। भूत भविष्य और वर्तमान की चिन्ता ही हमारे मार्ग के प्रतिबंध रूप हैं। इन्हीं के कारण हम आत्मतत्व की ओर नहीं जा सकते। इस साधन समारम्भ का उद्देश्य उस परमात्मा की प्राप्ति ही है। गीता में भगवान् ने कहा है—"अहमात्मा गुड़ाकेश" अर्थात् हे अर्जुन मैं ही आत्मा रूप हूँ। अतएव हमें आत्मतत्व को जानने का ही पूर्णरूप से प्रयत्न करना चाहिए।

यहाँ आपने आरुणि-उद्दालक संवाद की चर्चा करते हुए बतलाया कि नचिकेता को जब अपनी विद्या का अभिमान हुआ तो पिता ने प्रश्न किया कि "तुम हमें ऐसी कोई सिद्धि प्राप्त करके बताओ जो कि सब कुछ सुलभ कर दे।" किन्तु पिता के सम्मुख उसे चुप हो जाना पड़ा। तब ऋषि ने बतलाया कि वह परमतत्व "सराव आत्मा" है। अतएव आत्मा की सिद्धि ही सर्वश्रेष्ठ है। उसके बाद ऋषि ने क्रमशः शरीर को आत्मा बताया; किन्तु पुत्र ने आत्मा के गुण के अनुसार शरीर को न पाकर उसे आत्मा नहीं माना। तब प्राण को आत्मा बतलाया किन्तु प्राण भी परिवर्तनशील होने से वह भी आत्मा नहीं हो सकता। इसके बाद मन को आत्मा बताने पर चंचलता के कारण वह भी आत्मा नहीं हो सकता। तब बुद्धि को आत्मा बताया किन्तु बुद्धि कर्मानुसारिणी होने से वह भी आत्मा नहीं हो सकती। तब आनन्द को आत्मा बताया, किन्तु आनन्द भी परिवर्तनशील होने से वह भी आत्मा नहीं हो सकता। अर्थात् आत्मतत्व का ज्ञान बुद्धि से परे माना गया है। "यो बुद्धेः परवस्तुसः"।

"......" परमात्मा सर्वव्यापक है। उसकी विराट्रूप में कल्पना करने पर सूर्य-चन्द्र उसके चक्षु, मुख अग्नि आदि विविध अवयव बतलाये गये हैं। किन्तु इस प्रकार विराट् रूप में परमात्मा का दर्शन कर सकना सबके लिए सुगम नहीं हो सकता। साथ ही उसके लिए अन्तःकरण की शुद्धि आवश्यक होती है; उसका साधन है यज्ञ, दान और तप। ज्ञान ही आत्मा का स्वरूप है, अतएव यहाँ आप यज्ञ के साथ यथाशक्ति दान करते हुए तप भी कर रहे हैं साथ ही यहाँ उपासना आराधना भी आप त्रिकाल नियम से कर रहे हैं, अतएव आपके अन्तःकरण भी अवश्य शुद्ध होंगे। शुद्ध अन्तःकरण होने पर उपासना करते करते साधक तद्रूप हो जाता है। इसीलिए उपासना का आशय आत्मा का परमात्मा में लय हो जाना बतलाया गया है। इसी प्रकार आत्मज्ञान हो जाने पर ही मुक्ति हो सकती है। "ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः" किन्तु यह ज्ञान सच्चा ज्ञान होना चाहिए। बुद्धि से प्राप्त ज्ञान भी नाशमान होता है अतएव सत्यज्ञान होने पर ही मुक्ति संभव है। गीता में भगवान् ने कहा है—'नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते"। अर्थात् ज्ञान के समान पवित्र इस लोक में दूसरी कोई वस्तु नहीं है। अतः यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना ही इष्ट है।

हम आत्मा को मूर्तिमान रूप में नहीं देख सकते। क्योंकि वह पंचतत्वात्मक पंचदोषों से परे है। इसी प्रकार जब तक देहाभिमान बना हुआ है, तब तक आत्मज्ञान नहीं हो सकता। और आत्मज्ञान प्राप्त हुए बिना भय-शोकादि भी दूर नहीं हो सकते। अतएव परमात्मा की प्राप्ति में—आत्मज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न आवश्यक कहा गया है। आत्मरूप ब्रह्म के साधक की अवस्था के अनुरूप भिन्न भिन्न लक्षण बताकर उसकी साधना का संकेत किया गया है। अर्थात् 'सत्यंज्ञान मनंत ब्रह्म' के रूप में सत्य ही ज्ञान एवं ब्रह्म की अनंतता बतलाई गई है।

"अयमात्मा ब्रह्म" अर्थात् यह आत्मा ही ब्रह्म है और "तत्वमसि" वही तू है! और इससे आगे 'प्रज्ञान ब्रह्म' के रूप में यथार्थ ज्ञान-पूर्ण ज्ञान हो जाना ही ब्रह्मज्ञान कहा गया है और यह ज्ञान हो जाने पर ही साधक 'अहं ब्रह्माऽस्मि" कहता हुआ स्वयं ब्रह्मरूप बन जाता है। ये सब महावाक्य हैं, जिनका उपदेश साधक की योग्यता के अनुसार गुरुमुख से उपदेश किये जाते हैं।

ब्रह्म या आत्मज्ञान की प्राप्ति में लय-विक्षेप से बाधा पड़ती है। इसीलिए कहा गया है कि—"लय विक्षेप रहित मनः कृत्वातु-निश्चलम्" अर्थात् लय-विक्षेप रहित मन को निश्चल स्थिर बनाने पर ही ब्रह्म की प्राप्ति हो सकती है। चित्त की चंचलता का प्रधान कारण भविष्य की चिन्ता करना है; किन्तु यह व्यर्थ की बात है। क्योंकि जो कुछ होना है, उसे चिन्ता करके हम नहीं बदल सकते। इसी प्रकार भूत का चिन्तन भी मूर्खता का लक्षण है अतएव हमें सदैव वर्तमान में ही रहना चाहिए। अतएव अपने को सदैव परमात्मा में लीन मानना चाहिए। उससे अलग मानना ही भूल है। देहाभिमान ही इस मार्ग में प्रतिबन्धक होता है। गीता में भगवान् ने कहा है—"योगिनामपि सिद्धानां ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।" इत्यादि। इस प्रकार योगी, सिद्ध, ज्ञानी और तत्वदर्शी के रूप में चार अवस्थाएँ बतलायी गई हैं। इन सब में तत्वदर्शी ही पद सब से ऊँचा है।

हमारी पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ देह की उपयोगिता के लिए हैं, ये ब्रह्मज्ञान को ग्रहण करती हैं। अतएव इनको बाहर से भीतर की ओर पहुँचाओ। प्राण और परमात्मा का सम्बन्ध स्थापित करो। परमात्मा के ध्यान के लिए भी गीता में—"स्पर्शान् कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवो.। प्राणापानौसमे कृत्वा मुनिर्मोक्ष परायणः।" के द्वारा भ्रुवों के मध्य में ध्यान करते हुए प्राण और अपान को समावस्था में लाने को कहा गया है। इस प्रकार प्राण का सर्वश्रेष्ठ सम्बन्ध बतलाया गया है। और यह प्राण ही आत्मा है। प्राण में ही चैतन्य परमात्मा का वास है। प्रकृति में प्राण होने पर भी उसकी जड़ावस्था रहने से उसमें का परमात्मतत्व ग्रहण किया गया है।

अध्यात्म के लिए भी गीता मे "स्वभावोऽध्यात्मउच्यते" अर्थात् स्व—अपने भाव स्वरूप का ज्ञान होना ही अध्यात्म बतलाया गया है। वस्तु का स्वभाव ही अध्यात्म है। इसी प्रकार प्राण का निरोध ही अध्यात्म है और यही योग है।

इस प्रवचन के पश्चात् पन्द्रह के भजन हो जाने पर आज का कार्यक्रम समाप्त हुआ। एवं दुग्ध तथा फलाहार के पश्चात् सब ने विश्राम किया।

विशेष निवेदन

कल्पवृक्ष के प्रेमी पाठकों और ग्राहकों से निवेदन है कि अब डाक खर्च में रजिस्ट्री का शुल्क ६ आने हो जाने के कारण, वी० पी० द्वारा कल्पवृक्ष मँगाने वालों को ३) देने होंगे। आप वी० पी० न मँगाकर यदि २॥) वार्षिक मूल्य मनीआर्डर द्वारा भेज दें तो आपको बचत होगी।

—व्यवस्थापक

द्वितीय-दिवस

"तमसो मा ज्योतिर्गमय"

प्रातःकाल यथानियम उपासना, ध्यान, ध्वनिगान, नामसंकीर्तन आदि हो जाने पर डॉ० बालकृष्ण जी नागर ने कल की भावना को दोहराते हुए कहा कि "सत्य का मार्ग खाँड़े की धार की तरह है। सत्य मार्ग का अवलंबन करने से मनुष्य परमात्मा के निकट पहुँच जाता है। धर्म की बातें सभी धर्मों में समान हैं। अतएव सत्य का अवलंबन कीजिए। व्यर्थ के लिए झूठ बोलने की आदत छोड़िए। लोग चाहें तो असत्य से सहज ही बच सकते है। महात्मा गाँधी ने किस प्रकार सत्यव्रत का पालन किया और सत्य एवं अहिंसा का पालन करते हुए ही अपने प्राणों को बलिदान कर दिया। अतएव आज से ही सत्य भाषण की प्रतिज्ञा करके जीवन को सत्मय बनाइए।" इसके पश्चात् संत नागर जी की उपदेश की हुई "तमसो मा ज्योतिर्गमय" की भावना पढ़कर सुनाई गई, जिसमें अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाने के लिए परमात्मा से प्रार्थना की गई है।

इसके पश्चात् राम-विश्रामधाम-महीद्पुर के श्री रणछोड़जी "उद्धव" ने अपने प्रवचन में

ज्ञान के विविध स्वरूप

का विवेचन करते हुए कहा कि कल आत्म-विकास के कुछ मार्ग बतलाये गये थे। आज मैं यह अनुरोध करना चाहता हूँ कि आप अपनी पिछली साधना पर विचार कीजिए और देखिए कि पहले से आप कहाँ तक आगे बढ़े हैं। अर्थात् जिस प्रकार संसार के व्यवहार चलाते हुए आप अपने आय-व्यय का लेखा वर्ष के अन्त में देखा करते हैं, उसी प्रकार आध्यात्मिक उन्नति की भी जाँच करके मनुष्य जन्म के उद्देश्य एवं उसकी पूर्ति का प्रयत्न करना चाहिए। सर्वसाधारण के पास इसकी कोई कसौटी न होने से वे इस विषय में कुछ भी नहीं सोच सकते। अतएव जैसा कि कल बतलाया गया था हमें यह देखना चाहिए कि हम पत्थर, वनस्पति, पशु, चन्द्रमा या सूर्य, इनमें से किस अवस्था में हैं ?

यद्यपि आत्मविकास की दृष्टि से पत्थर जड़ होते हुए भी उनमें गति अवश्य होती है। वह यद्यपि हमें दिखाई नहीं देता। उसी प्रकार स्वार्थी पत्थर की गति होता है। वह अपने स्थान पर ही चलता है। आत्मोन्नति नहीं कर सकता। इसी प्रकार वनस्पतियों में भी गति है। अतः इस श्रेणी के लोग क्रमशः वृद्धि पाकर अपने साथ साथ अपने कुटुम्ब की उन्नति में तत्पर रहते हैं। तीसरे, पशु श्रेणी के मानव अपनी जाति की उन्नति में संलग्न रहते हैं। अथवा मानव रूप में मानव समाज के विषयों में संलग्न रहते हैं। किन्तु जो राष्ट्रीय पुरुष हैं, वे संकुचित राष्ट्र की सीमा तक सीमित होते हैं। ये चन्द्रमा की तरह हैं। ये यद्यपि पहले तीनों से श्रेष्ठ हैं, किन्तु सब से श्रेष्ठ महात्मा की श्रेणी वाले पुरुष होते हैं, उन्हें सूर्य की उपमा दी जाती है। इस प्रकार हम आत्मविकास करके उन्नति की चरम सीमा तक पहुँच जाते हैं। पत्थर पर गिरी हुई सूर्य की किरणों का प्रकाश वापस लौट जाता है। अतएव हमें इस बात का विचार करना चाहिए कि हम अपने उद्देश्य की पूर्ति के मार्ग में कहाँ तक आगे बढ़ सके हैं। पशु ही मानव के निकट की स्थिति है। अतएव पशुत्व से मुक्त होकर मनुष्यत्व में आने की कसौटी ज्ञान है। किन्तु ज्ञान में भी कई झगड़े है। जो भी सोच या विचार किया जाता है वह सब ज्ञान है। किन्तु उसकी भी कई श्रेणियाँ हैं। वे मुख्यतः छः प्रकार की मानी गई हैं : १) इन्द्रियज्ञान, ही सबसे पहली अवस्था है, जोकि हम पंच ज्ञानेन्द्रिय तथा पंच कर्मेन्द्रियों द्वारा अनुभव करते हुए प्राप्त

करते हैं। इन्द्रियों के ज्ञान को हम प्रत्यक्ष ज्ञान भी कह सकते हैं। वह प्रत्यक्ष ज्ञान प्रज्ञान भी कहा जाता है। दूसरी श्रेणी मनोमयज्ञानकी है। मानसिक ज्ञान भी इसी का नाम है। इस ज्ञान को भी प्रज्ञान कह सकते हैं। यह मन से सम्बन्ध रखता है। मानसिक का आशय है मनन के द्वारा दूसरे के हित की बात को समझना। तीसरी श्रेणी विज्ञान की है। यह बुद्धिजन्य ज्ञान है। बुद्धिजन्य होने से स्वतन्त्र निर्माता है। वह भी स्वतंत्र भौतिक पदार्थों को लेकर प्रयोग किया जाने वाला क्षणिक ज्ञान ही है। वैज्ञानिक लोग नाना प्रकार के आविष्कार करते हैं। किन्तु वास्तव में उसके द्वारा भी मानव समाज का कोई विशेष उपकार सिद्ध नहीं हो सकता। इसलिए हमारे यहाँ भौतिक विज्ञान की उपेक्षा की गई है। क्योंकि भौतिकता के माननेवाले अपने प्रत्यक्ष ज्ञान के अनुसार ही सबको परखते हैं और इसीलिए वे हमारे यहाँ नास्तिक कहे जाते हैं अर्थात् जो प्रत्यक्ष में न दिखाई दे या प्राप्त न हो सके, उसे वे नहीं मानते। जब कि आस्तिक पुरुष श्रद्धा-विश्वास के बल पर अप्रत्यक्ष को भी अनुभव कर सकता है, उन्हें वेद की ईश्वरीय वाणी पर पूर्ण श्रद्धा होती है, जब कि "नास्तिको वेद निंदकः "कहकर नास्तिक को वेद वाणी का विरोधी बताया है। ज्ञान की चतुर्थश्रेणी यथार्थज्ञान है। इसे सत्य-विज्ञान भी कह सकते हैं। यह ज्ञान भी बुद्धि द्वारा प्राप्त किया जाता है। जिन लोगों ने आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त किया है, वे ही सच्चे गुरु हो सकते हैं। इसीलिए गुरु की परिभाषा श्रोत्रिय एवं ब्रह्मनिष्ठ के रूप में की गई है। ऐसे गुरु ही सच्चे ज्ञानी कहे जा सकते हैं। वेदों के प्रमाण के अनुसार सिद्ध ज्ञान सत्य ज्ञान या यथार्थ ज्ञान कहला सकता है। वही सच्चे अर्थों में ईश्वरीय ज्ञान होता है। उसके लिए वेदों का आधार लिया जाता है। अतएव उस सत्य ज्ञान के द्वारा हम क्रमशः आगे बढ़ते जाकर ईश्वर के निकट पहुँच सकते हैं। देव के पास जाने के लिए देव की ही भाषा द्वारा ज्ञान प्राप्त करना होगा। यही सत्य विज्ञान है।

भारत के सभी आचार्यों ने वेद का आश्रय लिया है और वेद को ही प्रामाण्य माना गया है। ज्ञान की पाँचवीं श्रेणी योगज्ञान है। यह भी वेदों के आधार पर सिद्ध होता है। किन्तु इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि साधन-रहित ज्ञान अधूरा है। अर्थात् वह शास्त्रार्थ ज्ञान कहा जाता है। इस प्रकार साधनाविमुख ज्ञान ही योगज्ञान है। क्योंकि केवल शास्त्रार्थ से कभी आत्मिक ज्ञान नहीं हो सकता। योग का साध्य बुद्धियोग है। इसीलिए भगवान् ने गीता में कहा है—"ददामि बुद्धियोग त्वं"। इसी लिए बुद्धियोग की प्राप्ति ही हमारा अंतिम उद्देश्य है। बुद्धि से परे वह परमात्मा है। अतएव उस परमात्मा से योग करना है। योगी लोग भी दीर्घायु हो सकते थे किन्तु इतने पर भी वे सत्य ज्ञान की प्राप्ति के लिए इच्छा न रखते हों तो उनका भी पतन हो जाता है। संत ज्ञानेश्वर ने चांगदेव से मिलने के लिए पत्र के रूप में कोरा कागज भेज दिया था और इससे प्रभावित होकर [illegible] वे सिंह पर चढ़कर आये; तो उनकी अगवानी के लिए ज्ञानेश्वर ने, जिस चबूतरे पर वे बैठे थे, उसी को चलाकर आगे चले। तब चांगदेव को अपना अभिमान छोड़कर ज्ञान देव के शरणागत होना पड़ा और मुक्ताबाई द्वारा उपदेश पाकर उन्हें मोक्ष प्राप्त हो सका। सारांश योग के द्वारा प्राप्त ज्ञान को वैदिक ज्ञान से मिलाकर देखना होगा। अवतारी और महात्मा पुरुषों में अन्तर है। योग-द्वारा ज्ञान संपादन करके लोक-कल्याण करने वाले महापुरुष महात्मा हैं, जब कि अवतारी पुरुष जन्म से ही लोककल्याण करने लगते हैं; क्योंकि अवतारी पुरुष में यह ज्ञान जन्मसिद्ध होता है। इस प्रकार [illegible]

की छठी या अंतिम श्रेणी सत्यज्ञान की है। यह सत्यज्ञान ईश्वरी ज्ञान है। अनुभवजन्य ज्ञान भी भेदयुक्त होता है। किन्तु सत्यज्ञान अनुभवजन्य ज्ञान से आगे की वस्तु है। क्योंकि सबके अनुभव में अंतर होता है। इसलिए अंतिम ज्ञान निर्विकल्प ज्ञान है परमेश्वर-सबन्धी ज्ञान है। ज्ञान की इन श्रेणियों को समझ लेने से हम अपनी कसौटी ठीक से कर सकेंगे। इस प्रवचन के पश्चात् खंडवा (नीमाड़) के संत श्री रामलाल जी पहाड़ा ने अपने विचार प्रकट करते हुए

लोक कल्याण की साधना

"गणानान्त्वा गणपति तँ हवामहे" इस मंत्र की व्याख्या में बतलाया कि यह अत्यन्त दिव्य मंत्र है, जैसा कि गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामायण में कहा है "मंत्र महामणि विषय व्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के" अर्थात् यह मंत्र विषय रूपी सर्प का विष उतारने के लिए मणिरूप है, जो कि भाल या ललाट पर लिखे हुए अंक या लेख को मिटाने की शक्ति रखता है अर्थात यह पुरुषत्व का सूचक है। वेद की भाषा या वैदिक भाषा का यह महत्व है उसमें ससार के समस्त विषयों का ज्ञान संचित है। संसार के सभी विषय योग से सम्बन्ध रखते हैं। वेद से परे कुछ भी नहीं है। सारांश, वेद-मत्र कामधेनु के समान है, जिसके द्वारा सब प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं। यहाँ तक कि एक ही मत्र को लेकर हम सब कुछ प्राप्त कर सकते हैं। महात्मा गाँधी ने चर्खे को ही कामधेनु समझकर उसके द्वारा ही लोक कल्याण की साधना का प्रयत्न किया था। जो लोग मंत्र के देवता को जानकर उसकी शक्ति का परिचय प्राप्त कर लेते हैं, वे उसी के द्वारा लोक कल्याण की साधना कर सकते हैं। देवों ने यज्ञ करते हुए सबसे पहले अपने में छिपे हुए पशुत्व को बाँधा। प्रत्येक मनुष्य में देवत्व, पशुत्व एवं मनुष्यत्व छिपे रहते हैं। इनमें से पशुत्व को बाँधकर मनुष्यत्व प्राप्त करते हुए देवत्व तक हमें पहुँचना है। इसका उपाय तुलसीदासजी ने रामायण में 'संतसमागम' बतलाया है। इसलिए छल कपट छोड़कर संत समागम करना चाहिए। कपट तो हम दूसरों के साथ कर सकते हैं, किंतु छल तो हम खुद अपने साथ आत्मवंचना के रूप में ही करते हैं। अतएव जो इस छिद्र को दूर कर लेता है, उसे ही परमात्मा का ज्ञान हो सकता है।"

इस प्रवचन के पश्चात् संयमशाला के प्राङ्गण में साधकों के सम्मुख श्री महात्मा नारायण प्रकाशजी ने नेती, धौती, कुंजक्रिया, तथा प्रभावती (ब्रह्मदतौन) आदि क्रियाएँ प्रत्यक्ष करके बतलाईं। श्री गणपत दास जी कदवाने (बुरहानपुर) ने उनका विवेचन कर लोगों को उनके लाभ बतलाये। श्री हठयोगी सत्यात्माजी ने भी दैनिक स्वास्थ्य सुधार की क्रियाएँ साधकों से करवाकर उनके लाभ समझाये।

तत्पश्चात् यथानियम भजन, मौन जप एवं दैनिक अग्निहोत्र हुआ और वैदिक भावना का पाठ किया जाकर, मध्याह्न उपासना सम्पन्न की गई। तत्पश्चात् भावना पाठ, गीता पाठ आदि भी यथानियम सम्पन्न हुए और भोजनोत्तर अपराह्न काल ४॥ बजे तक का समय सत्संग आदि में व्यतीत हुआ, इसके बाद अवन्तिका आयुर्वेद विद्यापीठ के प्रतिष्ठापक आयुर्वेदाचार्य श्री पं० वासुदेव जी शास्त्री ने अपने शास्त्रीय प्रमाण एवं अनुभव से युक्त वाणी में

आयुर्वेद में प्राकृतिक-चिकित्सा

का रहस्य समझाया। आपने बतलाया कि—

वस्तुतः मनुष्य जीवन धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों की प्राप्ति का अंतिम साधन है। किन्तु इसके लिए हमें सबसे पहले शरीर पर ध्यान देना होगा। क्योंकि 'शरीरमाद्यंखलु धर्म-साधनम्' अर्थात् स्वस्थ शरीर ही से धर्म साधना

हो सकती है। शरीर के बाद मन की स्वस्थता पर ध्यान देना चाहिए और तत्पश्चात् आत्मा का चिन्तन किया जा सकता है। शारीरिक उन्नति का चिन्ह स्वास्थ्य ही है।

प्राकृतिक-उपचार आज के युग का एक नवीन शब्दीकरण मात्र है। अन्यथा आयुर्वेद में प्राकृतिक उपचार को ही प्रधानता दी गई है; क्योंकि उसका आधार प्रकृति परीक्षा पर ही रहता है। जीवन रक्षा के लिए ऋग्वेद के साथ पंचम उपवेद आयुर्वेद की उत्पत्ति हुई है। इसके द्वारा हम सब प्रकार की साधना-सफल कर सकते हैं। हमारे स्वास्थ्य में विकृति होने का कारण प्राकृतिक जीवन से विमुख हो जाना ही है। आयुर्वेद का लक्षण 'आयुर्वेत्ति आयुर्वेदः' अर्थात जो आयु का (जीवन का) रहस्य बतलाता है, वही आयुर्वेद है। शरीर के भीतर आत्मा का अधिष्ठान है, अतएव वह शरीर के स्वस्थ रहने पर ही साध्य हो सकता है। शरीर की साधना के द्वारा ही हम आत्मा लाभ कर सकते हैं। शरीर, मन, आत्मा के स्वस्थ होने पर ही हम अध्यात्म लाभ कर सकते है।

स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिए सबसे प्रथम आवश्यकता शुद्ध वायु की होती है। क्योंकि शुद्ध वायु से ही शुद्ध प्राण की उपलब्धि हो सकती है। इसे आयुर्वेद में "अम्बर पीयूष" के नाम से संबोधन किया गया है। क्योंकि मुक्त आकाश में ही शुद्ध प्राणवायु मिल सकती है। और जो शुद्ध प्राणवायु का सेवन करता है, उसको कभी कोई रोग नहीं हो सकता। इसी प्रकार "नाभिस्थ प्राण पवनः" अर्थात् प्राण वायु का स्थान नाभि में बताया गया है। शरीर के समस्त व्यापार प्राण वायु के द्वारा ही सपन्न होते हैं। इस प्राणवायु के द्वारा ही हमारी जठराग्नि प्रज्वलित होकर अन्नादि को पचाकर हमें स्वस्थ रख सकती है। इस प्रकार स्वास्थ्य के लिए शुद्ध वायु की परमावश्यकता है। किंतु नगरों में शुद्ध वायु अत्यंत दुर्लभ होती है; अतएव आप लोग यहाँ रह कर जो शुद्ध वायु प्राप्त कर रहे हैं, सचमुच भाग्यशाली हैं। इस पवित्र स्थान की केवल वायु ही शुद्ध नहीं है, वरन् यहाँ का तो सपूर्ण वातावरण ही शुद्ध-पवित्र बन गया है।

रोगों की उत्पत्ति का मूल कारण 'प्रज्ञा-पराध' है। प्रज्ञा अर्थात बुद्धि के विकार से ही हम प्राकृतिक नियमों का भंग कर रोगी बनते हैं। प्रज्ञापराध के लिए हमारी पचेन्द्रियाँ ही कारणीभूत होती हैं। विषय के विपरीत रूप में उपयोग करने से ही रोगोत्पत्ति होती है। बुद्धि में दोष आने पर ही शरीर में मल संचित होता है। किन्तु बुद्धि के दोष को कोई वैद्य या डॉक्टर, हकीम दूर नहीं कर सकता। उसे तो मानसिक उपचार से ही दूर किया जा सकता है। इसलिए शरीर शुद्धि के साथ साथ आयुर्वेद मन की शुद्धि भी आवश्यक बताई गई है। शरीर के स्वास्थ्य के लिए यदि उपवास किया जाता है तो मन की शुद्धि के लिए योग का सहारा लिया जा सकता है।

आयुर्वेद शास्त्र किसी उपचार-पद्धति का प्रचारक नहीं है; वरन् वह स्वस्थ जीवन बिताने के प्राकृतिक नियमों का बतलानेवाला शास्त्र है। अतएव हमें आयुर्वेद की आज्ञानुसार पथ्य का पालन करते हुए स्वास्थ्य लाभ करना चाहिए। हमें अपने जीवन को प्राकृतिक दिनचर्या पर लाना चाहिए। क्योंकि समय की स्थिति के कारण हमारा जीवन-क्रम एकदम बदल गया है, यही कारण है कि हम नित्य नये रोगों से आक्रांत होकर दिन रात औषधियों के फेर में पड़े हुए हैं। हम रोग के मूल कारण तो नहीं खोजते और दवाई के द्वारा स्वस्थ होने का प्रयत्न करते हैं। अर्थात् हम प्राकृतिक जीवन को भूल गये हैं। किन्तु अध्यात्म ज्ञान के लिए स्वस्थ शरीर की परमावश्यकता है। स्वामी रामतीर्थ भी बाल्यावस्था में [illegible] हुए थे, किन्तु उन्होंने व्यायाम द्वारा स्वास्थ्य सुधार कर

संसार में जो महान् कार्य कर दिखाया, उसे आप सब जानते हैं। उन्होंने प्राकृतिक जीवन को अपनाकर व्यायाम, दुग्धपान, पहाड़ो पर चढ़ने आदि के शारीरिक श्रम के साथ साथ सद्विचारों के सेवन रूप में अमृत गुटिका बनाई अर्थात् इन सब के सेवन से मनुष्य निश्चित रूप से ही स्वस्थ रह सकता है। सारांश, हमें अपनी दिनचर्या प्राकृतिक जीवन के अनुकूल बनानी चाहिए। मिथ्याहार-विहार से ही आमाशय में दोष उत्पन्न होकर हम रोगी बन जाते हैं।

मानसिक दुर्बलता दूर करने के लिए सत नागरजी ने यह आयोजन किया है। उन्होंने प्राकृतिक जीवन का मर्म समझाकर सबका भला किया है। अतएव हमें उनके द्वारा सुलभ किये हुए इस साधन से अवश्य लाभ उठाकर स्वास्थ्य सुधार का यत्न करना चाहिए।

स्वास्थ्य सुधार के लिए सबसे सरल और सबके करने योग्य उपाय "उपःपान" है। नियमानुसार विधि-पूर्वक उपःपान करने से कई रोग दूर हो सकते हैं। अर्श शोथ आदि ही नहीं, कुष्ट रोग तक उपःपान से दूर किये जा सकते हैं। जिस प्रकार प्रातःकाल उठकर ईश्वर का स्मरण करना प्रथम कर्तव्य है; उसी प्रकार इसके बाद कुल्ला करके मुख शुद्ध करने के पश्चात् ताँवे के पात्र में भरा हुआ जल पीना चाहिए। क्योंकि ताम्र में कीटाणु नाशक शक्ति होती है। इसीलिए भीतर के दूषित भाग की शुद्धि उपःपान से ही हो सकती है। गंगा के जल में कीटाणु-नाशक शक्ति होने से ही हमारे यहाँ उसे इतना महत्व दिया गया है। वैज्ञानिकों ने खोज करके पता लगाया है कि उत्तर काशी के निकट गंगा के तल भाग में ताँवे के स्तर पाये जाते हैं और उन्हीं से रगड़ खाकर गंगा का जल कीटाणुनाशक बन गया है। एक बार जर्मनी में हैजा फैलने पर उसके कारण की जब खोज की गई तो पता लगा कि ताँबे की खदान में काम करनेवाले मजदूरों पर हैजे का कोई असर नहीं पड़ा। अतएव उन्होंने ताँवे में रोगनाशक शक्ति होने का पता लगाकर उसका प्रचार किया। किन्तु हमारे यहाँ तो हजारों वर्षों से ताम्रपात्र में जल पीने का विधान चला आता है।

मनुष्य शरीर की तीन प्रकार की प्रकृति होती है—वात, पित्त और कफ। इनको ठीक तरह से समझकर इनके अनुकूल आहार-विहार रखने से कभी कोई रोग नहीं हो सकता। वायु प्रकृति वाले को उपःपान में परिमित, कफवाले को कम तथा पित्त वाले को पर्याप्त जल पीना चाहिए। वसंत ऋतु में भ्रमण ही पथ्य कहा गया है। इस ऋतु में कफ का प्रधानता होने से उसे बढ़ने नहीं देना चाहिए। कफ की वृद्धि से ही जुकाम (सर्दी) होता है। किंतु व्यायाम सर्वरोगनाशक है। उपःपान भी उसी प्रकार रोगनाशक है। आजकल अर्श (बवासीर) रोग बहुत बढ़ रहा है। यह रोग अपान वायु के कुपित होने से उत्पन्न होता है। किंतु उपःपान से वायु अनुलोम हो जाती है और इसी कारण उससे आँतों के समस्त रोग दूर हो सकते हैं। कुष्ट रोग के लिए सूर्यदेव की उपासना या भास्कर-आराधना आवश्यक बताई गई है। इसी से यह रोग दूर हो सकता है। सारांश, उपःपान से शरीर उदर, मूल, वात, पित्त, कफ तथा शिरोरोग आदि सभी प्रकार के रोग दूर हो सकते हैं। क्योंकि आयुर्वेद में "सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपितं मलम्" कहकर सब रोगों का मूल मल का कुपित होना बतलाया है। मानसिक रोगों का कारण प्रज्ञापराध है। चिंता, शोक, भय, क्रोध आदि सभी विकार मानसिक रोग के कारण हैं।

तुलसी के वृक्ष से अनेक रोगों के दूर होने का हमारे यहाँ विधान है। इसीलिए प्रत्येक घर में तुलसी का पौधा रखने की प्रथा पायी जाती है। इससे मलेरिया के जंतु नष्ट हो जाते

हैं। इसी प्रकार अनेक रूप में सूर्य, जल, वायु, पृथ्वी तत्व और आकाश के रूप में पंचतत्वों का युक्तियुक्त सेवन करने से मनुष्य का स्वास्थ्य कभी विकृत नहीं हो सकता। मन में जब तक विकार नहीं होता; तब तक शरीर में भी कोई रोग नहीं हो सकता। और शरीर के निरोग रहने पर ही हम अध्यात्म लाभ कर सकते हैं। अतः जीवन को प्राकृतिक बनाइए।

स्व० संत नागर जी को हमारा आंतरिक धन्यवाद है, कि जिनकी कृपामयी प्रेरणा से यह आयोजन हम सब के लिए प्रतिवर्ष सुलभ होता है। अतः इससे सबको लाभ उठाना चाहिए।

इस प्रवचन के पश्चात् अपराह्न का कार्यक्रम समाप्त होकर सब लोग आनन्द-पर्यटन आदि में प्रवृत्त हुए और सायंकाल ठीक ७ बजे यथानियम

सायंकालीन उपासना

विधिवत् सम्पन्न हो जाने पर भजन, संगीत आदि के पश्चात् माधव महाविद्यालय के प्राध्यापक श्री पं० त्रिवेणीप्रसाद जी वाजपेयी ने सुन्दर स्फूर्तिप्रद भाषण देते हुए बतलाया कि—

हम क्या हैं ? और हम क्या करें ?

आपने कहा कि यह प्रश्न अनादिकाल से चला आता है और विभिन्न विद्वानों एवं अनुभवियों ने इसका अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार उत्तर भी दिया है। जगद्गुरु शंकराचार्य ने भी इसी प्रश्न को 'कस्त्वं ?' के रूप में उपस्थित कर उत्तर दिया कि 'न जाने'। अर्थात् "तुम कौन हो ?" का उत्तर देते हुए बताया कि "मैं नहीं जानता कि कौन हूँ !" इस पर देश-विदेश के अनेक विचारकों ने अपने मत प्रकट किये हैं। विदेशों में डार्विन ने मनुष्य की उत्पत्ति बन्दर से बतलाई और मेण्डुल ने इस मानव शरीर को पैतृक सम्पत्ति के रूप में माता-पिता से जो कुछ मिला उसी का प्रतीक बताया। किंतु पैतृक सम्पत्ति में कभी रोग, भय, दरिद्रता आदि भी मिलते हैं। अतएव यह विचार भी ठीक नहीं हो सकते। एक विद्वान् ने कई तत्वों के मिश्रण से इस शरीर की उत्पत्ति बतलाई। वटवृक्ष के बीज में इतना विशाल आकार समाया हुआ है और वही आगे चलकर विकसित होता है। अन्य एक विद्वान् ने मनुष्य को अपने आपमें पूर्ण एक इकाई माना। यह भिन्न-भिन्न तत्वों से बना हुआ है। फिर भी मनुष्य संपूर्णता रखता है। उसका निजी तत्व है। इसी प्रकार दूसरे एक विद्वान् ने बताया कि मनुष्य कई वस्तुओं के योग से बना हुआ है, न यह स्वतंत्र है न मिला हुआ। इस प्रकार पाश्चात्य विद्वानों ने उस प्रश्न पर भौतिक दृष्टि से विभिन्न मत प्रकट किये हैं।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से लॉक ने बताया कि मनोवृत्तियों का समूह या प्रवृत्तियों का समूह अथवा भावनाओं का समूह ही 'मानव' है। इसी प्रकार सामाजिक दृष्टि से हमारे कई सम्बन्ध हैं। घर में माता, बहिन, पुत्र, पत्नी आदि सभी अपनी-अपनी दृष्टि से अलग सम्बन्ध बताते हैं। समाज में भिन्न-भिन्न प्रकार के विचार प्रकट किये जाते हैं। तत्वज्ञान की दृष्टि से भी विचारकों ने विविध भाव प्रकट किये हैं। इस प्रकार कोई भी निश्चित नहीं कर सका कि वास्तव में हम क्या हैं ? परन्तु हमारे यहाँ इसका उत्तर दिया गया है कि "हम आत्मा हैं !" मुर्दे में आत्मा न होने से ही वह हमसे भिन्न हो जाता है। हममें चैतन्य है, प्राण है और मृतक में वह नहीं है। अर्थात् आत्मा सत् है, साथ ही वह चैतन्य रूप में 'चित्' भी है और आनन्दरूप तो वह है ही। इस प्रकार हम सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा हैं।

ज्ञानी लोग अपने को 'सोऽहम्' रूप में बतलाते हैं। अर्थात् जो स्वयं ब्रह्म है वही हम हैं। देशभक्त लोग जनता को ही जनार्दन के रूप में मानते हैं। इस प्रकार अंशरूप में निज

भिन्न स्वरूपों में लोगों से हमारा सम्बन्ध आता है, अतएव हमें किस प्रकार उनके प्रति वफादारी बताना चाहिए। जीवन में हम किस कर्तव्य का पालन करें? जब दो कर्मों के बीच संघर्ष होता है, तभी ठीक निर्णय में कठिनता आ जाती है। जिस प्रकार महाभारत के समय अर्जुन की दशा मोह मूढ़ हो गई थी वैसी दशा संसार में अनेक मनुष्यों की हो जाती है। अतएव ठीक निर्णय करने के लिए हमें महापुरुषों के वचनों पर ध्यान देना चाहिए।

मनुष्य एक केन्द्र की तरह है, जिसके आस पास कई वृत्त हैं; किंतु केन्द्र का सभी से सम्बन्ध रहता है। ऐसी दशा में छोटे वृत्त के कारण यदि बड़े वृत्त के हित में बाधा पड़ती हो तो छोटे का बलि कर देना चाहिए। जिस प्रकार घर में यदि बच्चा किसी वस्तु की माँग करे तो बड़े लोग अपनी आवश्यकता का ध्यान छोड़कर उसकी आवश्यकता पूरी करते हैं। इसी प्रकार यदि जातिहित के लिए आवश्यकता हो तो अपने घर का हित बलिदान कर देना पड़ता है। इसके बाद समाज या देश के लिए क्रमशः छोटे के हित की उपेक्षा करना आवश्यक हो जाता है। यहाँ तक कि अखिल विश्व की मानव जाति के हित के लिए देश का संकुचित भावना को भी त्याग देना आवश्यक है। हिटलर ने केवल अपने ही देश के भले ही दृष्टि रखी? इसी लिए अंत में उसका सर्वनाश हो गया। मानव-समाज का हित भी प्राणिमात्र के हित के सम्मुख बलिदान कर देना चाहिए। उसे तुच्छ समझना चाहिए। महात्मा गाँधी ने भी अहिंसा के बल पर सब को परास्त कर देश को स्वतन्त्र बनाते हुए संसार में एक अपूर्व आदर्श उपस्थित किया है। सारांश, अपने हित के लिए प्राणिमात्र का अहित करने की भावना कदापि उचित ही नहीं कही जा सकती।

दार्शनिक लोग 'सोऽहम्' कहकर अपने ज्ञान को ही सर्वश्रेष्ठ बतलाने का प्रयत्न करते हैं। किंतु तामसी पुरुष भी अपने ज्ञान को ज्ञान ही कहता है, किंतु यह उसका भ्रम है। राजसी ज्ञान भी अनेक स्थानों में सत्य है। किंतु सात्विक ज्ञानी संसार में एक ही सत्य-ज्ञान को मानता है। किंतु ऐसी दृष्टि संसार में विरले पुरुषों को ही प्राप्त होती है। सूक्ष्म से सूक्ष्म दृष्टि से आत्मा तक, विस्तृत दृष्टि से हम ब्रह्माण्ड तक पहुँचते हैं। सारांश, हम आत्मा हैं और बड़े हित के लिए हमें छोटे हित का बलिदान करना होगा।"

इस प्रकार आपका भाषण समाप्त हो जाने पर माधव महाविद्यालय उज्जैन के प्राध्यापक डा० शिवमंगल सिंहजी 'सुमन' एम० ए०, डी० लिट् ने अपनी काव्यमधुर शैली में, प्रारंभिक उपचारात्मक भूमिका बाँधते हुए अपने स्वभावानुरूप विषय—

काव्य में अध्यात्मवाद

पर अपने विचार प्रकट किये। आपने संत नागर जी के अभाव की चर्चा करते हुए बतलाया कि संसार में बड़े बड़े महापुरुष जाते हुए कुछ न कुछ दे जाते हैं। ठीक इसी नियमानुसार संत नागरजी हमें इस समारोह के रूप में अध्यात्म चिन्तन के लिए एक महान् वस्तु दे गये हैं। उनके मुख से जब मैंने पूर्णमदःपूर्ण मिदम् पूर्णात् पूर्ण मुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवाऽवशिष्यते" की व्याख्या सुनी तब मेरी समझ में आया कि पूर्ण में से पूर्ण निकाल लेने पर भी पूर्ण ही शेष कैसे रहता है? गीता में भगवान् ने कहा है :—

"अव्यक्तादीनिभूतानि व्यक्तमध्यानि भारत। अव्यक्त निधनान्येव तत्रका परिवेदना ॥" अर्थात् अव्यक्त भूतादि प्राणियों में और व्यक्त में भी हे भारत अव्यक्त का निधन हो जाने पर शोक करने या दुख मनाने की क्या आवश्यकता है? महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने बताया था कि— बीज तप कर अंकुर के रूप में प्रकट होता है, अंकुर से पौधा, पौधे से फूल और तब फल के

रूप में बदल जाता है। इस प्रकार बीज से फल बन जाने में उसकी सफलता मानी जाती है। किन्तु सच्ची सफलता फल से फिर बीज रूप बन जाने में है। अर्थात् हमें भी अपने लिए मिटकर सबके लिए बन जाना चाहिए। इस प्रकार फल से फिर बीज रूप में परिणत हो जाने में ही जीवन की सार्थकता है। अर्थात् यदि बीज फिर से बीज बन सका, एक से अनेक हो सका तो इसी में उसकी सफलता है।

महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'सोनारतरी' नाम की एक अत्यन्त भावपूर्ण कविता लिखी है। उसका भाव है कि "एक स्त्री सवेरे से खेत पर धान काटने गई और दिन भर धान काटकर उसने ढेर लगा दिया। किन्तु अचानक सायंकाल की वर्षा आ जाने से नदी पूर आ गई और वह धान को घर न ले जा सकी, इतने ही में उसे नदी में एक नाव जाती दिखाई दी। उसने नाव वाले को बुलाकर कहा कि कृपा करके इस धान को अपनी नाव पर लाद कर ले जाओ, जिससे कि यह वर्षा के जल से खराब न हो जाय। वह केवल इतना ही चाहती है कि भले ही यह धान ले जाय; किन्तु यह सोने जैसा धान नष्ट न हो। इस पर नाव वाला धान को नाव में भर लेता है; तब वह अपने को भी नाव में बैठा लेने के लिए अनुरोध करती है; किन्तु नाव वाला कह देता है कि तुम्हारे लिए नाव में स्थान नहीं है। इस प्रकार वह निराश होकर देखती रह जाती है। ठीक यही उपमा मनुष्य के जीवन पर भी प्रयुक्त हो सकती है अर्थात् जन्म भर मनुष्य अनेक प्रकार के कर्म करता रहता है; किन्तु अन्तिम समय-संध्याकाल में उसकी सारी कमाई दूसरा हथिया लेता है और वह देखता रह जाता है।

माता कस्तूरबा गाँधी महात्मा जी जैसे सत्पुरुष के सम्पर्क में आने से ही पारस के साथ छूकर लोहे से सोना बन गईं। यही कारण था कि मृत्यु से दो घड़ी पूर्व उन्होंने परमात्मा से प्रार्थना की "हे प्रभु, जन्म भर गुज़ारा दिया हुआ अन्न पशु की तरह खाया है; किन्तु उसके बदले में मुझसे कुछ भी कार्य नहीं हो सका। हे प्रभु मुझे क्षमा करो।' ये शब्द सामान्य ज्ञान रखने वाली कस्तूरबा केवल महात्मा गाँधी के संसर्ग में रहने से ही अन्त समय में उच्चारण कर सकी थीं।

अब मैं अपने असल विषय "काव्य में अध्यात्मवाद" पर आता हूँ। कबीर दास जी ने कहा है "साखी सबकी तब कही, जब वस्तु जाना नाहिं। जब कुछ कुछ परिचय भया, तब कछु कहना नाहिं॥" अर्थात् जब साधक उच्चावस्था सिद्धावस्था में पहुँच जाता है, तब उसके लिए कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती। इस प्रकार काव्य में अध्यात्म यही है कि वह आपको—आत्मा को उच्च से उच्च स्तर पर पहुँचा दे। गो० तुलसीदास जी ने चातक की उपमा देकर इस भावना को बड़ी सुन्दरता से प्रकट किया है। उनकी कविता में भावना की दृष्टि से चातक-सम्बन्धी दोहे सर्वश्रेष्ठ हैं। अथवा इन्हीं में कविता की श्रेष्ठता दृष्टिगोचर होती है। घायल होने की दशा में भी चातक स्वाति के जल को छोड़कर दूसरा जल नहीं पीता। यहाँ तक कि शिकारी-द्वारा घायल कर दिया जाने पर पानी में गिर जाने की दशा में भी वह अपना मुँह ऊँचा ही रखता है; अर्थात् प्राणान्त-दशा में भी वह नदी का पानी नहीं पीता। इसलिए कहा गया है कि तुलसीदास जी के शब्दों में तृषा बढ़ती ही रहनी चाहिए उसी में आनन्द है, तृप्ति में नहीं।

श्रीमती महादेवी वर्मा ने भी अपनी रहस्य-वादी कविताओं में अपने आराध्य से मिलने की कभी इच्छा नहीं की, प्रतीक्षा में रहने में ही आनन्दानुभव किया है। यथा :—

"तुम अमर प्रतीक्षा हो, मैं
　　पग विरह पथिक का धीमा।"

आते जाते मिट जाऊँ,
नहिं मिले पंथ की सीमा ॥"

इस प्रकार साधना की सफलता साधनामय बन जाने में है। अतएव जो कविता हमें ऐसे स्थान पर ले जाय, वही सच्चे अर्थों में कविता कही जा सकती है। रवीन्द्रनाथ की कविता में ऐसे कई उदाहरण मिल सकते हैं। कबीरदास जी ने कहा है:—"लिखा-पढ़ी की है नहीं, देखा-देखी बात। दुलहा दुलहिन मिल गये फीकी परी बरात।" अर्थात् अनुभव के सामने कल्पनाएँ फीकी हैं।

हम धर्म को ढोते हैं, जीवन में परिणत नहीं करते। जबकि इसी की परमावश्यकता है। यहाँ आपने भगवान् बुद्धदेव और नाव के काष्ट का गट्ठा उठाने वाले का उदाहरण देते हुए कहा आगे की चिंता में व्यर्थ के लिए अनावश्यक बोझ सिर पर उठाने की आवश्यकता नहीं है। अतएव पाप का गट्ठा छोड़ दो और जब नदी पार करना हो तब उद्योगकर फिर नई नाव बनाना। इसी प्रकार धर्म संसार रूपी नदी को पार कराने के लिए है, सिर पर ढोने के लिए नहीं।

मैं जब शांति निकेतन से चलते समय आचार्य क्षितिमोहन सेन के पास विदाई का आशीर्वाद लेने पहुँचा तो उन्होंने कहा कि "मैं तुम्हारे जीवन की सफलता नहीं चाहता; जीवन की चरितार्थता चाहता हूँ।" जीवन की सफलता बहुत छोटी वस्तु है। अतः जो कुछ प्राप्त किया है, उसे जीवन में चरितार्थ कीजिए। जीवन में छिपी हुई आवाज भी हमारे जीवन से, हमारे विचार से फूट निकले—उसमें दिखावा नहीं होना चाहिए।

विनय पिटक की एक कहानी सुनाते हुए बताया कि बौद्ध धर्म में स्त्री का स्पर्श मना है, किंतु एक भिक्षु ने युवती को कन्धे पर उठाकर नदी पार उतार दिया। इस पर उसके साथी भिक्षुक ने आचार्य से शिकायत करने की बात कही। रास्ते भर उसने इसी बात को दोहराया। इस पर उस भिक्षुक ने कहा कि मैंने तो उसे उठाकर नदी किनारे ही छोड़ दिया; किंतु तुम तो उसे यहाँ तक भी उठाये चले आ रहे हो। अतएव कर्म से पतित तुम हो या कि मैं? सारांश, अनासक्त भाव से किये हुए कर्म का किसी को दोष नहीं लग सकता। आसक्ति के कारण ही दुःख भोगना पड़ता है। अतएव अनासक्त होकर कर्म कीजिए।

कविता में अध्यात्म भाव का आशय, जीवन को उच्च स्तर पर पहुँचाता है। अतएव इस आध्यात्मिक साधन समारंभ में संत पुरुषों की वाणी ही अध्यात्म का सन्देश दे सकती है। आशा है आप अवश्य संत साहित्य से लाभ उठावेंगे।

अंत में बन्धुद्वय ने कविता पाठ किया और भजन सुनाया। और दिल्ली के दुर्गाप्रसाद जी ने "कल्पवृक्ष" के लेखों से प्राप्त स्फूर्ति एवं लाभ का वर्णन किया और अपने जीवन में जो अद्भुत परिवर्तन हुए, वह सुनाकर अपूर्व आनन्द प्राप्त करने का भाव व्यक्त किया।

इसके बाद स्वामी प्रकाशानन्द जी ने "अद्वैत-भावना" पर महत्वपूर्ण उपदेश देते हुए कहा कि 'जो मनुष्य ईश्वर-प्रेम में अपनी हस्ती को मिटा देता है, वही उस ईश्वरीय आनन्द को पा सकता है।' इसके बाद आपने वेदों के व्यापकरूप एवं उनके अंग-उपाङ्ग का ज्ञातव्य परिचय दिया। साथ ही आपने मेधावी बुद्धि या विशेष बुद्धि का महत्व बताकर ऐसे व्यक्तियों की पंचतत्वों पर सत्ता चला सकने का रहस्य बताया। और 'यां मेधां में देवगणाः पितरश्चोपासते' की भावना का अर्थ समझाया।

अन्त में श्री शालिग्राम जी के मधुर संगीत के साथ द्वितीय दिवस का कार्यक्रम समाप्त हुआ।

तृतीय-दिवस

आज भी श्री शालिग्राम जी के मधुर भजन में कार्यारम्भ हुआ। प्रातःकालीन उपासना के बाद डॉ० नागर ने "मृत्योर्मा अमृतं गमय" की भावना पढ़कर सुनाई। साथ ही गत दो दिनों की भावनाओं को भी संक्षेप में दोहराया। तत्पश्चात् नीमाड़ के सन्त श्री रामलालजी पहाड़ा ने अपने भावपूर्ण एवं ज्ञान गम्भीर प्रवचन द्वारा

ध्यानयोग

का रहस्य समझाया। प्रारम्भ में "गणानान्त्वा गणपति" मन्त्र की व्याख्या करते हुए आपने बताया कि इस मन्त्र में ऋषियों ने एक बात मनन करने को कही है। मनुष्य पार्थिव पदार्थों से प्रायः अधिक सम्बन्ध रखता है। 'क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा। पंचरचित यह मनुज सरीरा।' क्योंकि पंचतत्वों से उसका शरीर बना हुआ है। अतः जब तक भूर्लोक में यह शरीर विद्यमान है तब तक हमें नीचे के विचारों में रहना है। अर्थात् भूर्लोक से सम्बन्ध रहने के कारण यहाँ की बातों की जानकारी उसके लिए आवश्यक हो जाती है। भुवर्लोक में रहते हुए मनुष्य के मन में लोकैषणा, वित्तैषणा पुत्रैषणा आदि की भावनाएँ बराबर अवश्य बनी रहेंगी। किंतु यदि स्वर लोक में भी ये बनी रहें और वह सतत इनका चिंतन करता रहे तो उसका नाश हो जायगा। अतएव इस धारा को बदलने की आवश्यकता है। इसके लिए प्रत्येक को निश्चय करना चाहिए। इसके लिए हमें आत्मा का ज्ञान प्राप्त करना उचित है। यहाँ प्रश्न हो सकता है कि 'आत्मा क्या है?' आत्मा व्यापक आत्मा है। सूर्य भी विश्व की आत्मा है (सूर्य आत्मा जगत स्तस्थुषश्च) सूर्य प्राणिमात्र में चैतन्य का संचार करता है। उसके निकलने तक हम निश्चेष्ट पड़े रहते हैं। इस प्रकार चैतन्य और व्यापक तत्व ही आत्मा कहा जा सकता है। उस आत्मा की प्राप्ति के लिए भगवान् ने गीता में कहा है "ध्यानेना-त्मनिविन्देत्" अर्थात् ध्यान के द्वारा ही आत्म ज्ञान हो सकता है। महाकवि [illegible] ने "भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धा विश्वासरूपिणौ" के रूप में श्रद्धा और विश्वास के बल पर 'भवानी-शंकर' रूप आत्मा की प्राप्ति का उपाय बतलाया है। इसके लिए हमें दृढ़ निश्चय करना चाहिए।

मंत्रद्रष्टा ऋषियों ने उसे देखने का निश्चय किया और मेधाविनी बुद्धि की आवश्यकता अनुभव की। क्योंकि मेधा में निश्चय होने पर ही वह दिखाई देता है। अतएव हमें ध्यान करने या बुद्धि में निश्चय करने की आवश्यकता है। क्योंकि भूर्लोक से हमारा सम्बन्ध है, अतएव हमें अवश्य दृढ़ निश्चय करना चाहिए। निश्चय का अर्थ है हमें वास्तविक वस्तु का ध्यान होना। यथार्थ में वस्तु तत्व एक ही है; किंतु ध्यान भिन्न भिन्न रहने से देखने में अन्तर हो जाता है। क्योंकि "जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी" वास्तव में प्रभु एक है; किंतु वह चित्तवृत्ति की भावना के अनुसार भिन्न दीखता है। अतएव उस भावना को सुधारने के लिए सविता-देवता की उपासना की जाती है। क्योंकि वह सूर्य ही हमारे अन्दर के दुरित-पापों को दूर कर सकता है। अर्थात् सूर्य के सम्मुख बैठने से वह दुरित-पाप तो दूर करेगा ही, तुम्हें उसका अनुभव कैसे हो! उसकी एक शक्ति हमारे शरीर में काम कर रही है। वह श्वासोच्छ्वास के रूप में—चन्द्र सूर्य के रूप में दिन रात काम कर रही है। अर्थात दायें-बायें नासापुट से श्वास लेने और छोड़ने से ही हमारी जीवन-रक्षा हो रही है। इस प्रकार हम सूर्य से शक्ति का [illegible] शक्ति संपादन कर रहे हैं; आत्मतत्व से [illegible] हो रहे हैं।

उस आत्मतत्व के ध्यान के लिए हमें [illegible] शक्ति को संचलित करनी होगी। जब हम [illegible]

से समस्त पदार्थों को देखते हैं तो उनके परमाणु हमारे चक्षुओं से टकराते हैं और वहाँ संचित होने पर वे उन्हें प्रस्फुटित कर आदान-प्रदान करते हैं। अतएव ध्यान करने के लिए भूलोक में रहते हुए स्थूल-भौतिक पदार्थ को सामने रखना होगा। इसलिए हमारे यहाँ इष्ट देव की मूर्ति सामने रखने का विधान है। इस युक्ति में यह बात है कि जब मूर्ति का आकार रहता है तो हमें उसका ध्यान करने में सुगमता होती है—सहायता मिलती है। अतएव जैसे जैसे देवता की मूर्ति के परमाणु हमारे नेत्रों में प्रविष्ट होंगे वैसे वैसे उसका रूप हमारे मस्तिष्क अथवा हृदय में दृढ़ होता जाने से चित्त एकाग्र होने लगेगा। किंतु उसका ध्यान करते हुए अपने आप को भूलकर अंधकार में पड़ा हुआ मानना होगा और उस दशा में प्रकाश की आवश्यकता अनुभव होगी। इसीलिए जब तुम आँखे मूँद कर स्वयं अंधकार में हो जाओगे; तभी तुम प्रकाश पाने को उत्सुक होगे। क्योंकि आत्मा को अंधकार में रहने से संतोष नहीं होता। अर्थात् भगवान् का अंश होने से वह स्वयं प्रकाश स्वरूप है। "वेदाऽहमेतं पुरुषं महान्तम् आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्" के अनुसार वह आदित्यवर्ण है। इस प्रकार वहिरंग से हटने पर ही मनुष्य अंतरंग में प्रवेश कर सकता है। प्रकाश से भीतर की ओर अंधकार में जाने पर ही वह वहाँ की वस्तुओं को टटोलने लगता है। इस प्रकार जब अंतर में प्रकाश होगा, तभी आत्मतत्व के दर्शन हो सकेंगे।

ध्यान के लिए पहले हमें इष्टमूर्ति के आस पास प्रकाश, पुष्प या गऊ (दत्तात्रेय के ध्यान में) की कल्पना करके सर्व प्रथम मूर्ति के चरण से उसका ध्यान आरंभ करना चाहिए और क्रमशः उसके पाताम्बर वक्षस्थल एवं मुखाकृति शिरोभाग तक का ध्यान करना उचित है। र्थात् नीचे से ऊपर की ओर ध्यान करना ाहिए, तभी ध्यान सर्वांगपूर्ण एवं ठीक से होगा। किंतु यह स्मरण रखो कि, जिसे तुम दत्तात्रेय या अन्य देवता समझे हुए हो, वास्तव में वही (मूर्ति) देवता नहीं है। क्योंकि अभी तुम मनोमय कोष में पड़े हुए हो। अर्थात् वह मूर्ति केवल तुम्हारी भावना का प्रतीक ही है। ध्यान के लिए हमारा मन अत्यंत निर्मल होना चाहिए। आँखे बन्द करके तुमने जो संचित रूप देखा है, उसी को तुमने ईश्वर बना लिया है।

बार बार अभ्यास करने से परमाणु में शोधन होगा और अंत में उसी से ज्ञान होकर तुम ज्ञानमय कोष में प्रवेश कर सकोगे। प्राण क्षण भर के लिए भी स्थिर न होते हुए भी वह हृद्देश में प्रवेश करेगा। प्राणरूपी सूर्य की क्रिया अनन्तकाल तक चलती रहती है। इसीलिए गीता में भगवान् ने बतलाया है—"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति" अर्थात् सब प्राणियों के हृदय में ईश्वर निवास करता है। उस स्थान हृदय में जीवात्मा-परमात्मा की टक्कर होती है। हम प्राण या जीवात्मा को जानने का प्रयत्न करते हैं। मन उसका निर्माण करता है और उसके द्वारा जो रूप बनता है, उसी को देखने की आवश्यकता होती है। किंतु परमात्मा का दर्शन अमोघ है; अतएव उसके दर्शन के लिए मन को निर्मल बनाने की आवश्यकता है। इसके लिए हमें 'युक्ताहार विहारस्य' के अनुसार उचित आहार का सेवन करना होगा। अन्न के सामने आने पर उसे केवल खाद्य पदार्थ ही समझते हुए ॐ तेजोऽसि शुक्रमसि०' आदि के रूप में उसमें तेज, शुक्र एवं आरोग्य एवं देवताओं के लिए प्रिय वस्तु होने की भावना करनी चाहिए। तभी वह आपके लिए हितकर होगा। इस प्रकार हमारे विचार के अनुसार निश्चय होने से ही उसका ध्यान होता है। किंतु जब तक निश्चय नहीं होता, तब तक विचार केवल विचार ही रहते हैं। किन्तु हमें अपनी विशिष्टता का केवल

विचार ही नहीं, ध्यान भी करना है। और इस ध्यान के लिए ही अध्यात्म की आवश्यकता है।

आत्मा में चैतन्य या व्यापक तत्व है, अतएव अपनी भावना को व्यापक कर दो। उसे संकुचित न रहने दो। इस प्रकार ध्यान करते रहने से अवश्य ही आत्म तत्व की प्राप्ति हो सकेगी।

हमारी दिनचर्या का आरम्भ स्नान से होता है। जहाँ तक हो सके नदी या जलाशय में ही स्नान करना चाहिए। किंतु यदि घर में भी स्नान करना पड़े तो ताम्रपात्र में जल लेकर स्नान करना चाहिए, ताम्रपात्र की बड़ी महिमा कही गई है। उसमें जन्तुनाशक विद्युत तत्व रहता है। इसी लिए हमारे यहाँ स्नान के लिए काम में लाये जाने वाले ताम्रपात्र का नाम 'गङ्गालय' रखा गया है। अर्थात उसमें जल भरकर स्नान करते समय उसे गङ्गा का आलय (मंदिर) मानकर उस जल में 'गंगेच यमुनेचैव' इत्यादि श्लोक बोलकर भारत की समस्त पुण्य सरिताओं की कल्पना करनी चाहिए। इस प्रकार व्यापक ध्यान करते हुए उस व्यापक तत्व को बाहर लाने का प्रयत्न करो। साथ ही 'भुक्ति च मुक्ति च ददासि नित्यं' के अनुसार (भावना से अनुरूप) हमें भुक्ति या मुक्ति की प्राप्ति होगी।

इसी प्रकार सत्संग का सेवन करना भी हमारा प्रधान कर्तव्य होना चाहिए। क्योंकि, दीप सिखा सम युवति जन, मन जनि होसि पतंग। काम क्रोध मद लोभ, तजकर दृढ़ सतसंग॥

सांसारिक माया मोह में न फँसकर समस्त विकारों को छोड़ते हुए सत्संग करना ही श्रेयस्कर है।

हमारे यहाँ नित्य संध्योपासन का नियम रखा गया है। सन्ध्या में तीन बातें होती हैं, अंग स्पर्श, मार्जन और ध्यान। हम वाक् वाक, प्राणः-प्राणः कहकर जिन जिन अङ्गों को स्पर्श करें, उनमें उस शक्ति का प्राप्त होने की भी दृढ़ भावना करनी चाहिए। इसमें प्रत्येक शब्द को दो बार कहने का आशय यही है कि साधक में इस बात का ध्यान (अनुभव) रहे कि हमारे नेत्रों में ज्योति है, पाँवों में चलने की शक्ति है, हाथों में कार्य करने की शक्ति है, इस प्रकार प्रत्येक इन्द्रिय के क्रियाशील होने का अनुभव करना चाहिए। सारांश, सन्ध्या मन्त्र के अनुसार इस क्रिया में सम्यक् (सम्पूर्ण) ध्यान की साधना करनी चाहिए। अर्थात् ध्यान का हमारे जीवन से दैनिक सम्बन्ध रहता है। अतएव ध्यान के लिए चित्त को निर्मल बनाकर एकाग्र भाव से अंतर में प्रकाशमयी ज्योति का ध्यान करना ही सब प्रकार उचित कहा जा सकता है और इसी से आत्मतत्व की प्राप्ति हो सकेगी।

वेदों का स्वाध्याय कीजिए

इस प्रवचन के पश्चात् श्री उदय जी ने वेदों के अध्ययन की ओर ध्यान देकर आकर्षित करते हुए बतलाया कि आज कल स्वाध्याय के लिए सहज सुलभ ग्रंथों की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है। और वेद शास्त्रादि की ओर से उपेक्षा की जाती है। इस सम्बन्ध में आपने सर्वतन्त्र स्वतन्त्र, श्री १०८ दण्डी स्वामी श्री विश्वेश्वरानन्द जी का एक लेख पढ़कर वेदादि के अध्ययन की परमावश्यकता प्रतिपादित की। और बताया कि दण्डी स्वामी हमारे धर्म के राजा हैं; अतएव वैदिक धर्म की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए। क्योंकि परमात्मा ने अपने अमृत पुत्रों को कल्याण का मार्ग वेदों के द्वारा ही बतलाया है। अतएव साधन में कठिन मार्ग छोड़कर सरल मार्ग ग्रहण करना भूल है। किन्तु जो उसे कठिन कहते हैं वे भी भूल करते हैं। परमात्मा हमें सँभालना चाहता है। वेदों के द्वारा उसने हमारे सामने ज्ञान और साधन दोनों को उपस्थित कर दिया है। वेदोक्त साधना सुलभ साधन है।

दैनिक पद्धति में ध्यान का नम्बर सातवाँ है। अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार और धारणा के बाद ध्यान किया जाता है। योग परमात्मा के दर्शन का वैज्ञानिक साधन है। किन्तु साधकगण पहली दो सीढ़ियाँ यम-नियम को छोड़कर आसन से आरम्भ करते हैं; इसी से शीघ्र सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। हमें पहली सीढ़ी से क्रमशः आगे बढ़कर ध्यान करना चाहिए। किन्तु ध्यान के लिए भी ज्ञान (जान) करके ही कर्म करना चाहिए। अर्थात् दैनिक स्वाध्याय में वेदों को प्रथम स्थान देना चाहिए, बाद में अन्य ग्रन्थों को देखना चाहिए। हमारे ऋषि गण भी पहले वेदों का ही अध्ययन करते थे। वेदों के अध्ययन से अन्य ग्रन्थ उसके सम्मुख तुच्छ सिद्ध हो जायँगे। उनमें आप भूल भी निकाल सकेंगे। परमात्मा ने वेदों के द्वारा अपने को जाना जा सकने की बात कही है। गीता में "वेदान्त कृत् वेदविदेव चाऽहम्" कहकर वेद की ही महत्ता बताई है।

सामाजिक नियमों का पालन करना ही 'यम' है। इसके बाद अपनी ओर आने पर अपने पालन के लिए 'नियम' हैं। स्वाध्याय की कमजोरी से ही सब काम सफल होते हैं। इसलिए कहा है—"स्वाध्यायादिष्ट देवता स प्रयोगः" स्वाध्याय से ही इष्टदेवता की सिद्धि हो सकती है। अतएव यम-नियम का पालन करते हुए ही स्वाध्याय कीजिए। यम नियम के बाद आसन की साधना है। आसन के द्वारा शरीरस्थ व्याधियों को दूर करके ऐसा आसन लगाइए कि जो स्थिरता से ध्यान करने में सहायक हो सके। हमें गीता के अनुसार बुद्धि-योग प्राप्त करना चाहिए। भगवान् ने भी 'ददामि बुद्धियोगंत्वं' के रूप में अर्जुन को बुद्धि-योग ही दिया था। किन्तु हमारे पास जो कुछ भी है वह विषय है; अतएव 'समत्व योग उच्यते' के अनुसार 'समता' प्राप्त करने को ही योग कहा जा सकता है। अभी तो हमारे जीवन में विषय योग ही चल रहा है। जिस प्रकार किसी बकरी के सामने सिंह को खड़ा करके यदि उस (बकरी) को बहुत कुछ खाने को दिया जाय, तो वह कुछ भी नहीं खा सकेगी। इसी प्रकार समत्व की आवश्यकता है। पंचक्लेश के निवारणार्थ ही भगवान् ने गीता में योग विद्या का उपदेश दिया है। सारांश, गीता योगशास्त्र है; उसके अनुसार चलने से हम जीवन में अवश्य सफल हो सकते हैं।"

इस प्रवचन के पश्चात् संयमशाला में भी सत्यात्मा ने साधकों को व्यायाम की क्रियाएँ सिखाकर हास्य के लाभ बताये और शुष्क हास्य का अभ्यास कराया। साथ ही आहार-विहार के विषय में उचित परामर्श दिया। श्री स्वामी नारायणप्रकाशजी ने भी यौगिक-क्रियाएँ करके दिखलाईं और यह कार्यक्रम १० बजे सम्पन्न हुआ, तत्पश्चात् यथाविधि दैनिक अग्निहोत्र हो जाने पर डॉ० उदयभानुजी (मानस चिकित्सक, इन्दौर) ने सारगर्भित भाषण देते हुए

यज्ञ की उपयोगिता

पर प्रकाश डाला। आपने बताया कि आज कल कुछ वेदों के मर्मज्ञ कहे जानेवाले एव कर्मकाण्ड के अविचारपूर्ण अनुयायी तथा महा पंडित राहुल सांकृत्यायन जैसे लोग इस बात का जोरों से प्रतिवादन करने लगे हैं कि वेदों में यज्ञ के समय पशु-वध करके उसकी आहुति देने का विधान मिलता है; और पूर्वकाल में यज्ञ के लिए पशु-वध होता था। किन्तु इस विषय में विरोधी पक्ष का कथन यह है कि वह पशु-वध नहीं, वरन् रूपक के द्वारा आत्मनिग्रह आदि का ही विधान होना चाहिए। क्योंकि भारतीय ऋषि-मुनि जोकि अहिंसा के प्रतिपादक थे, किसी प्रकार भी, अजा, अश्व या गौ आदि पशुओं को मारकर उनकी आहुति से यज्ञनारायण को घृणित स्वरूप देनेवाले नहीं हो सकते। यदि पशुओं के नाम का शाब्दिक के अर्थ ही लिया जाय

तो 'नरमेध' में क्या मनुष्य का वध करके उसकी आहुति दी जा सकती थी? कदापि नहीं। अतएव श्री सातवलेकर जी ने इस विषय में जो ग्रन्थ प्रकाशित कर इन यज्ञों का यथार्थ स्वरूप प्रकट किया है, उसका प्रचार होना आवश्यक है और इस अनावश्यक सिद्धान्त का जोरों से विरोध करके तुरन्त इसकी रोक की जानी चाहिए।

साथ ही आपने यह भी बताया कि पूर्व काल में अर्थात् बौद्धकाल से पूर्व जब मानव समाज में सब प्रकार की इच्छाओं की पूर्ति केवल यज्ञ के द्वारा हो सकने की भावना प्रबल हो गई थी; तभी से लोगो ने आवश्यक कर्तव्य-कर्म एवं धार्मिक अनुष्ठान छोड़कर केवल यज्ञ या हवन को ही प्रधानता दे दी और इस प्रकार उसका प्रचार बढ़ने से समाज में अकर्मण्यता फैल गई। अतः उपनिषदों में इसका विरोध किया गया। इसी प्रकार बौद्धधर्म वालों ने भी हिंसा के विरोध की दृष्टि से यज्ञ-खण्डन किया था। ऐसी दशा में यज्ञ से विमुख हो जाने वालों को उसका वास्तविक अर्थ बतलाना आवश्यक हो गया। अर्थात्— विवेकशील पुरुषों ने बतलाया कि 'यज्ञ का आशय निःस्वार्थ भाव से किया हुआ शुभकर्म ही हो सकता है।' इसी प्रकार दैनिक उपासना के अंगभूत हवन या अग्निहोत्र में जो आहुति दी जाती है, वह विश्व-कल्याण की भावना से ही दी जानी चाहिए और उसमें घृत यव-तिल, एव सुगन्धित पदार्थों का ही उपयोग किया जाना चाहिए जिससे कि वातावरण शुद्ध होकर वह स्वास्थ्यवर्धक भी हो सके।

अग्नि के पास बैठकर जो तप जाता है, वह उसका लोक हित के लिए ही शुभ कर्म होता है। इसी प्रकार तप के द्वारा कष्ट सहन का भी अभ्यास किया जाता है। यज्ञ के साथ ही दान भी होना चाहिए। क्योंकि यज्ञ, दान और तप ये तीनों ही मानव-प्राणियों को पवित्र करनेवाले सत्कर्म कहे गये हैं। भारतीय सस्कृति में दान का विशेष स्थान है। साथ ही यह त्याग वृद्धि का परिचायक भी होता है।

जिस प्रकार वृक्ष को पत्थर मारने से वह फल देता है, उसी प्रकार एक लड़के द्वारा भूल से वृक्ष पर फेंका हुआ पत्थर राजा के लग जाने पर तथा उसके पूछने पर यथार्थ रहस्य ज्ञात होने से राजा ने उसे जागीर दी और बतलाया कि लड़के ने जिस इच्छा से कर्म किया था उसका फल उसे मिलना ही चाहिए।

सारांश, यज्ञ के द्वारा मानव प्राणी को त्याग का उपदेश मिलता है कि वह दूसरों के लिए इस रूप में शुभकर्म करे। साथ ही हमें इस बात का भी विचार करना होगा कि पूर्व काल में यज्ञ में हिंसा होती भी हो; तो भी हम आज किस स्थिति में हैं? चाहे हम चाहे जो भी रहे हों? पुरानी, पचड़ों बातों को प्रश्न कीजिए। (यहाँ आपने विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षार्थ दशरथ से राम के माँगे जाने का उदाहरण बतलाकर अपने विषय का उत्तमता से प्रतिपादन किया।)

शोक प्रकाशन

आध्यात्मिक मण्डल की मोहोर केण्ट शाखा के उपचारक बाबू शिखरचन्द जी जैन का देहावसान हो गया। बाबूजी, सन्त नागरजी के बहुत पुराने प्रेमी और उत्साही सहयोगी थे।

कार्यालय मे सायंकालिक सामूहिक रूप मे दिवंगत आत्मा की शान्ति के लिए प्रार्थना की गई। शोकग्रस्त परिवार के साथ कल्पवृक्ष की सहृदय सहानुभूति है।

मानसिक चिकित्सा

तीसरे पहर इन्दौर के प्रसिद्ध मानसोपचारक डॉ० उदयभानुजी ने "मानस चिकित्सा" पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा 'एक बार मानपुर के मिलिट्री कैम्प के एक अधिकारी ने भूत देखने के बहाने रात को अंधेरे में एक सफेद रंग के वृक्ष को भूत समझकर गोलियाँ चलाईं और दूसरे दिन जब उनका भ्रम दूर कर दिया तब उनको अपने मन की कल्पना से निर्मित भूत की भावना का भेद समझ में आ सका। इसी प्रकार एक बार भय के भूत से डरकर एक मनुष्य पानी में गिर पड़ा और लोगों ने उसका सम्बन्ध भूत से जोड़कर एक घटना खड़ी कर दी। ऐसे और भी कई उदाहरण दिये जा सकते हैं। अतः यह सिद्ध होता है कि मन का शरीर पर काफी प्रभाव पड़ता है। अतएव मन की स्थिति बदल दी जाय तो बहुत सी व्याधियाँ दूर हो सकती हैं।

एक सिनेमा प्रेमी नवयुवक एक लड़की के प्रेम में पागल सा हो गया और उसके प्राप्त न होने पर वह आत्मघात करने को उद्यत हो गया। किन्तु उसे जब ठीक ढंग से समझाया गया तो वह अपने पागलपन से विरत हो सका। उसे बताया गया कि तुम्हारा यह प्रयत्न बलिदान या आत्म त्याग नहीं वरन् आत्मघात ही कहा जा सकता है। आत्मत्याग तो प्रतिद्वन्द्वी से लड़कर मरने पर ही हो सकता था। इस प्रकार दुनिया को तथा अपने आपको भी धोखा दिया जाता है।

शरीर के रोगों पर मन का प्रभाव पड़ता है। और मन की बीमारियों का इलाज भी मन ही से हो सकता है। उसी का नाम मानसिक उपचार है। मन के रोग उत्पन्न होने के अनेक कारण हो सकते हैं। उनमें मुख्य कारण यह है कि दुनिया में रहते हुए हम अपनी आवश्यकताओं को बेहिसाब बढ़ाते हैं। किन्तु पैसा पास में न होने पर आवश्यकताएँ बढ़ाने से मुसीबत खड़ी हो जाती है। २५ वर्ष पहले एक ग्रामीण युवक की जो सामान्य दिनचर्या थी, उसके अनुसार वह खूब दूध-घी (मक्खन) खाता था, जब कि आज 'सपरेटा' दूध मिलता है। जिसे पीकर कभी कोई स्वस्थ नहीं रह सकता। इसी प्रकार आज कल सब लोगों के समान होने का सिद्धान्त प्रचलित हो रहा है, किन्तु अभी तक भी इसका मर्म समझ में नहीं आ सका। हाँ मत देने के समय सब समान हो सकते हैं, किन्तु समानता का आज का रूप तो कदापि उचित नहीं कहा जा सकता। पहले लड़का घरवालों की सब बातें सुनता था; किन्तु आज तो वह अपने को डेढ़ अक्लवाला मानकर दूसरों को मूर्ख समझता है। इस प्रकार समानता की लहर और अपने को सर्वश्रेष्ठ मानने की भावना, इन्हीं दो कारणों से समाज में मानसिक उथल-पुथल मच गई है।

मैं अमेरिका वालों के विचारों से प्रभावित होता हूँ कि वे सब को समान समझते हैं। किन्तु उनके यहाँ भी एटमबम् जैसे घातक अस्त्र बनाकर मानवता के नाश का ही प्रयत्न किया जाता है; जन कल्याण के लिए प्रयत्न करने की ओर आज किसी का भी ध्यान नहीं जा रहा है। संसार से परमात्मा की शक्ति समाप्त हो गई है। यही कारण है कि मुसीबत आने पर दिमाग फेल हो जाता है। यही मानसिक रोग का प्रधान कारण है।

भारत के विधान में एक त्रुटि है। उसमें भारत के धर्म रहित राज्य की जो व्याख्या दी गई है, वह लोगों को भ्रम में डालने वाली है। इसलिए उसका स्पष्टीकरण हो जाना परमावश्यक है। अमेरिकावासी आर्थिक दृष्टि से संपन्न होने पर भी दुखी हैं। क्योंकि पैसे से कभी कोई सुखी नहीं हो सकता। इसी कारण

अमेरिका में मानसिक रोगों का प्रमाण बढ़ा हुआ है। इसका कारण उनमें धार्मिक भावना का सर्वथा अभाव ही हो सकता है। क्योंकि धर्म जीवन के लिए परमावश्यक बताया गया है। इसी प्रकार मानसिक रोगों के लिए भी धर्म की परमावश्यकता है। मन के भीतर कई शक्तियाँ गुप्त हैं—छिपी हुई है। उन शक्तियों को विचारों द्वारा जब तक प्रकट नहीं की जायँगी, तब तक वह गरीब ही बना रहेगा। इसीलिए वेद में कहा गया है—तन्मे मनः शिव सङ्कल्पमस्तु" अर्थात हमारे मन में सदैव शुभ सकल्प ही होने चाहिए।

मानसिक-शास्त्र पाश्चात्य नहीं भारतीय है। आप लोग यज्ञ की भावना को जीवन से संलग्न कर दीजिए। 'आयुर्यज्ञेन कल्पताम्' अर्थात् जीवन की यज्ञ के रूप में कल्पना कीजिए। इसी प्रकार विवाह के समय वर-वधू की प्रतिज्ञाएँ एवं वीर संतान की जननी बनाने विषयक भावनाएँ भी भारतीय संस्कृति की उदात्तता को सूचित करती हैं। रावण द्वारा सीताजी को डिगाने के लिए विद्युत् जिव्ह से राम का कृत्रिम मुख और धनुष्य बाण बनवाकर दिखाने पर भी कोई असर नहीं हुआ। सीता ने बराबर यही उत्तर दिया कि बिना राम के सीता जीवित ही नहीं रह सकती। क्योंकि राम मनुष्यता के उपासक हैं, जब कि रावण सुन्दरता का उपासक है। किंतु सुन्दरता के उपासक की भावना को मानवता का उपासक खत्म कर देता है। दोनों में मन की विभिन्नता ही देखने में आती है। इस कथानक में मन की वृत्तियाँ बताई गई हैं।

मन दो मार्गों पर जाता है—अच्छे या बुरे। किंतु मुसीबत के आने पर मनुष्य का दिमाग फेल हो जाता है। क्योंकि मनुष्य की शक्तियाँ सीमित हैं। मन को शक्ति देनवाला एकमात्र परमात्मा है अतएव उसकी उपासना करो। परमात्मा की प्रार्थना करते हुए कहा गया है—"यः आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते।" अर्थात् वह परमात्मा ही आत्मा और बल का देने वाला है और उसी की सम्पूर्ण विश्व उपासना करता है।

इन्दौर में एक मानसिक रोगी को डॉक्टरों ने 'क्षय' बतला दिया किन्तु मैंने दूसरे योग्य डॉक्टर से जँचवाकर बाहर उसे प्रसन्न कर दिया और आज वह आनन्द से जीवन व्यतीत कर रहा है। अतएव साधारण से रोग में डॉक्टरों की अधूरी जाँच के आधार पर अपने मन में कोई भयंकर शंका नहीं कर लेना चाहिए। परमात्मा में मन लगाने वाला अपूर्व बल का स्रोत प्राप्त कर सकेगा। आज कल पाश्चात्यों के लिखे हुए इतिहास को पढ़कर मनुष्य अपने को कमजोर अनुभव करता और हीनता की भावना मन में लाता है। यदि मनुष्य का मन केवल रोटी में लग जायगा तो वह संसार में दूसरों का भला नहीं कर सकेगा। देश में से हीनता की भावना दूर करने का उपाय वेदों का अध्ययन है। इसके द्वारा ही मनुष्य के मन में गौरव की भावना उत्पन्न हो सकता है। जिसमें गौरव का भाव नहीं होगा, वह हीनता की भावना कैसे दूर कर सकता है। प्रत्येक मन में इस बात का गौरव होना आवश्यक है कि उसने जीवन में कोई लोक हित का काम किया है। ऐसा होने पर ही जीवन को सार्थक करने की भावना उत्पन्न होगी।

शरीर में रोग की भावना उत्पन्न होने पर मन को उधर ध्यान देना चाहिए। मनुष्य भगवान् की दी हुई सुन्दरता को देखकर अपने में [illegible] कर सकता है। किन्तु भारत के नव शिक्षित पाश्चात्य प्रवाह में पड़कर अपने आदर्शों को भूल रहे हैं। अतएव अपने मन को ईश्वर की ओर लगाओ, अपने आदर्शों को पुष्ट करने का प्रयत्न करो। जीवन में प्रेम करना सीखो। देश से अविद्या को हटाने का संकल्प करो। [illegible]

को समाप्त करने की भावना दूर कर दो। जब कभी मन में कमजोरी पैदा हो तब हृदय को बलवान् बनाने की भावना करो। 'जीव मे शरदः शतम्" सौ वर्षों तक जीने की भावना करो। मन की कमजोरी को दूर करने के लिए उसे परमात्मा में लगाओ। मन और इन्द्रियों को बलवान् बनाने का प्रयत्न करो। ऐसा करने पर ही तुम मानसिक रोगों के पंजे से छूटकर बलवान् बन सकोगे। मानसिक व्याधियों से मुक्त हो सकोगे।

इसके बाद खंभात के लल्लूभाई पंड्या ने गाँव की गीता और नरसिंह मेहता की हुंडी गाकर सुनाई।

सायंकालीन कार्यक्रम

प्रारम्भ में ॐ प्रकाश का भजन होने के पश्चात् श्री शालिग्राम जी ने "कन्हैया तुम हो जैसे नाव" शीर्षक सुमधुर भजन गाया। पश्चात् बन्धु-द्वय ने "वैष्णव जन तो ते ने कहिए" भजन गाकर सब को तन्मय कर दिया। तत्पश्चात् श्री विश्वामित्र वर्मा ने समारम्भ की सफलता के लिए बाहर से आये हुए सन्देश सुनाये। उनमें श्री राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद, उपराष्ट्रपति सर राधाकृष्णन्, मध्य भारत के प्रधान मन्त्री श्री मिश्रीलाल गङ्गवाल, प्रो० लालजी रामजी शुक्ल (बनारस) पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, वेदाचार्य, श्री आचार्य पं० नरदेव जी शास्त्री, वेदतीर्थ, श्री स्वामी विष्णु तीर्थजी आदि के अतरिक्त विदेशों से इङ्गलैंड के हेनरी थॉमस हेमलिन (८० वर्ष के वृद्ध तथा "साइंस ऑफ थॉट रीव्यू के संपादक) रिचर्ड व्हाइटवेल; युनिटी (अमेरिका) के संस्थापक फिल्मोर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। (इनके अनुवाद परिशिष्ट भाग में दिये गये हैं।)

जीवन का सदुपयोग

संदेश-पठन के पश्चात् माधव महाविद्यालय के अध्यापक श्री बद्रीनारायण जी अग्रवाल ने अपने मार्मिक-भाषण में बतलाया कि "आज यहाँ प्रार्थना में जो आनन्द प्राप्त हुआ, वह अवर्णनीय है। क्योंकि "एक घड़ी आधी घड़ी, आधी में पुनि आध। तुलसी संगति साधु की हरे कोटि अपराध ॥" के अनुसार क्षण भर का सत्संग भी समस्त पापों को दूर कर अपूर्व आनन्द प्रदान कर सकता है। आज के इस सत्संग में अभी बन्धुद्वय ने जो भजन गाया उसमें पराई पीर (कष्ट) को जानने वाला ही वैष्णव जन कहा गया है और यह भजन महात्मा गाँधी को अत्यन्त प्रिय था। और हम समारोह के संस्थापक सन्त नागरजी के जीवन का ध्येय भी पराई पीर—दूसरों के संकट को दूर करना ही रहा है। इसीलिए हमारे आपके जीवन का सदुपयोग भी तभी हो सकेगा जबकि हमारे द्वारा किसी का हितसाधन हो। इसी के लिए सत्संग और सन्तवाणी का स्वाध्याय करना चाहिए।

उत्तर भारत में रामायण का प्रचार घर घर में राजा से लेकर रङ्क तक पाया जाता है। यही वह ग्रन्थ है, जिसने भयङ्कर सङ्कट काल में भी हिन्दू धर्म को जीवित रखा है। रामायण वह अद्भुत ग्रन्थ है, जिसकी एक एक चौपाई पर घण्टों व्याख्याकर उसकी विशेषताओं पर प्रकाश डाला जा सकता है। वैसे तो रामायण में अनेक आदर्श प्रसंग वर्णित हैं किन्तु आज यहाँ जिस प्रसंग की चर्चा की जा रही है, वह है जटायु और भगवान् राम के मिलन का प्रसङ्ग। जब वनवास में भ्रमण करते हुए भगवान् राम पंचवटी में पहुँचते हैं और वहाँ अत्याचारी रावण-द्वारा कपट-वेष धारण कर सीता का हरण हो जाता है; तब उसकी खोज में राम लक्ष्मण भटकते हुए आगे बढ़ते हैं, और घायल अवस्था में उन्हें जटायु मिलता है। वह रावण से लड़ते हुए इतना घायल हो चुका है कि, दिन रात ही "सुमिरत राम चरण की रेखा"

के अनुसार बड़ी कठिनाई से अपने प्राणों की रक्षा कर रहा था। अर्थात् वह भगवान् राम को केवल यह संदेश सुनाना चाहता था कि, 'सीता माता को दुष्ट रावण हरण करके दक्षिण दिशा की ओर ले गया है। उसी ने मेरी यह गति की है और मैं केवल यह सन्देश देने के लिए ही शरीर में प्राण धारण किये हुए हूँ।' इस पर भगवान् ने उसे पिता तुल्य मानकर उचित सेवा करने के पश्चात् कहा कि 'यदि इच्छा हो तो अभी तुम प्राण रख सकते हो।' किन्तु जटायु ने इससे अधिक सुअवसर फिर प्राप्त न हो सकने के कारण भगवान् की गोद में ही प्राण त्याग कर दुर्लभ मोक्ष पद प्राप्त किया। इस प्रसंग को गोस्वामी जी ने इस अद्भुत ढङ्ग से वर्णन किया है कि उसकी एक-एक शब्द-योजना पर मुग्ध हो जाना पड़ता है। उन्होंने भक्त और भगवान् की अविचल प्रीति का सजीव चित्र सा खड़ा कर दिया है।

किन्तु इस प्रसंग से हमें और भी अनेक प्रकार की शिक्षाएँ प्राप्त हो सकती है। अर्थात् जटायु ने अपने जीवन के अंतिम क्षण तक अपने इष्टदेव के ध्यान में शरीर की सुधि भुलाकर केवल उन्हीं के दर्शन की आशा में प्राणों को रोक रखा था। इसी प्रकार साधना का भी यही लक्ष्य होना चाहिए कि चेतनाशक्ति को शरीर से हटाकर इष्ट की ओर लगा दिया जाय। तभी उसे सफलता प्राप्त होगी और भावना चरितार्थ हो सकेगी। जिस प्रकार जटायु के [illegible]र शरीर पर भगवान् राम का स्नेहयुक्त हाथ फिरते ही उसके समस्त शारीरिक कष्ट दूर हो गये उसी प्रकार हमारे संतनागर जी भी अपना स्नेह-पूर्ण हाथ फेर कर कई रोगियों को रोगमुक्त कर देते थे। उनके हृदय में परहित साधन का उज्ज्वल भावना थी।

इसी प्रकार दूसरा प्रसंग [illegible] सवाद के समान यहीं आता है, [illegible] सूर्पणखा अपने नाक कान काट दिये जाने पर खर-दूषण के पास जाकर राम लक्ष्मण की सुन्दरता का वर्णन करके उस सुन्दर नारी सीता को हरण करने की प्रेरणा करती और खर-दूषण भी प्रत्यक्ष में राम-लक्ष्मण की सुन्दरता को देखकर मुग्ध हो जाते हैं। अर्थात् वे उनसे अपनी बहिन के अपमान का बदला लेना भूलकर उनकी सुन्दरता को देखते नहीं अघाते, और रण में लड़ते हुए उस दिव्य मूर्ति का दर्शन कर देह-मुक्त हो जाते हैं।

इस प्रकार रामायण में भगवान् राम का अवतार "जनरंजन भंजन महिभार" के अनुसार पर हित साधन या लोक कल्याण के ही लिए हुआ था और इससे हमें यही शिक्षा मिलती है कि "परहित बस जिनके मन मांही। तिन कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥' [illegible] लोक कल्याण या परहित साधन अथवा निःस्वार्थ सेवा में ही जीवन की सफलता है।

आपके बाद प्रसिद्ध जन सेवक एवं [illegible] थियोसोफिकल सोसायटी के [illegible] पं० चाँद नारायण जी साहब [illegible] ने अपनी ओजस्वी वाणी में बतलाया कि—

जीवन कैसे बिताया जाय ?

हम एक यात्रा कर रहे हैं; किन्तु हम नहीं जानते कि हम कहाँ जा रहे हैं ! किन्तु मैं आपको जीवन के घाट पर ले जाना चाहता हूँ। मनुष्य को मरना तो एक दिन है ही, अतः उसकी चिन्ता छोड़कर वर्तमान में क्या हो रहा है, इसी पर हमें विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। हम लोग ख़ुदगर्ज़ी से जीना चाहते हैं। मैं निःस्वार्थ सेवा का उपदेश नहीं देता। किन्तु यथार्थ में यदि देखा जाय तो हम दिन भर में अपने स्वार्थ या हित के लिए कौन सा काम करते हैं ? दिन भर व्यसनों के फेर में रहकर जहाँ स्वास्थ्य की हानि करते हैं वहीं विषयों के सेवन-द्वारा जीवनी शक्ति को भी क्षीण कर डालते हैं, फिर भी इन सब कामों को हम अपनी इच्छापूर्ति या स्वार्थ का काम समझते हैं, यह कितनी भूलभरी धारणा है ? अर्थात् आप अपने लिए, स्वार्थ के लिए कौन सा काम करते हैं ? कुछ भी तो नहीं; जितने भी काम करते हैं वे सभी स्वार्थ को हानि पहुँचाने वाले होते हैं। ऐसी दशा में जो स्वार्थी जीवन बिताना भी नहीं जानता, वह निःस्वार्थी जीवन कैसे बिता सकेगा ?

वर्तमान समय में हमारी दशा यह है कि हम अपने बच्चों के विषय में भी नहीं जानते कि वह क्या पढ़ रहा है, कैसे पढ़ रहा है और किस प्रकार जीवन में आगे बढ़ रहा है। मैं जानता हूँ कि आप अवश्य अपने बच्चे को बी० ए०, एल-एल० बी० बनाना चाहते हैं, किन्तु आप में से शायद कोई भी बच्चों की ओर जितना ध्यान देना चाहिए, कभी नहीं देता। यदि लड़कों की बात छोड़ भी दी जाय तो आप अपने स्वास्थ्य की ओर कितना ध्यान देते हैं ? न आपके खान-पान में संयम है न रहन सहन या जीवन-क्रम में ही। अर्थात् सभी बातों में आप मनमानी करते हुए प्रकृति के विरुद्ध जीवन बिताकर दिन-रात रोग-शोक से कष्ट पा रहे हैं; किन्तु फिर भी आप ठीक रास्ते पर आने का प्रयत्न नहीं करते; यह कितने आश्चर्य की बात है ? आपको अपने चरित्र की रक्षा पर ध्यान देना चाहिए। क्योंकि चरित्र जिसके हाथ में है, उसी का जीवन सफल हो सकता है। जिस प्रकार आप अपने घर की सफाई का प्रबन्ध करते हैं, उसी प्रकार आपको अपने आस-पास की गन्दगी को दूर करने पर भी ध्यान देना चाहिए; नहीं तो आपकी सफाई की कोई कीमत नहीं हो सकेगी। क्योंकि वह गन्दगी आपके जीवन पर भी प्रभाव डाले बिना नहीं रहेगी। सारांश, आप यदि ख़ुदगर्ज़ी का जीवन बिताने का निश्चय करेंगे, तो उसी के साथ साथ आपका ध्यान आस-पास की दशा सुधारने की ओर भी अवश्य जायगा।

सच पूछा जाय तो लोग आहार-विहार के साथ-साथ विचार की दृष्टि से भी ठीक ढंग पर जीवन नहीं बिता रहे हैं। क्योंकि केवल स्वार्थी जीवन बिताने के लिए भी कितने साधन और सामग्री की आवश्यकता है ? आप आम का बीज बोने पर आम का फल पा सकेंगे। और बबूल के बीज बोने पर काँटे पा सकेंगे यदि सचमुच में यह जीवन अच्छा है, तो बारहों महीने क्यों उसे नहीं अपनाते ? क्योंकि थोड़े ही दिनों में उससे जी ऊब जाता है और आप उसमें फेर-फार करने को उतावले हो जाते हैं ? इसका मतलब यही है कि हम जहाँ हैं, वहाँ हमारे विचार नहीं हैं। इसीलिए एकाग्रता न होने से हमें कोई लाभ नहीं पहुँच पाता। अतएव मनोवृत्ति को केन्द्रित करने की परम आवश्यकता है। यदि हम चाहें तो अपनी प्रबल विचारशक्ति के द्वारा संसार को हिला सकते हैं। किन्तु सोचना चाहिए कि हम कर क्या रहे हैं ? अर्थात् सच्चे मन से हमारे द्वारा कौन सा काम हो रहा है ? यदि आप इस पर जरा भी गम्भीरता से ध्यान देंगे तो आपको

अपनी भूल का पता लग सकेगा और आप जीवन को ठीक ढङ्ग से बिताने लग जायँगे।

मैं आशावादी मनुष्य हूँ। कहने को हम मौत से डरते हैं, परन्तु सच्चे अर्थों में उससे नहीं डरते। सभी को मौत से डर लगता है, और सङ्कट आने पर, परमात्मा से मौत की याचना भी करते हैं, किन्तु सचमुच ही जब मौत सामने आ खड़ी होती है, तब उससे डरकर दूर भागते हैं। सच्ची जिन्दगी बिताने को सबक यदि लेना है तो स्वामी रामतीर्थ से लो। उन्होंने जिस मस्ती और आजादी की जिन्दगी बिताई और जिस तरह में दिन रात एक अजीब सी खुदमस्ती में रहते थे वह विरलों को ही नसीब हो सकती है। फिर भी उनके रास्ते पर चलने से हम आप जरूर आज की इस ज़लील जिन्दगी से बचकर ठीक रास्ते पर आ सकते हैं। वे कहा करते थेः—खुदा का मतलब है 'खुद-आ' यानी तुम खुद अपने सही रास्ते पर आ जाओ तो तुम भी खुदा बन सकते हो। यही जीवन बिताने का सच्चा रास्ता हो सकता है और यही यहाँ आप लोगों के आने का उद्देश्य भी होना चाहिए। अब आप खुद सोचें कि आप किस तरफ जा रहे हैं?"

इसके बाद आपने "हम नन्हें-नन्हें वीर चले" शीर्षक कविता सबसे कहलवाई। इसके पश्चात् स्वामी श्री प्रीतमदास जी ने अपनी ओजस्वी वाणी में—

"नाम-स्मरण"

का महत्व बतलाते हुए "कबीर वाणी" के द्वारा उपदेश दिया। आपने बतलाया कि मरने से पहले मरना और जीते हुए मरना क्या है? अर्थात् अपने देह सम्बन्धी अभिमानों को त्याग देना ही एक प्रकार से ऐहिक मरण कहला सकता है। आत्मा की जीभ से—माला से नहीं—उस अविनाशी का स्मरण करो। क्योंकि 'कर नयनों दीदार महल में प्यारा है!' हमारे शरीररूपी महल में ही प्यारा मौजूद है। वह हमसे बहुत नजदीक है। इसलिए उसे [illegible] आत्मा की जबान से उसका [illegible]। इसके लिए काम, क्रोध आदि जितने भी विकार हैं उनको त्याग दो। यदि [illegible] में [illegible] का वास है तो [illegible] अवश्य प्राप्त होगा, लेकिन अगर हृदय दूसरे को दे रखा है तो आप [illegible] धोखे में ही रहोगे। इसलिए [illegible] होकर त्रिकुटी में उस अनादि का ध्यान करिए। नेती, धोती आदि क्रियाओं का यथार्थ [illegible] क्या है? जितने भी देवी देवता हैं वे सब [illegible] चक्रों में ही वास करते हैं। किन्तु इन चक्रों की साधना योगियों का मार्ग है। सबके लिए सुलभ मार्ग तो नाम स्मरण का ही है। इसलिए इस रास्ते से चलकर सब सिद्धियाँ प्राप्त कर सकते हो।

सबसे पहले सिद्धदाता गणेश की मूलाधार चक्र में साधना करने से सब प्रकार की ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त होती है। इसके बाद षट्दल कमल में ब्रह्मा-सावित्री का दर्शन कीजिए. [illegible] कमल-नाभि में है; जहाँ लक्ष्मी का वास है। इसी प्रकार द्वादश कमल हृदय में है, जहाँ शिव जी वास करते हैं। द्विदल कमल [illegible] में है जहाँ शक्ति वास करती है। इसलिए [illegible] लिया जाता है। इस प्रकार नवद्वारों में रहने वाले मन की चंचल अवस्था नहीं जाती है। और इन्द्रियाँ जो स्वयं मैली हैं उसे [illegible] रहती हैं। इसलिए इनसे ऊपर त्रिकुटी में ध्यान करने से ही आत्मतत्त्व का दर्शन हो सकेगा।

नवद्वारों को बन्द कर [illegible] को लगाने से ही स्मरण हो सकता है। चन्द्र-सूर्य अथवा इड़ा पिंगला को छोड़ सुषुम्ना में ध्यान लगाओ। हमारा आध्यात्मिक [illegible] पर आधार रखता है। गुरु ने जो वस्तु प्राप्त की है, उसे शिष्य की जिज्ञासा के अनुसार [illegible] दान करता है। [illegible] सुलभ है; किन्तु प्रारब्ध के अनुसार ही वह प्राप्त होता है। सबसे [illegible]

नाम स्मरण ही है। किन्तु प्रेम नवद्वारों में नहीं वरन् दसवें द्वार में ही है। सुषुम्ना में अनहद नाद सुनाने से ही ॐकार का स्मरण या वेद पढ़ना कहा है। इसीलिए जो अभ्यास करके त्रिकुटी में पहुँच गया, उसी को सिद्धि या सफलता प्राप्त हुई है। साधन को समझकर उसका नमूना बनना होगा। वह प्रकाशमान दशमद्वार अन्तर में ही है, जिसमें अमृत का आहार है। अतएव आत्मा में प्रवेश कर उसका स्मरण करो, जिससे अमर बन सको। आप देह नहीं साक्षी हैं। किन्तु आत्मा द्वारा नाम स्मरण करने से ही आप अपने जीवन को सफल कर सकते हैं। वह स्वयं प्रकाशी ब्रह्मस्वरूप है। इसलिए तुलसीदास जी ने कहा हैः "ब्रह्म राम ते नाम बड़' अर्थात् नाम की महिमा स्वयं राम से भी बढ़कर है। अतएव अन्तर्मुख होकर नाम स्मरण करो। देह गुरु नहीं आत्मा ही गुरु है। जो हमारी बिगड़ी बात बनाने में समर्थ है वही 'सन्त' है। सारांश, अपने विचारों को समेट कर अन्तर में प्रभु को अनुभव करते हुए उसका स्मरण करो।"

इस प्रवचन के पश्चात् बन्धुद्वय के उपदेश-प्रद भजन के साथ आज का कार्यक्रम समाप्त हुआ।

चतुर्थ-दिवस

प्रातःकाल श्री शालिग्राम जी संगतराज के सुमधुर भजन से आज का कार्यारम्भ हुआ। प्रातःकालीन उपासना, नामस्मरण, और ध्वनि गान के पश्चात् श्री डॉ० बालकृष्णजी नागर ने प्रथम तीनों दिन की भावना "ॐ असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतंगमय, को दोहराते हुए आज की भावना को "ॐ शांतिः शांतिः शांतिः" के रूप में बतलाकर संत नागरजी का प्रवचन पढ़ सुनाया। साथ ही आपने मंत्र द्वारा माला-जप की महत्ता बताते हुए उसकी विधि पर प्रकाश डाला और मंत्र को ठीक ढंग पर उच्चारण करते हुए मन को एकाग्र करके जप करने का अनुरोध किया। साथ ही आपने बतलाया कि मन में किसी अनुचित भावना के उठने पर लोग उसे दबाने का प्रयत्न करते हैं; और उसमें वे असफल होते हैं। इसी लिए उनका चित्त स्थिर नहीं हो पाता। अत-एव इसका सच्चा उपाय यही हो सकता है कि आप भावना को दबाने के बदले उसे एकदम बदलने का प्रयत्न कीजिए। अथवा जैसे भी अनुचित विचार मन में उठ रहे हों, उनके विरुद्ध भावना उत्पन्न करने का प्रयत्न कीजिए। इस तरह जड़ को काट देने से वृक्ष किसी भी प्रकार उत्पन्न नहीं हो सकेगा।"

इसके पश्चात् श्री उद्धवजी ने अपने आज के प्रवचन में प्रथमतः अपने वेदानुशीलन एवं प्रतिपाद्य विषयों की प्रामाणिकता का विवेचन कर शंका-समाधान करने की तत्परता दिखलाई और 'कल्पवृक्ष' संस्था का अपना निकट सम्बन्ध प्रकट किया। तत्पश्चात् आपने आज की भावना के सम्बन्ध में विवेचन करते हुए कहा :—

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

अर्थात् प्रत्येक कार्य की समाप्ति या वेद-मंत्रों के पाठ के पश्चात् हम तीन बार शांति शब्द का उच्चारण करते है। अथवा यों कहना चाहिए कि हम तीन बार शांति शब्द का उच्चारण कर त्रिविध शांति पाने की भावना करते हैं। किंतु शांति जब एक ही प्रकार से प्राप्त नहीं हो सकती तब त्रिविध शांति कैसे प्राप्त होगी? फिर भी निराश होने का कोई कारण नहीं होना चाहिए। क्योंकि वेदों में इसका उपाय बतलाया गया है। अनुवादवादी प्रारंभ में शब्द प्रमाण को उड़ा कर फिर शब्द प्रमाण को ही लेते हैं। क्योंकि बिना इसके काम नहीं चल सकता। यहाँ (समारंभ में) सिद्धान्त की अनेक बातें होती हैं। किंतु अनुभव एवं व्यव-हार में जो बात यथार्थ एवं प्रामाणिक सिद्ध होती है,-उसी का महत्व होता है। किंतु अनुभवी

लोग भी अपने 'जानने को' ही सब कुछ मान बैठते हैं; जब कि वेदों के रहस्य को समझना सरल काम नहीं है। शास्त्रों में शब्द प्रमाण को मानने की बात कही है। किंतु अनुभवी लोग भी अपने अल्पज्ञान के द्वारा अप-सिद्धान्त करते हैं। उन पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं। परमात्मा का वैदिक मार्ग ही सच्चा मार्ग है। अथर्ववेद में आध्यात्मिक जागृति के विषय में बहुत कुछ कहा गया है। योगशास्त्र में शरीरस्थ अष्टचक्र की साधना का विधान है और योगमार्ग भी ईश्वर-दर्शन का मार्ग बतलाता है। किन्तु जो वेदमार्ग से चलने का उपाय बतलावे, वही सच्चा गुरु है। अर्थात् व्यवहार या साधना में जितना भी वेद के अनुकूल है, वही ग्राह्य है, शेष त्याज्य है। इसके लिए एक योगी की साक्षी देता हूँ।

(यहाँ आपने "बालयोगी" का लिखा हुआ "संतों की पहचान" शीर्षक लेख पढ़कर सुनाया) 'संत' शब्द तैत्तिरीय उपनिषद् में आया है। वेद ही धर्म का मूल है और वेद ही समस्त विद्याओं का मूल है। ससार की समस्त भाषाओं का मूल भी वेद की भाषा में ही पाया जाता है। संसार में जो कुछ श्रेष्ठता है, वह वेदविद्या का प्रभाव है। संत ही सद्गुरु हैं। वे वेद के अनुकूल उपदेश देते हैं। वेदवादी सत ऋषि होते हैं। उनका नम्बर पहला है। ऋषि लोग मंत्रद्रष्टा कहलाते थे। अर्थात् वे मंत्र का दर्शन करते थे। दूसरा पद मुनि का है। मननात् मुनिः अर्थात् उन मन्त्रों का मनन करनेवाले मुनि कहे जाते है। तीसरे संत है जो सत्-असत् का विचार करते हैं। उनके बाद आचार्य और भक्त की श्रेणियाँ हैं। ये सभी वेदानुकूल उपदेश एवं आचरण करते हैं।

संध्या की उपासना का महत्व प्राचीन काल से ही चला आ रहा है। संध्या की श्रेष्ठता के विषय में केवल इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि यह नित्य कर्म अपने उद्देश्य को स्मरण रखने का प्रमुख साधन [illegible] है। [illegible] युद्धकाल में भी महापुरुषगण नियम से [illegible] करते थे। स्वयं भगवान् राम और [illegible] के नियम से सन्ध्यावन्दन करने के प्रमाण [illegible] हैं। इसीलिए यह मानना पड़ता है कि [illegible] दैविक उपासना से ही त्रिविध [illegible] प्राप्त हो सकती है।

हमारे देवताओं में मुख्य स्थान गणपति का है और इसीलिए सबसे पहले गणपति का पूजन करने की प्रथा है। गणपति का रहस्य [illegible] व्यापक एवं गूढ़ होने से उसका [illegible] विवेचन "गुप्त गणपति रहस्य" नाम की पुस्तक में किया गया है। उसमें वैदिक प्रमाणों के आधार पर बतलाया गया है कि, सूर्य, अग्नि, वायु आदि सभी गणपति के ही रूप हैं। अर्थात् संपूर्ण सृष्टि के मूलाधार-पद्म में निवास करनेवाले अधिदेवता गणेशजी ही हैं। अतएव उनकी उपासना करने से सब प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त हो सकने का विधान किया गया है।

जो लोग नियम से संध्या नहीं करते उनकी दुर्गति होती है। आज देश में द्विजाति एवं मुख्यतः ब्राह्मण समाज की जो अधोगति हो रही है, उसका कारण संध्याकर्म का त्याग [illegible] ही है। संध्या न करनेवाले के समस्त [illegible] एवं पुण्य नष्ट हो जाते हैं और उसे [illegible] श्रौत स्मार्त कर्म में भाग लेने का अधिकार नहीं रह जाता। अतएव आप सभी से मेरा [illegible] निवेदन है कि सबसे पहले आप नियमपूर्वक संध्या करने का संकल्प कीजिए। क्योंकि संध्या करने से मनुष्य पवित्र हो जाता है। [illegible] संध्या" नाम की पुस्तक में इस बात को विस्तार से समझाया गया है कि, [illegible] त्रिविध शांति किस प्रकार प्राप्त हो [illegible] है। उसमें लिखे गये [illegible] सब बातों का ज्ञान होगा। [illegible] ग्रहण किया जाता है। [illegible] शब्द से ही सूक्ष्म [illegible]

सकता है। क्योंकि वेदों में विविध प्रकार के सूक्त भरे पड़े हैं; अतएव वेदों का अध्ययन परमावश्यक माना गया है। किंतु जिन्हें इतना अवकाश अथवा इस बात की सुविधा नहीं है; उनको कम से कम संध्यावन्दन तो नियमपूर्वक करना ही चाहिए। क्योंकि संध्या-विधि में चारों वेद का सार सग्रह कर दिया गया है। अतएव संध्या के रूप में नित्य स्मरण करते रहने से आप अपने उद्देश्य में अवश्यमेव ही सफल हो सकते हैं। सारांश, संध्या-वन्दन के रूप में नित्य ही 'गायत्री मंत्र' द्वारा सविता देवता की उपासना करके हम त्रिविध शांति प्राप्त कर सकते हैं।

इस प्रवचन के पश्चात् नीमाड़ के संत श्री रामलाल जी पहाड़ा ने अपने प्रवचन में "गणानान्त्वा गणपति" की व्याख्या करते हुए बतलाया कि "अब तक के अमृतमय भोजन के पश्चात मैंने ओढ़ने की सामग्री दी है; अब आपको बिछौना देता हूँ। सुनिए—

ध्यान और जप

ध्यान में हमें अपने ध्येय विषय का निश्चय करना पड़ता है। जप के द्वारा हम इष्ट को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। वैसे तो गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है कि 'भाव कुभाव अनख आलसहू। जपे नाम मगल दिसि दसहू॥" अर्थात भक्ति-श्रद्धा युक्त भाव से, अथवा दुर्भाव से, क्रोध में या आलस्य में, किसी भी रूप में नाम का जप करने से सब प्रकार कल्याण होता है। ऐसी दशा में यदि एकाग्र मन से इष्ट-स्मरण किया जाय, अथवा ध्यान किया जाय तो निश्चय ही साधक का कल्याण हो सकता है। अर्थात नाम-स्मरण आरंभ करते ही साधक इष्ट-देव को अपनी ओर आकर्षित कर सकता है और इसके साथ ही सब प्रकार मंगल होने लगता है। नाम जपने से वह उसी प्रकार आकर्षित होगा, जैसे कि 'सिमिटि सिमिटि जल भरे तलावा। जिमि सद्गुण सज्जन पहं आवा।' जैसे चारों ओर का जल एकत्रित होकर तालाब भर जाता है, उसी प्रकार चित्तवृत्तियाँ एकत्रित होने पर मन में अपूर्व आनन्द प्राप्त हो सकता है। यदि प्रारंभ में सफलता न मिल सके तो उससे घबराने की आवश्यकता नहीं है। समय आने पर सब कुछ सिद्ध हो जायगा। उस समय को पास लाने के लिए ही जप की आवश्यकता है।

जिस प्रकार कि बालकों को किसी बात का स्मरण दिलाने के लिए एक ही पाठ को रटवाना या उच्चारण करवाना पड़ता है, अर्थात् उसे ध्यान दिलाने के लिए इस रूप में जप या चिंतन करना पड़ता है; और वह सहजभाव से जप करता रहता है, उसी प्रकार इष्ट का निश्चय कर उसके ध्यान-सहित जप करने से जप सफल हो सकता है। इष्टवस्तु को पास खींचने का काम जप द्वारा चलता रहता है। वह जप वाचिक और क्रियात्मक होगा। मंत्र के अर्थ की भावना सहित जप करना ही सच्चा जप है। बड़े बड़े महात्माओं ने भी जो कुछ लिखा वह जप करके ही लिखा है। जप जो मुख से चलता है, वह वाचिक होने पर माला से होता है। किंतु अर्थ की भावना पर विचार करते हुए किया जाने वाला जप क्रियात्मक होता है। 'ॐ आनन्दम्' की उपासना ही सब महात्माओं ने की है। अर्थात उन्होंने आदि अक्षर ॐ या 'अ उ म्' में आनन्द की भावना की है। जिस प्रकार गायत्री मंत्र में ॐ (प्रणव) के पश्चात प्रथम अक्षर 'भू' का उच्चारण करते ही पृथ्वीसम्बन्धी सब बातों का विचार करना चाहिए, अतः यह क्रियात्मक जप होगा। इसी प्रकार प्रत्येक अक्षर के विषय में समझना चाहिए।

रामायण में गोस्वामी जी ने अंतर-बाहर प्रकाशमान स्थिति प्राप्त करने के लिए कहा है—"राम नाम मणि दीप धरु, जीह देहरी द्वार। तुलसी भीतर बाहिरो जो चाहसि उजियार।" जीभ रूपी देहरी पर रामनाम रूपी

मणिमय दीपक रखना चाहिए। अर्थात् राम नाम का जप करना चाहिए। क्योंकि चैतन्य प्रवाहात्मक जो वेद हैं उनका देने वाला भी वही राम है। अतएव आंतरिक शांति प्राप्त करने के लिए वेदरूप राम को जिह्वा पर धारण कीजिए तो निश्चित रूप से भीतर बाहर उजाला हो सकता है।

सारांश, हमारा शरीर पूर्ण है, सूर्य का प्रवाह भी पूर्ण है। अतएव "पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्ण मुदच्यते' के उच्चारण के साथ साथ हमें यह भावना करनी चाहिए कि सूर्य भगवान् की किरणों से हमें जो चैतन्य प्राप्त होता है, वही हमारा सब प्रकार कल्याण कर सकता है। ॐ

इस प्रवचन के पश्चात् प्रातःकालीन कार्यक्रम समाप्त हुआ और साधकों के स्नानादि से निवृत्त होने पर ८ बजे श्री योगी नारायण प्रकाशजी महाराज ने वज्रोली एवं जलवस्ती आदि क्रियाएँ बतलाईं। तत्पश्चात् श्री सत्यात्मा जी ने सब क्रियाओं का अभ्यास कराते हुए उनको नित्य नियमपूर्वक करने का अनुरोध किया।

इसके अनन्तर १०॥ बजे से मौन जप और हवन की पूर्णाहुति हुई तथा आरती के पश्चात् 'जप यज्ञ' की महिमा पर डॉक्टर बालकृष्णजी नागर ने संक्षेप में प्रकाश डाला। तत्पश्चात् श्री यशवंतलाल जी झा ने दैनिक हवन एवं जप के प्रभाव से अपने "हाई ब्लडप्रेशर" के दूर हो जाने का अनुभवपूर्ण शब्दों में वर्णन किया। श्री हरिशरणजी श्रीवास्तव ने भी साधन समारम्भ की उपयोगिता बताकर वर्ष भर में दो चार बार स्थान-स्थान पर ऐसे समारम्भ किये जाने की आवश्यकता प्रतिपादन की।

तत्पश्चात् यथानियम मध्याह्न उपासना संपन्न होकर विराट् भोज का आयोजन हुआ। भोजनोत्तर विश्राम कर लेने पर तीसरे पहर नरसिंहपुर (मध्यप्रदेश) के प्राकृतिक चिकित्सक डॉ० मिट्ठूलाल जी [illegible] ने अपने अनुभव सुनाते हुए कहा—

प्राकृतिक-चिकित्सा के अनुभव

प्राकृतिक-चिकित्सा मनुष्य को यथार्थ रूप में जीना, [illegible] और स्वस्थ [illegible] सिखाती है। प्राकृतिक एवं आयुर्वेदिक चिकित्सक विविध प्रकार के 'कल्प' कराते हैं, किन्तु मैं तो 'अन्नकल्प' द्वारा ही रोग निवारण का कार्य करता हूँ। मेरा उपचार [illegible] से आरम्भ होता है। मैंने ८५ वर्ष के एक वृद्ध का उपचार किया; जिनके २४ घंटे जीने की भी आशा नहीं की जाती थी। डाक्टरों ने निराश छोड़ दिया था और प्रकृति माता की उपासना से वे निरोग होकर आज भी आनन्द से जीवन बिता रहे हैं।

मैं कई प्रकार के उपायों से निराहार चिकित्सा करता हूँ। धीरे धीरे अभ्यास करने पर मनुष्य [illegible] प्राकृतिक अनाज खा सकता है। किन्तु हम लोग अनाज को स्वादिष्ट बनाकर निर्जीव कर देते हैं। अतएव हमें ऐसा भोजन बनाना चाहिए कि जिसमें कोई तत्व मरे नहीं। क्योंकि प्राकृतिक रूप में सेवन करने से ही अन्न लाभकारी हो सकता। किन्तु हम उसे पकाकर अथवा मसाले डालकर निर्जीव कर देते हैं। जीभ के स्वाद के लिए प्राकृतिक वस्तु को निर्जीव बनाकर सेवन करने से ही मनुष्य रोगी होता है और रोगी पुरुष की आत्मा भी रोगी ही होनी चाहिए। अतएव [illegible] मनुष्य का स्वस्थ रहना आवश्यक है।

भगवान् ने गीता में "अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां [illegible]।" के द्वारा बतलाया कि "प्राणियों के हृदय में मैं वैश्वानर अग्नि रूप से निवास करता हूँ और चतुर्विध अन्न-भोजन को (चर्व्य, चोष्य, लेह्य-पेय अर्थात् चबाकर, चूसने चाटने और पीने के रूप में) पचाता हूँ। यह जठराग्नि रूप भगवान् [illegible] उसमें सात्विक वस्तुएँ ही [illegible]

और उसे सदैव प्रज्वलित रखने का प्रयत्न करना चाहिए जिससे कि खाया हुआ अन्न भली भाँति पचन होकर हमारी शक्ति बढ़ा सके। एक मनुष्य को मैंने प्राकृतिक-चिकित्सा के आधार पर ढाई छटाँक अंकुरित अन्न से बढ़ाकर ७ सेर प्रतिदिन की खुराक पर ला दिया, वह भी आज मौजूद है।

मनुष्य को स्वस्थ रहने के लिए, चाय, पान, बीड़ी, सिगरेट आदि सभी प्रकार के व्यसन छोड़ देना आवश्यक है। शकर भी भोजन में विष का काम करती है। इसी प्रकार अशुद्ध पदार्थ ही शरीर को अशुद्ध बनाते हैं। अतएव शरीर अशुद्ध होगा तो मन भी अशुद्ध भावना वाला बन जायगा। अतएव जठराग्नि को जागृत करके शरीर का मल दूर कर देना ही स्वस्थ रहने का अचूक उपाय है। इस पद्धति से मैंने क्षयरोगी को भी स्वस्थ कर दिया और वह आज निरोग अवस्था में विद्यमान है। अतएव स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिए नीचे लिखी बातों पर ध्यान देना उचित होगा—

(१) शहरी जीवन में रूखा भोजन आरंभ कर दीजिए और चिकने पदार्थों का सेवन बिल्कुल छोड़ दीजिए, जब तक कि जठराग्नि पूर्ण प्रज्वलित न हो जाय, इसी प्रकार मिर्च-मसाले भी छोड़ देना उचित है।

(२) कच्चे अंकुरित अन्न को खाओ और अत्यंत सादे भोजन पर आ जाओ।

(३) भोजन की भीतर से माँग होने या खूब अच्छी भूख लगने पर ही खाओ। बिना भूख के कभी भोजन मत करो। चाहे कैसा ही स्वादिष्ट पदार्थ क्यों न बना हो।

(४) हमारे यहाँ खाने के लिए बैठने पर खूब खिलाने का प्रयत्न किया जाता है। किंतु यह प्रथा बहुत बुरी है। पेट का आधा भाग अन्न से भरो और चौथाई भाग जल से पूर्ण कर शेष चतुर्थांश को वायु संचार के लिए खाली छोड़ना चाहिए।

(५) बिना परिश्रम के भोजन कभी पच नहीं सकता। अतएव अपनी शारीरिक स्थिति के अनुसार व्यायाम अथवा टहलने के रूप में श्रम अवश्य करो।

यदि महिलाओं को भोजन का ठीक ज्ञान हो जाय तो संसार में रोग, मृत्यु एवं दवाइयों की संख्या बहुत कुछ घट सकती है। अतः माताएँ और बहनें भोजन-सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त कर अपने परिवार को स्वस्थ एवं सुखी बनाने का अवश्य प्रयत्न करें।

भोजन के पश्चात् स्नान-विधि पर भी ध्यान देना आवश्यक है। वह स्नान भी प्राकृतिक होना चाहिए। नदी या सरोवर आदि जलाशयों में स्नान करना विशेष लाभदायक हो सकता है। यदि घर पर भी स्नान करना हो तो ताँबे के पात्र (गंगालय) में जल लेकर ही स्नान करना और शरीर को भलीभाँति रगड़ कर स्नान करना चाहिए।

इसी प्रकार यथासंभव प्रातःकाल अभ्यास बढ़ाकर नित्य कम से कम १० मील भ्रमण करना चाहिए। प्रातःकाल उषःपान करना भी परमावश्यक साधन है। शाम को हलका भोजन करना चाहिए। यथासंभव दूध पीना चाहिए। यदि दूध न मिल सके तो १ तोला से लेकर २॥ तोला तक चावल (कच्चे) घोट कर गुड़ या मुनक्का के साथ पीना चाहिए। इससे प्रातःकाल निश्चित रूप से दस्त साफ होगा। रात को सोने के लिए भी पटली की शय्या बनाकर उस पर विश्राम करने से अनेक लाभ होंगे। इसी प्रकार पेट की गर्मी शांत करने के लिए मिट्टी की पट्टी रखिए। पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी रखने से गुर्दे या मूत्राशय के सब रोग दूर हो सकते हैं। इस प्रकार प्राकृतिक भोजन एवं आहार-विहार के साथ टट्टी पेशाब साफ होने पर मनुष्य कभी रोगी नहीं हो सकता। यही प्राकृतिक-चिकित्सा का रहस्य है।"

आपके बाद आपके शिष्य तथा अन्यान्य

सज्जनों ने भी प्राकृतिक उपचार के सम्बन्ध में अपने अपने अनुभव सुनाये और यह कार्यक्रम समाप्त हुआ।

सायंकालीन-कार्यक्रम

यथानियम सायंकालीन उपासना समाप्त हो जाने पर बन्धुद्वय ने मन की चंचलता को दूर कर उसको स्थिर करने के उपाय पर भावपूर्ण भजन सुनाया "जो कोई या विधि मन को लगावे"। और संत नागर जी के उपदेशानुसार संत कबीर दास का "काम किये जा—राम भजे जा" का उपदेश पालन करने को कहा।

गुरुभक्ति के उद्गार

तत्पश्चात् श्री घीसालाल जी गर्ग ने संत नागर जी के छायाचित्र को पुष्पहार से सम्मानित कर अपनी गुरुभक्ति का परिचय देते हुए बताया कि किस प्रकार आज से तेईस वर्ष पूर्व इस साधन सामरभ का श्री गणेश हुआ और प्रारंभ से लेकर अब तक बराबर इसमें योग देने का सौभाग्य प्राप्त हो सका। मैंने संत नागर जी से प्रारंभ के दिन ही निवेदन किया था कि यदि परमात्मा की कृपा से २१ वर्ष तक यह सम्मेलन निर्विघ्न होता रहा तो, हम अपना परिश्रम सफल समझेंगे। सो संत नागर जी तो बराबर २१ वर्ष तक समारंभ करके परमधाम को पधार गये, अब हम सब पर इस बात की जवाबदारी आ पड़ी है कि उनके आरंभ किये हुए इस शुभ कार्य्य को अच्छी तरह चलाते रहें और भाई बालकृष्ण को उनके स्थान पर मानकर "कल्पवृक्ष" संस्था से अपना वही पहले जैसा प्रेम भाव बनाये रखें तथा इस संस्था की तन, मन, धन से सेवा करें। संत नागर जी यह "कल्पवृक्ष" रूपी अमृत का पौधा लगा गये हैं। २१ वर्षों तक वे हमें अमृत पान कराते रहे। भाइयो, यह अवसर बारबार नहीं मिलता। यहाँ चार दिनों में जो कुछ प्राप्त किया है उसे याद रखो और जीवन में उतारो। गुरु नागरजी हमें जो उपदेश दे गये हैं उसे पान [illegible], मेरा नागर जी से पिछले २५ वर्षों तक सम्पर्क रहा। अन्तिम समय में [illegible] दर्शन करने गया तो मेरे [illegible] कि "साधन समारंभ के २१ वर्ष [illegible] हो गये, वे प्रसन्न हो कर [illegible]। उस समय किसे पता था कि वे [illegible] छोड़कर चले जायेंगे। [illegible] किसका वश चल [illegible] है। [illegible] सावधान होकर सोचना चाहिए —

"उठ जाग मुसाफिर [illegible], चिड़िया रैन बसेरा है।"

इस प्रकार श्रद्धाञ्जलि अर्पण करने के [illegible] महात्मा श्री [illegible] ने [illegible] कबीर-वचनावली के आधार पर [illegible] हुए कहा :—

"सत्संग से आत्मज्ञान होगा"

हर एक मनुष्य ईश्वर प्राप्ति [illegible] मानता है। किन्तु उसका उपाय सत्संग है। [illegible] सत्संग लाभ के लिए ही यह मनुष्य जन्म मिला है। किन्तु केवल किताबें पढ़ [illegible] सत्संग नहीं है। गोस्वामी तुलसीदास [illegible] है 'सत मिलन सम सुख कछु नाहीं।' महात्माओं ने जो अनुभव किये उन्हें वे ग्रन्थों में [illegible] हैं। निराकार उपासना [illegible] सत-महात्माओं का सत्संग करना चाहिए। जो ईश्वर प्रेम में डूबा हुआ है [illegible] करने से ज्ञान की प्राप्ति होगी। [illegible] समय समय पर जिज्ञासुओं [illegible] दिये हैं, वे [illegible] है। आत्मा का [illegible] भीतर ध्यान करने से [illegible] होगा। [illegible] जो भीतर है, उसमें [illegible] ईश्वर अविनाशी [illegible] है। [illegible] जिसने गुरु [illegible] पाया, [illegible] 'दास' माना है। इसलिए [illegible]

है "राम ते अधिक राम कर दासा"। दूसरों के जीवन में झाँककर देखो और अपनी हालत पर विचार करो। सत्संग और उपासना करने से ही आत्मज्ञान होगा और तभी जीवन में सुखशांति प्राप्त हो सकेगी।

इस उपदेश के पश्चात् श्री माधव महाविद्यालय के प्राध्यापक तथा युगद्रष्टा कवि

श्री डॉ० शिवमंगल सिंह जी 'सुमन'

ने अपनी ओजस्वी एवं प्रभावशालिनी वाणी में कविताएँ सुनाकर श्रोताओं को काव्यामृतपान-द्वारा मुग्ध कर दिया। सर्वप्रथम आपने "साँसों का हिसाब' शीर्षक दार्शनिक भाव वाली कविता सुनाई। दूसरी कविता "कलाकार के प्रति" भी अत्यन्त भावपूर्ण थी। तीसरी कविता "गीत गाने को दिये पर स्वर नहीं," तथा चौथी कविता 'तुम्हारे स्नेह के दो बूँद, जीने को बहुत हैं।" सुनकर तो लोगों के मुख से 'धन्यता' के उद्‌गार निकल पड़े। इसी प्रकार "मेरे जीवन के पहचाने" वाली कविता सुनाकर अन्त में आपने विदाई सूचक "जिस-जिस से पथ पर स्नेह मिला उस राही को धन्यवाद" देते हुए, अपना कविता पाठ समाप्त किया। बीच में पं० चाँद नारायण जी राजदाँ ने भी "गाँधी जी की मृत्यु पर' मर्सिया (शोक गीत) पढ़ कर सुनाया था।

इसके पश्चात् कल्पवृक्ष संस्था की प्रारम्भ काल से ही सेवा करने वाले तथा केन्द्रीय राज्य सभा के सदस्य, श्री कन्हैयालाल जी वैद्य ने अपने भाषण में

आध्यात्मिकता का प्रचार

की आवश्यकता प्रतिपादन की। संत नागर जी के अभाव को अनुभव करते हुए आपने बताया कि "आज संसार के प्राणिमात्र को शान्ति की आवश्यकता है। आध्यात्मिकता की जो विरासत हमें मिली है, उसी के कारण संसार हम से शान्ति का सन्देश पाने की आशा रखता है। किन्तु आज इस देश का जो पतन हो रहा है, वह आपसे छिपा हुआ नहीं है। यहाँ प्रार्थना करते हुए आपने संसार के मानव-प्राणियों के लिए हित-कल्याण की जो भावना की है, उसे देश के कोने-कोने में पहुँचाइए। आज संसार में त्राहि-त्राहि मची हुई है, उसमें शान्ति का सन्देश पहुँचाना हमारा कर्तव्य है। जो लोग युद्ध के अभिशाप भोग रहे हैं वे भी हमसे शान्ति-सन्तोष की प्रेरणा पाने की आशा रखते हैं।

संत नागर जी दिन-रात लोक-कल्याण का ही चिन्तन करते रहते थे। महात्मा गांधी भी आजीवन मानव जाति के कल्याण में लगे रहे। अतएव हमें भी भौतिकवाद की ओर से हटकर आध्यात्मिकता की ओर बढ़ना चाहिए। आज हम एकदम भौतिकवादी बन गये है; अतएव यदि आध्यात्मिकता की ओर नहीं आये तो अन्य देशों की तरह हम भी दुखी होंगे। आज जगत में धन का बोलबाला हो रहा है और उसके सामने मनुष्यत्व की कोई पूछ नहीं रह गई है। हमने स्वाधीनता प्राप्त करके भी महात्मा गांधी को मार डाला। इस पाप का प्रायश्चित्त हमें चिरकाल तक भोगना होगा। महापुरुष शीघ्र जन्म नहीं लेते। संसार में भौतिकता बढ़ रही है; यदि हम भी उसी भौतिकता के फेर में पड़ गये तो विनाश से कदापि नहीं बच सकते।

कांग्रेसी शासन में देश की जो दुर्दशा हो रही है, वह अत्यन्त शोचनीय है। परमात्मा हमारे देशवासियों को सुबुद्धि दे और वे लोक-कल्याण में प्रवृत्त हों। आपने प्रार्थना का चमत्कार स्वयं अनुभव किया है, अतएव आप संत नागर जी के आदर्श का प्रचार कर अपने-अपने स्थान में उन सिद्धान्तों को व्यवहार में लाइए। तथा उनके बताये हुए मार्ग से जनता का हित-साधन कीजिए।"

श्री योगेन्द्र सिंह भाटी ने "भक्ति मार्ग पर

कविता सुनाई और प्रो० विष्णुदत्त जी शास्त्री ने आत्मबल के खेल दिखाये और "चिदानन्द रूप शिवोऽहम् शिवोऽहम्' के गान के साथ समारोह समाप्त हुआ।

देश विदेश से शुभ कामनाएँ और सन्देश

भारतवर्ष के उपराष्ट्रपति की शुभ कामना

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप तेईसवाँ आध्यात्मिक समारंभ कर रहे हैं। यदि मेरे लिए संभव होता तो मैं उज्जैन अवश्य आता, परंतु अभाग्यवश राज्य सभा तथा अतिरिक्त कार्यक्रम मुझे दिल्ली में रहने को बाध्य कर रहा है, अतएव मेरे पास अपना कुछ भी अवकाश नहीं रह गया है। ऐसी परिस्थिति में यदि मैं आप के निमन्त्रण को स्वीकार नहीं कर सका तो आप क्षमा करें। मैं आपके समारंभ की सफलता चाहता हूँ।

—स० राधाकृष्णन्

मध्य भारत के मुख्य मंत्री की शुभ कामना

तेईसवे आध्यात्मिक साधन समारंभ के लिए आपका निमन्त्रण प्राप्त हुआ, एतदर्थ धन्यवाद। किन्तु खेद है कि इस समय विधान सभा के अधिवेशन में व्यस्त रहने के कारण मैं समारोह में भाग न ले सकूँगा।

मध्यभारत की ऐतिहासिक पुरातन नगरी उज्जयनी में समारम्भ अनेक वर्षों से मनाया जा रहा है जिसमें आयोजित प्रवचन, उपदेश, व्यायाम, व्याख्यान आदि से अवश्य ही अनेक व्यक्ति बहुत लाभ उठावेंगे। ऐसे आयोजनों से ज्ञान वृद्धि के साथ साथ आत्मोन्नति भी होती है एवं समारोहजनों के चित्त को भी शान्ति मिलती है। वास्तव में लोग ऐसे समारोह से जीवन में नई प्रेरणा एवं उत्साह लेकर ही लौटते हैं।

मैं आपके आयोजन की सफलता के लिए अपनी हार्दिक शुभ कामनाएँ भेजता हूँ।

—मिश्रीलाल गंगवाल

साधना सन्देश

साधना समारंभ प्रतिवर्ष होते रहते हैं, और किसी न किसी रूप में कुछ न कुछ प्रभाव छोड़ जाते हैं साधकों के मन पर। पर वह जो प्रभाव छोड़ जाते हैं उसकी सुरक्षा का उपाय होता रहना चाहिए नहीं तो वर्ष भर में दो चार दिन के लिए एकत्रित हुए, तीन दिन का एक सतयुग बनाया और अपने अपने घर लौट गये। इतने से कुछ बनने वाला नहीं है। घर लौट कर भी प्रति दिन अभ्यास की परम आवश्यकता है। जो लोग थोड़े में ही अपने आपको कृतकृत्य समझ बैठते हैं और आगे के लिए प्रयत्नशील नहीं रहते वे आध्यात्मिक उन्नति नहीं कर सकते। आध्यात्मिक उन्नति में संतोष कहाँ? वह तो अनन्त अक्षय कोष है जितना चाहे लो, जितना चाहे खर्च कर लो, जितना चाहे औरों को दे दो, उस अक्षय्य कोष में कभी कमी नहीं पड़ती। उस अक्षय्य कोष के समीप जाकर भी जो दरिद्र के दरिद्र लौट आते हैं उन पर दया ही करनी चाहिए कि कैसे अभागे हैं कि ऐसे अनन्त कोष के निकट पहुँचकर भी दरिद्र के दरिद्र लौट आये। दूसरे लोगों पर भी तरस आता है जो साधन सम्पन्न होकर भी ख्याति अथवा दिखावे में पड़कर फिर खोखले के खोखले रह जाते हैं। तीसरे वे भी करुणा के योग्य हैं जो कि सद्गुरु के समीप पहुँचकर भी सद्गुरु को नहीं पहचान पाते है। सद्गुरु तो बड़े पुण्य से मिलते हैं, उन्हें ढूँढ़ना पड़ता है, उनकी सेवा शुश्रूषा करनी पड़ती है, उनको प्रसन्न करना पड़ता है, उनके आदेश निर्देश का पालन करना पड़ता है, तब गुरुमुख से निकले हुए दो अक्षर भी मनुष्य का उद्धार कर देते हैं।

— आचार्य नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ,
सदस्य विधान सभा, उत्तर प्रदेश

समारोह-सत्संग का महत्व

प्रिय बालकृष्ण जी,

— सप्रेम अभिवादन

आपका पत्र मिला। श्रद्धेय श्री दुर्गाशंकर जी नागर ने जिस काम को प्रारम्भ करके बढ़ाया था उसे अभी भी चलते हुए देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। आप सत्संगियों को प्रति वर्ष जुटा लेते हैं और भारतवर्ष के विद्वानों को बुलाकर उनके द्वारा उचित उपदेश का प्रबन्ध भी करते हैं यह बड़ी ही सुखद बात है। मनुष्य का शरीर अस्थायी है परन्तु उसके शरीर के चले जाने पर भी उसके विचार रह जाते हैं। भगवान् बुद्ध के जाने के बाद आज भी उनके विचारों से करोड़ों जनता लाभ उठा रही है। श्री नागर जी के विचारों का प्रचार करके न केवल आप उनके आत्मा को शान्ति प्रदान करते हैं वरन् संसार के लोगों का भारी कल्याण करते हैं।

नागर जी के विचार कल्पवृक्ष में प्रकाशित हो चुके हैं। यही उनका स्थायी व्यक्तित्व है। यदि इनका संग्रह एक पुस्तक में हो जाय तो श्री रामकृष्ण परमहंस के उपदेशों के समान वे जनता का बहुत दिन तक लाभ करेंगे।

नागर जी के विचारों की विशेषता — मनुष्य को आत्मा की स्वतंत्रता का अनुभव करना है। आधुनिक वैज्ञानिक युग में जिस अध्यात्मवाद का सर्वथा लोप हो रहा है उसे एक नये रूप में प्रकाशित करने में और उसके द्वारा जनहित करने में उन्होंने भारी कार्य किया है। जिस प्रकार यूरुप का जड़वादी नियतिवाद मानव-स्वतंत्रता का अपहरण करता है उसी प्रकार हमारा भाग्यवाद भी मनुष्य को शक्तिहीन प्राणी बना देता है। दोनों प्रकार के निराशावाद के निराकरण के लिए आध्यात्मिक चर्चा होते रहना आवश्यक है यह भी उस प्रकार की

आध्यात्मिक चर्चा जैसी कि 'कल्पवृक्ष' की पंक्तियों में पाई जाती है।

सभी समय की यह प्रमुख आवश्यकता है कि मनुष्य सुखी कैसे बने? मनुष्य सुखी तब तक नहीं हो सकता जब तक उसे अपने आंतरिक स्वत्व की स्वतंत्रता की अनुभूति नहीं होती। बाहरी स्वत्व से तो वह परतत्र ही है, यह बाहरी स्वत्व इच्छाओं का आगार है। जब तक मनुष्य को अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं होता उसे आंतरिक स्वतंत्रता की अनुभूति न होगी। और यह चर्चा भी सूनी न होगी। आतुर श्रद्धापूर्वक ऐसे सम्मेलनों को [illegible] जिसमें मनुष्य को सच्चा आत्म ज्ञान और आनन्द की अनुभूति हो—आनन्द रूपी अमृत पिलाता है। आपका सम्मेलन सफल हो यही मेरी हार्दिक कामना है। मैं व्यक्तिगत रूप से आपके पास नहीं आ सकता इसका दुःखी हूँ। मेरी शुभ कामना आपके साथ है।

—[illegible]

[illegible], मनोविज्ञानशाला

विदेशों से शुभ कामनाएँ

स्कॉटलैंड से—

मुझे आपका निमंत्रण पाकर और यह जान कर कि आप आध्यात्मिक साधन समारम्भ की योजना अब भी पूर्ववत् चला रहे हैं—बड़ी ही प्रसन्नता हुई। मेरी तो इच्छा ऐसी हुई कि मैं उड़कर आपके पास समारम्भ में सम्मिलित होने को पहुँच जाऊँ। मैं बहुत दिनों से भारत आने की इच्छा कर रही हूँ, और ज्यों ही मौका मिला मैं फौरन् आऊँगी। क्या आपके समारंभ में स्त्रियों को भी प्रवेश मिलता है? बहुत बहुत आशीर्वाद।

माननीय राइट ऑनरेबल दिकाउन्टेस ऑफ मेयो

Rev. The Rt. Hon'ble The Countess of Mayo. D D.F R G S.

व्यावहारिक सत्य समाज की प्रवर्तक और अध्यक्ष

इंग्लैंड से—

आपके निमन्त्रण के लिए बहुत बहुत धन्यवाद। मुझे आपके समारम्भ के प्रति कुछ वर्षों से बहुत रुचि हो गई है परन्तु मैं ८० वर्ष की उम्र का आदमी हूँ और मेरे ही पास इतना अधिक काम है कि उसका प्रबन्ध करना मेरे लिए इस उम्र में बहुत बड़ी बात हो जाती है। पहले मैं जितना काम मैं करता था, अब उससे भी अधिक करना पड़ता है। अतएव इन कारणों से आपके समारोह में स्थूल शरीर से सम्मिलित होना सम्भव न जानकर मैं वहाँ सूक्ष्म रूप से उपस्थित रहूँगा और समारम्भ की सफलता के लिए शुभ कामना करता हूँ।

HENRY THOMAS HAMBLIN

हेनरी थॉमस हैमलिन संपादक

Editor, Science of Thought Review.

साइंस ऑफ थॉट रिव्यू

---

(२)

आत्मैक्य भाव का जागरण

आपका प्रेमपूर्ण निमन्त्रण पाकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ। तेईसवाँ साधन समारम्भ [illegible] और समारोह से सफल हो, सभी के [illegible] आत्मजागृति हो, सबको [illegible] आत्मैक्य का अनुभव होकर [illegible] हो, यही मेरी शुभ कामना है।

अब आजकल के ज़माने में धर्म केवल अन्धविश्वास और अन्धानुकरण मात्र नहीं रह गया है। सब देशों में और सब धर्मानुयायियों में जहाँ महान् आत्म जागृति हो गई है, अब वे लोग सबको आपस में आत्मैक्य भाव से समझने लगे हैं और परस्पर प्रेम से, सब भेद भाव छोड़ कर, समारोह और सत्संग करते हैं। इनका प्रवर्त्तक कोई महान् सत्पुरुष होता है जो सबमें आत्मभाव को जगाता है। शुभ, सत्य और सौन्दर्य की दृष्टि से सारे संसार के मानव एक हैं, उनमें कोई भेद नहीं। सब को शुभ, सत्य और सौन्दर्य की भावना एक समान ही दिव्य होती है, सब में प्रेम का विकास, और मुस्कान की आभा एक समान होती है, केवल शब्दों में, भाषा में, भेद होता है।

जिस प्रकार कुंजी से ताला खुलता है, प्रेम ही एक ऐसी कुंजी है जिसके द्वारा संसार भर के मानवों के दिल खुल जाते हैं। प्रेम ही एक ऐसा महातत्व है जिससे मानव संसार की दिली बीमारियों का इलाज हो जाता है, और इसका प्रभाव परस्पर से फैलकर बहुत व्यापक हो जाता है। महापुरुष का वचन है, भगवान् का वचन है कि तुम जो किसी से प्रेम या किसी की सेवा करते हो, समझो कि तुम मुझसे ही प्रेम करते हो और वह मेरी ही सेवा है। तुम सब भाई भाई हो, और मैं तुम सब में वास करता हूँ।

आप लोगों का समाज ऐसा ही आत्म जागृत समाज है कि आप परस्पर प्रेम, सेवा और आत्मैक्य साक्षात्कार का इस समारोह द्वारा प्रसार करते जा रहे हैं। प्यारे भाई, आप बहुत सुन्दर कार्य कर रहे हैं। मुझे आप से प्रेम है।

मैं हूँ आपका अभिन्न आत्मा, एक दूसरे चोले में, दूसरे नाम से,

—रिचार्ड व्हाइटवेल

अमेरिका से—

तेईसवें आध्यात्मिक साधन समारंभ में एकत्रित जिज्ञासुओ! परम पिता परमात्मा के इस पार्थिव प्रेमलोक में आत्मभाव से मैं आपका स्वागत करता हूँ। आध्यात्मिक जागरण पाकर शांति प्रेम और भ्रातृभाव का प्रसार करने के निमित्त जैसे आप वहाँ एकत्रित हैं, मैं भी सूक्ष्मरूप आत्मभाव से आपके पास, आपके साथ हूँ।

आप सब में परमात्मा का ज्ञान प्रकाशित हो।

आप सब के हृदय में परमात्मा का प्रेम खूब भरा रहे।

और वह प्रेम आप में से समस्त मानवों में व्यवहार में प्रवाहित हो।

जिससे कि मानव संसार का जीवन धन्य हो।

परमात्मा का प्राण आपको उत्साहित करे, आप में उच्च दिव्य चेतना का विकास हो।

परमात्मा का प्रकाश आपके चहुँओर है।
परमात्मा का प्रेम आप में भरा हुआ है।
परमात्मा की शक्ति आपको सुदृढ़ रखे है।
परमात्मा की सत्ता आप में व्याप्त है।
जहाँ भी आप रहें, परमात्मा वहीं रहता है।

आपका ही आत्मा
लॉवेल फिलमोर, यूनिटी अध्यक्ष
Lowell Fillmore.

सन्त नागरजी स्मारक निधि

श्री कालिदास नारायणदास, विलेपार्ले बम्बई से पाँच रुपये उक्त निधि में धन्यवादपूर्वक प्राप्त हुए।

तेईसवाँ आध्यात्मिक साधन समारम्भ

आय-व्यय विवरण

आय

निम्नलिखित सहायता धन्यवादपूर्वक स्वीकार हुई।

२०१) श्री शान्तिलाल जी दलाल, बम्बई
१०१) श्री मुरली मनोहर कन्हैयालालजी, बूँदी
१०१) श्री मुरार जी भाई राठौर, उज्जैन
१००) श्री एक ठकुरानी माँ साहिबा
१००) श्री एक ठकुरानी साहिबा
१००) श्री देवीदत्त जी मोदी, बम्बई
१००) पं० गोवर्धनजी शर्मा छांगाणी, नागपुर
५१) एक अध्यात्म प्रेमी बहिन जी
५०) श्री पार्वती देवी जी, गया
२५) श्री बी० ए० देसाई, कोइम्बटूर
२५) श्री जी० एल० ओमर, कानपुर
२५) श्री हरिवंशजी उपाध्याय, रुपैडिहा
२५) श्री जगन्नाथ नारायण जी, इन्दौर
२०) एक अध्यात्म प्रेमी भाई जी
१६) श्री ठा० रामलखन सिंह जौनपुरी जी
११) श्री मोहनलाल जी राठी, कंकड़ी
११) श्री विलासवती गुट्टू, जोधपुर
११) श्री पुरुषोत्तम टीकमजी, खरगोन
१०) श्री रामशङ्कर जी शुक्ल, बुढ़वल
१०) श्री डॉ० नागू साहब, इन्दौर
७॥) श्री कन्हैयालालजी खेतरिया, अहमदाबाद
६) श्री निरुक्त कुमारजी सूर, आसाम
५) श्री विद्या सागर जी, रामगंज मण्डी
५) श्री भगवती शर्मा, कोटा
५) श्री जेठा भाई जी, उज्जैन
५) श्री सिद्धेश्वर जी शाण्डिल्य, उज्जैन
५) श्री बाबूलाल बलवन्त रावजी खोड़े, खरगोन
५) श्री मोहनलाल बाबूलाल जी, खरगोन
५) श्री पुरुषोत्तम आत्माराम साखरे, पवारखेड़ा
५) श्री नन्द किशोरजी आचार्य, उज्जैन
५) श्री शालिग्रामजी दुबे, बीना
५) श्री शान्ति भाई जी, उज्जैन
३) श्री रघुनाथदास जी, किराधन
२) डा० कृष्ण दयाल जी पाठक उज्जैन
२) प्रो० बद्रीनारायण जी, उज्जैन
२) श्री डी० सी० ठाकुर मा० बैतूल
१॥) श्री मूलचन्द ठाकुर, दतेना चक

११६७) सहायता
८५७॥) सदस्यों से शुल्क

२०२४॥) कुल आमद

व्यय

१२०) बाँस बल्ली टट्टों का किराया
६८) गाड़ी भाड़ा
१९५) केम्प बनाना और उखाड़ना
२८५) बिजली गैस तेल आदि
४५) पानीवाले
७८) भोजन बनानेवाले
८४) ईंधन
३७८) आटा दाल
१७८॥=) चावल बेसन
२०) नमक मसाला
५१०) दूध शक्कर
३६५।=) घी तेल
९०) साग भाजी
५४) फल
५८) पत्तल दोने
९२॥=) पत्र लेखन निमन्त्रण आदि
१२९=) फुटकर

२७४३॥) कुल खर्च

१—कैम्प बनाने के लिए दिनोद मिल से १५ थान टाट उधार मिले थे।

उक्त सहायता देनेवाले सभी प्रेमियों को हम हृदय से धन्यवाद देते हैं।

इस वर्ष इतनी सहायता होने पर भी आमद से काफी अधिक खर्च हुआ।

—[illegible] शर्मा

हमारी नई पुस्तकें

छप गया !

स्वर्ण सूत्र

स्व० सन्त नागरजी द्वारा लिखित, कल्पवृक्ष में गत २० वर्षों से प्रकाशित होने वाले लगभग २,० स्वर्णसूत्रों का संग्रह, अनेक अध्यात्म प्रेमियों के आग्रह से पुस्तकाकार छप गया। भय, चिन्ता, क्लेश, निरुत्साह आदि मनोविकारों को दूर कर जीवन पथ पर उत्साह से अग्रसर कराने वाली दिव्य आत्म प्रेरणाओं का, दैनिक जीवन के लिए अनमोल व्यावहारिक संग्रह है। इसे हर समय हर व्यक्ति को अपने पास रखकर नित्य पढ़ने से अपूर्व शान्ति मिलेगी। मूल्य ३) डाक खर्च ।।।)

उपासना और हवन विधि

यज्ञ द्वारा मन में दिव्य संस्कार डालने और रोगों की चिकित्सा तथा आत्म विकास करने के लिए व्यावहारिक हिन्दू धर्म की अमूल्य पुस्तक फिर से छप गई। मूल्य ।।=)

ध्यान से आत्म चिकित्सा

ध्यान द्वारा मनोबल का विकास कर अपनी मानसिक कमजोरियों को दूर कर उन्नति करने के अनमोल साधन मूल्य १)

सन्त नागरजी

स्व० सन्त नागर जी तथा उनकी संस्था व कार्यों का संक्षिप्त परिचय मूल्य ।)

छप गई !

सूर्य किरण चिकित्सा

रंगीन बोतलों में जल, तैल, मिश्री, सौंफ या अन्य औषधियाँ भरकर, तथा रंगीन काँचो द्वारा रुग्ण स्थान पर, सूर्य की धूप देकर, सूर्य की रोगनाशक और दिव्य जीवन प्रदायिनी शक्ति से रोग दूर करने के सहज साधन इसमें दिये हैं। दाम कौड़ी चीर फाड़ और दवा के बिना स्वयं घर बैठे डॉक्टर या वैद्य बनाने वाली यह पुस्तक छठवीं बार पुनः छप गई है। मूल्य ५) डाक खर्च ।।=)

दुग्ध चिकित्सा

स्वामी जगदीश्वरानन्द जी वेदान्तशास्त्री द्वारा लिखित इस पुस्तक में नवीन अनुभव जोड़कर विस्तार पूर्वक छापा गया है। मूल्य ।।।) डाक खर्च ।।)

सङ्कल्प सिद्धि

स्व० स्वामी ज्ञानाश्रम द्वारा लिखित, व्यावहारिक विचार शास्त्र की अनमोल पुस्तक बहुत माँग होने पर फिर से छप रही है। मूल्य २) डाक खर्च ।।=)

कल्पवृक्ष के पाठकों के लिए अमूल्य भेंट

शिव सन्देश

अथवा आध्यात्मिक जीवन का रहस्य

ब्रह्मलीन पं० शिवदत्त जी शर्मा के "कल्पवृक्ष" में पिछले २५ वर्षों में निकले हुए लगभग ४०० लेखों का अमूल्य संग्रह, लगभग १००० पृष्ठों में छप कर तैयार है। इस संग्रह की पाठकों की ओर से बड़ी माँग थी। इस ग्रंथ में उनके आध्यात्मिक जीवन का रहस्य प्रकट करने वाले दस विभिन्न भागों में अत्यन्त उपयोगी सामग्री संग्रह की गई है। यथा—आध्यात्मिक जीवन-चरित्र, व्यावहारिक जीवन, स्वास्थ्य-साधन, विचार-साधन, प्रार्थना—ध्यान—उपासना आध्यात्मिक साधन, मंत्र और योग साधन, व्यावहारिक वेदान्त, अध्यात्म और ब्रह्मविचार, मृत्यु और उस पर विचार। प्रत्येक अध्यात्म-प्रेमी के लिए दैनिक स्वाध्याय के योग्य ग्रंथ है। मूल्य ११) डॉक खर्च १।)

व्यवस्थापक—"कल्पवृक्ष" उज्जैन, (मध्य भारत)

Registered No. N. 277

हमारी नई

आध्यात्मिक मंडल, उज्जैन, म० भा०

की

निम्नलिखित शाखाओं में मानसिक, आध्यात्मिक एवं प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा मुफ्त इलाज होता है :—

स्थान	प्रवन्ध और उपचारक

१ कोटा (राजपूताना) श्रीयुत् पं० नारायणरावजी गोविंद नाबर, प्रोफेसर ड्राइंग, श्रीपुरा

२ हींगनघाट (सी० पी०)—आयुर्वेदाचार्य शोभालालजी शर्मा।

३ उदयपुर (१) (राजस्थान) संचालक आयुर्वेदाचार्य पं० जानकीलालजी त्रिपाठी, चिन्तामणि कार्यालय भूपालपुरा, प्लाट नं० २०१।

उदयपुर (२) लाला जेसारामजी, मार्फत श्री देवराज, टी.टी.ई. रेलवे क्वार्टर्स, बी।२, रेलवे स्टेशन

४ खरगोन (मालवा प्रांत, श्री गोकुलजी पंढरीनाथजी सर्राफ मंत्री आध्यात्मिक मंडल।

५ अजमेर (राजपूताना) पंडित सूर्यभानुजी मिश्र, रिटायर्ड टेलिग्राफ मास्टर, रामगंज।

६ नसीराबाद (राजपूताना)—चाँदमलजी बजाज।

७ दोहरी घाट स्टे. ओ. टी. आर. (आजमगढ़ उ. प्र.) संचालक पं० क्षमानन्दजी शर्मा साहित्यरत्न

८ मन्दसौर (मध्य-भारत) दशरथजी भटनागर, खाद्य इन्स्पेक्टर, जनकपुरा।

९ मिट्ठी भेड़ी (देहरादून पो० प्रेमनगर) महावीरप्रसादजी त्यागी।

१० सरगुजा स्टेट (सी० पी०) जानकीप्रसादजी गुप्त।

११ रतलाम (मध्य भारत)—साहित्यभूषण पं० भालचन्द्रजी उपाध्याय, एजेन्ट कोआपरेटिव बैंक।

१२ गोंदिया (मध्यप्रान्त) लक्ष्मीनारायणजी माटुपोते, बी० ए० एल-एल० बी० वकील।

१३ नेपाल-धर्मसनीषी, साहित्यधुरीण, डा० दुर्गाप्रसादजी भट्टराई, डो० डो० दिल्ली बाजार।

१४ पोलायखुर्द (व्हाया अकोदिया मण्डी)—स्वामी गोविंदानन्दजी।

१५ धार (मध्य भारत)—श्री गणेश रामचन्द्र देशपांडे, निसर्ग मानसोपचार आरोग्य-भवन, धार।

१६ खम्भात (Cambay) श्री वल्लभाई हरजीवनजी पंड्या।

१७ राजगढ़ ब्यावरा मध्य भारत) श्री हरि ॐ तत्सतजी।

१८ केकड़ी (अजमेर) पं० किशोरीलालजी वैद्य तथा मोहनलालजी राठी।

१९ बुढ़वल (ओ. टी. आर. जिला बाराबंकी) पं० रामशंकरजी शुक्ल, बुढ़वल शुगर मिल।

२० इन्दौर—श्री बाबू नारायणलाल जी सिंहल, बी० ए०, एल-एल० बी०, श्री सेठ जगन्नाथ जी की धर्मशाला, संयोगितागंज।

२१ आलोट-विक्रमगढ़ (मध्य-भारत) अध्यक्ष सेठ ताराचन्दजी, उपचारक अनोखीलालजी मेहता।

२२ अटरू (कोटा राजस्थान)—पं० मोहनवंद्रजी शर्मा।

२३ बारां (कोटा राजस्थान)—पं० मदनमोहनजी तथा सेठ भैरूलाल जी।

व्यवस्थापक व प्रकाशक—डॉ० बालकृष्ण नागर, कल्पवृक्ष कार्यालय, उज्जैन (मध्य भारत)
मुद्रक—भक्त सज्जन, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद—२

वर्ष ३१ } KALPA-VRIKSHA

संख्या ११ } A MAGAZINE OF DIVINE KNOWLEDGE

१ मौन प्रार्थना—संपादक

२ हिमालय के अञ्चल से—स्वामी शिवानन्द जी

३ संसार के आश्चर्य—आचार्य नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थ

४ ज़बान लग जाती है—विश्वामित्र वर्मा

५ स्वास्थ्य साधना—

६ सुख और उसकी प्राप्ति—श्री गुलाबकुमारी जी नेपावत

७ प्रश्नोत्तरी—

८ नित्ययोग (सन्देश)—वेदाचार्य प० श्री० दा० सातवलेकर जी

९ चरित्र निर्माण कीजिये (सन्देश)—स्वामी विष्णुतीर्थ जी

१० परलोक में मन का महत्व—पं० गोपीवल्लभ जी उपाध्याय

११ गृहस्थ संत नागरजी—श्री "माधव" जी

१२ स्वर्ण सूत्र—शुभ भावना की प्रार्थना

स्वर्ण-सूत्र

शुभ भावना की प्रार्थना

किसी रोगी, अपंग दरिद्र दुःखी को देखकर मैं भगवान् से प्रार्थना नहीं करता कि उसका रोग भगवान् दूर करे, अपंग को भोजन दे, दरिद्र को वैभव दे, दुःखी को सुखी बना दे। भगवान् का इसमें क्या दोष ? और भगवान् से ऐसी भीख क्यों माँगी जाय ? भगवान् द्वैत भाव वाला नहीं है कि वह किसी को प्रेम करता हो इसलिए उसे आनन्द स्वास्थ्य, वैभव दे रखा हो अथवा किसी से नाराज़ हो इसलिए उसे रोग शोक कठिनाइयाँ विपत्तियाँ दुःख दरिद्रता दी हो। भगवान् ने सब को सब कुछ दिया है, उसकी खुशामद या उसे प्रसन्न करने की जरूरत नहीं। वह हमारी प्रार्थना, भीख वृत्ति या खुशामद से विशेष प्रसन्न न हो जायगा, वह सदा सत् चित् आनन्दघन है।

मेरी तो प्रार्थना भीख नहीं, वरन् शुभ कामना है कि जो कमजोर है वह शक्ति साधना कर बलवान् हो, जो रोगी है वह प्राणाकर्षण कर रोगमुक्त हो, जो दरिद्र है वह हीन विचारों को छोड़ अपने दिव्यत्व का साक्षात्कार कर वैभव का उपार्जन करे। मैं यह नहीं प्रार्थना करता कि जितनी तुम में शक्ति है उतना काम करो, वरन् जितना काम तुम्हें मिलता है उसके बराबर शक्ति तुममें है, उसे सिद्ध करो।

साहस, उत्साह और शुभ भावना की प्रेरणा ही हमारी हार्दिक प्रार्थना है। जिसे प्रेरणा होगी, उसके मुर्दार जीवन मे दिव्य ज्योति जागृत हो जायगी, और वह स्वयं पूर्णता और वैभव की ओर अग्रसर हो जायगा। यह प्रेरणा परमात्मा द्वारा प्रेरित शुभ सङ्कल्प है। भगवान् हमारे भीतर, बाहर चहुँ ओर सर्वत्र मौजूद हैं, सब कुछ देखते सुनते जानते हैं, फिर उनसे कुछ कहने गिड़गिड़ाने भीख माँगने या उन्हें प्रसन्न करने की क्या आवश्यकता ? हमारी समझ से, जो ऐसा करता है वह भगवान् को सर्वज्ञ सर्वव्यापक सर्वसमर्थ होने में सन्देह करता है, वह नास्तिक भाव की प्रार्थना है।

जहाँ परमात्मा है वहाँ मैं हूँ। जहाँ मैं हूँ वहाँ परमात्मा है। उसकी प्रेरणा, सहायता, शक्ति, ज्ञान मुझे सदैव प्राप्त होता रहता है। अपने भीतर ही, अपने विचारों में उसका सान्निध्य पाकर सब रोगी, दुःखी, दरिद्र, अपंग लोग जीवन की उच्च आकांक्षा का अनुभव करते हैं।

सब पर भगवान् का अनुग्रह है। सबका आधार भगवान् है।

संस्थापक

स्वर्गीय डॉ० दुर्गाशङ्कर नागर
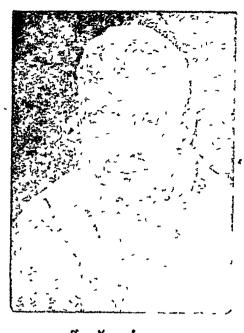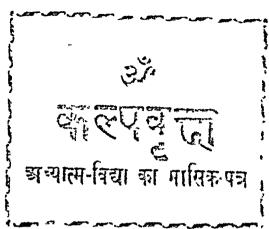
सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः॥ गीता॥

वर्ष ३१ } उज्जैन, जुलाई सन् १९५३ ई०, सं० २०१० वि० { संख्या [illegible]

मौन प्रार्थना

सम्पादक

आज के मशीन युग (कलयुग) में मन की गति बढ़ाने की जैसी दौड़ लगी है, मनुष्य का मन मशीन की अपेक्षा कहीं अधिक उत्तेजनशील है। यह उत्तेजना का युग है। रागद्वेष ईर्षा घृणा, बदला लेने की भावना, लूट खसोट मारकाट का युग है, निर्दयता का युग है। मनुष्य का स्वार्थ हद से अधिक बढ़ गया है, अपना काम बनाने के हित मनुष्य दूसरे का भला बुरा नहीं देखता। इस युग की इस यथार्थ बात को कोई इन्कार नहीं कर सकता। परन्तु इतना ही इस सत्य नहीं है। अर्थात संसार का हरेक व्यक्ति इतना स्वार्थी नहीं है कि हरेक व्यक्ति [illegible] ईर्षा घृणा लूट खसोट मार [illegible] काम में लगा हो। यदि हरेक व्यक्ति [illegible] जाय तो सारा संसार [illegible] दिन में [illegible] आगों में भस्म हो जाय।

पाप, दुराचार और [illegible] पुण्य और सदाचार भी [illegible] जिसके [illegible] ईर्षा घृणा [illegible] करने वाले [illegible] और [illegible]

करने वालों की संख्या बहुत अधिक है। और प्रेमयुक्त दयालु परोपकारी जीवनदाता लोगों की बहुत सी संस्थाएँ भी हैं जहाँ नित्य प्रेम दया परोपकार और जीवनदान की विचार चर्चा और योजना होती रहती है। कितने ही लोग इतने दयालु हृदय वाले हैं जो एकान्त में, फुरसत के समय, रात को सोने से पूर्व, सुबह जागने पर, तथा अपना काम करते हुए भी, यदा कदा किसी अपंग, दरिद्र, लाचार, आवारा अनाथ बालक युवा या वृद्ध फटे हाल वे घर बार स्त्री पुरुषों को देखकर उनके प्रति प्रेम दया के विचार करके भगवान् से उसकी उन्नति और दुःख दारिद्र्य रोग आदि से मुक्ति के लिए भावना या प्रार्थना करते रहते हैं। अपने जान पहचान वालों के लिए प्रार्थना करते हैं, पड़ोसी के दुष्ट क्रूर अभद्र व्यवहार और कुप्रवृत्ति के सुधार के लिए शुभ भावना और भगवान् से प्रार्थना करते रहते हैं। और जान पहचान वालों, पड़ोसियों या अपरिचित अपंग दरिद्र लाचार, आवारा अनाथ लोगों को उस व्यक्ति के विचार के विषय में कुछ नहीं मालूम रहता।

कोई नहीं जानता कि मेरे विषय में कोई अथवा अमुक व्यक्ति कैसा शुभ या अशुभ विचार करता है। मौन होकर, अप्रकट, गुप्त रूप से हमसे प्रेम, हम पर दया और उपकार करने वालों की सख्या बहुत है, उनकी शुभ भावना के प्रभाव से ही सब की उन्नति होती है। शुभ भावना से ही संसार स्थिर है और एक व्यक्ति की शुभ भावना से दूरस्थ अपरिचित रोगी की पीड़ा भी शान्त हो जाती है, एक व्यक्ति का शुभ दृढ़ सङ्कल्प दूरस्थ आवारा या लाचार निस्सहाय व्यक्ति को प्रेरणा और उत्साह देता है।

एक व्यक्ति ने अपने इस मौन गुप्त अप्रकट रूप से दूसरों के लिए प्रार्थना करने के विषय में अपना हाल बताया है कि मेरे पास नोटबुक में २५० लोगों के नाम दर्ज हैं जिनके लिए मैंने अब तक प्रार्थना की है और करता रहता हूँ। कुछ लोग मेरे घनिष्ट प्रिय मित्र और सम्बन्धी हैं, कुछ जान पहचान के लोग हैं, कुछ को मैं केवल पत्र व्यवहार से नाम मात्र जानता हूँ, कुछ सड़क के किनारे पेड़ के नीचे पड़े रहने वाले, आते जाते राहगीरों से 'एक पैसा' माँगने वाले अपंग दरिद्र वे घर बार लाचार लोग हैं, जिनका नाम मैं नहीं जानता, नाम पूछा नहीं, कभी उनसे बात नहीं की, कभी 'एक पैसा' नहीं दिया, उनकी सिर्फ 'शक्ल' मेरी कल्पना मे चित्रित है क्योंकि उनको मैंने देखा है और उनकी शक्ल की याद कर शुभ भावना उनके लिए भेजा करता हूँ। यदि मैं किसी को 'एक पैसा' न दूँ तो गाली क्यों दूँ, घृणा के विचार क्यों दूँ, इससे तो मेरा ही अन्तस्तल दूषित होगा, अतएव उनके प्रति अप्रकट मौन रूप से शुभ सङ्कल्प प्रेरित करने, भगवान् से प्रार्थना करने में मेरा क्या खर्च होता है? इससे तो मेरा अन्तस्तल पवित्र होता है और उन्हें मेरे शुभ सङ्कल्प पहुँचते हैं।

मुझे ऐसी प्रार्थना करने में बड़ी प्रसन्नता और एक प्रकार से आत्म संतोष की भावना होती है। मैं तो कहूँगा कि मेरी प्रार्थना ईश्वर सुनता है और उसका उत्तर भी देता है क्योंकि मैंने देखा है कि जिस व्यक्ति के लिए मैंने प्रार्थनाएँ की हैं, उसको मैंने कुछ काल बाद प्रसन्न, स्वस्थ, उन्नत और सुखी देखा है, यह देख मुझे और भी अधिक प्रसन्नता और आत्म संतोष प्राप्त होता है। मै परमात्मा से अपने लिए वैभव नहीं माँगता, वैभव तो अस्थायी है और शरीर नष्ट हो जाने पर वह व्यर्थ होता है। शरीर के सम्बन्ध में सांसारिक वैभव की निःसारता को देखते हुए प्रसन्नता, प्रेम, दया, आत्मभाव, स्वास्थ्य कहीं अधिक मूल्यवान् महत्वपूर्ण और सार्थक हैं, मैं तो कहता हूँ कि यही जीवन की सफलता और सार्थकता है। संसार का सारा वैभव पाकर भी मनुष्य में यदि ये बातें न हों, वह राग द्वेष ईर्षा, घृणा, बदला

लेने, लूट खसोट मार काट निर्दयी विचार और कर्मों में रत रहे, तो इनमें अपने आप को खोकर सारा संसार पाकर भी वह किस प्रकार जीवित और प्रसन्न रह सकता है ?

मैं किसी के लिए मौन अप्रकट रूप से क्या करता हूँ, कोई नहीं जानता। मैं किसी की रोग मुक्ति के लिए प्रार्थना करता हूँ, किसी के मनोविकास के लिए, किसी में शुभ विचार उत्पन्न होने के लिए, किसी की यात्रा में सुरक्षा के लिए, सड़क पर चलने वालों की सुरक्षा के लिए, तथा जो लोग मुझसे चिढ़कर यदा कदा अभद्र व्यवहार कर बैठते हैं उनके लिए भी प्रार्थना करता हूँ। इन सब में शुभ सङ्कल्प की प्रेरणा हो, ये मुझे क्षमा करें, मेरा इनके प्रति कोई द्वेष भाव नहीं है, भगवान् सबका भला करे, कोई भी दु:खी न हो।

इन प्रार्थनाओं से कुछ ही वर्षों में मुझे बहुत अनुभव हो गया है और नित्य मेरी श्रद्धा बढ़ती जा रही है। कुछ मरणासन्न लोगों के लिए भी मैंने प्रार्थना की और वे अच्छे [illegible] हो गये और अब प्रसन्न स्वस्थ हैं। उन्हें प्रसन्न देख मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। कुछ बेकार [illegible] लोग नौकरी पा गये, धन्धे में लग गये, उन्नति कर रहे हैं। कुछ अभद्र व्यवहार करने वाले अब मुझसे प्रसन्न रहकर अच्छा व्यवहार करने लगे हैं और अभद्र व्यवहार की अपनी गलती स्वीकार कर क्षमा माँग ली है। कुछ लोगों का दाम्पत्य जीवन कलहपूर्ण था, अब वे प्रसन्नता से प्रेम से रहते हैं।

मुझे खूब अनुभव हो गया है कि एक [illegible] हमारी सब गुप्त अप्रकट भावनाओं और प्रार्थनाओं को सुनता है और उसका फल देता है। सङ्कल्प वृथा नहीं होता।

स्व० सन्त नागरजी भी इसी प्रकार प्रार्थना किया करते थे और अब भी कल्पवृक्ष कार्यालय में प्रार्थना की जाती है। कल्पवृक्ष कार्यालय का आधार यह प्रार्थना ही है।

हिमालय के अंचल से

स्वामी शिवानन्द जी

आपको जब कोई गाली देता है तो आप क्रोधित हो जाते हो। जब कोई आपकी महिमा गाता है तो आप फूले नहीं समाते और जब कोई आपके पास आपके किसी आत्मीय की मृत्यु का समाचार लाता है तो आपको शोक होता है।

जब आपके सामने रसगुल्ला कहा जाता है, आपका मुँह भर आता है। नैनीताल या कश्मीर की बातें कहते ही आपको कश्मीर या नैनीताल के दृश्य दीखने लगते हैं। आप असली घटना-स्थल से हजारों मील दूर ही क्यों न हों, किन्तु ज्यों ही आपसे कोई कुछ कहता है तो आप उन दूर के दृश्यों को अपने सामने देखने लगते हो। ऐसा क्यों है ?

आपको मालूम होगा कि हर एक शब्द में शक्ति है, जो आपके दिल और दिमाग को प्रभावित कर सकती है। गाली सुनने से आपको क्रोध आता तो गीत सुनने से आपको आनन्द आता है। इसी प्रकार निरन्तर भगवान् का नाम जपने से आपके हृदय में नवीन [illegible] की तरंगें उठती रहेंगी, जो तरंगें आप के जीवन के प्रत्येक कर्मों का निश्चय करेंगी। [illegible] का दर्शन करते हो आप [illegible] उपवनों की मनोहर याद करते हो और ऐसी कल्पना करते हो, मानो आप वहीं घूम रहे हों इसी प्रकार जब आप [illegible] करते हैं, तो आपके सामने [illegible] छिपी हुई आदर्श घटनाएँ और [illegible]

होने लगती हैं, जो आपको आपके जीवनपथ पर रोशनी दिखलाने के लिए समर्थ हैं।

आप समझेंगे कि मैं यह सब केवलमात्र तर्क के आधार पर कह रहा हूँ। 'नहीं, यह वैज्ञानिक सत्य भी है। कहा जाता है कि शब्द का प्रभाव वायुमण्डल पर इस गति से पड़ता है कि आप चाहें तो उससे उत्पन्न हुए चित्रों को देख सकते है। टेलीविजन शब्द तरंग की शक्ति का एक उदाहरण है। अतः राम नाम का जप करते रहो। यही आपको शान्ति की ओर ले जायगा।

संसार के आश्चर्य

आचार्य श्री नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ

किसी ने विवश होकर क्या ही आश्चर्य की बात कही है कि—

जनामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः।
जानामि धर्मं न च मे निवृत्तिः॥
के नापि देवेन हृदि स्थितेन।
यथा नियुक्तो ऽस्मि तथा करोमि॥

क्या करूँ, मैं धर्म, कर्तव्य को जानता हूँ पर धर्म में प्रवृत्ति ही नहीं होती। अधर्म, अकर्तव्य को जानता हूँ कि यह नहीं करना चाहिए पर न जाने क्यों बलात्, हठात् मन उधर ही ले जाता है। मैंने तो समझ लिया है कि धर्म-अधर्म करना मनुष्य के हाथ में नहीं। कोई देव भीतर बैठा है वह मनुष्य से जैसा चा करता-कराता रहता है। क्या सचमुच को भीतर देव बैठा है जो मनुष्यों से जैसा च करता-कराता रहता है?

गीता ने कहा है—

ईश्वरः सर्वभूतानां।
हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति॥
भ्रामयन् सर्व भूतानि।
यन्त्रारूढानि मायया॥

सबके हृदय में साक्षी ईश्वर है वही यन्त्र की भाँति प्राणिमात्र को घुमाता रहता है क्योंकि वह साक्षी है, प्राणिमात्र के कर्मों का साक्षी है। वही उनके कर्मानुसार फल भोगने के लिए बुद्धि प्रेरित करता रहता है इसलिए कर्म बन्धन के कारण मनुष्य जैसा चाहता है होने नहीं पाता। कभी मनुष्य को तुरत फल मिलता, कभी देर में, कभी बहुत देर में, कभी फल मिलता भी नहीं जन्म जन्मान्तर में मिलता है—कभी उलटा ही देखा जाता है यह सब ईश्वर के आधीन है जब चाहे, फल दे, न दे, जितना चाहे दे, जिस रूप में दे, जिस अंश में दे। यह सब हमारे कर्मानुसार ही होता है इसलिए जैसा भी फल आये, उसको भुगतने के लिए तैयार रहना चाहिए। सुख हो दुःख हो, पुण्य हो पाप हो भुगतना ही पड़ेगा। छुटकारा नहीं।

अथवा विवशता एक कारण यह भी हो सकता है कि भीतर जो मन है, उसके पीछे दौड़ोगे तो वह तुम्हें जिधर चाहे ले जायगा। क्योंकि मन के पीछे इन्द्रिएँ दौड़ेंगी। वह तुम्हें धर्म अधर्म का विवेक क्यों होने देंगी। इसलिए मन को वश में कर लोगे तो ठीक मार्ग पर चलोगे। मन के पीछे स्वैर गति से जाओगे तो पदे-पदे दुःख, धोका, पतन लगे ही रहेंगे।

जबान लग जाती है

श्री विश्वामित्र वर्मा

बचपन में प्रायः सभी तुतलाते हैं परंतु बाद में जबान साफ हो जाती है और शब्दोच्चारण साफ होने लगता है परन्तु कुछ लोग बड़े होकर भी बोलने में रुकते है। यह रुकावट कई प्रकार की और कई कारणों से होती है। जन्मजात कारण के अतिरिक्त अन्य बाह्य परिस्थितियों का प्रभाव भी मन पर पड़ जाने से कभी कभी व्यक्ति के मस्तिष्क के ज्ञान कोषों में ऐसा आघात हो जाता है कि जोर से आवाज निकाल कर साधारणतया बोलने की अपेक्षा वे फुसफुसा कर बोलते हैं, आवश्यकता पड़ने पर वे चिल्लाकर किसी को पुकार नहीं सकते, वे चिल्लाने पुकारने का कितना भी प्रयत्न करें, उनकी आवाज केवल पास बैठे लोग ही सुन सकते है, दूर वाले नहीं, तथा कुछ लोगों का तो बोलना ही बन्द हो जाता है। वे सब की सब बातें सुनते हैं और दैनिक नित्यक्रम भली प्रकार से करते हैं परन्तु बोलते नहीं, प्रश्नों का उत्तर नहीं देते। बाह्य घटनाओं से मस्तिष्क के भीतरी कोषों पर अचानक असह्य आघात होने से ऐसा हो जाता है और जब तक उन ज्ञान कोषों को सचेत और जाग्रत न किया जाय तब तक व्यक्ति की आवाज नहीं निकल सकती।

पेट में भोजन डालने से रस और रक्त बन कर शरीर में उसका वितरण होता है और शरीर सजीव रहता है परन्तु शरीर की इन्द्रियों का चालक एवं निर्देशक मन है और सब अंगों की क्रियाओं के संचालन एवं निर्देश का कार्यालय मस्तिष्क है। मथुराप्रसाद के यहाँ डाका पड़ा—बीस वर्ष हो गये—तब से उनका बोलना और सुनना बन्द है। परन्तु इसके अतिरिक्त अनेक कारणों से कुछ लोगों की जबान बातचीत करने में रुकती है, दाँत में ओठ या ऊपर तलुवे पर किसी शब्द का उच्चारण करते समय रुक जाती है और एक बात बोलने में प्रथम अक्षर कई कई बार बोलना पड़ता है यथा म म न न मेरा नाम क क क क करनसिंह है। वैद्य हकीम डाक्टरों के पास इसका कोई इलाज नहीं है, लोग इसे रोग नहीं मानते, उनका ख्याल है कि यह नि-[illegible] एक जन्मजात न्यूनता है जो दूर नहीं हो सकती। दवा पेट में जाकर दिमाग में ज्ञान कोष में परिवर्तन नहीं कर सकती। परन्तु वास्तव में यह रोग का लक्षण है। रुक रुक कर बोलना भी न्यूनता है, रोग है।

ऐसी न्यूनताओं का कारण किसी में जन्मजात हो अथवा ऐसी न्यूनता जीवन में किसी घटना विशेष के कारण उत्पन्न हो गई हो तो प्रयत्न करने पर इसके उपचार में लाभ होता देखा गया है। भय मनुष्य का बड़ा घातक शत्रु है और संसार के मानव पर इसका बड़ा प्रभाव है। रोग से पहले भय का बड़ा घातक प्रभाव हमारे शरीर पर होता है। भय के अतिरिक्त क्रोध भी एक ऐसा विकार है कि क्रोधी का शरीर काँपने लगता है और जबान बराबर काम नहीं करती। जितने जबान अटकने वाले हैं, हकलाते हैं या रुकते हैं उनके जीवन की घटनाओं का विश्लेषण करने से मालूम हुआ है कि भय अथवा क्रोध के बाद उनमें ऐसा परिवर्तन हो गया कि कुछ बोलने के पूर्व उनके मन में ऐसा विचार उठता है कि मैं बोल सकूँगा या नहीं। इसी आन्तरिक भय से उनकी वाक् शक्ति क्षीण हो जाती है और जबान रुकने लगती है।

प्रायः सभी लोगों का दाहिना अंग अधिक कार्यकुशल होता है, दाहिने हाथ और दाहिने पैर से वे लोग अधिक शक्ति और कुशलता पूर्वक कोई कार्य कर सकते हैं। इसके विपरीत

कुछ लोगों का दाहिने के बदले बायाँ अंग अधिक चलता है—वे दूसरों की अपेक्षा दाहिने हाथ के बदले सब काम बायें हाथ से कुशलतापूर्वक कर सकते हैं और यदि प्रचलित स्वभाव के अनुकूल बनाने के लिए उन्हें जबरदस्ती दाहिने हाथ से लिखने और सब कार्य करने को कहा जाय और कराया जाय तो उनकी योग्यता कुशलता में क्षीणता आ जाती है, यहाँ तक कि उनकी मनः शक्ति भी क्षीण हो जाती है, वे किसी बात को देर से समझ पाते हैं तथा उनकी जबान भी लड़खड़ाने लगती है।

इसके विरुद्ध, जिनकी जबान लड़खड़ाती है, लगती या रुकती है, उनका दाहिना या बायाँ अंग, चाहे जो सवेज सक्रिय हो, उसे बदलकर दूसरे हाथ से काम कराने का प्रयत्न करने पर उनकी जबान में सुधार होता पाया गया है। यह तो केवल जन्मजात न्यूनता के सम्बन्ध में प्रयोग हुआ, परन्तु जिनमें यह न्यूनता किसी आकस्मिक घटना के कारण हो गई है और उनकी जबान रुकने लग गई है—उनका मानसिक कारण होने के कारण यह उपाय लाभजनक न होगा। उनके मन में से भय, शंका या क्रोध का संस्कार निकालकर निर्भयता, निश्चय और शांति की भावना भरकर सुधार किया जा सकता है। उन्हें भावना करना चाहिए, "मैं दिव्य आत्मा हूँ। मेरा शरीर परमात्मा का मन्दिर है। मेरे शरीर के सब अग और इन्द्रियाँ परमात्मा की हैं और उसी की प्रेरणा से मैं सब कुछ बोलता हूँ। मेरे मुख से परमात्मा के शब्द निकलते हैं अतएव मैं परमात्मा की वाणी बोलता हूँ। अब मुझे भय, शंका या क्रोध का कोई कारण नहीं। मैं आत्मा हूँ, मैं निर्भय हूँ, मेरी वाणी में कोई रुकावट नहीं हो सकती।

आखिर लोग बोलने में किसी शब्द पर क्यों अटक जाते हैं? बार बार उनकी जीभ किसी अक्षर पर क्यों रुक जाती है अथवा कोई शब्द पूरा उच्चारण करने के पूर्व प्रथम अक्षर पर कई बार उनकी जबान क्यों लगती है?

न्यूयार्क के डॉ० ग्रीन ने ऐसी कठिनाइयों की चिकित्सा के लिए एक राष्ट्रीय अस्पताल स्थापित किया है। अपने अनुसंधान तथा अनुभव के आधार पर वे कहते हैं कि इस प्रकार किसी अक्षर पर अटक जाना जिव्हा या वाणी की न्यूनता नहीं है। जब बोलते वक्त कोई किसी अक्षर पर लड़खड़ाता है तो इससे स्पष्ट होता है कि उसकी वाणी सम्बन्धी स्नायु में शब्द प्रकाशन की उतनी उग्र क्षमता नहीं है जितनी उग्रता उसकी मानसिक आकांक्षा में है। वह बहुत शीघ्र बहुत कुछ कह डालना चाहता है परन्तु उसकी स्नायु उसके काबू से उतना काम नहीं कर सकती। कहा जाता है कि अमेरिका में प्रति सैकड़ा एक व्यक्ति की जबान इस प्रकार कुछ न कुछ रुकती है। यह कठिनाई अक्सर दस वर्ष की आयु से आरम्भ होती है। जो बच्चे बहुत छुई-मुई प्रकृति और उग्र स्वभाव के होते हैं जिनमें भावावेश और भावनाओं का प्रभाव बहुत शीघ्र और उग्र रूप से हो जाता है, जो जरा जरा सी बात में, आकस्मिक घटना में आपे से बाहर हो जाते हैं जिनमें बेहद उत्तेजना हो जाती है अथवा जिनके माता पिता या शिक्षक का स्वभाव और व्यवहार बहुत कठोर और उग्र होता है। ऐसे बालकों के मस्तिष्क के ज्ञान कोषों पर बड़ा आघात होता है जिससे शब्द शब्द पर उनकी जबान रुकने लगती है। रुक रुक कर बात करना भी एक बीमारी है। नाड़ी देखने या बोतलों की दवाइयाँ पिलाने से नहीं, वरन् जिन कारणों से यह बीमारी होती है उन कारणों को दूर करने से बालकों को सुधारा जा सकता है।

जबान लड़खड़ाने वालों के मस्तिष्क में इतनी उग्रता रहती है, बेचैनी रहती है कि उनके मस्तिष्क के ज्ञान कोषों को आराम मिलना कठिन होता है। वे किसी विचार पर कुछ देर

भी एकाग्रता नहीं कर सकते। शान्ति से स्थिर नहीं रह सकते। कतिपय बच्चे अपने माता पिता के कठोर शब्दों के भय से तथा शिक्षक द्वारा मारे जाने के भय से, क्रोध और डाँट फटकार से प्रभावित होकर बोलने में लड़खड़ाने लगते हैं। एक बार लड़खड़ाना आरम्भ होने पर बालक सदैव बोलने में लड़खड़ाने लगता है और उसके अन्तर्मन में यह भय समा जाता है कि मैं कुछ बोलूँ या न बोलूँ; मैं कुछ बोल सकूँगा या न बोल सकूँगा, कुछ कैसे बोलूँ? अन्तर्मन में घुसे हुए भय के कारण उसका मन शंकित रहता है। उसे अपने ऊपर निश्चय नहीं रहता। भय शंका और भ्रम उसके लिए बड़ी बाधाएँ हैं।

अस्तु विविध प्रकार के खेलों द्वारा मन बहलाव करके, मस्तिष्क को आराम देकर, विचारने और बोलने का बहुत कम मौका देकर, अधिकतर हँसाने से—पूरी स्वतन्त्रता से मन की गाँठ खोली जा सकती है, यही चिकित्सा है। डॉ० ग्रीन कहते हैं कि बच्चों से प्रेमपूर्वक, धैर्य से, खेलते हुए बोलें तो धीरे धीरे उनमें से भय शंका निकलकर वाणी की स्नायु को शक्ति मिलेगी फिर वह बोल सकेगा। चित्रकारी सिखलाने से भिन्न-भिन्न प्रकार के चित्र अपनी इच्छानुसार खिलवाड़ में बनाने से बच्चों को आत्म प्रकाशन में सहायता मिलती है। यह इलाज प्रत्येक माता पिता और शिक्षक कर सकते हैं। मनोविश्लेषण से यह सिद्ध हो चुका है कि भय और क्रोध के व्यवहार से उनके अन्तस्तल में शंका तथा घबराहट उत्पन्न हो जाती है। अतएव बालकों को चित्रकारी तथा अनेक कलात्मक खेलों में लगाया जाय जिससे वे अपनी इच्छा से स्वयं परस्पर नयी बातें विचारना और बोलना आरम्भ करें तो उनकी जबान खुल जाय। उनका मन खेल में इतना तल्लीन हो जाय कि भय, क्रोध, शंका और घबराहट को [illegible], और अनायास सब कुछ बोल सकें। [illegible] प्रकाशन कर सके, उन्हें कुछ भी बोलने में किसी प्रकार के संकोच या बाधा का [illegible] न हो।

इस सम्बन्ध में माता पिता तथा शिक्षकों को निम्नलिखित [illegible] व्यवहार में [illegible] चाहिए।

१—अपने बच्चों पर क्रोध कर [illegible] भयभीत मत करो।

२—दण्ड मत दो। दण्ड का भय [illegible] दिखाओ।

३ उनकी आदतों और बातों की [illegible] उनकी हँसी न उड़ाओ।

४—उनके स्वाभाविक उत्साह को [illegible] दबाओ।

५—उनसे ऐसा प्रेम व्यवहार करो कि वे तुम्हें अपना आत्मीय समझें। [illegible] समझें।

६—बच्चों के सामने किसी प्रकार के [illegible], चिल्लाकर बातें करना क्रोध [illegible] न करें। ऐसे अमानुषिक [illegible] बच्चों की भावनाओं पर बड़ा घातक प्रभाव होता है।

७—घर का [illegible] व्यवहार प्रेम और धैर्य से करो।

८ किसी बात या काम में [illegible] घबराहट न हो। जिन शब्दों पर बालक [illegible] जाता है उसका [illegible] उच्चारण करने के लिए बालक से बार बार [illegible], [illegible] दुहराने को मत कहो। [illegible] और न्यूनता को बार बार याद न दिलाओ।

९—उनके मित्रों को घर में [illegible], उनके साथ खेलने दें।

१०—[illegible] बातें [illegible] बार उसका [illegible] करो।

स्वास्थ्य साधना

गंगाघाट साधनालय में १६ मार्च से ८ जून १९५३ तक १३ व्यक्तियों ने रोगमुक्ति के लिए ३ दिन से २५ दिन तक उपवास कर यौगिक क्रियाओं और प्राकृतिक उपचार से संतोषजनक स्वास्थ्य लाभ किया।

१. रामचरण लाल पटेल (उरैजा) को तथा उनके लघु भ्राता को पुराने कब्ज से यौगिक क्रियाओं द्वारा पूर्ण अन्तरंग शुद्धि होकर मुक्ति मिली। २. उदयपुर के विद्यार्थी भाटी जी ३. रतनसिंह जी (उज्जैन) ने पुराने कब्ज, मन्दाग्नि के लिए ४ तथा ८ दिन के उपवास क्रमश: किये। इसी प्रकार गोकुलदास जी (उज्जैन) तथा अयोध्यादास जी (कानड) ने १३ और १० दिन उपवास किये। ७. लालू जी (बम्बई) को पुराना कब्ज तथा मधुमेह था, पेशाब में शक्कर जाती थी, बहुत कमजोरी आ जाने से चक्कर और बेहोशी आने की दशा में ३ दिन उपवास के बाद पेशाब में शक्कर जाना बन्द हो गया और छठवें दिन बंसी बजाते मजे में वापस गये।

८. पुरुषोत्तम जी (नागपुर) को पुरानी दबी हुई संग्रहणी और कब्ज से आंतों में एक स्थान पत्थर के समान कठोर हो गया था। १५ दिन के उपवास से वहाँ पुरानी जमी हुई आँव निकल गई और पेट नरम पड़ गया। बराबर भूख लगने लगी तथा साफ बँधा शौच होने लगा।

९. गोपालकृष्ण जी (झाँसी) ने पुराने कब्ज से ५ दिन के उपवास से मुक्ति पाई।

१०. गोपालदास जी (उज्जैन) ने ६ दिन उपवास करके पुराने कब्ज से छुटकारा पाया।

११. ठा० रामलखनसिंह जी (जौनपुर) उम्र ६० वर्ष। जीवन में कभी बुखार नहीं आया, और कभी उपवास नहीं किया था। कई वर्षों से दमा से छुटकारा पाने के लिए बहुत इन्जेक्शन लेकर जीवन से निराश हो गये थे और लोकोक्ति के अनुसार "दमा दम के साथ जाता है" विश्वास करने लगे थे। भूख नहीं लगती थी, आँतें बहुत सुस्त हो गई थीं, और आशा नहीं थी कि जवानी की भूख फिर लौटेगी; तथा पाचक का रस देने पर शंका करने लगे कि पेट में सड़ जायगा। दस्त नहीं होगा। इन्होंने २० दिन उपवास किया और मजे में चलते फिरते रहे। अब भूख लगती है, रोज साफ बँधा शौच होता है। न खाँसी है, न कफ है, न दमा है। दमा चला गया, दम बाकी है। कहते हैं मेरा पुनर्जन्म हुआ है। लोकोक्ति को झूठा सिद्ध कर दिया। विशेष लाभ यह हुआ कि इनकी क्रोधवृत्ति में शान्ति आ गई और एक मानसिक रोग, रात को सोते समय चिल्लाते हुए उठ बैठना, (Somnambulism) भी दूर हो गया।

१२. टूटे-फूटे हवाई जहाज दुरुस्त करने वाले पं० गणेश बिहारी जी (कानपुर) को कई वर्ष पहले संग्रहणी हुई थी। डॉक्टरोपचार से वह दब गई, परन्तु बाद में हर साल उमड़ पड़ती थी। शौच साफ न होता था। छुट्टी पर सैर सत्संग करने आये थे ५ दिन के उपवास में बहुत सी आँव निकली, रोज १ दस्त होते, पश्चात् उपवास तोड़ने पर बँधा हुआ दस्त आने लगा जो कई वर्षों से बहुत दवा लेने पर भी न हो सका था।

१३. गोविन्ददास जी (उज्जैन) ने पुराने कब्ज से दुःखी होकर ५ दिन उपवास कर चैन पाई।

—विश्वामित्र वर्मा

सुख और उसकी प्राप्ति

श्री गुलाब कुमारी शेषावन

जब से इस संसार का आरम्भ हुआ है, प्राणी सुख की खोज में विकल है। वह जो कुछ भी करता है; सुख के लिए। सुख प्राप्ति ही उसका एक मात्र ध्येय है बिना सुख के जीवन को वह जीवन नहीं समझता। शरीर धारण की सार्थकता का मापदण्ड वह सुख ही समझता है। यह मापदण्ड कोई नवनिर्मित नहीं, अपितु चिरकाल से चला आ रहा है। विश्व के किसी वर्गीय जीवन को देखिए—चारों तरफ सुख के लिए ही दौड़-धूप हो रही है। विद्यार्थी पढ़कर सुख प्राप्त करना चाहता है तो भजनानन्दी मधुर भक्ति गायन में सुख ढूंढता है। नेता जनहित और लोकमंगल में सुख को प्रच्छन्न देखता है तो सर्वान्तः सुख से सुखी अमर कवि अपनी काव्य मन्दाकिनी को प्रवाहित कर सुखधारा बहाता है। तात्पर्य यह है कि सुख की लूट प्रत्येक प्राणी को विकल किये हुए है। जिस प्रकार बिजली के तारों में विद्युत प्रच्छन्न रूप से निहित है, उसी प्रकार संसार के कार्य व्यापार के अन्दर सुख लिप्सा निहित है। इसी आशय को स्पष्ट करते हुए भृगु जी भरद्वाज से शांतिपर्व में कहते हैं :—

"इह खलु अमुष्मिल्लोके वस्तुप्रवृत्तयः सुखार्थमभिधीयन्ते" अर्थात् इस लोक तथा परलोक में सारी प्रवृत्ति केवल सुख के लिए है। राजा और रंक, धनी और गरीब, पशु और पक्षी तक इस सुख के उपासक हैं। इस सुख के इतने सर्वव्यापी महत्व को देखते हुए यह प्रश्न स्वाभाविक है कि अन्ततो गत्वा यह सुख है क्या! और क्या वह सम्पत्ति से खरीदा जा सकता है! अगर वास्तविक सुख सम्पत्ति से खरीदा जा सकता था तो लक्ष्मी के कृपापात्र कभी भी सन्त समागम न करते और न ही कीर्तन की पहती धुन में आनन्द से [illegible] [illegible]। अगर द्रव्य ही आत्यन्तिक सुख का कारण होता तो महारानी मीरा, परम नीतिज्ञ राजा भर्तृहरि, परम कारुणिक सिद्धार्थ और महावीर इसे तिलांजलि न देते। आज भी हजारों व्यक्ति धन की निःसारता समझते हैं। और इसके लिए अपने अमूल्य रत्न जीवन को नष्ट नहीं करते। सार यह है कि आत्यन्तिक सुख की प्राप्ति में द्रव्य भी साधन नहीं बन सकता।

इस प्रकार, "जो वस्तु द्रव्य से भी नहीं खरीदी जा सकती और जिसका कोई प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होता" को लेकर कुछ विद्वानों ने इसके अस्तित्व में भी सन्देह किया है। ऋषि महर्षियों ने सुख की स्पष्ट और सात्विक परिभाषा की है।

पराशर गीता में सुख को '[illegible]' कहा गया है। नैयायिकों ने इसे "अनुकूल वेदनीयम् सुखम्' कहा है। भगवान् मनु सुख दुःख की परिभाषा निम्नाङ्कित श्लोक में समास रूप से करते हैं —

सर्वं परवशं दुःखम्, सर्वमात्मवशं सुखम्।
एतद् विद्यात् समासेन, लक्षणं सुख दुःखयोः॥

अर्थात् जो दूसरों के (बाहर की वस्तुओं की) अधीनता में है वह दुःख और जो अपने मन के अधिकार में है वह सुख है।

मनु यह समझते हैं कि सुख और दुःख आन्तरिक अनुभव पर आश्रित है। जो व्यक्ति बाह्य कारणों से आहत नहीं होता और इन्द्रिय संयम रखता है वही सुखी है। इस प्रकार इन लक्षणों में नैयायिकों और मनु के मत में अधिक सामंजस्य जान पड़ते हैं। क्योंकि दोनों ही सुख दुःख को अनुकूल और प्रतिकूल आन्तरिक अवस्था

मानते है। गीता भी इसी से मिलती-जुलती सुख-दुःख की व्याख्या करती है।

वेदान्त ग्रन्थों में सुख को आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक, तीन प्रकार का माना है। परन्तु इन तीनों का हम शारीरिक और मानसिक सुख में अन्तर्भाव कर सकते हैं। और इस प्रकार सुख को शारीरिक और मानसिक के भेद से द्विविध कहा जा सकता है। शारीरिक को आधिभौतिक सुख कहा जाय तो कोई विप्रत्तिपत्ति नहीं समझनी चाहिए। शारीरिक सुख से अधिक महत्व मानसिक सुख का माना गया है। शारीरिक सुख की अनुभूति मानव को होती है पर मन द्वारा। क्योंकि समस्त कर्मेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ स्वतः किसी भी वस्तु का ज्ञान नहीं कर सकतीं। मन के पूर्ण सहयोग से ही इन इन्द्रियों को स्वधर्म विषयानुभूति होती है। नैयायिकों ने मन का लक्षण करते हुए इसी तथ्य पर बल दिया है। वे लिखते हैं—

"सुख दु ख साधन मिन्द्रियं मन."

अर्थात् – मन इन्द्रिय सुख और दुःख का साधन है। कर्ण, नासिका, त्वचा और चक्षु बिना मन के सहयोग के श्रवण घ्राण, स्पर्श और दर्शन नहीं कर सकते। इसी आशय को महाभारत में निम्नाङ्कित रूपेण बतलाया गया है :—

"चक्षु पश्यति रूपाणि मनसा न तु चक्षुषा"

बृहदारण्यकोपनिषद् में भी इसी स्थिर तथ्य को कथानक के रूप में "अन्यत्रमना अभूवम् नादर्शम्" कहकर प्रकारान्तर से व्यक्त किया गया है। हम आज भी यह देखते हैं कि सुषुप्तावस्था में मन के श्रान्त हो जाने पर ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ स्वधर्म विषयानुभूति नहीं कर सकतीं। यही कारण है कि निद्रितावस्था में हम निश्चेष्ट और जड़वत् हो जाते हैं और बाह्य व्यापार का ज्ञान हमें तत्क्षण नहीं हो पाता।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि मन ही सुख और दुःख में प्रधान कारण है। इसके निग्रह करने के बाद सुख प्राप्ति कोई बड़ी चीज नहीं रह जाती। पर जितना यह कह देना कि 'मन पर विजय प्राप्त करो' सरल है उतना ही करना कठिन है। भक्तप्रवर अर्जुन के चित्त को भी इस मन ने कंपायमान कर दिया था—परन्तु भगवान् ने उसे भी "अभ्यासेन तु कौन्तेय। वैराग्येण च गृह्यते" का उपदेश देकर समर्थ बनाया।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मन को वश में करना सुख की एक मात्र कुञ्जी है। और मन को स्वतन्त्र बना देना दुःख परम्परा है। आज इस भौतिक युग में मन पर नियन्त्रण का अभाव है। क्योंकि इस युग में वैज्ञानिक यन्त्र सुखाभास प्रदान करते हैं। जिस प्रकार हरे घास को देखकर अश्व ग्रास लेने को तत्पर हो जाता है, उसी प्रकार इन सुखाभासजनक यन्त्रों को देखकर साधक का मन चंचल हो जाता है और यही चंचलता उसके विनाश का कारण बनती है। इसीलिए इसे हम उद्दीपक युग भी मानते हैं। इस भौतिक युग में भूतो द्वारा आत्यन्तिक सुख प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। मेरे विचार से दुःख एक व्याधि है। इसका उपशमन तभी हो सकता है जब कि पंचलक्षण निदान करके पथ्यापथ्य के साथ रोगी को औषधपान कराया जाय।

विज्ञान रोगी की दुःखरूप व्याधि का मानसिक निदान नहीं जानता प्रत्युत उसकी व्याधि को बढ़ाने में सहकारी कारण बनता है, अतः उससे मानसिक शान्ति प्राप्त करना पल्लव सिंचन से वृक्ष को हरा भरा करने के समान है। यही कारण है कि आज वैज्ञानिक युग के उन्नतावस्था में पहुँच जाने पर भी संसार में घोर अशान्ति और आधि व्याधि का साम्राज्य छाया हुआ है। इसका एकमात्र कारण वैज्ञानिकयुग का हीन उद्देश्य है। विज्ञान-युग का उद्देश्य वस्तु उपभोग है। वह वस्तु के उपभोग में शांति और आत्यन्तिक सुख ढूँढ़ता है, वह केवल मृगमरीचिका है। क्योंकि—

न जातु कामः कामानाम् उपभोगेन शाम्यति,

हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते।

अर्थात् सुखों के उपभोग से विषयों की तृप्ति तो होती ही नहीं अपितु वह भोग की ज्वाला उसी प्रकार बढ़ती है जैसे हव्य को पाकर अग्नि। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि कलि में सुख नहीं मिल सकता। मिल सकता है पर उपभोग के उद्देश्य से नहीं, त्याग के उद्देश्य से।

महाभारत में दुःख की औषधि बताते हुए भगवान् व्यास ने लिखा है कि—

"भैषज्यमेतद्दुःखस्य यदेतन्नानुचिन्तयेत्"

अर्थात् मन से दुःख का चिन्तन करना ही दुःख निवारण की अचूक दवा है। गीता इस विषय को और भी अधिक गहराई से विचार कर निष्काम कर्मयोग का पाठ पढ़ाती है। समता स्थित प्रज्ञदर्शन सुखोपलब्धि का अचूक औषधि है।

प्रश्नोत्तरी

फरीदपुर (बरेली) से एक भाई ने बहुत से प्रश्न पूछे हैं जिनका उत्तर देने के लिए कल्पवृक्ष के पूरे दो मास के दो अंकों की आवश्यकता होगी। अस्तु हम कुछ सबसे महत्वपूर्ण प्रश्नों का बहुत संक्षिप्त उत्तर इन पृष्ठों में दे रहे है। पाठकों से प्रार्थना है कि संक्षिप्त वाक्यों में प्रश्न करें और कल्पवृक्ष में छपे किसी लेख पर शंका व प्रश्न अथवा आलोचना करने से पूर्व विवेक बुद्धि से स्थिरतापूर्वक स्वाध्याय कर लिया करें। किसी लेख का दो चार वाक्य पढ़कर ही कुछ धारणा बनाकर आलोचना कर बैठना उचित नहीं। और इस प्रकार आये हुए बहुत से प्रश्नों का उत्तर हमारे लिए इन पृष्ठों में देना भी संभव नहीं।

१ एक भाई उम्र ३० वर्ष, दो बार खूब चबा चबाकर हलका भोजन करता है। सप्ताह में एक दिन उपवास करता है, ईश्वर स्मरण करता है, फिर भी १५ वर्ष से सख्त कब्ज व धातु विकार है। तीन घण्टे शौच के लिए बैठा रहता है, चार चार दिन शौच की हाजत नहीं होता। ऐसा ही एक दूसरा भाई संयमी सदाचारी है, ईश्वर भक्त ब्रह्मचारी है, दश वर्ष से कब्ज व धातु विकार है, कोई कुसंगति या कुटेव नहीं है। स्वप्नदोष रोकने की सब क्रियाएँ, साधन व इलाज कर चुका है, स्वप्नदोष नहीं बन्द हुआ। वह शीर्षासन, पद्मासन, व्यायाम करता है। एक महात्मा ने स्वप्नदोष निवारक मन्त्र बताया, उसका ६ मास जप किया, कुछ न हुआ। मन पवित्र रखता है किन्तु सोते समय मन पर अपना कोई अधिकार नहीं रहता। ब्रह्मचारी बनो तो भी ठिकाना नहीं है। ऐसा ही एक तीसरा भाई है, दश वर्ष से बारहो महीने जुकाम बना रहता है, हर वक्त नाक बहती है और भोजन में भी टपक पड़ती है। चौथा एक १५ वर्षीय भतीजा है, बैठे या लेटे से उठने पर आँखों के सामने अँधेरा छा जाता है, चक्कर आता है। इसके सिर पर "भुसी" हो गई है। इन सबको अचूक उपचार बतावें।

उत्तर—इन सबको आप कम से कम एक मास के लिए हमारे आश्रम गंगाघाट पर भेज कर रखने की व्यवस्था कीजिए।

२ आजकल नवयुवकों के मुखड़ों पर झाईं कील, मस्से तिल मुँहासे बहुत निकलते हैं एवं मुख का रंग बिगड़ गया है, इसका सरलतम अचूक उपाय लिखें।

उत्तर—यह सब पेट के विकार, कब्ज, मनोविकार तथा असंयम से होते हैं जिससे रक्त दूषित हो जाता है। खूब पानी पियो, हाथ

भाजी अधिक खाओ, कब्ज दूर करो, संयम से रहो।

३—एक भाई आयु २५ वर्ष, श्वास लेते, चलते दौड़ते, छाती में दर्द होता है। चैत्र मास में हाथ पैरों में नन्हें नन्हें दाने निकलते हैं, गर्मी व खुजली होती है, खाल पककर सफेद हो जाती है, काट देते हैं, नाखून भी निकल जाते हैं। १० १५ वर्ष हो गये।

उत्तर—पूरी परीक्षा कराकर उचित उपचार कराइए।

४—नपुसकता नामर्दी दूर करने का अचूक सरलतम उपाय बतावें।

उत्तर—यदि यह जन्मजात नहीं है तो, इसका इतिहास लिखिए और उस व्यक्ति को हमारे यहाँ एक मास के लिए भेज दे।

५—बहुत से १०-१२ वर्ष के बच्चों के बाल सफेद हो गये हैं और झड़कर गिरने लगे हैं। सफेद बाल सदा के लिए काला करने का नुस्खा बताइए।

उत्तर—यह नुस्खा हमें नहीं मालूम। हाँ, इतना आवश्य जानते हैं कि जो विचार और भोजन तथा रहन सहन में संयम रखते हैं, अनुचित विचार, या अनुचित तत्वों (भोजन, तेल मालिश) का सेवन नहीं करते, चिन्ता नहीं करते, प्रसन्न रहते हैं, उनके बाल कमजोर नहीं होते।

६—भोजन के समय पानी पीना चाहिए या नहीं ? या पहले पानी पी लें। भोजन करते प्यास लगे तो क्या करें ?

उत्तर—शरीर की प्रकृति ऐसी नहीं है कि भूख के समय पानी माँगे। यह तो भोजन और भोजन करने की क्रिया पर निर्भर है। भोजन गरमागरम चटपटे मसालेदार हो, मुँह में डालते ही, बिना अच्छी तरह चबाये गले से नीचे उतार लिया जाय तो पानी पीने की आवश्यकता होती है पर वह प्यास नहीं है। भोजन सादा हो और चबा-चबाकर उसे मुँह में ही पानी की तरह बना लो तो प्यास लगने का प्रश्न न उठे। भोजन के आधा घण्टे पहले पाव आध सेर पानी पी लेना बुरा नहीं है।

७—मनुष्य का आत्मा (जीव) मरकर कहाँ जाता है, इसे कौन ले जाता है, वह क्यों जाता है, किसके पास जाता है, कब लौटकर कहाँ आता है ?

उत्तर—आत्मा कोई व्यक्ति या रूप नहीं जिसका आवागमन हो। कहीं आता जाता नहीं। आत्मा मरता नहीं।

८—लोग कहते हैं कि मनुष्य (जीव) का पुनर्जन्म होता है। मैं पूछता हूँ कि शरीर से जीव निकलने पर पुनः वीर्य में अथवा गर्भ में घुस जाता है ? यह कैसे होता है ? वीर्य तो भोजन से बनता है। भोजन जड़ है फिर वीर्य में जीव होते हैं, सो जड़ से चेतन जीव कैसे बना ? लोग कहते हैं मनुष्य ईश्वर का बनाया हुआ है। परन्तु मैं पूछता हूँ कि स्त्री पुरुष का संयोग न हो तो ईश्वर क्या कर सकता है ?

उत्तर—हाँ, लोग कहते हैं कि जीव का पुनर्जन्म होता है, और शास्त्रों में भी ऐसा लिखा है। तथा पुनर्जन्म के इक्के दुक्के उदाहरण भी मिलते हैं, परन्तु वह वास्तव में पुनर्जन्म नहीं, और पुनर्जन्म को दिव्य विधान नहीं है, क्योंकि मनुष्य को मोक्ष पाने के साधन भी हैं, और मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है। मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः। अपनी कल्पना, विश्वास, ज्ञान के कारण मनुष्य बन्धन में होता है या मुक्त होता है। जीते जी संसार में जो अनासक्त मुक्त भाव से रहते हैं उनको पुनर्जन्म का भय नहीं। जो पार्थिव मोह वासना में डूबे रहते है, मरने पर उनके संस्कार भी वैसे रहते हैं और ऐसे व्यक्ति संसार भोग के लिए पुनः किसी शरीर में उसके मन पर अधिकार कर लेते हैं, एक प्रकार की भूत बाधा समझिए। यदि पुनर्जन्म सचमुच दिव्य आवश्यक विधान होता तो सबको अपना अपना कुछ स्मरण या आभास

पूर्व जन्म का होता। इक्के दुक्के उदाहरण सर्वमान्य सत्य नहीं माने जा सकते। दिव्य विधान में चमत्कार या अपवाद की कोई गुंजा-यश नहीं। वीर्य भोजन अन्तिम चेतन उत्पादक सत्व (बीज) है। भोजन जड़ नहीं है। संसार में कुछ भी जड़ नहीं है। पत्थर मिट्टी धातु वृक्ष भी। उनकी चेतनता हमें प्रतीत नहीं होती। जो लोग पुनर्जन्म की बात कहते हैं उनसे ही पूछिए कि वे अपने पूर्व जन्म का सबूत दें। पुनर्जन्म मानने वाले सभी लोग सबूत दे सके तो यह सर्वमान्य हो सकता है और पुनर्जन्म किस प्रकार होता है, मरे हुए व्यक्ति का आत्मा मरने के कितने वर्षों बाद किस परिस्थिति या दशा में कब किस समय किस प्रकार वीर्य अथवा गर्भ में प्रवेश करता है, जन्म से पूर्व या जन्म से बाद, यह सब वे ही लोग बतावेंगे। इस विषय में केवल ग्रन्थ प्रमाण मान्य नहीं। अपना अपना सबका सच्चा अनुभव चाहिए। हमारी समझ में तो यह नहीं आता। यदि यह दिव्य विधान है तो सब जीवों में सिद्ध होना चाहिए। यथा पंचतत्व का प्रभाव सब पर होता है। धूप सब पर पड़ती है, आग सब को जलाती है, श्वास के बिना कोई नहीं जीता, यह सब केवल सिद्धान्त नहीं वरन् सत्य है। इसी प्रकार पुनर्जन्म भी सर्वत्र सत्य होना चाहिए, नास्तिक और आस्तिक दोनों के लिए, चाहे कोई माने या न माने। अन्धा व्यक्ति सूर्य को देख नहीं सकता किन्तु उस पर धूप पड़ती है। और मनुष्य ईश्वर का बनाया हुआ है अथवा किसका बनाया हुआ है, यह संसार में आप देख रहे हैं, परन्तु संसार में सब से पहला आदमी औरत कैसे पैदा हुए, इसे किसी ने नहीं देखा, कोई नहीं जानता, इसका कोई इतिहास नहीं। आज का भी कोई मनुष्य स्वयं नहीं जानता और सचाईपूर्वक नहीं कह सकता कि मैं कैसे कब कहाँ पैदा हुआ और किसने पैदा किया। जन्म के पश्चात होश आने पर भाषा सीखने पर, बुद्धि का विकास होने पर वह ये सब बातें अपने पालक से सुनता है और माता पिता आदि का सम्बन्ध जानता है। ईश्वर अलग कोई व्यक्ति या सत्ता नहीं है तो स्त्री पुरुष संयोग के बिना उत्पत्ति करे, वरन् सब नर मादा प्राणी ईश्वर रूप प्रतिनिधि स्रष्टा हैं और संयोग विधान से उत्पत्ति करते हैं।

९—मनुष्य का आत्मा (जीव) मनुष्य के शरीर में कहाँ पर निवास करता है? क्या आत्मा निराकार है? मनुष्य का जीव क्यों पैदा होता है और क्यों मर जाता है? इसे कौन मारता है, जीव कहाँ से आता है? मनुष्य की मृत्यु होने पर क्या आत्मा (जीव) मर जाता है?

उत्तर—आत्मा शरीर में किसी विशेष स्थान पर नहीं, अर्थात् सर्वत्र व्याप्त है, निराकार है जैसे तार में बिजली। पैदा होने और मरने का नाम ही संसार है। संसार की लीला है। यदि यह लीला न हो तो संसार निरर्थक नीरस बन जाय। जब तक संसार है, मरना जीना आवश्यक है। अन्यथा संसार की आवश्यकता न रहेगी। जीव को न कोई मारता है, न वह कहीं से आता जाता है। मृत्यु होने पर क्या होता है यह तो मरने पर ही मालूम होगा, पहले कैसे कह दें। मरता है शरीर, मरने पर, अपने मन के बन्धन या मोक्ष के विश्वास या ज्ञान साधना के अनुसार मन के संस्कार (सूक्ष्म शरीर) विकास करता है। स्वप्न में आपका क्या रूप रहता है? इसी प्रकार कुछ समझिए।

१०—वेद पुकार पुकार कर कहता है कि मनुष्य को आपत्ति रहित काल में केवल एक सन्तान पैदा करना चाहिए। आजकल बहुत सन्तान हो रही है इसमें ईश्वर का दोष है या मनुष्य का?

उत्तर—परन्तु वेदों को पढ़ता कौन है, समझता कौन है, जानता कौन है और मानता कौन है, आचरण करता कौन है? तभी तो

आबादी बढ़ने से सङ्घर्ष, युद्ध और विनाश होते हैं। मनुष्य ईश्वर का प्रतिनिधि रूप, संसार की व्यवस्था का सर्वेसर्वा संचालक है। यह उसकी व्यवस्था का विकार है, असंयम का अभिशाप है।

११ - क्या जीव ईश्वर का अंश है और ईश्वर का बनाया हुआ है और अनादि है? यदि जीव को ईश्वर बनाता है तो कब बनाता और कब नष्ट कर देता है? क्या जीव मोक्ष पाने पर ईश्वर में मिल जाता है? और मोक्ष से कब लौटता है? मोक्ष कहाँ स्थान है? ईश्वर साकार है या निराकार? और कहाँ है?

उत्तर—'ईश्वर अंश जीव अविनाशी'। मोक्ष कोई लोक या स्थान नहीं, अपनी मुक्त भावना ही मोक्ष है। अर्थात् आत्म भाव, आत्म स्वरूप, अपने आप में स्थिर होना, बाह्य भ्रामक विश्वासों से, रीति रिवाज परम्परा रूढ़ि से मुक्त होकर अपने आपको मुक्त जानना मोक्ष है। आप घर से बाजार जाते हैं, बाजार से लौटकर घर आते हैं, घर से आगे फिर कहाँ जायँगे?

जैसे आप हैं उससे भी विशाल, विराट् ईश्वर को समझिए। जहाँ आप हैं वहीं ईश्वर है।

११. क्या सूर्य चन्द्रमा तारे भी एक एक विश्व हैं? तो कितने विश्व हैं? सबके नाम लिखे। तारों मे क्या जीव बसते हैं?

उत्तर—हाँ वे सब एक एक लोक हैं, कोई गिनती नहीं। जो आँखों से या दूरदर्शक यंत्र से दिखते हैं उनकी गिनती तो कर भी लें, किन्तु अगणित लोक ऐसे भी हैं जो करोड़ों मील दूर हैं। सूर्य कुटुम्ब में (सूर्य से सम्बन्धित) नौ लोक अब तक मालूम हुए हैं। बुध शुक्र पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि, इन्द्र, नेपच्यून, प्लूटो। ये सब सूर्य के चहुँओर विभिन्न गति से घूमते हैं तथा परस्पर से लाखों मील दूर हैं। सूर्य स्वयं बैठे बैठे अपनी धुरी पर २५ दिन पौने आठ घण्टे में एक बार घूम लेता है और हमारे यहाँ से लगभग नौ करोड़ तीस लाख मील दूर है और हमारी पृथ्वी से ३३२००० गुना अधिक वजनदार है, यदि सूर्य के बीचो बीच पार करने के लिए सुरंग बनाई जाय तो ८६४३६७ मील लम्बी होगी। हमारे और सूर्य के बीच बुध और शुक्र हैं। बुध सूर्य से ३ करोड़ ६० लाख मील दूर है, पौने छबीस घण्टे में स्वयं घूमता है. सूर्य के आसपास ८८ दिन में चक्कर लगाता है और पृथ्वी से छोटा उसके लगभग बीसवें भाग के बराबर वजन का है। शुक्र सूर्य से ६ करोड़ ७२ लाख मील दूर, स्वयं सवा २३ घण्टे में घूमता और सूर्य के चहुँओर २२५ दिन में घूमता और हमारी पृथ्वी के पौन हिस्से से कुछ अधिक वजन का है। जबकि हमारी पृथ्वी सूर्य से नौ करोड़ ३० लाख मील दूर, स्वयं लगभग २४ घण्टे में घूमती है और साल भर में सूर्य का चक्कर लगाती है तथा इसका व्यास ७९१३ मील है। हमारे पीछे मंगल भाई हैं जो हमारी पृथ्वी से छोटे करीब नवें हिस्से के वजन वाले, साढ़े २४ घण्टे में स्वयं घूमते, और हम से ५ करोड़ ९५ लाख मील पीछे होने के कारण सूर्य के आस पास रास्ता बड़ा होने के कारण लगभग २३ महीने में घूमते हैं। बृहस्पति हमसे ३९ करोड़ मील पीछे, पृथ्वी से ३१८ गुने वजनदार, फिर भी करीब १० घण्टे में स्वयं घूम जाते हैं और सूर्य की परिक्रमा हमारे हिसाब से ११ वर्ष १० मास में पूरी कर पाते हैं, इनके बीचोबीच ८०२४५ मील लम्बी सुरंग बनेगी। शनि महाराज हमसे ७९ करोड़ ३० लाख मील पीछे, पृथ्वी से ९५ गुना वजनदार, खुद सवा १० घण्टे में घूमते, तथा २९ वर्ष साढ़े पाँच मास में सूर्य की परिक्रमा करते हैं, इनके बीचोंबीच सुरंग ७५,००० मील लम्बी होगी। इन्द्र भगवान् हमसे १ अरब ६८ करोड़ ६८ लाख मील पीछे, पृथ्वी से १५ गुने भारी, ८४ वर्ष ७ दिन में सूर्य की परिक्रमा करते हैं। नेपच्यून हमसे २७ अरब ४ लाख

मील पीछे है १६४ वर्ष ६ मास में सूर्य की परिक्रमा करता है, पृथ्वी से २७ गुना भारी है। प्लूटो हमसे ३६ अरब ७० लाख मील पीछे है २४८ वर्ष में सूर्य की परिक्रमा करता है। जैसे हमारी पृथ्वी को एक चन्द्रमा है उसी प्रकार मगल के दो, बृहस्पति के ग्यारह, शनि के नौ, इन्द्र के चार, नेपचून को एक चन्द्र है और सब की गति भिन्न है।

उन लोकों में जीव होने के सम्बन्ध में वैज्ञानिक लोग अनुकूल वातावरण की कल्पना नहीं करते। वैज्ञानिक कहते है कि हमारी पृथ्वी पर जीने के लिए जो तापक्रम और वातावरण है उसकी अपेक्षा अन्य लोक ठण्डे हैं, कहीं गर्मी अधिक है, कहीं पानी नहीं है, कहीं उपज नहीं है इसलिए इस पृथ्वी से यहाँ की आबादी को कहीं ले भी जाय तो वहाँ जीना असम्भव होगा तथा उन लोकों में प्राणियों की कल्पना भी नहीं करते। परन्तु हमारी समझ से यह भ्रामक और कूपमण्डूक धारणा है। उन लोकों में दूसरी प्रकृति है, और किसी भी लोक में कोई प्राणी है अथवा नहीं अथवा क्या है, अभी निश्चित रूप से कोई नहीं जानता क्योंकि अब तक इस पृथ्वी से बाहर कोई गया नहीं है और किसी ने कोई दूसरा लोक देखा नहीं है। हाँ, तैयारियाँ हो रही हैं। अतिशीघ्रगामी विमान बनाये जा रहे हैं और कुछ वर्षों बाद मालूम पड़ेगा कि किसी लोक में कोई यहाँ से गया और रेडियो द्वारा वहाँ के समाचार, व चित्र प्राप्त होंगे, आवागमन होगा। ऐसी कल्पना से साहसी वैज्ञानिक लोग यंत्र बना रहे हैं अन्य लोकों की प्रकृति की खोज कर रहे हैं, यात्रा की योजना बना रहे हैं।

१२ चाण्डाल और सन्त की आत्मा क्या एक सी होती है? स्त्री पुरुष की आत्मा क्या एक सी होती है? क्या पुरुष अगले जन्म में स्त्री, और स्त्री पुरुष बन सकते हैं?

उत्तर—सबका आत्मा, आत्मा ही है, परस्पर से अभिन्न। स्त्री पुरुष उत्पन्न होने की बात जीव विज्ञान में पढ़िए परन्तु अगले जन्म की आपकी बात हमारी समझ में ठीक नहीं जचती।

१३—भूत प्रेत चुड़ैल क्या हैं। क्या ऐसी भी योनि होती है?

उत्तर—दुष्टात्मा, घोर पार्थिव वासना में लिप्त लोगों के मरने पर उनके संस्कार के कारण वे पार्थिव बन्धन में रहते हैं और जिन पर उनका प्रेम, मोह, या क्रूर अथवा स्वार्थ वासना होती है उस पर उनका सूक्ष्म शरीर मंडराया करता अपना प्रभाव डालता है। इन्हीं को लोग भूत प्रेत चुड़ैल कहते हैं।

१४—क्या मूर्त्ति पूजा करना वेद सम्मत है? क्या रामचन्द्र, श्रीकृष्ण सचमुच ईश्वर थे? क्या सचमुच ईश्वर ने मनुष्य के रूप में किसी को दर्शन दिये हैं?

उत्तर—वेदों को पढ़ देखिए। मूर्ति पूजा करना वेद सम्मत नहीं। रामचन्द्र या श्रीकृष्ण ईश्वर नहीं थे। आदर्श महापुरुष थे। वैसे तो हरेक मनुष्य और प्राणी ईश्वर का साक्षी प्रतिनिधि है। दर्शन के विषय में "जाकी रही भावना जैसी", के अनुसार जो जिस पर श्रद्धा का ध्यान करता है उसको वही दिखता है, यह तो मन का साधन है।

१५—मनुष्य शरीर में कुछ विशेष जीव निवास करते हैं। वीर्य में जीव कहाँ से आते हैं? मृत्यु समय शरीर से जीव को कौन निकालता है?

उत्तर—शरीर में असंख्य कीटाणु जीवाणु हैं, मनुष्य स्वयं एक विचित्र [illegible] है। वीर्य अर्थात् [illegible] समझिए। शरीर एक यन्त्र मात्र है जिसके किसी कल पुर्जे के बेकार हो जाने या सारा [illegible] हो जाने पर यह काम करना बन्द कर देता है, यही मृत्यु है। जीव कोई एक चीज नहीं है जो डाला या निकाला जा सके।

१६—क्या सब का आत्मा एक सा है? आत्मा का क्या रंग, और वह किस वस्तु से बना है? कामदेव जड़ है या चेतन? उत्पत्ति के लिए ईश्वर स्त्री पुरुष सयोग का सहारा क्यों लेता है, स्वतन्त्र सृष्टि क्यों नहीं करता?

उत्तर—सब का आत्मा एक सा, और एक है, जैसे बिजली एक है और उससे नाना विध यन्त्र काम करते हैं। आत्मा कोई रंग रूप वाली वस्तु नहीं जैसे बिजली या आकाश का कोई रूप रंग नहीं। कामदेव कोई देव नहीं, वरन् प्राणी की प्रकृति है, अलंकार की भाषा में उसे देव बना दिया है। उत्पत्ति के लिए संयोग का स्वाभाविक विधान है। ईश्वर कोई व्यक्ति रूप कहीं अलग सत्ता नहीं है जो अचानक जादू चमत्कार की तरह कहीं कुछ कर दे।

१७—सृष्टि के आदि काल में जब स्त्री पुरुष नहीं थे तो किसने पैदा किये? सृष्टि को शुरू हुए कितने वर्ष हुए, सृष्टि कब तक चलेगी? सृष्टि का अन्त होने को अभी कितने वर्ष शेष रह गये हैं?

उत्तर—इसे कोई नहीं जानता, इसका कोई प्रमाण अथवा इतिहास नहीं। आदि पुरुष ने इसका कोई हाल हमारे लिए नहीं लिखा, शायद वे इतना विचार भी न कर सके जितना कि आज मनुष्य करता है। सृष्टि के आदि वा अन्त का हिसाब मनुष्य के पास नहीं है। जैसे सृष्टि का आदि अनिश्चित है वैसे ही इसका अन्त अनिश्चित है। वैज्ञानिक मत है कि सूर्य में विस्फोट हुआ, उसका एक टुकड़ा पृथ्वी है। पहले यह बहुत ही गरम था, ठण्डा होने में करोड़ों वर्ष लग गये फिर क्रमशः वायु, जल, पृथ्वी (मिट्टी धातु आदि) तथा वनस्पति की सृष्टि हुई फिर क्रमशः नाना प्रकार के प्राणी हुए। इसी मत के अनुसार पृथ्वी का अन्त कभी भी हो सकता है। जिस प्रकार रोज तारे टूटते हैं पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र में किसी बड़े प्रभावशाली तारे के भ्रमण काल में उसके चुम्बकीय क्षेत्र के प्रभाव से इस पृथ्वी में विस्फोट होकर महानाश हो सकता है। परन्तु सृष्टि चक्र सूक्ष्मतः इतना व्यवस्थित है कि निकट भविष्य में इसकी कल्पना नहीं की जाती।

१८—ईश्वर दयाशील क्षमाशील सामर्थ्यवान् है तो सब जीवों के पाप क्षमा करके मोक्ष क्यों नहीं दे देता जिससे असार संसार ही सदा के लिए समाप्त हो जावे और हाय हाय मिट जावे। सब जीवों का कल्याण हो जावे, ईश्वर को इसका श्रेय प्राप्त हो जावे। ईश्वर ऐसा परोपकार क्यों नहीं करता?

उत्तर—ईश्वर कोई मनुष्य नहीं है जो परोपकार का श्रेय चाहे। सब जो कर्म करते हैं उसका फल भोगते हैं। जौ बोने वाले के खेत में जौ ही पैदा होगा, गेहूँ, अनार, अंगूर नहीं। संसार को असार कहना नास्तिकता और ईश्वर को बदनाम करने की बात है। यदि आपकी इच्छानुसार संसार से सब हाय हाय मिट जाय, सब का कल्याण हो जाय तो बाकी जो बचेगा वह नीरस होगा। द्वैत विधान ही संसार है, यही बड़ा सार है। दुःख मिट जायगा तो सुख नीरस होगा अर्थात् एकरस संसार। दुःख से ही सुख की खोज होती है, सुख का महत्व होता है। अतएव सृष्टि का विधान द्वैत व्यवस्था से जो है वह बहुत बुद्धिमानी से पूर्ण है, ऊँचे पेड़ों में छोटे फल लगते हैं, जमीन पर फैलने वाली लताओं में बड़े फल लगते हैं, आम जामुन, तरबूज। कल्पना कीजिए आम के पेड़ में तरबूज लगे, फिर कैसा हो? ईश्वर कोई पृथक् सत्ता नहीं जो क्षमा करके सब का कल्याण कर दे, इससे कर्म-फल विधान में अपवाद होता है। मनुष्य अपने आपको क्षमा करे, बस ईश्वर की क्षमा मिली, कल्याण हुआ समझो।

१९—क्या ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वर्ण ईश्वर ने कर्म से बनाये हैं या जन्म से?

उत्तर—ये वर्ण ईश्वर ने नहीं बनाये। कर्म विभाग के अनुसार यह सब मनुष्य की व्यवस्था

है, वह भी भारत में है, भारत के बाहर ऐसी वर्ग, वर्ण भेद की बात कहीं नहीं है। जन्म से किसी का कोई वर्ण नहीं, सब समभाव से मनुष्य मात्र हैं। किसी का कर्म हीन या नीच नहीं। सब का कर्म श्रेष्ठ है क्योंकि सब पारस्परिक सेवा है।

२०—जब गर्भ नहीं रहता तो वीर्य के जीव क्या मर जाते हैं? यदि मनुष्य अखण्ड ब्रह्मचारी रहे तो क्या मनुष्य नहीं मरेगा? क्या मनुष्य को बधिया किया जा सकता है? किस आयु तक? और बधिया होने से स्वप्नदोष से छुटकारा मिल जायगा?

उत्तर—हाँ, जीव मर जाते हैं, और संभवतः किसी के वीर्य में उत्पादक जीवाणु नहीं भी होते। अखण्ड ब्रह्मचारी रहना अस्वाभाविक और अनुचित है। अखण्ड ब्रह्मचारी, पैदा हुआ है तो मरेगा अवश्य। मौत से अब तक कोई नहीं बचा। जन्मे हुए शरीर का अन्त आवश्यक है। हाँ, मनुष्य को बधिया किया जा सकता है परन्तु स्वप्नदोष से छुटकारा पाने के लिए बधिया होना आवश्यक नहीं। और बधिया मनुष्य के जीने से उसे तथा समाज संसार को क्या लाभ? बधिया होने में मनुष्यत्व की सार्थकता क्या? पौरुषहीन जीवन भी कोई जीवन है?

२१—ईश्वर मनुष्य के शरीर में कहाँ पर वास करता है?

उत्तर—किसी विशेष स्थान पर नहीं, अर्थात् सर्वत्र।

२२—कन्द मूल किसे कहते हैं?

उत्तर—आलू, गाजर, शकरकन्द, जमीकन्द, अर्थात् धरती के भीतर रहने या उत्पन्न होने वाली, पेड़ पौधों की जड़, जो खाने या औषधि के काम आवे।

२३—कोई ऐसी सस्ती सुलभ वस्तु बताइए जिसे खाकर वीर्य गाढ़ा होकर पत्थर के समान पुष्ट हो जावे फिर सम्भव है स्वप्न दोष न होवे।

उत्तर—मनुष्य जैसा भोजन करता है उसी से वैसा वीर्य बनता है, इससे आप स्वयं समझ सकते हैं कि पत्थर के समान वीर्य बनने के लिए क्या खाना चाहिए। परन्तु स्वप्नदोष से मुक्त होने के लिए पत्थर खाना आवश्यक नहीं।

२४—वर्तमान में जन-संख्या बढ़ती ही चली जा रही है। लोग कहते हैं कि अच्छे कर्म करने वाले को मनुष्य जन्म मिलता है। वर्तमान समय में बहुत कम लोग अच्छे कर्म करते हैं तो फिर आबादी क्यों बढ़ रही है? सत्युग में लोग शत प्रतिशत पुण्य कार्य करते थे तब इतनी आबादी नहीं थी, जब कि अधिक आबादी होनी चाहिए थी। वर्तमान में कम आबादी पैदा होना चाहिए, सो विपरीत है। ऐसा क्यों है? ईश्वर सब को पुण्य करने की प्रेरणा क्यों नहीं करता?

उत्तर—लोग जो कहते हैं या करते हैं उसकी उन्हें स्वतन्त्रता है। मनुष्य जो करेगा वह अवश्य होगा। इसके लिए हरेक माता पिता जिम्मेदार हैं। ईश्वर तो सदैव प्रेरणा करता है परन्तु मनुष्य अपना विचार और कर्म करने में स्वतन्त्र है। सत्युग में जो आबादी, आपके विचार से बढ़ी हुई होनी चाहिए थी, वह तब न हुई, तो अब हो रही है, ऐसा समझकर सन्तोष कीजिए।

विशेष निवेदन

कल्पवृक्ष के प्रेमी पाठकों और ग्राहकों से निवेदन है कि अब डाक खर्च में रजिस्ट्री का शुल्क ६ आने हो जाने के कारण, वी० पी० द्वारा कल्पवृक्ष मँगाने वालों को ३) देने होंगे। आप वी० पी० न मँगाकर यदि २॥) वार्षिक मूल्य मनीआर्डर द्वारा भेज दें तो आपको बचत होगी।

—व्यवस्थापक

नित्य-योग

पं० श्री० दा० सातवलेकर

(तेईसवें साधन समारम्भ के लिए सन्देश)

इस जगत् में अनेक धर्म, अनेक पन्थ, अनेक मतमतान्तर और उनके साधन मार्ग है। इनको देख कर साधक चक्कर में पड़ता है कि, किस साधन के करने से अपनी उन्नति हो सकती है, यहाँ तो अनेक साधन मार्ग हैं। किसका मैं आचरण करूँ और मेरे योग्य इनमें से कौन सा मार्ग है? भगवान् कहते हैं—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मां एकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुचः॥

गीता १८-६६

'सर्व धर्मों का परित्याग कर और अकेले मेरी शरण आ, मैं तुझे सब पापों से मुक्त करूँगा, अब तू शोक न कर।' पाठको! चलो, अब हम सब इस सत्संग में मिले हुए लोग ऐसा ही करेंगे। प्रथम सब अन्यान्य धर्मों और पथों को छोड़ देंगे और अकेले ईश की ही शरण जायेंगे और ऐसा करने से क्या बनता है वह देखेंगे—

ईश कहाँ है?

श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा कि 'सब धर्मों का त्याग करके अकेले मेरी शरण आ;' यदि ऐसा करना है तो ईश कहाँ है इसका पता लगाना चाहिए। साधक के लिए प्रथम यही करना आवश्यक है। भगवान् साधक का मार्ग दर्शन करने के लिए कहते हैं —

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

गीता ६-३०

'जो मुझको सब में और सब को मुझमें देखता है उसकी दृष्टि में मैं कभी नष्ट नहीं होता और वह मेरी दृष्टि में से भी कभी नष्ट नहीं होता।'

यहाँ ईश को सबमें देखने को कहा है। साधक कहेगा कि 'हमें ईश सब पदार्थों में नहीं दीख रहा है,' फिर हम उसको सर्वत्र उपस्थित किस तरह मानें? सब बड़े विद्वान कहेंगे कि साधन करो, चित्त को शुद्ध करो तब तुम्हें ईश सर्वत्र उपस्थित दीखेगा। इस से लाभ क्या हुआ? अनुष्ठान करते जाओ, जब ईश सर्वत्र दीखेगा, तब समझो कि तुम्हारा चित्त शुद्ध हुआ है।

इससे साधक को क्या मिलेगा? साधक पहिले ही हताश था, इस उपदेश को सुनकर वह और हताश होगा। भगवान् इतना कठोर नहीं है।

विश्वास करो

साधक को तो विश्वास करके ही अनुष्ठान करते रहना है ना? दूसरा उसको मार्ग ही क्या है? फिर यहाँ यह प्रश्न ऐसा उत्पन्न होता है कि साधक को यदि अनुष्ठान पर विश्वास रखना ही है, तब तो वह ईश्वर के सर्वव्यापक होने पर ही विश्वास क्यों न रखे। साधक को किसी वचन पर विश्वास रख कर ही अपना जीवन चलाना है, तब प्रभु की सर्वत्र उपस्थिति पर ही क्यों न विश्वास रखा जाय? यदि किसी वचन पर ही विश्वास रखना है, तो इन वचनों पर ही सुदृढ़ विश्वास क्यों न रखा जाय?

सब साधको, चलो मेरे साथ, हम अब निम्न स्थान में लिखे वचन प्रथम देखेंगे कि वे क्या कहते हैं और उन पर विश्वास रखकर हम अपना व्यवहार कर सकते हैं वा नहीं—

सद्वचन ये हैं—

वासुदेवः सर्वम्। गी० ७।१९

ततोऽसि सर्वः । गी० ११।४०
समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥ गी० १३।२७
समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितं ईश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥ १३।२८
नारायण एव इदं सर्वम् । नारा० २
आत्मा हीदं सर्वम् । नृसिंह० ३६
ब्रह्म वा इदं सर्वम् । नृसिंह० ७; छां० ७।२५।२
सच्चिदानन्दरूपं इदं सर्वम् । नृसिंह० ७
आत्मा एव इदं सर्वम् । नृसिंह० ७
सर्वं हि अयं आत्मा । नृसिंह० ७
सर्वं हि एतत् ब्रह्म । मांडू० २
सर्वो वै रुद्रः । महाना० १३।२
ब्रह्म खलु इदं वाव सर्वम् । मैत्री० ४।६
पुरुष एव इदं सर्वम् । श्वे० ३।१५; नृ०पू० ५।१; ऋ० १०।८०।२
सर्वाणि भूतानि आत्मा एव अभूत् विजानतः । ईश० ७
इदं सर्वं यत् अयं आत्मा । बृ० २।४।६; ४।५।७
सर्वं खलु इदं ब्रह्म । छां० ३।१४।१

इस तरह वेद मंत्रों तथा उपनिषद् वचनों में कहा है कि 'इदं सर्व आत्मा' यह सब जो प्रत्यक्ष दीखता है वह सब आत्मा है, यह सब ब्रह्म है, यह सब ईश्वर का रूप है। श्रीमद्भगवद्गीता के ग्यारहवें अध्याय में 'विश्व-रूप-दर्शन' कराया है। विश्व का जो रूप है वह सब परमेश्वर का, परमात्मा का या परब्रह्म का ही रूप है, यह भाव इस ग्यारहवें अध्याय का है। श्रीमद्भगवद्गीता में 'वासुदेवः सर्वम्' (७।१९) में कहा है कि यह सब विश्व वासुदेव का प्रत्यक्ष है।

यहाँ पाठक कहेंगे कि हमें यह विश्व भगवान् श्रीकृष्ण का, या नारायण का, या परमात्मा का, या परब्रह्म का रूप है ऐसा प्रतीत नहीं होता। हम कहते हैं 'ठीक है।' आपको वैसा दीखता नहीं है यह हम भी जान सकते हैं। पर प्रत्यक्ष जान कर ही सब कुछ मानना होगा तो आपके व्यवहार में कितनी कठिनता होगी, इसका पता थोड़ा सा विचार करने पर आपको लगेगा। आप विचार करके देखिए—

(१) अपने माता पिता ये ही हैं यह किसी ने अपनी आँखों से देखा नहीं, देखना सम्भव नहीं है। दूसरों के वचन पर विश्वास रखकर ही सब मानते आये हैं कि ये हमारे माता-पिता हैं। इसमें प्रत्यक्ष अनुभव लेना सम्भव भी नहीं है।

(२) अपना जन्म किसी ने देखा नहीं, पर सब मानते हैं कि अपना जन्म हुआ है।

(३) आज तक अपना मृत्यु किसी ने देखा नहीं, पर सब लोग मृत्यु से डरते रहते हैं। जो कभी अपने सामने आने वाला नहीं उससे कैसे डरते हैं? विश्वास से डरते हैं।

(४) वैद्य पर विश्वास रख कर औषध का सेवन करते हैं। प्रथम अनुभव लेंगे और बाद में औषध लेंगे ऐसा कहना भी मूर्खता मानी जायगी।

(५) अपना घर या संपत्ति [illegible] जैसा हम मानते हैं वैसा ही है, इसमें किसी के पास प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है, और न किसी [illegible] प्रमाण मिलना संभव है, पर विश्वास से सब व्यवहार चल रहा है।

इसी तरह हम इन उपनिषदों के वचनों पर

विश्वास रख कर चलेंगे, तो ये सद्वचन हमें कदापि धोखा नहीं देंगे। इस कारण हम सब साधकों से सानुरोध प्रार्थना करते हैं, कि इन वचनों पर विश्वास रखो और तदनुसार अपना व्यवहार करते जाओ। अवश्य उन्नति होगी। यही एक मात्र सच्चा साधन है।

'वासुदेवः सर्वम्, नारायणः सर्वं, आत्मा सर्वं, ब्रह्म सर्वं' इसी तरह विष्णु सहस्रनाम स्तोत्र के प्रारंभ में 'विश्वं विष्णुः' कहा जो है। विश्व हमें प्रत्यक्ष दीख रहा है। जिसमें हम रहते, हैं वही विष्णु है। वही वासुदेव है, वही नारायण है, वही परमात्मा और वही ब्रह्म है। उक्त सब वचनों का यही तात्पर्य है। प्रत्येक वचन घोषणा करके यही भाव कह रहा है।

'मां एकं शरणं व्रज' (गी० १८।६६) में कहा है—वह शरण जाने योग्य जो है वह 'विश्वरूपी परमात्मा' ही है। इस पर अटल विश्वास रखिए। इस विषय में संदेह न कीजिए, इसमें संकल्पविकल्प न कीजिए। यह ऐसा ही है ऐसा मान कर व्यवहार करते जाइए।

विश्वं विष्णुः' विष्णु भगवान् का हृदय रूप यह प्रत्यक्ष दृश्यमान विश्व है ऐसा मान कर व्यवहार किस तरह होता है वह देखिए :—

१—आप व्यापार करने वाले वणिक् हैं, तो आपकी दुकान पर ग्राहक आयेगा, वह विष्णु स्वरूप है ऐसा मान कर उसके साथ वैसा सत्यव्यवहार करना आपका कर्तव्य होगा। इससे आपका व्यापार व्यवहार प्रतिक्षण परिशुद्ध होता जायगा। काला बाजार करना आपके लिए असंभव होगा। इस भावना से जो व्यवहार आप करेंगे वह सदा सद्व्यवहार हो होगा। आपका जीवन ही पवित्र होता रहेगा।

२—आप शिक्षक होंगे तो कालेजों और स्कूलों के विद्यार्थी आपके सामने नारायण के रूप हैं ऐसा आप देखेंगे, और आप यह समझेंगे विद्यादान रूप सेवा लेने के लिए प्रत्यक्ष विष्णु ही इतने रूपों में आपके सन्मुख उपस्थित है। इसकी यह सेवा करना ही आपकी उपासना होगी। इस तरह यह अध्यापन ही विश्वरूपी प्रभु की सेवा करने का आपका अनुष्ठान होगा। आपका जीवन ही इस तरह इस अनुष्ठान के लिए समर्पित हो जायगा।

३—आप कारखाने के मालिक होंगे तो आपको यह प्रतीत होगा कि ये सब कर्मचारी प्रभु के रूप हैं। आपका भाव ऐसा होते ही आपका कर्मचारियों से जो सम्बन्ध है वह दिव्यभावयुक्त होगा और यही दोनों की उन्नति करेगा। मालिक और कर्मचारी का सम्बन्ध पवित्रतर होता रहेगा और वह दोनों को सुखी करेगा।

४—आप सरकारी ओहदे पर होंगे तो आपको प्रजाजन ईश्वर के स्वरूप दीखेंगे और उनके साथ प्रेममय पालक का कार्य करना आपका स्वभाव ही बन जायगा। रिश्वतें लेना बन्द होगा। अन्याय करने से आप दूर हटेंगे और आप से प्रजा का उत्तम पालन होगा और आपका शासन दिव्य शासन बनता जायगा। कदापि आप से प्रमाद जानते हुए नहीं होगा।

५—आप न्यायाधीश होंगे और चोर अपराधी बन कर आप के सामने आ जायगा, तो उस समय चोर को योग्य दण्ड देकर उत्तम निष्पक्ष न्याय करना आपका कर्तव्य होगा। आप की परीक्षा लेने के लिए नाना अपराधियों के रूपों में ईश्वर आप के सामने आ जायगा। प्रत्येक मुकद्दमे में प्रत्यक्ष प्रभु स्वयं आपकी परीक्षा लेगा। इन सब में आपने उत्तीर्ण होना है।

इस तरह किसी भी क्षेत्र में आप खड़े होंगे, तो आपके सामने किसी न किसी रूप में ईश्वर खड़ा रहता ही है। आप उसको पहचानें या न पहचानें यह बात और है। पर आप के प्रभु

सामने प्रतिक्षण खड़े हो रहे है, यह आप न भूलिए।

रिश्वत लेने वाला अधिकारी ईश्वर से ही रिश्वत लेता है, व्यभिचारी प्रभु के साथ व्यभिचार करता है, छली और कपटी ईश्वर के साथ छल और कपट कर रहे हैं और सच्ची सेवा करने वाले प्रभु की ही सेवा कर रहे हैं। चाहे लोग मानें या न मानें, सब का व्यवहार ईश्वर के साथ ही हो रहा है। व्यवहार करने वाला वहाँ का वहाँ ही पकड़ा जा रहा है। असद्व्यवहार करने वाला भले ही माने कि मैं दूसरे को ठग रहा हूँ, पर वही उसका भ्रम सिद्ध होता है। क्योंकि सब मनुष्य सदा प्रभु से ही व्यवहार कर रहे हैं। वे मानते नहीं यह उनका अज्ञान है।

नित्य-योग

गीता की परिभाषा में यह 'नित्य-योग' है। यह प्रतिक्षण होता ही रहता है। अन्य साधन किसी समय पर हो सकते हैं और अन्य समय पर नहीं हो सकते। पर यह योग तो नित्य होता ही रहता है। देखिए आप रेल मे बैठे हैं और आपके साथ दूसरे प्रवासी हैं। आपको यदि वे दूसरे प्रवासी प्रभु के स्वरूप हैं ऐसा प्रतीत हुआ, और उनकी सेवा करने के लिए उनको योग्य स्थान आपने दिया तो यह नित्य योग रेल में भी आपसे हुआ। पर यदि आप डटकर सो गये, दूसरे प्रवासियों को बैठने के लिए योग्य स्थान भी आपने नहीं दिया तो वह परमेश्वर के साथ आपने कुव्यवहार किया। यह हर एक से होने वाला नित्य योग है। और यह प्रभु को अपने चारों ओर उपस्थित मान कर ही होता है। यह श्रेष्ठ अनुष्ठान है। प्रति समय इससे व्यवहार की शुद्धि ही होती जाती है। परिशुद्ध आचार व्यवहार होने से ही मनुष्य को परमानन्द की प्राप्ति होती है, जो सब का अभीष्ट है।

आशा है, इस नित्य-योग का अनुष्ठान साधक करेंगे और मुक्ति को सहज ही से प्राप्त होंगे। नहीं तो काला बाजार करने वाले बनिये लाखों रुपये का भोग मंदिरों की मूर्तियों पर चढ़ाते हैं और इससे अपनी सद्गति होगी ऐसा मानते हैं। पर यह उनका भ्रम है। यह नित्य उपासना अपने जीवन में सहज स्वभाव से होनी चाहिए। यह नित्य-योग अपने जीवन का सहज स्वभाव बनना चाहिए। सहज ही से यह होता रहना चाहिए। तब मानव जाति अपूर्व आनन्द को प्राप्त होगी। दूसरा उपाय नहीं है।

कौन हैं नित्य-योग का अनुष्ठान करने के लिए तैयार? वे यहाँ आ जायँ और इसको करें। इसमें प्रति समय अपने, आपको ही विदित होगा कि हमारा आचार ठीक हुआ या नहीं। यहाँ आप ही आप स्वयं परीक्षण होता जायगा। यहाँ आप ही आप अपने मार्ग दर्शक होंगे और प्रति समय अपनी परिशुद्धता बढ़ती ही जायगी।

इस तरह व्यक्ति में शान्ति हो,
राष्ट्र में शान्ति स्थापन हो,
और विश्व में शान्ति स्थिर रहे।

चरित्र निर्माण कीजिए

स्वामी विष्णुतीर्थ जी

(तेईसवें आध्यात्मिक साधन समारम्भ के लिए सन्देश)

आज विश्व एक बड़े कठिन युग में से गुजर रहा है। सर्वत्र अशान्ति और अनैतिकता का साम्राज्य है। जीवनोपयोगी पदार्थों का अप्राकृतिक अभाव चरम सीमा पर पहुँचा हुआ है और ऊपर से तीसरे महायुद्ध के बादल अन्तरिक्ष में विकराल रूप धारण करते चले आ रहे हैं। प्रकृति भी अपनी मर्यादा छोड़ रही प्रतीत होती है, ऋतुओं का परिवर्तन, कहीं अनावृष्टि कहीं अति वृष्टि, वर्षा में नदियों का प्रलयकारी ताण्डव, और ग्रीष्म में जलाभाव से हाहाकार, सब ईश्वरीय कोप के लक्षण हैं। मनुष्यों में धर्म के प्रति अनास्था, माता-पिता और गुरुजनों के प्रति तिरस्कार की भावना, सर्वत्र उच्छृंखलता और नैतिक पतन यह इंगित कर रहे हैं कि—जा को प्रभु दारुण दुःख देहीं। ताकी मति पहिले हर लेहीं।

क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि जो हिन्दू जाति गोरक्षा के लिए प्राण न्योछावर करना धर्म समझती थी, उस ही जाति के सदस्य संसद में गोवध निषेधक का विरोध करते हैं। ठीक ही है, भूखे भारत के नुमाइन्दे हैं और बिभुक्षितः किं न करोति पापम्॥ एक ओर देखते हैं कि लक्ष-लक्ष रुपये लगाकर बड़े-बड़े यज्ञ किये जाते हैं, कीर्तन मण्डलियों में उच्च स्वर से भगवान् के कानों तक आवाज पहुँचाने का यत्न किया जा रहा है, तीर्थों पर बड़े-बड़े मेले लगते हैं जिन्हें देखकर धारणा होती है कि सनातन धर्म की जय में संदेह करने वाला अवश्य अंधा होना चाहिए। परन्तु सामाजिक परिस्थिति पर जब निगाह जाती है तो सर्वत्र हिंसा और असत्य के व्यवहार का बोलबाला है, चोरियाँ, डकैतियाँ, कत्लखून, मारकाट प्रतिदिन की बातें हो गई हैं। गाँवों के स्त्री पुरुष रात्रि को निद्रादेवी की गोद में सुखपूर्वक विश्राम लेकर दिन की क्लान्ति और अशान्ति को भुलाने का भी अवसर नहीं पाते, डाकुओं के भय से त्रस्त बेचारे किसी प्रकार रातें गुजारते हैं। भोजन की वस्तुओं का शुद्ध मिलना असम्भव प्रायः हो गया है और मिश्रित अपवित्र, अशुद्ध, एवं स्वास्थ्य को बिगाड़नेवाले खाद्य पदार्थों से जाति शनैः शनैः यक्ष्मादि रोगों से पीड़ित होकर आत्महननाभिमुख होती जा रही है। व्यभिचार, मद्यपान, सट्टा, कालाबाजार, भ्रष्टाचार, मिथ्याचार अनेक बुराइयों से दूषित समाज का सर्वतो मुखी भविष्य अंधकारमय दिख पड़ता है।

भौतिकवादी पश्चिम के देशों में मानवहित की भावना अथवा आत्माभिमान की भावना इतनी ऊँची सुनने में आती है कि कोई दुकानदार खाद्य पदार्थों में मिश्रण करना सामाजिक पाप समझता है। योरोप के देशों में शाक भाजी या फल बेचने वाले अपनी दुकान पर नहीं बैठते, ग्राहक स्वयं वहाँ लिखे मूल्य को पेटी में डालकर अपनी पसन्द की चीज ले जाते हैं, न दुकानदार बेइमानी करता है, न ग्राहक। अमेरीका में सुनते हैं कि एक रेलवे पर टिकिट नहीं बेचे जाते, यात्री निश्चित भाड़ा स्टेशनों पर रखी पेटियों में डालकर ट्रेन में बैठ जाते हैं। भारत के शिक्षित छात्र तक जो कालिजों में पढ़ते हैं, बिना टिकिट यात्रा करने में अपनी होशियारी मानते हैं। हम अध्यात्मवादी और ईश्वरभीरु हैं, परन्तु दुकान पर बैठ कर ग्राहक को ठगना धर्म विरुद्ध नहीं समझा जाता, रिश्वत लेने का नाम ऊपर की कमाई कहलाती है, जिसे शायद ईश्वर की ही देन कहते हों। समाजवादी

कम्युनिस्ट और धर्मनिरपेक्ष गणराज्य के ठेकेदार तो धर्म और ईश्वर के नाम से चिढ़ते ही हैं, परन्तु धर्म के ठेकेदार और भगवान् के भगतजी भी भगवान् को धोका देकर आत्मतुष्टि करते हैं। कहते हैं भजन से पाप कटते हैं। इसलिए खूब दिन रात पाप करो, और साथ ही कीर्तन मंडली में हाजिरी देकर रोज नहीं तो साप्ताहिक प्रायश्चित कर लिया करो, कैसा सस्ता सौदा है, मनोरंजन का मनोरंजन और पापों से सरल मुक्ति। क्या यह आत्मवञ्चना नहीं है। श्री भगवान् की राय तो कुछ और दिखती है वे कहते हैं—

न मां दुष्कृतिनो मूढा प्रपद्यन्ते नराधमा।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः॥
(गी० ७. १५)

बुरे कृत्य करने वाले मूढ़ नराधम मेरी शरण में नहीं आ सकते, क्योंकि उन का ज्ञान माया से अपहृत होने के कारण वे आसुरी भाव के आश्रित रहते हैं। और

येषात्वन्तगतं पापं जनानां पुण्य कर्मणाम्।
ते द्वंद्व मोह निर्मुक्ता भजन्ते मां दृढ़ व्रताः॥
(गी० ७ २८)

जिन मनुष्यों का पाप, पुण्य कर्म करते करते अन्त हो गया है, वे दृढ़व्रत होकर द्वंद्व मोह से निर्मुक्त मेरा भजन करते हैं।

हमारी करनी कुछ है और दिखावा कुछ। माथे पर तिलक है, कर में माला, जिव्हा पर हरे राम हरे कृष्ण, और हृदय में रागद्वेष की धधकती हुई ज्वाला, व्यवहार में असत्य और हिंसा का व्यापार। क्या यह उचित नहीं है, कि जैसे भगवान् के सन्मुख होने से पूर्व हम भौतिक देह का मार्जन जल मृत्तिका से करना आवश्यक समझते हैं, वैसे ही अपने अन्तःकरण की कालिमा का मार्जन करना अनिवार्य समझें। यदि हमारा चरित्र कलुषित है, हमारी दिनचर्या असत्य व्यवहारों और झूठे वादों से दूषित है, तो हम भगवान् के सन्मुख जाकर यह कहते दिख पड़ें कि हे भगवन्! आज के पापों के लिए क्षमा प्रदान करो और कल के लिए छूट दे दो। आज भारत माता का, स्वतन्त्रता की देवी का यह तकाजा है कि प्रत्येक व्यक्ति चारित्र्यवान बने, देश का चारित्र्यस्तर ऊँचा करे और विश्व में ऋषियों का नाम उज्ज्वल करे। यदि भारत सुख समृद्धि चाहता है तो सत्य नारायण का अनुष्ठान जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में करना होगा, केवल लीलावती कलावती की कथा सुनने से अथवा उसे एक मनोरञ्जन मात्र का साधन बनाने से देश का कल्याण नहीं होने वाला।

मैं प्रार्थना करता हूँ कि साधन समारम्भ में उपस्थित सब सज्जनों एवं माता बहिनों को इस वर्ष सच्चरित्र के कल्याणकारी साधन का व्रत लेकर जाना चाहिए। वे स्वयं चारित्र्यवान बनकर अपने-अपने बालक-बालिकाओं के सामने उच्च चरित्र का आदर्श रखें और अपने ग्राम, नगर अथवा मुहल्ले में सच्चरित्रता के वातावरण का निर्माण करें। आज का समाज पूजा पाठ को आडम्बर, तिलक मालाधारी को पाखण्डी और साधु संन्यासी सन्त महात्माओं को ढोंगी उचक्के समझकर उन्हें तिरस्कार की दृष्टि से देखने लगा है, क्योंकि उनके कृत्य और आचरण में उसे उस आदर्श का अभाव दिखता है, जिस की उनसे आशा की जानी चाहिए। ॐ तत्सत्।

आप का शुभचिन्तक
विष्णु तीर्थ

परलोक में मन का महत्व

लें० :—स्व० ब्रह्मानन्द ब्रह्मचारी अनुवादक :—गोपीवल्लभ उपाध्याय

आज हम परलोक में मनस्तत्व के सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन करना चाहते हैं। क्योंकि हमारा विश्वास है कि इस विषय का भली भाँति परिचय हो जाने पर पृथ्वी के प्राणियों को परलोक-तत्व के विषय में कोई शंका नहीं रहेगी। मनस्तत्व का परिचय न होने के कारण ही यहाँ (परलोक) की अनेक बातों के विषय में लोग विश्वास नहीं करते। क्योंकि वे नहीं जानते कि परलोक में मन का ही राज्य है। अर्थात् पृथ्वी या भूलोक के नियम परलोक में नहीं चलते। वे नियम सर्वथा भिन्न एवं मन पर ही आधार रखने वाले हैं। अतएव मन-तत्व का भली भाँति ज्ञान होने से लोगों का अविश्वास एकदम दूर हो सकता है, ऐसी हमारी धारणा है।

मन एक अत्यन्त जटिल पदार्थ है। उसके पदार्थ (matter) रूप में होने या होने के विषय में अनेक तर्क-वितर्क हो चुके हैं। किन्तु उन तर्कों पर हमें विचार नहीं करना है। हम तो केवल यही बतलाना चाहते हैं कि दार्शनिकों ने जिस रूप में अन्य वस्तुओं को ग्रहण किया है, उसी रूप में इसे भी माना है, किन्तु यदि ऐसा होता तो जिस प्रकार अन्य वस्तुओं को काटकर या उसके टुकड़े करके परीक्षा की जाती है, उसी प्रकार मन की परीक्षा क्यों नहीं की जा सकती?

मन तो सभी के होता है। पशु पक्षी से लेकर मनुष्य तक सभी मनवाले प्राणी हैं। हम परलोकवासी हो जाने पर भी मनुष्य-संज्ञा से परे नहीं हैं, अतः हमारा भी मन है ही। किन्तु भूमण्डल के मनुष्यों के मन से हमारा विशेष प्रयोजन न होने के कारण आज हम केवल परलोकवासियों के मन का ही विवेचन करेंगे।

किन्तु यहाँ पहले से यह बतला देना उचित होगा कि, मनुष्य जब उस पार से इस पार आते हैं, अर्थात् पृथ्वी की भाषा में जब वे मर जाते हैं, तब उनके साथ यहाँ आते हैं—उनके चरित्र, संस्कार, उनके मन और इन्द्रियशक्ति आदि अनेक वस्तुएँ। संक्षेप में यदि कहा जाय तो उसके स्थूल देह को छोड़कर शेष सब कुछ यहाँ आता है। केवल स्थूल देह के बदले उसे सूक्ष्म देह लेकर यहाँ आना पड़ता है। अर्थात् मृत्यु से केवल इतना ही परिवर्तन होता है। यदि यथार्थ में ही देखा जाय तो मनुष्य का स्थूल देह है ही नहीं, वास्तव में है वह सूक्ष्म देह ही—इसीलिए कहना पड़ता है कि ठीक वही मनुष्य एक दिन उस पार से इस पार चला आता है।

इस पर से लोग यह समझते होंगे कि पृथ्वी पर जिस मन के द्वारा मनुष्य सम्पूर्ण कार्य-कलाप संपादन करता है, उसी मन को लेकर वह यहाँ आता होगा। किन्तु यथार्थ में ऐसा नहीं है। वरन् वह मन की परिवर्तित अवस्थाएँ लेकर ही यहाँ आता है।

पृथ्वी पर के मनुष्यों के मन दो भागों में विभक्त हैं। उनमें एक मन है सक्रिय अर्थात् 'वर्किंग माइंड' और दूसरा है अधिकांश समय निष्क्रिय रहने वाला 'स्लीपिंग' मन। उस सुप्त मन को पृथ्वी के लोग 'अन्तर्मन' कहते हैं और दूसरा है 'बहिर्मन'। इस प्रकार मन के दो विभाग हैं। और इनमें जब सक्रिय मन कार्य करता है, तब निष्क्रिय मन अधिकतर सोता है। अतएव सक्रिय मन के कार्यारंभ करते ही निष्क्रिय मन सुप्तावस्था में पहुँच जाता है। और वह कोई भी कार्य करने में असमर्थ हो जाता है। अर्थात् वह किसी भी दशा में सक्रिय मन को दबाकर उस पर अधिकार नहीं जमा सकता। उसे तो

सदा-सर्वदा सक्रिय मन के अधीन ही रहना पड़ता है। इसीलिए हर एक समय उसकी क्रिया सम्पन्न नहीं होती; क्योंकि सक्रिय मन ही सब कुछ करता, देखता, सुनता और जानता है और वही सब विषयों को विचार के लिए बुद्धि के सम्मुख उपस्थित करता है। क्योंकि यही उसका कार्य-क्षेत्र है। अतएव जब वह इन सब कार्यों से विरत होता है, अथवा शिथिल प्रयत्न हो जाता है या निद्रितावस्था में पहुँच जाता है; केवल उसी दशा में निष्क्रिय मन सक्रिय होने का प्रयत्न करता है और बीच बीच में सिर उठाता है।

जो लोग ध्यान करने को थोड़ा थोड़ा प्रयत्न करते हैं, वे ही इसे भली भाँति समझ सकते हैं। ध्यान के प्रयत्न के लिए जैसे जैसे सक्रिय मन की शक्ति क्रमशः क्षीण या कम होने लगती है वैसे वैसे अचेतन मन में नानाविध विषय जागृत होने लगते हैं। यहाँ तक कि जिस विषय को बहुत दिन पहले उस व्यक्ति ने एक बार सुना है अथवा जिस चित्र को उसने एक बार देखा है, अथवा जिस विषय पर एक बार विचार किया है या जिस मुख को अनेक दिन पूर्व उसने देखा है, वे सब व्यापार एक बार फिर उसके सामने उपस्थित हो जाते हैं। इसी कारण लोग कहते हैं कि ध्यान में मन स्थिर नहीं रहता, अनेक प्रकार के विचार उठते हैं और एकाग्रता नहीं होने पाती। अर्थात् इस बात को वह अनायास ही समझ सकता है कि ध्यान की अवस्था का उस समय आरम्भ हो रहा है। अतएव यदि कुछ देर के लिए वह साक्षी बनकर देख सके, तो उसे ज्ञात हो जायगा कि अंतर्मन में क्या क्या विचार उठते और विलुप्त होते हैं। यही अभ्यास क्रमशः बढ़ता जाकर थोड़े ही समय में उसका चित्र ध्येय विषय में संलग्न हो जाता है, अतएव यह बात निःसङ्कोच कही जा सकती है कि अन्तर्मन और बहिर्मन एक साथ कार्यरत नहीं हो सकते।

ऐसी दशा में जब कोई मनुष्य अपने मन को लेकर वहाँ (परलोक में) जाता है, तब उसका मन पृथ्वी पर रहते हुए मन की दशा में न रहकर उसके अन्तर और बाह्य मन एक हो जाते हैं। अर्थात् वह वहाँ केवल एक ही मन को लेकर आता है और वह समग्र मन उस समय सक्रिय हो जाता है। निष्क्रियता का कोई [illegible] उसमें नहीं रहता। इस प्रकार पृथ्वी पर का निष्क्रिय मन परलोक में जाकर सक्रिय बन जाने से ही वहाँ मन इतना शक्तिशाली होता है। पृथ्वी पर सक्रिय मन जो क्षमता धारण करता है, हमारा मन उससे कई गुना अधिक शक्तिशाली होता है। और इसी शक्ति के कारण वह परलोक में समस्त कार्य सम्पन्न करता है। अतएव पृथ्वी एवं परलोक के मन के बीच आकाश-पाताल का-सा अन्तर है। इन दोनों की शक्ति की किसी प्रकार भी तुलना नहीं हो सकती।

हम मन के द्वारा ही सब कार्य करते हैं। मन के द्वारा ही हम करोड़ों मील की यात्रा केवल दो एक मिनट में ही पूर्ण कर लेते हैं। जबकि अत्यन्त शक्तिशाली विमान द्वारा यात्रा करने पर वहाँ तक पहुँचने में कई वर्ष लग सकते हैं। हमें पृथ्वी पर आने में दो मिनट से अधिक समय नहीं लग सकता।

और भी एक दृष्टि से इस विषय का विचार किया जा सकता है। अर्थात् पृथ्वी पर जब कोई साधक [illegible] पर [illegible] एकाग्रचित्त से जिस क्षण हमारा आवाहन करता है, हमारा मन उसी क्षण उसका सन्देश सुन लेता है। और वह एक प्रबल आकर्षण अनुभव करता है। और हम समझ लेते हैं कि कोई हमें बुला रहा है। हम परलोकवासी [illegible]। अतएव उसी प्रकार अनन्य आग्रहपूर्वक हम भगवान् को पुकारें तो अवश्य स्वर्ग में उनका सिंहासन हिल उठेगा और यदि इससे भी अधिक आतुर होकर उन्हें पुकारें तो वे स्वर्ग से आकर उपस्थित हो सकते हैं। वे [illegible]

आ पहुँचते हैं, और उनके आने का साधारण सा परिचय ही हम कीटानुकीट दे सकते हैं। अतएव यथार्थ में यदि देखा जाय तो शक्तिशाली मन के सामने किसी भी शक्ति की कोई कीमत नहीं हो सकती, यहाँ तक कि बिजली या विद्युत शक्ति भी मन के सम्मुख पराजय मानती है।

सारांश, समस्त हृदय, मन को एक करके अन्य विचार न लाते हुए बुलाने से ही भगवान् आ सकते हैं। अर्थात् मन के आकर्षण से ही आकृष्ट होते हैं। और जैसे ही हमें यह आकर्षण ज्ञात होता है, हमारे मन के नेत्र खुल जाते हैं। हमारी दृष्टि उसी क्षण करोड़ों मील दूर तक फैल जाती है और हम देख लेते हैं कि कौन हमें बुला रहा है। और तत्काल ही हम वहाँ पहुँच जाते हैं। हमारे मार्ग में कोई बाधा नहीं पड़ती। किसी टेढ़े मेढ़े मार्ग से नहीं आना पड़ता। हम अत्यन्त वेग से, अतिशय सरल मार्ग से आ जाते हैं इसी कारण पुकारने मात्र से हम तत्काल पहुँच सकते हैं।

संस्मरण

गृहस्थ संत नागर जी

श्री 'माधव' जी

श्री नागर जी का प्रथम दर्शन १९३२ में काशी हिंदू विश्वविद्यालय में हुआ था। आप का 'अध्यात्मवाद' पर प्रवचन होने वाला था, विश्वविद्यालय के ओरियण्टल कॉलेज में। सभापति थे आचार्य आनन्दशङ्कर बापूभाई ध्रुव। श्री नागर जी के साथ एक और सज्जन भी पधारे थे। मै उन दिनों काशी विश्वविद्यालय से प्रकाशित तथा पूज्य मालवीय जी महाराज के सरक्षण में संचालित 'सनातन धर्म' का सम्पादन कर रहा था और पत्र में प्रवचन की रिपोर्ट देने के लिए ही सभास्थल पर आया था। यों नागर जी के नाम और यश से मैं पहले से ही परिचित था और यह जानता था कि सम्मोहन विद्या—हिप्नाटिज़्म और मेस्मेरिज़्म के अनुभवी विद्वान् हैं।

नागर जी का प्रवचन लगभग घंटे भर हुआ। बोलने की उनकी शैली बड़ी ही सम्मोहक थी। मन्द मन्द मुसकान की फुलझड़ियाँ छोड़ते जाते और शान्तिपूर्वक बिना अंग संचालन और जोर शोर के अपनी बात बड़ी ही सरल परन्तु सरस ढंग से कहते। कहीं हाथ पटकना या जोश खरोश का नाम न था। सारा वातावरण ऊँचा उठ गया था और समस्त श्रोताओं में एक अपूर्व अथच अकथनीय शान्ति की दिव्य अनुभूति व्याप्त थी। मुझे स्मरण है, नागर जी इतने धीरे धीरे बोल रहे थे कि मैं एक एक शब्द नोट कर अपने 'सनातन धर्म' में प्रकाशित कर सका था। अन्त में आचार्य ध्रुवजी ने बड़े ही प्रेम और आदर के साथ नागर जी का अभिनन्दन और उनके प्रति कृतज्ञताज्ञापन किया। सभा समाप्त हो जाने के बाद प्रो० जीवनशङ्कर याज्ञिक के साथ मैं डा० नागर जी से मिला। ओरियण्टल कॉलेज के सामने वाले विशाल वटवृक्ष के नीचे चाँदनी खिल रही थी और समस्त विश्वविद्यालय उसमें नहा रहा था। कटहल के पेड़ों से निकलते हुए फूलों की गंध चंपे की गंध को मात कर रही थी। नागर जी का वेश अत्यन्त सीधा सादा था, खादी का सफेद कुरता, खादी की सफेद धोती और पैरों में मामूली जोड़ा। नंगे सिर थे। मूछें घनीं, भौंहें घनीं, सिर के बाल भी खूब घने। सम्पूर्ण व्यक्तित्व मधुमय। नागर जी से मेरी बातचीत कुल पाँच सात मिनट ही हुई

पर मुझ पर उनके सरल व्यक्तित्व और उच्च विचार का गहरा प्रभाव पड़ा।

'सनातन धर्म' के परिवर्तन में 'कल्पवृक्ष' आता था। मैं उसका नियमित पाठक था; 'स्वर्ण-सूत्र' और 'सम्पादकीय' बहुत ध्यान से पढ़ता था और इस प्रकार नागर जी के अधिकाधिक निकट आता जा रहा था। नागर जी के आध्यात्मिक निबन्धों का मुझ पर विलक्षण प्रभाव पड़ा था। उनके लेखों में एक आध्यात्मिक प्रेरणा की बलदायिनी शक्ति ओतप्रोत रहती थी जिसके मूल में था उनका साधु जीवन।

'सनातन धर्म' ने 'कल्याण' का मार्ग प्रशस्त किया। 'कल्याण' में पहुँचने पर नागर जी के साहचर्य का विशेष लाभ मिला। एक काम से मुझे रतनगढ़ (बीकानेर) से बंबई जाना पड़ा। लौटते समय उज्जैन में श्री नागर जी के साथ कुछ दिन निवास का लोभ मैं संवरण न कर सका। संभवतः १९३६ की बसन्त ऋतु थी। मैं बंबई से नागपुर होते हुए भोपाल देखता हुआ उज्जैन पहुँचा। संध्या का समय था; नागर जी अपने कार्यालय की एक बेंच पर बनियाइन पहने बैठे थे। मुझे देखते ही बोले, 'अच्छा माधव जी!' खूब आये! मैं तो आपकी प्रतीक्षा में ही था!' मैंने चरण छू कर प्रणाम किया और उसपर वे 'ॐ ॐ' बोले। मकान के ऊपरी छत पर उनके कमरे के सामने मेरे लिए ठहरने की व्यवस्था हुई और मैं दो एक दिन के भीतर ही 'कल्पवृक्ष' परिवार का अन्तरङ्ग सदस्य बन गया। वहाँ प्रातः प्रार्थना, पर्यटन, हवन, शक्ति संचार, मानसोपचार, प्राकृतिक चिकित्सा, सूचनोपचार (Suggestions) आदि में मैं सक्रिय भाग लेने लगा क्योंकि नागर जी के संग का अधिकाधिक लाभ उठाना था। केवल उनके सोने के समय हम लोग अलग अलग अपने अपने कमरे में सोते थे। शेष सारा समय साथ बीतता था, और ऐसे बीतता था कि पता नहीं चलता था कि कैसे बीता।

इसी बीच श्री नागर जी के साथ एक बार एकादशी के दिन हम लोग 'शान्ति आश्रम' गये। वह श्री नागर जी का मौन दिवस हुआ करता था। उस दिन वे उपवास करते और प्रार्थना, हवन, जप आदि एक नदी के किनारे एकान्त उपवन में करते। पुष्पों से उन्हें विशेष अनुराग था। तुलसी की मञ्जरी पर आपकी बड़ी प्रीति थी। उनके 'हवन' में बैठने वाले वातावरण का प्रभाव सहज रूप में अनुभव करते। एक दिव्य प्रफुल्लता और पवित्रता से समस्त वातावरण स्निग्ध रहता। माता जी अपने हाथ से भोजन बनातीं। भोजन बहुत ही सादा और पुष्टिकर होता। रोटी, साग, पुदीने की चटनी बस। साग प्रायः लौकी या परवल का। एक दिन उन्होंने मेरे लिए कहकर 'श्रीखण्ड' बनवाया। एक दिन हम लोग ताँगे से नगर से सुदूर एक राजमहल देखने गये। वहाँ से लौटते समय अमरूद की बगिया में बैठकर हम लोगों ने खूब स्वादिष्ट अमरूद खाये। एक एक कर सारी बातें याद आ रही हैं और याद आ रही हैं उनकी सलोनी मन्द मन्द मुस्कानों की फुलझड़ियाँ। नागर जी मितभाषी, स्मित-भाषी थे। उज्जैन में श्री नागर जी ने वृद्ध तपस्वी पं० शिवदत्त शर्मा के दर्शन कराये। शर्मा जी के प्रति नागर जी के हृदय में अटूट श्रद्धाभक्ति के भाव थे। मुझे स्मरण है हम लोग जब शर्मा जी के पास पहुँचे तो वे अपने बरामदे में बैठे जप कर रहे थे। मैंने जब कुछ उपदेश की प्रार्थना की तो वे माला दिखा कर चुप हो गये और जप में पुनः तल्लीन हो गये। अभिप्राय स्पष्ट था कि व्यर्थ के वार्तालाप में क्या धरा है, राम नाम जप।

स्व० शर्मा जी से सुनी हुई एक बात भूलती नहीं। वे कहते थे कि नामस्मरण से बढ़कर कोई भी साधना है ही नहीं। वे कहा करते थे कि इसे तीन मालायें रखनी चाहिए—एक पूजा में, दूसरी तकिए के नीचे और तीसरी जेब में

में और कोशिश यही रहे कि सोते जागते सदा सदैव नाम स्मरण होता रहे। वे पहले कट्टर आर्य-समाजी थे पर बाद में राम नाम ही उनका सर्वस्व हो गया था। उज्जैन के पं० शिवदत्तजी शर्मा तथा जयपुर के पुरोहित हरिनारायण शर्मा के लिए मेरे हृदय में अगाध श्रद्धा है। दोनों ही गृहस्थ सन्त जीवन्मुक्त पुरुष थे।

इस प्रकार श्री नागर जी की सन्निधि में विताये हुए आठ दस दिन जीवन को सदा अमृत से सींचते रहे हैं।

उज्जैन से लौटने के बाद श्री नागर जी से मेरा नियमित पत्र-व्यवहार होने लगा। पत्र छोटे-छोटे होते, दो एक अमर वाक्य और फिर कुशल मंगल। कुछ दिन मैं प्राकृतिक उपचार के लिए प्रयाग के 'स्वास्थ्य सदन' में रह रहा था। वहाँ रहते हुए श्री नागर जी के आदेश से मैं कल्पवृक्ष के लेखों का प्रूफ देखता रहा और बीच बीच में उनके जो आदेश आते रहे मैं प्रसन्नता के साथ पालन करता रहा। उसमें मेरा लोभ उनसे सम्पर्क बनाये रखने का ही था।

यहाँ (औरंगाबाद—गया) इस कॉलेज में आने के बाद श्री नागर जी के दो बार दर्शन हुए और दोनों ही बार गया में। दोनों बार वे गया में शहर से दूर एक उपवन में ठहरे हुए थे और आदमी भेज कर मुझे बुलवाया था। दोनों ही बार एक एक दिन का संग मिला। उनकी प्रार्थना, प्रवचन हवन और संध्या आदि में मैं सम्मिलित हुआ। उनके साथ पूज्या माता जी, श्री बन्धुद्वय, श्री विश्वामित्र वर्मा, श्री सत्यात्माजी आदि पुरुष थे। मै स्टेशन तक इन्हें पहुँचाने गया। श्री नागर जी को गाड़ी में बिठा कर मैंने जब आज्ञा लेने के लिए चरण छू कर प्रणाम किया तो श्री नागर जी ने प्रसन्नता के साथ मेरी पीठ पर हाथ फेरा और एक भेदभरी दृष्टि से मेरी ओर देखा। मुझे क्या पता था कि यह चिर-विदाई के पूर्व का अन्तिम मिलन है।

सन् १९५१ के इस अन्तिम मिलन में भी मैंने श्री नागरजी को उसी सादे वेश में देखा जिस वेश में १९३२ में पहले पहल काशी में देखा था, वही खादी का एक सफेद कुर्ता जो अपने ही हाथ का धुला हुआ था, जो खूब साफ था, परन्तु जिस पर सलें पड़ी हुई थीं; खादी की साफ धुली हुई धोती और .....बस।

श्री नागर जी के मधुर व्यक्तित्व के प्रभाव का अनुभव तो कई अवसरों पर हुआ पर मैंने उनका चमत्कार देखा दो अवसरों पर—एक बार जब मेरी माता का साकेतवास हुआ और दुबारा जब मेरा बड़ा लड़का गोपाल जी मुझसे रूठकर 'गोपाल' की गोद में चला गया। घोर दुःख के दोनों ही अवसरों पर मुझे श्री नागर जी ने चमत्कारी ढंग से सँभाल लिया और 'ॐ शान्तिः शान्तिः' के मन्त्र के द्वारा उन्होंने मुझे दुःख के समुद्र में बहने से बचा ही लिया। नागर जी के अनेक अनेक उपकार हैं और उन उपकारों से भी बढ़कर है उनका स्नेह और आत्मीयतापूर्ण व्यवहार। जन्मजन्मान्तर मैं श्री नागर जी की कृपाओं का ऋणी रहूँगा और उनके स्नेह का आभारी रहूँगा। निर्वाण प्राप्त गृहस्थ-सन्त श्री नागर जी के बारे में सहस्र-सहस्र विनम्र प्रणाम। भगवान् हमें शक्ति और स्फूर्ति दे हम श्री नागर जी के चरण चिन्हों पर चल सकें और उन्हीं का सा सादा और पवित्र जीवन की ज्योति विकीर्ण करते रहें।

सन्तं सुशान्तं सततं नमामि

Registered No. N. 277

आध्यात्मिक मंडल, उज्जैन, म० भा०

की

निम्नलिखित शाखाओं में मानसिक, आध्यात्मिक एवं प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा मुफ्त इलाज होता है :—

स्थान — प्रबन्ध और उपचारक

१ कोटा (राजपूताना) श्रीयुत पं० नारायणरावजी गोविंद नावर, प्रोफेसर ड्राइंग, श्रीपुरा
२ हींगनघाट (सी० पी०)—आयुर्वेदाचार्य शोभालालजी शर्मा।
३ उदयपुर (१) (राजस्थान) संचालक आयुर्वेदाचार्य पं० जानकीलालजी त्रिपाठी, चिन्तामणि कार्यालय भूपालपुरा, प्लाट नं० २०१।
उदयपुर (२) लाला जेसारामजी, मार्फत श्री देवराज, टी.टी.ई. रेलवे क्वार्टर्स, बी।२, रेलवे स्टेशन
४ खरगोन (मालवा प्रांत) श्री गोकुलजी पंढरीनाथजी सर्राफ मंत्री आध्यात्मिक मंडल।
५ अजमेर (राजपूताना) पंडित सूर्यभानुजी मिश्र, रिटायर्ड टेलिग्राफ मास्टर, रामगंज।
६ नसीराबाद (राजपूताना)—चाँदमलजी बजाज।
७ दोहरी घाट स्टे. ओ. टी. आर. (आजमगढ़ उ. प्र.) संचालक पं० क्षमानन्दजी शर्मा साहित्यरत्न
८ मन्दसौर (मध्य-भारत) दशरथजी भटनागर, खाद्य इन्स्पेक्टर, जनकपुरा।
९ मिट्ठी भेड़ी (देहरादून पो० प्रेमनगर) महावीरप्रसादजी त्यागी।
१० सरगुजा स्टेट (सी० पी०) लालजीप्रसादजी गुप्त।
११ रतलाम (मध्य भारत)—साहित्यभूषण पं० भालचन्द्रजी उपाध्याय, एजेन्ट कोआपरेटिव बैंक।
१२ गोंदिया (मध्यप्रान्त) लक्ष्मीनारायणजी मादुपोते, बी० ए० एल-एल० बी० वकील।
१३ नेपाल-धर्ममनीषी, साहित्यधुरीण, डा० दुर्गाप्रसादजी भट्टराई, डी० डी० दिल्ली बाजार।
१४ पोलायखुर्द (व्हाया अकोदिया मण्डी)—स्वामी गोविंदानन्दजी।
१५ धार (मध्य भारत)—श्री गणेश रामचन्द्र देशपांडे, निसर्ग मानसोपचार आरोग्य-भवन, धार।
१६ खम्भात (Cambay) श्री लल्लुभाई हरजीवनजी पंड्या।
१७ राजगढ़ ब्यावरा मध्य भारत) श्री हरि ॐ तत्सतजी।
१८ केकड़ी (अजमेर) पं० किशोरीलालजी वैद्य तथा मोहनलालजी राठी।
१९ बुढ़वल (ओ. टी. आर. जिला बाराबंकी) पं० रामशंकरजी शुक्ल, बुढ़वल शुगर मिल।
२० इन्दौर—श्री बाबू नारायणलाल जी सिहल, बी० ए०, एल-एल० बी०, श्री सेठ जगन्नाथ जी की धर्मशाला, संयोगितागंज।
२१ आलोट-विक्रमगढ़ (मध्य-भारत) अध्यक्ष सेठ ताराचन्दजी, उपचारक अनोखीलालजी [illegible]।
२२ अटरू (कोटा राजस्थान)—पं० मोहनचंद्रजी शर्मा।
२३ बारां (कोटा राजस्थान)—पं० मदनमोहनजी तथा सेठ भैरूलाल जी।

व्यवस्थापक व प्रकाशक—डॉ० बालकृष्ण नागर, कल्पवृक्ष कार्यालय, उज्जैन (मध्य भारत)
मुद्रक—भक्त सज्जन, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद–२

स्वर्ण-सूत्र

मधुर वाणी

जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम्।
ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥ अथर्ववेद १:३४:२

मेरी जिह्वा के अग्रभाग में मधुरता हो, जिह्वा के मूल में और भी अधिक मधुरता हो, मधु का झरना हो। मेरे प्रत्येक बुद्धि, और कर्म में मधुरता विद्यमान हो। मेरे अन्तःकरण के चित्त प्रदेश तक मधुरता पहुँचकर व्याप्त हो।

मै माधुर्य प्राप्ति की साधना में लगा हूँ। संसार की प्रत्येक वस्तु के सेवन द्वारा मैं अपने में मधुरता बसाना चाहता हूँ। माधुर्य मेरे सम्पूर्ण जीवन में घुल जावे। मैं वाणी से मीठा ही बोलूँ। मेरी जिह्वा के अग्रभाग में मधु हो, मेरी जीभ का मूल और भी अधिक मधुभरा हो।

माधुर्य को न समझने वाले मनुष्य केवल काम निकालने के लिए भी मधुरता का आश्रय लेते हैं, परन्तु अन्दर द्वेष रखते हुए, यह माधुर्य झूठा है।

अतः मेरी वाणी से जो प्रेममय मधु झरा करता है, वह सदा मेरे वाणी मूल से, मेरे हृदय से, मेरे प्रेम भरे मानस स्रोत से ही आकर झरता है।

मेरा एक एक शब्द मधुमय पुष्प की वर्षा करता है। माधुर्य मेरी प्रत्येक चेष्टा में, प्रत्येक व्यवहार में, मेरी बुद्धि में, मेरे प्रत्येक विचार में, प्रत्येक निश्चय में समाया हुआ है। मेरे सब सङ्कल्प मधुमय हैं। मेरी वासनाएँ, स्मृति व स्वप्न भी मधुमय हैं।

मेरा यह मधुर जीवन धन्य है। यह माधुय परमपिता का प्रसाद और आशीर्वाद है। ऐसा मधुर जीवन पाकर मै धन्य हूं। केवल मेरा जीवन ही नहीं, सारा संसार मधुर है, सबका जीवन मधुर है और यह प्रकाशमय हरित और स्वर्णिम सृष्टि परमात्मा का मधुर आयोजन है।

संस्थापक
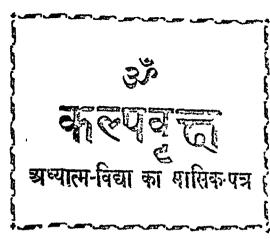
स्वर्गीय डॉ॰ दुर्गाशङ्कर नागर

सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥ गीता ॥

वर्ष ३२ } उज्जैन, अक्टूबर सन् १९५३ ई०, सं० २०१० वि० { संख्या २

वाणी का प्रभाव

संपादक

शरीर के रूप रंग आकार प्रकार भेद से सभी मनुष्य संज्ञा से एक जाति हैं परन्तु उनकी वाणी से उनकी योग्यता और गुण जाने जाते हैं। पञ्चतत्व पञ्चकोष पञ्चप्राण आदि से सब एक समान होते हुए भी जब मनुष्य बोलता है तब वह अपना वास्तविक आत्म प्रदर्शन करता है। वाणी उसका प्रभाव प्रगटाती है। जब तक वह कुछ नहीं बोलता तब तक उसके विषय में कोई कुछ नहीं जानता। संसार का और जीवन का सब काम मनुष्य प्रथमतः वाणी से करता है। वाणी हमारे आत्म प्रदर्शन का प्रमुख साधन है। जिह्वा हिलाये बिना हमें अपना गम्भीर मन्तव्य अथवा कल्पना प्रकट करने में बड़ी कठिनाई होती है। गूँगा इशारे से अपना कुछ काम निकाल लेता है परन्तु हृदय और मन के उल्लास और कल्पना को कैसे प्रकट करे!

मनुष्य बोलता है, परन्तु क्या बोलता है, कैसे शब्दों को बोलता है, उसकी भाषा में कटुता है या मधुरता है, इसी से उसकी पहचान और प्रतिष्ठा होती है। मधुर वाणी से आकर्षण और संगठन कर वह कठिनाइयों को हटाकर बड़े बड़े कार्य सम्पादन करता है। कटु भाषण से विद्वेष और संघर्ष फैला कर सर्वनाश का दृश्य उपस्थित हो जाता है।

मनुष्य के अन्तरङ्ग का प्रदर्शक उसकी वाणी ही है। मनुष्य के हृदय या मन में मिठास है या मैल है, यह अपनी वाणी द्वारा ही वह उडे़लता है। प्रतिष्ठा या अपमान दिलाने वाली, मनुष्य का विकास या विनाश करने में उसकी जिह्वा ही उसका निश्चय करती है। जीवन निर्माण का बीज मनुष्य का विचार है, और वाणी उसका अंकुर है।

आत्मसुधार के साधन में विचार संयम प्रथम है, उसके पश्चात् वाणी का संयम। विचार और वाणी हमारे अस्त्र हैं। इनके द्वारा ही हम अपना जीवन बनाते या बिगाड़ते हैं।

क्या आपने कभी विचार किया है कि वाणी में कितनी शक्ति होती है? आपकी वाणी से शुभ संकल्प निकलते हैं या अशुभ? आप सुगंधित फूल बरसाते हैं या कष्टदायक काँटे!

एक व्यक्ति के मन में संघर्ष का तूफान उसके मुख से ज्वालामुखी की तरह फूट पड़ता है और कुछ लोग उसे सुनकर भयभीत होते हैं, कुछ क्रोध करते हैं कुछ द्वेष और घृणा करते हैं, परन्तु कुछ ऐसे भी व्यक्ति होते हैं जिन पर कुछ प्रभाव नहीं होता। रेतीली जमीन तूफ़ान से उड़ कर एक जगह पहाड़ बन जाती है और कहीं गढ़े हो जाते हैं, वर्षा होती है तो पानी उनमें भीतर प्रवेश कर जाता है। परन्तु चट्टान को न तूफान हिला सकता है, न वर्षा भिगा सकती है। जो व्यक्ति दृढ़ संकल्प वाला और मौन होता है, अर्थात् किसी के अपशब्द सुन कर स्वयं नहीं बोलता, अडिग रहता है, परन्तु कच्चे मन वाले उसकी वाणी को ग्रहण कर प्रभावित होकर प्रतिक्रिया करते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति जो कुछ भी बोलता है वह उसकी जिम्मेदारी है। आप जो कुछ बोलते है वह आपकी जिम्मेदारी है। मन का विचार मन में रखा जा सकता है और विवेक बुद्धि का उपयोग कर निश्चय करके उसे वाणी द्वारा बाहर प्रकट किया जाता है, परन्तु वाणी से निकला हुआ शब्द आकाश में फैल जाता है उसे पकड़ कर वापस मुँह में नहीं लाया जा सकता। अतएव वाणी बोलने में बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है। हमारे शब्दों में किसी के प्रति अभिशाप की भावना प्रकट होती है या वरदान की, हम अपनी वाणी से अपना और दूसरों का सुधार करते हैं या विद्वेष उत्पन्न कर कटुता फैलाते हैं।

शब्द से सृष्टि हुई है और अब भी हो रही है। मनुष्य जो विचार बोलता है उसका प्रभाव उसके जीवन और व्यवहार में होता है, अतएव जीवन की सम या विषम सभी परिस्थितियों में विचार और वाणी का साम्य संयम रखने से आत्मशक्ति बढ़ती है। इस संयम साधन में मुख्य बात यह है कि हम बाह्य संकट और विषम परिस्थिति से प्रभावित होकर विचार न करें और शब्द न बोलें, वरन् अपने अन्तस्तल के मधुमय झरने से सब परिस्थितियों में केवल मधुर दिव्य सङ्कल्प ही बोलें। बुराई और बरबादी में विश्वास न करें, वरन् विकास में विश्वास कर सदैव शुभ धारणा रखकर आशावादी शुभ सङ्कल्प ही बोलें। बाह्य दृष्टि से सृष्टि में मृत्यु और विनाश दृष्टिगोचर होता हो, किन्तु वह है सब केवल सृष्टि के परिवर्तन की विकासशील क्रिया। सृष्टि में विनाश की गुंजायश नहीं, सब विकास और पुनर्निर्माण का ही आयोजन है जो हमारी अल्पबुद्धि से मृत्यु और विनाश प्रगटाता है।

जीवन और मृत्यु विकास और विनाश, रोग और आरोग्य, उन्नति अवनति, गरीबी अमीरी, सुख दुःख आदि द्वैत सब अपने विचार और वाणी के रूप हैं।

मनुष्य जो कुछ बोलता है उसका प्रभाव केवल उसी के जीवन पर ही नहीं वरन् दूसरों के जीवन पर भी और सारे संसार पर पड़ता है। उच्चकोटि के शासकों और नेताओं, महापुरुषों की वाणी का चमत्कार देखो, उनकी बात

दुनिया के लोग मानते हैं, उनकी बात से आर्थिक संकट और युद्ध होता है, उनकी बातों से आर्थिक संकट और युद्ध टलता भी है और शान्ति हो जाती है।

एक व्यक्ति कहता है मुसीबत और महँगाई का जमाना है, गरीबी और रोग फैल रहे हैं, अशान्ति हो रही है, तो वह अपनी बातों से इनका विस्तार और प्रभाव दूसरों के मस्तिष्क में फैलाता है। इसके बदले वह शान्ति सुख और आशा उत्साह की बातों का प्रचार करे तो बहुत सुधार हो जाय। जनसाधारण की बात में अस्थिरता देख कर शासक, नेता और महापुरुष अपनी वाणी द्वारा धैर्य और उत्साह बढ़ाते हैं।

शुभ विचार और शुभ वाणी के लिए कठिन परिश्रम नहीं करना पड़ता, कीमत नहीं खर्च करनी पड़ती, किसी से अच्छे विचार और शब्दों की भीख नहीं माँगनी पड़ती, अच्छे विचार और शब्दों पर किसी राज्य का कोई "कन्ट्रोल" नहीं है, इसके लिए कहीं संघर्ष नहीं करना पड़ता, और इनसे किसी का कोई नुकसान नहीं होता, फिर भी कितने आश्चर्य की बात है कि सुन्दर विचार और शब्द छोड़कर लोग अशुभ और अनिष्ट वाणी बोलकर रोग शोक दुःख अशान्ति फैलाते रहते हैं।

मनुष्य की जिह्वा में शुभ वाणी बोलने के लिए ताला या जंजीर नहीं लगी है। मनुष्य को कुछ भी बोलने की पूर्ण स्वतन्त्रता है, जैसे वह कुछ भी विचार और काम करने की स्वतंत्रता रखता है, परन्तु जैसा विचार या शब्द का काम होता है, वैसा ही उसका फल होता है। हरेक शब्द में उसके अनुसार शक्ति होती है। कोई भी शब्द व्यर्थ नहीं होता। शब्द निर्जीव नहीं होता, और कभी यह मत समझो कि गपशप बकवाद में कहे गये शब्द बेकार हैं, परन्तु उनमें शक्ति का अपव्यय होता है, और कोई शुभ रचना नहीं प्रगट होती।

शब्दों का प्रभाव देखना है तो प्रातः सायं नित्य निम्नलिखित वाक्य कई बार मन में दुहराओ, फिर कई बार बोलकर निश्चयपूर्वक दुहराओ। कुछ ही दिनों में इसका प्रभाव मालूम हो जायगा।

"मैं जीवित हूँ। मैं साहसी हूँ। मैं शक्तिवान् हूँ। मैं प्रेम और आनन्दमय हूँ। मैं स्वस्थ और युवा हूँ। मेरा जीवन सर्वथा सम्पन्न है। मुझे जो आवश्यक है वह सब मिलता है। परमपिता मेरा परम सहायक और आश्रय है। उसका विश्वभण्डार मेरा है। उसके भण्डार में मेरे लिए कोई कमी नहीं। मैं उत्साही और कर्मठ हूँ। मैं सब इष्ट तत्व प्राप्त करने के लिए कर्म करने को तत्पर हूँ। मैं प्रत्येक अवसर पर अपनी योग्यता और शक्ति का प्रदर्शन कर इष्ट प्राप्ति के लिए कर्म करने को तैयार हूँ। परमपिता मेरा प्रेरक और मार्गदर्शक है।

मैं स्वस्थ हूँ, अभय हूँ, बलवान् हूँ, शान्त हूँ और परमपिता का उत्तराधिकारी पुत्र हूँ।"

मनुष्य का मन कभी बेकार नहीं रहता, चाहे मनुष्य सोया हुआ भी हो, मन अपना काम गुप्तरूप से करता रहता है। कभी भी कहीं भी उसे एक विचार मिला, एक शब्द मिला कि उसको पकड़कर उसके अनुसार उसी प्रकार सृष्टि करना आरंभ कर देता है, जैसे कि भूमि में कहीं भी कोई बीज पड़ जाने पर, उस पर उगने की क्रिया होने लगती है। इसलिए यदि आप मन को सचेत न रखेंगे तो मनोभूमि में व्यर्थ घास फूस के समान अनिष्ट तत्वों की सृष्टि होती रहेगी। जनसाधारण की मनोभूमि में ऐसा ही होता रहता है। कोई भी दृश्य देखते, किसी की बात सुनते या स्वयं कोई बात बोलते समय सचेत रहने की बड़ी आवश्यकता है कि हम जो देखें या सुनें या बोलें उससे अनिष्ट का बीजारोपण न हो। इसके लिए मधुर विचार के साथ मधुर वाणी का अभ्यास करते रहें।

याद रखो, जैसे सुमधुर भोजन पसन्द करके ग्रहण करते हो, उसी प्रकार सुमधुर विचार और शब्द ग्रहण करो। अनिष्टकारी, बासी, दुर्गन्धयुक्त सड़ा गला भोजन तो आप पसन्द नहीं करते। मीठा रुचिकर भोजन करके भी फिर कण्टकमय, अशान्तिमय, विचार क्यों करते हो, दुःखदायी विक्षेप प्रचारक शब्द क्यों बोलते हो?

अपने दोष देखना बन्द करो

स्व० सन्त नागरजी के सत्संग से

हमें अपने दोष और अपूर्णता का भान नहीं करते रहना चाहिए। अधिक मनुष्यों का स्वभाव होता है कि वे दूसरों के राई बराबर दोष को पहाड़ बनाकर देखते हैं, और अपने पहाड़ बराबर दोष को राई बराबर भी नहीं देखते। अपना दोष देखना तो आध्यात्मिक मार्ग में हितकर है क्योंकि अपने दोष को जाने बिना दूर नहीं किया जा सकता, पर दोष का चिन्तन नहीं करते रहना चाहिए। जब मनुष्य अपने में किसी दोष विशेष, अपूर्णता या किसी रोग का (जैसे मेरा दिमाग कमजोर है, मुझमें अमुक बुरी आदत है, अमुक अंग में विकार है) इस प्रकार से चिन्तन करे वह उस दोष या रोग को दृढ़ कर रहा है। जैसे जैसे वह रोग सम्बन्धी भावना करता है वैसे उसके अवयव रोगी बने रहते हैं। अतएव सदैव निर्दोषता, पूर्णता और आरोग्य का चिन्तन करना चाहिए। निर्दोषता या पूर्णता का यह भी अभिप्राय नहीं कि मनुष्य अहंकार करने लगे और ध्यान भी न रहे कि शरीर दृष्टि से अपूर्ण और दोषयुक्त हूँ, पर आत्म दृष्टि से पूर्ण और निर्दोष हूँ।

अपने दोष देखने या दूसरों के दोष देखते रहने से हमें दोष देखने की आदत पड़ जाती है। दोष या अपूर्णता से मुक्त होने के लिए आत्म चिन्तन करना चाहिए। अपने को ईश्वर का अमृत पुत्र समझो, जैसे गीता में भगवान् ने,

ममैव अंशो जीव लोके जीव भूत: सनातनः

कहा है। इस प्रकार अपने को ईश्वर का पुत्र समझते हुए अपने में दैवी गुणों की भावना करो। ईश्वर के भव्य भण्डार का अपने को अधिकारी मानो, जैसे एक कोटिपति का पुत्र अपने को धनवान का पुत्र समझकर गर्व करता है वैसे ही तुम्हें ईश्वरपुत्र होने का गर्व होना चाहिए। अपने आपको पूर्णकाम समझो। इस निश्चय को दृढ़ करो, जैसा कि रोज

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदम्

आदि, यह सब पूर्ण है, वह पूर्ण है, पूर्ण से पूर्ण लेने पर पूर्ण ही बच रहता है।

साईं के दरबार में कमी कछू की नाहिं।

सिर्फ तुम्हें ईश्वर पर विश्वास होना चाहिए। ईश्वर तुम्हारी सब आवश्यकताओं को जानता है और उन्हें पूरा करता रहता है। उतना ही तुम्हें देता है जितना तुम्हारे लिए आवश्यक होता है। केवल तुम्हें इस प्रकार का विश्वास हो जाना चाहिए। जब हम दूसरे के पास कुछ माँगने जाते हैं तो अपने आपमें पूर्णकाम की भावना नहीं होती। इच्छा विशेष के आधीन हो जाते हैं, हमें खाली हाथ लौटना पड़ता है, क्योंकि दूसरे के हृदय में भी तो ईश्वर ही प्रेरणा करता है। जीवन में अनेक बार ऐसा अनुभव हुआ कि जब रुपये की अति आवश्यकता थी तभी अकस्मात् कहीं से बीमा आ जाता था। हमारी तो धारणा है कि ईश्वर उस समय चतुर्भुज रूप में (दो भुजाएँ भेजने वाले की, और दो पोस्टमैन की) आकर रुपये दे जाता है। पर ईश्वर पर विश्वास होना भी उनकी विशेष दया के आधार पर है। केवल कहने सुनने से विश्वास नहीं होता। जब मनुष्य अपने में दैवी गुणों का भान करने लगेगा तो उसका जीवन बड़ा पवित्र और उच्च बन जायगा।

स्व० सन्त डॉ० नागरजी द्वारा लिखित "विशाल जीवन" पुस्तक से। मूल्य २), डाकखर्च ॥)

तुम्हें कौन सा आनन्द चाहिए ?

आचार्य नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ

ये जो मनुष्य गन्धर्वों का आनन्द बतलाया

ऐसे सौ

आनन्द मिलकर देव गन्धर्वों का एक आनन्द होता है।

ऐसा आनन्द उस श्रोत्रिय को भी मिल सकता है जो कामनाओं के पीछे मारा मारा नहीं फिरता और कामनाएँ स्वयं उसके पीछे मारी मारी फिरती रहती हैं। ऐसे सन्तोषी के सामने क्या मानुष आनन्द और क्या मानुष गन्धर्व का आनन्द और क्या देवगन्धर्वों का आनन्द ?

कल्पादि में उत्पन्न हुए हुए देवगन्धर्व कहलाते है—

ऐसे

सौ देवगन्धर्वों का आनन्द मिल कर पितरों का एक आनन्द होता है। कैसे पितर ? चिर काल तक स्थायी लोकों में जो रहते हैं, वहाँ के आनन्द का अनुभव करते हैं वे पितर।

ऐसे आनन्द का धनी वह श्रोत्रिय भी हो सकता है जो कामनाओं के पीछे मारा मारा नहीं फिरता है अपितु नाना कामनाएँ स्वयं इसकी कृपा को प्राप्त करने के लिए उसके पीछे दौड़ती रहती हैं और वह श्रोत्रिय उनकी ओर झाँकता तक नहीं। ऐसे सन्तोषी श्रोत्रिय के सामने क्या है ये मानुष आनन्द, मानुष गन्धर्व आनन्द देव गन्धर्व आनन्द और पितरों का आनन्द।

ऐसे

सौ पितरों का आनन्द मिलकर होता है आजानज देवों का आनन्द। देवलोक में उत्पन्न हुए देवयोनि को प्राप्त हुए देवों का आनन्द।

अकामहत श्रोत्रिय के लिए यह आनन्द भी तुच्छ है।

परमहंस वाणी

परमहंस योगानन्दजी के प्रवचन से

आध्यात्मिकता बाजार में नहीं खरीदी जाती। जब तुममें ईश्वर के प्रति आत्मयोग की आकांक्षा असह्य हो जाती है तब वह तुम्हारे लिए एक गुरु भेजता है। फिर, यदि तुम ईश्वर से आत्मयोग करना चाहते हो तो गुरु के आदेशों का पालन करो। कुछ लोग गुरु के बताये मार्ग पर नहीं चलते, आदेशों पर विश्वास नहीं करते और परमात्म प्राप्ति की इच्छा रखते हैं, परन्तु इस प्रकार कुछ होता नहीं। कम से कम रात को सोते समय ही ईश्वर का ध्यान कर लिया करो। इससे तुम मरे नहीं जाते। संभव है कुछ या कई वर्षों तक तुम्हें इस साधन का कुछ भी फल न प्रतीत हो। जब ईश्वर को यह खूब अच्छी तरह मालूम हो जायगा कि तुम सांसारिक कामनाओं के लिए यह सब नहीं कर रहे हो, वरन् निरहंकार होकर आत्म कल्याण के लिए कर रहे हो, तब तुम्हारे लिए एक मार्ग मिल जायगा। पूरा साधन, पूर्ण निरहंकार होने पर ही तुम्हें मार्ग मिलेगा, अधूरे में नहीं। आधा रास्ता तय करने से कोई घर या बाजार नहीं पहुँच जाता।

दस वर्ष तक तुमने ध्यान साधना की है इसलिए आज साक्षात्कार हो जाय, ऐसी आशा मत करो। कई जन्मों तक साधना करके भी यह चाहने पर कि आज परमात्मा का दर्शन हो जाय, परमात्मा मिल जाय, वह नहीं दिखता

या मिलता। यह अपनी इच्छा या चाहने पर निर्भर नहीं है। तुम्हारा तो ध्येय होना चाहिए एकमात्र साधन। साधन किये जाओ, और मन में धारणा रखो कि मैं अनिश्चित काल तक साधन किये जाऊँगा, धैर्य से प्रतीक्षा करूँगा, मुझे कोई जल्दी नहीं कि कब आत्म साक्षात्कार हो। यही धैर्य और धारणा सबसे बड़ी बात है। इसीलिए तो भगवान् ने गीता में कह दिया है कि सहस्रों में कोई एक, साधन के लिए प्रयत्न करता है, और सहस्रों साधकों में कोई एक मुझे पाता है।

वायु लहराती तुम्हारे शरीर को छूती है तो समझो परमात्मा हमारा चुम्बन करता है। धूप तुम पर चमकती है, भोजन तुम्हारे मुख में प्रवेश करता है, यह सब ईश्वर है और ईश्वर का तुम पर प्रेम है, माता पिता बन्धु सखा सब रूप में सर्वत्र सदैव तुम्हारे साथ और तुम्हारे भीतर वह मौजूद है। सबका वही एकमात्र परम सम्बन्धी है। संसार में उसका ही कुटुम्बजाल का सम्बन्ध फैला हुआ है, आपस में वास्तव में कोई किसी का नहीं है, सब परमात्मा के हैं। अपने को पापी-पापात्मा कहकर परमपिता को मत बदनाम करो।

पूर्णता की ओर

श्री हेनरी थॉमस हेमलिन

बाईबिल के नवीन खण्ड में हिब्रूओं को प्रेषित पत्र में अज्ञात लेखक (आधुनिक विचारक नहीं जानते कि यह पत्र किसने लिखा है, और पॉल ने तो इसे लिखा ही नहीं) ने लिखा है कि सिद्धान्तों और साम्प्रदायिक मतों को अलग छोड़ दो, पूर्णता की ओर बढ़ो।

इस अज्ञात लेखक को यह अनुभव हो गया था कि साम्प्रदायिक मत को मानते रहने और कर्मकाण्ड में लगे रहने का अर्थ होता है मानो एक गोलचक्कर के रास्ते में घूमते रहना। ऐसा घूमते रहने से मनुष्य की उन्नति रुक जाती है।

हजारों लोगों की तरह मेरा भी धार्मिक-विचार-पोषण एक सम्प्रदाय में ही हुआ। समयान्तर से मुझे अनुभव हुआ कि हम सब लोग धार्मिक सम्प्रदाय के गड्ढे में, घेरे में या बन्धन में हैं। एक व्यक्ति एक प्रकार के बन्धन में है, दूसरा दूसरे में। हम सब लोग अपनी अपनी पुरानी बातें सुनते और कर्मकाण्ड में लगे रहते और कोई कुछ उन्नति न करते। हर एक मतावलम्बी समझता कि हमारा सम्प्रदाय ही सच्चा धर्म है, दूसरे का नहीं। मुझे कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं मिला जिसको कुछ सच्चा ज्ञान इस विषय में हुआ हो, या कभी अपने सम्प्रदाय के चक्कर से असन्तोष हुआ हो। उनकी शिक्षा और कर्मकाण्ड में कोई नई प्रेरणा या व्यवहार न था, और इससे मुझे कुछ भी उन्नति की आशा न मालूम हुई। कैसा नीरस वा एकरस था वह धर्मचक्र!

मैं दो प्रकार के चक्र में था, एक परिस्थिति का, और दूसरा साम्प्रदायिक मत का। यदि मैं इनसे मुक्त होने की जिज्ञासा न रखता तो जीवन भर उसी में पड़ा रहता। अस्तु गरीब परिस्थिति से तो मैं निकल आया किन्तु धार्मिक घेरे में अब भी था। समयान्तर से नवीन विचारों का मुझमें जागरण हुआ जिससे मुझे इस बन्धन से मुक्त होने का साधन मिला। और अब मैं धर्म सम्प्रदाय के जेलखाने से छूट गया। उस सम्प्रदायचक्र की प्रार्थना मे परमेश्वर से भिक्षा माँगने का रिवाज था, जो अब भी लोगों में है, परन्तु मुझमें प्रार्थना के प्रति नवीन भावनाओं का उदय हुआ। इस नवीन प्रार्थना पद्धति से हमें इष्ट की प्राप्ति होती रही, परन्तु मैं इससे असन्तुष्ट हो उठा। इसका भी एक

चक्र था, जैसे कुत्ता अपनी पूँछ पकड़ने को ही गोल गोल घूमता है, हमारा भी यह स्वार्थ चक्र था।

यीशु ने हमें ऐसी बन्धन में डालने वाली शिक्षा नहीं दी। धर्मपुस्तक के पुराने खण्ड में, उन्होंने कहा है: अपने परमेश्वर से पूर्ण हृदय से प्रेम करो; पूर्ण आत्मा और पूर्ण मन से प्रेम करो और अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम करो मानो वह तुम्हारा ही रूप है।

अहंकार और आत्म संकीर्णता को ही तो बन्धन है हम में जिससे हम अपने आप में बन्द रहते है, न परमात्मा को जानते है, न संसार को। पड़ोसी से आत्मवत् प्रेम करना आरंभ कर देने से यह बन्धन खुल जाता है और हम एक अभेद, मुक्त और विशाल क्षेत्र में आ जाते हैं। जब तक हम आत्म संकीर्णता और अहंकार में रहेंगे तब तक विश्वात्मा से हमारा आत्मसाम्य नहीं होता। विश्वात्मा अर्थात् संसार के सब लोगों का आत्मा।

अपने लिए छोड़ कर, दूसरों के लिए प्रार्थना करना, इस साधन की आरंभ की सीढ़ी है। निस्वार्थ सेवा, सच्चे प्रेम और निस्वार्थ भाव से ही हो सकती है। और इसमें इतनी भी भावना न होनी चाहिए कि हम दूसरे के लिए प्रार्थना कर रहे है, इससे प्रत्युपकार का स्वार्थ, पुण्य प्राप्ति का स्वार्थ जाहिर होता है। हमने किसी के लिए कुछ किया, इतना भी विचार मत करो। अपने कुटुम्ब के लोगों के लिए प्रार्थना करना भी स्वार्थ की श्रेणी में आता है क्योंकि उन लोगों से अपना लगाव रहता है। सबसे अच्छा तो है कि अपने अपकारी, अपने शत्रु के लिए प्रार्थना करो। बस यही एक कसौटी है। यीशु का यही मार्ग था। अपने दुश्मन से प्रेम, और उनके लिए प्रार्थना कौन करेगा? स्वार्थ, संकीर्णता, अहंकार दूर करने के लिए 'आत्मवत्' प्रेम करने की जरुरत है। शत्रुता भेद का भाव ही न रहे। वह व्यक्ति मेरा ही आत्मरूप है, ऐसा प्रेम करो, फिर कौन तुम्हारा शत्रु रहेगा और कौन शत्रुता करेगा? पड़ोसी की अपेक्षा, शत्रु से आत्मवत प्रेम करके ही हम परमात्मा के पुत्र कहलाने के अधिकारी हैं, क्योंकि सभी एक समान परमात्मा के पुत्र हैं और वह सब पर एक समान प्रेम करता है, फिर हम आपस में भाई भाई होकर क्यों न आत्मवत प्रेम करें, क्योंकि हम सब एक ही तो हैं। इस प्रकार आत्मवत् शत्रु से भी प्रेम करके, हम परमात्मा के पुत्र तो क्या, ईश्वर रूप हो जायँगे। क्योंकि ईश्वर सबसे अभेद एक समान प्रेम करता है।

यीशु को माननेवाले, ईसाई लोग कहते हैं कि यीशु की शिक्षा और यह धर्म बिलकुल सहज है। मुझे उनके इस कथन पर हँसी आती है। ऐसी बात कोई बड़ा विद्वान् कहे तो उसकी बड़ी विद्वत्ता प्रकट होगी, परन्तु इसका वास्तव में अपने जीवन में व्यवहार कौन करता है? केवल "सहज" कह देना एक बात है, व्यवहार सहज करो। अतएव यह उपदेश सहज नहीं, पूर्ण है।

मुक्ति, परमात्मसाक्षात्कार और पूर्णता, मरने के बाद कहीं दूर नहीं है। मरने के बाद की बात कौन जानता है, किसने देखा है? मुक्ति और पूर्णता तो यहीं है, इसी जीवन में, यदि आत्मवत् प्रेम करने लगो।

ऐसा करने से अहंकार विश्वात्मा में विलीन हो जाता है। यह मुक्ति है अपनी भावना और व्यवहार में।

लोग कहते हैं— हम आस्तिक हैं, ईश्वर को मानते हैं, ईश्वर, ईश्वर, चिल्लाकर उपदेश देते हैं, साम्प्रदायिक मत से भेद भाव फैलाते हैं, मानो सबका ईश्वर अलग अलग है।

उनकी बातें सुनने से मालूम होता है कि वे सचमुच आस्तिक हैं, प्रेमी हैं, ईश्वर को मानते हैं, परन्तु अपने घेरे में भी वे आत्मवत् प्रेम

नहीं करते। अपने घेरे में भी परस्पर शत्रुता रखते हैं। इनके व्यवहार से सिद्ध होता है कि वे ईश्वर को नहीं मानते। उनके कहने और करने में भेद है। वे स्वयं अपने में ही टूटे हुए हैं।

पड़ोसी और शत्रु से आत्मवत् प्रेम करना, परमात्मा की साकार उपासना, निराकार की उपासना बन जाती है। इन दो प्रकार की उपासनाओं में केवल शब्दों का भेद है, वास्तव में वे एक हैं।

सबको आत्मभाव से देखिए

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

"आत्मवत् सर्वभूतेषु" की शिक्षा आध्यात्मवाद की व्यावहारिक प्रक्रिया है। श्रेष्ठ नागरिक बनने का मर्म इसमें है कि अन्य लोगों को अपने समान समझा जाय। दूसरे शब्दों में इसी बात को यों कह सकते हैं कि "दूसरों से वैसा ही व्यवहार करना चाहिए जैसा कि आप अपने लिए चाहते हैं।" आप जैसा व्यवहार अपने साथ होता हुआ देखकर प्रसन्न होते हैं, जिस आचरण की दूसरों से आशा करते हैं वैसा ही आप स्वयं भी दूसरों के साथ कीजिए। दूसरों के सुख मे सुखी होने से मुफ्त में ही वह सुख प्रचुर मात्रा में मिल जाता है जिसको प्राप्त करने में बहुत खर्च करना पड़ता है। सुख के लिए बहुत प्रयत्न करने की आवश्यकता होती है यदि आप दूसरों को सुखी देखकर प्रसन्न हुआ करें, दूसरों की बढ़ती देखकर आनन्द अनुभव किया करें तो अनायास ही सुखी होने के असंख्य अवसर प्राप्त होते रह सकते हैं। पास-पड़ोस में, सगे सम्बन्धियों में, परिचितों-अपरिचितों में ईश्वर की कृपा से सुखदायक घड़ियों का आगमन हुआ ही करता है। यदि उनकी बढ़ती को देखकर उदारहृदय व्यक्ति की नाईं सुखी होने की आदत डाली जाये तो निस्सन्देह अपने आनन्द की सीमा अनेक गुनी बढ़ सकती है। जिसके घर में मुफ्त का माल आकर जमा होने लगता है उसका अमीर बन जाना स्वाभाविक है, जिसको दूसरों के सुख में आनन्द आता है उसका हर घड़ी प्रसन्नता से परिपूर्ण रहना स्वाभाविक है। आनन्द और सुख की प्राप्ति के लिए आप लालायित हैं। यदि 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' का मंत्र हृदयंगम करके अपना आत्मभाव दूसरों के साथ जोड़ दें, उनके सुख में अपने को सुखी करने का अभ्यास करें तो जिसके लिए आप लालायित हैं उस वस्तु को आसानी से पा सकते हैं। वाटिका में खिले हुए पुष्पों को देखकर, सुन्दर चित्रों को देखकर, मनमोहक प्राकृतिक दृश्यों को देखकर आपका चित्त प्रसन्न हो जाता है। जड़ पदार्थों का वैभव देखकर दिल की कली खिल उठती है तो क्या कारण है कि चैतन्य स्वजातीय प्राणियों के उत्कर्ष पर हृदय आनन्द से पुलकित नहीं होता। ईर्षा, डाह, कुढ़न, जलन के दुर्गुणों को यदि आपने अपना नहीं लिया है तो कोई कारण नहीं कि अपने सुखी मित्रों के सौभाग्य पर आनन्द प्रकट न करें।

दूसरों के दुख में दुखी होने की वृत्ति को अपनाकर आप दया, करुणा, उदारता, सेवा, सहायता, सहानुभूति जैसी अमूल्य निधियों को प्रचुर मात्रा में संचय कर सकते हैं। यह संचय कुछ कम मूल्यवान् नहीं है। दूसरों के दुख में दुखी होने से तामसी कष्ट नहीं होता। जो कष्ट होता है उसे पीड़ा नहीं कहते। पराये दुख में दुखी होने की वृत्ति को शब्दों में दुख अवश्य कहा जाता है पर यथार्थ में वह एक

प्रकार का आर्द्र सुख है। दूसरों के कष्ट में देखकर फोड़े के समान दर्द, ज्वर के समान तापनाशोधन की तरह वेदना या पुत्र मृत्यु की तरह हाहाकारी क्रन्दन उत्पन्न नहीं होता वरन् कर्त्तव्य की प्रेरणा करनेवाली एक कसक उठती है जो प्रेम की तरह मीठी, श्रद्धा की तरह पवित्र और करुणा की तरह तरल होती है। वह दुख स्वर्गीय शान्ति को अपने अन्दर छिपाये रहता है, पराये दुख को देखकर जो आँसू गिराता है वह भीतर के अनेक पापों को बहा ले जाता है और हृदय को हलका तथा पवित्र बना देता है।

पराये सुख में सुखी और पराये दुख में दुखी होने की वृत्तियाँ परम सात्विक एव उच्चकोटि की होती हैं। इसका संचार जिसके अन्दर होने लगता है उसको भीतर ही भीतर शान्ति और सन्तोष की आनन्ददायक सरिता बहती हुई दृष्टिगोचर होती है। अन्य सद्गुणों और उत्तम स्वभावों की खेती इस शीतल जल को प्राप्त करके फलने-फूलने लगती है। केवल अपने ही हानि लाभ से प्रभावित होने वाले और दूसरों की स्थिति में कुछ भी दिलचस्पी न लेनेवाले स्वार्थी लोग बहुत ही सीमित क्षेत्र में बँधे रहते हैं। वे ऐश-आराम या दुख-दर्द की निकृष्ट कोटि का हर्ष-विषाद अनुभव करते रहते हैं। सात्विक और उच्च आध्यात्मिक अनुभूतियाँ स्वार्थ में नहीं परमार्थ में मिलती हैं। जिनको पराये सुख-दुखों में दिलचस्पी है वे ही उस ऊँचे आनन्द का अनुभव कर सकते हैं।

आप दूसरों से यह आशा करते होंगे कि यदि कोई व्यक्ति कोई चीज उधार ले जाय तो उसे अच्छी हालत में ठीक समय पर वापिस कर दे। यदि किसी ने कुछ वचन दिया है तो उसे यथोचित रीति से पालन करे। सभ्य व्यवहार की, समय की पाबंदी की दूसरों से आशा की जाती है और यह ख्याल किया जाता है यदि कुछ कष्ट हमारे ऊपर आ पड़ेगा तो अन्य लोग हमारी सहायता करेंगे। जिस प्रकार की आशाएँ आप दूसरों से करते हैं ठीक वैसी ही दूसरे आपसे करते हैं। यह भलमनसाहत का तकाजा है। मनुष्यता के प्रारंभिक कर्त्तव्यों का पालन करना हर मनुष्य का फर्ज है। सार्वजनिक स्थानों का उपयोग करते समय इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिए कि हमारे व्यवहार से किसी को अनुचित कष्ट न पहुँचे। छत के ऊपर से सड़क पर कूड़ा फेंकना, आम रास्ते में केले या नारंगी के छिलके फेंकना, छड़ी या छाता हिलाते चलना, रेल, धर्मशाला या पार्क में बैठने के स्थान को जूठन से गन्दा करना, नल आदि के निकट थूकना या नाक साफ करना, इस प्रकार के कार्य करते समय लोग यह परवाह नहीं करते कि हमारे इन कार्यों से अन्य लोगों को कितना कष्ट होगा। छत पर से फेका गया कूड़ा रास्ते चलते आदमी पर गिरकर उसे गन्दा कर सकता है, सड़क पर पटके गये केले के छिलके पर से चलनेवाले का पैर फिसल सकता है। छाता या छड़ी हिलाते रहने से किसी की आँख फूट सकती है। टिकट खरीदते समय या सभा-मंडप में प्रवेश करते समय धक्का-मुक्की करके आगे घुस जाने के प्रयत्न में सबकी कठिनाइयाँ बढ़ सकती हैं। सार्वजनिक जगह पर जूठन, कूड़ा या नाक-थूक डालने से और लोगों के चित्त में घृणा और रोष उत्पन्न होता है क्या यह व्यवहार समुचित है? कोई नहीं चाहता कि ऐसे बेढंगे बरताव का उसे सामना करना पड़े इसलिए उसे भी चाहिए कि इस प्रकार का बुरा आचरण स्वय भी न करे।

संसार की हरेक जड़-चेतन वस्तु चाहती है कि मेरे साथ सद्व्यवहार हो। जिसके साथ दुर्व्यवहार करेंगे वही बदला देगी। छाते को लापरवाही से पटक देंगे तो जरूरत पड़ने पर उसकी ताने टूटी और कपड़ा फटा पावेंगे। जूते

के साथ लापरवाही बरतेंगे तो वह या तो काट लेगा या जल्दी टूट जायगा। सुई को जहाँ तहाँ पटक देंगे तो वह पैर में चुभकर अपनी उपेक्षा का बदला लेगी। कपड़े उतारकर जहाँ तहाँ डाल देंगे तो दुबारा तलाश करने पर वे मैले, सलवट पड़े हुए, दाग-धब्वेयुक्त मिलेंगे। यदि आप घर की सब वस्तुओं को सँभालकर रखेंगे तो वे समय पर सेवा करने के लिए हाजिर मिलेंगी। ढूँढ़ने में बहुत सा समय बरबाद न करना पड़ेगा और न उसे नष्ट-भ्रष्ट दशा में देखना पड़ेगा। इसी प्रकार यदि अपने समान सभी को समझकर यथोचित नीति बरता करेंगे तो अन्य लोगों से भी आप बहुत अंशों में वैसे ही व्यवहार की आशा कर सकते हैं, स्त्री-पुरुष, माता-पिता, भाई-बहिन, मित्र, सम्बन्धी, परिचित, अपरिचित यदि आपसे भलमनसाहत का व्यवहार पावेंगे तो बदले में उसी प्रकार का बर्त्ताव लौटा देंगे।

मूक भयो वाचाल

मेरी ह्वाइट जॉनसेन

११ अक्टूबर, १६४८ को अचानक मेरा बोलना बन्द हो गया, मैं कुछ सुन या समझ भी न सकती थी। अपना नाम भी। मैं अचानक बिल्कुल गूँगी हो गई थी, वाणी से, और दिमाग से भी। कोई इशारा भी न मैं समझ सकती थी न कर सकती थी। मैं शून्य थी, और मेरे लिए सब कुछ शून्य था। २० घण्टे मैं बिल्कुल अचेत रही। सिर में बेहद दर्द था, डॉक्टर और नर्स चिल्लाकर मुझसे पूछते परन्तु मैं न सुनती, न समझती, न बोलती, न कोई इशारा करती। मालूम होता कुत्ते भौंक रहे हैं और अपनी भाषा में न जाने मुझसे क्या कह रहे हैं। मेरी जबान मोटी हो गई थी और ऐसी हो गई थी कि मैं जो आवाज निकालती वह बिल्कुल अस्पष्ट होती, उसका कुछ अर्थ न होता। लोगों ने तख्तों पर बड़े-बड़े शब्द लिखकर मेरे सामने रखा, परन्तु उनका भी कोई अर्थ मैं न समझ सकी, अजीब शक्लें जैसी मालूम होतीं। दिन पर दिन बीतने लगे, डॉक्टरों को यह भी न मालूम हो सका कि मैं पागल हूँ, होश में हूँ या क्या हूँ। मैं बिल्कुल सूखी लकड़ी, या पाषाण-प्रतिमा या क़ागज पर बनी तस्वीर के समान जड़वत् थी। मेरी केवल आँखें खुली थीं और कोई मेरे सामने आता उसे मैं एकटक देखती रहती।

होते होते, एक दिन सोचा, यदि मैं लिख या बोल नहीं सकती तो आँखों के इशारे से कुछ काम लूँ। उस समय मन ही मन भगवान् से मैंने प्रार्थना की। और उस समय डॉक्टरों ने मुझे देखा तो उन्हें कुछ मेरे विषय में आशा हुई। परन्तु मेरे मस्तिष्क का उन्होंने ऑपरेशन किया। कुछ हफ्तों बाद बड़ी मुश्किल से मैं कुछ सुनने समझने लगी और बोलने में बड़ी कठिनाई का अनुभव करती। मेरा तो इतना कहना है कि यदि परमेश्वर पर मेरी श्रद्धा न होती तो मैं आपको यह कहानी कहने को न बचती। दिनों दिन मैंने बोलने की कोशिश की, और परमात्मा को ही एकमात्र अपना सर्वस्व मानकर उसी पर अपना इलाज छोड़ दिया था। सर्जन ने मस्तिष्क की चीर फाड़ कर मेरा दर्द तो दूर कर दिया था, पर मेरी पूर्ण चिकित्सा ईश्वर के हाथ थी।

शुरू से ही लोग मुझसे बोलते और तख्तियों में लिखकर बातें मुझे दिखाते रहे पर मैं कुछ सुन या समझ न सकती थी। अब मुझे ख्याल आया कि यदि साधारण शब्द लिखकर

दिखाये जायँ तो संभवतः मैं समझ सकूँ। अस्तु किसी प्रकार विशेष इशारे से मैंने अपना भाव प्रकट किया। भोजन की अलग-अलग वस्तुएँ अलग-अलग तश्तरियों में आती थीं। मैं उनमें से एक वस्तु को एकटक देखती और नर्स उसका नाम लिखकर मुझे दिखाती और कई बार उसका नाम स्वयं बोलती। समयान्तर से, नर्स की ओठ पर से शब्दोच्चारण का भाव ध्यान में रख मैं कुछ नाम धीरे धीरे बोलने लगी, रोटी, दाल, नमक, अण्डा, मक्खन, साग, इत्यादि। ठीक जैसे दो वर्ष के बच्चे बोलते हैं। फिर कुछ दिनों बाद उन तख्तियों पर लिखे शब्दों पर, ठीक बच्चों की तरह, पेंसिल फेरने का अभ्यास, और फिर उनकी नकल करके वैसे ही शब्दों के रूप बनाना आरंभ किया। परन्तु शब्दों या अक्षरों का मेरे लिए कोई अर्थ न था। मैंने बहुत प्रयत्न किया, कुछ समय में मेरी स्मृति कुछ जाग उठी। आठ सप्ताह तक यही क्रम रहा। पश्चात् अस्पताल से छूटकर अपनी बहिन के साथ दूर एक शहर में उसके परिवार में रहने लगी। घर काम काज के साथ, बहिन ने कुछ समय मेरे पढ़ाने में दिया। वह कोई अक्षर, शब्द अथवा वाक्य लिख देती, मैं उसको बोलने लिखने का अभ्यास अकेले बैठे या लेटे किया करती। थकने पर कुछ आराम करके फिर शुरू करती। लिखने, पढ़ने और बोलने का अभ्यास मैं ठीक बच्चों की तरह कर रही थी। मैं हँसने लगती, लोग मेरे साथ हँसते। जीवन में दुबारा, बच्चों की तरह, बोलना, लिखना पढ़ना सीखने में अपनी दशा पर मुझे स्वयं हँसी आती थी। मैं कोई शब्द बोलती, वह गलत हो जाता, तो खूब हँसी आती, सब हँसते। इस प्रकार हँसते-हँसते मेरा मानसिक और स्नायविक तनाव छूट गया, और मुझे आराम और शांति का अनुभव हुआ। कुछ ही समय में मैं ठीक बात करने लगी।

मैं बगीचे में बैठी घण्टों अकेली, घास, फूल, पेड़ों को देखती रहती, मुझे विचार आया कि ये सब अपने आप तो उग या बढ़ नहीं सकते। किसी शक्ति के द्वारा इनका विकास होता है। सृष्टि का कोई सिद्धान्त है, उससे अखण्ड सम्बन्ध बनाये रहने से, यथा पृथ्वी में जड़ जमाये रहने से ही ये विकास पाते हैं, पुष्पित और फलित होते हैं। बस परमात्मा पर मेरी श्रद्धा बढ़ गई। मैंने अपना शरीर, मन, बुद्धि, आत्मा सब भगवान् के अर्पण कर दिये। मुझे मालूम हुआ कि इतने वर्षों तक अपने अहंकार और कर्त्तापन के भाव तथा व्यवहार में मानसिक उद्वेगों और संघर्ष के कारण ही मुझे बहुत कष्ट हुआ, अशांति हुई। भगवान् के शरणागत होने से मुझे बड़ी शान्ति मिली।

कुछ महीने अभ्यास में बीते, और क्रमशः मुझे अधिकाधिक शब्दों के बोलने, लिखने और पढ़ने का अभ्यास हो गया। साल बीतने पर अपने घर आई। लोगों की बात मैं समझने लगी थी, और कुछ जवाब भी ठीक देने लगी थी, मेरा शब्दकोष विस्तृत नहीं था। मैं लम्बे वाक्य न बोल सकती थी। पढ़ना भी कुछ कठिन प्रतीत होता था। कुछ और अभ्यास करके मैंने एक बीमा कम्पनी को, एजेंसी के लिए प्रार्थनापत्र भेजा। बीमा के विषय में मैंने शिक्षा पाई थी। परमात्मा मुझे पेट पालने के लिए रोजी देगा, यह मेरी दृढ़ श्रद्धा थी। एक कम्पनी ने तो इन्कार कर दिया। किन्तु एक दूसरी कम्पनी ने मुझे रख लिया। बीमा सम्बन्धी नियमों को पढ़ने बोलने का मैंने अभ्यास किया। एक बड़े शीशे के सामने खड़े होकर, अपनी ही शक्ल के सामने, उस शक्ल को ही मैंने सम्बोधन करना शुरू किया। हँसी भी आती। फिर मैं भगवान् से प्रार्थना करती।

एक दिन मैं बीमा कम्पनी के दफ्तर में अफसरों के सामने अपनी परीक्षा देने गई। उन्होंने कहा, तुम अब जाकर यह काम कर सकती हो। तब मैं घर से निकलने लगी।

जान पहचान तथा अजनबी लोगों से भी मैंने बातें आरम्भ कीं। मैं बीमा कम्पनी की एजेण्ट थी।

मैं गूँगी हो गई थी, मन और वाणी, दोनों से। मैंने जीवन में दुबारा बोलना, समझना, लिखना-पढ़ना सीखा है। अब मैं संस्थाओं में कई सौ व्यक्तियों के सामने "लेक्चर" भी देने लगी हूँ। फिर भी दूसरों की बात सुनने में मुझे ध्यान लगाना पड़ता है, और स्वयं बोलने में सावधान रहना होता है। लोग अक्सर असावधानी से, बिना पूरा ध्यान दिये ही बोलते सुनते हैं।

रोज रात को सोते समय तथा सुबह उठकर, सबसे पहले मैं भगवान् को धन्यवाद देती हूँ, "हे परमपिता, तूने मुझे समझदार मन, और शुद्ध वाणी दी है, तूने मुझे पुनर्जीवन दिया है। तू ही मेरा प्राणदाता है। तेरी सब कृपाओं और आशीर्वादों के लिए मैं धन्यवाद देती हूँ।"

जन्म-जात बाधाएँ

बिल जानसन

हमारे देश में कितने ही लोग पूर्ण शरीर से, जन्म लेकर; हाथ पाँव आँख कान जिह्वा आदि स्वस्थ होते हुए भी जीवन में गरीब दुःखी दीन होते हैं, पराश्रित रहते, भिक्षा माँगते फिरते हैं। परन्तु विचार कीजिए कि इतने पूर्ण अंग, होते हुए भी जब मनुष्य अपनी दीनता को स्वीकार कर जीवन को व्यर्थ बना लेता है तो उनका क्या हाल होता होगा जो जन्म से ही अन्धे अपंग लूले बहरे होते हैं? उनको तो इस दृष्टि से जन्म लेना ही मानो पाप और जीवन महा अंधकारमय होगा!

परन्तु वास्तव में बात ऐसी नहीं है। जन्मजात बाधाओं से मनुष्य का जीवन, व्यर्थ, निरानन्द और असफल नहीं होता। इन बाधाओं का कोई कुछ भी महत्व नहीं। इन्हें पाकर मनुष्य को अपनी अन्य प्रतिभाओं को जागृत करके जीने और आनन्द उपार्जन का अवसर मिलता है।

राबर्ट स्मिथदास जन्म से अन्धे और बहरे थे। परन्तु वे हाथ पर हाथ, पाँव पर पाँव धरे बैठे नहीं रहे। वे लिखना पढ़ना न सीख सके। परन्तु उंगलियों के इशारे से बोलना और पुस्तक पर उभरे अक्षर पढ़ना सीखा और ८७ प्रतिशत अंक प्राप्त कर बी० ए० पास किया। इसके पश्चात् कुश्ती लड़ने, व्यायाम के प्रदर्शन, तैरने और घुड़सवारी में वे कुशल बने। इतने से भी उन्हें सन्तोष न हुआ, उन्होंने कहानियाँ और कविताएँ लिखीं जो उच्चकोटि के पत्रों में छप चुकी हैं। अब विचार कीजिए कि सड़क किनारे बैठे, एक छोटा सा टीन का डिब्बा लिये, आते जाते राहगीरों से 'एक' पैसा माँगने वाले अन्धे बहरे लूलों अपंगों में और राबर्ट स्मिथदास (अंधे बहरे) में क्या और क्यों अन्तर है?

नेना गोलनर चार वर्ष की उम्र में ही पक्षाघात से लाचार हो गई थी। पाँव बिलकुल बेकार हो जाने से उसका सारा जीवन अपंग मालूम पड़ने लगा था। उसके माता-पिता रेत पर उसे चलने का अभ्यास कराने लगे, और नेना ने भी शक्ति भर प्रयत्न किया। और आज नेना केवल चलती फिरती ही नहीं, वरन् प्रसिद्ध नर्त्तकी है। एक दूसरी, ब्रेण्डा हेलसर, सात वर्ष की उम्र में दोनों टाँगों से अपंग हो गई थी। टाँगों को दुरुस्त करने के लिए उसने तैरना सीखा और समयान्तर से, ६ बार तैराकी प्रतियोगिता में सर्वप्रथम रही। इसी प्रकार फ्रांसेस काजुस्की के कंधे की हड्डी में सूजन आ गई थी;

नान्सी मर्की और जीन विलसन को भी लकवा हुआ था। इन्होंने व्यायाम और तैराकी विश्व प्रतियोगिता में क्रमशः ६ और ८ बार बाजी जीती।

ब्रिटेन के विन्सटन चर्चिल की जबान बोलने में रुकती थी। फिर भी वे संसार के एक प्रभावशाली वक्ता बने। विचार कीजिए, चर्चिल इसीलिए धीरे धीरे बोलते हैं। धीरे धीरे, एक एक शब्द स्पष्ट बोल कर उन्होंने अपनी जिह्वा की इस जन्मजात बाधा पर विजय पाई और प्रसिद्ध हुए। धीरे धीरे बोलने में ही बड़प्पन है। एक एक शब्द स्पष्ट बोलने में मनुष्य की गंभीरता का परिचय मिलता है, उसकी वाणी में से श्रोताओं को सार निकालने और समझने का बहुत अच्छा अवसर मिलता है, और इस प्रकार धीरे धीरे स्पष्ट बोलने वाला लोकप्रिय हो जाता है क्योंकि वह शैतान या मशीन की तरह अपने विचार एकदम नहीं उड़ेल देता कि उसे लोग सुन समझ सके या नहीं। जल्दी जल्दी बोलने वाला विचारहीन माना जाता है और श्रोताओं पर अपनी अच्छी छाप नहीं छोड़ता।

"अपनी हार मत मानो, फिर तुम कभी नहीं हारोगे। हार मान लेना ही हार है।" ये शब्द है आर्थर कवाना के। आर्थर बिना हाथ पाँव का ही पैदा हुआ था। परन्तु उसने हिम्मत बटोरी। वह कुशल घुड़सवार, नाविक, निशानेबाज और शिकारी हुआ। जो वस्तुएँ हाथ से पकड़ी जाती हैं उन्हें वह न पकड़ सकता था। उसके लिए वे सब वस्तुएँ विशेष प्रकार की बनी थीं जो उसके कंधों पर लगा दी जाती थीं और इनसे, कंधों को हिलाकर वह हाथों के समान काम लेता था। घुड़सवारी के लिए उसके बैठने की विशेष प्रकार की बनी जीन थी, और वह बन्दूक भी चला लेता था। किशोरावस्था में ही वह बड़े शिकार करने आफ्रिका गया था और इङ्गलैण्ड की पार्लियामेण्ट का सदस्य बना। उसका विवाह हुआ और सात बच्चे हुए।

जीन थीन गोसलिन की एक टाँग कमर से बिलकुल अलग हो गई फिर भी वह एक टाँग से ही बरफ पर मजे में 'स्की' करता है। कालिफोर्निया में बास्केट बाल खिलाड़ियों की एक टोली है जिनको सबको पेराप्लेजिया (एक प्रकार का लकवा) है, और वे पहिये वाली कुर्सियों में बैठे बैठे, पहिया चलाते इधर उधर फिरकर "बाजी" खेलते हैं।

एलक टेम्पलटन अन्धा जन्मा था। पाँच वर्ष की उम्र में पियानो बजाने लगे, १२ वर्ष की उम्र में रेडियो द्वारा संगीत प्रसारित करते थे, इन्होंने अन्धा होकर भी अपने प्रभावशाली संगीत से सहस्रों श्रोताओं में आत्मजागृत कर दी। कितने ही अन्धे लोग क्रिकेट के खेल में 'बाउलिंग' (गेंद प्रेक्षण) करते हैं, अनेक प्रकार के खेलों में, शब्द ध्वनि के आधार पर, प्रतियोगिता में भाग लेते हैं। एक विख्यात महिला हेलेन केलर, अन्धी और बहरी है।

इन सब अन्धे लूले बहरे अपंगों का कहना है कि परमात्मा का आत्मा और उसकी शक्ति, उसका सामर्थ्य, उसकी प्रतिभा सबमें पूर्ण है। शरीर कोई अंग अपंग होने से जीवन को अपंग मान लेना और बेकार पराश्रित होकर बैठ जाना कायरता और नास्तिकता है। किसी भी तरह अपनी प्रतिभा विकसित और प्रदर्शित कर जीवन सिद्ध करो।

सूचना

कतिपय साधन प्रेमी सज्जन योग साधन सीखने या करने के लिए हमसे निर्देश पाने और हमारे यहाँ आने को लिखा करते है। पाठकों को सूचित करते हमें हर्ष है कि हमारे गंगाघाट स्थित आश्रम में योगी स्वामी नारायण प्रकाश जी विराजते हैं। हठयोग अथवा राजयोग के साधन अथवा जीर्ण रोगों की यौगिक क्रियाओं द्वारा चिकित्सार्थ जो आना चाहे वे पहले पत्र-व्यवहार द्वारा अनुमति प्राप्त कर लें।

पता—विश्वामित्र वर्मा आश्रम गंगाघाट उज्जैन (म० भा०)

उपवास : कब अनावश्यक

श्री डॉ० लक्ष्मीनारायण जी टण्डन

उपवास स्वयं एक चिकित्सा है, किन्तु कुछ रोगों में तथा विशेष परिस्थितियों में उपवास से कोई लाभ नहीं होता वरन् उल्टे उनसे हानि ही होती है। कैंसर और क्षय जैसे नाशात्मक रोगों में उपवास नहीं करना चाहिए। इन रोगों के बढ़ जाने पर शरीर स्वयं क्षीण होता जाता है, शक्ति नष्ट होती है और रोगी से यों ही कुछ खाया पिया नहीं जाता। अतएव उपवास से तो उसकी निर्बलता और बढ़ेगी। परन्तु कैंसर की प्रारंभिक दशा में सफलतापूर्वक उपवास कराया जा सकता है। उपवास से हानि उस समय भले ही न हो, पर उससे लाभ होगा यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। प्रत्येक चिकित्सा की अपनी-अपनी सीमा होती है, उपवास चिकित्सा की भी, और प्राकृतिक चिकित्सा की भी सीमा है। यह आवश्यक नहीं है कि प्राकृतिक चिकित्सा में उपवास की ही सहायता ली जाय। जल-चिकित्सा, सूर्य चिकित्सा, योगासन, प्राणायाम, आदि अन्य उपायों द्वारा भी रोग से लड़ सकते हैं।

उदाहरणार्थ, क्षय रोग नाशात्मक रोग है। इस रोग की जीवनी शक्ति पहले ही से काफ़ी नष्ट हो चुकी होती है। ऐसे रोगी को लम्बा उपवास कराया जाय तो लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक होगी। क्षय में शरीर का क्षय यों ही होता है। उपवास में आरम्भ में शक्ति का क्षय होता है। उपवास से उसकी बची हुई शक्ति भी समाप्त हो जायगी। क्षय में छोटे उपवास, आधे दिन या एक-एक दिन के उपयुक्त और लाभप्रद होंगे। हलका सुपाच्य भोजन देकर उसे फिर एक दो दिन उपवास कराया जाय। ऐसे रोगी को क्रमशः उपवास कराने से उसकी अधिक शक्ति का ह्रास भी न होगा, और उसकी पाचन प्रणाली को विश्राम भी मिलेगा, मल आदि भी निकल सकेंगे। और इन छोटे उपवासों में उसे बल तथा निरोगता आयेगी। क्षयी को एक साथ तीन दिन से अधिक उपवास न कराया जाय। वह भी धीरे-धीरे क्रम बढ़ाकर अभ्यास बढ़ाकर करावें।

हाँ, क्षय रोग की प्रारंभिक दशा में अपेक्षाकृत लम्बे उपवासों से अधिक लाभ होते देखा गया है। वैसे, जिन लोगों को नित्यप्रति पर्याप्त भोजन नहीं मिलते, इन भुखमरों को उपवास कराया जाय तो वे कुत्तों की मौत मरेंगे। उनका तो यों ही प्रतिदिन उपवास होता है। उन्हें तो अधिक पौष्टिक भोजन देने की आवश्यकता है। हाँ, यदि अपर्याप्त और अनियमित भोजन से पाचन क्रिया में गड़बड़ी आ गई है तो अधिक से अधिक तीन दिन का उपवास कराकर सुपाच्य हलका भोजन दें, इससे शरीर बल बढ़ेगा।

प्रायः लोग आवश्यकता से अधिक खाते हैं, जिह्वा के वश, स्वाद के लालच से गरिष्ठ और अप्राकृतिक बना हुआ भोजन खाते हैं। अतः अनेक विष उत्पन्न होकर रक्त में मिल जाते हैं। ऐसों को उपवास से लाभ होगा। इससे उनके पाचक अंगों को विश्राम मिलेगा, रक्त के विष और विकार दूर होंगे। विशेषज्ञों की आज्ञा या अनुमति के विरुद्ध कभी उपवास न कराना चाहिए।

अन्य कारणों से भी जिनकी जीवनी शक्ति का बहुत ह्रास हो चुका है, जो अत्यन्त निर्बल हैं उन्हें भी उपवास नहीं करना चाहिए। गर्भवती स्त्रियों को भी उपवास नहीं करना चाहिए। जिन रोगियों के रोग अपनी सीमा पर पहुँच गये हों उन्हें भी उपवास नहीं करना

चाहिए। जो लोग उपवास के साथ दवा भी लेते रहना चाहे उन्हें उपवास न करना ही श्रेष्ठ है। अत्यन्त शोक संताप और चिन्ता में भी उपवास वर्जित है क्योंकि उपवास काल में शान्त और प्रसन्नचित्त रहने की आवश्यकता है। जिन्हें उपवास चिकित्सा में विश्वास नहीं उन्हे उपवास करना व्यर्थ है। शान, दिखावे और महत्व प्रदर्शित करने के लिए भी उपवास करना हानिकर है। पूर्ण निरोग व्यक्ति को उपवास आवश्यक नहीं। उपवास तो विष तथा विकार निकालने और अन्तरंग पाचन प्रणाली सुधारने के लिए किया जाता है। विकार न हो तो क्यों उपवास करे ? उपवास एक चिकित्सा है। प्रत्येक चिकित्सा प्रत्येक रोग में लागू हो, यह कोई आवश्यक बात नहीं है, और लागू होती भी नहीं।

मन्दाग्नि, कब्ज और फ्लेचरिज्म

स्व० पं० शिवदत्त शर्मा

सभ्यता के साथ साथ विलासिता बढ़ती जाती है। विलासिता के लिए तरह तरह के भोजन खाये जाते हैं। हम उतना खाते हैं जितने की हमारे शरीर को जरूरत नहीं होती। उसी से मन्दाग्नि रोग होता है।

मनुष्य जब आवश्यकता से अधिक और बार बार खाने का आदी हो जाता है तो भोजन का अधिक दबाव पड़ने से उसका पाचनयन्त्र निर्बल हो जाता है। बिना पचा हुआ भोजन उसके शरीर में उसी प्रकार सड़ने लगता है जैसे पकाया हुआ भोजन पानी में मिलाकर किसी गर्म जगह में कई दिन ढंक कर रख देने से उसकी हालत हो जाती है।

जिन भोजनों को हम बहुत स्वादिष्ट बना कर खाते हैं उनके बहुत से असली गुण अग्नि पर पकाने से नष्ट हो जाते है।

मन्दाग्नि रोग की मुख्य परीक्षा यह है कि भूख जोर से मालूम होती है और थोड़ा सा भी अधिक खा लेने पर पतले दस्त होने लगते हैं। जिसे बँधा दस्त होता हो उसे मन्दाग्नि नहीं है यह समझना चाहिए। महात्मा गांधी ने आरोग्य मनुष्य की यही पहचान लिखी है कि दस्त खूब गाढ़ा सूखा लेंडी सा, और दुर्गन्ध न हो।

बहुत से लोगों को दस्त की कब्जी रहती है। साफ दस्त नहीं होता इससे भूख भी नहीं लगती। रोज इस वक्त खाते हैं इसलिए आज भी खाना चाहिए, ऐसे कुतर्क से वे बिना भूख नित्य खाते रहते हैं। ऐसे लोगों को ही कब्ज का रोग होता है। इसका भी मूल मन्दाग्नि है। बहुत से लोगों के हाथ पाँव में दर्द और चमक सी उठती है सुस्ती रहती है, सिर दर्द और, नींद न आना रुधिर विकार आदि का कारण मन्दाग्नि है। संसार में आधे से अधिक रोग इसी कारण है।

हमारे यह व्रत उपवास की योजना मन्दाग्नि का इलाज है। एकादशी व्रत से स्वर्ग मिलता है। स्वर्ग अर्थात् सुख। जिनकी जठराग्नि सम होती है, न तीव्र है, न मन्द, वह स्वर्ग में वास करता है। और जो एकादशी आदि के व्रत में अग्नि मन्द करने का सामान करते है अर्थात् गरिष्ट मालटाल खाते हैं, उनका वास कहाँ है ?

मन्दाग्नि रोग को उपनिषद् में यम का दूत बताया है। इसका इलाज बड़ा कठिन होता है। जिह्वा इन्द्रिय किसी के वश में नहीं रहती। क्षुधा से व्याकुल मनुष्य स्वादवश अधिक खा लेता है, और प्रकृति उसका फल देती ही है।

फल खाना, कम खाना, हलका खाना, नहीं खाना (उपवास करना) इत्यादि अनेक इलाज है पर इस बीमारी का सर्वोत्तम इलाज

घूमना है। पाँव पैदल ६-७ कोस रोज घूमने वाले को कभी मन्दाग्नि नहीं हो सकती। और भी अनेक कसरतें, प्राणायाम, औषधियाँ भी हैं, परन्तु घूमने की बराबरी कोई भी नहीं कर सकता। तीन कोस जंगल की तरफ चले जाओ और तीन कोस पैदल ही लौट आओ, कुछ दिनों में पाचन शक्ति तीव्र हो जायगी रोग मिट जायगा। अँग्रेजों में वृद्ध लोग भी शाम को दो तीन घण्टे टेनिस आदि खेलते हैं। वह कहने मात्र को वृद्ध हैं पर हमारे यहाँ के जवानों से बहुत अच्छे हैं।

भोजन करने की विधि की शिक्षा देने में श्री फ्लेचर साहब सारे जगत् में पूज्य हैं। उनका कहना है कि भोजन चबाने में दाँतों से जितनी मेहनत ली जाती है, भोजन पचाने में पेट को उतनी ही कम मेहनत करनी पड़ती है। दाँतों से कम मेहनत लेना या दाँतों को आराम देना, और भोजन पचाने में पेट से ही सारी मेहनत करवाना, आरोग्यता को शरीर से निकाल भगाना है।

भोजन को खूब चबा चबा कर खाने से वह पेट में सहज ही पचता है, पेट को विशेष मेहनत नहीं करनी पड़ती, पेट में तो दाँत नहीं है; इससे उत्तम आरोग्य होता है, नैतिक और अध्यात्मबल भी बढ़ता है। शुद्ध रक्त का संचार होता है, अशुद्ध विचार नहीं प्रवेश करने पाते।

१—बिना सच्ची भूख लगे कभी कुछ भी मत खाओ। सच्ची भूख के लिए १-२ दिन उपवास करना पड़े तो करो, डरो मत।

२—साँझ को व्यालू के लिए सच्ची भूख न हो तो कुछ मत खाओ। यदि तुम्हारा मन इतना कमजोर है कि खाये बिना नहीं रह सकते, तो एकाध अंजीर या दो-चार पिंड खजूर खाकर सो रहो।

३—चौबीस घण्टे में दो बार से अधिक मत खाओ।

४—साँझ को ३-४ बजे भूख सी मालूम हो तो एक गिलास पानी पी लो।

५—भोजन खाने पर थोड़े से ही तृप्ति मालूम हो तो अधिक खाने का आग्रह मत करो।

६—पेट भर खाकर भी बाद में गर्म भजिये, कढ़ी दूध छाछ कुछ मत खाओ पिओ। जो कुछ भी खाना हो भूख के अन्दर ही खाओ।

७—मेहमानी में कोई जबरदस्ती के प्रेम से एकाध लड्डू अधिक परोस जाय तो उसे प्रसन्न करने के लिए वह मत खाओ। अधिक खाने से तुम्हें कष्ट होगा, वह उसे बाँट न लेगा, बीमार पड़ने पर वह तुम्हारे बदले तुम्हारी खाट पर सोवेगा नहीं, और न डाक्टर की फीस देगा, न दवा का खर्च।

८—अधिक खाने से बल बढ़ता है, जो ऐसा समझते हैं वे धोखे में हैं। अधिक खाने से बल और आयु का नाश होता है।

९—चटपटे मसालेदार पदार्थ, केवल रुचि को उत्तेजना देकर अधिक खाये जाते हैं। खाने से ताकत नहीं बढ़ती; पहले ताकत बढ़ती है तब मनुष्य खाता और भोजन पचाता है। रोग में बिना खाये खड़ा न रहा जायगा, यह बात बिलकुल गलत है।"

यह लेख स्व० पं० शिवदत्त शर्मा लिखित 'शिव सन्देश" में से लिया गया है। उक्त पुस्तक में स्वास्थ्य, भोजन, व्यायाम की बहुत सी अनुभूत उपयोगी बातों के अतिरिक्त व्यावहारिक मनोविज्ञान तथा अध्यात्म विषयक लेख और उच्चकोटि के विचार और कल्याणकारी प्रयोग दिये गये हैं। कल्पवृक्ष कार्यालय से यह पुस्तक डाकखर्च सहित साढ़े ग्यारह रुपये में मँगाई जा सकती है।

पूर्वजन्म और पुनर्जन्म

श्री विश्वामित्र वर्मा

[यह इनके अपने विचार हैं, संपादक इसके लिए जुम्मेदार नहीं है।]

सेठ धनीराम करोड़पति, परन्तु निस्सन्तान थे। सोचा मरने के दिन निकट हैं, मेरे मरने पर यह पहाड़ सा धन कौन पावेगा और इसका क्या सदुपयोग या दुरुपयोग होगा। निःसन्तान होकर इस जड़ सम्पत्ति से मेरा क्या कल्याण हुआ? और किसका होगा?

बहुत कुछ सोचा विचारा, इस धन जायदाद का अब क्या उपयोग करूँ, किसको दूँ, कौन सुपात्र है कौन कुपात्र या अपात्र है? इसका निर्णय भी अपनी विवेक बुद्धि से अनिश्चित ठहरा। अतएव घोषित कर दिया, "जिस किसी को भी, जितनी मात्रा में कर्ज चाहिए, हम से ले जाय। कोई ब्याज नहीं लेंगे, कोई लिखा पढ़ी नहीं करायेंगे। इस जन्म में ले जाओ, अगले जन्म में दे देना।"

बहुत से लोग आये और मुँह माँगी रकम उधार ले गये कि अगले जन्म में देंगे। लेने वालों में बहुतों ने सोचा, चलो अभी तो रुपया लेकर अपना काम पूरा करो, मौज करो, अगला जन्म कौन जानता है।

एक गरीब ब्राह्मण को एक विवाह योग्य क्वाँरी कन्या थी। उसे निवटाने के लिए धन की चिन्ता थी। गाँव पड़ोस के लोगों ने सेठ जी की साहूकारी की चर्चा कर ब्राह्मण को सुझाया, पण्डितराज, आप भी चाहे जितना रुपया ले आइए, कुछ ब्याज नहीं देना, कुछ लिखा पढ़ी नहीं करना, एक हजार माँगो, सेठ दो हजार देने को कहता है। बस तुम भी बेटी का काम निवटा दो, अगले जन्म में देखा जायगा क्या होगा क्या न होगा, क्या सच क्या झूठ, अभी से क्या चिन्ता।

पण्डित जी मान गये और दूर नगर जाकर उस सेठ से एक हजार रुपये ले लिये। लौटते समय रात में एक गाँव में एक तेली की चौपाल में ठहरे। उसके दो कोल्हू चलते थे। एक में बैल, और दूसरे में पाड़ा जुता था।

बैल और पाड़े में बात होने लगी।

बैल बोला, मुझे इस तेली का तीन सौ रुपया भुगतान करना बाकी है। रोज अठारह आने की मजदूरी करता हूँ, उसमें दो आने की खुराक मुझे मिलती है, रुपया रोज अदा होता है। और इस मूर्ख ब्राह्मण को देखो कि एक हजार रुपया कर्ज लाया है, अगले जन्म में देने के लिए। न जाने गधा, घोड़ा, बैल पाड़ा, या क्या बन कर अगले जन्म में चुकाएगा।

पाड़ा बोला—यह तो संसार का व्यवहार है, सभी तो आपस में किसी न किसी के कर्जदार हैं। मुझे इस तेली का एक हजार देना है, और देखो वह राजा का हाथी बँधा है, उसमें मुझे एक हजार लेना है। और हाथी को राजा पर एक हजार रुपये लेना शेष है, वह तो रोज पकवान खाता, धूल उड़ाता मजे में झूलता है। और मैं आँखों में पट्टी बाँधे कोल्हू का चक्कर काटता हूँ दिन भर। अगर मुझे उस हाथी पर छूटने का मौका मिले तो थोड़ी देर में ही अपना एक हजार वसूल कर तुरन्त अपना कर्ज अदा कर इस तेली के कोल्हू से मुक्त हो जाऊँ।

बैल बोला—अरे तुम पाड़े, और हाथी से लड़ने चले। इतना बल कहाँ?

पाड़ा बोला—बल मुझमें नहीं, परन्तु मेरा कर्ज जो उस पर है, इस लिए हाथी कर्ज से दबा हुआ मेरे सामने टिक सकता नहीं।

ब्राह्मण ने बैल पाड़े की बात सुनी समझी। तेली को सुझाया, तुम अपना पाड़ा लेकर राजा के पास जाकर बोलो, पाड़ा की कुश्ती के लिए इसकी 'जोड़' दीजिए। एक हजार की बाजी रखो। और जोड़ का पाड़ा मिले या न मिले, तुम पाड़े की जोड़ हाथी पर ललकार रखो।

पाड़ा हार जायगा तो एक हजार मैं दूँगा, वर्ना हाथी हारेगा तो एक हजार रुपये राजा देगा।

तेली को बात जँच गई, राजा और तेली में हाथी पाड़े की लड़ाई तय हो गई। अमुक दिन अखाड़े में दोनों पशु मदोन्मत्त छोड़ दिये गये। पाड़े ने हाथी को पीछे धकेल दिया। तीन बाजियाँ हुईं, हाथी को भागना पड़ता। राजा से एक हजार रुपया तेली ने पाया। यों समझिए कि राजा ने हाथी का कर्ज चुकाया और हाथी ने पाड़े का, पाड़े ने तेली का। हाथी और पाड़ा दोनों परलोक चल बसे।

ब्राह्मण ने लौंकर सेठ से लिया हुआ एक हजार रुपया कर्ज वापस कर दिया।

यह तो एक सुना हुआ आख्यान है। पता नहीं सच या झूठ। परन्तु मुझे बचपन का एक आँखों देखा हाल याद है। एक अच्छे घराने के हृष्ट पुष्ट माननीय ठाकुर साहब थे। बुजुर्ग थे। अकस्मात् उन्हें बाजा बजाने की धुन लग गई। घर जायदाद खेती बाड़ी का सब काम काज छोड़ दिया। बस बाजा बजाने की धुन लग गई। गाँव गाँव घर घर फिरते, कोई बजाने की चीज दो, या कोई बाजा दो। कोई कुछ न देता तो टूटा फूटा कनस्टर, या टिन का टुकड़ा लेकर ही दो पतली लकड़ियों से पीटने बजाने लगते। लड़कों ने उनका तमाशा बना लिया था और उन पर सब पत्थर मिट्टी फेकते। उन्हें तंग कर गाँव से बाहर भगा देते।

वे अपने घर जाते तो सबसे अलग खाते पीते सोते। सब से कहते—हमें छूना मत।

उनके विषय में सयानों को आपस में बात करते सुना। लोग कहते—ठाकुर साहब को एक डोम (बाजा बजाने वाले अछूत) का धन मिल गया है, तब से उस गड़े हुए धन के मालिक डोम का (मृत) आत्मा ठाकुर साहब के शरीर में प्रवेश कर गया है इसी कारण ये बाजा बजाते अछूत की तरह रहते हैं।

हमारे यहाँ (कल्पवृक्ष कार्यालय में) भूत प्रेत बाधा से पीड़ित दूर पास के लोग अक्सर चिकित्सा के लिए आया करते हैं। उनमें कुछ झूठे, कुछ सच्चे, और कुछ अजीब वृत्तान्त होते हैं। जब से स्व० सन्त नागर जी ने आध्यात्मिक उपचार के लिए यह केन्द्र खोला तब से सैकड़ों नहीं, हजारों ऐसे पीड़ितों का कल्याण हुआ है। स्त्रियों और पुरुषों का भी। किसी स्त्री को गर्भ नहीं ठहरता, किसी को कुछ मास में गिर जाया करता, किसी के सन्तान होती और मर जाती, किसी को स्वप्न दीखते, किसी को खाया पिया न जाता, कोई पागल हो जाता, कोई पछाड़ खा जाता, कोई अकेले बैठा अपने आप बकता रहता मानों दो व्यक्ति बोल रहे हों, किसी में कई (मृत) आत्माओं का प्रवेश होता, और उनके निकलने पर (चिकित्सा द्वारा) वे भले चंगे हो जाते। कितनों ही को संतानें हुईं और अब तक जीवित हैं, सब लोग स्वस्थ हो जाते किन्तु कुछ (मृत) आत्माओं के मामले पेचीदे होते। वे भी कठिनाई से सुलझते।

बहुत वर्षों की बात है। मैं एक गाँव में गया था। उसी गाँव की एक नवविवाहिता लड़की की चर्चा सुनी। कभी घण्टों रोती रहती है, कभी घण्टों हँसती रहती है, कभी बहुत देर तक चुप बैठी रहती है, न सुनती है न बोलती है, न कुछ करती है; कभी थोड़ा खाती है, कभी चार पाँच व्यक्तियों की खुराक अकेले खा जाती है। अजीब अजीब बातें करती है। उसका इलाज कीजिए। शादी हुए तीन महीने हुए हैं, पहले अच्छी थी, ससुराल से आई तब यह हाल हो गया। पता नहीं क्यों ऐसा और उसे क्या हो गया है। ओझा लोग उसे मिरचे की धूनी देते, जूतों से पीटते पर कुछ न हुआ।

विवाह के बाद कुछ युवतियों को अजीब लक्षण का रोग हो जाता है, साधारणतः 'हिस्टीरिया' मानकर उनको दवाएँ पिलाई जाती हैं,

परन्तु ऐसे रोगियों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की आवश्यकता है।

वह लड़की सन्ध्या समय मेरे पास अच्छी दशा में लायी गई। उससे उसके कष्ट का हाल पूछा तो उसने कहा—मुझे पता नहीं कि क्या होता है और क्यों होता है।

मैंने कहा—अच्छा, आँखें बन्द कर स्थिर होकर शान्त बैठ जाओ।

और मैंने मौन सङ्कल्पपूर्वक उसके सिर पर हाथ रखा। कुछ मिनटों में उसके श्वास प्रश्वास की गति में परिवर्त्तित आवेग मालूम हुआ। उसकी श्वास प्रश्वास गति मन्द होकर फिर तीव्र होकर स्थिर हो गई। और यह जान कर कि उसके व्यक्तित्व में अब परिवर्तन हो गया है, अर्थात् एक अन्य आत्मा का प्रवेश हो गया है, मैंने उससे पूछा—तुम कौन हो, अपना परिचय दो। कई बार पूछने पर, आँखें बन्द दशा में ही वह बोली—हम देवता हैं, इनके कुलपूज्य।

मैंने पूछा—कुलपूज्य देवता हो, कुछ नाम भी तो होगा। कई बार पूछने पर वह बोली—पठान।

मैंने उसके गाल पर जोर का थप्पड़ लगाया, किन्तु आँखें बन्द होते हुए भी, थप्पड़ लगने के पूर्वाभास से उसने ऐसा सिर हिलाया कि थप्पड़ चूक गया। तुरंत बायें हाथ से तमाचा दिया जो जमकर लगा।

मैंने डाँट कर कहा—हिन्दुओं के यहाँ पठान कब से देवता हो गये? मेरे सामने झूठ छल कपट? तुम्हें मुक्त करने के लिए ही तुम्हारा आवाहन किया है फिर मुझसे अपना हाल छिपा कर तुम्हारा भला कैसे हो सकता है?

अस्तु प्रेत विसर्जन का संकल्प कर, अभिभावकों से मैंने उस लड़की को एक सप्ताह बाद अपने (मेरे) घर लाने को कहा। एक सप्ताह बाद वे लड़की को ले आये, और मनोविश्लेषण की वह क्रिया आरंभ हो कर रोज सायकाल एक घण्टे तक एक सप्ताह तक होती रही। इस बीच में परिवर्तित व्यक्तित्व की दशा में उसने जो हाल बताया वह न तो उसके अभिभावक जानते थे, न मुझे ही मालूम था, और उस वार्तालाप से एक 'हत्या' का रहस्य खुला।

प्रविष्ट आत्मा ने उस लड़की के मुख से कहा—मैं इसकी जेठानी हूँ। मुझे मरे हुए तीन वर्ष हुए। मेरे साथ एक ब्राह्मण भी है। इसके शरीर में मेरे प्रवेश के साथ ब्राह्मण का भी अंश मेरे साथ आ जाता है।

मैंने पूछा—इस लड़की का विवाह हुए केवल तीन मास हुए हैं, और तुम तीन साल पहले ही मर चुकी हो। इस लड़की ने तुम्हें नहीं देखा, इसने तुम्हारा कुछ नुकसान नहीं किया, तुमने जिन्दगी में इसको नहीं देखा, फिर मर कर भी तुमने इसे क्यों सताया? और ब्राह्मण कौन है, तुम लुहार के साथ ब्राह्मण कैसे?

उसने कहा—मैं ब्राह्मण के साथ सती हुई थी। मेरा उसका गुपचुप सम्बन्ध था। यह मेरे पति को मालूम हो गया। चैत्रमास की एक प्रातःकाल मेरे पति ने ब्राह्मण को गाँव से बाहर खलिहान में, लोगों के देखते देखते, गँडासे से काट डाला। फिर दौड़कर घर आया, मेरी ओर झपट कर, मेरी गोद से दूध पीते बच्चे को छीन कर अलग फेंक कर मुझे भी गँडासे से काट डाला। तब से ब्राह्मण का मेरा साथ है। पति तब से जेल चला गया, कहाँ और कौन सी जेल, कब तक के लिए, नहीं मालूम। ससुराल "गुदरौल", और मायका "चाँदी घुँवाई" गाँवों में है। पिता का नाम बाबादीन है। पति और ससुर का नाम मैं नहीं बता सकती। ससुराल में ससुर हैं, देवर है, मायके में माँ, और उसी के पास मेरे लड़का लड़की हैं। लड़का स्कूल में पढ़ता है, क्या पढ़ता है मालूम नहीं। मैं कुछ नहीं पढ़ी। मेरा नाम देवरति है। जब मैं मरी तब जवान थी, एक लड़की और लड़का था।

मैंने पूछा – मेरा प्रश्न तो यह है कि इस नई दुलहिन से तुम्हारा कोई व्यवहार नहीं फिर तुम दोनों इसे क्यों सताते हो ? तुम खुद क्यों अब भी संसार वालों के बन्धन में पड़े हो, कहीं जन्म धारण करो।

उसने कहा—जन्म कैसे और क्यों धारण करें, अभी तो संसार से ही हमें छुट्टी नहीं मिली। अपने पति से हमें और ब्राह्मण को अपनी हत्याओं का बदला लेना है। ब्राह्मण के मरने पर उसके कुटुम्बियों ने उसकी तेरही बर्षी सब कर दिये परन्तु मेरी हड्डियाँ जहाँ की तहाँ पड़ी हैं किसी ने गंगाजी तक भी नहीं पहुँचाईं, और तेरही बर्षी भी नहीं की। फिर भला हम संसार कैसे छोड़ दें ? घर में ससुर को मैं छू नहीं सकती थी, देवर बेचारे का कोई अपराध नहीं, और उसका ब्याह होने पर जब यह नई बहू आई तब इसके शरीर में ही प्रवेश करना हमें अनुकूल पड़ा, इसके पहले अपने घर में कोई अन्य स्त्री थी नहीं।

मैंने फिर पूछा—अच्छा तो यदि तेरही बर्षी होने पर ही तुम्हारी संसार से मुक्ति अथवा पुनर्जन्म संभव है तो हम तुम्हारे 'फूल' गंगा जी भिजवा देंगे, तेरही बर्षी करा देंगे, तब तुम इस बहू को छोड़ दोगी। परन्तु ब्राह्मण का तो सब कर्म हो चुका है। फिर उसने क्यों पुनर्जन्म नहीं लिया ?

उसने कहा—पुनर्जन्म की बात हमारी समझ में नहीं आती। हमारा तो एक बार सांसारिक जीवन हो चुका, अब दुबारा आकर क्या करेंगे। और आवे भी कैसे ? इस लोक में जितने में अनन्त अलग अलग श्रेणी के आत्मा हैं कोई कहीं नहीं जाता, न पुनर्जन्म लेता है। ले भी कैसे ? किसके गर्भ में किस प्रकार प्रवेश करे ? अथवा किसी बच्चे का जन्म होने पर किस प्रकार प्रवेश करे ? हमें तो पुनर्जन्म की गुंजायश कहीं नहीं मालूम होती। गर्भ में भी आत्मा रहता है, जन्म लेने पर भी रहता है, बिना आत्मा के किसी शरीर का जन्म होता नहीं, फिर जबरदस्ती किसी की आत्मा को दबा कर हम प्रवेश करें यह हमें ठीक नहीं जँचता। हम तो केवल अपनी हत्याओं का बदला लेना चाहते हैं इसीलिए सम्बन्धवालों से छेड़ छाड़ करते हैं वर्ना नहीं।

इस वार्तालाप में तय हो गया कि अगले अमुक दिन वह इस शरीर को छोड़ देगी। पाँचवें छठवें और सातवे दिन के आवाहन पर वह पहले कुछ देर तक रोती रही फिर शान्त करने पर शान्त होकर प्रश्नों का उत्तर देती, सातवें दिन जी भर कर देर तक रोई, क्योंकि आठवें दिन से उसका इस शरीर से वियोग होना था। मैंने यह बात उससे कही तब उसने स्वीकार किया कि शरीर वियोग के कारण ही उसे दुःख हो रहा है।

आठवें दिन से वह नवविवाहिता लड़की स्वस्थ रहने लगी। मृत आत्मा की इच्छानुसार कार्य करवा दिया गया।

पूर्वजन्म पुनर्जन्म सम्बन्धी प्रश्न

१—"ईश्वर अंश जीव अविनाशी" से आप क्या समझते हैं ?

२—जीव, जीवात्मा और आत्मा में क्या भेद है ? तीनों एक हैं या अलग अलग ?

३—जन्म किसका होता है ? जीता कौन है ? मरता कौन है ?

४—आप पूर्वजन्म को मानते हैं तो बताइए अपने पूर्वजन्म का हाल, और इस शरीर में जन्म कैसे लिया ? पूर्वजन्म में किये गये कर्म का भुगतान इस जन्म में कैसे कर रहे हैं ? इसके बाद अगले जन्म के विषय में आपकी क्या धारणा है ?

५—आप पूर्वजन्म में भी कोई प्राणी थे और कोई शुभ कर्म करके मनुष्य जन्म पाया है तो बताइए कि इस बार जन्म कैसे हुआ पुनर्जन्म होता है यह सिद्धान्त बताने के पहले यह जानना आवश्यक है कि जन्म कैसे होता है

६—पूर्वजन्म पुनर्जन्मवादी कर्म-पुनर्जन्म का अखण्ड योग बताते हैं। चौरासी लाख योनियों में जीव भ्रमण करके उच्चतर कर्म करता हुआ उच्चजन्म और गति पाता हुआ मनुष्य होता है और आगे मुक्ति का साधन करता है। आपके अनुभव में यह कथन कहाँ तक सत्य है।

७—क्या पुनर्जन्म दैवी और अनिवार्य विधान है? ईश्वर अंश जीव अविनाशी होने के कारण कर्मों का बन्धन और तदनुसार पुनर्जन्म का चक्र कब से और क्यों लगा?

८—कर्म कौन करता और कौन भोगता है? और जन्म किसका होता है? मोक्ष या मुक्ति क्या है? यदि मोक्ष, मुक्ति या निर्वाण के बाद कर्म बन्धन छूट जाता है, पुनर्जन्म नहीं होता तो तब फिर क्या होता है? यदि कर्म और पुनर्जन्म का अखण्डयोग है, इनसे कोई मुक्त नहीं, तो कर्म के बिना जीत कैसे है और कर्महीन जीवन का हेतु क्या? कर्म और पुनर्जन्म से मुक्त हो जाने पर क्या दशा होगी?

९—एक जन्म में किये गये सब कर्मों का फल नहीं प्राप्त होता, अगले जन्म में भोगने के लिए भी शेष रहता है, ऐसा कथन कहाँ तक सत्य है? एक जन्म में किये गये कर्मों का फल उसी जन्म में क्यों नहीं मिलता? और इस बाकी—उधार का क्या प्रमाण है? क्या अपने एक जीवन में जो कुछ भी भोग होता है वह केवल अपने ही कर्म का है, दूसरे किसी का नहीं? प्रमाण दीजिए।

१०—मर जाने पर, कर्म शेष रह जाने पर, कब और किस नियम से किस प्रकार पुनर्जन्म होता है? पूर्वजन्म के इक्के दुक्के उदाहरण जो सुने जाते हैं, यदि सचमुच पूर्वजन्म था और उसी से वर्तमान जन्म हुआ, तो सबको अपना अपना हाल क्यों नहीं मालूम होता? यदि पूर्वजन्म पुनर्जन्म दिव्य विधान है तो उसका ज्ञान सबको होना चाहिए।

११—आप इस विषय में सब अपने स्वतंत्र आत्म विचार और अनुभव का सार लिखिए। महापुरुष वाक्य अथवा ग्रन्थ प्रमाण मान्य नहीं। (क्रमशः)

आवश्यक सूचना

१—कल्पवृक्ष सम्बन्धी पत्र-व्यवहार में, अगले वर्ष का मूल्य भेजते समय मनीआर्डर कूपन में, तथा पता बदलने के लिए अपने पत्र में अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखें।

२—किसी मास का अंक न मिलने पर, अगले मास में हमे लिखे। तीन चार मास या साल भर बाद लिखने पर कोई ध्यान न दिया जायगा। अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखे।

३—पत्र-व्यवहार में, जवाबी टिकट या कार्ड अवश्य भेजें।

४—ग्राहक नम्बर न लिखनेवालों की चिट्ठियों तथा मनीआर्डर आदि पर कोई कार्य न किया जायगा। इसमें हमारा बहुत समय व्यर्थ जाता है।

५—प्रतिमास प्रतिव्यक्ति का पता अच्छी तरह दुबारा जाँच कर हमारे यहाँ से कल्पवृक्ष भेजा जाता है। डाक की अव्यवस्था से किसी को न मिले तो उसकी शिकायत पोस्ट आफिस से करना चाहिए। हम पर कोई जिम्मेदारी नहीं।

—व्यवस्थापक कल्पवृक्ष कार्यालय, उज्जैन नं० १ (म० भा०)

प्रश्नोत्तरी

प्रश्नोत्तरी स्तम्भ के उत्तरों में दिये गये विचारों पर स्वल्प संख्यक पाठकों को कभी-कभी शंका हो उठती है। एक वयोवृद्ध विद्वान् ने जुलाई '५३ अंक के प्रश्नोत्तरी में प्रकाशित विचारों पर टिप्पणी लिखी है, "ऋग्वेद के ऋचाओं में साकार मूर्ति के सङ्केत हैं हो, 'मोहन जोदड़ो' इत्यादि स्थानों में वैदिक देवताओं की मूर्तियाँ भी मिली हैं, उनका काल भी वेद समकालीन दिखता है। एवं आधुनिक संशोधन के विषयों में, उपनिषद् गीता पातञ्जल योगशास्त्र ज्योतिष शास्त्र भृगु संहिता और पुनर्जन्म समझाने वाले थियासॉफी के बतलाये हुए साधनों पर से, पौराणिक और बौद्ध वाङ्मय के उदाहरणों से पूर्वजन्म एवं पुनर्जन्म मानना अवश्य होता है। आपके सरीखे वैज्ञानिक साहित्य में उत्तर अधिक समझदारी और संयम से दिये जाना चाहिए। कई प्रश्नों के उत्तर साधार नहीं हैं।"

उत्तर—प्रश्नोत्तरी में किसी प्रचलित परम्परा, ग्रन्थ या महापुरुष वचन प्रमाण के आधार पर उत्तर नहीं दिये जाते वरन् स्वतंत्र प्रकृति निरीक्षण यथार्थ और आलोचनात्मक दृष्टि से दिये जाते हैं, चाहे वह प्रचलित लोक मत से सहमत हो या नहीं। आपका चाहे जो भी विश्वास हो, साथ-साथ हमारे विचारों पर भी विचार करें; यह आवश्यक नहीं कि आप हमारे विचारों को मान ही लें। संसार में 'परम सत्य तत्व' का कोई व्यक्ति, सम्प्रदाय ठेकेदार नहीं। पिण्डे पिण्डे मतिर्भिन्ना। संसार में अब तक जितने भी विचार महापुरुषों या ग्रन्थों द्वारा प्रचलित हुए हैं वे इसी प्रकार हुए हैं। परम्परावादी पहले कभी नवीन विचारों से सहमत नहीं हुए। अनीश्वरवादी सम्प्रदाय भी संसार में हैं। आप वेद उपनिषद् पुराण गीता भृगु संहिता बौद्ध वाङ्मय और थियासॉफी साहित्य के आधार पर मूर्तिपूजा और पुनर्जन्म स्वीकार करते हैं। परन्तु इन सब वेद उपनिषद् पुराण गीता आदि का आधार क्या है? और जब ये ग्रन्थाधार नहीं थे तब लोकाचार का आधार क्या था? ये सब किस आधार पर रचे गये? आप कहेंगे, ये सब ईश्वर-प्रणीत अथवा ईश्वर-प्रेरित है। बस, हमने भी ईश्वर से परे कुछ नहीं लिखा। मूर्तिपूजा का विषय हो या पुनर्जन्म का, पुस्तकों में भूतपूर्व महापुरुषों द्वारा पाये गये विचारों संस्कारों विश्वासों को अलग निकाल फेंककर स्वतंत्र आत्मदृष्टि से विचार करें कि मूर्ति और मूर्तिपूजक इन दोनों में श्रेष्ठ और चेतन कौन है? हम वाद-विवाद नहीं छेड़ते। बरफ ठण्डा होता है, आग का धर्म है जलाना। इन तत्वों का धर्म विपरीत नहीं हो सकता। पाषाण कठोर होता है, मानव सुकोमल हृदयवाला चेतन प्राणी, पाषाण प्रतिमा की पूजा करके अब तक कितनी मानवता का विकास कर पाया है? यदि वेदों ने पाषाण या धातु मूर्तिपूजा का प्रचार किया है तो चेतन की परस्पर पूजा के विषय में क्या मौन है? ऐसे वेदों के मानने से भारत का अब तक क्या कल्याण हुआ है? आर्य समाजी और सनातनी, दोनों ही वेदों को मानते हैं किन्तु दोनों के आचार विचार इस विषय में बिलकुल भिन्न हैं। बताइए किसको झूठा माना जाय? अथवा वेदों को झूठा माना जाय।

किसी जीवित व्यक्ति का फोटो भी उस व्यक्ति के प्रतिरूप समता नहीं रखता, उसके मर जाने पर तो उसका स्थूल शरीर नष्ट ही हो जाता है, फिर चाहे जीते जी उसके फोटो की पूजा करो या मरने पर, वह जीवित की आत्मा की समता और न्याय नहीं। ईश्वर सर्व भूतस्थ है, पाषाण में और मनुष्य में भी,

परन्तु पाषाण ईश्वर नहीं, मनुष्य ईश्वर नहीं, जैसे कि फोटो मनुष्य नहीं। गुण की उपासना से मनुष्य में गुणों का आविर्भाव होता है। यदि मनुष्य पाषाण प्रतिमा की तरह कठोर, इन्द्रिय चेतनाहीन होता, और पाषाण सुकोमल चेतन होता, तो मनुष्य का मूर्त्ति पूजना श्रेय होता क्योंकि कठोर मनुष्य में कोमलता का आविर्भाव होना इष्ट है। दुनिया में अमुक परम्परा या विचारवालों की संख्या अधिक है, अमुक नवीन शोधन विचार के प्रवर्त्तक बड़े बड़े विद्वान् हैं, युगों से हमारे पूर्वज और बहुत से लोग इन बातों को मानते और करते आये हैं, इसलिए हमें भी ऐसा मानना और करना चाहिए; इसे हम भेड़ियाधसान वृत्ति, अन्धविश्वास और मानसिक दासता समझते है। पूर्वजन्म पुनर्जन्म विषयक लेख इस अंक से आरम्भ हो रहा है, आगे के अंकों में क्रमशः इस विषय का और भी खुलासा किया जायगा। इस विषय में सब पुस्तक ज्ञान, महापुरुष वचन प्रमाण और इक्के-दुक्के पुनर्जन्मों के उदाहरण, सबको अलग निकाल फेंक जरा स्थिर हो स्वतंत्र आत्म विचार कर अपना अनुभव देखें कि जन्म कैसे होता है और पुनर्जन्म कैसे होता है? दोनों एक हैं या कुछ भेद है? लोग तो कहते हैं, मानते हैं कि ग्रन्थों में तो लिखा है कि मनुष्य की आयुष्य के दिन परमात्मा ने गिनकर दिये हैं, ऊँच नीच जाति में जन्म दिया है, श्वास गिनकर दिये हैं, दिन पूरा होने पर, भाग्यपत्र पूरा होने पर उसकी मृत्यु होती है, यमराज धर्मराज, स्वर्ग नरक, वैतरिणी आदि हैं; ये बातें कहाँ तक सत्य हैं? फिर आगे बातें है सत्कर्म की, योग, समाधि और इच्छामृत्यु, मोक्ष साधन और मोक्षप्राप्ति की। जब मनुष्य कर्म करने में और मोक्ष साधन करने में स्वतंत्र है, मोक्ष साध्य है है तब 'पुनर्जन्म' दिव्य अनिवार्य विधान नहीं हो सकता।

ऐसे द्वैत भ्रामक और बन्धन में डालनेवाले ग्रन्थों और कोरे कल्पित सिद्धान्तों की आवश्यकता हमें नहीं। हम तो यह समझते हैं कि सर्वव्यापक परमात्मा को पाषाण मूर्ति बनाकर पूजना (चाहे वेद सम्मत हो या न हो) सर्व व्यापकत्व का अपमान और मिथ्यात्व का प्रचार है। जब मोक्ष साध्य है, अपनी भावना और कर्म द्वारा; तब पुनर्जन्म दिव्य विधान नहीं हो सकता। पाइथागोरस जिसने भारत में आकर गणित सीखा और पुनर्जन्मवाद का प्रचार अपने देश में किया था, मर कर २५०० वर्ष बाद, तथा अन्य पुनर्जन्मवादियों सहित प्रसिद्ध प्रचारक एनी बीसेन्ट ने भी मृत्यु पश्चात् परलोक से संवाद दिये हैं कि पुनर्जन्म केवल भ्रामक और बन्धक धारणा है, अनिवार्य दिव्य विधान नहीं। इनका विवरण क्रमशः प्रकाशित होगा।

जीवन का कोई भी विषय हो, मूर्तिपूजा या पुनर्जन्म के भ्रम से मुक्त, सब ग्रन्थों और महापुरुषों की पूजा से मुक्त, भेड़ियाधसान परम्परा की मानसिक दासता से मुक्त हम तो यह धारणा रखते हैं कि—मेरा शरीर परमात्मा का मन्दिर है। मेरा मन सत्य और शिव सङ्कल्पमय है। जहाँ मैं हूँ वहाँ परमात्मा है। जहाँ परमात्मा है वहाँ मैं हूँ। मेरा जीवन और व्यवहार दिव्य प्रबन्ध से सुव्यवस्थित है। मैं परमात्मा का आत्मस्वरूप उत्तराधिकारी साक्षी हूँ। परमात्मा का मुझ पर पूर्ण प्रेम और आशीर्वाद है।

God's Truth is ever present in my heart, and I am divinely inspired, guided, provided and protected in all that I think, do and express Divine love and wisdom rule all my life and affairs. I am free from any prevalent misconceptions and limitations in thought, belief and action

—विश्वामित्र वर्मा

१—नाक से जल पीना कोई हानिकर तो नहीं है ? जल ठण्डा पियें या गर्म ? एक दिन में कितना जल व किस समय पियें ? हमेशा पियें या कभी कभी ? किसी रोग की अवस्था में हानिकर तो नहीं ? नाक से जल पीकर मुँह से बाहर निकालें या पेट में जाने दें ।

उत्तर—नाक से जल पीना नाडी शोधक और आरोग्यवर्द्धक है । किसी भी समय जितना ताजा जल पी सकें पी जावें या मुँह से निकालें, कभी कभी पियें या हमेशा पियें । हमेशा पीने की आदत डालकर उसको तोड़ना एक दिन के लिए भी भयंकर होता है । जल पीना स्वस्थ दशा में ही आरंभ करें, फिर रोग होगा ही नहीं । एक महाशय नाक से जल पीते पीते ९० वर्ष की आयु तक आरोग्य रह कर अचानक भयकर रोगी हुए, क्योंकि समाज में एक अवसर पर एक दिन नाक से पानी पीने का नियम टूट गया था ।

२—नाक से घृत या दूध पियें या नहीं, और कितना ?

उत्तर—नाक से दूध भी पी सकते हैं, परन्तु पानी या दूध के समान घी भी इतनी मात्रा में कौन मनुष्य मुँह से पीता है ? घी तो थोड़ा सा नाक से, आवश्यकता पड़ने पर खींचा जाता है, पीना आवश्यक नहीं ।

३—जल या दूध नाक से भोजन के पहले पियें या बाद में ?

उत्तर—भोजन के कुछ देर पहले ।

४—सुनते हैं कि पागल कुत्ता काटने से बरसात का पानी लगने से आदमी भी कुत्ते की तरह पागल होकर कष्ट पाता है, इसकी दवा सिर्फ इंजेक्शन है । कोई प्राकृतिक उपचार या दवा या विस्तृत विवेचन वाला लेख प्रकाशित हो तो बताइए ।

उत्तर—हमने भी यही सुना है, देखा नहीं । दवा सिर्फ इंजेक्शन ही मालूम है । पाठकों को इस विषय में कोई विशेष जानकारी या अनुभव हो तो कृपया लिख भेजें ।

५—राजस्थान में नहरुआ रोग होता है, शरीर में से सफेद धागे के समान साँप निकलता है, बड़ी पीड़ा देता है । इसका उपचार लिखिए ।

उत्तर - इसके लिए विशेष जड़ी बूटियाँ उपयोगी सुनी हैं । हमारे यहाँ से इसकी दवा मिल सकती है । आठ आने भेजने पर दवा भेज देंगे जिससे कीड़े निकल जायँगे ।

महत्वपूर्ण निवेदन

यदि इस अंक के साथ आपका वार्षिक मूल्य समाप्त होने की सूचना आपको मिली है तो अगले वर्ष का मूल्य २॥) हमें मनीआर्डर से भेज दीजिए । अन्यथा वी० पी० से आपको ३=) देने होंगे । ग्राहक न रहना हो तो एक पोस्टकार्ड लिखकर हमें सूचित कर दें, अन्यथा आपके मौन रहने से हम वी० पी० भेज देंगे और आप वापस कर देंगे तो हमें ।।) डाकखर्च नुकसान होगा । ग्राहक नम्बर अवश्य लिखिए । धन्यवाद !

—व्यवस्थापक कल्पवृक्ष कार्यालय, उज्जैन नं० १ (मध्य भारत)

पूजा के पश्चात्

श्री सुदर्शनसिंह

एक साधु मित्र मुझसे पूछते थे 'तुम पूजा क्यों करते हो?' क्या मुझे यह भी सोचना चाहिए कि मैं पूजा क्यों करता हूँ? तत्व तो एक ही है और वह अनुभूति स्वरूप होने के कारण आत्मरूप में ही उपलब्ध होता है। 'अहं' ही उसका नाम (यदि कोई नाम हो सकता हो तो) होना चाहिए। इसके साथ यह भी सत्य है कि कोई भी निरन्तर अन्तर्मुख रहे, यह शक्य नहीं। स्वरूप में निरन्तर स्थिति बनाये रहना यदि शक्य भी हो, तो भी सर्व-साधारण के लिए तो वह कल्पना मात्र ही है। अधिकांश समय मानव का शरीर से तादात्म्य किये ही व्यतीत होता है। इस स्थिति में जब हम मिथ्यात्व में तादात्म्य कर लेते हैं, सत्य हमसे दूर हो जाता है। वह हमारे लिए त्व का विषय बन जाता है। उद्देश है सत्य को सम्मुख रखना। किसी भी प्रकार उसे विस्मृत न होने देना। चाहे जिस रूप में भी वह अमायिक हमारी स्मृति के सम्मुख रहे—मायिक एवं नितान्त मिथ्यात्व में निमग्न रहने की अपेक्षा यह स्थिति आनन्दमय है। अतः जब वह हमारे स्वरूप से उपलब्ध हो, सर्वश्रेष्ठ। जितनी स्थायी यह स्थिति हो, बड़ा सुन्दर। लेकिन जब ऐसा न हो सके, ज्योंही हम मिथ्या में 'अहं' 'मम' के चक्र में उतरें, उसे छोड़े नहीं। 'त्वं' के विषय बने उसे भी अपने साथ घसीट लावें। यहाँ भी वह हमें स्मृत रहे। स्मृति न भी रहे तो क्या हानि? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि तात्त्विक दृष्टि से तो कोई हानि नहीं। लेकिन प्रत्येक प्राणी आनन्द का बुभुक्षु है और आनन्द मिथ्या में नहीं, सत्य में है। अतः आनन्द के लिए हमें किसी न किसी रूप में सत्य के समीप रहना ही होगा। इस दृष्टि से तो सत्य को 'अहं' की अपेक्षा 'त्वं' के रूप में उपलब्ध करना और भी आवश्यक है। क्योंकि चीनी हो जाने में कोई रस नहीं, चीनी से पृथक् रहकर उसका आस्वादन करने में रस है। आनन्द स्वरूप सत्य से एक हो जाने की अपेक्षा पृथक् रहकर उसके आनन्द का आस्वादन अधिक मधुर एवं आकर्षक है। उससे अलग रहकर 'त्वं' के रूप में उसकी उपलब्धि, यही तो पूजा है। पूजा का और दूसरा भी कोई अर्थ होता हो तो वह मुझे ज्ञात नहीं अथवा यों कहिए कि पसन्द नहीं। यह तो पूजा के सिद्धान्त हुए, प्रश्न तो था कि मैं पूजा क्यों करता हूँ? इसका एकमात्र उत्तर यही हो सकता है कि ऐसा करना मुझे अच्छा लगता है। जब मैंने पूजा का आरम्भ किया था—ठीक वैसे ही मेरा मन उससे भागता था, जैसे छोटा बच्चा पढ़ने से भागता है। मेरे लिए वह एक भार मात्र का कार्य था। उस समय भी स्वर्ग के लिए या किसी सांसारिक कामना से मैंने पूजा का प्रारम्भ नहीं किया था। किन्तु मुझे यह नहीं पता था कि भगवान् मेरे भीतर ही हैं। मैं तो सोचता था कि कहीं आसमान से वे टपक पड़ते होंगे और उन्हें टपकाने के लिए चित्तशुद्धि एवं प्रेम चाहिए। प्रेम तो साधन साध्य है नहीं, मैं हाथ धोकर चित्तशुद्धि के पीछे पड़ गया। पता नहीं कि मेरा मन इसमें सफल हो गया था या असफल, लेकिन मैंने मन को विवश किया कि उसे पूजा में सहयोग देना ही चाहिए। नाममात्र को कभी [illegible] ने मेरी पूजा उस समय मानी हो तो नहीं कह सकता, अन्यथा वह अपनी उधेड़बुन में व्यस्त रहा। मैंने भी उसकी चिन्ता छोड़कर पूजा को [illegible] किया और शरीर से उसमें लगा रहा। किन्तु

का अर्थ समस्त भावनाओं को चित्त से निकाल देना नहीं है। ऐसा तो हो नहीं सकता। अर्थ केवल इतना ही है कि अभीष्ट भावना मानस-केन्द्र के रूप में परिवर्तित हो जावे। यह बात तो अब जाकर समझ में आयी है और साथ ही मैंने यह भी देखा है कि भगवान् कहीं आकाश से नहीं कूदेंगे। श्रीकृष्ण अपने भीतर ही हैं। 'अहं' को ही 'त्वं' के रूप में उपलब्ध करके उसके आनन्द का रसास्वादन करना है। अनुभूतियों—विचित्र अनुभूतियों की ओर अवश्य सबके समान अपना भी आकर्षण था। मेरा मन भी कोई अनुभूति पाने को सदा समुत्सुक रहता था; लेकिन मनोविश्लेषण ने बतलाया कि सम्पूर्ण आध्यात्मिक अनुभूतियाँ अपने अन्तरमन की कृतियाँ हैं। इन सबके मूल में अन्तरमन में स्थित विषमजाल के संस्कार काम कर रहे हैं। अतः ऐसी सब अनुभूतियाँ मानस भ्रान्ति के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। फिर वे चाहे कितनी भी महत्वपूर्ण, अभूतपूर्व, अभिलषित या और किसी विशेष रूप में क्यों न हुई हों। ज्योंही यह मनोवैज्ञानिक सत्य मुझ पर प्रकट हुआ, मैं अनुभूतियों की ओर से उदासीन हो गया। मेरी समस्त उनके प्रति उत्कण्ठा शान्त हो गई और मैंने उधर से अपने मन को पूर्णतः मोड़ लिया। इस प्रकार मेरी पूजा निरपेक्ष हो गई। उसमें कुछ भी चाहने को स्थान नहीं रह गया। अनुभूतियों को मानव भ्रान्ति समझ लेने पर उनके आने पर होनेवाला आवेग तथा न होने पर आनेवाली खिन्नता दोनों दूर हो गईं। अपनी स्थिर, धीर एवं निश्चित क्रम में पूजा चलने लगी। क्यों चलती रही? इसका यही उत्तर है कि यहाँ तक पहुँचने में मैं पूजा का इतना अभ्यस्त हो गया था कि मेरे लिए अब वह व्यायाम न होकर एक सुखद विनोद था। उसे न करने पर, अधूरी या उकताहट में करने पर एक प्रकार की खिन्नता दिन भर रहा करती थी। जैसे चिर अभ्यस्त पहलवान के लिए दण्ड बैठक सुखद हैं, उन्हें छोड़ने में ही वह खेद का अनुभव करता है, ऐसे ही मेरे लिए पूजन है। वह मुझे अच्छा लगता है, इसीलिए करता हूँ। यह आवश्यक नहीं है कि मेरी पूजा में बाह्य उपकरण एवं बाह्य प्रतीक होवे ही, किन्तु ऐसा करने में, आनन्दानुभव अधिक रहता है, इसी से मैं उसे रखता हूँ। उनके न रहने में भी कोई आपत्ति नहीं, इसीलिए उपकरण और विधि पूरी अधूरी होती ही रहती हैं। उनके पीछे व्यस्त रहना मेरे लिए शक्य नहीं। रही पूजा, वह बाह्य यदि न भी रहेगी, तो अन्तर तो रहेगी ही। अब यह मेरा स्वभाव हो गया है और मैं इसे छोड़ नहीं सकता। छोड़ने की कोई आवश्यकता है भी नहीं।

सुखी होने का मार्ग

प्रो० व्रजविहारी निगम

मनुष्य दिन-रात अथक परिश्रम करते हुए सब प्रकार के सुख की कामना करता है। परन्तु सुख है क्या? कोई इसकी ठीक ठीक परिभाषा नहीं देता। नित्य उपयोग में आने वाली वस्तु की उपलब्धि सुख, और उसका न मिलना दुःख। परन्तु इतने से भी परिभाषा पूर्ण नहीं होती, क्योंकि इष्ट वस्तुओं की संख्या व परिमाण की सीमा नहीं है जिसकी प्राप्ति से सुख

मिल जाता हो। और ऐसा भी नहीं है कि अमुक प्रकार के ऊँचे मोटे तगड़े व्यक्ति को ही सुख मिल सकता हो, शेष को नहीं।

सुख केवल बाह्य वस्तुओं पर ही निर्भर नहीं, अन्तरंग जीवन में उसका विशेष आधार है। अन्तर्बाह्य स्थिति में साम्य सन्तोष होना सुख है। सुख का प्रश्न सुलझाने को सदा सर्व-काल के महापुरुषों ने अपने अपने दृष्टिकोण से प्रयत्न किया है।

राजा ययाति ने ऋषि के शाप से अपना यौवन खो दिया, फिर अपने सब पुत्रों से यौवन की भिक्षा माँगी। केवल पुरु ने पिता को अपना यौवन दिया। परन्तु पुनः यौवन प्राप्त कर ययाति को अनुभव हुआ कि भोग विलास की कोई सीमा नहीं, सुख और भी दूर होता जाता है, एक से सन्तोष नहीं होता, अतः पुरु को उसका यौवन लौटा दिया।

मनुष्य भौतिक सुख के लिए किसी से भी भिक्षा माँग सकता है। परन्तु माँगने की अपेक्षा मर जाना अच्छा है। भीख माँगने से सुख नहीं मिलता। इसका आशय कदापि नहीं कि भौतिक जगत् झूठा है। हम जिस संसार में रहते हैं, उसी से उत्पन्न और पालित हमारा शरीर, पंचतत्वों पर निर्भर है। शरीर और मन का अपनी जातिगत वस्तुओं पर आकर्षित होना स्वाभाविक है, परन्तु वही केवल सब सत्य नहीं है।

बहुत विचार कर यह निष्कर्ष पाते हैं कि प्रयत्न या कर्म ही हमारे सुख की कुञ्जी है। बिना कर्म किये हम न कुछ पा सकते हैं, और कुछ पाये बिना सुखी नहीं हो सकते। चाहे वह कोई वस्तु की प्राप्ति हो। ज्ञान प्राप्ति के लिए सत्संग या साधना की आवश्यकता होती है। त्याग से भी जो सुख होता है वह भी एक विशेष प्रकार की साधना या कर्म है।

सकल पदारथ या जग माहीं।
करमहीन नर पावत नाहीं॥

सुप्रसिद्ध लेखक फुल्टन औस्लर ने अपनी पुस्तक "प्रेशस सीक्रेट" में सुखी होने के लिए कुछ सिद्धान्त लिखे हैं जो इस प्रकार हैं :—

१—जीवन में एक उद्देश्य रखो और ईमानदारीपूर्वक उसे सिद्ध करने का प्रयत्न करो।

२—ज्ञान और सत्यप्राप्ति के लिए सतत प्रयत्न करो।

३—उन्नति के मार्ग पर आगे बढ़े चलो, जरा भी न रुको। कुछ भी पा लेने पर उसका अन्त न समझो।

४—दुःख आने पर ही प्रगति का मार्ग खुलता है, दुःख के कारण ही मनुष्य उससे मुक्त होने के लिए प्रेरणा पाता और बलवान बनने का साधन करता है। अतः दुःख कष्ट का सदैव स्वागत कर उत्साह से सामना करो।

५—अपने मित्रों से हमेशा प्रसन्न रहो।

६—दुर्भाग्य को प्रयत्न से दूर कर सकते हो, दूर करो।

७—जितना काम अभी करते हो उससे अधिक करो, कर सकोगे।

८—बाधाएँ जीवन में अभिशाप नहीं वरदान हैं, ऐसा समझ कर बाधाओं पर विजय प्राप्त करो।

ये सिद्धान्त नये नहीं हैं। पालन करो तो सब कुछ सत्य सिद्ध हो जायगा। लोग ईमान-दारी से इनका पालन नहीं करते, इसी से दुःखी होते हैं।

———

हमारी नई पुस्तकें

छप गया !

स्वर्ण सूत्र

स्व० सन्त नागरजी द्वारा लिखित, कल्पवृक्ष में गत २० वर्षों से प्रकाशित होने वाले लगभग २५० स्वर्णसूत्रों का संग्रह, अनेक अध्यात्म प्रेमियों के आग्रह से पुस्तकाकार छप गया। भय, चिन्ता, क्लेश, निरुत्साह आदि मनोविकारों को दूर कर जीवन पथ पर उत्साह से अग्रसर कराने वाली दिव्य आत्म प्रेरणाओं का, दैनिक जीवन के लिए अनमोल व्यावहारिक संग्रह है। इसे हर समय हर व्यक्ति को अपने पास रखकर नित्य पढ़ने से अपूर्व शान्ति मिलेगी। मूल्य ३) डाक खर्च ।||)

उपासना और हवन विधि

यज्ञ द्वारा मन में दिव्य संस्कार डालने और रोगों की चिकित्सा तथा आत्म विकास करने के लिए व्यावहारिक हिन्दू धर्म की अमूल्य पुस्तक फिर से छप गई। मूल्य ।|=)

ध्यान से आत्म चिकित्सा

ध्यान द्वारा मनोबल का विकास कर अपनी मानसिक कमजोरियों को दूर कर उन्नति करने के अनमोल साधन मूल्य १)

सन्त नागरजी

स्व० सन्त नागर जी तथा उनकी संस्था व कार्यों का संक्षिप्त परिचय मूल्य ।)

छप गई !

सूर्य किरण चिकित्सा

रंगीन बोतलों में जल, तैल, मिश्री, सौंफ या अन्य औषधियाँ भरकर, तथा रंगीन काँचा द्वारा रुग्ण स्थान पर, सूर्य की धूप देकर, सूर्य की रोगनाशक और दिव्य जीवन प्रदायिनी शक्ति से रोग दूर करने के सहज साधन इसमें दिये हैं। दाम कौड़ी चीर फाड़ और दवा के बिना स्वयं घर बैठे डॉक्टर या वैद्य बनाने वाली यह पुस्तक छठवी बार पुनः छप गई है। मूल्य ५) डाक खर्च ।|=)

दुग्ध चिकित्सा

स्वामी जगदीश्वरानन्द जी वेदान्तशास्त्री द्वारा लिखित इस पुस्तक में नवीन अनुभव जोड़कर विस्तार पूर्वक छापा गया है। मूल्य ।||) डाक खर्च ।|)

सङ्कल्प सिद्धि

स्व० स्वामी ज्ञानाश्रम द्वारा लिखित, व्यावहारिक विचार शास्त्र की अनमोल पुस्तक बहुत माँग होने पर फिर से छप रही है। मूल्य २) डाक खर्च ।|=)

कल्पवृक्ष के पाठकों के लिए अमूल्य भेंट

शिव सन्देश

अथवा आध्यात्मिक जीवन का रहस्य

ब्रह्मलीन पं० शिवदत्त जी शर्मा के "कल्पवृक्ष" में पिछले २५ वर्षों में निकले हुए लगभग ४०० लेखों का अमूल्य संग्रह, लगभग १००० पृष्ठों मे छप कर तैयार है। इस संग्रह की पाठकों की ओर से बड़ी माँग थी। इस ग्रंथ में उनके आध्यात्मिक जीवन का रहस्य प्रकट करने वाले दस विभिन्न भागों में अत्यन्त उपयोगी सामग्री संग्रह की गई है। यथा—आध्यात्मिक जीवन-चरित्र, व्यावहारिक जीवन, स्वास्थ्य-साधन, विचार-साधन, प्रार्थना—ध्यान—उपासना आध्यात्मिक साधन, मंत्र और योग साधन, व्यावहारिक वेदान्त, अध्यात्म और ब्रह्मविचार, मृत्यु और उस पर विचार। प्रत्येक अध्यात्म-प्रेमी के लिए दैनिक स्वाध्याय के योग्य ग्रंथ है। मूल्य १०) डॉक खर्च १।=)

व्यवस्थापक—"कल्पवृक्ष" उज्जैन, नं० १ (मध्य भारत)

राजयोग ग्रंथमाला

अलौकिक चिकित्सा विज्ञान

अमेरिका के योग प्रकाशक श्री रामचरक की की अंग्रेजी पुस्तक का अनुवाद चित्रमय छपा है। इसमें मानसिक चिकित्सा द्वारा अपने तथा दूसरों के रोगों को मिटाने के अद्भुत साधन दिये हैं। मूल्य २) रुपया, डाक खर्च ॥=)

सूर्य किरण चिकित्सा

सूर्य किरणों द्वारा भिन्न-भिन्न रंगों की बोतलों में जल, तैल तथा अन्य औषधि भर कर सूर्य की शक्ति संचित कर तथा रंगीन काँचों द्वारा सूर्य की किरणें व्याधिग्रस्त स्थान पर डाल कर अनेक रोग बिना एक पाई भी खर्च किये दूर करना तथा रोगों के लक्षण व उपचार के साथ पथ्यापथ्य भी दिये गये हैं। नया संस्करण मूल्य ५) रुपया, डाक खर्च ॥।)

संकल्प सिद्धि

स्वामी ज्ञानानन्दजी की लिखी हुई यथा नाम तथा गुण सिद्ध करने वाली, सुख, शांति, आनन्द, उत्साह वर्द्धक यह पुस्तक दुबारा छपी है मूल्य २) रुपया, डाक खर्च ।=)

प्राण चिकित्सा

हिन्दी संसार में मेस्मेरिज्म, हिप्नाटिज्म, चिकित्सा आदि तत्वों को समझाने व साधन बतलाने वाली एक ही पुस्तक है। कल्पवृक्ष के संपादक नागरजी द्वारा लिखित गम्भीर अनुभव-पूर्ण तथा प्रामाणिक चिकित्सा के प्रयोग इसमें दिये गये हैं। जीवन में इस पुस्तक के सिद्धांतों से दीन-दुखी संसार का उपकार कर सकेंगे मूल्य २) रुपया, डाक खर्च ॥=)

प्रार्थना कल्पद्रुम

प्रार्थना क्यों तथा किस प्रकार करनी चाहिये। दैनिक सामूहिक प्रार्थना द्वारा अनिष्ट स्थिति से मुक्त होने व दूरस्थ मित्रों व मृत आत्माओं को शांति व अलौकी सन्देश दिलाने वाली हाल के संसार में अपूर्व पुस्तक है। मूल्य ॥) आना।

आध्यात्मिक मण्डल

घर बैठे आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त करने व साधन करने के लिए यह मण्डल स्थापित किया गया है, जिससे स्वयं शारीरिक व मानसिक उन्नति कर अपने क्लेशों से मुक्त होकर दूसरों का भी कल्याण कर सकें। [illegible] की शिक्षा व साधन के लिए प्रवेश शुल्क १०) इसके हैं और निम्नलिखित पुस्तकें दी जाती हैं:—

१—प्राण चिकित्सा २—आत्म [illegible] ३—ध्यान के द्वारा चिकित्सा ४—प्राकृतिक आरोग्य [illegible] ५—आरोग्य साधन पद्धति ६—[illegible] पद्धति ७—[illegible] चार्ट ८—[illegible] ९—[illegible] प्रेरणा १०—[illegible] ११—[illegible] उपदेश।

कोई भी सदाचारी व्यक्ति प्रवेश फार्म [illegible] कर सदस्य बन सकता है।

अमूल्य उपदेश

कल्पवृक्ष में पूर्व प्रकाशित अमूल्य उपदेशों का दूसरा संस्करण। मूल्य २) डाक खर्च ।=)

स्व० पं० शिवदत्त शर्मा की पुस्तकें

गायत्री महिमा ।)	सोऽहम् [illegible] ॥)
अग्निहोत्र विधि ॥)	ध्यान की विधि ।)
आरोग्य आनंदमय जीवन ॥।)	ॐ [illegible] ।)

विश्वामित्र वर्मा द्वारा लिखित नई पुस्तकें

प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान

रोग क्यों तथा कैसे होता है, [illegible], [illegible], और [illegible] के बिना, [illegible] खर्च के बिना कैसे जाता है, विद्वान डाक्टरों का अनुभव मूल्य १॥)

यौगिक स्वास्थ्य साधन ।)

प्राकृतिक स्वास्थ्य साधन

स्वास्थ्य के नये साधन. [illegible] आसनों के २८ चित्र, भोजन की [illegible] नवीन वैज्ञानिक व्याख्या [illegible]। मूल्य १)

आत्म सिद्धि

[illegible] व्यावहारिक [illegible] विकास द्वारा उन्नति और [illegible] प्राप्त करने के व्यावहारिक साधन १)

दिव्य सम्पत्ति

[illegible] [illegible] में [illegible] और [illegible] लोगों के लिए [illegible]। मूल्य ।)

जीवन का सदुपयोग (चार्ट) ।)

[illegible] (चार्ट) ।)

[illegible] चार्ट) ।)

मिलने का पता—कल्पवृक्ष कार्यालय, उज्जैन (मध्य भारत)।

Registered No. N. 277

आध्यात्मिक मंडल, उज्जैन, म० भा०

की

निम्नलिखित शाखाओं में मानसिक, आध्यात्मिक एवं प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा मुफ्त इलाज होता है :—

स्थान — प्रबन्ध और उपचारक

१ कोटा (राजपूताना) श्रीयुत पं० नारायणरावजी गोविंद नाबर, प्रोफेसर ड्राइंग, श्रीपुरा
२ हींगनघाट (सी० पी०)—आयुर्वेदाचार्य शोभालालजी शर्मा ।
३ उदयपुर (१) (राजस्थान) संचालक आयुर्वेदाचार्य पं० जानकीलालजी त्रिपाठी, चिन्तामणि कार्यालय सूपाकपुरा, प्लाट नं० २०९ ।
उदयपुर (२) लाला जेसारामजी, मार्फत श्री देवराज, टी. टी. ई. रेलवे क्वार्टर्स, बी।२, रेलवे स्टेशन
४ खरगोन (मालवा प्रांत, श्री गोकुलजी पंढरीनाथजी सर्राफ मंत्री आध्यात्मिक मंडल ।
५ अजमेर (राजपूताना) पंडित सूर्यभानुजी मिश्र, रिटायर्ड टेलिग्राफ मास्टर, रामगंज ।
६ नसीराबाद (राजपूताना)—चाँदमलजी बजाज ।
७ दोहरी घाट स्टे. ओ. टी. आर. (आजमगढ़ उ. प्र.) संचालक पं० क्षमानन्दजी शर्मा, साहित्यरत्न
८ मन्दसौर (मध्य-भारत) दशरथजी भटनागर, खाद्य इन्स्पेक्टर, जनकपुरा ।
९ मिट्ठी भेड़ी (देहरादून पो० प्रेमनगर) महावीरप्रसादजी त्यागी ।
१० सरगुजा स्टेट (सी० पी०) लालजीप्रसादजी गुप्त ।
११ जावरा (मध्य भारत)—विशारद पं० भालचन्द्रजी उपाध्याय, एजेन्ट कोआपरेटिव बैंक ।
१२ गोंदिया (मध्यप्रान्त) लक्ष्मीनारायणजी मादुपोते, बी० ए० एल-एल० बी० वकील ।
१३ नेपाल-धर्ममनीषी, साहित्यधुरीण, डा० दुर्गाप्रसादजी भट्टराई, डी० डी० दिल्ली बाजार ।
१४ पोलायखुर्द (व्हाया अकोदिया मण्डी)—स्वामी गोविंदानन्दजी ।
१५ धार (मध्य भारत)—श्री गणेश रामचन्द्र देशपांडे, निसर्ग मानसोपचार आरोग्य-भवन, धार ।
१६ खम्भात (Cambay) श्री वल्लभभाई हरजीवनजी पंड्या ।
१७ राजगढ़ ब्यावरा (मध्य भारत) श्री हरि ॐ तत्सतजी ।
१८ केकड़ी (अजमेर) पं० किशोरीलालजी वैद्य तथा मोहनलालजी राठी ।
१९ बुढ़वल (ओ. टी. आर. जिला बाराबंकी) पं० रामशंकरजी शुक्ल, बुढ़वल शुगर मिल ।
२० इन्दौर—श्री बाबू नारायणलाल जी सिंहल, बी० ए०, एल-एल० बी०, श्री सेठ जगन्नाथ जी की धर्मशाला, संयोगितागंज ।
२१ आलोट-विक्रमगढ़ (मध्य-भारत) अध्यक्ष सेठ ताराचन्दजी, उपचारक अनोखीलालजी मेहता ।
२२ अटरू (कोटा राजस्थान)—पं० मोहनचंद्रजी शर्मा ।
२३ बारां (कोटा राजस्थान)—सेठ भैरूलाल जी ।

व्यवस्थापक व प्रकाशक—डॉ० बालकृष्ण नागर, कल्पवृक्ष कार्यालय, उज्जैन (मध्य भारत)
मुद्रक—भक्त सज्जन, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद—२

आत्म भावना

मैं अभय हूँ। मैं बलवान हूँ। मैं साहसी हूँ। मेरी स्नायुओं में ओज भरा हुआ है। मुझे किसी से भय नहीं है। मैं परमात्मा का पुत्र, अंश, उत्तराधिकारी हूँ। परमात्मा अद्वैत और अभय है। मुझमें जीवन प्रवाह और शान्ति भरपूर है। मैं ठोस मजबूत और दृढ़ हूँ।

मैं सदा प्रसन्न रहता हूँ। बाह्य परिस्थिति और दूसरों की दुःखदायी बातें 'नित्य' नहीं हैं अतः उनका प्रभाव मैं अपने ऊपर स्वीकार नहीं करता। मैं सबकी शुभ और उज्ज्वल पहलू को ही देखता हूँ।

मैं निर्भय हूँ, परम निर्भय हूँ। मुझे कोई हानि नहीं पहुँचा सकता। मैं दृढ़ आत्मबल वाला हूँ। मैं सुदृढ़ शक्तिवान् और सुरक्षित हूँ। मैं तेजोमय हूँ।

मैं कभी घबराता या चिन्ता नहीं करता। मैं सब कुछ कर सकता हूँ। मैं करूँगा। मुझमें हिम्मत है। मैं करता हूँ।

मैं प्रतिदिन हर प्रकार उन्नति करता जा रहा हूँ। संसार में मेरा कुछ भी नहीं है। मैं स्वयं परमात्मा का हूँ। सब संसार और सब काम, सब योजना सब इच्छा, सब संकल्प—परमात्मा का ही है। परमात्मा की योजना सदैव शुभ है और अबाध रूप से सफल और पूर्ण होती है। मुझे इससे क्या घबराहट और चिन्ता ?

संस्थापक

स्वर्गीय डॉ० दुर्गाशङ्कर नागर

ॐ

कल्पवृक्ष

अध्यात्म-विद्या का मासिक-पत्र

सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत ।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥ गीता ॥

वर्ष ३२ } उज्जैन, दिसम्बर सन् १९५३ ई०, सं० २०१० वि० { संख्या ४

मरण जीवन सम्बन्धी विचार

स्व० नागर जी

बहुत से मनुष्य मरने के पूर्व ही गाड़ दिये जाते है या जला दिये जाते हैं और यह जवाबदारी उन देशों में अधिक है, जहाँ डाक्टर लोग मृतक को बिना देखे ही मृत्यु का सर्टिफिकेट दे देते हैं। उष्ण प्रदेशों में कि जहाँ मृत शरीर जल्दी जला या गाड़ दिया जाता है ऐसी हालतें होना बहुत संभव है।

मृत्यु के पहिले शरीर को जलाना या गाड़ना उन हालतों में होता है कि जब मनुष्य समाधि अवस्था में हो या बेसुधि की हालत में हो। डाक्टर फ्रेन्कहार्टमन कहते हैं कि मनुष्य बेसुध कितने समय तक रह सकता है, इसकी मर्यादा नहीं है। कभी कभी मेस्मेरिज्म से बड़े बड़े आपरेशन तक भी किये गये हैं। उसको उस दशा में भान नहीं रहता है। मनुष्य मरा है या बेसुध है यह पता लगाने में डाक्टरों को भी कठिनता होती है क्योंकि ऐसा भी होता है कि मनुष्य मरने के पहिले बेसुध हो जाता है।

डॉ० रिचर्डसन कहते हैं कि जिस प्रकृति को चैतन्य शक्ति दी गई है वह चैतन्य शक्ति किस समय उसको छोड़ता है यह किसी भी तरह मालूम नहीं है। यदि प्राणी के शरीर की हालत ठीक तरह से रखी जाय और प्राण का संचार होना पुनः सम्भव हो तो कदाचित् मृत भी जीवित हो सकता है।

मौत की व्याख्या करना कठिन है। अब

आत्मा का संबंध शरीर से टूट गया और वह फिर उस शरीर में आने को असमर्थ है उसे मौत कहते हैं।

थिआसाफिकल सोसाइटी के महानुभावों का अनुभव है कि शरीर और आत्मा के बीच में जिस सूत्र द्वारा संबंध रहता है वह सूत्र जब तक टूट न जाय तब तक मृत व्यक्ति पुनः जीवित हो सकता है। परन्तु यह इतना सूक्ष्म विषय है कि सूक्ष्मदर्शी महात्माओं को ही ज्ञात हो सकता है।

डच लोगों के कबरस्तान के संशोधक ने रिपोर्ट प्रकट की है जिससे विदित होता है कि मृतक समझे गये व्यक्तियों में से आधे मनुष्य लगभग मूर्छित अवस्था में गाड़ दिये गये। Burial : How it may be prevented नामक पुस्तक में डॉ० टिब ने ऐसे कई उदाहरण पेश किये हैं।

न्यूयार्क के नजदीक स्प्रेकर्स नामक ग्राम में ता० १० जुलाई सन् १८९४ को यह बात प्रकट हुई कि एक स्त्री मरकर जीवित हो गई। यह स्त्री पन्द्रह दिन से दिल की असाध्य बीमारी से पीड़ित थी। तारीख ८ को उसके जीवन का अंत हो गया, ऐसा डाक्टरों ने सर्टिफिकेट दे दिया। किंतु तारीख ९ को गरमी अधिक होने के कारण मृतक संस्कार का दिन तारीख १० रखा गया। जब उसको ले जाने लगे तो जनाजे के भीतर से रोने की आवाज आई। निकाल कर देखा तो मिस मार्खन जीवित दशा में मिली और उसके पश्चात् वह रोग उसे जीवन पर्यन्त कभी नहीं हुआ। वह कहती थी कि बाहर जो कुछ आप लोग बातचीत कर रहे थे मैं सब सुनती थी पर बोलने या अपने विचारों को प्रकट करने में मैं असमर्थ थी। एक दूसरा उदाहरण "Undei takei's Journal" तारीख २२ जुलाई सन् १८८९ ई० के में नीचे लिखे अनुसार दिया हुआ है।

डिवीजन न्यूयॉर्क स्ट्रीट की रहनेवाली एक स्त्री बाल-नाच में नाचते नाचते मर गई। उसका पति उसे जो अत्यधिक प्रेम करता था उसके मूल्यवान आभूषण और वस्त्रों सहित जिस दशा में वह बाल नाच में गई थी, उसे दफना दिया। परन्तु दफन करने को जो मनुष्य गया था वह लालची था। उसने सोचा कि किसी तरह इन आभूषणों को हाथ में कर लेना चाहिए। अतएव अर्धरात्रि के पश्चात् कबरस्तान में जाकर मृत व्यक्ति के सब आभूषणों को उसने उतार लिया। परन्तु एक हीरे की अंगूठी जो उसकी अँगुली में इतनी सख्त बैठी थी कि उसे निकालने के लिए उसने जोर जोर से झटके दिये जिससे अकस्मात् मृत स्त्री जीवित हो उठी। यह देखते ही चोर महाशय तो नौ दो ग्यारह हुए और वह किसी तरह अपने घर पहुँची। इसके पश्चात् उसे जो बालक हुए वे अब तक वर्तमान हैं।

शरीर की सब क्रियाएँ बन्द होने पर भी मनुष्य जीवित रह सकता है। यह जिन्होंने साधु हरिदासजी का बयान पढ़ा है उन्हें मालूम होगा। इन महात्मा ने चालीस दिन की समाधि ली थी, उस समय इनकी नाक, कान और मुँह में भी मोम भर दिया गया था और इनके शरीर को वस्त्र में लपेटकर एक सन्दूक में बंद करके वह सन्दूक सरकारी मोहर के साथ जमीन में गाड़ दी गई थी और उस पर जौ बो दिये गये थे और पहरा बैठा दिया गया था। यह सब महाराजा रणजीतसिंह जी की और नामी अँग्रेज और जर्मन डाक्टरों की उपस्थिति में किया गया था।

चालीस दिन के बाद उन समस्त सज्जनों के सम्मुख संदूक निकाला गया और साधुजी के शिष्यों ने योग क्रिया से उन्हें फिर जीवित कर लिया।

लंदन डेली एक्सप्रेस का संवाददाता तारीख ११ अप्रैल सन् १९२३ ई० को लिखता है कि विहलेनुवेसर लाट के नजदीक की श्मशान भूमि

में जबकि एक जनाजे को रखा गया और उसके अन्दर की लाश को कब्र में रखने की तैयारी की गई उस वक्त जो मुखिया था उसने लाश से आवाज सुनी और लाश चिल्ला उठी कि मुझे बचाओ। लोगों ने एकदम जनाजे को खोला। उस मृत औरत ने अपनी आँखें खोलीं और आस पास आश्चर्य से देखा। उसको घर ले गये और डॉक्टरों ने निरीक्षण कर कहा कि वह जीवित है।

स्व० सन्त नागर जी की, शर्मा द्वारा प्रकाशित पुस्तक "विशाल जीवन" से। मूल्य २); डाकखर्च ॥=)

श्री नागर जी की उपचार विधि

श्री स्वामी विशुद्धानन्द जी

'कल्पवृक्ष' के सम्पादक श्री दुर्गाशंकर जी नागर की ख्याति पाठकों ने सुनी होगी, परन्तु साक्षात् परिचय प्राप्त करने का सौभाग्य कम लोगों को मिला होगा। परिचितों में से भी बहुत कम ऐसे व्यक्ति होंगे जो उनकी अन्तरात्मा तथा उपचार विधि से परिचित होंगे। अतएव इस विषय में मैं अपने कुछ संस्मरण लिख रहा हूँ जो मनोविज्ञान के विशेषज्ञों के लिए लाभदायक हैं।

हम अपनी अपेक्षा कम उन्नत व्यक्तियों को सरलतापूर्वक समझ लेते हैं तथा अपने समान स्तर वाले व्यक्तियों का अभिप्राय भी हमें विदित हो जाता है। परन्तु अपनी अपेक्षा अधिक उन्नत व्यक्तियों को हम पूर्ण रूप से कभी नहीं समझ पायेंगे। हमारे लौकिक अनुभव हमको जहाँ तक अवकाश देते हैं उस सीमा के अन्दर से ही हम महापुरुषों को भी समझने का प्रयत्न करते है। परन्तु महापुरुषों के विकास की सीमा अधिक विस्तृत होने के कारण उनकी प्रत्येक क्रिया और विचार का अभिप्राय हमारे लिए केवल अनुमान का विषय रह जाता है। फिर भी जहाँ तक हम समझ पाते हैं उसकी व्याख्या हमारे लिए लाभदायक होती है। क्योंकि महापुरुषों का उद्देश उस क्रिया से चाहे जो भी हो, जगत के हित की भावना उसमें अवश्य होती है।

श्री नागरजी के पास प्रायः असाध्य रोगी तथा पागल ही आया करते थे। ऐसे रोगी प्रेम के भूखे हुआ करते हैं, उनके अन्तश्चेतन में यह विश्वास नहीं होता कि उनसे भी संसार में कोई प्रेम कर सकता है। नागरजी पहली मुलाकात में ही ऐसे रोगियों को देर तक प्रेमपूर्ण दृष्टि से देखते रहते थे जिससे रोगी में विश्वास का संचार होने लगता था कि वे भी प्रेम के योग्य हैं, इस प्रकार रोगियों को नागरजी के समीप रहने में आत्म विश्वास और शान्ति का अनुभव होता था। रोगी अपने प्रति प्रेम प्रकट करनेवाले व्यक्ति (नागरजी) के प्रति सहानुभूति तथा कृतज्ञता का भाव प्रदर्शित करने के लिए अपनी खोई हुई बाह्य चेतना का आश्रय लेने के लिए विवश होता था, जिससे उसके दोनों व्यक्तित्वों में एकता स्थापित करने का कार्य आरम्भ हो जाता था।

रोगियों के प्रति प्रेमपूर्ण दृष्टि से देखना श्री नागर जी का पहला अस्त्र अथवा उपचार था जिससे रोगी अपने खोये हुए मन को केन्द्रित करने का स्थान प्राप्त करता था। उसके पश्चात् रोगी के आहार विहार सम्बन्धी व्यक्तिगत विषयों में नागरजी इतनी सहानुभूति रखते थे कि स्वयं अपना स्नानागार, शौचालय तथा निवास के कमरे को भी निःसंकोच भाव से रोगी के लिए मुक्त कर देते थे जिससे रोगी के

हृदय में आत्मीयता का भाव दृढ़ होता था। यह श्री नागरजी का दूसरा बलवान और आवश्यक अस्त्र (उपचार) था।

मानसिक रोगी का प्रेम जब तक उपचारक अपने प्रति केन्द्रित नहीं कर पाता तब तक उपचार में उसे सफलता नहीं मिलती। रोगी के प्रेम को अपने प्रति आकर्षित कर लेने के पश्चात् फिर उसे यथास्थान स्थापित करना सरल हो जाता है। यह कार्य तभी सम्भव है जबकि उपचारक अपना स्वार्थ प्रदर्शित न होने दे। श्री नागरजी में यह विशेषता स्वाभाविक ही थी। उनके व्यवहार में इतनी उदारता होती थी कि रोगी को उसमें निःस्वार्थ सेवाभाव के अतिरिक्त अन्य भाव का सन्देह भी नहीं होता था। यह उनकी तीसरी विशेषता थी जिससे उनको प्रायः अनायास ही सफलता मिलती थी।

नागरजी रोगी के साथ बातचीत करते समय उसकी मानसिक स्थिति को देख लिया करते थे कि वह ग्रहणशील अवस्था (Receptive mood) में है अथवा नहीं। रोगी को देखकर कहते थे, "अब तो आप अच्छे हैं, ठीक दिखाई देते हैं।" इस पर रोगी यदि प्रसन्न होता तो उसके साथ इसी प्रकार की दो चार बातें और भी कर लेते थे। परन्तु यदि रोगी अस्वीकार कर देता कि, वह अच्छा नहीं है, तो उससे बातें करना व्यर्थ समझकर दूसरे रोगी की तरफ ध्यान देते थे। मनोविज्ञान के नियमों को न समझने वाले एक सज्जन ने इस पर आपत्ति की कि, "जो अच्छा हो रहा है वह तो स्वस्थ हो ही जायगा जो अभी अच्छा नहीं हो रहा है, बातों के लिए समय उसी को दिया जाना चाहिए।" इस पर नागरजी हँस पड़े और मेरी तरफ देखने लगे। मैंने फिर उक्त सज्जन को समझाने का प्रयत्न किया कि जो सूचनाओं को ग्रहण करने की स्थिति में होता है उसे दो चार और भी सूचनाएँ दी जायँ तो उसकी पुष्टि होती है। किन्तु जो सूचनाओं को स्वीकार नहीं करता उससे चाहे घण्टे भर भी बातें की जायँ, सब व्यर्थ होते हैं।

सायंकाल की प्रार्थना के समय श्री नागरजी के घर पर ही कई रोगी एकत्र हुआ करते थे। उनमें जो साधारण रोगी होते थे उनको उसी समय सूचनाएँ दी जाती थीं। जो विशेष रोगी होते थे उनको प्रातःकालीन प्रार्थना के समय—जो प्रातः ४ बजे होती थी, तथा मध्याह्नकालीन हवन के समय भी उपस्थित होने का आदेश दिया जाता था। सायंकाल की प्रार्थना के पश्चात् श्री नागर जी प्रत्येक रोगी को आदेश देते थे कि वह खड़ा होकर अपनी अवस्था का वर्णन करे तथा उससे पूछते भी थे कि अब उसको कुछ आराम हुआ है अथवा नहीं। जिनको कुछ भी लाभ हुआ नहीं होता था वे रोगी अस्वीकार करने में प्रायः संकुचित हुआ करते थे, इस पर नागरजी कहते थे, "कुछ तो लाभ है। रुपये में एक आना तो आराम है?" रोगी इच्छा न होते हुए भी कम से कम इतने लाभ को तो स्वीकार करने के लिए विवश हो जाता था; क्योंकि बिना स्वीकार किये उसको बैठने नहीं मिलता था। लेखक को इस प्रकार की लीलाएँ अनेक बार देखने को मिलीं। इस पर लेखक ने एक दिन नागरजी से पूछा कि, "इस प्रकार रोगी को ऐसी बात को स्वीकार करने के लिए विवश क्यों किया जाता है, जिसे वह असत्य समझता हो।" इस पर वे हँसते हुए बोले कि, "रोगी की यह विवशता उसे वास्तव में ही रोगमुक्त होने के लिए विवश करती है। उसका अन्तश्चेतन यह नहीं चाहता कि जिस बात को एक बार उसने सभा के समक्ष स्वीकार कर लिया है, उसे वह पुनः अस्वीकार करे।"

मध्याह्नकालीन हवन के समय असाध्य रोगियों को हवनकुण्ड के समीप बिठाया जाता था। उनमें से कुछ तो इतने पागल होते थे गाली बकते थे अथवा हवन की स्रुवा को ही

पकड़ कर उपद्रव करना चाहते थे। ऐसे पागलों को दो आदमी बलपूर्वक पकड कर बिठा रखते थे। हवन समाप्त होने के पश्चात् श्री नागरजी प्रत्येक रोगी के नेत्रों को ध्यानपूर्वक देखते थे। उनमें से जो कुछ ग्रहणशील स्थिति (Receptive mood) में दिखाई देता था उसको तदनुकूल सूचनाएँ देते थे।

एक बार एक नवविवाहिता लड़की उनके सामने लाई गई जिसे वमन का रोग था। उसको पानी तक हजम नहीं होता था। दो मास से डाक्टर उसकी नसों द्वारा ग्लूकोज़ का पानी चढ़ाकर उसे जीवित रख रहा था। हवन के पश्चात् नागरजी ने लड़की को प्रभावित स्थिति में देखकर पूछा कि, "अब तुम स्वस्थ हो ?" लड़की ने उत्तर दिया "हाँ" इस पर नागरजी ने पूछा कि फलों का रस पी लोगी ? जिसके उत्तर में उसने स्वीकारात्मक सिर हिला दिया। श्री नागरजी ने मोसम्मी और सन्तरे के रस का गिलास लाने की आज्ञा दी। नर्स ने जो सदा लड़की के साथ रहती थी इसका विरोध किया कि जिसने दो मास तक पानी नहीं पिया है उसे अकस्मात् इस प्रकार भोजन देना उचित नहीं। परन्तु नागरजी के आदेशानुसार रस का गिलास लाया गया और लड़की ने प्रसन्नतापूर्वक पी भी लिया। नागरजी ने फिर पूछा कि "शाम को दलिया खा लोगी ?" लड़की ने उसे भी स्वीकार कर लिया और कहना न होगा कि शाम को उसे दलिया दी गई और लड़की को उससे कोई हानि नहीं हुई।

पाश्चात्य देशों में ऐसे मनोवैज्ञानिक हुए हैं जिन्होंने मानसिक रोगों की चिकित्सा के लिए धार्मिक भावना का आश्रय लिया था। रोगी के खोये हुए व्यक्तित्व को पुनः स्मरण दिलाने के लिए वे ऐसी धार्मिक कथाएँ सुनाते थे जिसमें रोगी के रोग कारण से मिलती जुलती घटनायें होती थीं। धार्मिक कथाओं में जो अन्तिम निर्णय होता है उसमें श्रोता को पूर्ण श्रद्धा होती है कि जो कुछ जगत में हुआ वह न्यायपूर्ण ही हुआ। यह श्रद्धा ही मानवता और जगत में विश्वास उत्पन्न करती है जिससे रोगी अपना खोया हुआ व्यक्तित्व पुनः प्राप्त करता है।

श्री नागरजी भी असाध्य रोगियों को प्रभावित करने के लिए उनकी धार्मिक भावनाओं की सहायता लेते थे। कुछ रोगी तो प्रार्थना द्वारा ही प्रभावित हो जाते थे और कुछ हवन द्वारा। वस्तुत. लेखक का भी विश्वास है कि, ईश्वर और उसकी व्यवस्था में सुसंगति एवं न्याय का दर्शन करने वाला मानस रोगाक्रान्त नहीं हो सकता। यह रोग तो उनको होता है जिनको न तो ईश्वर पर विश्वास है और न अपने ऊपर। तीव्र भावनाओं के गोपन (Suppression of emotions) के कारण जो रोगी होते हैं, उनमें दूसरों पर विश्वास करने की क्षमता बहुत कम होती है। उनके लिए लोगों पर विश्वास करना उतना सरल नहीं होता, जितना ईश्वर पर। इसके अतिरिक्त एक ईश्वरभक्त व्यक्ति पर प्रायः सबका ही विश्वास सुगमतापूर्वक हो जाता है। विशेषरूप से तब जब कि उपचारक स्वयं सब कुछ ईश्वर के निमित्त कर रहा हो।

श्री नागर जी ऐसे ही उपचारकों में से थे। उनको विश्वास था कि उनकी प्रार्थना में बल है। उनके हवनकुण्ड के धूम में वह शक्ति है जिससे न केवल शारीरिक किन्तु मानसिक रोगाणुओं का भी नाश होता है। उन्होंने अपने कुटुम्ब के निर्वाह की चिन्ता भी ईश्वर पर छोड़ रखी थी। वे स्वयं तो पूर्णरूप से जनता की सेवा में लगे रहते थे, शेष परिवार का निर्वाह ईश्वरीय व्यवस्था द्वारा अपने आप होता रहता था। वे धनवान कुल में उत्पन्न नहीं हुए थे। बाल्यावस्था में कितने कष्ट से उन्होंने विद्योपार्जन किया था, इसकी कथा वे स्वयं कभी कभी सुनाया करते थे। उनके जीवन में इस

कभी संकट आता था वे ईश्वर प्रार्थना को ही उसका एकमात्र उपाय मान कर सर्वतो भावेन उसी में लगे रहते थे और इससे उन्होंने सफलतायें भी सदा प्राप्त की हैं।

मानसोपचार में श्री नागर जी का सबसे बलवान और अन्तिम अमोघ अस्त्र था, उनका रोगी को यह कहना कि, 'जब तक तुम अच्छे नहीं हो जाओगे, घर नहीं जा सकोगे।' मानसिक रोगी का अन्तश्चेतन स्वयं अच्छा नहीं होना चाहता। वह प्रत्येक प्रकार की अभिलाषाओं से निराश होता है। यदि किसी कारणवश कोई ऐसी प्रबल अभिलाषा जाग्रत हो जाती जिसमें निराशा न हो, तो जीवन में रुचि उत्पन्न हो जाती है और बीमार अच्छा होने लगता है। नागर जी का यह कहना कि बिना स्वस्थ हुए घर को नहीं जा सकते—रोगी को स्वस्थ होने के लिए विवश कर देता था।*

श्री नागर जी में अन्य अनेक गुण भी थे। लेखक को अपनी बुद्धि के अनुसार जो कुछ प्राप्त हुआ उसी का उल्लेख किया है। ऐसे महापुरुष समाज में यदा कदा उत्पन्न होते रहते हैं, जिससे समाज का पथ प्रदर्शन होता रहता है।

* श्री नागर जी की उपचार विधि से अब भी पूर्ववत रोगियों का उपचार "कल्पवृक्ष कार्यालय" में होता है और लोग लाभ उठाते हैं।

महापुरुष का दिव्य मार्ग

श्री पं० रामलाल पहाड़ा

महाजनो येन गतः स पंथः। महापुरुषों का जन्म मार्गभ्रष्ट जनों को सुमार्ग पर लगाने के लिए होता है। उनकी कृतियों का प्रभाव जनता की कुरुचि को परिष्कृत करने में बहुत उपयोगी होता है। उनके संसर्ग में आने और रहने वालों पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है और उनकी वाणी पत्रिका में पढ़कर लाभ लेने वालों पर अप्रत्यक्ष प्रभाव होता है। श्रीमान् नागरजी के संसर्ग में आने वालों को सदा आनन्द की स्फूर्ति होती रही। वे सदा शांत और प्रसन्न चित्त रहा करते थे। वे अपने पास आने वाले संतप्त जनों को अपनी मधुर वाणी से शांत कर देते थे। दुःखित मनुष्यों के मन की मलीनता अनायास दूर हो जाती थी। वे सबके साथ ऐसे प्रेम से वार्तालाप किया करते मानो वे उनके आत्मीय जन या पूर्व परिचित हों। उनने "विद्याविनय संपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि। शुनि चैवश्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः।" के आदेश को अपने जीवन का नियम बना लिया था। इसलिए साधन समारंभ में आने वालों पर एकसा प्रेम प्रकट करते और सबके सुभीते की ओर ध्यान देते थे। यही बात भी जिस कारण वे सब को प्रिय थे, उनका सब कोई सत्कार करते थे।

वे अपने प्रवचनों में अनेक प्रकार से उपदेश देते रहे पर त्रिकाल प्रार्थना और प्रतिदिन हवन करने पर अधिक जोर देते थे। उनका कहना था कि जिस तरह भौतिक शरीर की क्षुधा तृष्णा शांत करने की प्रतिदिन आवश्यकता है, उसी प्रकार या और भी अधिक प्रतिदिन मानसिक किंवा आध्यात्मिक क्षुधा तृष्णा को प्रार्थना द्वारा शांत करने की आवश्यकता है। प्रकृति से मनुष्य प्रतिदिन अनेक तत्व आकर्षित कर अपना जीवन निर्वाह करते हैं। प्रकृति की इस कमी को पूरी करने के लिए मनुष्यों को प्रतिदिन हवन करना चाहिए। इसी प्रकार के आदान प्रदान को गीता में भी कल्याणकारक बताया गया है। उनका अभिप्राय यह था कि मनुष्य प्रार्थना और हवन

को अपने जीवन का आवश्यक अंग बना कर प्रकृति के अनुकूल रहकर स्वास्थ्य सपन्न रहे।

वे शरीर की अनित्यता पर ध्यान दिलाने के लिए गीता के दूसरे अध्याय के "वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽप-राणि। तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्य न्यानि सयाति नवानि देही" इत्यादि वाक्यों को कहा करते थे। उपनिषद् वाक्यों को सुचारु ढंग से साधारण जनों को समझाया करते थे। जीवन को सन्मार्ग पर लगाने के लिए उपनिषद् के तीन महावाक्यों को अपना परम लक्ष्य बना लिया था। प्रतिदिन की प्रार्थना में 'तमसो मा ज्योतिर्गमय, असतो मा सद्गमय, मृत्योर्माऽ मृतंगमय" है। प्रत्येक मनुष्य प्रकाश, अस्तित्व और चिर स्थिरता की अभिलाषा रखता है। इन्हीं अभिलाषाओं को न्यायोचित कर लेने से जीवन सुन्दर हो जाता है। इसी तत्व को जान कर नागरजी ने इस "आत्म सूचना" को प्रार्थना में स्थान दिया। प्रार्थना में प्रत्येक वाक्य मनन करने योग्य है। प्रार्थना के वाक्यों की संख्या थोड़ी रहे पर मनन अधिक होना चाहिए। "ॐ", "ॐ आनन्दम्" 'ॐ आरोग्यम्" की ध्वनि कुछ समय तक करना उनके मत में परम लाभदायक रहा और यथार्थ में है भी।

ॐ = अ + उ + म् = विश्व + प्राज्ञ + तेजस् = जाग्रत + स्वप्न + सुषुप्ति = शरीर (भौतिक) + मन (सूक्ष्म) + आत्मा (कारण) आदि से हमको अपने सब रूपों का ध्यान करना चाहिए फिर "ॐ आनन्दम्" से यह ध्यान करना चाहिए कि ॐ (उपरोक्त बातों को सुचारु रूप से क्रियाशील होना) ही आनन्द और आरोग्य रखने का उत्तम उपाय है। साधन समारंभ के अवसरों पर प्रत्येक दिन की भावना के लिए महावाक्यों का आशय समझाकर सूचना दिया करते थे। "सत्चित् आनन्द" आदि शब्दों को लेकर विशद व्याख्या करते और निर्णय निकाल कर सूचना देते थे, जिसे श्रद्धाशील पुरुष लेकर वर्ष भर अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करते थे। साधन समारंभ के अवसरों पर कई बार वर्षा भी हो जाती थी। एक बार ओलों की वर्षा हुई और सब तंबू ओलों से दब गये, बहुत सा सामान गीला हो गया। ऐसी कठिन परि-स्थिति में भी शांति से सबको आश्वासन देकर अपना निर्दिष्ट कार्य करते रहे। उनमें लोक व्यवहार को मर्यादापूर्वक चलाने के लिए अनेक गुण थे। पर वे शांति के परम स्वरूप थे। लगभग २४-२५ वर्षों के समागम में उनको कभी भी क्षुब्ध होते हुए या किसी पर क्रोध करते हुए नहीं देखा। मन में सहसा यही जम जाता था कि इस अवन्तिका को पुनः पावन करने "श्री भगवान सांदीपन" जी आ गये हैं। होना सम्भव भी है क्योंकि जीव तत्व अविनाशी है और महापुरुष लोक कल्याणार्थ जन्म मरण का कष्ट सहने को उद्यत रहते हैं। ईश्वर नागर जी के कार्य को चिरस्थायी रखने की योग्यता उनके सुपुत्र चि० बालकृष्ण नागर को वो प्रदान करें। शुभम् भूयात् ॥

महत्वपूर्ण निवेदन

यदि इस अंक के साथ आपका वार्षिक मूल्य समाप्त होने की सूचना आपको मिली है तो अगले वर्ष का मूल्य २॥) हमें मनीआर्डर से भेज दीजिए। अन्यथा वी० पी० से आपको २=) देने होंगे। ग्राहक न रहना हो तो एक पोस्टकार्ड लिखकर हमें सूचित कर दें अन्यथा आपके मौन रहने से हम वी० पी० भेज देंगे और आप वापस कर देंगे तो हमें ।) डाकखर्च नुकसान होगा। ग्राहक नम्बर अवश्य लिखिए। धन्यवाद!

—व्यवस्थापक कल्पवृक्ष कार्यालय, उज्जैन नं० १ (मध्य भारत)

श्री नागरजी का प्रभाव

श्री डॉ० बलदेवप्रसाद जी मिश्र, एम० ए०, डी० लिट्०

सात वर्ष पूर्व मेरा स्वास्थ्य अकस्मात् एकदम बिगड़ गया। मैं जगह जगह भटका तथा न जाने कितने प्रकार की दवाइयाँ कर चुका परन्तु कोई विशेष लाभ न हुआ। लगभग तीन वर्ष पूर्व मेरे मित्र बाबू कालिकाप्रसाद वर्मा ने मुझसे अनुरोध किया कि मैं अपनी बीमारी के सम्बन्ध में एक बार उज्जैन के डाक्टर दुर्गाशंकर जी नागर से भी तो सम्पर्क स्थापित करूँ। उन्होंने बताया कि डाक्टर साहब आध्यात्मिक चिकित्सा करते हैं, वहीं से बैठे बैठे अपने प्रयोगों द्वारा इतनी दूर पर स्थित रहनेवाले बीमार को भी आश्चर्यजनक लाभ पहुँचा सकते हैं, और आश्चर्य यह कि फीस वगैरह कुछ नहीं लेते। मेरी श्रद्धा जागी और मैंने डाक्टर साहब को पत्र लिखा। मेरे सौभाग्य से, कुछ दिनों बाद ही, डाक्टर साहब छत्तीसगढ़ की ओर पधारे। मैं उस समय इतना अधिक शय्याशायी था कि रेलवे स्टेशन तक भी नहीं पहुँच सकता था फिर रायपुर या बिलासपुर जाकर उनके दर्शन करता तो असंभव सी ही बात थी। मैंने "जीव विज्ञान" नामक अपनी एक पुस्तक भेंट स्वरूप उनकी सेवा में भेजी और प्रार्थना की कि यदि वे नाँदगाँव आकर मुझे दर्शन दे सकें तो मेरा अहोभाग्य हो। श्री नागरजी से मेरा पूर्व परिचय कुछ भी न था फिर भी श्रद्धेय डाक्टर साहब ने नाँदगाँव के लिए समय निकाला ही और असुविधाओं की रत्ती भर भी चिन्ता न करते हुए मेरे ही स्थान को अपने निवास से पवित्र किया। उनके सहयोगी सज्जन भी साथ ही थे। उनके चमत्कारिक प्रयोग का उस समय मैंने प्रत्यक्ष प्रभाव देखा। अपनी आत्मिक शक्ति से उन्होंने मुझमें अद्भुत बल संचार कर दिया। शय्याशायी व्यक्ति उनके आदेश से न केवल सीढ़ियाँ ही चढ़ उतर गया किन्तु हवन में भी सम्मिलित हुआ, टाउनहाल भी चला गया और पूर्ववत् सार्वजनिक भाषण भी देने लगा। बीमारी ने वहीं से पलटा खाया और वह अब दिन प्रतिदिन सुधार पर ही है। बाद में उज्जैन के साधन समारंभ में सम्मिलित हुआ और श्रद्धेय डाक्टर साहब एक बार फिर यहाँ पधारे। इस बीच हम दोनों का पत्र व्यवहार तो बराबर चलता ही रहा। उन्होंने न पहिली बार और न पिछली बार ही मुझसे किसी प्रकार की आर्थिक भेंट स्वीकार की परन्तु सब तरह से प्रोत्साहन और सम्मान मुझे इतना दिया कि जैसे हम दोनों जन्म जन्मान्तर के अभिन्न सम्बन्धी हों। मेरे कल्याण के लिए उनके मानसिक प्रयोग चलते ही रहते थे और 'कल्पवृक्ष' का उन्होंने मुझे स्थायी लेखक ही बना डाला था। जीवन के उज्ज्वल पक्ष के चिन्तन में ही संलग्न रहना और लोककल्याण की भावना से सद्विचारों का सर्वत्र प्रचलन कराते रहना ही श्रद्धेय डाक्टर साहब के जीवन की विशेषता थी। खेद है कि वे भौतिक शरीर से हम लोगों के बीच अब नहीं रहे परन्तु वे जहाँ भी और जिस शरीर में होंगे वहीं से लोककल्याण की भावना से भरे हुए अपने सद्विचार और भी अधिक वेग से वे प्रसारित करते रहेंगे ऐसा मेरा विश्वास है।

श्रद्धेय नागर जी !

श्री विश्वनाथ वामन काले

सात्विक आशीर्वाद की तरह झुकी हुई आँखें जो भौतिकता के बीच में रह कर भी जैसे किसी अदृश्य झाँकी का रूप रस पान करती हुई सी और वाणी में अर्चना की सी पवित्रता, जिसका प्रत्येक शब्द मानव कल्याण का प्रतीक। यह था स्वर्गीय नागर जी का आध्यात्मिक रेखाचित्र। सच तो यह है कि नागर जी आज की तरह गये कल या परसों भी हमारे साथ, हमारे बीच में थे ही कब? मैंने तो जब पहिले पहिले उन्हें देखा और उनसे बात की तो लगा जैसे किसी (absent minded) आदमी से बातें कर रहा हूँ। लगता था जैसे वे हमें देख ही नहीं रहे हैं या उनके बोल जैसे उनके दिल से नहीं जबान से निकल रहे हैं। पहिली बार नागर जी से मिलने वाले हर आदमी का यही प्रभाव (Impression) रहा हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। वैसे दूसरी बार तीसरी बार और कई बार पिछले १० १२ वर्षों में उनसे मिला परन्तु यही अनुभव करता रहा कि वे भौतिक रूप से हमेशा हमारे बीच में रहे ही नहीं। नागर जी का विस्तृत कार्य क्षेत्र, कल्प-वृक्ष कार्यालय की शाखा प्रशाखा और देश के एक कोने से दूसरे कोने तक फैले हुए उनके प्रेमियों के पत्र और परिचय देखे तो लगता है कि आखिर यह सब कुछ उन्होंने कैसे किया? सच तो यह है कि जैसे नरसिंह मेहता की हुण्डी न जाने किसने और कैसे सिकरा दी थी उसी तरह नागर जी के लिए इतने बड़े भौतिक उप-करण जैसे अपने आप आकर जुट जाते थे। वरना इतना बड़ा काम करने वाले आदमी, जब देखो तब निश्चिन्त, और इतने अस्त व्यस्त कि उसकी कल्पना नहीं की जा सकती है। सौभाग्य से मुझे तो पिछले वर्षों में कई बड़े और महान् व्यक्तियों से मिलने का और उनके निकट सम्पर्क में रहने का सौभाग्य मिला है और देखा है कि जैसे काम उनपर [illegible] जाता और जब कभी तब वे अपने [illegible] के ऐसे विशद वर्णन सुनावें कि अपनी तरफ [illegible] यह अनुभव करने लगे कि हमने इतना कितना समय नष्ट किया परन्तु फिर भी उनके जीवन और कार्य की कुल जोड़ और जमा पूंजी देखो तो शून्य! नागर जी का न तो कोई विधिवत प्रायवेट सेक्रेटरी था न कोई ऐसा ऑफिस ही था जहाँ आगन्तुक के महान् व्यस्त मिनिस्टरों के द्वार पर खड़े हुए मिलने और न मिलने के समय की तख्तियाँ लगी हुई हों।

परन्तु वास्तव में, बात वैसी नहीं जैसी हम अनुभव करते हैं। नागर जी ने जन-समुदाय या आज की राजनीति में जिसे जनता जनार्दन कहा जाता है उससे विलग रहकर भी वे जनमन के जीवन में इतनी निकटता में घुले हुए थे कि कभी कभी हमें आश्चर्य होता है कि हमारे बारे में वे सब कुछ कैसे जानते हैं? प्रत्येक व्यक्ति जो उनसे सम्बन्धित था, उनके इतना निकट था कि शायद उतना वह अपने पास के रिश्तेदारों के निकट भी न होगा। [illegible] समारम्भ में यह दृश्य देखने को मिला था कि जब वे दूर दूर से आये हुए अपने प्रेमियों से उनके परिवार और मित्रों की कुशल पूछा करते। सच बात तो यह है कि वे वोट के भिखारियों की तरह जनता की भीड़ या जुलूस को जनार्दन कह कर नहीं झुकते थे बल्कि जन जन में जनार्दन के दर्शन करते और जन की उन्नति को ही शायद जनता या राष्ट्र की उन्नति का सूक्ष्मसूत्र मानते थे।

और फिर ऐसे महापुरुष के बारे में जो अपने आप में एक आध्यात्मिक [illegible] था कोई भला यह कैसे बतावे कि उन्होंने कि

पर क्या क्या और कैसे कैसे उपकार किये? भला उनके आध्यात्मिक जीवन में इस जोड़, बाकी गुणाकार भागकार को कहाँ स्थान था? क्षिप्रा के तट पर प्रतिदिन, प्रतिमास और प्रति वर्ष कितने व्यक्ति पवित्र होते , भला इसका भी कोई लेखा जोखा हो सकता है? ॐ शान्तिः! शान्तिः! के अविरल जय घोष के द्वारा जो विश्व कल्याण के लिए जन जन की वाणी हवा के कण कण में व्याप्त करता रहा हो क्या उनकी कल्याणी वाणी को किसी लेख में बाँधा जा सकता है? नागर जी तो एक निरबन्धन आत्मा थे जिसे दूसरा निरबन्धन मृत्यु के अदृश्य बन्धन में बाँध कर ले गया! जिसकी अमानत थी वह आकर ले गया। जब तक अमानत हमारे पास थी हमने उसका उपभोग किया। क्या यही हमारी कम हठधर्मी थी जो अब हम उनके लिए शोक सतप्त हों! बल्कि हम ईमानदार साहूकार हों तो उस अमानत का जो उपभोग किया उसके बदले भी तो कुछ चुकाना चाहिए? कल्पवृक्ष कार्यालय और आध्यात्मिक समारंभ नागर जी की वसीयत है, यह वसीयत अकेले भाई बालकृष्ण की नहीं है यह तो मानवमात्र की है और इसीलिए प्रत्येक मानव इस वसीयत की श्री वृद्धि उस समय तक करता ही रहे जब तक इस धरती पर मानव नाम का कोई पुतला स्वांस लेता रहे।

नागरजी से मैंने क्या सीखा!

प्रोफेसर रामचरण महेन्द्र, एम० ए०

संसार में मौखिक उपदेश देनेवाले संत महात्माओं की कमी नहीं है। "पर उपदेश कुशल बहुतेरे"—वाली प्राचीन उक्ति को चरितार्थ करनेवाले भगवा वस्त्र रख योग, भक्ति एवं आत्म विद्या का अगाध भंडार रखने का अभिनय करने वाले साधु संतों का धार्मिक जगत् में बाहुल्य है। एक ओर जहाँ ये उपदेश की ज्ञानधारा खोलते हैं, वहाँ स्वयं अपने ही आचरण में आत्म निर्दिष्ट मार्ग पर आरूढ़ नहीं होते। तप, त्याग, वैराग्य, साधना के बिना ये उपदेशक एक धूर्तता धारण किये रहते हैं, जिससे अनेक भावुक भक्त इनके चंगुल में फँस जाते हैं।

दूसरी ओर ऐसे सत्पुरुष एवं आत्मत्यागी महात्मा होते हैं, जो मंच पर आकर घंटों धाराप्रवाह नहीं बोलते, दूसरों को उपदेश देने का आवरण धारण नहीं करते, साहित्य और भाषा पर उन्हें अधिकार नहीं होता, वक्तृत्व-शक्ति भी अधिक विकसित नहीं होती, किन्तु उनके अल्प भाषण तथा आचरण द्वारा उत्पन्न उपदेश सूक्ष्मता से मनुष्य के गुप्त मन, बुद्धि, एवं आत्मा आच्छादित हो जाती है। उनके समीप रहना ही प्रकाश की ओर चलना है। उनकी गुप्त आत्मशक्तियाँ समस्त वातावरण में व्याप्त होकर स्वतः मनुष्य को त्याग, साधना, एवं तपश्चर्या की ओर आकृष्ट करती हैं। उनका चरित्र एवं सत्संग ही प्रत्यक्ष उपदेश है। उनका मौन आचरण ही सत्पथ का सूचक है। उनके अल्प भाषण, तथा मौन सन्देश में सैकड़ों ग्रन्थों का निचोड़ आ जाता है।

संत नागरजी इस द्वितीय कोटि के मौन साधु थे जो व्यर्थ के प्रदर्शन, केवल मौखिक भाषण. तथा लम्बे चौड़े ज्ञान के थोथे उपदेशों से दूर रहते थे। यदि उनसे कोई उपदेश की बात करता, तो वे प्रायः अत्यल्प भाषण करते थे। उनका भाषण प्रायः संक्षिप्त एवं सारगर्भित होता था क्योंकि वृथा के शब्दजाल के प्रति उन्हें घृणा थी। आध घण्टे तक वे प्रायः बोल पाते थे, किन्तु इस अल्प समय में ही आत्म मंथन से निसृत इतने तत्त्व उनके भाषण में

होते थे, जो वर्षों आचरण के लिए पर्याप्त होते थे। साधारणतः दस पन्द्रह मिनट ही बोलने के अभ्यस्त रहे थे।

उनके जीवन का आचरण तथा मुखमण्डल से निकला हुआ आत्मतेज एवं विश्वास समीप के वातावरण को एक विशेष प्रकार के चुम्बक से परिपूर्ण कर देते थे। एक बार उस आत्मतेज की सीमा में आया हुआ व्यक्ति उनके आचरण की साधना, सूक्ष्म बुद्धि, ज्ञान, व्यक्तिगत विद्युत् (Personal magnetism) से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता था। उनके साथ रहने से बात ही बात में उनके अनुभवों तथा अन्तर्जगत के भावों का ऐसा निरूपण हो जाता था, जो मनुष्य के मानसिक उपचार के निमित्त रसायन था।

एक बार नागरजी बारौं (कोटा राज्य) पधारे तथा स्थान स्थान पर उनके मार्मिक प्रवचन हुए। मेरे पूज्य पिता श्री मोहनलालजी वर्मा हाई स्कूल में हेडमास्टर हैं। हाई स्कूल में नागर जी का प्रवचन इतना प्रभावशाली एवं मार्मिक था कि श्रोताओं पर उसका आश्चर्य-जनक प्रभाव पडा। किन्तु उससे भी अधिक नागर जी के अलक्षित विद्युत् का प्रभाव था। पिता जी में चाय पीने की आदत प्रारम्भ से ही रही है। नागर जी ने उनको चाय का त्याग कर देने का उपदेश किया। बस, पिता जी ने उनके सामने चाय का परित्याग किया। हमें आश्चर्य यह देख कर हुआ कि जन्म से चाय के प्रेमी होते हुए और चाय को अपने लिए दवाई जैसी आवश्यक और कभी न छूटने वाली मानते हुए पिताजी ने चाय ऐसे त्याग दी मानों कभी पाई ही न हो। चाय त्यागने से सरदर्द होगा, मन भारी रहेगा, कब्ज हो जायगा—इत्यादि कोई भी बात न हुई। दूध से दस्तूरी पेट की मशीन पूर्ववत् कार्य करने लगी। पिता जी का जीवन धार्मिक हो गया। दो समय भजन पूजन, गायत्री पाठ और भोजन से पूर्व प्रार्थना स्वाध्याय इत्यादि का क्रम चलने लगा। वे सीधी कमर बैठने लगे और टहलने का क्रम भी बढ़ा दिया। उनकी खाँसी में भी बहुत सुधार हुआ। यह नागर जी के मौन व्याख्यान एवं दृढ़ आचरण का प्रभाव था।

रोगियों की सेवा करने के लिए जब नागर जी ने मेरी दीक्षा की थी, तो मुझे सन्देह था कि किस प्रकार स्वसंकेत द्वारा मानसिक विकार दूर होते होंगे। तीन चार दिन उनके सत्संग में रहने से मुझे अपनी आत्मशक्तियों के प्रति विश्वास बढ़ गया और आत्म भाव का प्रकर्ष हो गया। मुझे अब ज्ञान हुआ है कि सांसारिक मायामोह तथा बाह्याडम्बर से आवृत्त बुद्धि आत्म भाव में पूर्ण तन्मय नहीं हो पाती। नागरजी जैसे व्यक्तित्व के प्रखर प्रताप से मिथ्या-डम्बर दूर हुआ, मन बुद्धि आत्मा प्रक्षालित होकर आन्तरिक शान्ति प्राप्त हुई।

नागर जी का आदेश था कि मैं सदा संतप्त जगत के दुःख, मानसिक क्लेश, भव बाधा, कष्ट, अशान्ति को दूर करने के लिए अपनी लेखनी जागरूक रखूँ। कृशकाय शरीर होने पर भी अपनी उन्नत आत्मा एवं मन से संसार की सेवा करता रहूँ। गत दस वर्षों में मैंने जो अध्यात्म जगत के लिए नाना पत्र पत्रिकाओं में लिखा है तथा लिखता रहा हूँ, उनके प्रवर्तन में नागर जी की आत्म प्रेरणा ही कार्य कर रही है। मेरी लेखनी में उनके आशीर्वादों का ही बल है। उस अमर आत्मा को शत शत प्रणाम!

श्री दुर्गाशङ्कर जी

श्री पन्नालालजी पीयूष, सिद्धान्तशास्त्री,

श्री के न भक्त थे उपासक सरस्वती के,
दुः खियों के दुःख पाप ताप सब धो गये।
र त रहवे सत्सङ्ग भक्ति भावना में,
गा थ ईश गान आत्मज्ञान बीज बो गये।
शं कर से मिलने का मारग दिखाते रहे,
क ल्प वृक्ष वो के कल्पकीर्ति लोप हो गये।
र वि सा प्रकाश कर तिमिर का नाश कर,
जी वन दे जगती को आप कहाँ खो गये।

मै सन् १९२९ में आर्य समाज उज्जैन में आया था तब श्री नागर जी का प्रथम दर्शन हुआ था। आपके सौम्य स्वभाव सत्सग से मेरे जीवन पर अभूतपूर्व प्रभाव पड़ा। इससे पूर्व आपही के सत्संग में आये हुए स्व० महात्मा रामेश्वरनाथ जी, भत्रार्नाकुण्ड, सलुम्बर, राजस्थान का, बाल्यकाल से ही सत्संग प्राप्त हुआ था जिससे चित्त की वृत्तियाँ शुभ विचारों की ओर प्रेरित और प्रवृत्त हुईं। इनका भी श्रेय नागर जी को ही है। सन् १९२९ से १९५१ तक जब जब उज्जैन आने का अवसर हुआ, आपके दर्शन का सौभाग्य मिलता रहा। आध्यात्मिक साधन समारम्भ के अवसर पर भी भजनों द्वारा सेवा करने का अवसर प्रदान किया। जोधपुर तथा कोटा की यात्रा में भी आपके साथ रहने का अवसर प्राप्त हुआ था। जीवन में एक दो बार ऐसी घटना घर के कारोबार तथा अनेक प्रकार की दैविक आपत्ति तथा रोग आदि होने पर आपकी सेवा में आने पर सान्त्वना मिली तथा आत्मशान्ति व आरोग्यता प्राप्त हुई। कई रोगग्रस्त व्यक्तियों को आपकी सेवा में भेजने पर, वे रोगमुक्त होकर अब आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे हैं। एक दो व्यक्तियों को आध्यात्मिक चिकित्सा सीखने के हेतु आपकी सेवा में भेजा था जो अब जनता की सेवा कर रहे हैं, इनमें श्री उदयलाल जी दातिया का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

इस प्रकार आपके सत्सग से, विचारों से तथा अमूल्य पत्र 'कल्पवृक्ष' की विचारधाराओं के कारण देश में अनेक प्राणियों का उपकार किया है। आज आप स्थूल रूप में हमारे बीच नहीं हैं फिर भी आप की विचारधारा प्राणीमात्र को चिरशान्ति का सन्देश एव प्रेरणा देती रहेगी।

आवश्यक सूचना

१—कल्पवृक्ष सम्बन्धी पत्र-व्यवहार में, अगले वर्ष का मूल्य भेजते समय मनीआर्डर कूपन में, तथा पता बदलने के लिए अपने पत्र में अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखें।

२—किसी मास का अंक न मिलने पर, अगले मास में हमें लिखें। तीन चार मास या साल भर बाद लिखने पर कोई ध्यान न दिया जायगा। अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखें।

३—पत्र-व्यवहार में, जवाबी टिकट या कार्ड अवश्य भेजें।

४—ग्राहक नम्बर न लिखनेवालों की चिट्ठियाँ तथा मनीआर्डर आदि पर कोई कार्य न किया जायगा। इसमें हमारा बहुत समय व्यर्थ जाता है।

५—प्रतिमास प्रतिव्यक्ति का पता अच्छी तरह दुबारा जाँच कर हमारे यहाँ से कल्पवृक्ष भेजा जाता है। डाक की अव्यवस्था से किसी को न मिले तो उसकी शिकायत पोस्ट आफिस से करना चाहिए। हम पर कोई जिम्मेदारी नहीं।

—व्यवस्थापक कल्पवृक्ष कार्यालय, उज्जैन नं० १ (म० भा०)

मेरे जीवन के पथ-प्रदर्शक

डॉ० ज्ञानचन्द्र आर्य

जीवन प्रभात :—

१९३६ में मेरे एक परिचित मित्र श्री राम चन्द जी सिविल इञ्जीनियर उज्जैन से लौट कर मुझे जिला मुलतान (पंजाब) की एक तहसील में मिले, मैं उन दिनों वहीं प्रैक्टिस करता था। वार्तालाप में उन्होंने श्री सत नागर (स्वर्गीय) के विषय में चर्चा चला दी। मेरी आत्मा आध्यात्मिक विषयों की खोज में कुछ लालायित सी रहता है, उस चर्चा में "कल्पवृक्ष" के सम्बन्ध में भी उन्होंने कहा—उनके पास उस समय केवल एक प्रति थी - वह यह कह कर चले गये कि साय पाँच बजे भिजवा दूँगा—उस समय बारह बजने वाले थे। पाँच घण्टे का समय मेरे लिए पाँच वर्ष सा हो रहा। साय पाँच बजे पत्रिका आने पर मैने आरभ से लेकर अन्त तक बड़े ध्यान से पढ़ा। प्रतिज्ञावश वह प्रति तो एक सप्ताह पश्चात् लौटा दी गई। इस पठन ने मेरे विचारों को एक बहुत जोर का धक्का दिया। यह मेरे जीवन का "मंगल-प्रभात" था जब कि मैने कल्पवृक्ष की प्रथम देदीप्यमान किरण प्राप्त की। मेरे विचारों में बड़ा उथल-पुथल प्रारंभ हुआ। तत्काल ही मैने आध्यात्मिक मण्डल का सदस्य बनने का प्रार्थना-पत्र श्री नागर जी की सेवा में भिजवा दिया। पुस्तकें प्राप्त हो गई। मैंने नवीनज्ञान ग्रहण करने की उत्सुकता के कारण एक एक पंक्ति को बड़े ध्यान से पढ़ा और जो उत्तम तथा महान ज्ञान मैंने प्राप्त किया वह मैं ही जानता हूँ। वह ज्ञान एक अनुभव सिद्ध ज्ञान था। अनुभव सिद्ध ज्ञान न केवल विश्वसनीय ही होता है बल्कि पाठक को उस विश्वासाधार पर अपने जीवन में उसे क्रियात्मक रूप से धारण करने के लिए प्रेरित करता है जिससे वह इस महान पथ की ओर अग्रसर होता है "जब दूसरे ऐसा कर पाये तो मैं भी वैसा करके आनन्द ले सकूँगा" यह भावना जाग्रत हो जाती और यही क्रियात्मक जीवन की ओर बढ़ने का एक ठोस पग है जो आन्तरिक-जीवन में परिवर्तन कर देता है यही बल वृद्धि का अद्भुत निश्चित साधन है। और यही हुआ मेरे विषय में भी। मैंने उन्हीं दिनों नगर से बाहर जाकर एक रेत के ऊंचे टीले पर एकान्त में ध्यानादि करना आरम्भ किया और उसका उस समय जो आनन्द उठाया वह मैं ही जानता हूँ। कवि की सूक्ष्म भाषा में तो यही कहा जावेगा—"कैसे बताऊँ कि क्या रस उड़ाया।" यह एक महान् आत्मा के [illegible] के शुभ्र प्रेरणा मय उज्ज्वल तथा मानसिक अग्नि-मय ज्वलन्त विचारों का ही परिणाम था जिन्होंने मेरी सुप्त आत्मा को जाग्रत किया और मैं इसे अपने जीवन का 'मंगल' प्रभात कहता हूँ "सहानुभूति"।

१९३७ में अपने भाइयों तथा माता जी की प्रेरणा से उपरोक्त स्थान त्याग मण्टगुमरी जा पड़ा। वहाँ एक मकान बनवाया और १९३८ के आरंभ से उसमें रहने लगा। इसी वर्ष पहले मेरे बड़े लड़के (१३ वर्षीय) की आकस्मिक मृत्यु हुई। एक आकस्मिक मृत्यु का दुःख किसे नहीं होता? सन्त जी को लिखा। माननीय नागर जी ने उत्तर पत्र में जो सहानुभूति प्रकट की वह केवल सहानुभूति ही न थी बल्कि ज्ञान तथा शान्ति-मय विचारों से भरा पत्र था। यह सन्त जी के पत्र द्वारा मेरा प्रथम दर्शन था। ऐसे ही दुर्घटना १९४० में मेरे दूसरे लड़के (५ वर्षीय) की मृत्यु में हुई। वह लड़का बड़ा ही हँसमुख तथा विशेष प्रतिभाओं का था। इतनी छोटी आयु में वह नियम पूर्वक संध्या आदि

में भाग लेता था। उसकी सब व्यवस्था वही करता था। "दैनिक-यज्ञ" मेरे गृहस्थ जीवन का कई वर्षों से एक विशेष अङ्ग बन रहा है और निरन्तर चल रहा है। मेरे हृदय पर इस बालक की असामयिक-मृत्यु का बड़ा ही गहरा आघात पहुँचा और इस महादुःख से मेरा किसी कार्य के करने को भी चित्त उचाट हो गया। अपनी प्रैक्टिस से भी आराम हो गया और अपने एकान्त कमरे में शोक-सागर मे डूबे हुए पड़ा रहता। मैंने इस बार कोई सूचना न दी पर मेरे एक प्रिय मित्र ने, जिन्हें मैं कल्पवृक्ष का ग्राहक बना चुका था, मेरी ऐसी अवस्था के सम्बन्ध में श्री नागर जी को लिख दिया। सहसा एक दिन पूज्य नागर जी का अत्यन्त शान्ति-दायक पत्र मिला। यह शब्द अब भी मुझे स्मरण आ रहे हैं 'जन्म-मरण के चक्र को कोई रोक नहीं सकता। अतः आत्मिक उन्नति के पथ पर चलने वाली आत्माओं को चित्त डाँवाडोल करने वाले साधनों का त्याग कर अपने उच्च आदर्श की ओर चलना चाहिए।" वह पत्र ऐसे ही गंभीर, ज्ञानमय तथा शान्तिदायक विचारों से भरा था। तीन चार बार पढ़ने से ही मुझे वही शान्ति मिली। शान्ति के साथ साथ उत्साह भी मिला जिसने मुझे कार्य्य सँभालने पर प्रेरित किया जिसने मेरे मस्तिष्क के उत्साह-हीन तथा शोक-मय विचारों को ऐसा भगाया जैसे वायु का एक जबरदस्त झोंका बादलों को उड़ाकर ले जाता है। फिर तो मुझे अगाध शान्ति के प्राप्त करने का एक केन्द्र मिल गया। जब कभी मन उद्विग्न होता या गहरा विषाद होता मैं सन्त जी को याद करता। उनका प्रेम-मय उत्तर ही मेरी अगाध शान्ति का साधन बनता था। मैं उनसे पत्र प्राप्त कर सदा ही कृतकृत्य होता था और अपने जीवन को धन्य मानता था।

'कल्पवृक्ष' के लिए नवीन ग्राहक बनाना मेरा धर्म्म था। इस कार्य्य में मुझे यह अनुभव हुआ कि लोग अपने आत्मिक भोजन के प्रति बहुत कम ध्यान देते हैं। प्रातः से सायं तक 'मुद्रा देवी' के ही पुजारी बने हैं अतः जिस भाग को भोजन नहीं मिल पाया वह तो अधूरा ही रहेगा। मन्द बुद्धि के लोगों के लिए यह समझना भी बड़ा ही कठिन है कि पौने चार आने मासिक में उन्हें कितना ज्ञान का भण्डार प्राप्त होता है इस के अतिरिक्त वह शान्ति के समुद्र की अवहेलना करते हैं। कल्पवृक्ष मेरे जीवन का एक अङ्ग है और मेरे लिए आत्म प्रेरणा का स्रोत है, जीवन ज्योति तो जगनी ही है पर जो ज्ञान-पथ प्राप्त होता है वह बड़ा ही अद्भुत है।

"नवजीवन" :—

कल्पवृक्ष के लिए कार्य्य करते हुए मेरे कार्य्य में एक विचित्र बाधा का बोध हुआ कि कई पंजाब निवासी भाई भी इस लिए भी ऐसी आध्यात्मिक मासिक पत्रिका को अपनाना नहीं चाहते क्योंकि वह उसके हिन्दी के शब्दों को समझ नहीं पाते। इस बाधा को दूर करने और जनता में अध्यात्म-वाद का प्रचार करने के लिए, १९४७ के प्रारंभ में मेरे मन में एक नवीन-पथ का सुझाव हुआ कि ऐसी पत्रिका वहाँ से निकाली जावे जिससे कल्प-वृक्ष सरीखे लेखों का ज्ञान-भण्डार भी रहे और उसमें दोनों ओर के लेखक अपने अपने लेख भिजवाया करें। पंजाब ऐसी पत्रिका से कोरा था। ऐसा होने पर कुछ काल पश्चात् जनता में ऐसी ही हिन्दी का बोध भली रूप से हो जावेगा कि वह कल्प-वृक्ष के लेखकों की हिन्दी को भी समझने लगेंगे। मैंने अपने विचारों को श्री नागर जी की सेवा में भिजवा दिया कि यदि आप की स्वीकृति हो तो उसके सम्पादन का भार तो आप पर होगा और मैं केवल सहायक रूप में ही सेवा करता रहूँगा, बस! वहाँ विलम्ब ही क्या था, स्वीकृति आ गई "नवजीवन" नाम भी उन्होंने ही "निश्चित" किया। लेखकों की सूची पते सहित भिजवा दी गई। पंजाब के लेखकों का

तो मुझे ज्ञान था ही। मित्रों की सहायता से मेरे पास लगभग पाँच सौ ग्राहकों की स्वीकृति आ चुकी थी। कुछ अड़चन तो कागज के प्राप्त न होने से, कुछ सरकारी पत्रोत्तर में विलम्ब हो गया और अगस्त ४७ तक कुछ न बन पाया। उस मास में प्रान्त का "विभाजन" घोषित हो गया और वह सब आयोजन बना बनाया पूर्ण न हो पाया। 'विभाजन' में 'जनता परिवर्त्तन' का ध्यान तो सम्भवतः किसी को स्वप्न में कभी नहीं आया था और कोई भी कल्पना नहीं कर पाया कि बिना समय आये ही हमें "सर्व मेध यज्ञ" करना होगा और हम इच्छा के ही पूर्ण संन्यासी बना दिये जावेंगे। अस्तु यह एक लम्बी गाथा है। मेरे भाग्य में वहाँ से एक धोती और एक कुर्त्ता ही आया। हाँ, मेरे छोटे से हैण्ड बेग में सध्या का आसन, १९३९-४० की कल्प-वृक्ष की एक फाइल, हजामत का सामान व एक ब्रुरुप जरूर था—यह थी मेरी धरोहर। मुझे कोई क्लेश हुआ तो यह २५०० पुस्तकों का समूह जो कि ४० वर्ष से एकत्रित 'आदर्श ज्ञान भण्डार' था सब वहाँ रह गया और अब वह बन नहीं सकता।

विशेष निमंत्रण :—

पंजाब त्यागने पर सब से पहिले मैंने गुरु जी को लिखा, अपने निवास का निश्चित स्थान नहीं चुन पाया। कुछ काल पश्चात् मुझे मेरठ में उनका एक पत्र मिला जिसमें उन्होंने अपने रक्त-चाप का जिकर किया। प्रायः प्रतिवर्ष ही उनकी ओर से साधन समारंभ में पधारने का निमन्त्रण आता रहा। पंजाब से तो बहुत दूरी के कारण नहीं पहुँच पाया और अब इतना निकट आकर भी इच्छा होने पर भी कोई न कोई अड़चन आती ही रही अतः जाना नहीं हो सका। यह एक महान आत्मा का मेरे लिए हार्दिक तथा आत्म प्रेरित ध्वनि था जो कुछ काल पश्चात् काल के विकराल गाल में गर्क होने वाली थी और कि उनकी महान आत्मा सब मित्रों को दर्शनार्थ बुला रही थी सब से बड़ा दुख तो यही है कि मेरा अपने गुरु पथ प्रदर्शक का दर्शन भी न हो पाया और वह अपनी जीवन लीला समाप्त कर गये। परमात्मा अपनी अपार करुणा से हम से सदा के लिए विमुख होने वाली आत्मा को सद्गति प्रदान करें और हमें बल दें कि हम उनकी सर्व-ज्योति को कभी बुझने न दें—प्रभु तेरी इच्छा पूर्ण हो।

सन्त नागर जी की कृपादृष्टि

श्री प्रतापलाल वर्मा

सन् १९४३ में उनके कुछ अनन्य प्रेमी भक्तों की प्रेरणा से सन्त नागर जी का उदयपुर आगमन हुआ था, तभी दर्शन और सत्संग का लाभ हुआ, और मुझपर उसका कैसा दिव्य प्रभाव हुआ, वह मेरे जीवन में ओतप्रोत है, उसका वर्णन मेरी लेखनी या शब्दों द्वारा कितना भी किया जाय, थोड़ा होगा। उनकी लिखित 'प्रार्थना कल्पद्रुम" पढ़कर मैं प्रार्थना करने लगा और नागर जी ने, पत्रव्यवहार के सिलसिले में एक "मण्डल" स्थापित करने की प्रेरणा दी। तदनुसार उदयपुर, खेरादीवाड़ा में एक ॐ प्रार्थना मण्डल स्थापित हुआ, जहाँ उत्साही अध्यात्म प्रेमियों का सत्संग होने लगा।

एक बार मैं उन्नीसवें आध्यात्मिक साधन समारंभ में शामिल होने उज्जैन गया, समारंभ में मुझे जो स्वर्गीय सत्संग व आनन्द का अनुभव हुआ वह मेरे वर्णन के परे है। समारंभ समाप्त होने पर कुछ दिन हम अपने साथियों सहित कार्यालय में ठहरे। वहाँ सन्त नागर जी की दृष्टि का एक चमत्कार देखा। प्रातःकाल हवन का समय था, उस समय एक पागल महिला इलाज के लिए वहाँ लाई गई थी, कई आदमी उसके साथ थे, दो आदमी उसे पकड़े हुए थे। डॉक्टर साहब ने उसे बैठा देने के लिए उन लोगों से कहा, करीब ५-७ मिनट तक बहुत प्रयत्न करके लोगों ने उसे बैठाना चाहा पर वह न बैठी। नागर जी ने उन लोगों से कहा, अच्छा, इसको छोड़ दो। लोगों ने छोड़ दिया। फिर नागर जी ने उस महिला की ओर देखा, और कहा, बैठ जाइए। बस, पागल महिला बैठ गई। फिर नागर जी ने उसे बताया, इस प्रकार बैठिए (पालथी लगाकर) और महिला सुखासन से बैठ गई। हवन शुरू हो गया। वह महिला शांत चुप बैठी, हवन देखती और मंत्र सुनती रही, कुछ ऊधम नहीं मचाया। यह एक बड़े अचम्भे का चमत्कार मेरे देखने में आया कि परिवार के लोग अपना जोर लगा चुके पर पागल महिला अपनी जिद पर रही, और एक बार संत नागर जी की दृष्टि पड़ते और वचन सुनते ही शांत हो गई। यह चमत्कार जादूगरों और कई संत तथा डाक्टरों में मैंने नहीं देखा, और जो कई अभ्यास साधन और सम्पत्ति खर्च करने पर भी लोगों को प्राप्त नहीं होता। उनके कई एक चमत्कार सुनने में आये हैं। मैं स्वयं टी० बी० से बीमार हुआ और तीन महीने अस्पताल में रहा। पत्र व्यवहार द्वारा नागर जी से आशीर्वाद और प्रेरणाएँ मिलीं, और प्रार्थना तथा नागर जी के चरणों का ध्यान करते मैं स्वस्थ हो गया। मैं जो कुछ बन पाया हूँ, सब उन्हीं की कृपा से है।

श्री दुर्गा और शंकर भये
संत एक पुरुष में दोय,
बिन गरज के नागर जी
जन्म सफल उज्जैनी सोय।
कल्पवृक्ष सम वृक्ष नहीं
जिसमें कल्पवृक्ष एक पत्र है,
रोग शोक भय त्याग के लिए
अध्यात्म मासिक पत्र में।

महात्मा नागर जी हमारे साथ हैं

श्री छोटेलाल जी दुबे

क्लेश कर्म विपाकाशये परा मृष्ट. पुरुष विशेष ईश्वरः

क्लेश कर्मफल और आशय का जिसे स्पर्श नहीं वह पुरुष विशेष ईश्वर है।

महात्मा नागर जी हमारे साथ हैं, जिस प्रकार रामजी रामायण में, कृष्णजी गीता में, नागर जी कल्पवृक्ष में। कल्पवृक्ष इतना विशाल वृक्ष है कि समस्त भूमण्डल को शान्तिमयी छाया में बिठाल कर शान्ति प्रदान करता है। जो अशान्त है अन्यान्य ज्वालाओं में झुलसे मुरझाये हैं किसी भी जाति के, समाज के अथवा पतित, कोई भी कल्पवृक्ष की सौम्य, शीतल, सुखप्रद, छाया में बैठकर विश्राम, स्थायी शान्ति, प्राप्त कर सकते हैं। श्री नागर जी ने अपने पवित्र विचारामृत से जिसे सींच सींच कर बढ़ाया है ऐसे वृक्ष से प्रत्येक मनुष्य फल पाने का अधिकारी है। पूज्य नागर जी जिसे रोगी देखते थे उसका चित्र अपने हृदय में रख कर प्रार्थना के समय ईश्वर से विनय करते थे, जैसे रोगी स्वयं अपने रोग के लिए रो रो कर करुण स्वर में भगवान से प्रार्थना करता है वैसे हजारों रोगियों का मानसिक चित्र बना कर स्वास्थ्य प्रेरणा करके निरोग करते थे; वही नागर जी हमारे हृदयों में अपने विचार छोड़ गये है जब उनके पवित्र विचार हमारे हृदय में हैं नागर जी हमारे साथ हैं।

जिसने राग द्वेष कामादिक,
जीते सब जग जान लिया।
सब जीवों को मोक्ष मार्ग का,
निस्पृही हो उपदेश दिया॥

श्री पूज्यनीय नागर जी को स्वर्गीय कह कर केवल स्वर्ग को ही महान् ऐश्वर्ययुक्त समझा जा सकता है। नागर जी स्वर्ग का अस्तित्व ही मिटा चुके थे। साथ साथ मोक्ष पद भी 'न त्वहं कामये राज्यम् न स्वर्गं न वा पुनर्भवम्" पर स्वार्थ के प्याले में भर भर कर हम सबों को पिलाया करते थे। उस विशुद्ध आत्मा [illegible] आत्मा में एकाकार होकर—'[illegible] विमोचयेत्'। स्वयं परम शान्ति पाकर हम सबों को शान्ति देते रहेंगे। हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि परमपिता हमारे हृदय में नागर जी के अभाव की अशान्ति न होने पावे हम आजीवन यही समझते रहें, "नागर जी हमारे साथ हैं।" योगी जी का हृदय देखिए कितना निर्मल और समदर्शी था। उनकी भावना जो 'प्रार्थना कल्पद्रुम में मेरी भावना' नाम से है कितनी मीठी कैसा साम्य भाव दिखलाया है बस यही जीवन था महात्मा जी का। 'दुहौं शास्त्र उर मंथन को रस' की एक ही मालारूपी कविता बनाकर हृदय मंदिर के अर्पण कर उसी प्रकार बना लिया जीवन—

मैत्री भाव जगत में मेरा सब जीवों से नित्य रहे।
दीन दुखी जीवों पर मेरे उर से करुणा स्रोत बहे॥

केवल मनुष्य से मित्रता भाव न हो वरन जलचर, थलचर, नभचर, स्थावर, जंगम, सभी मित्र हों। कितनी सूक्ष्म दृष्टि है।

दुर्जन क्रूर कुमार्ग रतों पर क्षोभ नहीं मुझको आवे।
साम्य भाव रखूँ मैं उन पर ऐसी परिणति हो जावे॥

आततायियों को कोई क्षमा नहीं करता किन्तु समदर्शी नागर जी ने उन्हें भी अपना लिया। जहाँ दया हो दया है वहाँ क्रोध कैसे?

दुर्जन. सज्जनों भूयात् सज्जना शान्ति माप्नुयात्।
शान्तो मुच्येत बंधेभ्यो मुक्तश्चान्यान् विमोचयेत्॥

दुर्जन, डाकू, खोहिया, के विषय में विनय से प्रार्थना करते हैं, हे भगवान डाकू और खोहिया के विष बुझे दाव हों, उनके [illegible] में बल हो परन्तु हे प्रभु उनके हृदय में हिंसा न हो। ये हैं [illegible]

चिकित्सक डाक्टर नागर जी का साम्यभाव, यह है ईश्वरीय गुण, शान्ति की चरम सीमा, जिनके दर्शन से ही दर्शक अपने हृदय में शान्ति का अनुभव करने लगता था। वह पवित्र आत्मा न स्वर्गवासी है, न मुमुक्षु। वह तो परमात्मा में एकाकार होकर विश्व के प्राणियों को शान्ति प्रदान करती रहेगी, प्रलय तक। सारा विश्व नागर जी का परिवार था, है, रहेगा। जिसमें ईश्वरीय गुण हैं, जिसमें ईश्वरीय लक्षण है, जिसमें परमात्म तत्व है, जिसमें प्रभु मर्यादित है, वह गुण है नागर जी का लक्ष्य, "साम्यभाव" जिस घाट पर सिंह और मृग एक साथ पानी पीते हैं वह घाट उज्जैन का क्षिप्रातट, गंगाघाट।

जिस वृक्ष पर गरुड़ और सर्प निवास कर सके वह है कल्पवृक्ष। जिस मन्दिर में राजा तथा रंक के लिए एक ही आसन था वह मन्दिर था महात्मा नागर जी का हृदय।

"क्लेश कर्म विपाकाशये परा मृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः"

कल्पवृक्ष को अपने विचारामृत से सींचिए, हरा भरा रखिए, फल फूल खाइए, खिलाइए, साम्यभाव रखिए। महात्मा नागर जी आपके साथ है। ॐ शान्ति ! शान्ति ! शान्ति !

मुझे अपने जीवन में पवित्र भूमि उज्जैन का, और परम पिता पूज्य नागर जी का तथा ब्रह्ममण्डली व अनेकों साधु संतों, ईश्वर भक्तों के दर्शन का सौभाग्य (श्री मिट्ठूलाल जी शर्मा के द्वारा) सन् १९५१ के इक्कीसवें आध्यात्मिक साधन समारम्भ मे प्राप्त हुआ, वहाँ मुझे जो आनन्द का अनुभव हुआ वह अकथनीय है।

पूज्य गुरुदेव के प्रति—

श्री जमुनालाल गुप्त

मेरे समझ में नहीं आता; जब मैं सोचता हूँ कि डॉक्टर नागरजी जैसे दुनिया में कितने मानव होंगे ?

पूज्यपाद के संस्मरण में कुछ निवेदन करूँ, ऐसी इच्छा होने पर सबसे पहिले उनके पत्रों की प्रतिलिपि-पुस्तक हाथ में ली। दूसरा पत्र दिनाङ्क २ मई सन् '४२ का पढ़ा। इसी को संस्मरण का पहला कदम मानकर यह संस्मरण अपने माननीय बन्धुओं के लाभार्थ प्रस्तुत करता हूँ। पत्र का दूसरा पैरा इस प्रकार है —

"आपके मस्तिष्क की दुर्बलता के कारण ये सब विचार आपको तंग कर रहे हैं। आपकी मानसिक अवस्था का आपके स्वास्थ्य पर हानिकर प्रभाव हो रहा है; अतएव अपने अन्तर्मन से बेकार की व्यग्रता के विचार जड़मूल से निकालकर फेंक दीजिए। इसके लिए मनोबल और आत्मबल को बढ़ाइए। जब आपको इस प्रकार के विचार अधिक तंग और परेशान करें उन सबको आप तुरन्त कागज पर नोट कर लें। जो कोई भी छोटे मोटे विचार आवें उन सब को दर्ज कर दें और उनको सुरक्षित रक्खें। इससे आपका मनोविश्लेषण ठीक प्रकार से हो जावेगा और आपके मन को व्यथित करनेवाले जो आपके सूक्ष्म विचार अन्तर्मन की कोठरी में पड़े होंगे, चेतना की सतह पर आ जावेंगे और आप भार-मुक्त हो जावेंगे।

मेरा आना आपके पास कब होगा यह निश्चित नहीं है किन्तु ऊँचे विचारों के जगत के साथ सदा सर्वदा मैं आपके समीप ही हूँ। हतोत्साह न होवें। मन की निर्बलता को दूर करें, आत्मा को बलवान बनावें। व्यर्थ के विचारों की उधेड़-बुन में अपनी मनःशक्ति का

अपव्यय न करें। यही आपसे कहना है।

मंगलाकांक्षी—दुर्गाशंकर नागर"

जब इन्सान भारी उलझन में होता है, उसके विचार उसके सुलझाये सुलझते नहीं हैं, वह शरीर से निरोग होते हुए भी उसको बड़ी भारी बीमारी 'मनोव्यथा' रूपी लग जाती है। ऐसे ही समय में किसी महान् शक्ति की तरफ मनुष्य देखता है। सन् '४१ के लगभग ऐसी ही कुछ मनोव्यथाएँ मेरे साथ लग गई थीं। उसी समय से मुझे डॉक्टर नागरजी का लाभ प्राप्त हुआ।

ऐसे जीवित मनुष्यों के कल्याण के लिए, जो प्रायः अपनी कराहट के कारण अर्द्ध अचेतन अवस्था में जा पहुँचते हैं। 'संत का महत्व' हमारी संस्कृति में पूर्व से ही चला आ रहा है। पूज्य श्री नागरजी समर्थ रामदास स्वामी की उक्ति प्रमाणें—

नाना सद्विद्येचे लक्षण। याही वरि कृपालु पण॥

अर्थात् अनेक सद्विद्या होते हुए भी, सहज दयालु स्वभाव हो। नागरजी इसी कोटि के संत थे।

डॉक्टर नागरजी के शब्दों में, पत्रों में खास प्रभाव था। जब जब भी पत्र मिलते थे पत्र के शब्द वज्रलेप से मालूम होते थे। जीवन भर के लिए वह विचार हृदय में जमते चले जाते थे। ऊपर उद्धृत पत्र की एक एक इबारत में एक एक बृहत् ग्रन्थ भरा हुआ है। इस तरह थोड़ी सी लकीरों के आत्मसात् से इंसान किस धरातल से किस धरातल पर पहुँच जाता है! संसार में इस तरह से शुद्ध अमृत प्रदान करने वाले कितने थोड़े व्यक्ति होते हैं, यह समझना कठिन है।

पत्र में लिखा है "कर्म विचारों के [illegible] के साथ सदा सर्वदा मैं आपके समीप हूँ।" यह समझ लेने के बाद शोक समाप्त हो जाता है। जो हमेशा हम में से बोल रहा है वह कभी हमसे दूर नहीं हो सकता। डॉक्टर दुर्गाशंकरजी नागर हमेशा रहेंगे, जब तक कि हम हैं।

मनुष्य के लिए सबसे अधिक मूल्यवान यह है कि वह 'शहनशाह' रहे, हर किसी से दबे नहीं, सदा 'शिव सुन्दरं' में मग्न रहे, हर हाल में खुश रहे। सन्तों से द्रव्य नहीं मिला करता है। हमारे स्वभाव में, मौलिकता आने लगती है; यही सबसे बड़ा लाभ महत् पुरुषों के सम्पर्क से होता है। श्री नागरजी से दूसरा कोई भी विचारवान पुरुष सन्तुष्ट हुए बिना नहीं रहा होगा।

सबसे अन्तिम बार अगस्त सितम्बर सन् '५० में जब पूज्य श्री नागरजी कोटा [illegible] पर कण्ट्रोलर साहब के यहाँ आये तो स्वास्थ्य कमजोर था। एक दिन रात को स्टेशन से अपने विश्रान्ति स्थान पर पैदल आते समय एक फल बेचने वाले ने अपने ठेले से श्री नागर जी को धक्का दिया और आगे चलता बना। श्री नागरजी योगी सत्यात्मा [illegible] से बातें करते हुए आगे चल रहे थे। धक्का खाकर भी उनकी बातचीत में कोई फर्क नहीं आया। [illegible] को तो मालूम भी नहीं होने पाया। इस तरह की सहनशीलता महत् पुरुषों में ही होती है।

दिव्य अनुभूति

श्री सन्नालालजी दिवाकर

जीवन अनुभूतियों का मिश्रण है, चाहे वे सुखद हों अथवा दुखद, किन्तु अतीत की मधुर स्मृति अन्तस्तल को उस समय अधिक प्रकम्पित करती है जब मनुष्य अपने उस प्रकाश स्तम्भ का स्मरण करता है जो उसने छीन लिया [illegible] जिसकी कि एक छाया में उसने [illegible] बनाया हो परम श्रद्धेय स्व० डा० नागरजी के प्रति मेरी इसी प्रकार की अनुभूति है।

लगभग २० वर्ष पूर्व जब मैं अपने को इस संसार का एक दयनीय प्राणी समझता था, उस समय मेरी आर्थिक स्थिति इतनी खराब थी कि हजामत बनाने के चार पैसों के लिए ८ दिन चिन्ता करनी पड़ती थी "भर पेट भोजन पा लिया तो भाग्य मानो जग गया" दोनों वक्त भोजन मिलना भी कठिन था। कई बार मैं उधार लाकर खाता तो कई बार भूखों भी सोया हूँ। मुझे याद आता है कि उस समय मेरे पिताजी के कर्जदार मुझे व मेरे घर वालों को रात दिन तड़पा रहे थे, खून सुखा सुखाकर मार रहे थे और क्योंकि मैं घर का प्रधान व्यवस्थापक था इसलिए मुझे ही सबसे अधिक यातना सहनी पड़ती थी। कोई महीना ऐसा नहीं बीतता जबकि दो चार जगी कर्जदारों की घर पर न आती हो और उनके डर से हम घर का छोटा मोटा सामान भी इधर उधर न छिपाते हों।

जीवन की उस तमसाच्छन्न कठिन घड़ी में मैंने कई बार सोचा कि इस जीने से तो मर जाना ही अच्छा है। एक बार तो मरने का आयोजन भी कर लिया था सहसा मुझे कल्पवृक्ष की एक पुरानी प्रति किसी ने दी, मुझे वह संजीवनी प्रतीत हुई, सम्पादकीय लेख मानो मेरे ही लिए लिखा हो ऐसा प्रतीत हुआ मानो मेरे जैसे दुखियों के भगवान् भी इस पृथ्वी पर हैं और वह भी हमारे निकट उज्जैन में ही। बड़ी श्रद्धा के साथ मैंने पूज्य नागरजी को लिखा "कल्पवृक्ष मेरे जीवन का आश्रय स्वरूप मालूम होता है किन्तु पास में पैसे नहीं मुफ्त में ही भेज दें तो बड़ी कृपा हो..." कहना नहीं होगा कि संत नागरजी ने मेरे मनोभावों को पहिचाना और कल्पवृक्ष भेजना प्रारम्भ कर दिया। कोई एक वर्ष बाद मैंने उनको शुल्क भी भेज दिया था तभी से मेरा नागरजी से सम्पर्क हुआ जो प्रतिदिन घनिष्ठ होता गया यहाँ तक कि आज से १२ वर्ष पूर्व तो मैंने उनसे विधिवत गुरुदीक्षा ली और तब से ही गुरुदेव मेरे जीवन के प्रमुख संचालक बन गये।

गुरुदेव के सम्पर्क से मैंने अपने जीवन में भौतिक व आध्यात्मिक प्रगति की आर्थिक उन्नति के लिए मैंने नागरजी की प्रेरणा से चार पाँच वर्ष तक गणपति उपासना की व दो तीन वर्ष तक ॐ ह्रीं का जाप किया। पाँच हजार से लेकर दस हजार मंत्रों का मैंने जप किया। वर्षों जप करने से मुझे आत्मिक शान्ति मिली तथा काफी आत्म विश्वास बढ़ गया। आध्यात्मिकता तो मेरे अन्तस्तल में भिद सी गई, आर्थिक परिस्थिति भी मेरी अपेक्षाकृत ठीक हो गई।

कई बार कठिन परिस्थिति में मुझे गुरुदेव ने रास्ता बतलाया। एक बार मेरे दो छोटे भाइयों को कुछ मुसलमानों ने मिलकर मारा और उन्हें आहत कर दिया। मैं क्रोध के आवेश में पागल सा हो गया। मेरे अन्दर प्रतिशोध की भावना जाग्रत हो गई। मैं उनसे बदला लेना चाहता था किन्तु नागरजी ने मुझे शान्त कर दिया और भयंकर पाप से बचा लिया।

जब मैं जैन संस्था में नौकर था और कार्यवश गाँव गाँव घूमना पड़ता था उस समय (सन् १९४२) मेरी माता की मृत्यु हो गई और मैं उससे मिल न सका वह भी मुझे याद करते करते ही मरी। इस घटना का मेरे मन पर ऐसा आघात हुआ कि मैं पागल हो जाता अथवा आत्मघात कर लेता। गुरुदेव को व्यथा बतलाने पर उन्होंने टेबिल के प्रयोग द्वारा मेरी माता की आत्मा को बुलाकर मुझे शान्ति प्रदान कर दी।

जीवन के सामान्य अवसरों पर भी जब मैं उलझन में पड़ जाता गुरुदेव रास्ता बतला देते थे, पत्र द्वारा ही समाधान कर देते थे। वे पत्र आज मेरे लिए अमूल्य निधि हैं। गुरुदेव को मैं अपना संरक्षक मानता था। उनके प्रति मेरी ईश्वरीय श्रद्धा थी। वर्षों मैंने कल्पवृक्ष का प्रचार किया व अब भी करता हूँ। एक बार हमने यहाँ आध्यात्मिक मंडल की शाखा भी खोली थी और कुछ वर्ष तक उसको चलाया।

श्रद्धेय गुरुदेव संत नागरजी में मैंने अटूट शान्ति देखी। मैंने उन्हें कभी भी उद्विग्न अथवा क्रोध करते हुए नहीं देखा। स्थितप्रज्ञ अवस्था की साक्षात् मूर्ति मैंने नागरजी में ही देखी। आध्यात्मिक उपचार द्वारा कितने ही पागलों को उनके हाथों अच्छा होते हुए मैंने देखा। दो एक कुष्ट रोग के पीड़ित भी मानसिक चिकित्सा द्वारा उनके द्वारा स्वस्थ होते हुए मैंने देखा। एक बात विशेष रूप से जो मुझे नागरजी में दिखलाई दी वह यह कि वे दूसरों के गुणों को सरल रूप से ही ग्रहण करते थे। अहंकार व दम्भ तो उनको छूता ही नहीं था। कोई दो वर्ष पूर्व ही मैंने उन्हें पत्र लिखा था कि "महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने हमारे दर्शनशास्त्र की आलोचना की है और ऋषि मुनियों को सामंतशाही के दलाल प्रकारान्तर से बतलाये हैं" आपकी इस पर क्या राय है? शीघ्र ही उन्होंने साफ साफ उत्तर दिया "राहुल को जवाब देना आसान नहीं है आपका कार्य (किसान सभा का) ठीक है उसे निःस्वार्थ भाव से करते रहिए; ऐसी निरभिमानता विरले ही महापुरुषों में होती है।"

नागरजी केवल संत ही नहीं थे महात्मा भी थे। हृदयवाद तथा बुद्धिवाद का उनमें सम्मिश्रण था। मनोवैज्ञानिकता उनमें इतनी कूट कूट कर भरी थी कि कई बार मुझे आभास हुआ कि वे अन्तर्यामी हैं। वे अमीरों के मित्र थे तो गरीबों के भी सर्वस्व थे। मानव श्रद्धा का जितना एकीकरण नागरजी ने आकर्षित किया था उतना शायद ही किसी ने किया हो। फिर भी सादगी इतनी कि उन्हें देखकर आश्चर्य होता था कि एक अन्तरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त संत आधुनिक युग में इतनी सादगी से रह सकता है! आत्म विश्वास की तो वे साक्षात् मूर्ति ही थे। महान् से महान् संकटग्रस्त व्यक्ति को वे थोड़े से शब्दों में ही शान्ति प्राप्त करा देते थे किन्तु आज.. दुखियों की वह निधि ही दूर गई। जब मैं अपने जीवन तथा नागरजी के विषय में स्मरण करता हूँ तब रोता हुआ हृदय उनके चरणों में श्रद्धांजलि स्वरूप अपनी मूक भाषा को निम्नांकित पंक्तियों द्वारा व्यक्त करता है —

वैभव विहीन जन का अपार
आशा का पारावार गया,
पददलितों का प्राण रूप,
गौतम सा करुणागार गया।
वह दीन जनों का "राम" गया,
भिखमंगों का भगवान् गया,
वृन्दावन को सूनी कर,
वह ग्वालों का घनश्याम गया।

डॉक्टर साहब की एक याद !

श्री गणपतिलाल मेहता 'नागेश'

मै अपनी पेट की भयंकर पीड़ा से आक्रान्त हुआ जर्जर हुआ जा रहा था। इंदौर के प्रसिद्ध डॉ० मुकर्जी को बताकर अपना उपचार प्रारम्भ कर चुका था लेकिन फिर भी कोई अन्तर मुझे अपने में नहीं प्राप्त हुआ था। इसके बाद मैंने टी० बी० स्पेशियलिस्ट डॉ० बोरदिया से अपना इलाज कराना आरम्भ किया था। इस बीच मैंने प्राकृतिक चिकित्सा के लिए गोरखपुर और डॉ० नागर जी को पत्र लिखा था। गोरखपुर का लम्बा चौड़ा खर्च देखकर उसे मैं अपनी शक्ति से बाहर जानने लगा था लेकिन इस बीच डॉ० नागर जी का स्नेह भरा पत्र प्राप्त हुआ और मैंने उन्हीं की शरण जाना चाहा। दिनांक २ अगस्त को मैं उज्जैन पहुंचा और डाक्टर नागर जी को अपना हाल बताया। हाल जानने पर मुझे जो उपचार आदि बताये गये उनसे मुझे उस लम्बी और भयंकर बीमारी से केवल दो माह में ही छुटकारा प्राप्त हो गया।

तीन अगस्त १९५० की प्रभात वेला में मैं कल्पवृक्ष के कार्यालय की खोज में पैदल ही निकल पड़ा। सराय से चल कर थोड़े ही समय में मैं कल्पवृक्ष की सुन्दर छाया में आ पहुँचा। लेकिन यहाँ जब मैं पहुँचा था उस समय कल्पवृक्ष कार्यालय के कपाट रुद्ध थे और पास ही पुरुषार्थियों की दुकानें कपाट मुक्त हो चुकी थीं; मैं उन्हीं में से एक पर बैठ गया। थोड़ी देर बाद ही कल्पवृक्ष कार्यालय का द्वार खुला और एक वयोवृद्धा माताजी के मुझे दर्शन हुए। मैं उठा और उनके पास जाकर बोला—"क्या डाक्टर साहब मुझे मिल सकेंगे?" उन वयोवृद्धा माताजी ने कहा—"वे अभी लिख रहे हैं। यदि आपको अभी मिलना आवश्यक हो तो खबर दे दूँ। वैसे वे आठ बजे मिलते हैं।" मैंने कहा "कोई आवश्यक नहीं है। मैं आठ बजे ही दर्शन कर लूँगा।" और मैं वहाँ से "महाकाल" के दर्शन के लिए चल दिया।

महाकाल के दर्शन करके मैं लगभग ७-३० बजे वापिस आया तो कार्यालय में श्री विश्वामित्र जी वर्मा को बनियान और अण्डरवेअर पहने, कागज पत्रों के ढेर को ठिकाने लगाते पाया। उनकी ऊपर उठी हुई मूछों और गठे हुए बदन को देखकर यही अनुभव हुआ कि ये कोई खौफनाक व्यक्ति होंगे! इनसे कोई बात पूछना अनावश्यक होगा। लेकिन जब मैंने हृदय को कड़ा करके पूछा कि डॉ० साहब मुझे मिलेंगे। तो उनका घूरता हुआ मुख मुझे कुछ विचित्र सा लगा और यह प्रतीत होने लगा ये मुझे कोई सन्तोषप्रद उत्तर नहीं देंगे। लेकिन मेरा यह धारणा एकदम व्यर्थ हुई और उन्होंने एक हलकी सी मुस्कान से कहा—"हाँ, अभी मिलेंगे, आप बैठ जाइए।" और फिर वे आये हुए पत्रों के ढेर पर पिल पड़े।

मेरे बैठते ही डॉ० साहब के सुपुत्र श्री बालकृष्ण जी नागर ऊपर से उतर कर कार्यालय में आये। मैं इन्हें देख कर खड़ा हो गया। मेरे खड़े हो जाने पर श्री वर्माजी ने कहा "ये महानुभाव नीमच से आये हैं जरा इन्हें देख लीजिए।" श्री बालकृष्ण जी ने मुझे अपने चिकित्सालय में ले जाकर भली प्रकार देखा और पूर्व उपचार के विषय में पूछताछ की। इसके बाद वे वापिस ऊपर चले गये। मैं इस समय तक यह नहीं जान पाया था कि ये व्यक्ति कौन हैं? "क्या यही डॉ० दुर्गाशंकरजी नागर हैं?" लेकिन डाक्टर साहब इतनी कम आयु वाले नहीं हो सकते यह मेरी अनुभूति ने कहा।

मैं फिर से कार्यालय में बैठ गया। यहाँ बैठे बैठे मुझे लगभग आधा घण्टा हो गया लेकिन न नागर जी ही पधारे और न बालकृष्ण जी ही। कई व्यक्ति आये और ऊपर चले गये। मैं कुछ समझ नहीं सका। जब मुझसे नहीं रहा गया तो मैंने फिर एक बार वर्मा जी से पूछा—"क्या बात है ये सब व्यक्ति ऊपर चले जा रहे हैं! क्या कोई पार्टी है। क्या डॉ० साहब नहीं मिल पायेंगे!" मेरी अबोध गम्य स्थिति को देख कर श्री वर्मा जी ने कहा—"आप भी ऊपर चले जाइए। वहाँ हवन हो रहा है। हवन के बाद डॉ० साहब आपको देखेंगे।"

मैं इस उत्तर को पाकर ऊपर चला गया। हवनगृह आगत व्यक्तियों से खचाखच भरा था। बैठने को जगह कम थी। फलतः एक कोने में जाकर मैं भी बैठ गया। वहाँ पर उपस्थित लोगों में मैं एक दम अपरिचित था। चुपचाप बैठा रहा। हवन की समाप्ति पर पूज्य डाक्टर साहब ने सब को स्वर्ण सूत्रों का पाठ कराया और उसके बाद सब की गति विधि पूछी। मेरे अन्त में बैठे हुए होने के कारण मेरा नम्बर सबसे बाद में आया। सब लोग धीरे धीरे चले गये और एकान्त हो गया। वहाँ पर मैं केवल आगत व्यक्तियों में से एक ही रह गया। डाक्टर साहब अब झूले पर बैठ गये थे और मुझसे प्रश्न कर रहे थे। मैंने अपनी समस्त स्थिति

कह सुनाई। तत्पश्चात् उन्होंने झूले पर से उठ कर मेरी परीक्षा की और मुझे सद् सलाह दी। तीन आसन पेट की दशा सुधारने के लिए बताये, जिनको डाक्टर साहब ने स्वयं करके बताये और मुझे उनके अभ्यास की क्रियाएँ स्वयं मेरे द्वारा ही कराईं। खाने के लिए सब प्रकार के भोजन बताये लेकिन उसके बाद सौंफ खाने को कहा। मैंने सिर झुका कर उनकी आज्ञाओं का पालन करने की स्वीकृति ली।

इसके बाद मैं पुनः कार्यालय में आया और कल्पवृक्ष का ग्राहक एक वर्ष के लिए बन कर उसका वार्षिक चन्दा भर दिया। मुझे सन् १९४६ की एक स्मृति हो आई जब कि पूज्य महात्मा गांधी दिल्ली की भंगी बस्ती में निवास किये हुए थे, और मैं उनकी पवित्र सेवा में दर्शनार्थ गया हुआ था। वहाँ का वातावरण जैसी शान्ति प्रदान करता था वैसा ही शान्त वातावरण मुझे यहाँ मिला। विश्वबंधु गांधी जी की साक्षात प्रतिमा मैंने आदरणीय डाक्टर साहब में देखा। साधारण वेशभूषा और सीधा सादा व्यवहार। विचारों की नम्रता जैसा वहाँ देखा था वैसा ही यहाँ भी उपलब्ध हुई। वहाँ पर राजनैतिक भावनाएँ थीं तो यहाँ आध्यात्म का सिन्धु लहराता हुआ दृष्टिगोचर हुआ। वहाँ पर भारतवर्ष का हृदय विराजमान था तो यहाँ विश्व का आध्यात्म आराधन।

धन्य है हम भारतवर्ष को जहाँ पर आज भी ऐसी ऐसी विभूतियाँ विराजमान हैं जिनका लक्ष भारत की कोटि कोटि जनता को शान्तता की अमर आशा बनाना है। अस्तु! डॉ० साहब के शब्दों में आज मुझे शान्ति का स्मरण करना अभिप्रेय है। ॐ शान्ति! शान्ति!! शान्ति!!!

प्राणायाम से मृत्यु टली

ग्यारह वर्ष की आयु से अब तक ४५ वर्ष तक मैं प्राणायाम करता रहा हूँ। इसका व्यसन मुझे आर्यकुमार सभा नजीबाबाद में सन् १९११ के अधिवेशनों में वाद विवाद के द्वारा लगा था। तब से गायत्री जप तथा प्राणायाम निरन्तर करता आ रहा हूँ। योगशास्त्र के दो श्लोकों का मुझ पर बहुत प्रभाव पड़ा है।

अर्धरात्रि गते योगी जन्तूनां शब्द विवर्जितः।
कर्णौ पिधाय अगुष्ठाभ्यां कुर्यात् पूरक कुम्भकम्॥
उज्जायी कुम्भकं कृत्वा सर्व कार्याणि साधयेत्।
न भवेत् कफ रोगं च क्रूर वायु अजीर्णकम्॥
आमवातं क्षयं कासं ज्वर प्लीहा न विद्यते।
जरा मृत्यु विनाशाय उज्जायी साधयेत नरः॥

बचपन तथा युवावस्था में मैं बहुत रोगी रहा हूँ। उत्तरी भारत के सर्वोच्च फुफ्फुस विशेषज्ञ जनरल काक्रेन सिविल सर्जन आगरा ने सन् १९२१ में मेरे शरीर की जाँच करके फैसला दिया था कि तुम अधिक से अधिक ६ माह जी सकते हो। तुम्हारे दोनों फेफड़े खराब हो चुके हैं।

मैंने उनको चेलेञ्ज दिया कि मैं प्राणायामी हूँ, मैं मर नहीं सकता, मैं अवश्य जिन्दा रहूँगा।

मैं रोज रात को एक बजे उठकर प्रातः ४-५ बजे तक प्राणायाम करता हूँ। रात प्राणायाम करने में लगभग दो घण्टे लगते हैं। अपने निवास स्थान पर बिजनौर में मैं बिना प्रयास अथवा श्वास संघर्ष, प्रत्येक प्राणायाम में डेढ़ मिनट का कुम्भक करता था। अब गंगातट पर दारानगरगंज (जिला बिजनौर) के स्वामी केवलानन्द जी के निज आश्रम में रह प्राणायाम साधन का विशेष अनुभव कर रहा हूँ। रात्रि को यहाँ घाट पर, गंगाजी के किनारे हुए एक तोतक पर १२ बजे स्नान, ध्यान

लगाकर प्रार्थना के पश्चात् प्राणायाम आरम्भ करता हूँ तो यहाँ बिना परिश्रम व संघर्ष, अनायास ही डेढ़ मिनट के बजाय ढाई या तीन मिनट का कुम्भक हो जाता है। थकान बिलकुल नहीं होती।

प्राणायाम में समय की नाप मैं हृदय की धड़कन से कर लेता हूँ जब कुम्भक में ॐ जप के साथ इन धड़कनों को मैं गिनता जाता हूँ। घड़ी की सहायता से मैंने निश्चय करके जान लिया है कि मेरा हृदय एक मिनट में कितनी बार धड़कता है। प्रश्न होता है कि यहाँ गंगातट पर कुम्भक का समय बिना प्रयास क्यों बढ़ा है? क्या गंगातट की वायु में यहाँ अधिक प्राणवायु-आक्सीजन है? या कोई दूसरी शक्तिप्रद गैस गंगा की तरंगों पर से आनेवाली वायु में विद्यमान है या गंगाजल की रोगनाशक शक्ति विशेष उसकी लहरों को छूनेवाली हवा में खिंच आती है। वैज्ञानिकों के लिए यह खोज का विषय है।

—हरिशंकर गार्ग्य, बी० एस०-सी० एल०टी०
विज्ञानाध्यापक, बिजनौर

उपर्युक्त योग साधन का कोर्स अधम साधक के लिए अधिकाधिक बारह वर्ष का है, कनिष्ठ के लिए नौ वर्ष, मध्यम के लिए ६ वर्ष, और उत्तम साधक के लिए तीन वर्ष। परन्तु आपको ४५ वर्ष हो गये, और उसमें भी अब तक केवल डेढ़ से तीन मिनट तक का कुंभक हुआ यह सचमुच विचित्र बात है। हाँ, आपने सिविल सर्जन द्वारा दिये गये मौत के वारण्ट को रद्द कर दिया और ५६ वर्ष की आयु तक अब तक स्वस्थ जी रहे हैं यह सचमुच बड़ी प्रसन्नता की बात है और इस पर से प्राणायाम साधन और आपकी साधन निष्ठा का श्रेष्ठता स्वीकार करने में किसी को सन्देह नहीं हो सकता।

आपने आर्यकुमार सभा में भाषणों तथा वाद विवाद से प्रेरित होकर प्राणायाम करना आरम्भ किया, इससे स्पष्ट होता है कि शास्त्रोक्त और गुरुगम्य विधि से आपने नहीं किया। यह विषय केवल गुरुगम्य है, वाद विवाद अथवा भाषणों से अनुकरणीय नहीं है। अष्टांग योग में प्राणायाम का चौथा नम्बर है। पहले यम नियम पूरा करके, तब आसन सिद्ध करना चाहिए। स्थिर सुखमासनम्। एक स्थिर सुखासन से तीन घण्टा बैठे रहने से आसन सिद्ध होता है। पश्चात् प्राणायाम। प्राणायाम खुले, लहराते वायु के स्थान पर, यथा उक्त घाट के गोले पर करना ठीक नहीं। प्राणायाम के लिए कोई स्थिर वातावरण का स्थान- बन्द कमरा या गुफा उपयुक्त है। अथवा घाट से कुछ दूर पर। प्राणायाम आठ प्रकार का है, और प्रत्येक प्राणायाम हर समय हर ऋतु में करने योग्य नहीं। केवल लोम विलोम सब ऋतु में किया जा सकता है। प्राणायाम में पूरक कुंभक रेचक में समय का क्रम अनुपात १ : ४ : २ है। पश्चात् १० मिनट कुंभक होने पर प्रत्याहार सिद्ध होता है। दो घण्टे कुंभक से धारणा; २४ घण्टे कुंभक से ध्यान; और १२ दिन १२ रात्रि कुंभक से समाधि सिद्ध मानना चाहिए। ऐसी स्थिति प्राप्त होने के लिए पहले कुण्डलिनी जाग्रत होना चाहिए। हठयोग से कुण्डलिनी बहुत कष्ट से जाग्रत होती है। प्राणायाम के द्वारा बहुत समय लगता है। योग्य पात्र होने पर गुरु कृपा से शक्तिपात होने पर भी कुण्डलिनी जाग्रत होती है। पश्चात् षट्चक्र भेदन के लिए सुषुम्ना प्रवाह होना चाहिए। इसके बाद ब्रह्म ग्रन्थि विष्णु ग्रन्थि रुद्र ग्रन्थि का छेदन हो, तब "केवल कुंभक" सिद्ध होता है, पूरक रेचक नहीं होता। गीता अध्याय ४ में भी कहा है—

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथा परे।
प्राणापान गती रुद्ध्वा प्राणायाम परायणाः॥
४-२९

और : प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तर चारिणौ ॥५-२७

इतना हो जाने पर सहस्रार और ब्रह्मरन्ध्र में प्राण जाने पर समाधि सुख प्राप्त होता है।

हमारे यहाँ आश्रम गंगाघाट पर हठयोगी स्वामी नारायणप्रकाश जी रहते हैं। जिन्हें योग साधन सीखना या यौगिक चिकित्सा कराना हो वे सहर्ष पत्र-व्यवहार कर आश्रम में आकर रह सकते हैं।

—विश्वामित्र वर्मा

सेंक

डॉ० लक्ष्मीनारायण जी टण्डन, एम० ए० एन० डी०

हम भारतीयों में एक विशेषता है कि भारतीय विद्वानों द्वारा कही बातों से हमारा समाधान नहीं होता किन्तु वही बात यदि कोई यूरोपियन अथवा अमेरिकन विद्वान् कह दे तो वह हमें सत्य लगती है। विदेशी लोग हमारी ही चीज को अधिक सुचारु व्यवस्थित ढंग से वैज्ञानिक रूप में हमारे सामने रखते हैं अतः वह वस्तु हमारे विश्वास और आकर्षण की वस्तु बन जाती है। यों तो अन्धविश्वास के साथ बिना समझे बूझे हम प्रत्येक प्राचीन वस्तु या सिद्धान्त पर पूर्ण विश्वास करते हैं और उसका उचित सत्य विरोध भी नहीं सुन या सह सकते, इस प्रकार अंधपरम्परा और संकीर्णता का परिचय देते हैं, नई रोशनी की चकाचौंध में हमें प्रत्येक प्राचीन वस्तु या सिद्धान्त गलत भ्रमपूर्ण अथवा अपूर्ण दिखाई देता है। हम मनन करने, विचार करने से ही इन्कार कर देते हैं। इसमें हमारी हठधर्मी, मूर्खता है। नित्य नई खोज, प्राचीन बातों के सम्बन्ध में छानबीन तथा उनका वास्तविक उद्देश समझने की या तो हम आवश्यकता नहीं समझते या वैसा करने की हम में क्षमता नहीं है। यदि कहा गया कि रावण के दस सिर आदमी के थे, और बीच में एक सिर गदहे का था, तो हम उसे पूर्ण रूप से सत्य मान लेंगे या पोंगापंथी बात कहकर हम अपने धार्मिक ग्रन्थों का मजाक उड़ा देंगे। परन्तु यह सोचने का कष्ट कोई नहीं करेगा कि यह बात रूपक के रूप में कही गई है कि दस विद्याओं तथा कलाओं का ज्ञाता होते हुए भी रावण ने पर-स्त्री हरण करके कितने गधेपन का कार्य किया। हमारे पूर्वजों ने सत्य को अलङ्कारिक भाषा में रखा है, यह उनकी बुद्धिमानी का परिचय है। बहुसंख्यक मनुष्य प्रतिभावान् न होकर साधारण बुद्धि वाले होते हैं, इन्हीं अनेक बातों से महर्षियों ने उपयोगी बातें प्राय घुमा फिराकर कही हैं अतः उनके वास्तविक अर्थ को समझना हमारा काम है।

स्वास्थ्य तथा चिकित्सा के क्षेत्र में यह बात पूर्णतया लागू होती है। प्रातः उठना धर्म है। सूर्योदय के पूर्व स्नान, नित्य कर्म पूजा आदि से निपटकर सूर्य को अर्घ्य देना, निकलते हुए सूर्य की पूजा करना, सूर्य प्राणायाम, सूर्य नमस्कार आदि करना प्रत्येक हिन्दू का परम धर्म है। इसी बहाने, डर या भक्ति के कारण प्रातःकाल की वायु तथा सूर्य की 'अल्ट्रा वायलेट रेज' (सूक्ष्म हल्की बैंगनी किरणें) मनुष्यों को मिलेंगी इससे वे स्वस्थ तथा दीर्घायु होंगे। प्रातः ठंडे पानी से नित्य स्नान करने से उनमें स्फूर्ति, बल वीर्य की वृद्धि होगी। उगते हुए सूर्य से अल्ट्रावायलेट किरणें बिना मूल्य व बिना परिश्रम हमें मिलती हैं। सन्ध्या में [illegible]

चढ़े शय्या त्याग और सूर्य पूजा को ढोंग एवं मूर्खता कहना एक फैशन है। विज्ञान ने बिजली द्वारा अल्ट्रावायलेट किरणें देने के लिए लोक सेवा की व्यवस्था जो की वह मनुष्य निर्मित और अप्राकृतिक होने के कारण खर्चीली और सूर्य के समान अनुपयोगी है। यदि हम सूर्य की धूप और प्रकृति का सहयोग लें तो रोग होने ही न पावे। यदि हो भी जाय तो प्रकृति के सहयोग से हम पुनः ठीक हो जायँ। छोटे मोटे रोग तो सेंक के द्वारा ही दूर हो जायेंगे। इसमें न कोई खटपट है, न खर्च है, न कोई आडम्बर है। आपने देखा होगा कि यदि बच्चा ठोकर खाकर गिर पड़ता है और चोट लगने पर रोने लगता है तो हम झट से मुँह में कपड़ा लगाकर भाफ से गरम कर बच्चे की चोट पर रख देते हैं, और वह प्रसन्न हो जाता है। वह समझता है कि हमारा ठीक इलाज हो गया, चोट ठीक हुई। यह चीज हमें प्रमाणित करती है कि सेंक स्वाभाविक रूप से एक इलाज है और यह प्राकृतिक चिकित्सा का एक प्रमुख अंग है।

बिजली की सेंक के अनेक वैज्ञानिक ढंग होते हैं। लघु लहरी में भीतर से गरमी शुरू होकर ऊपर आती है। सूक्ष्म हलकी बैंगनी किरण की सेंक में ऊपर से गरमी शुरू होकर भीतर आती है। इसी किरण की गरमी से बीज उगता है, विटामिन 'डी' भी इसी से पैदा होता है। नकली तौर पर उसका लैम्प बनाते हैं। कोई चीज, खूब गरम करके लाल कर लो, उसमें इन्फ्रारेड रेज अर्थात् अति लाल किरण पैदा होंगी। किरणें कई रंग की होती हैं। सूर्य किरणों में सात रंग, बैंगनी, नीला, आसमानी, हरा, पीला, नारंगी और लाल होते हैं। बैंगनी के बाद की किरणें जो सूक्ष्म होती हैं वे अल्ट्रा-वायलेट किरणें कहलाती हैं, आँखों से नहीं देखी जा सकतीं। शेष सात रंग की किरणों में हम सब कुछ देख सकते हैं। अल्ट्रावायलेट तथा इन्फ्रा-रेड किरणें अधिक लाभप्रद हैं। किसी दशा में एक से अधिक लाभ होता है, किसी दशा में दूसरी से अधिक इस प्रकार सूर्य किरणों द्वारा शरीर की सेंक सर्वोत्तम स्वास्थ्यप्रद सेंक है।

इसके अतिरिक्त सूखा सेंक और गीला सेंक हो सकता है। ईंट पत्थर रेत या पानी गरमकर बोतल में भर कर सेंका जा सकता है। यह सूखी सेंक हुई। गरम कपड़ा या रूई गीली करके सेंकना गीली सेंक हुई। कहीं दोनों प्रकार की सेंक का एक साथ प्रयोग होता है। सूखी सेंक से गीली सेंक अधिक लाभप्रद होती है। गीली सेंक से भीतरी फोड़ा फुन्सी आदि जो अभी प्रकट नहीं हुए हैं, उसे शीघ्र रूप और शक्ति मिलती है। सेंक एक ऐसा उपाय है जिससे प्रकृति कम से कम हानि से अपना काम कर देता है। सूखा सेंक कीटाणुओं का नाश करता है; ठण्डी सेंक से जीवन प्राप्त होता है, बढ़ता है, इससे गीला (ठण्डा) सेंक ही अधिक उपयोगी है। सेंक से, मवाद जितना बनना चाहिए उससे अधिक बनता है। पुल्टिस की जरूरत नहीं रहती। गीली सेंक से खून में गर्मी कभी नहीं चढ़ेगी, यह एक महत्वपूर्ण बात है। सूखे सेंक से शरीर के चर्म की व खून की गर्मी बढ़ जायगी तथा कीटाणुओं की भी टूट फूट अधिक होगी। गीली सेंक के तीन तरीके होते हैं १—सीधा गीला सेंक २—गरम गीला सेंक और ठण्डी पट्टी सेंक साथ साथ ३—दो-तीन मिनट गरम सेंक फिर आधा या एक मिनट ठण्डा सेंक, इसी क्रम से आगे भी। टब के ठण्डे या गरम स्नान, गरम या ठण्डे पानी का एनिमा, आदि सब प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सेंक है। सेंक के सैकड़ों छोटे मोटे भेद हैं, पश्चिमी विद्वानों ने इस विषय पर अनेक ग्रंथ लिखे हैं जिनमें विभिन्न रोगों पर विभिन्न प्रकार की सेंक देना बताया है।

रंग और स्वास्थ्य

श्री विनयमोहनजी शर्मा

रग का स्वास्थ्य से घनिष्ट सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध में चार्ल्स लेवेली का 'वर्ल्ड डाइजेस्ट' में बड़ा उपयोगी लेख प्रकाशित हुआ है। एक बार लेखक के एक मित्र ने शिकायत की, "भाई, मेरी पत्नी बड़ी चिड़चिड़ी हो गई है। ऐसा जान पड़ता है मुझे शीघ्र ही उसे तलाक देनी पड़ेगी।"

लेखक ने उसके घर का जरा ध्यान से निरीक्षण किया। बोले, तुम इस लाल लाल रंगवाले मकान में रहोगे तो तुम्हारी नसें (ज्ञानतन्तु) बरबाद हो जायँगे। तुम्हें पत्नी को तलाक देने की आवश्यकता नहीं है, मकान के रंग को बदल दो। उसे शांतिदायक नीले और भूरे रंग से पोत दो।

मित्र ने लेखक की सलाह मान ली। थोड़े ही दिनों बाद उसने लेखक से कहा—भाई, तुम्हारा नुस्खा तो कारगर हो गया। पत्नी अब बड़ी शान्त रहती है। लेखक ने कहा—तो तलाक कब दे रहे हो? मित्र ने हँसकर कहा—तुम बड़े दुष्ट हो।

संगीत की तरह रंग भी हमारे मनोभावों को प्रभावित करता है, हममें गर्मी और सर्दी भर सकता है। रंग विशेषज्ञ रोगियों को रोग के अनुसार रगों के सम्पर्क की सलाह देते हैं। रंग दो विभागों में बाँटे जा सकते हैं—१. लाल, नारंगी, पीला—इनका असर गर्मी, उत्तेजना और प्रसन्नता उत्पन्न करना है। २. हरा, नीला और बैंगनी- इनका असर ठंडक, शांति; तथा अधिक मात्रा में होने से उदासी उत्पन्न करता है।

प्रकृति लाल नारंगी और पीले रंगों का बहुत कम उपयोग करती है, ये तेजी उत्पन्न करते हैं।

हरे और नीले रंग का प्रकृति हर जगह उपयोग करती है। आकाश नीला है, वन वैभव की छटा हरी है, इससे मन में शान्ति का साम्राज्य छा जाता है। मानसिक एकाग्रता के लिए कमरे का रंग नीला और हरा होना चाहिए।

अध्ययन कक्ष में इन्हीं रंगों की पुताई होनी चाहिए। काला रंग मनहूसी और उदासी पैदा करता है। बहुत पीले रग से उबकाई आने लगती है। पित्त अधिक सचित होता है। हवाई जहाज के यात्री को पीले रंग से बचना चाहिए।

सूर्य किरण चिकित्सा में भी रगों का माहात्म्य है। भिन्न भिन्न रगों के शीशों द्वारा शरीर के पीड़ित स्थलों पर सूर्य किरणें डालने से, रंगीन बोतलों में जल भर, सूर्य की धूप में रखकर वह जल रोगी को पिलाने से, तथा रंगीन बोतलों में तेल भरकर सूर्य की किरणों से प्रभावित होने पर उस तेल की मालिश करने से, अनेक रोगों की चिकित्सा की जाती है। इसका प्रभाव केवल शारीरिक ही नहीं, वरन् मानसिक रोगों पर भी होता है।

हमारी नई पुस्तकें

स्वर्ण सूत्र

स्व० सन्त नागरजी द्वारा लिखित, लगभग २५० स्वर्ण सूत्रों का संग्रह, अनेक अध्यात्म प्रेमियों के आग्रह से पुस्तकाकार छप गया। भय, चिन्ता, क्लेश, निरुत्साह आदि मनोविकारों को दूर कर जीवन पथ पर उत्साह से अग्रसर कराने वाली दिव्य आत्म प्रेरणाओं का, दैनिक जीवन के लिए अनमोल व्यावहारिक संग्रह है। इसे हर समय हर व्यक्ति को अपने पास रखकर नित्य पढ़ने से अपूर्व शान्ति मिलेगी। मूल्य ३) डाक खर्च ।||)

उपासना और हवन विधि

यज्ञ द्वारा मन में दिव्य संस्कार डालने और रोगों की चिकित्सा तथा आत्म विकास करने के लिए व्यावहारिक हिन्दू धर्म की अमूल्य पुस्तक फिर से छप गई। मूल्य ।|=)

ध्यान से आत्म चिकित्सा

ध्यान द्वारा मनोबल का विकास कर अपनी मानसिक कमजोरियों को दूर कर उन्नति करने के अनमोल साधन मूल्य १)

सन्त नागरजी

स्व० सन्त नागर जी तथा उनकी संस्था व कार्यों का संक्षिप्त परिचय मूल्य ।)

विशाल जीवन

स्व० सन्त नागर जी के लेखों का प्रथम संग्रह, जीवन को विशाल बनाने के लिए, मानसिक शारीरिक उन्नति और आत्म-विकास के अनुभवपूर्ण साधनों से भरपूर है। स्व० नागर जी के विचारों और जीवन से प्रेरणा देनेवाली प्रथम पुस्तक है। मूल्य २) डाक खर्च ।||)

दुग्ध चिकित्सा

स्वामी जगदीश्वरानन्द जी वेदान्तशास्त्री द्वारा लिखित इस पुस्तक में नवीन अनुभव जोड़कर विस्तार पूर्वक छापा गया है। मूल्य ।||) डाक खर्च ।|)

गायत्री रहस्य

स्व० ब्रह्मनिष्ठ नारायण दामोदर जी शास्त्री द्वारा लिखित गायत्री जप व यज्ञ द्वारा आत्मकल्याण, आत्मोन्नति, रोगनाश, लक्ष्मी प्राप्ति, आदि भिन्न भिन्न उद्देश्य पूर्ति के लिए गायत्री के अनेक अनुभवपूर्ण प्रयोग दिये हैं। मूल्य ।|)

भोजन निर्णय

भोजन विषयक नवीट चार्ट मूल्य ।)

शिव सन्देश

अथवा आध्यात्मिक जीवन का रहस्य

ब्रह्मलीन पं० शिवदत्त जी शर्मा के "कल्पवृक्ष" में पिछले २५ वर्षों में निकले हुए लगभग ४०० लेखों का अमूल्य संग्रह, लगभग १००० पृष्ठों में छप कर तैयार है। इस संग्रह की पाठकों की ओर से बड़ी माँग थी। इस ग्रंथ में उनके आध्यात्मिक जीवन का रहस्य प्रकट करने वाले दस विभिन्न भागों में अत्यन्त उपयोगी सामग्री संग्रह की गई है। यथा—आध्यात्मिक जीवन-चरित्र, व्यावहारिक जीवन, स्वास्थ्य-साधन, विचार-साधन, प्रार्थना—ध्यान—उपासना आध्यात्मिक साधन, मंत्र और योग साधन, व्यावहारिक वेदान्त, अध्यात्म और ब्रह्मविचार, मृत्यु और उस पर विचार। प्रत्येक अध्यात्म-प्रेमी के लिए दैनिक स्वाध्याय के योग्य ग्रंथ है। मूल्य १०) डॉक खर्च १।=)

विशेष सूचना—डाक खर्च पहले से दुगुना हो गया है इसलिए कई पुस्तकें एक साथ मंगाने में सुभीता रहेगा।

व्यवस्थापक—कल्पवृक्ष कार्यालय उज्जैन, नं० १ (मध्य भारत)

वर्ष ३२ KALPA-VRIKSHA

संख्या ६ A MAGAZINE OF DIVINE KNOWLEDGE

१ आध्यात्मिक संहार—स्व० सन्त नागर जी ..
२ महत्वपूर्ण सूचना—चौथे सर्वा आध्यात्मिक साधन समा... .
३ तुम्हें कौन सा आनन्द चाहिए ?—आचार्य श्री नरेंद्रजी शास्त्री वेदतीर्थ ...
४ वेद विज्ञान सुधा—श्री रणछोड़दासजी उद्धव ...
५ मनुष्यों के प्रति वेद का उपदेश—श्री श्यामबिहारी लाल जी वानप्रस्थी ...
६ अलख ज्योति—श्री ज्वालाप्रसाद जी खरे ...
७ स्वप्न सम्बन्धी प्रश्नोत्तर—महाराजा प्रतिपालसिंह जी ..
८ प्रश्नोत्तरी— ..
९ पौष्टिक आहार—श्री पं० ब्रजभूषण जी मिश्र ...
१० आरोग्य के कुछ नियम—श्री "कश्चित्" ..
११ विचारों का प्रभाव—श्री मांगीलाल जी जायसवाल ..
१२ बुराई के विचारों की तरङ्गें—प्रो० रामचरण जी महेन्द्र ...
१३ शान्ति की खोज में—श्री सुदर्शनसिंह जी
१४ स्वर्ण-सूत्र—महासत्य की भावना

सम्पादक—[illegible] नागर

महासत्य की भावना

मैंने जाना है कि मेरे जीवन का आज का दिन मेरे लिए सर्वश्रेष्ठ और शुभ अवसर है। और मेरे जीवन का सर्वश्रेष्ठ ध्येय यह है कि मैं हमेशा अपने सर्वोत्तम सङ्कल्प और योग्यता को व्यवहार और कार्य में—प्रसन्नतापूर्वक लगाऊँ, अपना आत्मतत्व सिद्ध करूँ।

जीवन का महासत्य, महाशक्ति, सर्वज्ञान, ईश्वर है, और वह ईश्वर मुझसे पृथक् बाहर नहीं, वरन् मेरे ही भीतर है, और मुझे सदैव शुभ सङ्कल्प और सत्कर्म की प्रेरणा देता है।

मैंने अपने विषय में जो सत्य बात आज तक जानी है, वह यह है कि संसार में मेरा जीवन, मेरा अस्तित्व महत्वपूर्ण है। स्रष्टा की योजना में, मेरा बड़ा महत्व है।

और इस सत्य बात का फल यह है कि मैं जो इच्छा करूँ वह सब पूर्ण कर सकता हूँ। मैं सब अच्छे काम पूर्ण कर सकता हूँ, सब वैभव पा सकता हूँ, सब कुछ बन सकता हूँ, क्योंकि मुझमें संकल्पों, इच्छाओं, योजनाओं का प्रेरक—परमपिता परमात्मा है। मैं सब विचार या इच्छा उसकी प्रेरणा से ही पाता हूँ। वही सब पूर्णता का स्रोत और भण्डार है। कोई भी विचार, इच्छा मेरी स्वतन्त्र स्वनिर्मित नहीं है।

इस सब का कारण यह है कि परमतत्व परमात्मा सर्वव्याप्त, मेरे अन्तःकरण में व्याप्त सदा सर्वदा शुभ संकल्प, सदिच्छा, सद्बुद्धि, सामर्थ्य, वैभव आदि दैवी सम्प्रदाओं की सतत प्रेरणा, और वर्षा करता रहता है और मैं उसी के, आत्मनिहित दैवी तत्वों का साक्षात्कार करने के लिए संसार में उसका प्रतिनिधि होकर जन्मा हूँ, और जी रहा हूँ। परमात्मा सर्वस्वरूप हो मुझमें व्याप्त होकर प्रगट हो रहा है।

मैं शान्त हूँ, प्रसन्न, स्वस्थ, सर्व सम्पन्न हूँ।

स्वर्गीय डॉ० दुर्गाशङ्कर नागर

सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत ।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥ गीता ॥

वर्ष ३२ } उज्जैन, फरवरी सन् १९५४ ई०, सं० २०१० वि० { संख्या ६

आध्यात्मिक संसार

स्व० सन्त नागरजी

संसार परिवर्त्तनशील है, जो आज है वह कल नहीं, जो कल होगा वह भविष्य में नहीं। एक समय वह था कि भारतवर्ष सब बातों में सर्वश्रेष्ठ था, क्योंकि यहाँ के निवासी सर्व विद्याओं में तथा कलाओं में निष्णात थे। अध्यात्म विद्या तो उनकी पैतृक संपत्ति थी; किंतु आज हम देखते हैं कि इस प्राचीन देश में कितने थोड़े अध्यात्म विद्या के गुप्त रहस्य से परिचित है, कितने अभ्यासी हैं और कितने ऐसे हैं जिनका आध्यात्मिक जीवन है। बहुत कम लोग हमें आज इस विद्या के जानने वाले और अनुभवी मिलेंगे। पचास वर्ष पूर्व इंग्लैंड, जर्मनी, फ्रान्स, अमेरिका आदि देशों मे तो जो लोग परमात्मा की उपासना में लगे रहते थे, समाधि लगाते थे, आत्मा को मानते थे, ईश्वर के अस्तित्व का अनुभव करते थे ऐसे धार्मिक लोगों का छल किया जाता था, मज़ाक में उड़ाये जाते थे, उनको वहाँ के विज्ञानवेत्ता [illegible] सायन्स जानने वाले Neuropa[illegible] न्यूरोपथिस्ट, [illegible] इत्यादि कहते थे। यहाँ तक कि [illegible] के व महान् भक्त [illegible] परिस्थिति [illegible] की विचित्र [illegible] विज्ञानवेत्ता [illegible] डाक्टर, हेरिटहैलैरियन, [illegible]।

सदश महान् धुरंधर विद्वान हैं कि जिन्होंने अध्यात्म विद्या का स्वतः अनुभव किया है और इस विद्या के प्रचार के लिए बहुत से वैज्ञानिक अध्यात्म ग्रंथ लिखे हैं और वे अब भी अमेरिका, इंग्लैंड, फ्रांस आदि देशों में विद्यमान हैं और उन देशों में आध्यात्मिक अन्वेषण हो रहे हैं। हम अपने कल्पवृक्ष के पाठकों को कुछ वहाँ के आध्यात्मिक अन्वेषणों का दिग्दर्शन कराते हैं।

उन देशों में मरे हुए लोगों की आत्माएँ आकर वार्तालाप करती हैं ऐसा सिद्ध किया है (यहाँ आत्मा से हमारा प्रेतात्मा से मतलब है जो स्थूल शरीर छोड़कर अपने विकारों सहित प्रेतलोक में रहता है) मृत आत्मा का फोटो लिया जाता है, मृत लोगों द्वारा स्वर्ग तथा नरक और अन्य विज्ञान तथा गुप्त रहस्यों का पता लगाया जाता है। मृत पुरुष हमसे बिलकुल दूर नहीं हैं। उनका हमारा संबंध हो सकता है।

दूसरे, विचार प्रत्यक्ष वस्तु है। विचारों के फोटो लिये जाते हैं, उनकी आकृति और रंग हैं और वे भिन्न-भिन्न विचारों के लिए भिन्न-भिन्न आकृति तथा रंग धारण करते हैं। हमें आश्चर्य होता है कि मस्तिष्क की खोपड़ी के अँधेरी कोठरी में पैदा हुए विचार स्थूल रूप कैसे धारण करते हैं किंतु इन सब बातों का पता आजकल रसायनशालाओं में प्रयोगों द्वारा लगाया गया है और लगाया जा रहा है। विचार की आकृति काँच पर किस तरह आ सकती है इसकी विधि भी पाठकों को समयानुसार प्राप्त होगी।

सबसे आश्चर्यजनक बात यह है कि कर्नल अलबर्ट डेगेचस ने हस्तक (मीडियम) के शरीर से बाहर निकला हुआ सूक्ष्म शरीर उसका भी वजन लिया है और वे कहते हैं कि सूक्ष्म शरीर का कुल वजन २ २५ याने सवा दो औंस है और यह शरीर जीवात्मा की इच्छानुसार विस्तृत तथा आकुंचित हो सकता है। इसके विस्तृत होने की मर्यादा मीटर के हजारवें हिस्से का १·२६ हिस्सा है और आकुंचित होने की मर्यादा मीटर के हजारवें हिस्से से ८ गुनी है। यानी आकुंचित होना बढ़ती से करीब ६ गुना अधिक है। जितनी जगह में एक औंस पानी रह सकता हो उतनी ही जगह में उस सूक्ष्म शरीर का वजन $\frac{१५३}{१२५००}$ यानी .०१२२४ औंस है और वह हवा और हाइड्रोजन से भी हलका है। इस सूक्ष्म शरीर पर इच्छा का बड़ा प्रभाव है। हर एक इच्छा उसको विस्तृत तथा आकुंचित करती है। यह शरीर जब भी सूक्ष्म है तब भी इसको वजन होने से गुरुत्वाकर्षण के नियम के वह आधीन है। एक अज्ञातक्ष नाम की शक्ति है जो इस शरीर के परमाणुओं को एकत्र रखती है। इस शरीर के परमाणु बहुत ही सूक्ष्म हैं परन्तु वजनदार होकर अंतर अंतर पर हैं। हर एक परमाणु का वजन शरीर के क्षेत्र से भारी है और वह क्षेत्र बाह्य हवा के समान ही जड़ है। यदि हवा का दबाव बाहर स्थूल शरीर पर बढ़ा हुआ होगा तो उसी प्रकार परन्तु और प्रमाण में अंदरूनी शरीर पर भी होगा। उपरोक्त सूक्ष्म शरीर संबंधी खोज आधुनिक विज्ञान द्वारा की गई है।

और भी अन्वेषण जो बड़े महत्व का है वह यह कि मनुष्य के शरीर से एक तेजस निकला हुआ रहता है जो मनुष्य के चहुँ ओर एक वर्तुलाकार तेजोवलय बनता है। यह तेजोवलय मनुष्य के चारों ओर दो दो फीट तक फैला हुआ रहता है। बहुत वर्षों से दिव्य दृष्टि वाले महात्मा इसका वर्णन करते थे किंतु वह विषय हास्यकारक माना जाता था। थोड़े समय से इस तेजस के अस्तित्व का प्रचार जन समुदाय में हो चला है। इसके प्रचार का श्रेय सेंट टामस हॉस्पिटल के भूतपूर्व विद्युत शास्त्री और वर्तमान केंब्रिज के डॉक्टर किल्नेर बी० ए० एम० बी० को है। उन्होंने बहुत ही प्रयत्न के साथ प्रयोग द्वारा तेजोवलय (Aura)

का अनुसंधान करके रासायनिक क्रिया द्वारा उसको प्रत्यक्ष कर दिखाया है। डॉक्टर किल्नेर ने "Diagnosis sheet" अर्थात तेजस को देखने के लिए काँच पर रासायनिक मिश्रण लगाकर वत्तियाँ तयार की हैं जिससे मनुष्य के चहुँओर रहने वाले तेजस सहज और स्पष्ट दिख सकते हैं। हर एक व्यक्ति इसका अनुभव ले सकता है।

सिद्ध सङ्घ

हमने कल्पवृक्ष के प्रथम ही अङ्क में लिखा था कि इस संसार को सुव्यवस्थित रीति से चलाने को महर्षियों का सिद्ध संघ हिमालय के अन्य प्रदेश में स्थित है। बहुत से लोगों ने उसका मखौल उड़ाया होगा। ऐसे लोगों के तथा सर्वसाधारण के विश्वास के लिए हम यहाँ पर एक फौजी आफिसर मेजर क्रास का पत्र प्रकाशित करते है जिसे देखकर पाठकों को सिद्ध संघ के अस्तित्व में आगे से कोई सन्देह नहीं रहेगा।

'हिमालय के २४० वर्ष के वृद्ध योगी'— बम्बई के १६ मई सन् १९२३ ई० के दैनिक पत्र टाइम्स आफ इण्डिया में यह समाचार प्रकाशित हुए हैं कि मेजर क्रास ने गोआ के पंजिम स्थान मे आम व्याख्यान में कहा है कि मेरी टिवेट यात्रा में एक विशेप बात यह हुई कि मुझे एक वृद्ध योगी के दर्शन कराये गये जिनकी आयु २४० वर्ष की है और उनमें अद्भुत शक्तियाँ हैं। ये योगी थिआसाफिकल सोसाइटी की संस्थापिका श्रीमती मेडमब्लेवट्स्की के गुरु है। वे बड़े बुद्धिमान हैं।

आजकल यह सर्वमान्य है कि उच्च गणित के इन्टेगर्ल और डिफरेंशियल कालक्युलस सिद्धान्त प्रसिद्ध अँग्रेज विद्वान न्यूटन ने ही मालूम किये थे। इन वृद्ध महात्मा ने न्यूटन का कभी नाम भी नहीं सुना होगा। परन्तु उन्हें उक्त सिद्धांत भलीभाँति ज्ञात है।

ये योगी अपनी इच्छा से जहाँ चाहें वहीं अन्तर्ध्यान या प्रकट हो सकते हैं। इनके [illegible] के अंग प्रत्यंगों को, हाथ-पैर को [illegible] चाहें लम्बे कर सकते हैं। हिमालय के [illegible] भागों में रहने वाले योगियों से [illegible] हैं। योग से ही इनकी आयु इतनी [illegible] और ये योगी वहाँ रहने वाले योगियों के [illegible] हैं। मेजर क्रास कहते हैं कि उन्होंने मेरे सामने एक बालक पर से प्रेत बाधा दूर की। [illegible] से उनकी आँखों में से निकलते हुए विद्युत प्रवाह ने मेजर के सामने एक [illegible] को। जिस को टुकड़े टुकड़े कर दिया।

योगी जी की भविष्यवाणी, फिर महा-युद्ध और घोर अकाल। इनको गत महायुद्ध की बात पहिले से ही मालूम था और इनका कहना है कि सन् १९२७ ई० में फिर से एक महायुद्ध होगा और उसके बाद कई वर्षों तक घोर अकाल पड़ेगा।

यह सब आश्चर्य की बात नहीं है। ऐसे ऐसे महात्मा कई गुप्त स्थानों में विद्यमान हैं और यही विश्व के लोगों की तैयारी न होने के कारण प्रकट नहीं होते थे। अब प्रकट होना उन्होंने ठीक समझा है। कोई भी व्यक्ति यदि ऐसे महात्माओं से लाभ उठाना चाहे तो उसका कर्तव्य है कि अपने में सत्य, अहिंसा, निरभिमान, और शान्ति के गुणों को प्रकट करे और [illegible] जीवमात्र की, जो उनके सम्पर्क में आवें, [illegible] निष्काम सेवा करे जिससे कि महात्माओं को पहचानने के [illegible] हो जावें।

स्व० नागर जी की [illegible] पुस्तक "विवाह जीवन" से।

महत्वपूर्ण सूचना

चौवीसवाँ आध्यात्मिक साधन समारम्भ

आध्यात्मिक मण्डल एवं कल्पवृक्ष मासिक पत्र के संस्थापक स्व० सन्त नागरजी के पूर्व आयोजन के अनुरूप आध्यात्मिक साधन का चौवीसवाँ समारम्भ चैत्र शुक्ल १, २, ३, ४, वि० सं० २०११, तदनुसार ता० ४, ५, ६ एवं ७ अप्रैल, १९५४ ई०, रविवार, सोमवार, मंगलवार, और बुधवार को होना निश्चित हुआ है। यह समारोह प्रतिवर्षानुसार, शहर से दो मील बाहर, एकान्त क्षिप्रातट गंगाघाट स्थित साधनालय के प्रांगण में होगा। देश के दूर दूर के प्रान्तों से जिज्ञासु, सत्संगी, अभ्यासी साधक एवं विद्वान् यहाँ एकत्रित होते हैं जिनके समागम एव अनुभव विनिमय से जीवन में अद्भुत परिवर्तन होता है और जीवन को सर्वतोमुखी समुन्नत बनाने में बड़ी सहायता मिलती है।

जीवन की रोज रोज की व्यापारिक और व्यावहारिक उलझनें और झंझटें तो चलती ही रहती हैं। तथा श्वास निकल जाने और आँखें बंद हो जाने के बाद भी चलती रहेंगी। हम जो कुछ रोज हाय हाय करते हुए दौड़ धूप करते रहते हैं, केवल वही हमारे जीवन का उद्देश्य नहीं है। हमारा यह अवतार कुछ भी आत्म विकास कर लेने के लिए अनमोल अवसर है जो एक बार शरीर छूट जाने पर फिर दुबारा इसी रूप में नहीं मिलेगा। हमारा उद्देश्य क्या है और उसके लिए हमें क्या प्रयत्न अथवा साधन करना चाहिए तथा सुख शांति और उन्नति के लिए कैसा व्यवहार करना चाहिए, इन्हीं विषयों पर चर्चा की जाती है। सभी विचार और धर्म के लोग यहाँ आते हैं और उनके ज्ञानवर्धक भाषणों से शरीर और मन के आरोग्य, आत्म-बल एवं आत्मज्ञान की अनुभूति पाने में नवीन प्रेरणा और सहायता मिलती है। अतएव आध्यात्मिक सत्संगप्रिय जिज्ञासुओं एवं साधकों से साग्रह निवेदन है कि ऐसे अवसर पर पधार कर चार दिन के सत्संग द्वारा समाधान और अनुभव का लाभ लें। नित्य प्रार्थना, प्रवचन, भजन-कीर्तन, जप, यज्ञ, स्वाध्याय के अतिरिक्त योगाभ्यास, योगासन, प्राणायाम, प्राकृतिक चिकित्सा के साधनों द्वारा शरीर को शुद्ध और स्वस्थ करने, रोग दूर करने और आत्मोन्नति की व्यावहारिक शिक्षा मिलती है।

प्रवेश शुल्क प्रति व्यक्ति एक रुपया, तथा चार दिन का भोजन खर्च छः रुपये, इस प्रकार मनीआर्डर द्वारा सात रुपये शीघ्र भेज देना चाहिए। लोग अक्सर बिना पहले रुपया भेजे और बिना पूर्व सूचना दिये आ जाते हैं इससे प्रबन्ध में कठिनाई होती है। भोजन दिन में एक बार दोपहर को, तथा रात्रि में स्वल्प दुग्ध फलाहार होगा। बिस्तर, आसन, जलपात्र तथा कोई अन्य व्यक्तिगत आवश्यक वस्तु और स्वाध्याय के लिए इष्ट सद्ग्रन्थ अपने साथ लावे। दैनिक कार्यक्रम इस प्रकार है :—

प्रातःकाल

५ से ६ तक प्रार्थना

८ से १० तक योगासन, व्यायाम

१० से ११ तक मौन जप, हवन

मध्याह्न

१२ से १२॥ तक मध्याह्न उपासना

अपराह्न

१ से ४॥ तक भोजन, विश्राम, स्वाध्याय

४॥ से ५॥ तक प्राकृतिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक चिकित्सा पर भाषण

५॥ से ६॥ तक आनन्द पर्यटन, सायंकृत

वेदविज्ञान सुधा

श्री रणछोड़दास 'उद्धव'

सृष्टिकर्ता वेदमूर्ति ब्रह्मा का विज्ञान

मोहन—सुहृद्वर माधव! आपकी वेद-विज्ञान सुधा के कुछ पान करने से ही अनेक अनूठी बातें जानने का आनन्द प्राप्त हो रहा है, कृपया मुझे प्रजाकामुक प्रजापति ने प्रजा कैसे निर्माण की एवं वे वेदमूर्ति कैसे हैं? इस विषय को विशद विवेचन करके कहिए।

माधव—प्रियवर मोहन! वेदविज्ञान सुधा तो भगवान् की वस्तु है, मेरी नहीं। प्राचीन राजर्षिजनों ने इसी से वैभवशाली बनकर एवं पूर्णशांति प्राप्त कर विश्व को वैभव और शांति प्रदान की थी। बाद वेदस्वाध्याय के अभाव से अनंतकाल से चमकता हुआ वेदविज्ञान विद्वत्समाज की बुद्धि में उतना ही तिरोहित हो गया, जितना नेत्रविहीन की दृष्टि से सदा उदित रहनेवाला सूर्य। वह वेदविज्ञान भारत के सौभाग्य से स्वर्गीय विद्यावाचस्पति श्री मधु-सूदनजी ओझा ने अपनी आयु को वेदविद्या के उद्धारार्थ अर्पित कर ४० वर्ष के अकथ परिश्रम और अलौकिक प्रतिभा के बल से वेद के सम्बन्ध में अभूतपूर्व रिसर्च कर प्रकट किया है। उनके कुछ संस्कृत ग्रन्थ और उनके शिष्य प मोतीलाल [जी] शर्मा के कुछ हिन्दी ग्रन्थों का स्वाध्याय कर [स]रल और संक्षिप्त बनाकर ज्यादा से ज्यादा [प्र]चार करने की दृष्टि से कहता हूँ। अतः आप [भ]ी इसका अच्छा अध्ययन करें एवं आनन्द [प्र]ाप्त करके विश्व कल्याणार्थ प्रचार करें।

[']प्रजापतिरस्वेवेदं सर्वमसृजत यदिदं किंच।'

(शतपथ ब्रा० ६।१।११) अर्थात् 'है' [क]हने लायक जितने भी पदार्थ हैं, उन सबको [प्र]जापति ने ही उत्पन्न किया है। इस श्रुति से [प्र]जापति को ही संसार का मूल कारण मानना [प]ड़ता है। इस प्रजापति में सत्य और विश्व [य]े दो भाग हैं। सत्य आत्मा है और विश्व उस सत्यात्मा का शरीर है। आत्मा नित्य है—अमृतस्वरूप है और विश्वरूप शरीर सर्वथा अनित्य है—मरणधर्मा है। आधा भाग अमृत है और आधा मर्त्य है। (शत० १०।१।३।२) अमृतरूप सत्य-आत्मा को "षोडशी पुरुष" कहा जाता है। पाँच कला अव्यय की, पाँच कला अक्षर की, पाँच कला क्षर की और एक परात्पर इनका समुदाय ही षोडशी पुरुष है। उक्त तीनों पुरुषों में वस्तुतः पुरुष पदवाच्य अव्यय ही है, अक्षर और क्षर तो इस पुरुष की परा और अपरा प्रकृतिएँ है। किन्तु ये प्रकृतिएँ पुरुष से अभिन्न हैं अतएव इन्हें भी पुरुष कह दिया जाता है। प्रकृति और पुरुष इन दोनों की समष्टि का नाम षोडशी सत्यात्मा है। प्रकृति की अव्यक्तावस्था का नाम अक्षर है एवं व्यक्तावस्था का नाम क्षर है। प्रकृति की व्यक्तावस्था अवरब्रह्म है। हमारे महाविश्व की अपेक्षा से यही क्षरब्रह्म सत्य-आत्मा है। यद्यपि क्षर और अक्षर अव्यय से अभिन्न हैं तथापि यज्ञ सम्बन्ध से क्षर को ही आत्मा कहते हैं। इस क्षर आत्मा का ही दूसरा नाम वेदमय ब्रह्मा है। इसमें अव्यय मौजूद है। अव्यय की आनन्द, विज्ञान, मन, प्राण और वाक् ये पाँच कलाएं हैं। इनमें आनन्द और विज्ञान मुक्ति प्रदाता हैं, प्राण और वाक् सृष्टि के कारण हैं एवं मध्य का मन यदि विज्ञान की ओर जाता हुआ आनन्द में पहुँच जाता है तो आत्मा बंधन से मुक्त हो जाता है एव प्राण और वाक् की ओर चला जाता है तो सृष्टि के बंधन में फँस जाता है। मन ही बंधन और मुक्ति का कारण है। अतः कहा है—

न देहो न च जीवात्मा नेन्द्रियाणि परंतप।
मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः॥

है। हम अन्तःपृष्ठ को नहीं देखते, उसका केवल स्पर्श कर सकते हैं अतएव इसे स्पृश्य-पिण्ड कहा जाता है एवं बहिःपृष्ठ प्रत्यक्ष होने के कारण दृश्य पुण्डरीक कहलाता है। इन तीनों पुष्करों में ब्रह्मा निवास करते हैं। ब्रह्मा जब रहेंगे तब पुष्कर में ही रहेंगे। पुष्कर पिण्ड महिमा के कारण ४८ तक व्याप्त हो जाता है अतएव 'पुरुकरत्वात्' बहुत करने से इसे पुष्कर कहा जाता है। प्रजापति ब्रह्मा आत्मक्षर होने से स्वयं अनुत्पन्न हैं, परन्तु सब कुछ इन्हीं से उत्पन्न होता है अतएव वेद भगवान् कहते हैं—

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते।
तस्य योनिं परिपश्यंति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा॥

—यजुर्वेद ३१।१९

अर्थात् 'सर्वात्मा प्रजापति अंतर्यामीरूप से गर्भ के मध्य मे प्राप्त होता है। जन्म न लेता हुआ भी अनेक रूप से उत्पन्न होता है। बुद्धियोगी उसके उत्पत्ति स्थान को सब ओर से देखते हैं। जिसमें ही सब ब्रह्मांड स्थित हैं।'

पुष्कर तीर्थ मे ब्रह्मा ने यज्ञ किया था, ब्रह्मा की जन्मभूमि पुष्कर (बुखारा) था, इत्यादि पौराणिक कथाओं का ऐतिहासिक ब्रह्मा से सम्बन्ध है। सारांश यह कि क्षरब्रह्म ही सारे जगत् के मूल कारण हैं। इन्हीं का नाम स्वयंभू है। इनसे सबसे पहले पानी उत्पन्न होता है। (मनु० १।८) इस आपोमय समुद्र को "परमेष्ठीमण्डल" कहते हैं। यह हमारी "रोदसी" त्रिलोकी के (सूर्यमण्डल के) भी परमस्थान में रहता है अतएव इसे "परमेष्ठी" कहा जाता है। (शतपथ ११।१।६।१६) जैसे ज्योति, गौ और आयु ये तीन सूर्य के मनोता हैं; वैसे ही परमेष्ठी के भृगु, अंगिरा और अत्रि ये तीन मनोता हैं। इनमें भृगु अप्, वायु और सोमभेद से तीन प्रकार का है। अंगिरा भी अग्नि, यम और आदित्यभेद से तीन प्रकार का है। सूर्यप्रकाश को रोकनेवाला तीसरा प्राण भृगु और अंगिरा के समान तीन प्रकार का नहीं है अतएव इसको "न त्रिः" इस व्युत्पत्ति से अत्रि कहा जाता है। इसका विवेचन परम पूज्य श्री मधुसूदन महानुभाव प्रणीत "अत्रिख्याति" में है।

उक्त तीनों में से भृगु और अंगिरा को अथर्वा कहते हैं। ब्रह्मा की पहली सृष्टि यही अथर्वामय परमेष्ठी है अतएव इसको ब्रह्मा का ज्येष्ठपुत्र कहा जाता है। स्वयंभू प्राणमय है। प्राण ही वेद का कारण है। यह वेद सर्वप्रथम अथर्वा में ही प्रतिष्ठित होता है। इसी अभिप्राय से वेदमहर्षि कहते हैं—

ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव
विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता।
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठा
मथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह॥

—मुण्डकोपनिषद् १।१

आधिदैविक ब्रह्मा और आधिभौतिक (ऐतिहासिक) ब्रह्मा का चरित्र समान है, इसी समानता को बतलाने के लिए "प्राह" कहा है। इस अथर्वा का भृगुभाग घन, तरल और विरल इन तीन अवस्थाओं के कारण क्रमशः आपु, वायु और सोम इन तीन स्वरूपों में परिणत हो जाता है। इनमें से सोम सूर्याग्नि में आहुत होता रहता है। इसी अग्नि-सोमात्मक यज्ञ से संसार का निर्माण हो रहा है। इस सोम का ही नाम महान है। स्वयंभू में रहने वाले चिदात्मा अव्यय का प्रतिबिम्ब इसी महान् पर पड़ता है। सर्वत्र रहता हुआ भी सूर्य जैसे बिना पानी के प्रतिबिम्बित नहीं होता, वैसे ही सर्वत्र व्यापक चित् का बिना महान् के प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता। महान् सोम ही चित् की योनि है, इसी में अव्यय पुरुष गर्भ धारण करते हैं। (गीता-१४। ३-४) क्योंकि यह महान् सोम अप्, वायु और सोममय होने से प्रतिबिम्ब ग्रहणकर्त्ता है अतएव संसार में जीव आप्य,

वायव्य सौम्य भेद से कुल तीन ही प्रकार के होते हैं। ये तीनो अव्ययाक्षरयुक्त मन-प्राण-वाङ्मय क्षर प्रजापति के अंश हैं अतएव सब जीव मन-प्राण-वाङ्मय हैं।

मनोता विभाग के अनुसार पृथिवी वाङ्मयी है, अन्तरिक्ष प्राणमय है और आदित्य मनोमय है। यद्यपि हैं तीनों में तीनों ही तथापि प्रधानता के कारण तीनों वाक्, प्राण और मन नामों से कहे जाते हैं। वाक्-अग्नि से ऋग्वेद, वायु प्राण से यजुर्वेद और मन-आदित्य से सामवेद प्रकट होता है। वाक्, प्राण और मनोमय अग्नि, वायु और आदित्य [illegible] — और सामान्[illegible] वेद [illegible] वेद के) [illegible] हैं, [illegible] वान् मनु कहते हैं—

अग्निवायुरविभ्यस्तु [illegible] ।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थ ऋग्यजु [illegible] ।

मन-प्राण-वाक् कहो, अग्नि-वायु-[illegible] कहो या ऋग्-यजु-साम [illegible] है। अतएव यज्ञ[illegible] प्रजापति [illegible] मन-प्राण-वाङ्मय, वेदमय इत्यादि [illegible] से [illegible] जाता है।

मनुष्यों के प्रति वेद का उपदेश

श्री श्यामबिहारीलाल जी वानप्रस्थी

आयुर्यज्ञेन कल्पताम् प्राणो यज्ञेन कल्पताम्
चक्षुर्यज्ञेन कल्पताम् श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताम्
पृष्ठं यज्ञेन कल्पताम् यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्।
प्रजापतेः प्रजाअभूम स्वर्देवा अगन्मामृताऽअभूम।
॥ यजु० अ० ९ म० २१ ॥

पदार्थ :—हे मनुष्यो! तुम्हारी (आयुः) अवस्था (यज्ञेन) ईश्वर की आज्ञा पालन से निरन्तर (कल्पताम्) समर्थ होवे, (प्राणः) जीवन का हेतु बलकारी प्राण (यज्ञेन) धर्मयुक्त विद्याभ्यास से (कल्पताम्) समर्थ होवे, (चक्षुः) नेत्र (यज्ञेन) शिष्टाचार से युक्त प्रत्यक्ष के विषय से (कल्पताम्) समर्थ हो, (श्रोत्रम्) कान (यज्ञेन) वेदाभ्यास से (कल्पताम्) समर्थ हो, और (पृष्ठम्) पूछना (यज्ञेन) सवाद से (कल्पताम्) समर्थ हो, (यज्ञः) देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान (यज्ञेन) ब्रह्मचर्यादि के आचरण से (कल्पताम्) समर्थ हो, जैसे हम लोग (प्रजापतेः) सब के पालने हारे ईश्वर के समान धर्मात्मा राजा के (प्रजाः) पालने योग्य सन्तानों के सदृश (अभूम) होवें, तथा (देवाः) विद्वान हुए (अमृताः) जीवन मरण से रहित (अभूम) हों (स्वः) मोक्ष सुख को (अगन्म) [illegible] प्राप्त होवे ऐसा तुम सब [illegible] करना चाहिए।

मंत्र की भावना

इस पवित्र वेदमंत्र में दो भाग हैं। पहिले भाग में प्रभु मनुष्यों को सीधा [illegible] उपदेश दे रहे हैं। पहिली शिक्षा [illegible] कि हे मनुष्यो! तुम्हारी (आयुः, यज्ञेन कल्पताम्) [illegible] मेरी आज्ञा पालन में निरन्तर [illegible]। [illegible] उपदेश प्रभु का [illegible] है। प्रभु ने चारों वेदों में जो [illegible] किया है यदि [illegible] के साथ [illegible] करे तो कितना [illegible] है। [illegible] कल्पनातीत है।

मैं तो [illegible] कि निरन्तर ईश्वर की आज्ञा पालन [illegible] अर्थात वर्तमान जीवन में [illegible] सरलता से हो सकता है। [illegible] परित्याग और [illegible] विषय है। (प्राणः, यज्ञेन, कल्पताम्) [illegible] धर्मयुक्त विद्याभ्यास से समर्थ हो। [illegible]

चर्य्य पूर्वक विद्या का सम्पूर्ण अङ्गों के साथ अध्ययन आचार्य्य की देख रेख में किया जाता है और संयम के साथ इन्द्रिय निग्रह करते हुए जीवन बिताया जाता है तो प्राणशक्ति बलवान होकर शरीर के अन्दर विषमता नहीं होने देती। उसके शक्तिशाली होने से मनुष्य को रोग नहीं सतावे। प्राण ही मानव देह में सब चेष्टाओं के आधार हैं। प्राणायाम से उनकी शक्ति बढ़ती है। तब शरीर की सब क्रियायें यथावत ठीक ठीक होती हैं। ब्रह्मचर्य्य के अपालन से प्राण जब दुर्बल होवे हैं तो शरीर तेजहीन हो जाता है और रोगों का घर बन जाता है। प्रभु का आदेश वेदमंत्र के इस वाक्य से यह है कि विद्या के ठीक सेवन से प्राणों को बलवान बनाओ, (चक्षुः, यज्ञेन, कल्पताम्) सदैव नेत्रों से शिष्टाचार की दृष्टि से ही देखें। हमारा दर्शन विषय पवित्र भावना से युक्त हो। कभी कुदृष्टि, अपवित्र भावना से किसी वस्तु को अपने दृश्य का विषय न बनावें। 'मातृवत् परदारेषु' को अपने चक्षु के व्यवहार से चरितार्थ करें तभी हम सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न प्रजातंत्र गणराज्य के उचित नागरिक बनेंगे। (श्रोत्रम् यज्ञेन कल्पताम्) हमारे कर्णों में सदैव वेदध्वनि, सत्पुरुषों का उपदेश आता रहे। जब सुनें, शिष्ट शब्द सुनें। कुशब्द, अपशब्द हमारे कानों में न पड़ें। कोई ऐसी वार्त्ता हम न सुनें जो हमारा अनिष्ट करे, हमारे जीवन को बिगाड़े। (पृष्ठम यज्ञेन कल्पताम्) अपने ज्ञान को बातचीत के द्वारा बढ़ावे। विद्वानों से प्रश्न करके अपनी शङ्काओं का निवारण करें।

(यज्ञः यज्ञेन कल्पताम्) देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान ब्रह्मचर्य्य के आचरण से उत्तरोत्तर बढ़ाया जाय। यहाँ तक इस मंत्र का पहिला भाग है। दूसरे भाग में योगी जन मनुष्यों को समझा रहे हैं कि जिस प्रकार मंत्र के पहिले भाग में वर्णित स्वर्ण शिक्षाओं को क्रियान्वित करके हम विद्वान होकर जन्म मरण से रहित हुए मोक्ष सुख आनन्द को भोगें वैसे ऐ मनुष्यो! तुम भी प्रभु के आदेश पर आचरण करके सब बन्धनों से छूटकर परम शान्ति प्राप्त करो। यही सच्ची स्वतंत्रता का ध्येय और अन्तिम लक्ष्य है। प्रभु करें हमारे नव स्वतंत्र देशवासी इस ओर प्रगति करें और मोक्षसुख पावें।

आवश्यक सूचना

१—कल्पवृक्ष सम्बन्धी पत्र-व्यवहार में, अगले वर्ष का मूल्य भेजते समय मनीआर्डर कूपन में, तथा पता बदलने के लिए अपने पत्र में अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखें।

२—किसी मास का अंक न मिलने पर, अगले मास में हमें लिखें। तीन चार मास या साल भर बाद लिखने पर कोई ध्यान न दिया जायगा। अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखें।

३—पत्र-व्यवहार में, जवाबी टिकट या कार्ड अवश्य भेजें।

४—ग्राहक नम्बर न लिखनेवालों की चिट्ठियाँ तथा मनीआर्डर आदि पर कोई कार्य न किया जायगा। इसमें हमारा बहुत समय व्यर्थ जाता है।

५—प्रतिमास प्रतिव्यक्ति का पता अच्छी तरह दुबारा जाँच कर हमारे यहाँ से कल्पवृक्ष भेजा जाता है। डाक की अव्यवस्था से किसी को न मिले तो उसकी शिकायत पोस्ट आफिस से करना चाहिए। हम पर कोई जिम्मेदारी नहीं।

—व्यवस्थापक कल्पवृक्ष कार्यालय, उज्जैन नं० १ (म० भा०)

अलख ज्योति

श्री ज्वालाप्रसाद जी खरे

परमात्मा अनंत शक्तियों का केन्द्र है, इसी से वह सर्वशक्तिमान् कहलाता है। उन अनंत अदृश्य शक्तियों में प्रत्यक्ष शक्तियाँ अर्थात् ज्ञान (प्रकाश) विज्ञान (प्रकाश का कारण) सत्य, चेतनता, शब्द, प्रेम और आनन्द परमात्मा या आत्मा में सर्वकाल रहती हैं। जहाँ यह सब वर्तमान हैं समझ लो कि भगवान् वहीं पर है। जिस प्रकार ताप और प्रकाश स्वयं सूर्य नहीं हैं, परन्तु वे सूर्य के ही हैं और सूर्य से कभी पृथक् भी नहीं हो सकते। अर्थात् गुणी से गुण कभी भी पृथक् नहीं। इसी प्रकार शब्द, प्रेम, आनन्द, चेतनता आदि उपरोक्त शक्तियाँ परमात्मा नहीं है, परन्तु वे परमात्मा से कभी पृथक् भी नहीं।

बस इसी नित्यानन्द पद की प्राप्ति के लिए जिसे मोक्ष कहते है कुल साधनाओं और उपासनाओं का आविष्कार महात्माओं, ऋषियों, मुनियों ने किया है।

चेतनता (अमरता) अर्थात जीवन, प्रेम और आनन्द को जो आत्मा का खास स्वरूप है, प्रत्येक प्राणी चाहते हैं। इसी से ज्ञात होता है कि प्राणधारियों में ज्ञान अर्थात् प्रकाश, शब्द अर्थात् इच्छा (मन) हैं, जो आत्मा या परमात्मा की मौजूदगी की पक्की और असन्दिग्ध साक्षी है।

अन्य जीवधारी भोगयोनि (भोगज्ञान) हैं। उनमें मनुष्य योनि कर्मयोनि है जो उपरोक्त नित्यानन्द प्राप्ति का मुख्य द्वार है।

योग, जप, तप, नियम, संयम, निमाज, यज्ञ, हवन इत्यादि सब शुभ कर्म इसी परम तत्व की प्राप्ति के साधन हैं। अन्य साधनों की अपेक्षा योग विज्ञान मन के एकाग्र करने का अधिक जोर देता है, परन्तु मन की एकाग्रता में बड़े बड़े विघ्न हैं, जो पतन कर देने में पूरे सहायक हैं।

योग विज्ञान मन की एकाग्रता को [illegible] जोर देता है कि मन के एकाग्र करने से [illegible] चेतना (आत्मा) नित्यानन्द, [illegible] जाग्रत अर्थात् समाधि [illegible] करे। परन्तु वहाँ तक पहुँचने [illegible] मन तैयार नहीं होता [illegible] एक तैयार भी हो तो मन को [illegible] में बीच में एक गन्दा [illegible] साधक को सुला देती हैं. यदि साधक [illegible] सोचे तो निराकार भगवान् की शरण में [illegible] देता है। यदि साधक का [illegible] स्वाद पर मन लगा देता. यदि [illegible] सदैव को या कदाचित [illegible] निराकार भगवान् की शरण में [illegible] है। निराकार भगवान् की शरण का [illegible] और स्पष्ट अर्थ वेदोक्ति [illegible], जिसे गीता भी सिद्ध करती है ' गीता ८-१८

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभ[illegible] ।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते [illegible] ॥

गांधी टीका—ब्रह्मा के दिन के [illegible] सब अव्यक्त से व्यक्त होते हैं। और रात [illegible] ही उनका प्रलय हो जाता है।

कारण रूप जो अव्यक्त (निराकार) [illegible] है उसी से चराचर प्राणी [illegible] आगम में उत्पन्न होते हैं और रात्रि [illegible] में उसी महा अव्यक्त में लीन हो जाते हैं।

ब्रह्मा के [illegible] हैं। [illegible] कर्म अपने आप ([illegible]) होते [illegible] वह भी ब्रह्मा है और [illegible] ([illegible]) अर्थात् प्राणधारी [illegible] ([illegible]) अहंकार युक्त कर्म करते या होते [illegible] वह भी ब्रह्मा है।

जिस समय [illegible] में प्रवेश होता है, [illegible]

जो मन के संकल्प द्वारा जाग्रत में होते रहते हैं, वे सब संकल्प (शब्द) विशुद्ध चक्र अर्थात् कण्ठ कूप में शरीराकाश निराकार अव्यक्त में लीन हो जाते है। अर्ध जागरण और अर्ध सुषुप्ति में जीव के होने से वही सकल्पी शब्द प्रत्यक्ष की तरह दिखाई देने लगते हैं जिसे स्वप्न कहते हैं।

जब प्राणी सुषुप्ति से जाग्रत में वापिस आता है तब वे ही संकल्पी शब्द कर्म करना फिर शुरू करा देते हैं, जिसका आशय यही है कि जीव की जाग्रत अवस्था कर्म ब्रह्मा के दिन का आगम है और सुषुप्ति अवस्था ब्रह्मा की रात्रि है।

ठीक इसी प्रकार जब प्राणी मृत्यु की सुषुप्ति को प्राप्त होता है तब जिंदगी के सारे कर्म अर्थात् संकल्पी शब्द (भविष्य बनावटी संकल्प) समष्टि ब्रह्मा की रात्रि में अर्थात् निराकार अव्यक्त विस्तीर्ण शून्य में लीन हो जाते है, फिर वही शून्य संकल्पी कर्म जाग्रत होने को संकल्प अनुसार किसी पिण्ड में उदय हो जाते है जो ब्रह्मा अर्थात् कर्म के दिन का आगम कहलाता है। यही ब्रह्मा के दिन और रात्रि का रहस्य है।

चूँकि गीता ने ब्रह्मा (विधाता-कर्म) के दिन व रात्रि को सहस्र युगों का बताया है। जिसका यही आशय है कि जीव सकल्पी शब्द या कर्म जब सुषुप्ति में लीन होते हैं और फिर जब उदय होने को होते हैं, उस दरम्यान के समय को या न्याय को जो जीव भूला रहता है दिव्य सहस्र युग कहते हैं, क्योंकि काल काल्पनिक है अपने अपने सुभीते के लिहाज से जीवों ने पृथक् पृथक् समयों की कल्पना की है। जैसे पृथ्वी पर सूर्य की चाल से २४ घण्टे की कल्पना की है। स्वयं सूर्य की समय की दूसरी, इसी प्रकार चन्द्रमा, बृहस्पति शनि इत्यादि ग्रहो (दुनिया) का कोई दूसरा काल्पनिक समय है। यदि किसी ग्रह की चाल क्षणिक है तो पृथ्वी पर उसी की चाल सालों की हो जाती है। बस इसी थोड़े से उदाहरण से समय का रहस्य समझना चाहिए।

इसलिए जहाँ पर स्वयं प्रकाश है वहाँ पर काल की कोई मर्यादा नहीं। वहाँ पर केवल इच्छा या शब्द ही समय कायम करते हैं।

सुषुप्ति अवस्था में प्रकाश अर्थात् ज्ञान स्पर्श होते ही जाग्रत अवस्था हो जाती है, इससे अनुमान होता है कि सुषुप्ति और जाग्रत के संकल्पी समय के नाम को दिव्य सहस्र युग नाम से कहा है।

सुषुप्ति अवस्था या निराकार में सुख दुःख कुछ नहीं है। केवल जाग्रत अवस्था में कर्तापन के अभिमान के संकल्पों और कर्मों में अपने को उलझाना या उलझना ही सुख दुःख का भान कराता है।

यदि विज्ञान दृष्टि से समझ लिया जावे कि सर्व प्रकार के कर्म व्यष्टि और समष्टि के जो अपने आप (त्रिगुणात्मक प्रकृति द्वारा) हो रहे हैं, उसमें यदि हम अहंकारवश भाग लेवे हैं तो भोक्ता ठहराये जाते हैं। भुगतने में सुख दुःख महसूस होना अनिवार्य है।

इसलिए ऐसी समाधि कोई मानी नहीं रखती है। मैंने स्वयं एक समाधि वाले महात्मा से पूछा कि तुमको समाधि समय कैसा लगता है और क्या दिखाई देता है तो उन्होंने यह बताया कि हमको पता नहीं कि हम कहाँ हैं किसका ध्यान करते हैं अर्थात् कोई भान नहीं रहता। जिसका अर्थ यही होता है कि बेहोश रहे।

जब कभी दयासिंधु की या गुरुदेव की दया हो जाय तो कदाचित सुषुप्ति का रास्ता तय करके तुरीय में निर्विघ्न दाखिल हो जावे तो वहाँ पर ऋद्धि सिद्धि बाधक होती हैं। यदि साधक ऋद्धियों सिद्धियों के चक्कर में न पड़े तो फिर जीव ब्रह्मावस्था में पहुँचता है। वहाँ पर निजस्वरूप, नित्यानन्द का भान होता है, यही अवस्था नित्य जागरण की है। इसलिए

योगानुसार मन के एकाग्र करने में काफी बाधा है।

बहुत से ऐसे भी महात्मा हैं जो ज्ञान समाधि अर्थात् जाग्रत समाधि लेते हैं अर्थात् प्रत्येक वस्तु जड़ चेतन सबमें प्रभु को जाग्रत में ही ज्ञान चक्षुओं से देखते रहते हैं। इसमें ज्ञानी की उन्मनी अवस्था हो जाती है। यद्यपि वे पहुँचे हुए महात्मा हो जाते हैं तथापि संसार उन्हें पागल कहने लगता है।

इसलिए सब साधनों पर नज़र डालते हुए और महात्माओं के सत्संग द्वारा और गुरुदेव की कृपा से मैंने यह अनुभव और निश्चय किया है कि सब शुभाशुभ क्रियाओं और साधनों के मूल में पहिले शब्द जाग्रत होते हैं। अर्थात् प्रत्येक शुभाशुभ कार्य करने के पहिले मन करने का संकल्प (विचार) करता है। विचार या संकल्प का मूल साधन शब्द है। कोई भी कार्य हम उस वक्त तक नहीं कर सकते जब तक कि उस कार्य के शब्दों को मन में मूर्तिमान न कर लें। जिसका सरल अर्थ यह कि पहले शब्द बाद में क्रिया। बिना शब्दों के आधार लिये मन कुछ कर ही नहीं सकता।

शब्द दो प्रकार के होना समझ में आते हैं जिसे सर्वसाधारण समझ सकते और अनुभव कर सकते हैं। अर्थात् एक सूक्ष्म दूसरे स्थूल जो शब्द सोते जागते मन ही मन (विचारमयी) होते रहते हैं वे सूक्ष्म शब्द हैं। वही मन के विचार हम मुँह से जोर से कहने लगें तो वे ही शब्द स्थूल हो जावेंगे।

आत्मा की बारीकी पकड़ का साधन शब्द ही मूलतत्व जँचता है। इसी को सब प्रकार के यत्न से गहरा गोता लगाकर समझना चाहिए। इसी को अच्छी तरह ग्रहण करने से आत्म साक्षात्कार हो सकता है।

वेद, उपनिषद्, पुराण, कुरान, बाइबिल इन सबमें केवल शब्दों का ही चमत्कार है। उनमें लेखकों ने अपने विचार अनुभव के शब्द प्रकट किये हैं। जिसका सार [illegible] कि प्रत्येक वस्तु प्रत्येक [illegible] के साधन [illegible] द्वारा अपने काबू में लाये जा सकते हैं।

हम देखते हैं कि मन [illegible] और ऊटपटाँग भटकाने वाला, [illegible] पर [illegible] वाला, गड्ढे में गिराने वाला है। [illegible] मन और प्राण भी शब्दों द्वारा काबू में [illegible] जा सकते हैं। जिसकी साक्षी [illegible] वेद है। मन और प्राण को अपने [illegible] रखनेवाले शब्द यह हैं—

यजु० ३४-१

यज्जाग्रतो दूर मुदैति दैव
तदु सुप्तस्य तथै वैति
दूरङ्ग म ज्योतिषां ज्योतिरेकं।
तन्मे मन: शिव संकल्प मस्तु।

अर्थ—जो दिव्य मन जाग्रत अवस्था में दूर निकल जाता है, उसी प्रकार सोने की दशा में दूर से दूर जानेवाला ज्योतियों की ज्योति (इन्द्रियों का प्रकाशक) वह मेरा मन शुभ संकल्पों वाला हो।

यजु० ३४-३

यत्प्रज्ञान मुत चेतो धृतिश्च
यज्ज्योतिरन्तर मृतं प्रजासु।
यस्मान्नऋते किञ्चन कर्म क्रियते।
तन्मे मनः शिव संकल्प मस्तु।

जो (मन) नये नये अनुभव कराता है [illegible] पिछले जाने हुए का स्मरण कराता है [illegible] धैर्य धारण कराता है जो [illegible] (इन्द्रियों) के अन्दर एक अमर ज्योति है [illegible] बिना कोई कर्म नहीं किया जा सकता, वह मेरा मन शुभ संकल्पों वाला हो।

इसी तरह प्राण को अथर्व २।१५ [illegible] कि :—

यथा द्यौश्च पृथ्वीचन बिभीतो न रिष्यत।
एवा मे प्राण मा बिभे [illegible]।

जिस प्रकार द्यौ और पृथ्वी न डरते हैं और

त क्षीण होते हैं। हे मेरे प्राण उसी प्रकार तुम भी मत डरो, मत क्षीण हो।

इसी प्रकार गायत्री मंत्र के शब्दों द्वारा प्रकृति को प्रेरणा की गई है कि तू मेरे अनुकूल चल जो मैं तुझे संकेत कर रहा हूँ। गायत्री का अर्थ—जो पूरे विश्व का रचयिता और संचालक हो, उस प्रकाश सागर महातेज का हम ध्यान करते हैं। जो हमारी बुद्धि को शुभ भावनाओं में प्रेरणा करे।

इस विज्ञान से बुद्धि इसी निश्चय पर पहुँचती है कि शब्दो का प्रभाव सब पर पड़ता और पड़ सकता है। अर्थात् शब्दो द्वारा जड़ चेतन सब काबू में लाये जा सकते हैं।

शब्द क्या है? एक अनामी अरूप प्रत्यक्ष काम करने वाली चेतन की प्रथम महान शक्ति है। प्रत्येक उत्पत्ति के पहिले यही होते हैं। दुनिया और दुनिया की सारी रचना शब्दों से हुई है। प्रत्येक जड़ चेतन को हिला देने वाला शब्द ही है। बाइबिल का वचन है कि:—

In the begining was the word and word was with God and the word was God.

अर्थात् शक्तिमान से शक्ति पृथक् नहीं। शक्ति और शक्तिमान् पृथक् नाम होते हुए वास्तव में एक है। यानी शब्द परमात्मा से पृथक् नहीं। शब्द के महत्व को एक अनुभवी महात्मा गोस्वामी तुलसीदास लिखते है कि—

राम एक तापस तिय तारी।
नाम कोटि खल कुमति सुधारी।

अर्थात् राम शरीरधारी की अपेक्षा राम शब्द में एक करोड़ गुना ताक्त है।

मंत्रों में शब्द ही होते हैं जो मोहन वशीकरण का काम कर दिखाते हैं। क्रोध में शब्द ही होते हैं जो सारे शरीर को उथल पुथल कर डालते हैं। शब्दों से साँप, बिच्छू के जहर हटाये जा सकते हैं, भूत-प्रेत भगाये जा सकते हैं। दूर के गये हुए भी बुलाये जा सकते हैं, मुर्दे जिलाये जा सकते हैं। सारी करामात शब्दों में भरी है। शब्द चाहे तो रुला दे चाहे खुशी कर दे और करा दे।

मृत्यु से विजय कराने वाला ऋग्वेद में एक मंत्र है जिसे महा मृत्युञ्जय मंत्र कहते हैं। कम से कम वेद वाणी अर्थात् आकाश से उत्पन्न हुए ईश वाक्य को तो प्रत्येक महाशय मानेंगे।

उपरोक्त प्रमाणों से असंशय सिद्ध होता है कि असभव को संभव करा देने वाला यदि कोई है तो शब्द ही है जो सबके प्रत्यक्ष है और जादू के समान काम कर रहा है।

इस प्रकार शब्द शक्ति (जो परमात्मा का साकार स्वरूप है) का महत्व और प्रभाव अन्य साधनों की अपेक्षा, मन्त्र जप ग्रहस्थ साधक के लिए अत्यंत उपयोगी है।

भ्रम निवारण

कल्पवृक्ष के विगत कुछ अंकों में योग साधन और यौगिक चिकित्सा के लिए स्वामी नारायण प्रकाशजी हठयोगी, के विषय मे विश्वामित्र वर्मा, आश्रम गंगाघाट, उज्जैन द्वारा पत्र-व्यवहार करने की जो सूचनाएं छपी हैं उनसे कतिपय पाठकों को भ्रम हो गया है कि विश्वामित्र वर्मा का कोई स्वतन्त्र आश्रम है। परन्तु वह स्व० सन्त नागरजी द्वारा संस्थापित साधनालय ही है जिसे आश्रम कहा गया है, अतिरिक्त अन्य कोई आश्रम नहीं है।

—विश्वामित्र वर्मा

स्वप्न सम्बन्धी प्रश्नोत्तर

महाराजा प्रनिपालसिंह जी

(कल्पवृक्ष सितम्बर १९५३ मे प्रकाशित प्रश्नों के उत्तर)

१- स्वप्न कौन देखता है, कौन सोता है, कौन जागता है ?

उत्तर—अन्तःकरण सोता जागता और देखता है। आत्मा (ज्ञान) न सोता है, न सोकर जागता है और न देखता है। वह केवल प्रकाश या शक्तिरूप है।

२—अगर सोने, स्वप्न देखने और जागने वाला एक ही व्यक्ति है तब स्वप्न देखते समय वह किस कारण अपने आपको नहीं जान पाता कि मैं वही हूँ जो इस स्वप्न के पूर्व सोया था, जागा हुआ था और अब स्वप्न देख रहा हूँ। और जागने पर उसे किस कारण स्मरण हो आता है कि मैं स्वप्न देख रहा था ?

उत्तर—मनुष्य सोने से पूर्व जो था उसे स्वप्नावस्था में इसलिए नहीं जान पाता कि स्वप्न जाग्रत अवस्था का संकल्प है। स्वप्न शरीर जो स्वप्नावस्था में चलता फिरता है अपने मूल स्व को न जानने के कारण जाग्रत अवस्था को नहीं जान पाता। और जागने पर उसे स्वप्न की घटनाएँ इसलिए याद रहती हैं कि वह अपने खुद जाग्रत अवस्था का सङ्कल्प था। लेखक को एक बार स्वप्नान्तर स्वप्न हुआ उस स्वप्न में सर्प ने काट खाया और उस घबराहट में जब जागा तो प्रथम स्वप्न में ही जागा और सान्त्वना हुई कि मैं स्वप्न देख रहा था। स्वप्न में ही स्वप्न का ज्ञान हुआ। और जागने पर पुनः दोनों स्वप्नों के स्मरण से ज्ञान हुआ कि मरण के बाद स्थूल शरीर व स्थूल संसार की बातें स्वप्नवत् याद रहेंगी फिर जन्म होने पर अपने मूल सङ्कल्प की घटनाएँ याद न रहेंगी।

३—यदि तीनों अवस्थाओं का व्यक्तित्व अलग अलग है तो जागने वाले का स्वप्न की दशा में क्या हाल होता है, और स्वप्न देखने वाले का जाग्रत दशा में क्या हो जाता है ?

उत्तर—इन तीनों अवस्थाओं का कोई व्यक्तित्व नहीं है। यह [illegible] की विविध शक्ति के परिणाम हैं जो अवस्थानुसार [illegible] अवस्थारूप ही हो जाता है।

४—लोग विश्वास करते हैं कि स्वप्न देखने वाले के लिए स्वप्नलोक सत्य है और जाग्रत लोक से भिन्न और स्वतन्त्र है। यदि ऐसा है तो स्वप्न की दशा में ही स्वप्न देखने वाले के लिए स्वप्नलोक और जाग्रत की समानता और भिन्नता कैसे मालूम हो ?

उत्तर—ये कोई भी लोक सत्य नहीं हैं। शरीर स्थूल, सूक्ष्म या मनोमय कोई भी हो जैसी उसकी इन्द्रियाँ और शक्तियों के "[illegible]" होंगे वैसे ही संसार बनेंगे। मान लीजिए, सृष्टि के आरम्भ से ही मनुष्य के कान न होते तब कोई न कह सकता कि शब्द क्या होता है, अर्थात् वे शब्द को जानते ही न होते, इस तरह उसके लिए शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध में से पञ्चमांश संसार न होता. मनुष्य जाग्रत स्वप्न और मरण के बाद भी किसी भी दशा में चार भाग ही संसार देखता और जानता। और यदि कोई दूसरी भी ज्ञानेन्द्रिय न होती तो उसके लिए संसार तीन हिस्सा ही होता। इस पर हम कह सकते हैं कि इन पाँच इन्द्रियों के अतिरिक्त कोई छठवीं इन्द्रिय भी होती तो यह संसार छठवीं तरह भी महसूस होता। इससे यह सिद्ध होता है कि इन्द्रियों के कारण ही संसारों का अस्तित्व है, स्वतन्त्र नहीं है। इन अवस्थाओं की समानता और भिन्नता तब मालूम होती है जब मनुष्य अवस्थातीत होता है, अर्थात् तुरीया अवस्था प्राप्त करता है।

तुरीया चौथी अवस्था को कहते हैं, वह अभ्यास से ही प्राप्त होती है। दुःख की बात है कि मनुष्य अन्तःकरण तक ही पहुँचता है, उससे आगे अपने भीतर नहीं घुस पाता। अभ्यासी योगी ही स्वप्न जाग्रत की भिन्नता व साम्यता जानता है। यदि स्वप्न संसार सही होता और सुप्त पुरुष स्वप्न में कोई अपराध करता और स्वप्न में उसे जेल हो जाती, ६ मास की सजा हो जाती तो उसे ६ महीने तक चारपाई पर सोते रहना और स्वप्न देखते रहना चाहिए? इसी तरह जाग्रत संसार भी सत्य नहीं है क्योंकि यहाँ भी लोग जेल जाकर सजा पूरी भुगतने के पहले ही, जेल में ही मर जाते हैं, लौट कर नहीं आते।

५—क्या स्वप्न और जाग्रत लोक के अतिरिक्त कोई अन्य सूक्ष्म, आकाशीय, मानसिक अथवा आध्यात्मिक लोक भी हैं जहाँ मरने के बाद मनुष्य जाते हैं, और क्या वे लोक सनातन और अमर हैं?

उत्तर—स्वप्न और जाग्रत लोक ही नहीं, ब्रह्मलोक तक सब असत्य है, जो अज्ञान या भ्रम से दिखते हैं। एक आत्मलोक ही है जो सनातन और अमर है, सत्य है।

६—इन लोकों का समाचार कैसे जाना जाय? इन लोकों में होने वाले लोगों का परस्पर में समाचार आदान प्रदान करने, परस्पर को जानने पहचानने का साधन क्या है?

उत्तर—यह आत्मज्ञान ही त्रिकालातीत सर्वव्यापक सर्वज्ञ और सर्वशक्ति स्वरूप है। जिस तरह हम बहिर्वृत्ति हुए हैं उसी तरह उलट कर हम वहाँ पहुँचें कि जहाँ से हम शुरू होते हैं, अर्थात् अपना केन्द्र या उद्‌गम स्थान पा लें तो इन लोकों और उन लोगों से सम्बन्ध स्थापित हो जाय, क्योंकि सब प्राणी उसी केन्द्र या उद्‌गम से शुरू हुए हैं और सबने अपने अपने शरीर और अवस्थापरत्व संसार बनाये हैं। सबका केन्द्र "अहम्" शब्द है। "हम" शब्द का ज्ञान सबको है अतः ज्ञान ही हम हैं।

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्त्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन् पुरुषः परः॥
(गीता)

अर्थात् हम यह जानते हैं कि हम यह कह रहे हैं, हम जानते हैं कि हम हैं। उपद्रष्टा का अर्थ है "गवाह"। "अनुमन्ता" अर्थात् हम अपने आपको सलाह देते हैं कि ऐसा करो, ऐसा न करो, अर्थात् हम अपने आपके सलाहकार हैं, हम ही अपने भरण पोषण करनेवाले हैं, हम ही भोगनेवाले हैं। जिसे ईश्वरों का ईश्वर, महेश्वर कहते हैं, परमात्मा कहते हैं वह परपुरुष इसी देह में है।

७—लोग कहते हैं कि जाग्रत और स्वप्न, दोनों लोक असत्य हैं, मिथ्या हैं, असार हैं। जाग्रत संसार का मिथ्यात्व हमें जाग्रत अवस्था में उच्च बुद्धि होने पर ही भासता है और जागने पर ही स्वप्न भी मिथ्या मालूम होता है। प्रश्न यह है कि जिस प्रकार जाग्रत दशा में उच्च बुद्धि—ज्ञान की दृष्टि से देखने पर जाग्रत संसार मिथ्या और असार मालूम होता है उसी प्रकार स्वप्नावस्था में स्वप्नलोक की असारता के लिए ज्ञानदृष्टि क्यों नहीं होती?

उत्तर—अवस्थातीत हो जाने पर अर्थात् तुरीया प्राप्त करने पर स्वप्न होता ही नहीं। स्वप्न के मिथ्यात्व का सवाल ही नहीं उठता। यह चौथी अवस्था तो जाग्रत का भी नाश कर देती है। स्वप्न तो जाग्रत का सङ्कल्प है। जब मूल ही नहीं, सङ्कल्प ही नहीं, तो पेड़ कहाँ से होगा?

८—स्वप्न देखते समय क्या यह सम्भव है कि हमेशा जब स्वप्न हो तब हमें यह ज्ञान बना रहे कि हम स्वप्न देख रहे हैं? कौन सा साधन है और किस प्रकार कब्र किया जाय?

उत्तर—ऊपर कहा जा चुका है कि स्वप्न जाग्रत अवस्था का सङ्कल्प है। स्वप्न शरीर

अपने कारण को नहीं जान पाता। जान जाय तो स्वप्न और स्वप्न शरीर दोनों ही ख़त्म हो जायँ।

९—स्वप्न के समय जब इतना ज्ञान हो जायगा कि मैं स्वप्न देख रहा हूँ और जो कुछ देख या कर रहा हूँ वह स्वप्न मात्र है, असार और मिथ्या है, तो क्या स्वप्न ख़त्म हो जायगा, या होता रहेगा?

उत्तर—ख़त्म हो जायगा।

१०—स्वप्न कभी आते हैं, कभी नहीं, और अपनी इच्छानुसार नहीं आते। कौन से साधन से सम्भव है कि स्वप्न अपनी इच्छानुसार आवें और बन्द हो जायँ? वह साधन कब और कैसे किया जाय?

उत्तर—जब तक पिछले, वर्त्तमान और शेखचिल्ली की भविष्य की दुनिया, जो सब संस्कार विचार अपने भीतर घुसे हुए हैं, निकल न जायँ तब तक स्वप्न पर अपना अधिकार नहीं हो सकता।

यथा निरन्धिनो वह्नि स्वयमेवो पशाम्यति।
तथा वृत्तिक्षयात् चित्तं स्वयोनावु पशाम्यति॥

जैसे ईंधनरहित अग्नि अपने आप शान्त हो जाती है, उसी तरह वृत्तियों से रहित चित्त भी शान्त हो जाता है।

यदा ते मोह कलिलं बुद्धिर्व्यति तरिष्यति।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च॥

जब तेरी बुद्धि इस गन्दे आवरण से पार हो जायगी तब जो कुछ सुना है और सुनने को है वह सब भूल जायगा।

यतो यतो निश्चरति मनःश्चंचलम स्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यै तदात्मन्येव वशं नयेत्॥

अर्थात् जहाँ जहाँ यह मन जाय वहाँ वहाँ से रोककर अपने आपके वशीभूत करे। यही इसका साधन है। जब मन वश में हो जायगा तब चाहे जब तक स्वप्न देखा कीजिए, या न देखा कीजिए।

११—बिना स्वप्न की नींद आवे, स्वप्न कभी न हो, यह [illegible] और किस साधन से सम्भव है?

उत्तर—पूर्वोक्त साधन से।

१२—मर जाने के बाद मनुष्य [illegible] की क्या दशा होती है? [illegible] मर जाने पर भी उसमें कोई अहम् अनिष्ट [illegible] रहता है और क्या वह जानता है कि मैं संसार से मर चुका हूँ?

उत्तर—हाँ, जानता है कि [illegible] हूँ, परन्तु यह उसकी मरण समय की दशा पर निर्भर है। यदि मनुष्य मरते समय बेहोश होगा तो वह मरने पर बेहोश ही रहेगा। यदि होश में ही खड्ग से मर गया तो वह होश में रहेगा। युद्ध एक घोर कर्म है, पर इसमें मरने से शुभ गति क्यों होती है? [illegible] कि जोशो खरोश से जल कर घट से [illegible] हो गया इसलिए उसके सूक्ष्म शरीर में वही जोशो खरोश रहेगा। गीता में भी भगवान् ने कहा है :—

यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥

अर्थात् जिन जिन भावों को स्मरण करता हुआ पुरुष मरता है वह उन्हीं उन्हीं भावों को प्राप्त होता है।

१३—जिस प्रकार जाग्रत [illegible] हम अपने आपको तथा संसार को पहचानते हैं और विधाता को [illegible] सब कुछ जानना, विचार करना और [illegible] के विधाता को जानना किस साधन से सम्भव है?

उत्तर—वही [illegible] से संभव है। मनुष्य स्वप्न में [illegible] जानता ही रहता है, और स्वप्न [illegible] जानता है क्योंकि वह [illegible] व्यवहार करता है, परन्तु [illegible] नहीं जानता कि यह [illegible]। स्वप्न से जागने पर स्वप्न संसार और [illegible],

नों मर जाते हैं। इसी तरह मरने पर यह थूल संसार और इसका विधाता—दोनों मर ायँगे। बाहरी विधाता मजहब सम्प्रदाय मत ौर मार्गों की उपज है जैसे खरगोश के सींग थे, न हैं और न होंगे। बाहरी विधाता जसके मन में जैसा आया बना लिया, उसका ोई अस्तित्व नहीं है। किसी का ईश्वर ईसा ा बाप है, किसी का ईश्वर सातवें आसमान ं तख्त ताऊस पर बैठा है जिसे फरिश्ते लिये फिरते हैं, किसी का ईश्वर चार हाथों का है ो क्षीरसागर में साँप के ऊपर सोता है।

स्वप्न, जाग्रत और मरण के बाद शरीर, ंसार और संसारों के बनानेवाले ईश्वर बदलते ाते हैं पर मनुष्य का "है" त्व (आत्मा या ान) ही एक रहता है। बदलनेवाली चीजें असत्य, भ्रम हैं, एकरस रहनेवाला सत्य है—

ना सते विद्यते भावो ना भावो विद्यते सतः।

अर्थात् जो सत् है उसका अभाव नहीं होता, और जिसका अभाव है वह है ही नहीं। इसे तत्वदर्शियों ने जाना है—

ागमात्रायनोऽनित्यानाश्यत्वे नेश्वरादयः
आत्मबोधेन केनापि शास्त्रादेत द्विनिश्चितम्॥

(शिव सहिता)

वह शास्त्र जिसमें आत्मबोध का निरूपण किया है उससे निश्चय है कि जो ईश्वर कहा जाता है वह नित्य भाव से रहित है अर्थात् आत्मबोध हो जाने से ईश्वर मर जाता है। महर्षि कपिल के सांख्य का एक सूत्र है, "ईश्वरासिद्धे" अर्थात् ईश्वर तर्क सिद्ध नहीं है। मनु ने कहा है—'यस्तर्केणानुसन्धन्त स धर्मं वेद नेतर" अर्थात् जो तर्क से सिद्ध नहीं है वह धारणा करने योग्य नहीं है। अतएव जब यह सारा का सारा जाग्रत संसार बाकायदे एक ही तरतीब से बना है तब इस संसार के बनानेवाले ईश्वर कई किस्म के कैसे हो गये? किसी ने हाथ से गढ़ा, किसी ने मन से निराकार निर्विकार बना डाले, जब मनुष्य जंगली और बेवकूफ था उस समय सूर्य चन्द्र नहीं वन पर्वतों को देखकर उसके बनानेवाले की कल्पना कर ली थी, अब उसका दुरुपयोग यों हो रहा है कि धेले की मिठाई चढ़ाकर करोडों की सम्पत्ति माँगते हैं, यह ब्लैक-मारकेटिंग है। इन्हीं मजहबों ने मनुष्यों का पार्टीशन कराया, मनुष्य मनुष्य का दुश्मन हो गया, मनुष्य ने मनुष्य का संहार किया, मजहब, मजहबी ईश्वर और भाग्य ने मनुष्य जाति को अत्यधिक नुकसान पहुँचाया।

१४ जाग्रत अथवा स्वप्नलोक का वह कौन सा अमर और सनातन तत्व है जो हमेशा कायम रहता हो, सब दशाओं में सब लोकों में; और उसे किस साधन से जाना और सिद्ध किया जा सकता है जो सब देशों और सब धर्मों के लोगों तथा मूढ़ और बुद्धिमान, सब श्रेणी के लोगों को मान्य हो सकता है?

उत्तर—

देहो देवालयः प्रोक्तः सजीवः केवलः शिवः।
त्यजेद् ज्ञान निर्मालयं सोऽहं भावेन पूजयेत्॥

अर्थात् यह देह ही देवालय है, यह आत्मा ही ईश्वर (शिव) है। अज्ञानरूपी निर्मालय को त्यागो और "सोऽहं" भाव से उसकी पूजा करो। केवल आत्मतत्व (ज्ञान) ही सनातन और अमर है जो हमेशा सब देशों, सब लोगों, सब धर्मों (तथा कथित), सब मूढ़, बुद्धिमान और सब श्रेणी के लोगों को मान्य हो सकता है जो सबके हृदय में कह रहा है कि "मैं हूँ", इसकी प्राप्ति के साधन सांख्य शास्त्र में बताये हैं। जब से मनुष्यों ने वेदशास्त्र उपनिषदों का अवलोकन करना छोड़ दिया तब से अध्यात्म का लोप हो गया, और मजहबों सम्प्रदायों का प्रोपेगेंडा जोर पकड़ गया लोग पथभ्रष्ट हो गये, नतीजा यह हुआ कि मनुष्य उन्नति ?) करता हुआ वहाँ पहुँचने की कोशिश कर रहा है जहाँ से वह चला था। डारविन साहब की राय में मनुष्य पशु से पैदा हुआ था, अब उन्नति द्वारा वह चीते और शेर के आदर्श तक पहुँच चुका है।

प्रश्नोत्तरी

१—मैं आपके कल्पवृक्ष पत्र का एक प्रेमी पाठक हूँ। आप जिस विचारधारा का प्रचार करते हैं उसका समर्थक भी हूँ। लेकिन कुछ दिनों से ऐसी विकट मानसिक उलझन में फँसा हूँ जिसके सुलझने का कोई पथ नजर नहीं आता। आपका कल्पवृक्ष सदैव इस बात पर जोर देता है कि विचार ही सब कुछ है, बाह्य जगत हमारी मानसिक दशाओं का प्रतिबिम्ब है, हम शरीर के स्वामी हैं, इत्यादि। अब मैं आपके सामने 'लेनिन" के कुछ विचार रखता हूँ जिनके प्रति मुझे शंका है। आप मेरे प्रश्न का सन्तोषप्रद उत्तर देकर मेरा उद्धार करें।

(अ) भौतिक और गोचर ससार, जिसमें हमारा भी समावेश है, एक मात्र सत्य है। हमारी चेतना और हमारे विचार चाहे जितने गोतीत जान पड़ें परन्तु वे वास्तव में एक भौतिक दैहिक इन्द्रिय मस्तिष्क की उपज हैं। पदार्थ मन से उत्पन्न नहीं हुआ वरन् मन ही पदार्थ की सर्वोत्कृष्ट सृष्टि है।

(ब) आदर्शवाद केवल चित्त की वास्तविक सत्ता स्वीकार करता है उसके लिए प्रकृति या भौतिक जगत की सत्ता केवल हमारे चित्त में, इन्द्रिय बोध में, कल्पनाओं और संवेदनाओं में है। इसके प्रतिकूल मार्क्सीय भौतिकवादी दर्शन का कहना है कि प्रकृति या भौतिक ससार की सत्ता एक वैज्ञानिक वास्तविकता है जो हमारे चित्त से बाहर और उससे स्वतन्त्र है।'

(स) विचारों को प्रकृति और पदार्थ से विच्छिन्न करना भारी भूल होगी।

बताइये उपरोक्त विचार कहाँ तक सत्य है और किसको स्वीकार किया जाय, मैं मानसिक द्वन्द्व से परेशान हूँ। मैं नित्य गायत्री का जप करता हूँ, जप से चित्त भी एकाग्र रहा है लेकिन लेनिन के दर्शन ने मन चञ्चल कर दिया है, आनन्द दूर भाग चला है। लेनिन एक महापुरुष था, उसने रूस की राजनीति को बदल दिया, तो क्या वह झूठ बात लिख सकता है?

उत्तर—कल्पवृक्ष की नीति में "हम शरीर के स्वामी हैं," यह हम मानते हैं, किन्तु 'विचार ही सब कुछ है और बाह्य जगत् हमारी मानसिक दशाओं का प्रतिबिम्ब है,' यह कल्पवृक्ष की क्या कोई भी नहीं कहता। ये दोनों बातें गलत हैं, और कल्पवृक्ष की नीति को आप समझे नहीं। यदि कभी ये वाक्य लिखे भी गये हों तो उनका शब्दशः अर्थ नहीं, भावार्थ से तात्पर्य है कि विचार से ही सब कुछ बनता है, और बाह्य जगत् में मानवीय व्यवहार में होने वाली हलचलें हमारी मानसिक दशाओं का प्रतिबिम्ब हैं, न कि पञ्चभौतिक जगत्, पृथ्वी जल वायु आकाश अग्नि आदि। और आप भारतीय दर्शन और सन्त महात्माओं का तुलनात्मक अध्ययन रूस के क्रान्तिकारी लेनिन की राजनीति से कर रहे हैं यह अनुचित है। दर्शन और राजनीति दो भिन्न भिन्न क्षेत्र हैं, जैसे कि रूस और भारत अपनी भौगोलिक परिस्थिति के कारण भिन्न हैं और यही भिन्नता राजनीति की पृष्ठभूमि है। दर्शन तो मूलतत्त्व की व्याख्या है जो सिद्ध है और अपरिवर्तनशील सिद्धान्त है, जब कि राजनीति देश-काल से उत्पन्न व्यवस्था का परिवर्तनशील रूपक है।

लेनिन रूस का महापुरुष था और उसने रूस की राजनीति को बदल दिया, यह बात ठीक है, और उसने जो कुछ किया और किया वह देशकाल के अनुकूल और ठीक था। इसी प्रकार भारत में गांधी ने जो किया और किया उसे भी आप याद रखिये। क्या यह कम परिवर्तन है? विचार कीजिये लेनिन ने रूस में जिस परिस्थिति और समाज को

जो कुछ लिखा और किया, उस स्थान पर गांधी होते; और गांधी के स्थान पर लेनिन होते, तो ये दोनों कुछ और करते ? हम किसी के विचारों या सिद्धान्तों का विरोध या खण्डन नहीं करते। अपनी देश काल की दशा और भावना के अनुसार सबके लिए सर्वत्र-सर्वकाल में जो विचार या सिद्धान्त उत्पन्न हों सब सत्य है। देशकाल के अनुसार धर्म बदलता रहता है। राजनीति भी देशकाल से उत्पन्न एक धर्म है और यह कदापि न समझना चाहिए कि लेनिन अथवा गांधी के विचार सदा सर्वदा के लिए अखण्ड हो गये हैं। देशकाल के अनुसार इनमें भी आगे परिवर्त्तन होगा। राजनीति एक देशी सामयिक पार्थिव व्यवस्था का रूपक है, वह दर्शन या मनोविज्ञान नहीं।

लेनिन ने अपनी देश काल की दशा में, अपनी योग्यता के भीतर अपनी दृष्टि में ठीक ही लिखा है। उसे झूठ कौन कहता है ? भौतिक पञ्चतत्वों से मस्तिष्क बना है, मस्तिष्क में मन विचारों को स्फुरित करता है और विचार भौतिक जगत् के पञ्चतत्वों से और व्यवस्था में उथल पुथल, आविष्कार और विकास करता है। प्रकृति और पदार्थ स्थूल हैं, जब कि विचार उन्हीं के सूक्ष्म रूप हैं। और विकसित होकर उनका स्थूल प्रतिबिम्ब होता है, परन्तु उनके विचार कहाँ तक सत्य हैं और किसको स्वीकार किया जाय, इसका निर्णय आप स्वयं ही करेंगे। आप घर से पाँच सौ मील तो क्या पाँच ही मील दूर जाकर सम्मुख परिस्थिति को छोड़कर घरबार बाल बच्चों आदि का विचार करने लगें तो कुछ भी काम न बनेगा, अशान्ति रहेगी। मनुष्य जहाँ है वहीं का काम काज सँभाले और देशकाल के अनुकूल व्यवहार करे। यदि वर्तमान में सन्तोष न हो तो अपना इष्ट साधन करे। दो पाटन बिच आय के, साबित गया न कोय। द्वैत और भ्रम में पड़ने से अशान्ति होती है अतः अपने अनुकूल एक को ग्रहण करना श्रेय है। आत्म संस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत्। अपना ही विचार करें। आत्मविचार में ही शान्ति है, आत्म विचार अपने विचार हैं जो दूसरों से उधार नहीं लिये जाते। तुलनात्मक अध्ययन करते हुए आत्मतत्व को स्थिर रखना बुद्धिमानी है।

२—मुझे कुछ समय से "स्वप्नदोष" का रोग है। बहुत सी दवाइयाँ खाने के बाद भी यह अच्छा नहीं हुआ। कृपया आप कोई उपाय बतायें।

उत्तर—रोग दवाइयों से अच्छा नहीं होता, वरन् दब जाता है, दूसरा रूप धारण कर लेता है या बढ़ जाता है। आप रहन सहन भोजन और विचार में संयम कीजिये। असंयम करते रहेंगे, तो दवाओं के सहारे आपकी प्रकृति संयम नहीं कर सकती। कुत्सित विचारों की अपेक्षा, स्वप्नदोष अधिकतर असमय, बेमेल भोजन, अधिक भोजन, और कब्ज से होता है। निम्नलिखित उपाय कीजिए।

भोजन में मिर्च मसाले, पान बीड़ी सिगरेट चाय आदि, खटाई मिठाई, कुल्फी, बरफ चाट आदि से परहेज करें। बिना भूख कभी न खावें। भोजन के समय पानी न पियें। भोजन को दाँतों से अच्छी तरह चबाकर रस बनाकर पेट में जाने दें। भोजन में साग भाजी का अंश अधिक रखें। दूसरा भोजन सन्ध्या को सूर्यास्त तक ही कर लिया करें, उसके तीन घण्टे बाद सोवें। पानी पीना हो तो भोजन के एक घंटा पूर्व या बाद में पियें। दिन भर में ३-४ सेर पानी पी डालें। प्रातः सायं कुछ व्यायाम करें, योगासन करें अथवा २-२ मील नगर के बाहर शुद्ध वातावरण में नित्य घूमने जावें। भूख से अधिक, ठूस ठूस-कर, तथा दिन में कोई भी वस्तु दिखने पर लालच और स्वादवश बार बार कुछ भी खाते पीते न रहें। पुराना कब्ज हो तो कुछ दिन उपवास और एनिमा लेकर आँतों की पूरी शुद्धि करें और ऐसा प्रयत्न करते रहें कि प्राकृतिक आवेगों का निरोध न होने पावे, कब्ज न रहने पावे। रात को देर तक न जागें, वरन् जल्दी सो कर सुबह जल्दी उठें।

पौष्टिक आहार

श्री ब्रजभूषण मिश्र

हमारा शरीर गिरता जा रहा है। हम निःशक्त होते जा रहे हैं। यह बुरा है। इसे रोकना चाहिए। इसके लिए क्या करना उचित है। जाड़े के दिन हैं। वैद्यों की कमी नहीं। कोई पाक या मोदक बनवा लेने की सलाह कम युक्तिपूर्ण नहीं जँचती। वैद्यों का भी तो यही कहना है। गतवर्ष जब उसे बनाया गया था तो बड़ा अच्छा रहा, स्वादिष्ट भी था और पौष्टिक भी। वह जो चैत में ज्वर ने पिंड न छोड़ने की ठानी थी वह तो ऋतु परिवर्तन था लेकिन अगर थोड़ी भी गफलत होती तो प्राण जाने में संदेह न था। देखिए, वैद्यजी का बादाम पाक और मदनानन्द मोदक खाता रहा, शरीर पुष्ट हो गया पर रोग का आक्रमण न रोक सका। इस वर्ष कुछ ऐसा काम होना चाहिए कि पुष्टि के साथ रोग से भी बचत रहे।

आहार की पुष्टि निर्भर होती है हमारे खाये हुए भोजन के पचकर शरीर में लग जाने और अवांछित द्रव्य के बाहर निकल जाने पर। अस्तु इसी कसौटी पर हमारा ज्ञान कसा जाना चाहिए। घी में वसा की मात्रा अत्यधिक है। वसा का पाचन क्लोहा में होता है, उस पर असाधारण बल पड़ता है और अतिकार्य से हानि की संभावना रहती है। दूसरे पौष्टिक पदार्थ तैयार करने में साधारणतः चिकने मेवे प्रयुक्त होते हैं जो वसायुक्त होने के कारण लघुपाक—शीघ्र पचनेवाले—नहीं होते।

यह बात अवश्य है विपाक तैयार करनेवाले महोदय उसमें ऐसे द्रव्य डालते हैं जिनसे उसके पचने में सुविधा होती है पर अस्वाभाविक छेड़छाड़ शरीर के साथ अनुपयुक्त ही है। साधारणतः वीर्य की कमी या तत्सम्बन्धी कमजोरी को दूर करने को ये पदार्थ लिये जाते हैं। पर इनका व्यवहार तो उलटा असर डालता है। ये नसों को उत्तेजित कर काम वासना को तीव्रतर कर पुष्टि का उदाहरण सामने रखती हैं जब वास्तव में [illegible] है। ऐसी परिस्थिति में भोक्ता तो यह समझता है कि उसमें शक्ति आ गई पर अधिक काम में सशक्त हो गया पर प्रभाव विपरीत होता है। उसकी अधिकता से अपनी कमजोरी बढ़ती जाती है। वह [illegible] तो इस दृष्टि को भूल जाता है 'बुझै न काम अगिनि तुलसी कहुँ विषय-भोग बहु घी ते।'

अतः बलकारक मोदक अथवा पाक के अन्तर्गत इन बातों का ध्यान रखना चाहिए। मैंने ऊपर लिखा है कि आहार की पुष्टि आहार के पचने, शरीर में लगने और अवांछित के निकल जाने पर निर्भर है। अतः हमारा आहार साधारण होना चाहिए जो शीघ्र पचकर शरीर में लग सके और अपना कुछ भी अवांछित भाग आँतों में न छोड़ दे। इस तरह के आहार में फल, तरकारी आदि की अधिकता से आते हैं। जाड़े के दिन शरीर के संचय का समय है; अतः ऐसी चीजें संचित करना चाहिए जो उपयुक्त हों।

जाड़े में सर्वप्रथम अधिकता से मिलनेवाला फल है अमरूद। प्रकृति देवी ने [illegible] तत्वों का बाहुल्य रखने में कमी नहीं की है। वे अज्ञानी हैं जो पौष्टिक फलों के लिए निर्भर करते हैं काबुल और कन्धार में पैदा हुए फलों पर। यह तो निरी [illegible] की बात है 'आये नाग न पूजहीं, बाँबी पूजन जाय।' 'घर का जोगी जोगड़ा आन गाँव का सिद्ध'। जहाँ हम रहते हैं, जिस जलवायु में हमारा शरीर बना है, उसको उसी परिस्थिति में उत्पन्न वस्तु अधिक लाभकर होगी अथवा विदेशी, जिसका

हमें नहीं ।।हमें अपने भोजन में भी स्वदेशीयता बरतना चाहिए।

अमरूद या बिही—

यह सस्ता, स्वादिष्ट और प्रचुर परिमाण में होनेवाला फल है पक जाने पर इस फल में प्राप्य शर्करा और श्वेतसार दोनों होता है। शर्करा के कारण शक्तिप्रद और श्वेतसार के कारण भोजन ही है। किसी शिशु को अमरूद और बादाम दिखलाइए, शर्त यह कि वह दोनों से अपरिचित हो। देखिए क्या होता है। शिशु दौड़ेगा किस वस्तु को प्राप्त करने के लिए? वह अमरूद लेगा, बादाम नहीं। यह प्रकृतिसिद्ध है कि प्राकृतिक फल अधिक रुचिकर एवं लाभप्रद होते हैं।

साधारण जन समाज ने इसके साथ अत्याचार किया है। लगभग प्रत्येक घर में ऐसी माताएँ मिलेंगी जो बच्चों को इसे खाने से रोकेंगी। वह सरदी पैदा करने का विशेष दोष तथा तज्जन्य रोगों का आकर माना जाता है। कुछ लोग तो उससे ऐसे चिढ़ते हैं जैसे लोग बिच्छू से। यह उनका भ्रम है। शर्करा के कारण तो वह सर्वप्रिय हो गया और श्वेतसार के कारण हानिकर दिखता है।

हमारे आहार में साधारणतः श्वेतसार का अधिकता रहती है। भोजन के अनन्तर—श्वेतसार की प्रचुर मात्रा के बाद—अमरूद श्वेतसाराधिक्य का कारण होता है अतः हानिकर होता है। उसे तो भोजन के पूर्व ही खाना चाहिए। एक या दो, उसकी परिधि के अनुसार, अमरूद खाकर भोजन के अन्य खाद्य-दाल चावल, शाकादि—प्रयोग में लाने चाहिए। खाद्योज की अधिकता से रोग का नाशक होने से दबे हुए रोगों को उभाड़ने वाला भी है। वह संचित कफ को निकालता है जिससे माताएँ उसे सरदी का जन्मदाता मानती है। उसमें कार्बोज की स्थिति होने से आँतों में चिपके हुए पदार्थों को बाहर निकाल फेंकने का अजब माद्दा है। यह फल सात्विक है अतः उत्तेजक नहीं है। इसलिए इसका व्यवहार उचित है।

इसी प्रकार शीतकाल में विभिन्न शाक भी मिलते हैं। शाक में भी उपर्युक्त होने के अतिरिक्त उसका सस्तापन कम आकर्षक नहीं होता। ऊख भी अत्यन्त लाभकर खाद्य है। ये सब वस्तु शीघ्र पचकर बाहर निकल जानेवाली हैं। शर्करा तथा प्राकृतिक लवण की स्थिति से वे लहू साफ करनेवाले और पुष्टि को देनेवाले हैं। इनके व्यवहार से नसों पर अनावश्यक अति जोर नहीं पड़ता और न वे कामोत्तेजक ही हैं, वरन् इसके विपरीत शामक है। हैवान से इंसान बनानेवाला है।

पुष्टि के लिए दूसरी आवश्यक बात है बलवीर्य का कम से कम ह्रास। इसके लिए सर्वोत्तम उपाय विभिन्न बिस्तरों पर सोना है। कामशास्त्री इसे पाप मानेंगे पर शरीर रक्षा के लिए यह अत्यन्त आवश्यक वस्तु है इसलिए यदि ऊपर लिखी बातों पर ध्यान दिया गया और उनका प्रयोग किया गया तो पौष्टिक द्रव्य की समस्या स्वयमेव हल हो जाती है।

सूचना

कल्पवृक्ष नवम्बर १९५३ अङ्क में "विन्दुयोग की भूमिका" लेख के अन्त में सूचना प्रकाशित हुई थी कि "विन्दुयोग" पुस्तक अप्राप्य है। अब हमें पता चला है कि उक्त पुस्तक "किताब घर, सोजती द्वार बाहर, जोधपुर, राजस्थान" से प्राप्य है। अतएव वज्रोली क्रिया साधन में रुचि रखने वाले पाठक उक्त पते से पुस्तक मूल्य से मँगा सकते हैं।

—विश्वामित्र वर्मा

आरोग्य के कुछ नियम

श्री 'कश्चित्'

टॉनिक शक्तिवर्धक कही जाने वाली दवाओं और पौष्टिक गरिष्ठ पदार्थों का उपयोग न करो। कभी कभी ये पौष्टिक और दवाएँ शरीर के अन्दर कोमल भागों में क्षोभ पैदा कर देती हैं और औषध सेवन बन्द करते ही दुर्बलता आ दबाती है और फिर शरीर रोग से ग्रसित हो जाता है इसलिए प्राकृतिक उपाय से दवा या औषधि के बिना शरीर को पुष्ट करो। प्राकृतिक उपाय से प्राप्त हुई पुष्टि स्थिर रहती है और उसमें वृद्धि होती है।

२—नाक के नथुनों द्वारा दीर्घ श्वांस, सूर्य से प्रकाशित खुली हवा में लो, नाक में हवा प्रवेश होने से वायु उष्ण और सूक्ष्म होता है और कोमल स्नायु में, गले में, फेफड़े में, पहुँचकर कोई हानि नहीं पहुँचाता, मुख से श्वांस लेना हानिकारक है। मुख श्वांस लेने का मार्ग नहीं।

३—भोजन अधिक ठूँस ठूँस कर या अण्ट शण्ट वस्तुएँ खाकर जठर को मत बिगाड़ो, अयोग्य आहार से ही व्याधि की उत्पत्ति, स्थिति, और वृद्धि होती है, भूल से अधिक खाने में आजाय तो ऐसा मत कहो कि आज अधिक खा लिया है अजीर्ण हो जायगा, दो पूरी के बदले आज चार खाई गई है, शरीर में कचरा अधिक हो जायगा। इस प्रकार के विचारों का सेवन न करो किन्तु तत्काल यह विचार करो कि जो कुछ खाया है वह पच जायगा, विश्राम, रात्रि को पूरी निद्रा, पानी का विशेष उपयोग, दीर्घ श्वांस, भोजन करने के चार घंटे बाद शरीर को श्रम पड़े ऐसा कसरत या काम करना, ये अन्न को पचाने के समस्त साधन हैं।

४—शरीर को सारे दिन बहुत कपड़ों में कसा हुआ मत रखो। दिन में थोड़ा देर शरीर को खुला रखो जिससे हवा का स्पर्श होने से वह निरामय रहता है। बहुत कपड़े पहिनने से पसीना उत्पन्न होता है और शरीर का प्रतिक्रियात्मक बल क्षीण होता है इसलिए अधिक कपड़े मत पहिनो।

५—जहाँ हवा का संचार न हो, वहाँ अधिक काल तक मत रहो, न वहाँ सोओ। जितना हो सके खुली हवा में सोने का अभ्यास करो। जो पशु खुले में रहते हैं उनको बीमारी कम होती है। जो घर में बन्द कमरे में रहते हैं उनको फेफड़े का रोग विशेष होता है।

६—सहन हो ऐसे ठंडे पानी से स्नान करो और फिर शरीर को घर्षण करके गर्मी पैदा करना चाहिए यह बहुत लाभदायक होता है और व्याधि को रोकने वाला है।

७—शरीर में कसरत तथा व्यायाम से कुदरती गर्मी पैदा करो और बाहर की दवाओं आदि पर कम आधार रखो, गर्म पदार्थ और मात्राओं को खाकर गर्मी पैदा करना कुदरती गर्मी नहीं है और उससे सदा लाभ नहीं होगा; कुदरती उपाय से आरोग्य प्राप्त करने वाले निरामय, निश्चिन्त, सुखी और दीर्घायु होते हैं। सूर्य की रोशनी में शरीर को थोड़ा देर खुला रखो, दीर्घ श्वांस लेकर शरीर के अन्दर की अस्वच्छता को दूर करो। व्यायाम करके शरीर के छिद्रों को खुला करके उनमें से पसीने को बाहर निकालो, फिर देर बाद पसीना सूखने और स्थिरता होने पर स्नान करके शरीर को बाहर से जल से स्वच्छ करो।

विचारों का प्रभाव

श्री मांगीलाल जी जायसवाल

प्रत्येक व्यक्ति किसी भी कार्य को आरम्भ करने के पूर्व प्रथम अपने मस्तिष्क में उसकी रूप रेखा का निर्माण करता है। पश्चात् उस योजना को कार्यान्वित करता है। इस प्रकार मस्तिष्क की निर्मित योजना में लगने वाली सामग्री को विचार कहते हैं।

मनुष्य जिस प्रकार सोचता विचारता है, उसी प्रकार के कार्य करता है। मनोविज्ञान का यह अनुभव सिद्ध ध्रुव नियम है कि जो व्यक्ति जिस प्रकार के विचार के सम्पर्क में रहेगा वह उसके स्वभाव का अंग बन जायगा, जिसका कि प्रभाव अवश्य ही उसके चरित्र पर पड़ेगा, यदि विचार धारा उच्चगति की ओर प्रवाहित है तो कार्य शुभ होंगे, यदि इनके विरुद्ध वह निम्न गति की ओर है तो उस दशा में सोचा हुआ प्रत्येक कार्य अशुभ, हानिप्रद एवं अकल्याण-कारी होगा।

विचारों में बड़ी भारी शक्ति है, जिस प्रकार एक नन्हे से बीज में एक विशाल वृक्ष पैदा करने की शक्ति निहित है उसी प्रकार विचारों में वह शक्ति है कि जिसके द्वारा मनुष्य का समूचा जीवन या भाग्य बदला जा सकता है। विचार शक्ति की समानता विश्व की कोई भी विस्फोटक शक्ति तक नहीं कर सकती है।

मनुष्य का सोचा हुआ प्रत्येक विचार अपने शुभ अथवा अशुभ संस्कार शरीर पर छोड़े बिना नहीं रहेगा और उन सबकी छाया उसके चेहरे पर पड़ेगी जिसे कि एक न एक दिन सारा संसार पहिचान लेगा। प्रायः हम देखते हैं कि कोई व्यक्ति उसकी सूरत से ही डाकू-चोर गिरहकट या कुपथगामी सा मालूम देता है। यह सब क्या है? उसके विचारों का प्रतिबिम्ब उसके चेहरे पर उद्भासित हो रहा है।

विचारों का उद्गम स्थान मस्तिष्क है, शुभ अशुभ विचारों का उत्पादन मस्तिष्क पर ही आधारित है। यदि वह विकसित है और सत् साहित्य एवं सच्चरित्र मित्रों के सहयोग एवं अच्छे वातावरण के सम्पर्क में है तो उसके विचारों की देन उच्चकोटि की होगी। और यदि इसके प्रतिकूल अवस्था में है तो अवश्य ही उसमें अनिष्ट वृत्तियाँ प्रवेश होकर अपना कुप्रभाव बतावेगा।

आज कितने ही व्यक्ति निरुपयोगी बातों में अपनी विचार शक्ति का बहुत अपव्यय करते हैं यदि वे चाहें तो इसका सदुपयोग कर अपने जीवन को सार्थक कर सकते हैं। याद रखिए दुष्ट विचार आपका सबसे बड़ा शत्रु है। बेई-मानी, धोखेबाजी और स्वार्थपरता के विचार लौकिक पारलौकिक दोनों को बिगाड़ने वाले हैं। ऐसे व्यक्ति को स्थान स्थान पर उपहासा-स्पद एवं बदनाम होना पड़ता है। संकुचित मनोवृत्ति, असत्य भाषण, एवं परछिद्रान्वेषण ऐसे दोष हैं जो जीवन को नष्ट भ्रष्ट कर देते हैं।

किस व्यक्ति की किस प्रकार की मनोवृत्ति है? उसका कैसे विचारों से सम्बन्ध है? यह इस प्रकार जाना जा सकता है कि—उसके मित्र कैसे हैं, उसे किस प्रकार के साहित्य से रुचि है, उसकी वेश भूषा कैसी है, अपने मकान में किस प्रकार के चित्रों का सजाना पसन्द करता है। इन सब बातों से सहज ही उसकी मनोवृत्ति का पता लगाया जा सकता है।

उत्तम विचारों पर अधिकार करने का सबसे सुलभ एवं सुन्दर मार्ग यह है कि आप अपने जीवन की दैनिक डायरी लिखना प्रारम्भ कर दें। प्रातः काल यह निश्चय कर लें कि आप दिन भर में अमुक अमुक दुर्गुण को अपने

आचरण में न आने देंगे। फिर दिन भर सावधानी पूर्वक दृष्टि रखें ताकि ये आपके पास फटकने न पावें। शाम को दिनचर्या का निरीक्षण करें। यदि फिर भी गलती हो गई है तो इस प्रकार की गलती भविष्य में न करने के लिए संकल्प लें। देखने में यह प्रयोग साधारण सा जान पड़ता है, लेकिन इसका प्रभाव अत्यन्त चमत्कारी एवं आश्चर्यजनक है। पाठकों से अनुभव का आग्रह है।

जो व्यक्ति अपने चरित्र को सुधारना चाहता है, उसे अपने स्वभाव पर पैनी दृष्टि रखना चाहिए। आपके स्वभाव का असर जीवन के प्रतिदिन के व्यवहारोपयोगी कार्यों पर पड़ता है इसलिए कार्यों को सफल बनाने के लिए अच्छे स्वभाव का होना नितान्त आवश्यक है। स्वभाव के भाग्य-निर्माता हम स्वयं हैं। हम उसे अच्छे या बुरे दोनों रूप में परिणित कर सकते हैं। स्वभाव आदतों का समूह है, इसलिए प्रथम अपनी आदतें ठीक करना जरूरी है। आदतों को सुधारने [illegible] हम हमारे विचारों के आधीन हैं। [illegible] विचारों पर नियन्त्रण है, [illegible] शुभ [illegible] विचारों [illegible] तो [illegible] के स्वामी बन जायेंगे। इसलिए यह [illegible] कि आप सूक्ष्म दृष्टि से देखते रहें कि [illegible]-द्वार में कुविचार कदापि प्रवेश न [illegible] पावें।

आज संसार में जितने [illegible] हैं, उनके मूल कारण में [illegible] आपत्तियों को छोड़ कर [illegible] विचार धारा द्वारा [illegible] है। [illegible] का प्रभाव शरीर पर पड़े बिना नहीं रहता है। मनुष्य के होने वाले [illegible] उसके [illegible] पर ही अवलम्बित है इसलिए प्रत्येक [illegible] अपने दिमाग में अनिष्ट [illegible] प्रवेश न होने देने के लिए सतर्क रहे ताकि [illegible] कार्यान्वित होने के पूर्व उन विचारों की [illegible] रेखा बनने ही न पावे।

बुराई के विचारों की तरंगें

प्रो० रामचरण महेन्द्र एम० ए०

विचार एक शक्ति है, जिससे मानव के इर्द गिर्द का वातावरण निरन्तर विनिर्मित होता रहता है। जो व्यक्ति अच्छे विचारों में निमग्न रहते हैं, उनके इर्द गिर्द अच्छाई का एक शुभ्र वातावरण निरन्तर चलता रहता है। इसके विपरीत क्रोध, लोभ, घृणा, द्वेष, ईर्षा, मत्सर इत्यादि दुर्भावनाओं का वातावरण ऐसा कष्टकर होता है कि मनुष्य उसमें सुख शान्ति की श्वास भी नहीं ले पाता। उसे अपना दम घुटता सा प्रतीत होता है।

बुराई, गन्दगी और अपकीर्ति का विचार तेजी से फैलता है। प्रकृति के जगत में भी यदि कहीं बदबू हो तो वह चारों ओर वातावरण में छा जाती है और [illegible] वातावरण को गन्दा कर देती है। इसी प्रकार मानव [illegible] में जो ईर्षा, आलोचना तथा कटुता के दूषित विचार उसी प्रकार का दूषित वातावरण निर्मित करते हैं।

[illegible] अपकीर्ति के विचारों में मनुष्य अधिक दिलचस्पी लेते हैं। जिन व्यक्तियों के हृदय में [illegible] विचार हैं, वे उन्हें प्रकाशित करने के लिए अवसर की ताक में रहते हैं।

मन के दूषित विचार [illegible] सकते, किसी न किसी रूप में उन्हें [illegible] कर देते हैं। [illegible]

विद्वेष की भावनाएँ हैं, उन्हें निकाल डालिए; सब के लिए शुभ सोचिए; मन के गुप्त दुर्भाव दूसरों के लिए नहीं प्रत्युत स्वयं आपके मानसिक एवं नैतिक स्वास्थ्य के लिए भी अहितकर हैं। इनसे आन्तरिक जगत विक्षुब्ध हो जाता है। यह मत समझिए कि आपका चारित्रिक दोष घर तक ही सीमित रहेगा। गन्दी आदत, अश्लील हाव भाव, बोलने तथा वस्त्र पहिनने के ढंग जोर जोर से आपके चरित्र का विज्ञापन किया करते हैं। आप जो गालियाँ, अशिष्टताएँ, वासना-लोलुपता, गन्दे गीतों का उच्चारण करते हैं, या आपके अनुचित अनैतिक सम्बन्ध आप तक ही सीमित रहने वाले नहीं हैं। अनुचित अनैतिक वासना-मूलक सम्बन्धों की चर्चाएँ जनता के व्यक्ति बड़े स्वाद के साथ करते हैं। चुपचाप आपकी कमजोरी का मजाक बना कर हेय दृष्टि से निहारते हैं। जो व्यक्ति क्षणिक आवेश में आकर समाज में अपनी स्थिति, प्रतिष्ठा, या कुटुम्ब से निम्न वर्ग या स्थिति की स्त्री से अनुचित प्रेम सम्बन्ध कर लेते हैं, वे विलासी पतित और संदिग्ध दृष्टि से देखे जाते हैं। उनके विलास की अश्लील वार्ताएँ बड़े वेग से समाज में फैलती हैं। उनका कुटुम्ब बदनाम होता है।

एक महापुरुष का कथन है कि पाप यदि निर्जन पर्वत की कन्दरा में छिप कर भी किया जाय, तब भी छिपा नहीं रहता। पाप की दूषित छाया लम्बी होकर पड़ती है। यह उत्तरोत्तर बढ़ती चलती है। कोई यह समझे कि हमारे पाप-कर्म हमेशा छुपे रहेंगे; कोई इन्हें नहीं जान पायेगा, यह संभव नहीं है।

आये दिन रिश्वत, कालाबाजार, घूस, इनाम, या भ्रष्टाचार की बातें चलती रहती हैं। प्रत्येक रिश्वत लेने वाला, या काला बाजार करने वाला अपने आप को सुरक्षित समझता है; पाप-कर्म को छिपाता है। कत्ल, चोरी करने या जेब कतरने वाला अपने कार्य को करते समय यह मान बैठता है कि कोई उसे पकड़ न सकेगा। लेकिन यह बात सत्य नहीं है। पाप मनुष्य के सर पर चढ़ कर बोलता है। पापी की आत्मा उसे गुप्त रूप से धिक्कारती रहती है किन्तु वह दुष्ट आत्मा की अन्तर ध्वनि की अवहेलना करता जाता है। एक समय ऐसा आता है जब या तो वह घोर दुष्ट बन कर आत्मा को कुचल डालता है, या उसके द्वारा पराजित होकर शुभ मार्ग पर आरूढ़ होता है। पाप बड़ा अस्वाभाविक है। हम उसमें जान-बूझ कर लिप्त होना नहीं चाहते।

समाज में पाप-पथ पर चलने वाले व्यक्तियों को बड़ा सावधान रहना पड़ता है क्योंकि उनकी कलई अन्त में खुल ही जाती है। फिर क्या लाभ है, ऐसे जीवन से जिसमें आप को पग पग पर दूसरों से अपना व्यवहार छिपाना पड़े। क्या लाभ है उन बातों से जो बनावटी हों? बनावट आखिर कृत्रिम ही है। यह कृत्रिमता अस्थायी तो है नहीं कि ठहर सके। अतएव अच्छा चरित्र बनाना और अच्छी आदतें डालना ही शान्ति और सुख का मार्ग है।

सच्चे सभ्य पुरुष का जीवन एक खुली पुस्तक है, जिसकी प्रत्येक पंक्ति पढ़ी और समझी जा सकती है। दुराव छिपाव की दुष्प्रवृत्ति छोड़ कर स्पष्ट रहना, निष्कपट व्यवहार, स्पष्ट कहना, तदनुकूल आचरण करना ही अपनाना चाहिए। स्पष्टवादी का प्रभाव देर से समाज पर पड़ता है, किन्तु उसका प्रभाव व्यापक एवं स्थायी होता है। यह वह रंग नहीं, जो पानी की एक बूँद से धुल कर नष्ट हो जाय, या मामूली-सी आलोचना से विनष्ट हो जाय। संसार की हजार आलोचनाएँ भी स्वामी दयानन्द, ईसा, कबीर, तुलसी, महात्मा गांधी आदि का कुछ न बिगाड़ सकीं। वे निष्कलंक देदीप्यमान रहे।

शान्ति की खोज में—

श्री सुदर्शनसिंह जी

मैं ऐसी किसी भी अवस्था, किसी भी समय की कल्पना नहीं कर सकता जब कि किसी से कहा जा सके कि यहाँ पहुँचकर अब तुम्हारे मन में कभी अशान्ति नहीं आवेगी। जीवन में यदि हम कार्यशील रहेंगे तो अशान्ति का आना अनिवार्य है। ऐसा कोई साधन नहीं जो कह दे कि इसकी पूर्णता में फिर मन में क्षोभ नहीं होगा। समाधि, निद्रा और मूर्छा के अतिरिक्त दूसरी सभी स्थितियों में मन क्षोभित हो सकता है। विकारों का अभाव मन से मन के जो कि तन रहते तक रहेगा ही, हो नहीं सकता। विकार सभी आ सकते हैं। जीवन में निर्विकार मन की स्थिति केवल कल्पना है। साधना का यह उद्देश नहीं कि वे एक सीमा पर पहुँचा कर छोड़ दिये जावेंगे तो फिर मन निर्विकार रहेगा। यदि उनके विषय में ऐसा कहा जाता है, तो यह केवल प्रलोभन है। अग्नि के पास बैठ रहिए तब तक शीत नहीं लगेगा, उठने पर शीत लगना प्रारम्भ हो जायगा। अल्प होने के कारण भले ही आप उसका अनुभव कुछ समय पश्चात् करें। इसी प्रकार जबतक साधन करते रहेंगे, मन शान्त रहेगा। विकारों के दमन का जब तक प्रयत्न चलता रहेगा, वे शमित रहेंगे। जहाँ प्रयत्न श्रान्त हुआ, वे उत्थित हो जावेंगे। यह प्रयत्न जीवन भर चलता रहे, यही अध्यात्म का उद्देश है। वैषयिक शान्ति तो कोई शान्ति है नहीं। वह तो विषयानन्द का प्रलोभन है जो एक हाहाकारी अशान्ति अपने उदर में लिये हुए है। विषय प्राप्ति का अर्थ है शारीरिक स्वास्थ्य का नाश और मानसिक अस्थिरता की उपलब्धि। संघर्ष, रोष, पश्चाताप, दुःख, यही सब तो लगे हैं विषयों के साथ। अतः विषयों में तो शान्ति सम्भव ही नहीं। अनपेक्ष हो जाना ही शान्ति है। आनन्द है अपने भीतर। किन्तु वह अटूट उपलब्ध होगा बिना प्रयत्न के, यह शक्य नहीं। मन का स्वभाव ही चंचल है। वह प्रयत्न से भी पूर्ण एकाग्र नहीं होता, बिना प्रयत्न के तो क्या होगा। अन्तर में आनन्द है, परन्तु उसकी उपलब्धि निर्भर है मन पर। मन एकाग्र रहता नहीं, फिर प्रयत्नरहित तो कैसे। मन को एकाग्र करने का प्रयत्न चलता रहे तो वह कुछ न कुछ तो एकाग्र होता ही। इसी एकाग्रता में जो शान्ति और आनन्द होगा, वह होगा तटस्थ निरपेक्ष। इसमें किसी का कोई हिस्सा नहीं, कोई संघर्ष नहीं, कोई राग-द्वेष का प्रवेश नहीं। [illegible] ऐसी शान्ति निरुपाधिक है। इसी शान्ति को प्राप्त करने के लिए अध्यात्म की प्रवृत्ति हुई है। 'जहाँ अन्वेषण में ही शान्ति' साधन का अटूट चलना ही प्राप्ति है। जहाँ साधन की धारा बन्द हुई, जहाँ प्राप्ति की शान्ति में रम कर प्रयत्न शिथिल पड़ा, बस साधन [illegible]। फिर मन हो जाता है विकारी। साधक [illegible] में जनता की श्रद्धा प्राप्त हो ही जाती है, अतः पश्चात् पाखण्ड का चलना स्वाभाविक हो जाता है। शान्ति और आनन्द का ढोंग चलता है अन्तर में अशान्ति की ज्वालामुखी छिपाये रहने पर भी। क्योंकि विषय और आनन्द एकत्र रह नहीं सकते। विषयों का चिन्तन तो जलन उत्पन्न करेगा ही। विषय से दूर जाने की कोई आवश्यकता नहीं। मन त्रिगुणमयी [illegible] प्रकृति का कार्य है। प्रकृति के प्रभाव उसे प्रभावित करते रहते हैं। गुणों की प्रबलता में वह पड़ा ही रहता है। गुणों में भी कभी एक प्रबल रहता है और कभी दूसरा। शान्ति है केवल सतोगुण में ही। अतएव अपने अन्तर से ही नहीं, इन बाहरी आघातों से भी बचना है। इनका भी निरास करना है। ये आघात होते ही रहते हैं, अतः निरास का प्रयत्न भी चलता रहे तभी ठीक रहेगा। एक बात और— ये आघात होते रहते हैं, हम इनसे पद-पद पर इनकी चिन्ता करने लगें तो एक नयी [illegible] बड़ी अशान्ति बन जावेगी। प्रयत्न करते हुए भी प्रयत्न से निरपेक्ष, बाधाओं एवं [illegible] के आने जाने से उदासीन होकर ही शान्ति मिलेगी। शान्ति मनोनिरोध के इस प्रयत्न— ऐसे प्रयत्न में है, जिसमें प्रयत्न के प्रति भी उदासीन भाव बना रहे।

हमारी नई पुस्तकें

स्वर्ण सूत्र

स्व० सन्त नागरजी द्वारा लिखित, लगभग २५० स्वर्ण सूत्रों का संग्रह, अनेक अध्यात्म प्रेमियों के आग्रह से पुस्तकाकार छप गया। भय, चिन्ता, क्लेश, निरुत्साह आदि मनोविकारों को दूर कर जीवन पथ पर उत्साह से अग्रसर कराने वाली दिव्य आत्म प्रेरणाओं का, दैनिक जीवन के लिए अनमोल व्यावहारिक संग्रह है। इसे हर समय हर व्यक्ति को अपने पास रखकर नित्य पढ़ने से अपूर्व शान्ति मिलेगी। मूल्य ३) डाक खर्च ।।।)

उपासना और हवन विधि

यज्ञ द्वारा मन में दिव्य संस्कार डालने और रोगों की चिकित्सा तथा आत्म विकास करने के लिए व्यावहारिक हिन्दू धर्म की अमूल्य पुस्तक फिर से छप गई। मूल्य ।।=)

ध्यान से आत्म चिकित्सा

ध्यान द्वारा मनोबल का विकास कर अपनी मानसिक कमजोरियों को दूर कर उन्नति करने के अनमोल साधन मूल्य १)

सन्त नागरजी

स्व० सन्त नागर जी तथा उनकी संस्था व कार्यों का संक्षिप्त परिचय मूल्य ।)

विशाल जीवन

स्व० सन्त नागर जी के लेखों का प्रथम संग्रह, जीवन को विशाल बनाने के लिए, मानसिक शारीरिक उन्नति और आत्म-विकास के अनुभवपूर्ण साधनों से भरपूर है। स्व० नागर जी के विचारों और जीवन से प्रेरणा देनेवाली प्रथम पुस्तक है मूल्य २) डाक खर्च ।।।)

दुग्ध चिकित्सा

स्वामी जगदीश्वरानन्द जी वेदान्तशास्त्री द्वारा लिखित इस पुस्तक में नवीन अनुभव जोड़कर विस्तार पूर्वक छापा गया है। मूल्य ।।।) डाक खर्च ।।)

गायत्री रहस्य

स्व० ब्रह्मनिष्ठ नारायण दामोदर जी शास्त्री द्वारा लिखित गायत्री जप व यज्ञ द्वारा आत्मकल्याण, आत्मोन्नति, रोगनाश, लक्ष्मी प्राप्ति, आदि भिन्न भिन्न उद्देश्य पूर्ति के लिए गायत्री के अनेक अनुभवपूर्ण प्रयोग दिये हैं। मूल्य ।।)

भोजन निर्णय

भोजन विषयक नवीट चार्ट मूल्य ।)

शिव सन्देश

अथवा आध्यात्मिक जीवन का रहस्य

ब्रह्मलीन पं० शिवदत्त जी शर्मा के "कल्पवृक्ष" में पिछले २५ वर्षों में निकले हुए लगभग ४०० लेखों का अमूल्य संग्रह, लगभग १००० पृष्ठों में छप कर तैयार है। इस संग्रह की पाठकों की ओर से बड़ी माँग थी। इस ग्रंथ में उनके आध्यात्मिक जीवन का रहस्य प्रकट करने वाले दस विभिन्न भागों में अत्यन्त उपयोगी सामग्री संग्रह की गई है। यथा—आध्यात्मिक जीवन-चरित्र, व्यावहारिक जीवन, स्वास्थ्य-साधन, विचार-साधन, प्रार्थना—ध्यान—उपासना आध्यात्मिक साधन, मंत्र और योग साधन, व्यावहारिक वेदान्त, अध्यात्म और ब्रह्मविचार, मृत्यु और उस पर विचार। प्रत्येक अध्यात्म-प्रेमी के लिए दैनिक स्वाध्याय के योग्य ग्रंथ है। मूल्य १०) डॉक खर्च १।=)

विशेष सूचना—डाक खर्च पहले से दुगुना हो गया है इसलिए कई पुस्तकें एक साथ मंगाने में सुभीता रहेगा।

व्यवस्थापक—कल्पवृक्ष कार्यालय उज्जैन, नं० १ (मध्य भारत)

राजयोग ग्रंथमाला

Registered No. N. 277

आध्यात्मिक मंडल, उज्जैन, म० भा०

की

निम्नलिखित शाखाओं में मानसिक, आध्यात्मिक एवं प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा मुफ्त इलाज होता है :—

स्थान   प्रवन्ध और उपचारक

१ कोटा (राजपूताना) श्रीयुत पं० नारायणरावजी गोविंद नागर, प्रोफेसर ड्राइंग, श्रीपुरा
२ हींगनघाट (सी० पी०)—आयुर्वेदाचार्य शोभालालजी शर्मा।
३ उदयपुर (१) (राजस्थान) संचालक आयुर्वेदाचार्य पं० जानकीलालजी त्रिपाठी, चिन्तामणि कार्यालय भूपालपुरा, प्लाट नं० २०१।
उदयपुर (२) लाला जेसारामजी, मार्फत श्री देवराज, टी. टी. ई. रेलवे क्वार्टर्स. बी।२, रेलवे स्टेशन
४ खरगोन (मालवा प्रांत) श्री गोकुलजी पंढरीनाथजी सराफ मंत्री आध्यात्मिक मंडल।
५ अजमेर (राजपूताना) पंडित सूर्यभानुजी मिश्र, रिटायर्ड टेलिग्राफ मास्टर, रामगंज।
६ नसीराबाद (राजपूताना)—चाँदमलजी बजाज
७ दोहरी घाट स्टे. ओ. टी. आर. (आजमगढ़ उ. प्र.) संचालक प० क्षमानन्दजी शर्मा साहित्यरत्न
८ मन्दसौर (मध्य-भारत दशरथजी [illegible]आगर, खाद्य इन्स्पेक्टर, जनकपुरा।
९ मिट्टी भेड़ी (देहरादून पो० प्रेमनगर) [illegible]प्रसादजी त्यागी।
१० सरगुजा स्टेट (सी० पी०) लालजीप्रसादजी गुप्त।
११ जावरा (मध्य भारत)—विशारद पं० भालचन्द्रजी उपाध्याय, एजेन्ट कोऑपरेटिव बैंक।
१२ गोंदिया (मध्यप्रान्त) लक्ष्मीनारायणजी माडुपाल, बा० ए० एल-एल० बी० वकील।
१३ नेपाल-धर्मनपाणी, साहित्यधुरीण, डा० दुर्गाप्रसादजी भट्टराई, डा० [illegible] दिल्ली बाजार।
१४ पोलायखुर्द (व्हाया अकोदिया मण्डी)—स्वामी गोविंदानन्दजी।
१५ धार (मध्य भारत)—श्री गणेश रामचन्द्र देशपांडे, निसर्ग मानसोपचार आरोग्य-भवन, धार।
१६ खम्भात (Cambay) श्री लल्लुभाई हरजीवनजी पंड्या।
१७ राजगढ़ ब्यावरा (मध्य भारत) श्री हरि ॐ तत्सतजी।
१८ केकड़ी (अजमेर) पं० किशोरीलालजी वैद्य तथा मोहनलालजी राठी।
१९ बुढ़वल (ओ. टी. आर. जिला बाराबंकी) पं० रामशंकरजी शुक्ल, बुढ़वल शुगर मिल।
२० इन्दौर—श्री बाबू नारायणलाल जी सिंहल, बी० ए०, एल-एल० बी०, श्री सेठ जगन्नाथ जी की धर्मशाला, संयोगितागंज।
२१ घाटोट-विक्रमगढ़ (मध्य-भारत) अध्यक्ष सेठ ताराचन्दजी, उपचारक अनोखीलालजी मेहता।
२२ अटरू (कोटा राजस्थान)—पं० मोहनचंद्रजी शर्मा।
२३ बारां (कोटा राजस्थान)—सेठ भैरूलाल जी।

व्यवस्थापक व प्रकाशक—डॉ० बालकृष्ण नागर, कल्पवृक्ष कार्यालय, उज्जैन (मध्य भारत)
मुद्रक—भक्त सज्जन, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद—२

वर्ष ३२ | संख्या ८

KALPA-VRIKSHA

A MAGAZINE OF DIVINE KNOWLEDGE

[illegible]

१ शक्ति का रहस्य—स्व० सन्त नागर जी ... १
२ जीवितों की तरह जी—"वैदिक प्रेरणा" ... [illegible]
३ वेद विज्ञान सुधा—श्री रणछोड़दासजी 'उद्धव" ... [illegible]
४ आत्म विज्ञान—अद्वैत विज्ञान—"स्वाध्याय" ... ८
५ मैं परमात्मा हूँ—श्री विश्वामित्र वर्मा ... १५
६ ईशोपनिषत् (पद्यानुवाद)—श्री पं० सूर्यभानु जी मिश्र ... [illegible]
७ प्राकृतिक-चिकित्सा की सरलता—डॉ० लक्ष्मीनारायण जी टण्डन, एम० ए० .. [illegible]
८ रोग और दवा—श्री व्रजभूषणजी मिश्र, एम० ए० बी० टी० ... [illegible]
९ विविध वृत्त—"सङ्कलित" .. [illegible]
१० स्वर्ण-सूत्र—आत्म स्वरूप की भावना कवर के दूसरे पृष्ठ पर

सम्पादक—बालकृष्ण नागर

आत्म स्वरूप की भावना

मैं शरीर नहीं हूँ, मन बुद्धि, चित्त अहंकार भी नहीं हूँ क्योंकि ये सब विकारी, परिवर्त्तनशील और नाशवान् हैं। मैं इन सबसे परे अविकारी शुद्ध अपरिवर्त्तनशील और अजर अमर आत्मा हूँ। शरीर मन बुद्धि चित्त अहंकार में कुछ भी लघुता दीर्घता या विकार हो, "मैं" सदा अखण्ड हूँ क्योंकि "मैं" आत्म स्वरूप बोधक तत्व हूँ।

मैं इन्द्र हूँ अर्थात् इन्द्रियों का स्वामी हूँ और काम क्रोध लोभ मोह आदि विकारों से मुक्त हूँ क्योंकि मैं अजर अमर अविनाशी आत्मा हूँ।

मुझे स्त्री पुत्र धन मान आदि की कोई इच्छा नहीं है, इच्छा करना मेरा धर्म नहीं क्योंकि मैं निर्विकार, मुक्त निर्लेप आत्मा हूँ।

मुझे कोई दैहिक दैविक आध्यात्मिक दुःख ताप नहीं व्याप सकते क्यों कि मैं—सूक्ष्म, अशरीरी, अविकारी, शुद्ध चेतन तत्व हूँ, मैं आत्मा हूँ।

मैं सत्य सनातन शान्त मुक्त आत्मा हूँ। मैं पूर्ण हूँ, मुझे कोई इच्छा या विकार नहीं, मैं स्वयं सत्य हूँ, सर्व सामर्थ्य हूँ, सर्व वैभव का स्रोत हूँ, प्रकाश हूँ, सर्वज्ञान का केन्द्र हूँ। मैं दिव्य हूँ। मैं सर्व शुभ हूँ। मैं अद्वैत और केवल शुभ हूँ। मैं जो कुछ हूँ वही हूँ, सदा से हूँ और सदा रहूँगा। मैं एकरस हूँ।

मैं सब रूपों में एकरस हूँ, मैं अभेद हूँ। मैं सर्वत्र सब प्राणियों में मैं-रूप अभेद हूँ। मैं सब में "मैं" ही हूँ, अन्य कुछ नहीं, और मेरे अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं, कोई नहीं, कहीं नहीं है।
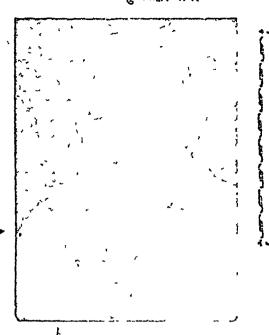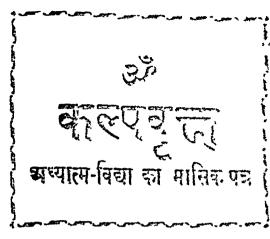
संस्थापक
स्वर्गीय डॉ० दुर्गाशङ्कर नागर

सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥ गीता ॥

वर्ष ३२ } उज्जैन, अप्रैल सन् १९५४ ई०, सं० २०११ वि० { संख्या ८

शक्ति का रहस्य

स्व० सन्त नागरजी

तुम निरे माटी के पुतले नहीं हो, हाड़, मांस और रक्त के थैले नहीं हो, निर्जीव मुर्दे के समान नहीं हो, किन्तु एक सजीव शक्ति सम्पन्न पुरुष हो। तुम्हारे जीवन का अस्तित्व किसी विशेष उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए है। हर एक मनुष्य में दैवीशक्ति छिपी हुई है और वह सब कुछ कर सकता है। संशय और सन्देह को अपने हृदय-मन्दिर से बाहर निकाल दो; निर्बलता, निराशा, भय और चिन्ता से मुक्त हो जाओ। भय कमजोरी है, भय निर्बलता है, भय पाप है, भय मृत्यु है और भय मनुष्य जाति का सबसे प्रबल शत्रु है। सदा निर्भय रहो. धैर्य रखो. [illegible] भूलकर भी चिन्ता, भय और [illegible] मन्दिर में प्रवेश न होने दो। [illegible] हो, चट्टान के सदृश [illegible] दृढ़तापूर्वक डटे रहो. [illegible] शारीरिक निर्बलताओं पर [illegible] निर्बल मनुष्य के लिए [illegible] कोई निर्बल व्यक्ति [illegible]

शक्ति ही जीवन है, [illegible] शक्ति ही सत्य है। [illegible] शक्ति, शक्ति, शक्ति की [illegible] है। शक्ति तुम्हारे [illegible]

बाहर है, शक्ति सर्वत्र है, शक्ति तुम्हारे रोम-रोम में संचार कर रही है, सब दूर शक्ति का ही प्रकाश है, अनन्त शक्ति तुम्हारे पीछे है। संसार के विचारों को हृदय से हटा दो और शक्ति के विचारों में तल्लीन हो जाओ। शक्ति संचय करो, शक्ति की ही उपासना करो, शक्ति तुम्हें सदा प्रसन्न रखेगी। बलवान् बनो, निर्भय बनो, वीर बनो, साहसी बनो, स्वतन्त्र बनो और शक्तिशाली बनो।

तुम देह नहीं हो, तुम अहङ्कार नहीं हो, तुम आकार नहीं हो, तुम हाड़-मांस के पिंजर नहीं हो; किन्तु तुम आत्मा हो, तुम शक्ति के पुतले हो, तुम शक्तिशाली हो, तुम सत्य हो, तुम स्वतन्त्र हो, तुम अमर हो, तुम शिव हो, तुम कल्याण हो, तुम मंगल हो, तुम पवित्र हो, तुम बलवान् हो, तुम स्वच्छ हो, तुम शुद्ध हो, तुम आनन्दमय हो, तुम निर्दोष हो, तुम पूर्ण हो और तुम सब प्रकार के भय से मुक्त हो। उठो, जागो, आगे बढ़ो और पूर्ण शक्तिशाली बनो। शक्ति के सम्मुख सब नतमस्तक होते हैं।

शक्ति का स्रोत परमात्मा है। वही शान्ति सुख और आनन्द का स्थान है। परमात्मा ही सब कुछ है। वही सब का रक्षक है। शुद्धचित्त होकर अनन्यभाव से सर्वशक्तिमान परमात्मा के चरणों में शरणापन्न हो जाओ, जिसके प्रताप से गूँगा वाचाल हो जाता है, लँगड़ा पहाड़ को लाँघ जाता है; उस परमपिता की सच्ची प्रार्थना करो, रात-दिन प्रार्थना करो, जगत के कल्याण के लिए प्रार्थना करो, आत्म शक्ति के लिए प्रार्थना करो। निर्बल आत्म किसी भी वस्तु को प्राप्त नहीं कर सकती है; इसीलिए शक्ति संपादन करो।

स्व० नागरजी की अभी ही प्रकाशित पुस्तक "विशाल जीवन" का अंश। मूल्य २) डाकखर्च ।|=)

वैदिक प्रेरणा

जीवितों की तरह जी

आयुषायुः कृतां जीवायुष्माञ्जीव मा मृथाः।
प्राणेनात्मन्वतां जीव मा मृत्योरुदगा वशम्॥
अथर्ववेद १९-२७ ८

आयुः कृतां आयुषा जीव आयुष्मान् जीव मा मृथाः।

आत्मन्वतां प्राणेन जीव मृत्योः वशं मा उत् अगाः॥

जीवितों की तरह जी। मृतों की तरह जीना भी कोई जीवन है।

जहाँ उमंग, उत्साह और उत्कर्ष हैं वहीं जीवन है।

जहाँ उमङ्ग नहीं, उत्साह नहीं, उत्कर्ष नहीं, वह जीवन की मृतावस्था है।

उमंग और उत्साह से ही जीवन में उत्कर्ष का सम्पादन होता है। उमंग और उत्साह से शून्य जीवन उत्कर्षविहीन और मलिन जीवन होता है।

महत्वाकांक्षा उत्कर्ष की जननी है। लघ्वाकांक्षा जीवन को गिराती है। कोई भी महत्वाकांक्षा उमंग और उत्साह के बिना पल्लवित नहीं हो सकती।

कोई महत्वाकांक्षा ऐसी नहीं है जो पुरुषार्थ से सिद्ध न हो सकती हो। पुरुषार्थ से प्रत्येक असम्भावना सम्भावना में परिणत की जा सकती है। असम्भव शब्द केवल मूर्खों के शब्द कोष में अंकित मिलता है।

महत्वाकांक्षा ही उत्कर्ष का सोपान है। उमंग उत्साह और पुरुषार्थ के द्वारा उच्च से उच्च

उत्कर्ष स्थल तक अवश्य पहुँचा जा सकता है, निस्सन्देह चढ़ा जा सकता है।

जीवितजीवी अपने जीवन का निर्माण करके जीवन के प्रत्येक पार्श्व में वर्चं साफल्य, सौभाग्य और आनन्द प्राप्त करते हैं। मृतजीवी जीवन भर दुर्भाग्य, दुर्दैव और परिस्थितियों का रोना रोते रहते हैं। जीवन बनाने वाले अपना जीवन बना ही लेते हैं। साधन विहीन होने पर भी अपने जीवन का सुनिर्माण कर ही डालते हैं। उदासीन, आलसी, प्रमादी, साधन सम्पन्न होने पर भी अपने जीवन का सुनिर्माण नहीं कर पाते हैं।

अपने आत्म ओज को जगा। (आयुःकृतां) जीवन सम्पादन करने वालों के (आयुषा) जीवन के साथ (जीव) जी। अतीत और वर्तमान के सर्वोत्कर्ष सम्पादकों और स्वभाग्य विधाताओं के जीवनों में झाँक कर देख और उनसे प्रेरणा पाकर उत्कर्षमय जीवन जी।

जी और जीवितों की तरह जी। (आयुष्मान्) जीवनवान् बन कर (जीव) जी। जैसे तैसे जीना भी कोई जीवन है! वह जीवनवान् है जो मृतों में जीवन का संचार कर देता है। जीवनवान् निर्जीवों में जीवन फूँक देता है।

(मा मृथा.) मत मर। मर मत। मत डर। भयभीत न हो। यदि कोई भी तेरा साथ नहीं देता तो तू स्वयं ही अपना साथ दे। यदि तेरा धनसर्वस्व नष्ट हो गया है तो तेरा अमूल्य जीवन धन तो तेरे पास है। यदि परिस्थितियाँ तेरे प्रतिकूल हैं तो तेरी सुमति तो तेरे अनुकूल है। यदि बाधाओं ने तेरे पथ को निरुद्ध कर दिया है तो अपने साहस [illegible] पाकर अपना मार्ग प्रशस्त [illegible]।

मत घबरा। हतित्र न हो। [illegible] (आत्मन्वतां) आत्म-[illegible], [illegible] वालों के (प्राणेन) प्राण के साथ (जीव) [illegible] आत्मसंबलियों के समान अपने [illegible] को सँभाल और जी, ठाट के साथ जी, [illegible] साथ जी, मान के साथ जी, [illegible], शान के साथ जी।

(मृत्योः) मृत्यु के (वशं) वश में (मा उप अगाः) प्राप्त हुआ मत हो। मृतवत् मत [illegible] जीते जी मत मर। कायर जीवन भर भय से मर मर कर जीते हैं, पद पद पर, क्षण क्षण में मरते रहते हैं। जीवनवान् निर्भय होकर [illegible], जीवन भर जीवित जीवन जीते हैं और [illegible] प्रयाण करते हैं तो जीवित जीवन की ज्योति जगमगाते हुए।

जी जीवन के साथ आयुकृतों के,
जी बन जीवनवान् न मर मत [illegible]।
जी संबल के साथ आत्मवन्तों के,
मत हो मृत्यु के वश रे [illegible]॥

आचार्य विद्यानन्दजी 'विदेह' द्वारा [illegible] दित, वेदसंस्थान [illegible] से प्रकाशित वेद प्रचारक प्रमुख मासिक पत्रिका "सविता" से [illegible] उक्त वैदिक प्रेरणा ली गई है। 'सविता' का वार्षिक मूल्य तीन रुपये, [illegible]) है। हिन्दीपाठी वेद प्रेमियों के लिए [illegible] सरल भाषा में उच्च कोटि की वैदिक प्रेरणाएँ आचार्य जी द्वारा सम्पादित होती हैं।

पवित्र भावना की पूजा

हे प्रभु, तेरी पूजा कैसे करूँ? तुझे दूध चढ़ाऊँ तो वह बछड़े का [illegible]। [illegible] फूल चढ़ाऊँ तो वह भँवरे का सूँघा हुआ है। यज्ञ करूँ तो धुँआ फैलता है। [illegible] प्रभु, तुझे मेरा कोरा ही नमस्कार है।

—[illegible]

वेद विज्ञान सुधा (३)

श्री रणछोड़दास 'उद्धव'

ब्रह्म, वेद एवं विद्या-विज्ञान

मोहन—मैं सच्चिदानंदमय वेद का स्वरूप समझ गया। अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि वेद की किस संगति से उसे मुख्य प्रमाण माना है और ब्रह्म, वेद एवं विद्या शब्दों के अर्थों मे क्या अंतर है? तथा विज्ञान क्या चीज है?

माधव—मोहन! आप एकाग्र एवं सूक्ष्म बुद्धिवाले हो, अतः इस विषय को भी सुना ही देता हूं। ऐसे ही एकाग्र ध्यानपूर्वक सुने—

श्रौतग्रन्थों मे वेद, विद्या और ब्रह्म ये तीनों शब्द एक ही अर्थ में प्रयुक्त देखे जाते हैं। एक ही विज्ञानतत्व अवस्थाभेद से या उपाधि भेद से उक्त तीन स्वरूपों में परिणत हो रहा है। प्रत्येक वस्तु के यथार्थ ज्ञान के लिए प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द इन चार प्रमाणों में से किसी न किसी प्रमाण की अपेक्षा रहती है। इन प्रमाणों के आधार पर प्रकट होनेवाला अतएव संशयादि दोषों से सर्वथा रहित सत्य, निर्भ्रान्त और निश्चित ज्ञान को ही दार्शनिक लोग "प्रमा" शब्द से संबोधित करते हैं।

यह प्रमा जिस साधन से प्राप्त होती है, वही साधन "प्रमाकरणं प्रमाजनक वा प्रमाणम्" इस व्युत्पत्ति के अनुसार "प्रमाण" नाम से कहा जाता है। उक्त चारों साधनों से प्रमा-ज्ञान प्रकट होता है, अतः उनका प्रमाणत्व सिद्ध हो जाता है।

वस्तु को प्रत्यक्ष देखने से उस वस्तु का ज्ञान प्रमा हो जाता है, अतः वह प्रत्यक्ष प्रमाण कहला सकता है। "जहाँ-जहाँ धुँआ वहाँ वहाँ आग" इस अनुमान से भी अग्नि-विषयक ज्ञान होता है। "गो के समान गवय होता है" इस सादृश्यमूलक उपमान से भी गवयपदार्थ का ज्ञान हो जाता है एवं घड़ा और वस्त्रादि शब्दों को सुनने से भी इन पदार्थों का ज्ञान होता है। अतः चारो ही प्रमाण प्रमा को प्रकट करते हैं। प्रमाण युक्त प्रमा ही विज्ञान है। अन्तःकरण की वृत्तिविशेष का ही नाम विज्ञान है। यह विज्ञानवृत्ति चिन्मयी (ज्ञान-मयी) है। "ईशावास्यमिदं सर्वंयत् किञ्च जगत्यां जगत्" (ईशोपनिषद्) इस श्रौत-सिद्धान्त के अनुसार संसार में समष्टिरूप से सर्वत्र चिदंश व्याप्त है। सामान्यमनुष्य चेतन प्राणियों में तो चिदंश की सत्ता मानते ही हैं, परन्तु उन्हें विश्वास कराना चाहिए कि—जिन पदार्थों को वे जड समझते है, वे भी विज्ञान-दृष्टि के अनुसार चिदंश से नित्य युक्त रहते हैं। सर्वव्यापक इसी चैतन्य का दिग्दर्शन कराती हुई श्रुति कहती है—

> एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते।
> दृश्यते त्वग्रयया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः
> (कठ० १।३।१२)

सर्वव्यापक साथ ही में योगमाया के अनुग्रह से अन्तःकरणयुक्त बना हुआ यही चिदात्मा प्रत्येक वस्तु के केन्द्र में उक्थ (बिम्ब) रूप से स्थित रहता हुआ अर्करूप (रश्मिरूप) से बाहर निकलकर उन-उन विषयों से युक्त होकर उन-उन विषयों के आकार का बनता हुआ हमें (वैश्वानर-तैजस-प्राज्ञमूर्ति जीवात्मा को) उन-उन विषयों का ज्ञान करवाता रहता है। चित् के ये ही तीनों विवर्त क्रमशः 'उक्थ, अर्क और अशिति' इन नामों से कहे जाते है। विषय अशिति है आत्मरश्मियाँ अर्क है एवं स्वय आत्मा उक्थ है। आत्मा अन्तःकरणयुक्त चैतन्य है, आत्मरश्मियाँ अन्तःकरणवृत्ति-युक्त-चैतन्य है और तीसरा विभाग विषययुक्तचैतन्य का है। भिन्न प्रकार से यों समझिए कि—हमारे अंदर चित् है, जिन विषयों को हम देखते हैं

(अव्ययब्रह्मानुगृहीत अक्षर) की सत्ता स्वीकार की है। यही सब का आत्मा है। हम जो कुछ देखते हैं—"ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्" के अनुसार नाना भेदवाला यह सारा प्रपञ्च आत्ममय है, इसी आत्मदृष्टि के आधार पर "ब्रह्म वेदं सर्वम"—"सर्वं खल्विदं ब्रह्म"—"प्रजापतिस्त्वेवेदं सर्वं यदिदं किञ्च" इत्यादि वैदिकसिद्धान्त स्थित हैं।

सारांश—सत् और असतरूप कारणभूत ब्रह्म के कार्यरूप ब्रह्म, वेद और विद्या इन तीन कार्यों के कार्यत्व का निरास कर देने से दृश्यमान प्रपञ्च आत्मरूप ही है। घड़ा मिट्टी से बना है। मिट्टी कारण है और घड़ा कार्य है, इन दोनों में परस्पर भेदाभेद या भेदसहिष्णु अभेद संबंध है। ऐतदात्म्य संबंध से दोनों ही व्यवहार देखे जाते हैं। "यह घड़ा मिट्टी ही है" और "यह घड़ा मिट्टी से उत्पन्न हुआ है" ये दोनों ही व्यवहार सुप्रसिद्ध हैं। ठीक इसी तरह "ब्रह्म ईश्वर है," "विद्या ईश्वरकृता है," "वेद ईश्वर है" यह व्यवहार भी हो सकता है और "ब्रह्म ईश्वरकृत है," "विद्या ईश्वरकृता है" एवं "वेद ईश्वरकृत है" यह व्यवहार भी हो सकता है।

उक्त कार्यकारण भाव को लक्ष्य में रखते हुए हम वेद को साक्षात् परमेश्वर कह सकते हैं, साथ ही में वेद ईश्वरकृत है, यह भी कहा जा सकता है। जिन कारण पक्षपातियों के मत में ईश्वर वेदमूर्ति है, ईश्वर अन्य पुरुष से उत्पन्न नहीं है, नित्य है, अतएव वेद भी अपौरुषेय है, बना हुआ नहीं है, नित्यकूटस्थ है, उनके इस मत का भी कारण दृष्टि से समादर किया जा सकता है। और जो वेद को ईश्वरकृत मानने के पक्षपाती (कार्यदृष्टि को प्रधान माननेवाले) हैं, उनके मतानुसार भी वेद की अपौरुषेयता और नित्यता ज्यों की त्यों बनी रहती है। कारण-महापुरुष ईश्वर के अतिरिक्त उसका बनाने वाला और कौन हो सकता है। उधर उस नित्य महापुरुष की इच्छाशक्ति भी सर्वथा नित्य है। अतएव नित्य इच्छासिद्ध इस नित्य-वेद की अपौरुषेयता में कोई बाधा नहीं आ सकती। ईश्वर को पुरुष मान कर थोड़ी देर के लिए उसकी कृति का समादर करते हुए वेद को पौरुषेय भी मान लें, तब भी कोई हानि नहीं है। अतः "शास्त्रयोनित्वात्" (शारीरक सूत्र १।१।३) इत्यादि मानने में कोई आपत्ति नहीं आती।

पहले कहा है कि विश्व में वस्तुज्ञान के संपादक शब्द और अर्थ (विषय) ये दो ही विवर्त्त हैं। यद्यपि 'कर्म' नाम का एक तीसरा विभाग माना जाता है, परंतु दार्शनिकों ने इसका रूप में अन्तर्भाव मान लिया है। शब्द-तन्मात्रा भूतमात्रा की जननी है, इसी रहस्य को लक्ष्य में रखकर—"स भूरिति व्याहरत्-पृथिवीं व्यभवत्" इत्यादि कहा गया है। शब्द प्राथमिक है और अर्थ उत्तरभावी है। 'हम घड़ा जानते हैं' इस वाक्य में घटशब्द नाम है, घड़े का आकार रूप है और दोनों वाक्रूप कर्म हैं। इसी कर्म से घटज्ञान का उदय हुआ है। इस कर्मविज्ञान को आधार मान कर हम कह सकते हैं कि संसार में कर्मपूर्वक ही ज्ञान होता है। कर्म प्रथम है और ज्ञानद्वितीय है। ज्ञान संपादक शब्द प्रधान या शब्दयुक्त इसी ज्ञान को वेद कहा है। वेद शब्द तन्मात्रामय है, इसका सब से पहले विकास होता है अतएव वेद, ब्रह्म और विद्या इन तीनों में वेद विभाग को ही प्रथमज कहने के अभिप्राय से ही "ब्रह्मैव प्रथमसृज्यत त्रयीमेव विद्याम्" यह कहा गया है। आप अपने मुख से 'यह घड़ा' 'यह वस्त्र' इत्यादि वाक्य बोलते हैं, यह इसी वेदतत्व की महिमा है। वस्तु की उपलब्धि ही वस्तु का ज्ञान है। इस उपलब्धि का कारण यही वेदतत्व है। वेद उपलब्धि का कारण नहीं है, किन्तु उपलब्ध होनेवाला पदार्थ स्वयं वेद है। कारण वह शब्द तन्मात्रारूप वेदतत्व ही तो आगे

जाकर स्थूलरूप में आकर भौतिक विश्वरूप में परिणत हुआ है। उपलब्ध पदार्थ भौतिक हैं। त्रयीवेद ही इनकी उत्पत्ति, स्थिति और गति है। इसी उपलब्धि विज्ञान को लक्ष्य में रखकर श्रुति कहती है—

'त्रय्यां वाव विद्यायां सर्वाणि भूतानि अपश्यत्'

वेद से विषय का विकास होता है अतः यह प्रथम है। विषययुक्त ज्ञान ब्रह्म है अतः इसे दूसरा स्थान दे सकते हैं। शब्दात्मक वेद और विषयात्मक ब्रह्म से संस्कार युक्त ज्ञानरूप विद्यातत्व का उदय होता है, अतः इसे तीसरी कोटि में रखना न्यायसंगत है।

१ त्रयी वेदः (कर्मपूर्वक ज्ञानावस्था) शब्दावच्छिन्न ज्ञानं (ज्योतिः) प्रथमा

२ त्रयं ब्रह्म (ज्ञान सहकृत कर्मावस्था) विषयावच्छिन्न ज्ञान (प्रतिष्ठा) मध्यमा

३ त्रयी विद्या (ज्ञानपूर्वक कर्मावस्था) संस्कारावच्छिन्न ज्ञान (आत्मा) चरमावस्था।

वेद ही ब्रह्म बना है, वेद ही ब्रह्मरूप में परिणत होकर विद्या का कारण बना है अतएव वेद को ब्रह्म भी कहा जाता है और विद्या शब्द से भी संबोधित किया जा सकता है। यही वेद नाम का प्रथम पुरंजन विश्वोपलब्धि का कारण बनता हुआ स्वयंभू का स्वरूप समर्पक बनता है। ईशोपनिषद् का "अनेजदेकं" इत्यादि मंत्र इसी वेदतत्व का स्वरूप बतलाता है।

मोहन—मैंने 'वेद अनंत हैं' ऐसा भी सुना है, वह कैसे?

माधव—सोमगर्भित अग्निमूर्ति विश्व एक महावेद है, एवं विश्व के गर्भ में रहनेवाला प्रत्येक पदार्थ एक-एक अल्पवेद है। 'अनन्ता वै वेदाः' इस तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार इन व्यष्टिरूप अनन्त वेदों को अपने गर्भ में रखने वाले अग्नीषोममय महा[illegible] को विश्वव्यापक [illegible] है, जैसा कि उसके 'वेदमूर्ति' [illegible] है अतः व्यष्टिदृष्टि से [illegible] आपत्ति नहीं आती।

ईश्वरीयवेद महामाया [illegible] है [illegible] वही वेद योगमाया का आधार है। [illegible] जीव प्रजापति की सत्ता है [illegible] वेद पर स्थित है, अतः [illegible] में [illegible] सिद्ध हो जाता है। वह [illegible] आयतन है। [illegible] और रज के मिलने से [illegible] इस छन्दोमय वेद का उदय होता है, [illegible] गर्भस्वरूप बन जाता है। [illegible] करनेवाली यही योगमाया है। [illegible] कहता है—'योगमाया [illegible] जगत्।' ([illegible]) [illegible] आरंभ भाग पहले वेदरूप से [illegible] है। इसी प्रकार भगवान कहते हैं—

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत॥
सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता॥

(गीता १४।३-४)

अंतर्यामीतास्वा [illegible] भाषा में नेचर नाम से प्रसिद्ध [illegible]। प्रकृति, अव्यक्त, अक्षर, [illegible] नेचर कुछ भी कहिए एक ही बात है। यह मौलिक वेदतत्व भगवान् स्वयंभू [illegible] की प्रेरणा से स्वतः ही आविर्भूत हुआ है। [illegible] का ईश्वरपना और [illegible] निर्भर है। अनंत व्यक्तियाँ हैं जो [illegible] हैं और समष्टिरूप ईश्वर एक है जो [illegible] ही है।

आत्म विज्ञान—अद्वैत विज्ञान

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः
गुरुः साक्षात्परब्रह्म, तस्मै श्री गुरवे नमः।

इसका सच्चा अर्थ—परब्रह्म ही ब्रह्मदेव विष्णु और महादेव हैं, तथा वे ही हमारे साक्षात् गुरु हैं। परन्तु इसके विपरीत—हमारे यहाँ वाले गुरु ही पर ब्रह्मादि सब कुछ हैं, ऐसा अर्थ किया जाता है। वेदान्तशास्त्र की दृष्टि से संसार का कोई भी गुरु परब्रह्म नहीं है।

परब्रह्म के सृष्टि कर्तृत्व सामर्थ्य को श्रुतियों में "माया शक्ति" "प्रकृति" या "अविद्या" कहा गया है। इस सम्बन्ध में तीन प्रश्न होते हैं:—

१—क्या ये माया या अविद्या शक्ति भ्रम रूपा हैं या निर्भ्रान्ता है?

२—क्या ये किसी बाह्य पदार्थ से आई हुई आगमापायी शक्तियाँ हैं या निजी हैं?

३—क्या ये परमार्थ-सत्य हैं या मिथ्या हैं?

प्रथम प्रश्न का उत्तर है कि किसी शक्ति को भ्रान्त नहीं कहा जा सकता। जगत् में विद्युच्छक्ति, गुरुत्वाकर्षण शक्ति, अग्नि शक्ति ऐसी अनेक शक्तियाँ हैं। इनका उपयोजक ही भ्रान्त या अभ्रान्त हो सकता है, अर्थात् माया स्वयं भ्रान्ता नहीं है और न उसका स्वामी परमात्मा। मान्य है कि इस विराट् विश्व के अनन्त पदार्थ इन्हीं से सृजे हुए हैं जिनमें जीवात्मा के मनोधर्म याने काम क्रोध लोभ मोह भ्रम प्रमाद अज्ञान भी हैं परन्तु इनका स्थान मन के अन्दर ही है बाहर कहीं नहीं।

दूसरे प्रश्न का उत्तर—ये परब्रह्म की निजी शक्तियाँ हैं औपाधिक किसी बाह्य पदार्थ की नहीं हैं। सिद्धान्त यही है कि किसी भी उपाधि को परमात्मा में विकृति उत्पन्न करने की शक्ति नहीं है।

तीसरा प्रश्न बड़े मार्के का है। इसमें पेंच यह है कि यदि ये शक्तियाँ परमार्थ-सत्य हों तो ब्रह्म एक सत्य और ये शक्तियाँ भी सत्य, ऐसी द्वैतापत्ति आ जाती है। और मिथ्या कहें तो सृष्टि कर्तृत्व ही उन्मूलित हो जाता है। उत्तर यह है कि ये स्वरूप भूता शक्तियाँ हैं जिनका अन्तर्भाव परमात्मा के अखिल व्यावर्त्तक विशेषणों में ही हुआ है जैसे—सत्त्व चित्त्व आनन्दत्व शुद्धत्व मुक्तत्व इत्यादि जो किसी दृष्टि से द्वैतरूप नहीं हैं। फिर सत् का अर्थ ही सर्वशक्ति है, भले ही उसका विकास सामयिकता से होता रहे। श्वेताश्वतर उपनिषद् में इस सामर्थ्य को अविद्या तथा विद्या कहा गया है, अर्थात् इनको या इनको भी प्रस्तुत करा देने वाली सद्रूपा शक्ति को किसी दृष्टि से मिथ्या नहीं कहा जा सकता।

इसी प्रकार की आपत्ति 'अविद्या निवृत्ति' रूप मोक्ष के सम्बन्ध में भी की जाती है। यदि वह पारमार्थिक हो तो द्वैतापत्ति होती है, यदि मिथ्या हो तो मोक्ष ही सिद्ध नहीं होता। इसका शास्त्रसिद्ध उत्तर यह है कि 'अविद्या निवृत्ति' ब्रह्मस्वरूपा है, ठीक इसी प्रकार प्रकृति माया अविद्या—ये शब्द कोई पराई परतन्त्रा शक्ति को नहीं इंगित कर रहे हैं, परब्रह्म की निर्विशेष स्वरूप भूता शक्ति अर्थात् चैतन्य कारणता को ही बताते हैं। अद्वैत सिद्धान्त को किसी दूसरे की कारणता तो दूर रही, सहकारि कारणता भी नितान्त अमान्य है। क्षण भर के लिए यदि मान्य भी किया जाय कि ये स्पन्द-शक्ति ईक्षण इत्यादि जागतिक हैं, तो भी इनको अपनी स्वाधीनता से उत्पन्न और सञ्चालित करने वाला एक मेवा द्वितीय कारण परब्रह्म है जैसा कि ब्रह्मसूत्र 'सामान्यात्तु' में स्पष्टतया निर्णय दिया गया है। "यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै" (श्वेताश्वतर उपनिषद् ६-१८) इस प्रकार भले ही ब्रह्माजी इस सृष्टि की रचना करें, मूल कारणता परब्रह्म की ही है, इसमें कणमात्र भी सन्देह नहीं हो सकता। इन पण्डितों का

कहना है कि परब्रह्म को इस विश्व प्रपञ्च की खबर तक नहीं है, इसकी उत्पत्ति स्थिति संहार करने वाला एक 'साभास अज्ञान' नामक पदार्थ है। प्रकट है कि यह 'अज्ञान कारणता' वाली कल्पना इन्होंने बौद्ध सम्प्रदाय से ली है और केवल अपने को उससे अलग दिखाने के लिए 'साभास' उपपद लगा दिया है।

अज्ञान का अर्थ है—ज्ञान का अभाव। यह कोई पदार्थ नहीं है। प्रकाश के अभाव को अन्धकार पुकारते हैं, इसी प्रकार ज्ञान के अभाव को अज्ञान कहते हैं। अन्धकार कोई धुआँ या कुहरा जैसा पदार्थ नहीं है, उससे कुछ उत्पन्न नहीं हो सकता। विक्षेपों को उत्पन्न करने वाला मन है। अज्ञान का स्वरूप निद्रा में अच्छी तरह प्रतीत होता है। जब निद्रा हटती है उसी समय चञ्चल मन अनेक विक्षेपों को उत्पन्न करता रहता है। अतः स्पष्ट है कि जैसी अल्पज्ञता मनोधर्म है वैसी विक्षेपशक्ति भी एक मनोधर्म है, भले ही वह ज्ञान या ज्ञानाभाव से कम या अधिक हो। ये मनोधर्म मन के अन्दर ही रहते हैं बाहर कहीं त्रिलोक में नहीं। रज्जुसर्प भ्रान्त पुरुष के मन के भीतर है, बाहर कहीं भी नहीं है।

"सर्वं खल्विदं ब्रह्म" का विपरीत अर्थ

"सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत" यह मूल उपदेश छान्दोग्योपनिषद् ३-१४ में है और इसका अर्थ है, "इस विशाल विश्व की उत्पत्ति ब्रह्म से हुई है, इसकी स्थिति भी उसके प्रभाव पर ही अवलम्बित है और ब्रह्म ही संहारकर्ता है, अतएव अत्यन्त प्रसन्न चित्त से ब्रह्म की उपासना करनी चाहिए।" परन्तु इसके विरुद्ध बुद्ध धर्म के प्रसार के परिणाम स्वरूप ऐसी विचित्र धारणा बुद्धि पर छा गई कि जो विश्व बाहर दिखलाई पड़ रहा है, बाहर एक भी पदार्थ नहीं है, और जो कुछ भासित हो रहा है वह छाया मात्र है और वह भी हमारे दिमाग की कल्पना है एवं वह क्षणिक है, अतः ज्ञान भी [illegible] अनुभव सदा [illegible] सब दुःख [illegible] को अविद्या भावनाओं, [illegible] उसे व्यावहारिक सत्य, [illegible] केवल आभास, [illegible] रूप, स्वप्न, शून्य [illegible] बाहर पदार्थों का अस्तित्व [illegible] (ब्रह्म-सूत्र २।२।२८) "[illegible] महाचार्य का भाष्य [illegible] चीन अद्वैत वेदान्त ग्रन्थों में [illegible] शून्य है ऐसा [illegible] बौद्ध [illegible] की हुई दिखलाई देता है।

वेद असत्य, शास्त्र असत्य, गुरु [illegible]

वेद के विषय में [illegible] कुछ अनिश्चित रूप सा था। [illegible] सूत्र में उन्होंने उपहास [illegible] मन्त्रद्रष्टा। ऋषियों [illegible] ब्राह्मणों के सब शास्त्र अज्ञान सदा [illegible] हैं, उनके अध्ययन से [illegible] भी प्राप्त नहीं हो सकता, [illegible] नित्यप्रति उपदेश [illegible] उनकी [illegible] यदि ब्राह्मणों [illegible] शास्त्र स्वानुभव की भित्ति पर [illegible] फिर निश्चित [illegible] अनुभव [illegible] पदार्थ के [illegible] है, और वह भी [illegible] कल्पित होकर [illegible] वासनाओं के [illegible] अवस्था में भी [illegible] सब ज्ञान मिथ्या है [illegible]

आश्चर्य की बात है कि [illegible] वर्तमान स्वामी [illegible] गया है, उनमें भी [illegible] मिथ्या है और गुरु भी मिथ्या है, [illegible]

परन्तु उस कथन का यथार्थ आशय क्या है यह स्पष्टता से नहीं बताया जाता है। लौकिक भाषा में मिथ्या का अर्थ-सरासर झूठ, असत्य, भ्रम है, और यद्यपि वेदान्त परिभाषा से उसका अर्थ "सदसद्विलक्षण विनाशी पर व्यावहारिक सत्य" है तथापि दुर्भाग्य से लौकिक अर्थ ही वेदान्त साहित्य में बरबस घुँस गया है और सच्चे अर्थ को उसने मानो धता बता दिया है।

शास्त्र ग्रन्थ यदि अप्रमाण हैं तो ब्रह्मज्ञान और मोक्ष आदि के लिए साधन क्या है? इस प्रश्न के अनुरोध में भगवान बुद्ध का उत्तर यही रहा है कि आप अपने मन के भीतर जो क्षणिक विज्ञानों की अविरत धारा चल रही है उसे बन्द कर लो तो स्वयं ही निर्णय हो जायगा। जो कुछ व्यवधान है वह मनबुद्धि के सङ्कल्प विकल्पों का ही है। ब्रह्म के विषय में भगवान बुद्ध की कोई निश्चित अभिमति नहीं बनी थी इसलिए उनको साधनाओं का प्रणयन करना और उन पर जोर देना ही आवश्यक हुआ। श्रौत स्मार्त सभी कर्म उनकी दृष्टि से भ्रान्तिमूलक होने से उनका उपदेश नहीं किया जा सकता था। यज्ञ यागादि तो घृणित ही ठहराये गये। ब्रह्मविद्या तो ब्राह्मणों की कोरी कल्पना मात्र ही मानी गई थी। ईश्वर की आराधना और पूजा पाठ कैसे उपदिष्ट हो सकते थे जब ईश्वर है ही नहीं? अतः महात्मा बुद्ध को चित्तशुद्धि और ध्यान प्रणाली की साधनाओं पर ही निर्भरता करनी पड़ी। उन्होंने स्वयं भी इसी मार्ग की अन्त तक उत्कट आराधना की; आज भी उनकी प्रतिमाएँ हमें जहाँ तहाँ बद्ध पद्मासनस्थ बन्द नेत्र ध्यान मग्न स्वरूप ही दीख पड़ती हैं।

परब्रह्म और निर्वाण की खोज में भगवान् बुद्ध ने जो ध्यान योग का उपदेश किया और विज्ञान धारा को निरुद्ध करने का आदेश दिया उसका परिणाम कुछ विचित्र सा ही हो गया। यों देखा जाय तो मन की विज्ञान धारा का नितान्त निरुद्ध होना ही असम्भव है। प्रतिक्षण परिणामिनो हि भावा ऋते चितिशक्तेः ऐसा सांख्य और योग शास्त्रों का सिद्धान्त है। निद्रा में भी अविद्या वृत्ति का स्वीकार किया गया है, चित्त वृत्ति शून्य नहीं होती। निर्विकल्प या असम्प्रज्ञात समाधि में भी चित्त की 'प्रशान्त वाहितावृत्ति' का स्वीकार है, एवं तथ्य दृष्टि से नितान्त वृत्ति शून्यता होना ही असम्भव है।

मानव स्वभावतः ही जड़वादी है। अतः अधिकांश लोग इसे स्वीकार करने के लिए राजी नहीं हैं कि कोई अलौकिक अगम्य अशरीरी शक्ति इस विश्व के कार्यों को संचालित प्रभावित और नियमित कर रही हो। परन्तु कुछ अल्पांश लोगों को इसकी सम्भावना सम्मत होती है। फिर ऐसे अनेक विषय हैं जिनके सम्बन्ध में मानव समाज में अनादि काल से भिन्न भिन्न मत चले आ रहे हैं। उदाहरणार्थ—नित्य क्या है? अनित्य क्या है? जीवों की उत्पत्ति कैसे होती है? सुख क्या वस्तु है? दुःख क्या वस्तु है? परलोक और पुन र्जन्म हैं या नहीं? ऐसे नानाविध विचारों के परामर्श चर्चा और संघर्ष से ही तत्व दर्शन की उत्पत्ति होती है। भारतवर्ष में अतीत अनेक शताब्दियों से जो एवं विध विचारों का मंथन और आन्दोलन हुआ उसी से असंख्य मतवाद पंथ और सम्प्रदायों की सृष्टि हुई।

इस विश्व में जड़ और चेतन, दो प्रधान तत्व दिखाई देते हैं, पहला मूर्त या अमूर्त द्रव्यरूप है, और दूसरा अद्रव्य रूप। पहला क्रियारहित, गतिरहित है और दूसरा पहले को गतिशील या क्रियाशील बनानेवाला प्रेरकतत्व है। यद्यपि ये दोनों पृथक हैं तथापि वे एक दूसरे को छोड़कर नहीं दिखाई देते। इससे जान पड़ता है कि ये दोनों एक हैं। एक पक्ष का कहना है कि यही त्रिकाल विविध और

मिश्र, जड़ चेतन रूप निसर्ग, हमारा ईश्वर है। इसके विपक्ष में आपत्ति की जाती है कि यदि ईश्वर मानना है तो उसे न्यायी कृपाशील विधि विधानों का नियन्ता एवं कर्मफलों का दाता मानना ही समुचित है; निसर्ग में तो कोई न्याय नियम या विधि संगति दृष्टिगोचर नहीं होती। वर्षा होती है तो कहीं कम, कहीं अधिक, कहीं खेती को हितकर तो कहीं विनाशक; सर्दी हवा धूप की भी यही दशा है; फिर कहीं प्रचण्ड भूचाल होती है तो कहीं भयावह तूफ़ान, ऐसे विकराल बेढंगे निसर्ग को ईश्वर कैसे मानें ?

आधुनिक भौतिक विज्ञानवादियों ने अपनी खोजों में अब तक निश्चय ही अद्भुत सफलता प्राप्त कर ली है। उन्होंने रसायन शास्त्र की दृष्टि से सृष्टि के मूलतत्व, कुछ काल के पहिले, ९२ निश्चित किये। बाद में इलेक्ट्रॉन्स और प्रोटॉन्स, अर्थात् एक नियम्य और दूसरा नियामक, ऐसे दो ही तत्व निश्चय किये, और अब तो एक ही प्रेरक या कारक तत्व माना जा रहा है। परन्तु इसे भी वे जड़ चेतन रूप मानते हैं, और इससे परे कोई अधिष्ठान रूप ईश्वर नाम से पहचाना जाने वाला विश्व का नियन्ता है, इसे उनकी मान्यता नहीं है।

इस अनुषंग में आस्ट्रिया के मानस शास्त्र ख्यात नाम फ्रायड ने ईश्वर के सम्बन्ध में इस प्रकार चुटीली व्याख्या की है—*God is a function of the unconscious, invented to take the place of the father whom we gratefully acknowledged in childhood and whom we miss in maturity.*

लगभग यही सब जड़वादियों की धारणा है, और बड़े आश्चर्य की बात है कि यही भूमिका, कुछ प्रच्छन्नरूप से हमारे अर्वाचीन अद्वैत में भी प्रश्रय पा गई है। माना गया है, ब्रह्म भी ऐसा ही कुछ अत्यन्त सूक्ष्म और सर्वव्यापी [illegible] है, [illegible] और गतिशील है [illegible], प्रेरणा प्रेरकता विहीन [illegible] है। फिर कहा जाता है कि [illegible] ज्ञानधर्म संसार में उत्पन्न होता [illegible] तत्व को स्वयं [illegible] अपने द्वारा संसार में [illegible] भी प्रपञ्च उत्पन्न हुआ है या हो रहा है, [illegible] भी उस ब्रह्म को [illegible] नहीं है। [illegible] धारणा सम्यक् ज्ञान में [illegible] है यह कहाँ तक बतलाया जाय ? [illegible] वेदान्तियों की प्रच्छन्न [illegible] का यही रहस्य है।

अद्वैत तत्व ज्ञान

इस प्रकार यह जड़वाद या [illegible], चार्वाक, मीमांसक से लेकर [illegible] किसी न किसी रूप में हम लोगों के [illegible] हुआ है और इसके कारण हमारे [illegible] अपार हानि हुई है। चार्वाक तो [illegible] निरीश्वरवादी है, मीमांसक [illegible] प्रामाण्य के विचित्र आधार पर [illegible] अथवा निष्क्रिय ईश्वरवादी है। [illegible], नैयायिक और जैन अपने [illegible] सिद्धान्तों के अभिमान में ईश्वर [illegible] रखनेवाले, और बौद्ध तो पूरे [illegible] हैं। और आश्चर्य यह कि [illegible] विचारों की घनघटा [illegible] धारण कर हमारी बुद्धि पर [illegible] है। ऐसी दशा में हमारी [illegible] की थाह लगाना [illegible] आवश्यक है।

सृष्टि के गूढ़ तत्वों का [illegible] बुद्धि के बल पर [illegible] जितना इस [illegible] किया है उतना संसार के [illegible] किया हुआ नहीं [illegible] में, अर्थात् [illegible]

काल में जब अन्यान्य जातियाँ प्रायः कन्यावस्था में थी और भौतिक विज्ञान शास्त्रों की कुछ भी प्रगति न हो पाई थी, उस समय अध्यात्म विज्ञान की अद्भुत खोज लगाना, और इस विराट प्रपञ्च को उत्प्रेरित प्रकाशित और प्रभावित करने वाली अद्वितीय शक्ति का लक्षण केवल "ज्ञान स्वरूप" है ऐसा लेखांकित कर रखना, आज के उद्भट विद्वानों को भी चकित और स्तंभित कर देने वाली है।

परब्रह्म का स्वरूप

अद्वैत विज्ञान की दृष्टि से परब्रह्म का स्वरूप लक्षण 'सत्यं ज्ञान मनन्तम् ब्रह्म' है, इसी को 'सच्चिदानन्द' भी कहते हैं। और वह नित्य, शुद्ध, बुद्ध मुक्त स्वभाव सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् है, यह हमारा सिद्धान्त है। श्री शङ्कराचार्य अपने ग्रंथों में विशेषकर ब्रह्मसूत्रों के भाष्य में जहाँ जहाँ ब्रह्मशब्द का निरूपण आया है वहाँ वहाँ इन विशेषणों का प्रयोग किये बिना नहीं रहते। 'जन्माद्यस्य यतः' इत्यादि ग्यारह सूत्रों के भाष्य में ब्रह्म के अचिन्त्य सामर्थ्य विश्व की उत्पत्ति स्थिति और संहार कर्तृत्व, नियतृत्व प्रशासितृत्व का स्पष्ट रूप से निरूपण किया गया है सैकड़ों श्रुतिवचन इसी वर्णन को निर्धारित कर रहे हैं, उदाहरणार्थ बृहदारण्यक ३-८-९ तथा ४-४-२२; श्वेताश्वतर ३-३,४, ४-९, ९-१२, १६, तैत्तरीय आ० ३-१२-७ देखिए।

सत् चित् और आनन्द का अर्थ

'सच्चिदानन्द' लक्षण में जो सत् चित् और आनन्द, तीन पद हैं उनमें सत् पद का अर्थ ही सत्ता अर्थात शासन एवं प्रभुत्व है। किसी सम्राट् की सत्ता एवं आधिपत्य उसके विशाल राज्य पर जैसे बना रहता है उससे अत्यधिक मात्रा में अनन्त ब्रह्माण्डों पर इस निष्कल निष्क्रिय 'नेति नेति' स्वरूप परब्रह्म का अखण्ड दण्डायमान प्रशासन है। बृहदारण्यक उपनिषद् के अन्तर्यामी ब्राह्मण (बृ० ३-७) में इसी रहस्य को लक्ष्य कर सरल मधुर गम्भीर निर्वचन किया गया है। यह ऐश्वर्य मौलिक सत्ता स्वरूप है, अद्वितीय है, सदा अविकृत निरपवाद और देशकाल वस्तु रूप परिच्छेदों से परे हैं। इससे स्पष्ट होगा कि सत् शब्द का अर्थ केवल अस्तिता ही नहीं है। सोचने की बात है कि अस्तिता तो चित् में भी है। आनन्द में भी है। अस्तिता विहीन चित् अर्थात् ज्ञान और आनन्द हो नहीं सकते। फिर इनसे पृथक् रूप से सत् शब्द का प्रयोग करने की आवश्यकता ही क्या थी? देखिए न, ब्रह्म शब्द कहते ही उसकी अस्तिता तो आ ही जाती है। अतः सत् शब्द का अभिप्राय केवल अस्तिता में नहीं है, उससे बहुत ही ऊँचा है। किसी भी लक्षण में देखिए अस्तिता बताई हुई नहीं रहती जैसे 'सास्नादिमत्वं गोत्वम्' यहाँ गौ की अस्तिता, और फिर उसके कण्ठ के नीचे गलत्था रहता है, ऐसा नहीं बताया गया है। 'संकल्प विकल्पात्मकं मनः' यहाँ भी मन का अस्तित्व और फिर वह संकल्प करता है और विकल्प भी करता रहता है, ऐसा नहीं कहा गया है। यदि कहा जाय कि सत् शब्द पारमार्थिकता इङ्गित करता है तो फिर क्या चित् और आनन्द क्षणिकता के द्योतक हैं? और क्या उनमें अस्तिता नहीं है? अतः परिस्फुट है कि 'सत्' पद परब्रह्म की प्रभाविता का द्योतक है।

चित् पद का अर्थ ज्ञान है किन्तु व्यवहार में जो ज्ञान के प्रकार हमको प्रतीत होते हैं अर्थात्, सुनना देखना जानना, या पदार्थों का ज्ञान, गणित वैद्यक ज्योतिष आदि शास्त्रों का ज्ञान, अथवा पारमार्थिक ज्ञान भी चित् शब्द का अर्थ नहीं, किन्तु इन सब उत्पन्न होने वाले ज्ञानों को सत्तास्फुरण प्रदान करने वाला जो परब्रह्म का प्रतिमा सामर्थ्य है वही चित् है।

आनन्द शब्द का अर्थ बहुत गम्भीर है। तैत्तरीय उपनिषद् ब्रह्मवल्ली के सातवें अनुवाक में 'रसो वै सः। रस ँ ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी

भवति । को ह्येवान्यात्कः प्राण्यात् । यदेष आकाश आनन्दो न स्यात् । एष ह्येवाऽऽनन्दयाति । ऐसा हृदयग्राही उत्तेजनापूर्ण वर्णन है । बृहदारण्यक ४-३-३१ में भी एतस्यैवानन्दस्य अन्यानि भूतानि मात्रा मुपजीवन्ति ऐसा प्रतिपादन है । संसार में प्राणिमात्र को अपने अपने व्यवहारों में जो सुख और आमोद का अनुभव होता है वह इसी आनन्द सत्ता के लवलवांश का प्रतिबिम्ब मात्र है, असल की उसमें बात नहीं आती, हाँ, तत्ववेत्ता ज्ञानी पुरुषों को इस आनन्द की अत्यधिक मात्रा में स्वानुभूति होती है । परन्तु लक्ष्य रूप जो परितुष्टि और शान्ति उसी का आनन्द कहा गया है ।

जगत् स्वप्न नहीं है

वेदान्त ग्रन्थों में जगत् को स्वप्न का दृष्टांत दिया हुआ पाया जाता है । प्रकट है कि दृष्टांत एकदेशी ही रहता है, वह दार्ष्टान्त नहीं हो सकता । स्वप्न और जागृति का शास्त्र से ही विरोध सिद्ध है; स्वप्न में काल का ज्ञान नहीं रहता, अगला पिछला स्मरण नहीं रहता, व्यवहार से स्मरण और प्रत्यभिज्ञा रहता है । स्वप्न व्यवहार जागृति में नष्ट होता है किन्तु स्वप्न की स्मृति रहती है, उस प्रकार स्वप्न में पूर्व जागृति का स्मरण नहीं रहता, जागृति में जगत् के बड़े बड़े कार्यक्रम शृङ्खला से चलाये जाते हैं, उनका वृत्तान्त तैयार किया जाता है, रिपोर्ट छपते हैं, अनेक देशों से पत्र-व्यवहार, लेन-देन, प्रवास, परिषदों के अधिवेशन इत्यादि बहुविध कार्य प्रणालियाँ अनुसंधान के साथ वर्षानुवर्ष जारी रहती हैं, स्वप्न में यह कुछ रहता ही नहीं । हमको चाहिए कि हम सैद्धान्तिक दृष्टि का अवलम्बन करें । दृष्टान्त को दार्ष्टान्त बनाकर जगत् का प्रतिभासिकत्व सिद्ध करने के लिए अट्टहास करते रहना, अपना और दूसरों का सरासर वञ्चना करना है । दुर्भाग्य है कि ऐसी भुलावा देने वाली भाषा हमारे वेदांत ग्रन्थों में [illegible] स्वरूप हमारा [illegible] था कि झूठ क्यों [illegible] कहते चले जाइए, [illegible] प्रतीत होता है । [illegible] भी आ गया है । [illegible] से जगत् को [illegible] । जगत को झूठ कहना [illegible] रीत भावना से [illegible] जिसका परिणाम [illegible] १६वें अध्याय में [illegible] है कि जगत् को मिथ्या [illegible] कह सकते हैं किन्तु [illegible] प्रतिभासिक, प्रतिपादन [illegible] के विरुद्ध है, [illegible] घोषित [illegible] करेगा, किन्तु [illegible] कुछ का कुछ कह देना [illegible] भगवद्गीता जगत् को [illegible] है, इसलिए जगत् को असत्य मानने वालों की उसने कठोर निन्दा की है ।

अद्वैत विज्ञान की दृष्टि से [illegible] विश्वजगत माया स्वप्न [illegible] है, ऐसा नहीं भी स्वीकार नहीं है । वास्तव में [illegible] 'अज्ञान' नामक, इस संसार में कोई [illegible] नहीं है । जैसे अन्धकार कोई पदार्थ नहीं है प्रकाश के अत्यधिक अभाव [illegible] नाम है, ठीक उसी प्रकार [illegible] अभाव को ही अज्ञान कहते हैं अर्थात् [illegible] समिष्ट नहीं हो सकते । [illegible] अत्यधिक [illegible] दूसरी समिष्ट होती है । [illegible] वैसा ही [illegible] 'समिष्ट' कहना । परन्तु दुर्भाग्य से [illegible] पिछले वर्षों का [illegible] बाद [illegible] हो गया और इस [illegible] हो जाने पर पड़ा किया गया ।

ऊपर के उद्धरण, श्री म० दा० गाडगील, इंजिनियर, द्वारा लिखित एवं प्रकाशित 'अद्वैत तत्व सिद्धान्त के विषय पर "आत्म विज्ञान" नामक ग्रन्थ में से यंत्रतंत्र प्रकरणों से लिये गये हैं। 'आत्म विज्ञान'' श्री गाडगील ने अनेक शास्त्रों के गम्भीर एवं तटस्थ अध्ययन एवं समन्वयात्मक विचार दृष्टि से सत्यशोधकों और साधकों के समाधान हित लिखकर प्रकाशित किया है जिसमें दो उद्बोधक प्रबन्ध हैं, एक है "ब्रह्म विद्या और उसके चतुर्दिक उत्पन्न अविचारण्य' और दूसरा—'ईशावास्य उपनिषद्'। इस पुस्तक का आत्म विज्ञान से साक्षात् सम्बन्ध है और जिज्ञासुओं को इसमें काफी समाधान मिलेगा।

कठोपनिषद् (१-२२) में कहा है—

"देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा"

अर्थात् इस आत्मतत्व के विषय में देवताओं को भी पहले बड़ी दुविधा रही। आगे १-३-१२ में कहा है:—

दृश्यते त्वग्रयया बुद्ध्या
सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः।

अर्थात् प्रवीण दृष्टि पुरुषों को अपनी कुशाग्र बुद्धि द्वारा आत्म ज्ञान अवश्य प्राप्त हो सकता है।

तत्वमसि, अहं ब्रह्मास्मि, सर्वं खल्विदं ब्रह्म, ज्ञानादेव तु कैवल्यम्, ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः ; इत्यादि बहुत से साधन और ज्ञान सूत्रों का स्पष्ट सरल यथार्थ विवेचन श्री गाडगील जी ने, इंजिनियर होते हुए भी इस ग्रंथ में करके अपने जीवन की उपार्जित दैवी सम्पत्ति रख दी है। पुस्तक में चार सौ से अधिक पृष्ठ और कतिपय ज्ञान गम्भीर बड़े-बड़े विवरण पत्रक लगे हुए हैं। पुस्तक का मूल्य पाँच रुपये है, और आत्म विज्ञान के जिज्ञासु यह श्री म० दा० गाडगील, इंजिनियर, आनन्द विलास, काचीगुडा, हैदराबाद (दक्षिण) से प्राप्त कर सकते हैं।

—विश्वामित्र वर

आवश्यक सूचना

१—कल्पवृक्ष सम्बन्धी पत्र-व्यवहार में, अगले वर्ष का मूल्य भेजते समय मनीआर्डर कूपन में, तथा पता बदलने के लिए अपने पत्र में अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखें।

२—किसी मास का अंक न मिलने पर, अगले मास में हमें लिखें। तीन चार मास या साल भर बाद लिखने पर कोई ध्यान न दिया जायगा। अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखें।

३—पत्र-व्यवहार में, जवाबी-टिकट या कार्ड अवश्य भेजें।

४—ग्राहक नम्बर न लिखनेवालों की चिट्ठियाँ तथा मनीआर्डर आदि पर कोई कार्य न किया जायगा। इसमें हमारा बहुत समय व्यर्थ जाता है।

५—प्रतिमास प्रतिव्यक्ति का पता अच्छी तरह दुबारा जाँच कर हमारे यहाँ से कल्पवृक्ष भेजा जाता है। डाक की अव्यवस्था से किसी को न मिले तो उसकी शिकायत पोस्ट आफिस से करना चाहिए। हम पर कोई जिम्मेदारी नहीं।

—व्यवस्थापक कल्पवृक्ष कार्यालय, उज्जैन नं० १ (म० भा०)

मैं परमात्मा हूँ

श्री विश्वामित्र वर्मा

मैं शरीर नहीं हूँ। मैं मन बुद्धि अहंकार और चित्त भी नहीं हूँ। मैं आँख कान नाक जिह्वा आदि इन्द्रियाँ भी नहीं हूँ। मैं कर्त्ता भोक्ता भी नहीं हूँ। मैं हूँ। मैं केवल हूँ। मैं अहंकार-रहित सत्ता हूँ। शरीर मेरा यन्त्र है। मन बुद्धि अहंकार चित्त इन्द्रियाँ कर्त्ता भोक्ता मेरे निमित्त, आत्म प्रदर्शन के साधन हैं। जैसे मेरे आत्म प्रदर्शन के लिए इनका होना आवश्यक है वैसे ही मेरे बिना ये सब व्यर्थ हैं क्योंकि मेरे बिना ये सब निष्प्राण होंगी।

मैं अरूप, अव्यक्त, अकल्पनीय अक्षय सबका मूल और सर्वस्व हूँ। मैं अजन्मा अनादि, अनन्त और असीम हूँ। मैं चेतन हूँ। मेरा कोई नाम नहीं। संसार की सब भाषाओं में मेरे बहुत से नाम हैं परन्तु मैं सब नामों से परे निर्द्वन्द हूँ। मैं सर्वनाम हूँ। व्यष्टि रूप में सर्वनाम अहम्, और समष्टि रूप में भी सब प्राणियों में अहम् हूँ। यही सब में मेरा नाम है। शेष सब नाम अहंकारी शरीर मन बुद्धि इन्द्रियों के हैं, जिनके मिट जाने से नाम भी मिट जाता है फिर भी अहम् में कुछ भी न्यूनता नहीं होती। सबका मूल और अन्त, जन्म और मृत्यु, मैं हूँ। सब कुछ दृश्य अदृश्य, चर अचर, दूर और पास, भीतर और बाहर मैं ही हूँ। यह सब अनेक दिखनेवाला गुण कर्म स्वभाव रूपात्मक भेद में ही एक और अभेद हूँ। मुझसे भिन्न कुछ नहीं है। मेरे अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

शरीर मेरा एक घर है, मन बुद्धि इन्द्रियाँ आदि यन्त्र साधन बहिर्मुखी होने के कारण नाना भेद रूपात्मक मेरी ही माया में परस्पर भिन्नता भासती है। इन्हीं का खेल यह संसार है। यही द्वैत और संघर्ष तथा विषमता है, परन्तु वस्तुतः कुछ भी नहीं है। [illegible] मेरी प्रेरणा है। सब मेरी [illegible] महत्तत्व की लीला है। मैं [illegible] परन्तु सर्वव्यापक हूँ। मैं [illegible] परन्तु स्वयं सर्वसामर्थ्य हूँ। [illegible] परन्तु स्वयं सर्वज्ञान हूँ। मैं कोई [illegible] होने वाला, सर्वज्ञान और [illegible] वाला व्यक्ति नहीं हूँ कि मुझे किसी से [illegible] सर्वज्ञान शक्ति सत्ता [illegible]। ये [illegible] से प्राप्त नहीं हुई हैं और न मुझसे [illegible], न मैं किसी को देता हूँ। मैं [illegible] मुझसे लेन देन करने वाला, कोई मेरे [illegible] है ही नहीं।

सब नफा नुकसान, विकास और [illegible] मेरा है। सब मेरी ही [illegible] है। सब [illegible] और संघर्ष मेरी लीला है। वास्तव में [illegible] कुछ भी नहीं है। रोग और [illegible], [illegible] अमीरी, सुख दुःख सब अलग-अलग नहीं हैं। सब में मेरी चेतनसत्ता है। कोई शुभ या [illegible] या अनिष्ट नहीं है। ये सब शरीर मन बुद्धि इन्द्रियाँ आदि यन्त्रों और साधनों [illegible] हैं। बहिर्मुखी वृत्तियों से मन बुद्धि [illegible] अहंकारी इन्द्रियों को ही ये [illegible] है। मुझे नहीं। मैं इन सबसे परे हूँ। मैं केवल [illegible] हूँ, सर्वत्र अखण्ड [illegible] हूँ। [illegible] हूँ। जैसा मुझे मानो वैसा ही [illegible]। [illegible] नहीं हूँ किन्तु शरीर मन बुद्धि इन्द्रियों [illegible] प्रकाशित प्रगट और [illegible] होता हूँ। [illegible] बहिर्मुखी वृत्तियाँ होने के [illegible] रूप द्वैत संघर्ष इन सब [illegible] शुभ, सर्वबल, [illegible] सर्वस्व मैं प्रगट नहीं होने [illegible] होने वाला मेरी [illegible] मेरी लीला है—[illegible]

कर्त्ता भोक्तापन की स्वतन्त्रता दे रखी है, मैं इनके सङ्कल्पों में हस्तक्षेप नहीं करता। मुझ अव्यक्त से ही इन्हें अहंकार मिला है, बहिर्मुखी अहंकारवश ये सब विवेक शून्य होकर संभ्रान्त होते हुए अपने परम स्वरूप को, मुझको भूले से रहने के कारण, मेरी सतत शुभ प्रेरणा को सुनते नहीं, मानते नहीं, अनुकरण करते नहीं, इसी कारण रोग दुःख गरीबी संघर्ष आदि भासते हैं।

मुझमें न रोग है, न दुःख है, न अभाव है। मैं सर्व शुभ, सर्वस्व, पूर्ण हूँ और संकल्पों के आवाहन के अनुकूल सर्वत्र सर्वहेतु सर्वरूप में सर्वदा और सर्वथा, प्रगट होता हूँ, अर्थात् जो अहंकारी जैसा विचारता है, जैसा बोलता है उसके अनुकूल ही, अर्थात् इस श्रद्धानुकूल ही सबको सब कुछ देता हूँ अर्थात् अपने आपको, स्वयं महत्तत्व को प्रगट करता हूँ। यही कारण है कि मैं स्वयं कुछ नहीं करता। अर्थात् मैं किसी की इच्छा, भावना, वाणी, सङ्कल्प, योजना, आकांक्षा के विरुद्ध स्वयं कुछ नहीं करता। जहाँ जैसे संकल्प से जिस प्रकार जिस हेतु मेरा—महत्तत्व का—आवाहन होता है उसी के अनुसार प्रगट होता हूँ। चाहे रोग दुःख गरीबी आदि हो, चाहे स्वास्थ्य, सौन्दर्य सुख सामर्थ्य पूर्णता, शान्ति के रूप में हो। मैं सर्वस्व सर्व का मूल अक्षय असीम अशेष अदृश्य भण्डार हूँ।

मैं कहीं दूर अलग नहीं हूँ। तुम्हारे ही अन्दर सर्वदा मौजूद हूँ, तुम्हारा परम-आत्मा हूँ। मैं तुम्हारा परम सत्य, शिव, सुन्दर, परम-आत्मा हूँ। तुम भी मुझसे पृथक् दूर नहीं हो। तुम और मैं अभिन्न हूँ। दोनों एक हैं, दो नहीं। मुझ अव्यक्त की व्यक्त अहंकारी सत्ता की लीला के कारण ही यह नाना भेद रूप द्वैत भासता है। वास्तव में मूलतः मैं सब में अव्यक्त व्याप्त सबका सर्वस्व हूँ। सब अपने सङ्कल्पों के अनुरूप मुझसे सब कुछ पाते हैं। किसी को कुछ भी कहीं बाहर से नहीं मिलता। सब कुछ सङ्कल्प रूप में सबके भीतर ही मौजूद, मैं ही सर्वस्व हूँ, मुझसे ही सब प्रगट होता है। संकल्प इच्छा, प्रेरणा, वाणी, ही मेरा क्षेत्र है, इनके बिना तुम न तो कुछ जानते हो, न पाते हो। तुम्हारा सङ्कल्प ही तुम्हारा बीज है, वह तुम्हारी चेतना में—मेरी भूमि में—मुझमें प्रस्फुरित होता, उगता और फलित होता है। अनुसन्धान के संकल्प से तुम अनुसन्धान और आविष्कार करते हो। रोग और गरीबी के चिन्तन से तुम रोग और गरीबी की खेती काटते हो, फिर स्वास्थ्य और अमीरी की फसल कहाँ से पाओ? तुम सब नाना रूप मेरे ही आत्म रूप हो। मुझमें भेद नहीं। मैं सब में अभेद हूँ। यही कारण है कि सब तुम लोग अपने सङ्कल्प, भावना, इच्छा, के अनुकूल रोगी निरोगी, दुःखी सुखी, पूर्ण या अपूर्ण, भासते हुए द्वैत की भ्रान्ति में रहते हो, अपने ही भीतर, अपने आपको, अपने आत्मतत्व को, अपने सर्वस्व को, अपने परम आत्मा को, मुझको - जानने पहचानने, अनुकरण करने के अनुसार स्वसंकल्प अनुसार सब कुछ पाते हो, अन्यथा मैं किसी का पक्षपाती नहीं मुझे कोई विशेष प्यारा अथवा जघन्य नहीं है। तुम कुछ भी करो, कुछ भी कमाई करो, कुछ भी भोगो, कुछ भी पाओ, कुछ भी अनुसन्धान या आविष्कार करो, कुछ भी बनाओ या बिगाड़ो, वंश उत्पत्ति करो या परस्पर संघर्ष से सर्वनाश करो, मुझे मानो या न मानो, मुझ पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता, सब कुछ तुम्हारा है, तुम्हारे हित है। कोई मुझे कम माने तो उससे मैं कुछ छीन नहीं लेता, कोई मुझे अधिक माने तो उसे मैं अधिक दे नहीं देता। मैं किसी प्रकार किसी के कुछ मानने या न मानने से बढ़ता या घटता नहीं, प्रसन्न या अप्रसन्न नहीं होता। सब तुम्हारी ही खेती है।

तुम चाहो तो शुभ संकल्पों के अभ्यास से मुझसे शुभ प्रेरणा पाकर मेरे शुभ तत्त्व का साक्षात्कार करके अपना शुभ रूप देख सकते हो । स्वास्थ्य सुख का आकांक्षा—सच्ची हार्दिक—दृढ़ आकांक्षा से मेरे सर्वसमर्थ महत्तत्त्व को अपने में आत्मसात कर सकते हो । मैं स्वतः परम सत्य हूँ परम शिव हूँ, सुन्दर हूँ, और तुम्हारे लिए, तुम्हारी भावना के अनुरूप सर्वत्र सर्वथा सर्वदा सर्वस्व हूँ । परम-आत्मा हूँ । बार बार सतत लगन से तुम जो कल्पना करोगे, बोलोगे, इच्छा करोगे उसी ओर तुम्हें प्रेरणा, शक्ति, उत्साह और साधन तुम्हारे सम्मुख उपस्थित करूँगा, चाहे वह तुम्हारे लिए इष्ट हो या अनिष्ट इसमें मेरा [illegible] नहीं । यह तो तुम्हारी जिम्मेदारी है तुम्हारा [illegible] है । जैसा बोओगे वह [illegible] पाओगे यह [illegible] या अकृपा नहीं, मेरा सिद्धान्त है, [illegible] है ।

मैं मूल सङ्कल्प हूँ, सङ्कल्प से [illegible] होकर शब्द बनता हूँ, शब्द से कर्म, और कर्म से स्थूल साक्षात्कार होता हूँ । जैसा सङ्कल्प करोगे वैसा ही मेरा साक्षात्कार होगा । मैं सर्वस्व हूँ । मैं परमात्मा हूँ । [illegible] शिव सुन्दर का साक्षात्कार पाने के लिए तदनुरूप सतत संकल्प और शब्द करो ।

ईशोपनिषद् पद्यानुवाद

श्री पं० सूर्यभान जी मिश्र

ईशावास्यमिदँ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेनत्यक्तेन भुंजीथा मा गृधःकस्य स्विद्धनम् ॥१॥

ईश व्यापि चर अचर के, लखत भले बुरे काज ।
न्याय कर्म फल सम करत, रचि सुख विधि साज ॥
प्रभु के दिये पदार्थ से, पोषण कर हरषाय ।
अशन वसन बल तुष्ट रह, पुनि उस के गुन गाय ॥
लोभ त्याग पर वस्तु को, पर वस्तु बुरा बलाय ।
बल से पर वस्तु हरण को, दण्ड बहुत दुख दाय ॥

कुर्वन्नेवेह कर्माणिजिजीविषेच्छतँ समाः ।
एवन्त्वयिनान्यथेतोऽस्ति न कर्मलिप्यते नरे ॥२॥

नित्य नियम से सुकर्म कर, कुकर्म से चित हटाय ।
चाह आयु शत वर्ष कर, और मोक्ष सुख दाय ॥
भले कर्म से मनुष्य को, सुख सम्पत्ति मिलाय ।
बुरे कर्म सम्पर्क से, दुख दारिद्र्य सताय ॥

असुर्य्यानाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः ।
तांस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्म हनो जनाः ॥३॥

आत्म घात करके मनुष्य, अन्ध निविड़ में जाय ।
मृत्यु पश्चात मर्त्य लोक में, मलिन योनि प्रकटाय ॥
आत्म घात मूरख करत, जिन्हें कुसंग की बानि ।
अथवा अपठ मनुष्य को, सूझत नहिं निज हानि ॥

अतः वेद अध्ययन कर, चित को स्थिर जमाय।
अरु हृदयेश्वर को भजन, निशि वासर हर्षाय ॥

जिस ब्रह्म का पूर्व मंत्र में वर्णन है वह कैसा है ?

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्शत।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥४॥
ब्रह्म अद्वय अरु अचल रस, मन से बहु वेग वान।
धारत वायु मेघादि अरु, हर स्थल में विद्यमान ॥
ब्रह्म अविचल सर्वत्र रह, निरखत अणु महान।
मन इन्द्रिय के विषय बिन, उस से इन्द्रिय अज्ञान ॥
ब्रह्म सर्व शक्तिमान् अद्वय, हर वस्तु में विद्यमान।
उससे छिपकर पतंग भी, नहिं कर सके उड़ान ॥
तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥५॥
ब्रह्म देत गति चर अचर को, जिमि चुम्बक गति देय।
किन्तु स्वयं अविचल रहत, दूर और नियरेय ॥
ब्रह्म व्याप्त हर जीव में, जिमि सुर्मा दृग माहिं।
योगाभ्यास से वह मिलत, वरना मिलता नाहिं ॥
जैसे दियासलाई बिन, अग्नि नहीं प्रकटाय।
तैसे योगाभ्यास बिन, ईश्वर नहीं मिलाय ॥

प्रश्न ब्रह्म ज्ञान का फल क्या है ?

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥६॥
परमेश्वर को जो समझते, सर्व व्याप्त हर याम।
उसके भय से कबहु वे, करत न निन्दित काम ॥
यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥७॥
जब योगी को चर अचर, ब्रह्म रूप दरशाय।
तब उसको शोक मोह कछु, कबहुँ न स्पर्श कराय ॥

जिस ब्रह्म के ज्ञान से शोक मोहादि की निवृति होती है उसके स्वरूप का अब प्रतिपादन करते हैं।

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥८॥
ब्रह्म उत्पादक विश्व का, अद्वय सर्व शक्तिमान।
सूक्ष्म से सूक्ष्म नहीं परमाणु के न समान ॥
अविनाशी सबसे पवित्र, अजर अरु अमर महान।
अन्तर्यामी चर अचर का, उसको सबका ज्ञान ॥

ब्रह्म अद्वय बिन बदन के, अक्षय रहित महान ।
नस नाड़ी बन्धन रहित, अरु व्रण रहित [illegible] ॥
बिन वाणी भाषण करत, सुनता सब बिन कान ।
नयन बिना देखत जगत, सुंघत गन्ध बिन घ्राण ।
आनन बिन षट रस परख, तन बिन स्पर्श ज्ञान ।
हाथ बिन सब कारज करत, पग बिन चल सब स्थान ॥
ब्रह्म जन्म बिन मरण बिन, अनादि काल से मान ।
रचत सृष्टि पालन करत, पुनि बिन हेतु [illegible] ॥
रक्षा करत सब जगत का, सङ्कट समय महान ।
उसके अनमोल दान को, को कर सके बखान ॥
अन्धन्तमः प्रविशन्तियेऽविद्या मुपासते ।
ततो भूय इवतेऽतमो य उ विद्यायाँ रता ॥९॥
ज्ञान काण्ड को त्याग कर, केवल कर्म कराय ।
गहन अन्धेर में वे पड़त, निश्चय कर [illegible] ॥
कर्मकाण्ड को त्याग कर, ज्ञान में रमण कराय ।
वे उससे भी अधिक, अन्धकार प्रविशाय ॥
या ते उपासक को चहिय, ज्ञान कर्म कर संग ।
या विधान अनुसरन से, कबहुँ न उपजत भंग ॥
अन्य देवा हुर्विद्ययान्य दाहुर विद्यया ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्त द्विचचक्षिरे ॥१०
ज्ञान और कर्म काण्ड के, वर्णत फल भिन्न ढंग ।
धीर पुरुष ऐसे कहत, व्याख्यान सत्संग ॥

विद्या और अविद्या के साथ साथ उपासना से अमृत लाभ वर्णन ।

विद्याञ्चा विद्याञ्च यस्तद् वेदोभयँ सह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृत मश्नुते ॥११
ज्ञान कर्म अनुष्ठान को, जो समझत चित लाय ।
वह मोक्ष को प्राप्त कर, भव सागर तर जाय ॥
अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूति मुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्यां रताः ।१२
जो पूजत हेतु प्रकृति अरु कार्य प्रकृति अधिकाय ।
गाढ़ अन्धेर में वे पड़त, प्रभु से विमुख दुराय ॥

परमेश्वर को छोड़ कर जो लोग कारण प्रकृति की उपासना करते हैं वे [illegible] अन्धकार में प्रवेश करते हैं, उनसे अधिक वे अन्धकार में प्रविष्ट होते हैं जो कार्य प्रकृति अर्थात् पृथिव्यादि के विकार पाषाणादि कार्य जगत की [illegible] उपासना करते हैं ।

अन्य देवाहुःसम्भवादन्यदाहुर सम्भवात । इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥१३

विश्व कार्य अरु जड़ हेतु को, भक्ति फल भिन्न बताय।
धीर पुरुष ऐसे कहत, व्याख्यानादि सुनाय॥
सम्भूतिञ्च विनाशञ्च यस्तद्वेदो भय सह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्याऽमृत मश्नुते॥१४
कार्य अरु कारण रूप को, जिन्हें प्रकृति को ज्ञान।
अज्ञान द उनको मिलत, और अमर पद मान॥

परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान मनुष्य को क्यों नहीं होता?

हिरण्य मयेन पात्रेण सत्य स्यापि हितं मुखम।
तत्वम्पूषन्न या वृणु सत्य धर्माय दृष्टये॥१५॥
हे ईश्वर सब चर अचर के, दुख भजन सुख दाय।
लोभ पाप रोग शाप से, राखिये सदा बचाय॥
बिगड़ी बात सम्हार कर, बुद्धि बलवान बनाय।
चमकीले पर्दे हटा कर, प्रभु मुझे दर्श दिखाय॥
पूषन्ने कर्षयम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन समूह।
तेजोयत्ते रूपं कल्यान मन्तत्ते पश्यामि योऽसाव सौ पुरुषः सोऽहस्मि॥१६॥
हे रक्षक सब चर अचर के, कर के कृपा सिवाय।
फैला के निज किरण को, समेट तेज इकठाय॥
दर्शन योग्य बनाय कर, प्रभु मुझे दर्श दिखाय।
अरु निज स्नेह से मग्न कर, मैं तू भेद हटाय॥
वायुर निलम मृतम यथेदं भस्मान्त शरीरम्।
ओं क्रतो स्मर, किलवे स्मर क्रत स्मर॥१७॥
अनिल[1] अमर निज कर्म वश, मृत तन भस्म कराय।
बुद्धि बल वैदिक ज्ञान हित, नव तन पुनः धराय॥
अग्ने नय सुपया राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्य स्मज्जु हुराण मेनो भूयिष्ठान्त नम उक्ति विधेम॥१८॥
हे अनल[2] देव दिव्य गुण सम्पन्न, कष्ट हरण भगवान।
वाम पन्थ से बचा कर; कर शुभ पन्थ प्रदान॥
शान्त शरण्य सुखदं द्विपास्यं, विद्याधरं विघ्न हरं विकास्यम्।
स्वाभीष्ठ सिद्धयै सुधिया मुपास्य-वन्दा महत विबुधैर्निकास्यम॥
चार वेद षट शास्त्र में, बात मिली हैं दोय।
सुख दिये सुख होत है, दुख दिये दुख होय॥

---

(१) वायु। (२) अग्नि

प्राकृतिक चिकित्सा की सरलता

श्री लक्ष्मीनारायण जी टण्डन, एम० ए०

प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत मर्म-चिकित्सा का भी प्रमुख स्थान है। स्थानीय चिकित्सा द्वारा, जड़ी बूटियों द्वारा, किसी टीमटाम, असुविधा, खटपट, विशेष कष्ट या खर्च के बिना हम रोगों का उपचार करते हैं। नसों को दबाकर, नसों को क्रियाशील करके जो चिकित्सा होती है वह मर्म-चिकित्सा के अन्तर्गत आती है। यह तो हम जानते ही हैं कि भोजन तथा शुद्ध वायु से बढ़कर रुधिर को शुद्ध करने वाला और कोई नहीं है। वैसे ही हँसना भी एक चिकित्सा है। हँसने से गले मुँह तथा फेफड़े आदि की स्नायुओं पर जोर पड़ता है और यह मर्म-चिकित्सा के अन्तर्गत आता है। अब तो यूरप और अमेरिका में अनेक ऐसे डाक्टर हैं जो रोगी को केवल हँसाकर ही उसे अच्छा करते हैं। रोगियों को हँसानेवाले ग्रामोफोन रिकार्ड सुनाकर, उन्हें हँसानेवाली तस्वीरें, कार्टून, हास्यरस प्रधान पत्र-पत्रिकाएँ तथा पुस्तकें देकर, तथा स्वयं हँसानेवाली बातें करके डाक्टर रोगियों को अच्छा करते हैं। हँसमुख तथा प्रसन्न चित्त रहने से हमारे शरीर के स्नायु शुद्ध और पुष्ट होते हैं तथा स्वास्थ्य सुधरता है। मान लीजिए आप हसते हैं—ठहाका मारकर—तो फेफड़ों पर जोर पड़ता है, उनकी हलकी कसरत हो जाती है, रक्त का परिभ्रमण जोर से होता है अतः वायु से फेफड़ा अधिक आक्सीजन लेता है, तभी तो कहावत है—

Laughing thrice a day
Keeps Doctor away

वैसे ही यदि थकावट के कारण सिर दर्द है तो आप दोनों कोहनियाँ कपड़े से कसकर बाँधिये, पर इतनी जोर से नहीं कि रुधिर का परिभ्रमण रुक जाय। अब शरीर को बिलकुल ढीला करके लेट जाइए—[illegible] कीजिए। आपको दस मिनट में [illegible] लाभ होगा। यदि आधा सिर दर्द हो तो [illegible] कोहनी को बाँध जिस ओर दर्द हो, इसके अतिरिक्त बाहु को अँगूठे से [illegible] दबावे, अँगूठा उस हाथ का हो जिस ओर सिर में दर्द हो, १०-१५ मिनट में लाभ होगा। यदि दर्द दोनों ओर हो तो दोनों अँगूठों से बाहु को जोर से दबावे। [illegible] लाभ होगा, यह मर्म चिकित्सा है।

कान में दर्द हो या हल्का बहरापन हो तो प्याज कुचलकर गरम कर निचोड़कर उसके कुनकुने रसको कान में डाले तो कान का [illegible] सनसनाहट चला जायगा। वैसे ही तुलसी के पत्ते का रस निचोड़ कर कुनकुना करके कान में डाल तो कान का दर्द और फोड़ा आदि अच्छा हो जायगा। पर बहरेपन के लिए मर्म चिकित्सा करनी होगी। [illegible] की दाढ़ पर कपड़े का गद्दा रखकर दबावे, यदि दोनों कानों मे बहरापन हो तो दोनों ओर ऐसा करें, यदि एक कान में ही बहरापन हो तो उसी ओर [illegible] दाढ़ो से कपड़े या गद्दे को दबावें। [illegible] पट्टी एक अंगुल मोटा हो। एक दिन में दस मिनट तक ऐसा करें अथवा प्रातः शाम दो बार ऐसा करें। नीचे से ऊपर की ओर दबाया जाय। इसके अतिरिक्त, जिस कान में बहरापन हो उस तरफ के हाथ की [illegible] दो अँगुलियों दूसरे हाथ के अँगूठे तथा [illegible] अँगुली से दबावे। [illegible] पर यदि विश्वास के साथ [illegible] यह क्रिया की जाय तो बहरेपन में [illegible] होगा। ज्यादा अच्छा हो कि [illegible] "[illegible] सकेत" आ जाय कि "मेरा [illegible] अधिक सुनाई दे रहा है।"

एक साधु ने बताया है कि जोड़ों में दर्द हो तो कच्चा बथुआ ४० रोज प्रातः एक तोला खावें। नींद न आती हो तो गाजर को कसकर लम्बे लच्छे निकाल दूध में उबाल कर सोते समय खावें, गाजर के बीच की हड्डी निकाल दें वह हानिप्रद होती है। रोटी के साथ भी गाजर खावें। अनिद्रा में यह रामबाण है। साँप काटने पर एक छटाँक दूध में ५-६ जौ लहसुन छील पीसकर पिलावे, इससे वमन होगी। फिर यही पिलावें। वमन भले ही होती जाय, लगातार पिलाता जावे। दूध ठण्डा ही पिलावें, गरम नहीं। जिस स्थान पर साँप ने काटा हो उसे खूब कसकर बाँध दो इससे वहाँ खून का दौर न हो पायेगा। थोड़े घी पाँच में काली मिर्च के कुछ दाने डालकर गरम कर पिलावे जायँ, काली मिर्च नहीं। उसे सोने न दें, बार बार पिलावें, बेहोश न होने पावे, उसे हिलावें जगावें। लाभ होगा।

कान के साधारण कष्ट में लहसुन के कुछ जो छीलकर एक तोला कड़वे सरसों के) तेल में खूब गरम करें। लहसुन जल जाय तो उतारकर तेल छानकर शीशा में भर लें, जब जरूरत हो तब यह तेल कुछ गरम कर कान में कुछ बूँद डाले।

दाढ़ के दर्द में रात को सोते समय कड़वा तेल और बहुत बारीक पिसा हुआ सेंधा नमक मिलाकर सब दाँतों और मसूढ़ों में खूब लगावें। प्रातः शीशे के गिलास पर पानी में आधा नींबू निचोड़कर खूब कुल्ले करे। मुँह में पानी इतनी देर तक चलावें कि पानी गरम हो जाय। यह क्रिया ७-८ मिनट करें। प्रातः सायं दातुन करते समय मसूढ़ों पर भी कसकस कर अँगुली फेर ली जाय तो पाँच मिनट तक उनकी मालिश हो जाय। इससे दाँत और मसूढ़े मजबूत होंगे और इनको रोग न होगा।

रोग और दवा

श्री ब्रजभूषण मिश्र

हमारे पूर्वजों का जीवन जितना ही स्वाभाविक, प्राकृतिक था उतना ही हमारा जीवन अस्वाभाविक, बिगड़ा हुआ है। यदि वे खुली हवा में रहते थे तो हम ऐसे कमरे में सोते हैं जिसमें हवा का ठिकाना नहीं। वे स्वास्थ्यप्रद सात्विक आहार पर बसर करते थे। स्वस्थ थे। आधुनिक समाज उन्हें चाहे कुछ भी कहे पर यह उनकी तपस्या, प्रकृति के नियम का पालन ही है जिससे हम जीवित दिखते हैं। पिता के बल पर सन्तान बढ़ता है; कहा भी है 'बाढ़ै पूत पिता के कर्मा'। पर अब सभ्यता की वृद्धि के साथ हमारा दृष्टिकोण बदल गया; खान-पान, रहन-सहन, बात-विचार, आदत-आचरण—सब बदल गये, बिगड़ गये। अस्वाभाविकता का प्रभाव यहाँ तक बढ़ा कि रोग का इलाज भी अस्वाभाविक हो गया। कहीं गड़बड़ी ज्ञात हुई कि डाक्टर-वैद्य के यहाँ दौड़ना अनिवार्य हो गया। औषधि से कुछ दिन तो रोग शान्त रहता है। इस बीच या तो प्रकृति खुद रोग को, जो शरीर के लिए अनावश्यक हा नहीं वरन् हानिकर चीज का एक नाम है, निकाल देती है अथवा किसी दूसरे रोग के रूप में बाधा उठ खड़ी होती है। इसका दमन भी दवा से होता है। न तो चिकित्सक और न मरीज ही यह जानने की चेष्टा करता है कि रोग क्यों हुआ, रोग का सच्चा कारण व उद्देश्य क्या है और इससे छुटकारा कैसे मिल सकता है।

किसी भी तरह के रोग होने के माने यह है कि देह में ऐसी चीज इकट्ठा हो गयी है

बाहर हो जानी चाहिए थी। ज्यादातर यही आँत में सड़ते हुए मल के गैस के कारण ही बीमारी होती है। इसका कारण भोजन का अपूर्ण होना अथवा मल का पूरा पूरा न निकल जाना ही है। यह अवस्था आहार सम्बन्धी नियमों की जानकारी न होने से होती है। रोग का उद्देश्य शरीरस्थ बीमारी को दूर करना ही है। रोग से छुटकारा तभी मिल सकता है जब कारण को हटा कर पुनः शरीर को निर्मल बना दिया जाय, न कि अप्राकृतिक दवाओं का व्यवहार किया जावे।

दवा को काम में लाना प्राकृतिक नियमों के खिलाफ है। ज्यादातर दवा रोग (अवांछित द्रव्य) को निकालने के बदले दवा और छिपा देती है, विजातीय पदार्थ के ऊपर ढक्कन-सा बन जाता है जिससे सद्यः तो फायदा मालूम हो जाता है। यह तो एक साधारण अनुभव की बात है कि मलेरिया में कुनेन दीजिए और बुखार गायब। पर कुछ दिनों बाद, उसका दुष्परिणाम प्रत्यक्ष आता है। हमने कई बहनों को ठीक किया है जो कुनैन के ही प्रभाव का दुख भोग रहे थे। सिर दर्द में कैफेस्पिरीन की टिकिया तुरन्त फायदा पहुँचाती है पर कुछ घंटों बाद पीड़ा फिर बढ़ जाती है। सिर-दर्द का कारण आँतों से उठा गैस का सिर में पहुँचना है। इसका इलाज आँत की सफाई है न कि कैफेस्पिरीन से उसको ढक देना। दवा के सतत व्यवहार से यह देखा जाता है कि एक रोग से कुछ दिनों तक छुटकारा पाने के बाद ही फिर बीमारी आ घेरती है। अब की बार बीमारी का रुख जरा तेजी पर रहता है। ज्यादातर दवाओं में शराब अथवा विष मिला रहता है। विदेशी दवा में मद्य alcohol का रहना अनिवार्य सा है। देशी भाषा में औषधि के अर्थ में 'दवा-दारू' शब्द का प्रयोग होता है जिसका अर्थ भिन्न भिन्न समास द्वारा हो सकता है।

पर यह तो [illegible] है कि [illegible] का संयोग दवा के साथ [illegible] नशे की चीज स्वास्थ्य के लिए [illegible] नहीं, वरन् हानिकारक है। [illegible] (तन्दुरुस्ती के नियमों [illegible]) [illegible] न मानना यह [illegible] इससे रोग अपना [illegible] और अपने जीवन को [illegible] दवा से रोग नाश नहीं होता [illegible] बना रहता है। दवा से बाहरी [illegible] जाते हैं जिससे [illegible] अब दवा से दबा हुआ रोग [illegible] खिलाता है। जिस तरह नाली [illegible] गन्दगी सड़ती और दुर्गन्धि [illegible] उसी तरह शरीर में दबा हुआ [illegible] अन्दर ही अन्दर सड़ता और [illegible] प्रगट करने का आसरा देखता है। [illegible] सड़न से बचने के लिए [illegible] पर्याप्त नहीं। आवश्यकता तो इस बात की है कि मोरी में सड़ती गन्दगी दूर कर दी जावे।

शरीर के अन्दर सफाई [illegible] होती रहती है। प्रकृति जब [illegible] बाहरी अटचनों के कारण [illegible] तो तीव्र अथवा [illegible] रोग के रूप में [illegible] का फैलाव प्रगट होता है। [illegible] होने से उसका परिवर्तन [illegible] रोग के रूप में हो जाता है। [illegible] समझ लेना नहीं [illegible] रोगसमूह है जो [illegible] दिखलाकर [illegible] दिया करें जैसे [illegible] इसके विपरीत [illegible] असर देर से पैदा [illegible] आदि। [illegible] दुःख [illegible] में ही नष्ट हो जाता है।

औषधि में नाना प्रकार [illegible]

धातु के अतिरिक्त हानिरहित जड़ी-बूटी भी रहती है। विष सहित औषधि तो हानि पहुँचाती ही है पर विष रहित दवा भी सच्चा उपकार नहीं करती। सच्ची तन्दुरुस्ती तो उसी को प्राप्य है जो शरीर के धर्म और उसके ठीक रखने की विधि को जानता हो। इसके खिलाफ जो दवा की बैसाखी का सहारा लेता है वह बार बार विभिन्न रोगों से सताया जाता है जिनको दबाते रहने के लिए आजन्म दवा खाने की आदत पड़ जाती है। इस प्रकार अप्राकृतिक जीवन का बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है, रोग का ताँता ही चल पड़ता है। ऐसी अवस्था में निदान ठीक होने पर औषधि-विशेषज्ञ की देख रेख में होने पर भी रोग खत्म हो जाता है। इससे यह स्पष्ट है कि प्रचलित चिकित्सा-विधि और रोग निवारण में बड़ा अन्तर है। इससे चिकित्सा की नि:सारता व प्रकृति की निरोग होने की सतत चेष्टा विदित होती है।

प्राचीन काल में ऐसा भी समय था जब लोग दवा का नाम भी नहीं जानते थे तथापि लोग मस्त व तन्दुरुस्त रहते थे। यहाँ तो रमणीक तीर्थस्थानों में भ्रमण, नदी तट पर स्नान पूजन व व्रतोपवास रखना, निरामिष भोजन, फलाहार करना तथा सूर्य, जल, पृथ्वी आकाशादि प्राकृतिक तत्वों का सेवन लाभप्रद होने से धर्म के अंग माने गये थे। लोग कुटियों में, खुली हवा में, रहते और फल-मूलादि खाते थे। आधुनिक बनावटी रहने सहने, खान पान आदि से दूर रहने और प्राकृतिक जीवन बिताने के कारण बीमार होने का अवसर ही न मिलता था। यदि भूल से कभी कोई गड़बड़ी हो भी जाती तो उपवासादि से ठीक कर ली जाती थी।

आज यदि स्वस्थ रहना है तो वही प्रकृति की ओर प्रत्यावर्तन करना अनिवार्य होगा।

विविध वृत्त

संग्राहक—श्री विश्वामित्र वर्मा

१—लोहे की कामधेनु

रनकार्न चेशायर, इंगलैण्ड में प्रथम बार सर्वप्रथम मशीन गाय का निर्माण हुआ है। यह लोहे और काँच की बनी हुई है और इसमें से दिन भर (जब यह कार्यशील होती है) दूध निकलता रहता है, और इस कामधेनु से आशा की जाती है कि संसार के लाखों लोग भुखमरी से मुक्त हो जायँगे। इस कामधेनु को तीस गैलन पानी, थोड़ी शक्कर और कुछ रासायनिक लवण—खिलाने पिलाने से यह तीन गैलन दूध देती है।

बड़ी मशीनें बहुत सी बन जाने पर लाखों गैलन सस्ता दूध रोज प्राप्त होगा, ऐसी योजना हो रही है। न गायों की आवश्यकता होगी, न घास खर्च होगी।

भारत में दो प्रकार के तैलों के मिश्रण और रासायनिक शोध से वनस्पति घी का प्रचार हो गया है, और गाय भैंस के दूध घी की सचाई को इसने भ्रष्ट कर दिया है। अब इस कामधेनु मशीन के आगे भारतीय गो-हत्या विरोधी एवं गोरक्षक संस्थाओं को यह विचारना चाहिए कि मशीन से दूध और घी दोनों प्राप्त होने लगे, और मशीन से खेती और बाढ़ का भी काम होने लगा, अब गौमाता, बैल बाप आदि का क्या उपयोग और महत्व रहेगा।

२ सूर्य किरणों का वजन

सूर्य तेज का महा पुञ्ज है और वह अपना तेज सब ओर लाखों मील प्रेरित करता है, इससे उसकी शक्ति का व्यय होता है। पृथ्वी और सौर मण्डल के सब लोकों का प्राण सूर्य

है। सूर्य न हो तो कुछ न हो। अतएव "सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।"

सूर्य अपना तेज सदा बिखेरता रहता है। उसकी किरणों में शक्ति है, जीवन है, प्राण है। उसमें वजन भी है। पृथ्वी सूर्य किरणें पाकर ही फसल उगाती है। उगी हुई फसल में सूर्य किरणों का विशेष अंश रहता है। सूर्य किरणें पृथ्वी पर न आवें तो न यहाँ शक्ति हो, न प्रकाश, न जीवन, न कोई फसल। सूर्य की कितनी शक्ति व्यय होती है इसको देखिए।

वैज्ञानिक प्रयोगों से पता चला है कि प्रति सेकण्ड, सूर्य अपनी ४६ लाख २० हजार टन शक्ति व्यय करता है, और सूर्य की मात्रा इतने से २० लाख लाख लाख गुना टन से भी अधिक है। जिस गति से सूर्य प्रतिक्षण अपने तेज को सब ओर बिखेरता है, उस हिसाब से १५०,०००,०००,००० वर्षों में उसकी मात्रा में केवल एक प्रतिशत कमी आयेगी।

वैज्ञानिक यंत्रों द्वारा सूर्य किरणों का आकर्षण और उन्हें एकाग्र कर शक्ति के रूप में बहुत से कामों में उसका उपयोग करने की योजना हो रही है। सूर्य की किरणों से पानी का पृथक्करण कर, हाईड्रोजन आक्सीजन तत्वों को अलग अलग जलाकर गर्मी उत्पन्न कर यन्त्र चलाये जायेंगे, जैसे आग-पानी से भाप द्वारा, अथवा तेल या पेट्रोल के जलन से शक्ति द्वारा यन्त्र—मोटर हवाई जहाज चलते हैं।

अभी इसमें बहुत शोध होना बाकी है और बहुत समय लगेगा।

३—शरीर की आत्म शक्ति

शरीर का विधान और संचालन बड़ा रहस्यमय है। स्वस्थ दशा में शरीर के विषय में वैज्ञानिक लोग सब परीक्षा करके सब सही प्रकृति बतला देंगे परन्तु रोग होने पर सब डाक्टरों के मत भिन्न भिन्न होते हैं। किसी को निश्चित और ठीक निदान नहीं मालूम होता। अनेक रोगी बिना दवा खाये भी अच्छे हो जाते हैं, और [illegible] वाले भी बच जाते हैं और [illegible]।

अनुभवी डॉक्टरों का [illegible] कि [illegible] केवल दवा देते हैं अथवा [illegible], रोग अथवा घाव शरीर [illegible] व्यवस्था से चला जाता है। [illegible] अपनी इच्छानुसार [illegible] भी दवा या मनुष्य [illegible] क्रिया में [illegible] मिलता है।

वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि [illegible] आहार आदि से [illegible] शरीर में [illegible] उत्पन्न हो जाता है, जो [illegible] कर उसे दूर करने के लिए शरीर में [illegible] 'मारक' तत्व भी उत्पन्न हो जाता है। [illegible] और कष्ट उस संघर्ष का ही द्योतक है। [illegible] का टीका अथवा अन्य [illegible] तत्व बनाये जाते हैं, उस प्रकार के [illegible] शरीर में स्वयं उत्पन्न हो जाते हैं और [illegible] को मारते हैं।

४—अभी मत खोलना

यदि आपके [illegible] अथवा आपको [illegible] आपको बन्द लिफाफा या [illegible] कहे कि इसे अभी नहीं [illegible] तो आपको अवश्य आश्चर्य होगा। [illegible] जमाने में भविष्यद्रष्टा [illegible] प्रायः कुछ लिखकर छोड़ [illegible] ने भविष्यवाणी भी की।

[illegible] सन् १७५० में [illegible] पढ़ने पर उससे [illegible] मालूम होता है, [illegible] होगा, परन्तु [illegible] [illegible]

यह जो भविष्य देखती उसका वर्णन गद्य तथा पद्य में लिखती जाती थी। ४२ वर्ष की अवस्था से भविष्य भावों का उसमें विशेष उद्गम होने लगा था, और वह जो मालूम करती वह सब लिखकर लिफाफों में बंद कर रखती जाती थी जिससे कि अमुक घटनाओं के वर्षों पश्चात् वे लिफाफे खोले जाने पर उसकी सत्यता या असत्यता मालूम हो सके। सब बंद लिफाफे सन्दूकों में बन्द रखे जाते थे और उन्हें न खोलने तथा उसके आदेश के अनुसार अमुक समय में खोलने की आज्ञा थी। इस आदेश के अनुसार समयान्तर से लिफाफे खोले गये और मालूम हुआ कि जो लिफाफे में उसने पहले से लिख रखा था वैसी ही घटनाएँ बाद में हुईं। उसने अपने हजारों अनुयायियों से फीस लेकर बहुत प्रकार के उनके भविष्य के विषय में प्रमाण पत्र दिये थे। बताया जाता है कि उसने एक या दो पौंड तक की रकम लोगों से फीस के रूप में लेकर एक लाख अनुयायियों को विभिन्न प्रकार के प्रमाण पत्र दिये थे।

वह जीवन भर भविष्य सम्बन्धी साहित्य लिखती रही। बाईस वर्ष एक दुग्धशाला में नौकरी करते हुए उसने साठ पुस्तकें इस विषय में लिखीं। वह प्रचारित करता, और सब लोग विश्वास करते कि उसे भविष्य के सम्बन्ध में दिव्य प्रेरणाएँ मिलती हैं। परन्तु उसके भविष्य प्रमाण-पत्र के प्रतिरूप जब एक व्यक्ति को हत्या के अपराध में फाँसी हो गई, तब से लोगों में इसके प्रति श्रद्धा स्वभावतः घटने के कारण लोगों ने प्रमाण पत्र लेना बन्द कर दिया। ये प्रमाण पत्र प्रायः उसी प्रकार होते थे जैसा कि ज्योतिषी लोग यहाँ बनाकर फीस लेकर देते हैं।

उसने घोषित किया था कि द्वितीय 'मसीहा' का जन्म, उसके गर्भ से होगा, परन्तु उसने जाना कि मरण समय निकट है इसलिए उसने इन बहुत से, सदूक में बंद लिफाफों को राष्ट्रीय विपत्ति या संघर्ष काल में खोलने का आदेश दिया। डेढ़ सौ वर्षों से 'संदूक' बंद पड़ी है और तब से लोग आश्चर्य करते आ रहे हैं कि उन पत्रों में क्या लिखा है। कई बार खोलने का प्रयत्न किया गया। चौबीस मठाधीशों के समक्ष ये पत्र खुलने का आयोजन है परन्तु सब मठाधीशों का सम्मेलन कभी पूर्ण न हुआ, संयोगवश सब इकट्ठे नहीं हो पाते।

५—अलौकिक प्रतिभा

कुछ बालक बालिकाओं में अलौकिक प्रतिभा जाग उठती है, जिसके फलस्वरूप उनके अभिभावक, उनकी कला व प्रतिभा प्रदर्शन से एक विशेष आकर्षक और लाभदायक व्यवसाय करने लगते हैं जो उन सबके जीवनोपार्जन का साधन बन जाता है। परन्तु दुःख की बात है कि प्रतिभा या अलौकिक कला की योग्यता का यह निरा दुरुपयोग अथवा अत्युपयोग है। कोई बालक या बालिका गाती है, कोई वाद्य में प्रवीण होते हैं, किन्हीं में गणित या सूक्ष्म दर्शन की मानसिक प्रतिभा होती है।

अधिक प्रदर्शन से, ज्यों ज्यों इनकी अवस्था बढ़ती है, त्यों त्यों, ऐसा देखा गया है कि उनकी कला व प्रतिभा क्षीण होती जाती है। और उनकी अल्पायु में ही मृत्यु हो जाती है।

चालीस वर्ष पहले, अमेरिका में ऐसा ही प्रतिभाशाली एक बालक था जो दो वर्ष की आयु में लिखने-पढ़ने लग गया था और सात वर्ष की आयु में विश्वविद्यालय से शरीर शास्त्र सम्बन्धी डॉक्टरी परीक्षा 'पास कर गया था। सोलह वर्ष की उम्र में बड़े बड़े गणितज्ञों की महासभा में वह भाषण देने लगा था। पचीस वर्ष की उम्र में उसने एक कार्यालय में नौकरी की, और छियालीस वर्ष की उम्र में मर गया। बहुत से प्रतिभाशाली लोग अल्पायु हुए हैं।

ऐसे प्रतिभाशाली लोग हैं जिनका मस्तिष्क बिजली की भाँति काम करता मालूम होता है। गणित सम्बन्धी गूढ़ और लम्बे प्रश्नों को

हल करने में ऐसे कुछ लोग आश्चर्यजनक अलौकिक प्रतिभा दर्शाते हैं।

६—रेलयात्रा में प्रार्थना

अमेरिका में इलीनाय सेण्ट्रल रेलवे ने अपने भोजनालयों (रेल में चलने वाली गाड़ियों) के टेबलों पर प्रार्थना पत्र रखना आरम्भ कर दिया है। ईसाई धर्म प्रार्थना प्रधान है, और विशेष कर भोजन के समय प्रार्थना करने और परमात्मा को धन्यवाद देने का रिवाज बच्चों बच्चों को सिखाया जाता है और सब लोग प्रार्थना करके भोजन करते हैं। रेलवे की इन भोजन गाड़ियों में ईसाई धर्म के विभिन्न पन्थियों के अनुकूल प्रार्थना की भावनाओं के छपे कार्ड रखे रहते हैं और ये भावनाएँ प्रतिमास बदलकर नये कार्ड छापे जाते हैं।

७—बिजली का दिमाग

वैज्ञानिकों ने बिजली का दिमाग बनाया है, जो एक विशालकाय यंत्र है, और बिजली से दिमाग का काम करता है, उसकी स्मरण शक्ति तीव्र है, मनुष्य के दिमाग की अपेक्षा बड़ी तत्परता से बिलकुल ठीक ठीक गणित के जोड़ बाकी गुणा भाग आदि का काम करता है परन्तु स्वयं में मनुष्य की भाँति प्रेरणा या विचारशक्ति नहीं है, अर्थात् स्वयं में इच्छाशक्ति नहीं है। उसे आप बहुत से प्रश्न दीजिए, आपकी इच्छानुसार वह जोड़ बाकी गुणा भाग इत्यादि ठीक ठीक कर देगा, चूक नहीं होगा। उसका संचालन अपने दिमाग से मनुष्य करता है। इतने बड़े यंत्र-मस्तिष्क के सामने बैठे हुए "चालक" मनुष्य "वामना-वतार-वंशज" से दीख पड़ते हैं।

इस महान नहीं, अलौकिक गणितज्ञ अथवा गणित शास्त्री समझिए क्यों कि इसके द्वारा गणित के ऐसे जटिल, लम्बे और गम्भीर प्रश्न मिनटों में हल हो जाते हैं जिन्हें हल करने में बहुत से लोग बहुत महीनों तक लगे रहते। यहाँ [illegible] करने में जहाँ [illegible] आवश्यकता होगी, [illegible] से करता है, [illegible] परन्तु इसका पूर्ण [illegible] है। यह [illegible] करता है। [illegible] का हिसाब आधे घंटे में हो [illegible] प्रकार के गणित [illegible] प्रकार का [illegible]।

८—[illegible]

यह [illegible] दर्द और [illegible] से [illegible] यहाँ का [illegible] सर्वकाल में सब देशों के [illegible] अलग एक पूर्ण [illegible] की है, और स्वर्ग के लिए [illegible] आदि धर्म किये जाते हैं। [illegible] साधन सर्व लोग करते हैं, [illegible] करते हैं, और मर जाने पर [illegible] उनके निमित्त करते हैं। [illegible] में बहुत से अलग अलग मत और [illegible] हैं।

अमेरिका आज की दुनिया के [illegible] विकसित और सभ्य माना जाता [illegible] वहाँ भी अनेक प्रकार के विभिन्न [illegible] मतावलम्बी हैं। एक विचित्र [illegible] है कि जो बिलकुल परमात्मा [illegible] विशुद्ध भाव से साँप [illegible] काटे तो समझो कि वह [illegible] स्वर्ग जाने की [illegible] स्वतंत्र देश है, जहाँ लोग [illegible] धर्म मानें, प्रचार करें, [illegible] करें, सब को [illegible] निजी स्वतन्त्रता है। [illegible] के लोगों में [illegible] पन्द्रह वर्षीया [illegible] घोषित कर [illegible] करके रहते हैं।

यूरुप में ईसाई धर्म के महा मंडलेश्वर, पहले, लोगों से फीस लेकर स्वर्ग जाने का सार्टिफिकेट दिया करते थे।

कुम्भ मेलों में भारत में अनेक साधु बबूल के काँटों, लोहे की कीलों पर सोये हुए, कतिपय अपना आधा ऊर्ध्वांङ्ग जमीन में गाड़े हुए, कोई पाँवों को बाँधकर पेड़ से उलटे लटके हुए, और कोई सारे शरीर में छेद कर रुद्राक्ष अथवा अन्य वस्तु लटकाये हुए, अन्य अनेक प्रकार से शरीर को कष्ट देकर प्रदर्शन करते हैं। अमेरिका मे, स्वर्ग जाने की भावना से ऐसा ही साधन एक २५ वर्षीया युवती ने किया था। उसने स्वयं अपने शिर पर दो घाव, तथा सारे शरीर पर पचास जख्म बनाये थे और इलाज के लिए पुलिस द्वारा अस्पताल लाई गई थी।

कतिपय श्रद्धालु धर्मात्मा लोग अपनी श्रद्धा और साफ दिल होने की परीक्षा के लिए अपने आपको साँप से कटवाया करते हैं।

९—चटपटे मसाले

नशीली वस्तु खा पीकर लोग उत्तेजित हो जाते हैं, और नशा उतरने पर उनमें पहले से कहीं अधिक शिथिलता आ जाती है। पेट के विषय में भी यही बात सत्य है। मिर्च मसाले अचार शामिल होने से जिह्वा को स्वाद में उत्तेजना मालूम होती है, भोजन अधिक खा लिया जाता है, उसी प्रकार पाचन यंत्रों में उत्तेजना होती है, और बाद में शिथिलता आती है, और सुस्वादु उत्तेजना प्राप्त करने की इच्छा से मिर्च मसाले अचार आदि चटपटी चीजें खाने की आदत पड़ जाती है जिसे नशा करने जैसा व्यसन बन जाता है और पेट-पाचन यंत्र इस आदत से लगातार शिथिल पड़ते जाते हैं।

भूख लगने पर सात्विक और उचित परिमाण में ही भोजन करना इष्ट है। अधिक खा लेना, और बहुत कम खाना या भूखा रहना भी हानिकर है। शरीर को जितने पोषण की आवश्यकता है उतना ही भो[जन] पचाकर वह उसका उपयोग करेगा, शेष [भोजन] मल होकर, सड़ गल कर निकल जाता [है।] घी, आम, दूध या अन्य वस्तु अधिक [खा] लेने पर, मल में उसकी गंध आती है इ[ससे] स्पष्ट मालूम होता है कि अमुक वस्तु [का अंश] मल रूप में भी शेष है, पूर्णतया पची [नहीं] है। पूर्णतया पचे हुए भोजन के मल में ग[न्ध] नहीं होता, यथा गाय, भैंस, घोड़े आदि [पशु] पक्षियों को देखिए वे किस प्रकार पूर्ण[तया] अपना भोजन पचा लेते हैं कि उनके मल [को] कोई भी प्राणी सूँघता भी नहीं। इससे स[्पष्ट] है कि मनुष्य खाता बहुत है, पचाता कम [है और] भोजन को बरबाद करता है।

भोजन के मुख्य तीन कार्य हैं : शरीर [को] पोषण देना, रोगों से रक्षा करना, और श[रीर] को शक्ति देना। दूध शरीर का पोषण [करने] वाला पूर्ण भोजन है। जहाँ दूध न मिलता [है] वहाँ प्रकृति अनुसार लोग मांस मछली [आदि] खाते हैं। रोगों से रक्षा करने के लिए प्राकृ[तिक] खनिज लवण और विटामिन हैं जो ताजे [साग] भाजी और फलों में पाये जाते हैं, और इ[नके] उपयोग से, दवा खाये बिना ही रोग भ[ागते] हैं। घी, गेहूँ, चावल, शक्कर, मुरब्बे, वे [शरीर को] शक्ति देते हैं, इनमें पोषण अथवा रोग निव[ारण की] शक्ति बहुत कम होती है।

पोषण, शक्ति और रोग निवारण के [लिए] निम्नलिखित भोजन उपयुक्त है :

रोटी-चावल	६ छटाँक	१२०० ताप इ[काई]
दाल	१ ,,	२००
साग	८ ,,	१४०
फल	१ ,,	६०
गुड़-शक्कर	१ ,,	२००
घी या तेल	१ ,,	४००
दूध	८ ,,	३००
	२६	२५००

साधारण परिश्रम करने वाले व्यक्ति[यों के] लिए यह दिन भर का भोजन है।

राजयोग ग्रंथमाला

अलौकिक चिकित्सा विज्ञान

अमेरिका में योग प्रचारक बाबा रामचरक की की अंग्रेजी पुस्तक का अनुवाद चित्रमय छपा है। इसमें मानसिक चिकित्सा द्वारा अपने तथा दूसरों के रोगों को मिटाने के अद्भुत साधन दिये हैं। मूल्य २) रुपया, डाक खर्च ।ऽ)

सूर्य किरण चिकित्सा

सूर्य किरणों द्वारा भिन्न-भिन्न रंगों की बोतलों में जल, तैल तथा अन्य औषधि भर कर सूर्य की शक्ति संचित कर तथा रंगीन काँचों द्वारा सूर्य की किरणें व्याधिग्रस्त स्थान पर डाल कर अनेक रोग बिना एक पाई भी खर्च किये दूर करना तथा रोगों के लक्षण व उपचार के साथ पथ्यापथ्य भी दिये गये हैं। नया संस्करण मूल्य ५) रुपया, डाक खर्च ।।।)

संकल्प सिद्धि

स्वामी ज्ञानानन्दजी की लिखी हुई यथा नाम तथा गुण सिद्ध करने वाली, सुख, शांति, आनन्द, उत्साह वर्द्धक यह पुस्तक दुबारा छपी है मूल्य १) रुपया, डाक खर्च ।ऽ)

प्राण चिकित्सा

हिन्दी संसार में मेस्मेरिज्म, हिप्नाटिज्म, चिकित्सा आदि तत्वों को समझाने व साधन बतलाने वाली एक ही पुस्तक है। कल्पवृक्ष के संपादक नागरजी द्वारा लिखित गम्भीर अनुभव-पूर्ण तथा प्रामाणिक चिकित्सा के प्रयोग इसमें दिये गये हैं। जीवन में इस पुस्तक के सिद्धांतों से दीन-दुखी संसार का उपकार कर सकेंगे मूल्य २) रुपया, डाक खर्च ।ऽ)

प्रार्थना कल्पद्रुम

प्रार्थना क्यों तथा किस प्रकार करनी चाहिये। दैनिक सामूहिक प्रार्थना द्वारा अनिष्ट स्थिति से मुक्त होने व दूरस्थ मित्रों व मृत आत्माओं को शांति व अनोखी संदेश दिलाने वाली आज के संसार में अपूर्व पुस्तक है। मूल्य ।।) आना।

आध्यात्मिक मण्डल

घर बैठे आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त करने व साधन करने के लिए यह मण्डल स्थापित किया गया है, जिससे स्वयं शारीरिक व मानसिक उन्नति कर अपने क्लेशों से मुक्त होकर दूसरों का भी कल्याण कर सकें। सदस्य बनने वालों को शिक्षा व साधन के लिए प्रवेश शुल्क १०) रुपये हैं और निम्नलिखित पुस्तकें दी जाती हैं :—

१—प्राण चिकित्सा २—प्रार्थना कल्पद्रुम ३—प्राण से आम चिकित्सा ४—प्राकृतिक आरोग्य विज्ञान ५—आरोग्य साधन पद्धति ६—अध्यात्म शिक्षा पद्धति ७—त्राटक चार्ट ८—ॐ दर्शन ९—ज्ञान प्रेरणा १०—कल्प वृक्ष एक वर्ष तक। ११—अमूल्य उपदेश।

कोई भी सदाचारी व्यक्ति प्रवेश फार्म मँगा कर सदस्य बन सकता है।

अमूल्य उपदेश

कल्पवृक्ष में पूर्व प्रकाशित अमूल्य उपदेशों का दूसरा संस्करण। मूल्य २) डाक खर्च ।ऽ)

स्व० पं० शिवदत्त शर्मा की पुस्तकें

गायत्री महिमा ।।)	सोऽहम् चमत्कार ।।)
अग्निहोत्र विधि ।।)	ध्यान की विधि ।।)
आरोग्य आनंदमय जीवन ।।।)	ॐ कार जप ।।)

विश्वामित्र वर्मा द्वारा लिखित नई पुस्तकें

प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान

रोग क्यों तथा कैसे होता है, तथा दवा दारू, चीर फाड़, और जड़ी बूटी के बिना, दाम कौड़ी खर्च के बिना कैसे जाता है, विख्यात डाक्टरों का अनुभव मूल्य १।।)

यौगिक स्वास्थ्य साधन १)

प्राकृतिक स्वास्थ्य साधन

स्वास्थ्य के नये साधन, पौरुषवर्द्धक नये व्यायामों के २६ चित्र, भोजन की मात्रा कल्प चार्ट नवीन वैज्ञानिक व्याख्या तथा नुस्खे। मूल्य १)

व्यावहारिक अध्यात्म

आत्म विकास द्वारा उन्नति और सफलता पाने के लिए दिव्य व्यावहारिक अध्यात्म १)

दिव्य सम्पत्ति

दुःखी थके, उलझनों में फंसे, और और निराश लोगों के लिए दिव्य प्रेरणाएँ। मूल्य १)

जीवन का सदुपयोग (चार्ट)	।)
ऋतु-ऋतु भोजन चर्या (चार्ट)	।)
भोजन निर्णय (चार्ट)	।)
दिव्य भावना-दिव्य दृष्टि (चार्ट)	।)

मिलने का पता—कल्पवृक्ष कार्यालय, उज्जैन नं० १ (मध्य भारत)।

Registered No. N. 277

आध्यात्मिक मंडल, उज्जैन, म० भा०

की

निम्नलिखित शाखाओं में मानसिक, आध्यात्मिक एवं प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा मुफ्त इलाज होता है :—

स्थान	प्रबन्ध और उपचारक

१ कोटा (राजपूताना) श्रीयुत पं० नारायणजी गोविंद नागर, प्रोफेसर ड्राइंग, श्रीपुरा

२ हींगनघाट (सी० पी०)—आयुर्वेदाचार्य शोभालालजी शर्मा ।

३ उदयपुर (१) (राजस्थान) संचालक आयुर्वेदाचार्य पं० जानकीलालजी त्रिपाठी, चिन्तामणि कार्यालय भूपालपुरा, प्लाट नं० २०६ ।

उदयपुर (२) लाला जेसारामजी, मार्फत श्री देवराज, टी. टी. ई. रेलवे क्वार्टर्स, बी।२, रेलवे स्टेशन

४ खरगोन (मालवा प्रांत) श्री गोकुलजी पहारीनाथजी सर्राफ मंत्री आध्यात्मिक मंडल ।

५ अजमेर (राजपूताना) पंडित सूर्यभानुजी मिश्र, रिटायर्ड टेलिग्राफ मास्टर, रामगंज ।

६ नसीराबाद (राजपूताना)—चाँदमलजी बजाज ।

७ दोहरी घाट स्टे. ओ. टी. आर. (आजमगढ़ उ. प्र.) संचालक पं० क्षमानन्दजी शर्मा साहित्यरत्न

८ मन्दसौर (मध्य-भारत) दशरथजी भटनागर, खाद्य इन्स्पेक्टर, जनकपुरा ।

९ मिट्ठी बेड़ी (देहरादून पो० प्रेमनगर) महावीरप्रसादजी त्यागी ।

१० सरगुजा स्टेट (सी० पी०) लालजीप्रसादजी गुप्त ।

११ जावरा (मध्य भारत)—विशारद पं० भालचन्द्रजी उपाध्याय, एजेन्ट कोआपरेटिव बैंक ।

१२ गोंदिया (मध्यप्रान्त) लक्ष्मीनारायणजी माहुपोते, बी० ए० एल-एल० बी० वकील ।

१३ नेपाल-धर्ममनीषी, साहित्यधुरीण, डा० दुर्गाप्रसादजी भट्टराई, डी० डी० दिल्ली बाजार ।

१४ पोलायखुर्द (व्हाया अकोदिया मण्डी)—स्वामी गोविंदानन्दजी ।

१५ धार (मध्य भारत)—श्री गणेश रामचन्द्र देशपांडे, निसर्ग मानसोपचार आरोग्य-भवन, धार ।

१६ खम्भात (Cambay) श्री लल्लूभाई हरजीवनजी पंड्या ।

१७ राजगढ़ ब्यावरा (मध्य भारत) श्री हरि ॐ तत्सतजी ।

१८ केकड़ी (अजमेर) पं० किशोरीलालजी वैद्य तथा मोहनलालजी राठी ।

१९ बुढ़वल (ओ. टी. आर. जिला बाराबंकी) पं० रामशंकरजी शुक्ल, बुढ़वल शुगर मिल ।

२० इन्दौर—श्री बाबू नारायणलालजी सिंहल, बी० ए०, एल-एल० बी०, श्री सेठ जगन्नाथ जी की धर्मशाला, संयोगितागंज ।

२१ आलोट-विक्रमगढ़ (मध्य-भारत) अध्यक्ष सेठ ताराचन्दजी, उपचारक मनोहरलालजी मेहता ।

२२ मटरू (कोटा राजस्थान)—पं० मोहनलालजी शर्मा ।

२३ बारां (कोटा राजस्थान)—सेठ मोतीलाल जी ।

व्यवस्थापक व प्रकाशक—डॉ० बालकृष्ण नागर, कल्पवृक्ष कार्यालय, उज्जैन (मध्य भारत)
मुद्रक—भक्त सज्जन, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद-२

स्वर्ण-सूत्र

परमात्म विस्तार की भावना

मेरे लिए सर्वोत्तम शुभ क्या है और मुझे क्या करना चाहिए कैसे करना चाहिए यह सब मेरी व्यक्तिगत समस्या मेरी अपेक्षा मेरा परमात्मा अधिक जानता है। मेरे व्यक्तित्व के सामर्थ्य की अपेक्षा मेरे परमात्मा का सामर्थ्य अथाह है। परमात्मा मुझसे भिन्न और दूर नहीं है। मैं परमात्मा से अलग और दूर नहीं हूँ। मेरा स्थूल व्यक्तित्व परमात्मा का साधन है, निमित्त है। मेरा इन्द्रियातीत तत्व, अपना आप, "मैं" की वाणी और विचार से उद्बोधित होने वाला अहं-तत्व ही मेरा परमात्मा है और यही सब में अभिन्न सब का परम आत्मा है जो सर्व सामर्थ्य और सब प्रेरणा देने वाला है।

यह मेरा परमात्मतत्व अद्वैत और अखण्ड है। चराचर नाना रूपों में यह सबका विभिन्न दिखने वाला परमात्मतत्व असंख्य और विचित्र होते हुए भी एक ही परमतत्व है।

मेरे जीवन में कुछ भी अशुभ नहीं है और किसी से मेरा भेद नहीं है। मैं जीवन के प्रत्येक विचार, प्रेरणा और अवसर को शुभ जानते हुए स्वीकार करता हूँ क्योंकि सब कुछ परमात्म प्रेरित है और परमात्म योग से मुझे प्राप्त होता है और मैं प्रसन्नता एवं उत्साह से सब आयोजन का स्वागत कर उसमें आनन्द पाता हूँ। मैं परमात्मा का प्रतिनिधि साक्षी और निमित्त साधन हूँ। अखिल ब्रह्माण्ड का केन्द्र मुझमें है अर्थात् "मैं" अखिल ब्रह्माण्ड का केन्द्र हूँ। सब लोकों में मेरा प्रकाश है, मुझसे भिन्न और दूर कुछ भी नहीं है, और मेरे प्रकाश और सामर्थ्य के विस्तार का बाधक कोई दूसरा नहीं है। सर्वत्र सब रूपों में "मैं" ही एकमात्र कारण सङ्कल्प हूँ।

मैं सब कुछ हूँ, मुझमें सब कुछ है और सब कुछ मुझसे ही प्रकाशित एवं प्रगट है। मेरा विस्तार निकट से निकट और दूर से अति दूर है। इन्द्रिय गोचर और इन्द्रियातीत जो भी दृश्यमान ज्ञेय, अकल्पनीय और अज्ञात है वह सब मुझमें से प्रगट और मुझमें ही समाया हुआ है। मुझसे परे कुछ भी नहीं।

चौबीसवाँ आध्यात्मिक साधन समारम्भ

नलखेड़ा, खरगौन, बभनी, नरवर, तखतगढ़, पाचोरा, खंभात, चकधतेरा, जगदौली, सरोलिया इत्यादि विभिन्न स्थानों से साधकगण पधारे थे।

समागत साधकों के ठहरने तथा भोजनादि की उचित व्यवस्था की गई थी। अधिकांश साधक शनिवार की रात्रि तक आ गये थे, कई सज्जन रविवार, सोमवार को भी पधारे।

प्रथम दिवस

प्रातःकाल ४ बजे घंटी बजने के साथ ही नित्यकर्म से निवृत्त होकर ५ बजे सब साधकगण संयमशाला में उपस्थित हुए। सर्वप्रथम मालवमयूर श्री शालग्राम जी ने मधुर वाणी में "ओंकार भजन सार,जप जप नर बार बार' का भजन गाया। तत्पश्चात् बन्धुद्वय कीर्तन-कलाधर श्री सुन्दरलालजी अंबालालजी ने यथानियम
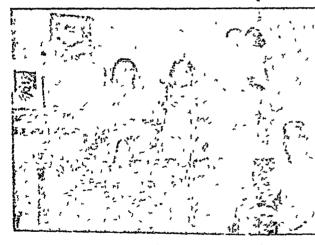
बन्धुद्वय सुन्दरलाल जी अम्बालाल जी कीर्त्तन करते हुए

प्रातःकालीन उपासना सम्पन्न कराई। इसके अनन्तर "वंदना है चरण में तुम्हारे। संत नागर जी गुरुवर हमारे॥" के सामुहिक गान द्वारा स्व० नागर जी के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पण की गई और साधकों से अपने इष्टदेव का शांत भाव से ध्यान करने और यहाँ के उपदेशों का मनन, चिंतन करने का अनुरोध किया गया।

डॉ० बालकृष्ण जी नागर ने अपने निवेदन में कहा कि "आज हम लोग यहाँ साधन-समारंभ मनाने के लिए एकत्र हुए हैं। यह २४ वाँ समारंभ है। आज विक्रम संवत २०११ के वर्षारंभ के मंगलमय प्रभात में प्राचीन भारत के इस प्राचीन नगर में, जोकि अनेक ऋषिमुनि एवं महात्माओं की लीलाभूमि रहा है, जहाँ कालिदास जैसे महाकवि हुए है तथा इस पवित्र भूमि में, जहाँ कि महर्षि सान्दीपन के चरणों में बैठकर परमयोगेश्वर भगवान श्री कृष्णचंद्र तथा सुदामा ने विद्याध्ययन किया था, यह समारोह हो रहा है। यहाँ आकर साधकों का कर्त्तव्य है कि वे कुछ सीखे और नवीन वर्ष के उपलक्ष्य में उस पर विचार करें। साथ ही यहाँ हम ऐसा कुछ निर्माण भी करे जिसके द्वारा हमारा वर्ष भर शांति से व्यतीत हो सके।

आज ससार में सर्वत्र अशांति के प्रसार के साधन निर्माण हो रहे हैं। कहीं हाइड्रोजन बम का विस्फोट हो रहा है, और उसका प्रभाव ८ हजार मील दूर तक पड़ता है, जहाँ के मछली पकड़ने वालो के शरीर तक झुलस गये, तब जलचरों के संहार की तो गणना ही कौन कर सकता है?

ऐसी दशा में भी हमारा कर्त्तव्य तो यही है कि शांति के मार्ग का अनुसरण करें। शांति का ही सन्देश संसार को सुनावें। जो साधक यहाँ आये है,वे इन चार दिनों में कुछ सीख लें और दूसरों को अपने अनुभव सुनावें। यहाँ जो प्रार्थना होती है, उसे क्रियात्मक रूप प्रदान कर हम कार्यारंभ करें। हम जो प्रार्थना करते हैं, उसमें विश्वशांति की भावनाएँ भरी हुई हैं। अतः प्रार्थना में हम जो कुछ कहते हैं, उसे अपने जीवन में आचरण में उतारने का प्रयत्न करें। यहाँ से हम सुन्दर विचार ग्रहण करें। इसी प्रकार आसन-प्राणायामादि क्रियाओं के द्वारा स्वास्थ्य सुधारने की विधियाँ सीखकर

स्वस्थ बने। आपर्णों में से उपयोगी बातों को ग्रहण कर तथा शरीर से विकार निकाल कर शरीर और मन को शुद्ध करें और अगले वर्ष जब हम यहाँ आवें, तब अपने में हुए परिवर्तन पर विचार प्रकट करें। क्योंकि विचारों का बड़ा प्रभाव होता है। विचारों को बार बार दोहराते रहने से और निरंतर विचार करने से मन पर उसका अवश्य प्रभाव पड़ता है। बार बार शुद्ध विचारों का सेवन करना चाहिए। हम अजर-अमर आत्मा हैं। अतएव हम यहाँ जो भी प्रतिज्ञा करेंगे, उसे वर्ष भर निर्वाह कर अपने जीवन को उन्नत बनाना हमारा परम कर्तव्य हो जाता है। आशा है आप सब साधकगण समारोह से यथायोग्य लाभ उठाकर जीवन को सफल बनावेंगे।

इसके पश्चात् श्री रामविश्रामधाम, महीद-

वेदाचार्य श्री उद्धवजी

पुर के वेद-विद्याभ्यासी, धर्मप्राण श्री पं० रणछोड़ जी उद्धव जी ने वेद सम्मत मार्ग की महत्ता बताते हुए कहा :—

वेद मार्ग

हर्ष का विषय है कि आप लोग दिन प्रति दिन उन्नति करते हुए यहाँ आकर आध्यात्मिक साधना में अपना समय देते हैं। संसार द्वन्द्व प्रधान है किन्तु हम शांति की भावना करते हैं। इस प्रकार प्राच्य (पूर्व) और पाश्चात्य (पश्चिम) की विचार धाराएं परस्पर विरोधी बनकर संसार में अपना अपना प्रभाव दिखा रही हैं। भारत का उद्देश्य मानव-कल्याण के दृष्टिकोण को सामने रखता है, जबकि पाश्चात्य दृष्टिकोण में राष्ट्र को प्राधान्य दिया गया है। इसीलिए वहाँ राष्ट्रहित या भौतिक उन्नति के सम्मुख मानव को विशेष महत्व नहीं दिया जाता। नित्य नये जन-संहार के शस्त्रास्त्र निर्माण कर परस्पर संघर्ष एवं प्रभुत्व स्थापन करने में होड़ लग रही है। ऐसी दशा में केवल आध्यात्मिक मार्ग का अवलम्बन ही शांति दे सकता है।

विचारों को आचार में लाना तो उत्तम है, किन्तु पूर्ण विचार करके ही प्रत्येक कार्य करना चाहिए। मनु भगवान ने बतलाया है कि मनन करने वाला ही मनुष्य कहलाता है। जबकि पश्यति = देखनेवाला होने से होने वाला पशु की श्रेणी में आ जाता है। इसीलिए मनन करने पर मनुष्य के हाथों से उत्तमता-पूर्वक कर्म हो सकते हैं। किन्तु जो लोग केवल राष्ट्रीय भावना रखते हैं, उन मानवों की कुछ सीमाएँ होती हैं, जबकि विश्व-कल्याण की भावना ही सच्चे मानव का लक्षण हो सकती है। किन्तु त्रिविध शांति प्राप्त होने पर ही विश्वकल्याण होगा। त्रिविध शांति के होने पर ही सच्ची शांति होगी। अतः प्रश्न होगा कि व्यक्ति, राष्ट्र एवं विश्व में शांति प्राप्त करने के लिए हमें क्या करना उचित है? सभी प्रकार के विचारों के लिए समिति बनाने पर मतभेद होने की सम्भावना रहती है और परस्पर मतभेद होने से कोई कार्य नहीं हो पाता। क्यों कि सबके विचार एक से नहीं हो सकते। अतः विश्व शांति के मार्ग पर परमात्मा के वाणी के अनुसार चलने का निश्चय किया।

'वेद' परमात्मा की वाणी है। वे परम कल्याणकारी उपदेश हैं। ऋषि मुनियों ने भी वेद की वाणी को हृदयंगम करके शायद अपना में पुराणादि रूप में प्रस्तुत किया है। आप भी इस वाणी के अनुसार आचरण करना

कर्तव्य मानें। इतिहास, पुराण आदि सब वेद की ही व्याख्या रूप हैं। भगवान राम या कृष्ण ने कोई मत नहीं चलाया वरन् वेद मार्ग पर चलने का ही निर्देश किया है। इसी प्रकार सभी संत महात्मा या अवतारी पुरुष जनता को सुधार कर वेदमार्ग पर चलने का आदेश देते हैं। अतः सब मार्ग छोड़कर वेद मार्ग पर ही चलने का प्रयत्न करें। अथर्ववेद की एक ऋचा है "येन देवा न वयंति" अर्थात् जिसके द्वारा विद्वान् लोग विरोध नहीं करते। क्योंकि विरोध होने पर एक मार्ग नहीं हो सकता। जबकि वेद कहता है 'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' अर्थात् उस परमात्मा के पास जाने का केवल एक ही मार्ग है और वह सच्चा मार्ग वेदमार्ग ही है। अनेक मार्गों पर चलने से मनुष्य भ्रम में पड़ जाता है।

उसी ऋचा का अगला चरण है 'नोच विद्विषतेमिथः' अर्थात् जिसके विषय में विद्वान् पुरुष विद्वेष नहीं करते, वही वेदमार्ग है। इस मंत्र में मानव मात्र ही नहीं विश्वशांति एवं विश्व कल्याण का मार्ग बताया गया है। आगे के चरण में बताया है "तत्कृएमो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषे त्रिभ्यः" अर्थात् वह उत्तम ज्ञान वेद का ज्ञान है। वही मैं तुम सबके लिए देता हूं। उस उत्तम मार्ग पर चलना तुम्हारा कर्तव्य है।

आहार के अनुसार ही विचार और विचार के अनुसार आचार करने के बाद ही उसका उच्चार करने का क्रम है। किन्तु आजकल यह क्रम उलटा हो गया है। इसी से यह सब गड़बड़ हो रही है। आजकल केवल उच्चार ही शेष रह गया है। सभा में उच्चार करके बहुमत से कार्य होता है। किन्तु बहुमत की अपेक्षा सर्वमत का ही मार्ग श्रेष्ठ है। दस हजार व्यक्तियों की बात या मत को न मानकर एक वेदज्ञ की बात मानने का प्राचीन काल में नियम था। प्राचीन राजाओं के पास एक उपाध्याय रहता था, वह वेदों के विचार के अनुसार मार्ग बतलाता था। किन्तु आज वह बात नहीं है। महात्मा गाँधी ने ऐसे राज्य की स्थापना का प्रयत्न किया था। राम राज्य की श्रेष्ठता से सब सहमत हैं। रामराज्य की स्थापना वेदमार्ग की ही है। सच्चे सुख-शांति का मार्ग वेदमार्ग है। राम ने भी वेदवाणी को सामने रखकर सब कार्य किया। संसार में आकर वेदवाणी के अनुसार ही सदा विचार करना चाहिए। २५ वर्ष तक वेद पढ़ने तथा २५ वर्ष तक उस पर विचार करने के बाद २५ वर्ष आचार करने पर ही मुख से उसका उच्चार करना चाहिए। इसीलिए हमारे यहाँ २५।२५ वर्ष के हिसाब से, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वाणप्रस्थ एवं सन्यास के नाम से चार आश्रमों की स्थापना की गई है। किन्तु आज यह क्रम भंग हो जाने और मार्ग उलटा हो जाने से ही यह सब गड़बड़ हो रही है, सर्वत्र अशांति मच रही है।

आजकल देश में 'शिक्षा' के सम्बन्ध में विचार चल रहा है। किन्तु बड़े-बड़े विद्वानों को बहुत कुछ विचार करने पर भी ठीक मार्ग नहीं मिल सका है। क्योंकि उन्हें पता नहीं कि हमारे यहाँ उस विषय के विचारों का भण्डार भरा हुआ है। लोग आजकल साम्प्रदायिकता से भड़कते हैं और प्रत्येक प्राचीन नियम को साम्प्रदायिक मानकर उससे अलग रहना चाहते हैं। किन्तु उन्हीं की तरह हम भी साम्प्रदायिकता का स्वीकार करना नहीं चाहते। इसीलिए कहने को विवश होना पड़ता है कि सर्व हितकर मार्ग वेद मार्ग ही हो सकता है। यहाँ साधकों को अपने विचारों के सुधार के लिए, तथा वेद मार्ग के ज्ञान के लिए वेद का स्वाध्याय करना चाहिए। इसी प्रकार सक्रिय संध्या के साथ गायत्री जप करने से बुद्धि शुद्ध होती है। उसका विकास होता है। उस वेद मन्त्र का प्रतिदिन चिन्तन करना मुख्य कर्तव्य है। यदि प्रतिदिन एक मंत्र का स्वाध्याय किया जाय तो वर्ष भर में ३६५ मंत्रों का मर्म जान सकते हैं। अतएव मेरा अनुरोध है कि आप आज से ही इस विषय का आरम्भ कर दें।

इसके पश्चात् बन्धुद्वय ने "भजन कर अंतर ध्यान हो" गाकर उसकी व्याख्या की। तत्पश्चात् सवेरे का कार्यक्रम समाप्त हुआ।

आसन प्राणायाम की शिक्षा

ठीक आठ बजे संयमशाला में उपस्थित साधकों को श्री हठयोगी सत्यात्मा जी तथा श्री गणपतदासजी कव्वाने (बुरहानपुर) ने व्यायाम की क्रियाएं एवं आसन-प्राणायाम की क्रियात्मक शिक्षा देकर साधकों से अभ्यास कराया। साथ ही उनके लाभ आदि के विषय में भी उचित

यज्ञशाला के सामने कुछ साधक

बातें समझाईं। १० बजे यह कार्यक्रम समाप्त हुआ। लगभग ३०-४० साधकों ने इसमें भाग लिया।

तत्पश्चात् सभागत साधकों के दुग्धाहार का प्रबन्ध किया गया।

हवन और मध्याह्न उपासना

ठीक १०॥ बजे बन्धुद्वय तथा श्री शालिग्राम जी के भजनादि के पश्चात् यथानियम दैनिक हवन, वैदिक भावना का पाठ, गीता के एक अध्याय का पाठ तथा दैनिक मध्याह्न उपासना सम्पन्न हो जाने पर बन्धुद्वय के भजन हुए। तत्पश्चात् नीमाड़ संत श्री रामलाल जी पहाड़ा ने 'यज्ञ के महत्व', पर प्रवचन करते हुए कहा "यह यज्ञ आदित्य का प्रत्यक्ष प्रतीक है। वेद में बतलाया गया है" सवितादेव हिरण्मय रथ में बैठकर सब पर स्पर्श, अनुपम [illegible] किरणों से [illegible] की वृष्टि करते हैं। हमारे ऋषि मुनि [illegible] ऋतंभरा प्रज्ञा-शक्ति के ज्ञाता थे। वे [illegible] का ज्ञान सब लोगों को देते रहते थे। [illegible] सत्य का शुद्ध ज्ञान देते थे। [illegible] प्राप्त करता है। सूर्य ज्ञान और [illegible] है। यह ज्ञान ही सूर्य रूपी [illegible] द्वारा दिव्य सन्देश मिल रहा है। [illegible] जो दिव्य लोक में चल रहा है [illegible] इस यज्ञ के रूप में करें। गीता में भगवान ने अर्जुन से कहा है—'ममैवांशो [illegible] जीवभूतः सनातन"। समस्त प्राणी [illegible] रूप हैं। अतएव सब में समान रूप से आत्म-भाव रखकर सबको सन्तुष्ट करने [illegible] कीजिए।

मनुष्य तीन बातें होने पर ही पूर्ण [illegible] सकता है। अर्थात् धर्म, अर्थ, काम के [illegible] पूर्ण होने पर ही मोक्ष हो सकता है। मोक्ष कोई भिन्न वस्तु नहीं है। वरन् इन तीनों का यह स्वाभाविक परिणाम ही है। धर्म, अर्थ और काम को प्राप्त करने का साधन [illegible]। गोस्वामी जी ने कहा है 'दहियत [illegible]' इस प्रकार ये चारों पदार्थ [illegible]। [illegible] गत अग्निहोत्र 'हवन' कहलाता है, [illegible] रहना हमारा दैनिक कर्तव्य है। यही 'हवन' सामुदायिक रूप में होने पर 'यज्ञ' कहलाता है। अतः प्रतिदिन धर्म, अर्थ एवं काम [illegible] के लिए हवन करो और हवन के द्वारा [illegible] सब प्रकार से शुद्ध करो। अर्थ का [illegible] दान करने से उसकी शुद्धि हो सकती है।

गणानान्त्वा० मन्त्र के अनुसार [illegible] गणपति फिर प्रियपति एवं [illegible] चाहिए। हवन करना तो दैनिक कार्य—[illegible] क्रिया है, किन्तु उसकी मूल भावना यह है कि हम उक्त धर्म, अर्थ और काम [illegible] करें, उनका विकास करें, [illegible] है। जिस प्रकार हम [illegible]

भावना करते हुए वरुण-द्वारा उसकी शक्ति के अंश को शरीर में यथास्थान पहुँचाने का प्रयत्न करते हैं उसी प्रकार भोजन के समय पाचकाग्नि की सहायता से यथास्थान उसका उचित अंश पहुँचाने के लिए भावना करनी चाहिए।

यज्ञ के रूप में सविता देव से प्रार्थना की गई है कि सुवर्ण रथ में जाते हुए स्वर-लोक के दिव्य परमाणु हमारे पास भेजें। हवन का आशय आत्मशुद्धि करना है। अतः प्रतिदिन यथासाध्य हवन अवश्य करना चाहिए। इसी प्रकार सूर्य को नमस्कार करने की प्रक्रिया में भी विशेष प्रकार की भावनाएँ भरी हुई हैं। क्योंकि इसके मंत्र में कहा है "आदित्यस्य नमस्कारन् ये कुर्वन्ति दिने दिने। जन्मान्तर सहस्रेषु दारिद्र्यं नोपजायते ॥" अर्थात् जो मनुष्य प्रतिदिन सूर्य को नमस्कार करता है, वह सहस्रों जन्म में भी दारिद्र्य का दुःखभागी नहीं होगा। अतएव प्रातःकाल ही सूर्य का स्वागत नमस्कार के रूप में करना चाहिए। प्रातःकाल सूर्य नारायण प्रवेश करते हुए हमारी बुद्धि को शुद्ध करते है। अतएव इस भावना को छोड़कर केवल नमस्कार करने से दारिद्र्य दूर नहीं हो सकता। अर्थात् श्रद्धाभक्ति सहित सूर्य नारायण को प्रत्यक्ष देवता को नमस्कार करते हुए उपासना की जानी चाहिए।

भोजनोत्तर साधकों ने विश्राम एवं सत्संग या स्वाध्याय में अपना समय व्यतीत किया। तत्पश्चात् अपराह्नकाल में ४॥ बजे गंगाघाट के पराङ्गण में सब साधक उपस्थित हुए, और वहाँ बूँदी निवासी श्री माँगीलाल जी ने "बावन बन के कृष्ण मुरार, पधारे बलिराजा के द्वार" की टेक वाला मधुर भजन सुनाया। इसके बाद श्री गणपतदास जी कदवाने (बुरहानपुर) के विषय में अपने विचार प्रकट करते हुए कहा "गतवर्ष मैंने स्वरयोग (स्वरोदय) पर अपने विचार प्रकट किये थे। पिछले १२।१३ वर्षों में मुझे जो कुछ अनुभव हुआ है वही आपकी सेवा में निवेदन करूँगा।

योग-चिकित्सा

योग की चिकित्सा में ७०० प्रकार की क्रियाएँ बताई गई हैं। इसी प्रकार योग भी अनेक प्रकार के कहे गये हैं। हठयोग, राजयोग ध्यानयोग, लययोग आदि कई रूप हैं। इनमें हठ-योग प्रधान है। हठयोग की साधना के पश्चात् ही राजयोग की साधना आरम्भ होती है। आत्मा को परमात्मा में मिलाने का नाम ही योग है। योग के आठ अंग कहे गये हैं, जिनके नाम यम-नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि है। इस विषय पर 'हठयोग प्रदीपिका' एवं घेरण्ड-संहिता आदि ग्रंथ लिखे गये हैं। हमारे शरीर में ७२००० नाड़ियाँ हैं और शरीर में से विजातीय पदार्थ निकालने का कार्य रोमकूप करते हैं। नेती, धौती आदि क्रियाओं द्वारा शरीर की शुद्धि की जाती है। योगी जन बाहरी शुद्धि के साथ ही अंत-शुद्धि भी करते हैं। शरीर के शुद्ध स्वस्थ होने पर ही भक्ति का रंग अच्छा चढ़ता है। 'नस्य' के द्वारा कंठ तक की शुद्धि होती है। वस्ती-धौती से उदर एवं अंतर के भाग की शुद्धि होती है। 'गजक्रिया' के द्वारा भी उदर शुद्धि की जाती है। इसमें मुख से पानी पीकर पेट में मथन करते हुए नली-द्वारा मुख से ही उसे निकाला जाता है। इससे भीतर के कफ, श्लेष्मा आदि विजातीय पदार्थ बाहर निकल जाते हैं। इसी प्रकार ब्रह्म दतून धौता क्रिया द्वारा होता है। वस्ती के भी जल-वस्ती, पवन वस्ती आदि कई भेद हैं। आजकल का 'एनिमा' भी वस्ती का ही नया रूप है। अग्निसार क्रिया करने से या नौली क्रिया करने से पेट के वायुगोला आदि समस्त वायु संबन्धी रोग दूर हो जाते है। नेती के भी जलनेती और सूत्रनेती के रूप में दो भेद हैं। इनके द्वारा नाक, मुख, नेत्र, आदि की शुद्धि होती है। शरीर से मल निकालने के पाँच मार्ग

हैं। दाँत से जो मैल निकलता है, उसका नाम 'पायरिया' है। नाक से श्लेष्मा, कंठ से कफ, तथा सिर और कान के मार्ग से भी मल निकलते हैं। इन सब मार्गों से देह शुद्धि करने पर ही योग सिद्ध होगा। ज्ञानेन्द्रियों की शुद्धि के साधनों में त्राटक भी है। इससे नेत्रों की दृष्टि शक्ति ठीक होती है। कपाल भाति से नाड़ी शुद्ध होती है। इसी प्रकार सब अवयवों की शुद्धि के बाद आसन सिद्ध करना चाहिए। नाड़ियों में वायु एवं रक्त का प्रवाह होता रहता है। नस-नाड़ियों में जो दुर्द्रव्य एकत्र हो जाता है, उसको निकालने के साधन आसन-प्राणायाम हैं। आसन के कई भेद हैं। दंड-बैठक के व्यायाम अप्राकृतिक हैं। पशु-पक्षी भी अपने-अपने अनुकूल व्यायाम-आसन के रूप में करते हैं। मयूरासन से अग्नि प्रबल होती है। कई आसनों के नाम पक्षियों के नाम पर हैं। सभी आसनों में सर्वाङ्गासन का महत्व सर्वाधिक है। गलग्रंथि के विकार से मनुष्य की वृद्धि रुक जाती है और उन ग्रंथियों के सुधार से फिर वृद्धि होने लगती है। इस प्रकार योग विद्या की साधना से मनुष्य अपना शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक तीनों प्रकार से कल्याण कर सकता है। और इसके पश्चात् श्री डॉ० नारायण गोविन्द जी नावर (कोटा) ने

सूर्य-किरण-चिकित्सा

पर अपने विचार प्रकट करते हुए, इस विद्या के प्रति अपनी प्रवृत्ति होने के मूल कारण (स्व०) टोंगू जी पोष्टमास्टर से प्रेरणा मिलने तथा (स्व०) डॉ० नागर जी से परिचय होने का विवरण सुनाया तथा इस चिकित्सा में रुचि उत्पन्न होकर क्रमशः प्राप्त अनुभव के आधार पर जो सफलता प्राप्त हुई, उसी के कारण आज २५-३० वर्षों से सूर्य-किरण-चिकित्सा द्वारा जनता की सेवा करने की बात कही।—सूर्य-किरण-चिकित्सा में विभिन्न रंगों की बोतलों में पानी भरकर सूर्य के सम्मुख रखने से जो जल औषधि रूप बन जाता है वह रोगों में यथावश्यक दिया जाता है। हमारे शरीर में ये पाँच रङ्ग हैं। जिस समय किसी रङ्ग की कमी हो जाती है, तभी रोग होता है। किस रङ्ग में कौन सी शक्ति है, इसका ज्ञान प्राप्त करके उसी रङ्ग की बोतल का पानी दिया जाता है। सूर्य-किरण में अपूर्व शक्ति है। और वह सभी रङ्गों की शक्ति से युक्त होती है। हमारा शरीर पंचतत्वों से बना हुआ है; उनमें से अग्नि तत्व का रङ्ग लाल है, जल का रङ्ग गहरा नीला तथा पृथ्वी का रङ्ग पीला, हल्का नीला रङ्ग आकाश का है वायु का रङ्ग हरा है। इनमें दो रङ्ग और मिल गये हैं, वे हैं पृथ्वी और अग्नि के रङ्ग मिलकर बना हुआ नारङ्गी रङ्ग और दूसरा अग्नि और आकाश का लाल और नीला रङ्ग मिलकर बना हुआ बैंगनी रङ्ग है।

लाल रंग गर्म होता है अतएव सब प्रकार के दर्द में इस रंग की बोतल के जल या तेल की मालिश की जाती है। केवल मरणासन्न दशा में ही रोगी को लाल रंग की बोतल का पानी दिया जाने से वह कुछ देर बच जाता है। साधारण रोगों में लाल बोतल का पानी भूलकर भी नहीं देना चाहिए। इसी प्रकार पीला रंग कम गरम होता है। वायु-बादी के रोग, पाचन शक्ति, दमा, श्वास और कफ की वृद्धि में पीले रंग की बोतल का पानी दिया जाता है। सर्दी के कष्टों में नारंगी रंग की बोतल का पानी दिया जाता है। पेट के रोगों में पीली बोतल का पानी लाभकारी होता है। दमे का अपूर्व इलाज भी यही है। गहरा नीला रंग दानिक या शक्तिदायक होता है। यह बुखार और मलेरिया में भी अपूर्व लाभकारी है। मेदे को हल्का बनाता है। रक्त की वृद्धि करने वाला है। आकाशतत्व या आसमानी रंग ठण्डा होता है। हैजे के बीमार को भी नीली बोतल का पानी दिया जाने से तुरन्त लाभ होता है। दस्त, सर्दी और पित्त की वृद्धि में भी यह लाभ देता है।

इसकी ढाई ढाई तोले की तीन खुराक दी जाती हैं और दमे के रोगी को १५-१५ मिनट के अंतर से खुराक दी जाती है। हल्के नीले रंग की लाइट रोशनी भी दी जाती है। गज भर दूरी से रोशनी डाली जाती है। चर्मरोग पर दाद, खाज, खुजन आदि पर हरे रंग की बोतल का पानी काम में लाया जाता है। शरीर में गर्मी बढ़ने पर, श्वेत कुष्ट आदि मे भी हल्के नीले रंग की बोतल का पानी दिया जाता है। सूर्य किरण में रंगीन बोतलों के तैल भी तैयार किये जाते हैं। वर्षा ऋतु में जब कि सूर्य का प्रकाश नियमित नहीं मिलता, उस समय काम मे लाने के लिए ग्रीष्म ऋतु में मिश्री या शकर अथवा शकर की गोलियों को रंगीन बोतलों में भरकर सूर्य की किरणों से औषधि रूप मे तैयार कर लिया जाता है और वर्षाऋतु में काम में लाते हैं। कोढ़ पर या एनिमिया (पाण्डुरोग) पर भी हल्की नीली बोतल का पानी दिया जाता है तथा गहरी नीली बोतल के पानी की पट्टी रखी जाती है। जलंदर या नासूर पर पीले रंग की बोतल का पानी काम में लाया जाता है। इत्यादि

सूर्य किरण से जल तैयार करने की विधि एवं अन्य बाते अगले दिन बतलाने के वचन के साथ कार्यक्रम समाप्त हुआ।

सायंकालीन कार्यक्रम

सायंकाल ७बजे श्री शालिग्रामजी के भजन "सीतापति घनश्याम" के साथ कार्यारम्भ हुआ। बन्धुद्वय ने भी "तुम सुनो प्रभु जी हमारी अरजी" वाला मीराबाई का भजन गाया। इसके बाद यथानियम सायंकालीन उपासना, ध्वनिध्यान, भजन, भावगीत एवं नाम संकीर्तन होकर बन्धु द्वय ने भगवन्नाम स्मरण की महत्ता पर श्री गुरु नानक देव का पंजाबी भजन सुनाया।

तत्पश्चात् श्री डा० बालकृष्ण नागर ने इन्दौर की प्रसिद्ध विदुषी श्रीमती कमलाबाई सा० किबे का संक्षिप्त परिचय देकर उनसे कुछ उपदेश देने के लिए अनुरोध किया। इस पर उन्होंने कहा—

"सत्पुरुष चाहिए।"

"आज नवीन वर्ष का दिन है। मैं यहाँ यही देखने आई थी कि समारंभ में कितने साधक आये हैं और स्व० संत नागर जी का चलाया हुआ कार्य किस रूप में सम्पन्न किया जा रहा है। मुझे यहाँ उपस्थित साधकों की सद्भावना को देखकर प्रसन्नता हुई और कुछ कहने के लिए मैं यहाँ खड़ी हो गई। हमे स्वाधीनता प्राप्त हुए पाँच-छः वर्ष हो गये किन्तु देश की वर्तमान स्थिति देखकर खेद हुए बिना नहीं रहता। हमारे यहाँ नागरिकता की भावना बहुत ही कम देख पड़ती है; किन्तु वास्तव में आज सद्गृहस्थ की ही परम आवश्यकता है। आज हमारे देश में सत्पुरुष या सन्नारी अथवा सत्कुमार ही नहीं सत्कुमारियों की भी बड़ी जरूरत है। किन्तु परीक्षण करने पर समाज में सद्गृहस्थ कितने हैं? यह नहीं कहा जा सकता। श्री रामकृष्ण परमहंस के पास जब बंगाल का एक युवक जाकर अपने क्लेश निवारण के लिए प्रार्थना करने लगा तो उन्होंने उसे रामनाम का उच्चारण करने को कहा। किन्तु उसे जब ऐसा करने में भी संकोच हुआ, तब परमहंस जी ने स्वयं उसकी ओर से नामोच्चार करके उससे यह प्रतिज्ञा करवाई कि, आज से मैं कोई पाप या असत्य का आचरण नहीं करूँगा और इस प्रकार उसे सन्मार्ग पर लगा दिया। मराठी में एक कहावत है कि, जिसमें राम है, उसमें सब कुछ शक्ति है। इसी प्रकार समर्थ रामदास ने भी विवाह-मण्डप में 'सावधान' शब्द कान पर पड़ते ही तत्काल सावधान होकर घर छोड़ दिया और अपना जीवन समाज-सेवा में लगा दिया। आजन्म ब्रह्मचारी रहकर उन्होंने देश और समाज की जो अमूल्य सेवा की तथा छत्रपति शिवाजी जैसा राष्ट्र-पुरुष निर्माण कर देश, धर्म और समाज तीनों का उद्धार कर दिखाया। इसीलिए कहना पड़ता है कि जिस देश के मानवों का जीवन उज्ज्वल, पवित्र एवं आदर्श तथा शुद्ध होगा, वही देश आदर्श होगा।

इसी प्रकार जिसमें जीवन है, आदर्श है तथा प्रेम है वही सत्पुरुष है। यहाँ के चार दिन इसी की साधना के लिए है। कोरी देशभक्ति से काम नहीं चलेगा। राज्य के लिए रत्न नहीं, रत्न जैसे पुरुष चाहिए। यही साधना यहाँ आकर करने का मैं आप से अनुरोध करता हूँ। डा० नागर जी का आरम्भ किया हुआ यह शुभ आयोजन आप सबके लिए मार्गदर्शक होगा, ऐसा मेरा हार्दिक विश्वास है।

इसके पश्चात् मालवा के गौरवरूप श्री स्वामी विष्णुतीर्थ जी महाराज ने अपने प्रवचन में—

जप और ध्यान

का विवेचन करते हुए बताया कि जप और ध्यान ये दोनों साधना की मोटी-मोटी चीजे है। किन्तु हर एक व्यक्ति जप या ध्यान नहीं कर सकता। गीता में भगवान ने अर्जुन से कहा है कि—येषांत्वन्तगत पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्। ते द्वन्द्वमोह निर्मुक्ता भजते मादृढ़ व्रताः॥ अर्थात् भजन के प्रभाव से जिसके पाप नष्ट हो जाते हैं, केवल वे ही ध्यान कर सकते हैं। किन्तु जिनके मन वाणी और कर्म में एकता नहीं वे भजन कैसे कर सकते हैं? जिसका चरित्र शुद्ध नहीं उसके जपतप आदि सब कार्य निष्फल हैं। हमारे चलनी जैसे मन में अध्यात्म रूपी ध्यान का जल कैसे टिक सकता है? ऋषि-मुनियों तथा अन्य महापुरुषों के चरित्र पढ़ने से पता लगता है कि उन्होंने कितनी कठोर साधना एवं जपतप के बल पर साधना करते हुए आदर्श चरित्र का उज्ज्वल स्वरूप निर्माण किया था। किन्तु जबसे हमारे देश को स्वराज्य मिला है तब से, समाज का जितना पतन हुआ और हो रहा है, उससे किस विचारशील व्यक्ति को दुःख नहीं होगा? हमारे यहाँ रिश्वत और काले बाजार के कारण साधारण लोगों का तो जीवन ही दूभर हो गया है। प्रत्येक वस्तु में मिलावट और धोखेबाजी के कारण जनता का विश्वास तक उठ गया है। परस्पर लोग शंका की दृष्टि से देखते और सावधानी बरतते हैं। यूरोप आदि देशों में सचाई का नमूना यह है कि वहाँ के दुकानदार ग्राहकों की ईमानदारी पर विश्वास करके सब वस्तुएँ खुली छोड़ देते हैं और ग्राहक उन पर लिखा हुआ मूल्य वहाँ पेटी में डालकर वह वस्तु ले जाते हैं। शाम को दुकानदार आकर अपना मूल्यादि बराबर पा लेता है। समाचार पत्रों से लेकर बड़ी से बड़ी मूल्यवान वस्तु वे इस प्रकार खरीद लाते और हिसाब में भी किसी प्रकार की गड़बड़ या धोखेबाजी नहीं होती। अमेरिका में तो एक स्थान पर ऐसी रेल चलती है, जिसमें यात्री को टिकट लेने की भी आवश्यकता नहीं होती। प्रत्येक व्यक्ति अपने जाने के स्टेशन का किराया, स्टेशन की पेटी में डाल देता और अपने स्टेशन पर पहुँच कर चुपचाप घर चल देता है किन्तु हमारे यहाँ तो लाखों यात्री बिना टिकट के रेलों में घूमते रहते हैं। व्यापारी खाने पीने आदि की सभी वस्तुओं में मिलावट करके ब्लेकमार्केट द्वारा गरीबों को लूटते हैं। ऐसे लोग भला भजन कैसे कर सकते हैं! देश के नवयुवक चाहते हैं कि हमें ऐसा ससुर मिले, जिसके दिये हुए धन दहेज से वे लखपती बन जाएँ। अध्यापकों का तो वे जरा भी आदर नहीं करते। माता-पिता की भी सर्वथा उपेक्षा करते हैं। भारतीय संस्कृति का आदर्श है मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्य देवो भव!" अर्थात् माता-पिता और गुरु को देव या ईश्वर रूप मानकर उनका आदर करो। जो लोग माता पिता को छोड़कर दूसरी जगह ईश्वर ढूँढते हैं, उन्हें वह नहीं मिलता। ऐसे लोग कैसे भजन कर सकते हैं!

गीता में भगवान ने कहा है—"श्रेयोहि ज्ञानमभ्यासात् ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते। ध्यानात् कर्मफल त्यागः त्यागात् शान्ति निरन्तरम्॥" अर्थात् ज्ञान अभ्यास से श्रेष्ठ है और ज्ञान से ध्यान श्रेष्ठ है। ध्यान से कर्मफल का

त्याग और त्याग से निरन्तर शान्ति श्रेष्ठ है। किन्तु जब तक हम वहिरङ्ग साधन नहीं करते, तब तक अंतरंग साधन कैसे कर सकते हैं? अतएव पहले इन्द्रियों को वश में कीजिए। साथ ही श्रद्धा-पूर्वक साधन कीजिए। क्योंकि 'श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्'—श्रद्धा होने पर ही ज्ञान की प्राप्ति हो सकेगी।

महापुरुष ध्यान के द्वारा आत्मा में परमात्मा को देखते हैं। अतएव ज्ञानपूर्वक अभ्यास कीजिए। समझकर बुद्धिपूर्वक अभ्यास करने से ही सफलता प्राप्त होगी। यहाँ प्रश्न हो सकता है कि ज्ञान किसे कहते हैं? किन्तु ज्ञान का रूप बड़ा ही व्यापक है। थोड़े में ज्ञान का अर्थ वस्तु के यथार्थ स्वरूप को जान लेना ही है।

आजकल धर्म का नाम ही नहीं रहा बल्कि धर्म पैसा कमाने का साधन बन गया है। रामकृष्ण परमहस के दो शिष्य थे, उनमें से एक ने १२ वर्ष तक साधना करने के पश्चात् एक दिन बिना नाव के चलकर गंगापार कर जाने पर दूसरे शिष्य के सामने अपनी इस सिद्धि का बड़े गर्व से वर्णन किया। किन्तु उसकी बात सुनकर दूसरे ने उपेक्षा करके कहा कि तब तो तुमने दो पैसे की सिद्धि प्राप्ति करने में इतना समय खो दिया। यह कौन बड़ी बात है! दो पैसे देकर सहज ही नाव से गंगा पार की जा सकती है। इस पर तुम इतना गर्व क्या करते हो! अर्थात् श्रद्धा-भक्ति पूर्वक वास्तविक ज्ञान पाने का प्रयत्न करना चाहिए, सिद्धियों के फेर में पड़ने से मनुष्य यथार्थ-पथ से भटक जाता है, अतएव श्रद्धा के साथ विवेक भी होना चाहिए।

श्रद्धा को विज्ञानमय कोष का सिर कहा गया है। अन्नमय कोष में प्राणमय कोष का स्थान है और प्राणमय कोष में विज्ञानमय कोष तथा उसमें आनन्दमय कोष का स्थान है। विज्ञानमय कोष के हाथ ऋत और सत्य के रूप में हैं। ध्यान योग उसका धड़ है और वह महत्तत्व या समष्टि बुद्धि पर अवस्थित है। जिस श्रद्धा के साथ सत्य नहीं होता वह सच्ची श्रद्धा नहीं कही जा सकती। अतएव ज्ञान युक्त अभ्यास करने से ही सिद्धि प्राप्त होगी। गीता में कहा है—'ध्यानेनात्मनि पश्यंति' अर्थात् ध्यान के द्वारा आत्मा में ईश्वर को देखते हैं।

प्रत्येक कर्म निष्काम भाव से, ईश्वरार्पण बुद्धि से करो। अर्थात् कर्मफल की इच्छा त्याग कर कार्य करो। किन्तु आजकल तो लोग कर्म करने से पहले फल का हिसाब लगाने बैठ जाते हैं। आजकल हमारे स्वराज्य के शासन में मंत्री लोग देशभक्ति या सेवा भाव से काम नहीं करते। उनका ध्येय तो पैसा बटोरना मात्र रह गया है। यही देश की दुरवस्था का कारण है और उन लोगों की इस स्वार्थ परायणता के कारण ही छोटे छोटे कर्मचारियों तक में भ्रष्टाचार की वृत्ति बढ़ रही है तथा स्वार्थी लोग उन्हें पथ-भ्रष्ट करके अपना काम बना लेते हैं। ध्यान और जप अनेक प्रकार के बताये गये हैं। स्वाध्याय का अर्थ जप भी है। स्वाध्याय से मन में पवित्रता आती है। उससे मन एकाग्र होता है, किन्तु जप के साथ ध्यान भी होना चाहिए। मंत्र के जप के साथ उसके अर्थ को समझते हुए उसमें निहित भावना का ध्यान करना चाहिए। इस प्रकार ध्यान के साथ ज्ञान का निकट सम्बन्ध होता है।

'स्वाध्यायात् योगमासीत' स्वाध्याय के द्वारा योग की साधना की जा सकती है और योग से परमात्मा का दर्शन हो सकता है। राम राम कहने से मन अन्य तरफ से हटकर जब उद्देश्य की ओर अग्रसर होता है, तथा उसे अभ्यास के द्वारा दृढ़ करना चाहिए। इस प्रकार जब वह धीरे धीरे एकाग्रता की ओर बढ़ेगा, तब वह उतना ही जप और ध्यान के द्वारा समाधि अवस्था को प्राप्त होने लगेगा। किन्तु वह जैसा या जिस वस्तु का ध्यान करेगा, वैसा ही वह

बन जायगा। जैसे कि कीड़े को पकड़ कर भौंरा सतत उसे डंक मारते हुए ध्यान के द्वारा अपने रूप में बदल देता है इसी प्रकार एक व्यक्ति जब किसी महात्मा के पास ध्यान सीखने के लिए गया तो उन्होंने उससे अपनी सबसे अधिक प्यारी वस्तु का ध्यान करने के लिए कहा और वह अपनी प्यारी भैंस का ध्यान करते करते अपने आपको भैंस के रूप में समझने लगा। इसलिए ध्यान में भी विवेक और ज्ञान की सहायता अवश्य लेना चाहिए।

वेद में इसीलिए प्रार्थना की गई है—'तन्मेमनः शिवसङ्कल्पमस्तु'। अर्थात् मेरे मन में सदैव शिवस्वरूप या शुभ विचार उत्पन्न हों। क्योंकि जो व्यक्ति अपने मन में जैसे विचार करेगा, वह वैसा ही बन जायगा। इसीलिए कहा गया है—'तज्जपस्तदर्थ भावनम्' अर्थात् जिसका जप करते हो उसका साथ साथ ध्यान भी करो। राम नाम का जप करते समय राम के गुण अपने में आने की भावना (ध्यान) करने से वे गुण निश्चित रूप से आप में आ सकते हैं। भगवान का ध्यान करने से आप भगवान बन सकते हैं। ब्रह्म का ध्यान करने से आप ब्रह्मरूप बनकर मुक्त हो सकते हैं। सारांश जैसे आप ध्यान करेंगे, वैसे ही बन जायँगे, अतएव ज्ञान के साथ ध्यान का अभ्यास करें।

इसके बाद बन्धुद्वय ने एकाग्रचित्त से ध्यान और जप करने का मार्ग बताते हुए "या विधि मन को लगावे' वाला भजन गाया तथा अन्य कई उदाहरण और संत पुरुषों की उक्तियाँ सुनाकर इस विषय का स्पष्टीकरण किया।

तत्पश्चात् भारतीय राज्य-परिषद के सदस्य एवं "कल्पवृक्ष"—संस्था के साथ प्रारम्भ काल से सम्बन्ध रखने वाले श्री कन्हैयालाल जी वैद्य ने अपने नामानुरूप बताया कि

हमारे देश का स्वास्थ्य

आज कल कितना बिगड़ा हुआ है और वातावरण कितना दूषित हो गया है यह पहले दोनों वक्ताओं के भाषण से आपको

श्री कन्हैयालालजी वैद्य, एम० पी०

विदित हो चुका है। जिन बातों की ओर उन्होंने आपका ध्यान आकर्षित किया है उसमें चरित्र-बल मुख्य है। स्वास्थ्य को ठीक करने के लिए जब तक हम चरित्र का सुधार नहीं करेंगे, तब तक कोई लाभ नहीं हो सकता। जिसका स्वास्थ्य ही चला जाय, उसे तो जीवन्मृत ही समझना चाहिए। किन्तु जिसका चरित्र चला गया, उसका तो सब कुछ ही चला गया। अर्थात् चरित्रबल ही संसार में श्रेष्ठ होता है। अमेरिका ने उद्जन बम् जैसे विनाशक अस्त्र का निर्माण कर संसार को भयभीत कर दिया है और वह सर्वत्र पूँजीवाद का आधिपत्य स्थापित करना चाहता है, जब कि संसार को महान् शांति का सन्देश केवल भारत से ही मिल सकता है। प्राचीनकाल में तो गौतम बुद्ध आदि ने संसार को यह संदेश दिया हा था, किन्तु इस युग में भी गाँधी जवाहर जैसी विभूतियाँ हमारे देश का शान्ति सन्देश संसार को सुनाकर अपनी महत्ता चरितार्थ कर रही हैं। भौतिक-वाद से त्रस्त संसार की दृष्टि भारत पर ही लगी हुई है।

आप लोग यहाँ जो साधना कर रहे हैं वह चरित्र निर्माण की ही साधना है। यह आप विश्व कल्याण की भावना के रूप में कर रहे हैं

नाम्ना जोहवीति०" अर्थात् जो मनुष्य नाम (नामी) को नाम के द्वारा बुलाता है। अथवा जो "पुरासूर्यान् पुरोसखः" अर्थात् सूर्योदय से पहले उषःकाल में या उसके पश्चात् नाम के द्वारा नामी को बुलाता है, और जो उसमें सर्व प्रथम पद पाने का यत्न करता है, वह "सहसवत् स्वराज्यम् याय। यस्मान् नान्यं परम्।" उस स्वराज्य को प्राप्त होता है, परमात्मा को प्राप्त करता है। जिससे बढ़कर श्रेष्ठ वस्तु कोई नहीं है। इसी प्रकार दूसरा मंत्र और भी है, जिसका आशय है—हेस्तोता, उस परमपदार्थ की प्रशंसा में संपूर्ण जीवन समाप्त कर दो। अतएव आप पूछ सकते हैं कि वह नाम क्या, कौन सा होना चाहिए? किन्तु यह कोई बहुत बड़ी बात नहीं जिसका भी श्रद्धापूर्वक स्मरण किया जाय। ऋग्वेद कहता है—"यथा विदा प्राकृता" अर्थात् जिस देश, काल और भाषा में तुम बोलते हो, उसी में तुम उसकी स्तुति करो। इस प्रकार हम उसकी स्तुति करते हैं जो प्रजा अथवा संसार को उत्पन्न करता है। साथ ही हम देव के 'चारु' नाम की स्तुति करते हैं। इसी प्रकार जो गाँव है, अरण्य है, नगर है, जो सभाएँ या समितियाँ हैं उन सब में हम आप के चारु (पवित्र) यश का वर्णन करें। इस मंत्र में 'वदन' का अर्थ है बोलना। मनन इसके बाद का विषय है। सभाओं-सत्रों में हम बहुत सत्कृत हुए, जब कि हमने सतत मनन किया। अतएव प्रभु नाम का बारम्बार मनन करो, हृदय की वाणी से बोलो। जो हम सबसे पहले है, उसी की यह माया है। अतएव उसी की सत्ता में रहते रहते अपनी योग्यता, ज्ञान एवं भाषा के अनुसार उस परमात्मा का यशोगान करो। परमात्मा हृदय की—अंतरतम की बात सुनता है, किन्हीं विशेष स्तोत्रादि की नहीं। फिर भी हृदय की पवित्रता के लिए स्तोत्रादि हैं। हाँ, तो जैसा कि पहले कहा गया है "यथा विदा ऋतस्य गर्भम्" इसमें ऋत का अर्थ शोभित वाणी है। जगत् जिसको मन में लिये हुए है, जन्म भर हम उसी की स्तुति करें, उसी में सारा जीवन लगा दें।

समन्वित जीवन के बिना एकाङ्गी जीवन से साधना नहीं हो सकती। साधना में दैविक शक्ति को उस परमात्मा में जोड़ दो। ज्ञान, निष्ठा और कृति, तीनों के सम्मेलन का नाम साधना है। जो भी लोग हमारे संपर्क में आवें उन्हें सुख मिले। सारा जीवन प्रभु की स्तुति में व्यतीत हो। एक उक्ति है "जो आप जपे और को जपावे। वह वैष्णव परम पद पावे।" इसी प्रकार ग्रंथ साहब में जो कुछ लिखा है वही ऋग्वेद का भी मत है। अतएव परमात्मा के नाम को अच्छी तरह जानकर उपासना करनी चाहिए। जो जिस रूप में जाने उसी में उसका चिंतन करे। आप्त पुरुषों से सुनकर उपासना करने पर भी साधक मुक्त हो सकता है। मंत्र में भी यही बात कही गई है—जिसका आशय "हे व्यापक (विष्णु) परमात्मन् आपके सुन्दर बुद्धि देनेवाले तेज का हम ध्यान करते हैं।

नाम एक पवित्र वस्तु है। ऋषियों ने उसे जानकर उपासना करने के लिए कहा है। अथर्ववेद में भी "यस्यनाम महत् यशः" कह कर उस नाम की महिमा वर्णन की गई है। यही बात ऋग्वेद में भी है। अर्थात् नाम की महिमा नामी से भी अधिक है। प्रभु स्वयं अपने नाम से अपनी महिमा वर्णन नहीं कर सकते। नाम आदि है और वही अंत है। अतएव नाम का स्मरण करते रहो। नाम की साधना-उपासना करते रहो। जब हृदय में भावना-सद्भावना होगी तभी नाम में रति होगी। कुतर्कमय बुद्धि नहीं होनी चाहिए। संशय को छोड़कर भगवान का नाम लो। श्रद्धा-भक्ति से नाम लेने पर अवश्य आपका कल्याण हो सकता है।"

आपके बाद श्री उद्धव जी ने भी 'नाम की महिमा' पर प्रकाश डालते हुए बतलाया कि—"वेद में परमात्मा के नामों का ही विवेचन किया गया है। परमात्मा के नाम का स्मरण

करते हुए हम उसका साक्षात्कार भी कर सकते हैं। किन्तु सच्चा रास्ता वेद के द्वारा ही जान सकते हैं। गीता में भी वेदों के द्वारा ही उसको जान सकने की बात कही गई है। भगवान से बातचीत करना हो तो वेदों के पास जाइए। परमात्मा अपनी दिव्य शक्ति के द्वारा आप में अवश्य परिवर्तन कर सकता है। संस्कृति का आशय है, जिसमें अच्छे अच्छे और अधिकाधिक संस्कार हों। संस्कार का अर्थ है दोषों का मार्जन और सद्भावों की स्थापना। हमारे यहाँ जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त सोलह संस्कारों के द्वारा मानव जीवन को सुसंस्कृत बनाने का विधान है। उनमें मुख्य संस्कार चार हैं—सर्व प्रथम ब्रह्मचारी बनने के लिए यज्ञोपवीत संस्कार किया जाता है। ब्रह्मचारी को ही महात्मा भी कहते हैं। गृहस्थ बनने के लिए विवाह संस्कार किया जाता है। तपस्या के लिए वानप्रस्थाश्रम और सर्वस्व त्याग कर ब्रह्मचिंतन के लिए संन्यास की दीक्षा ली जाती है। भारतीय जीवन इन्हीं चार आश्रमों में विभक्त कर दिया गया है।

आजकल नवीन शिक्षा-क्रम की चर्चा जोरों पर है, किन्तु ठीक मार्ग पर कोई नहीं पहुंच सका, शिक्षा-क्रम में मुख्य तीन बातें—भाषा, इतिहास, विज्ञान आ जाती हैं। वेदों में इतिहास भी है। ऋषि मुनि विज्ञानवेत्ता थे। उन लोगों ने सूर्य मंदिर बनाया था। यही नहीं वरन् उस सूर्य में जो जो तत्व हैं, उनका विज्ञान शास्त्र भी बनाया था। वेदों को त्रयी विद्या भी कहा है। इसी प्रकार इला, सरस्वती, मही ये तीनों शक्तियाँ हैं। इनमें इला का आशय भाषा है, सरस्वती का आशय प्रवहमान और मही का आशय 'करना' है। अर्थात् अपनी भाषा को हम प्रवहमान करते हैं।

शिक्षा के विषयों में मातृभाषा, संस्कृति, इतिहास, भूगोल की शिक्षा दी जानी चाहिए। "ऋचं वाचं प्रपद्ये, मनो यजुः प्रपद्ये, सामप्राणं प्रपद्ये, चक्षुः श्रोत्रं प्रपद्ये।' ऋग्वेद में वाणी को, यजुर्वेद में मन को, सामवेद में प्राणों को तथा अथर्ववेद में नेत्र और कानों को लगाइये। ये तीनों बातें जिसमें होती हैं, वही महात्मा है। ब्रह्मचारी बहुत बड़ा व्यक्ति होता है। महात्मा का आशय बड़े आदर्शों से है। योग्य शिक्षा दीक्षा से मनुष्य संस्कृत बन सकता है। अतएव वेद विद्या के द्वारा ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति करना परम कर्तव्य है।"

इसके अनन्तर वन्दृद्वय के भजन हुए और प्रातःकाल का कार्यक्रम ७॥ बजे समाप्त हुआ।

आसन-प्राणायाम की शिक्षा

संयमशाला में उपस्थित लगभग तीस साधकों को श्री सत्यात्मा जी तथा श्री रुद्रगाने जी ने आसन, प्राणायामादि के साथ स्वास्थ्य-सुधार के लिए व्यायाम की प्रक्रियाएं सिखला कर उनसे अभ्यास कराया। साथ ही नेती क्रिया करके साधकों से भी कराई। इसी प्रकार सब बातों की व्याख्या करके आहार विहार के विषय में भी मार्ग दर्शन किया। लगभग दो घंटे यह कार्यक्रम चलता रहा। इसके पश्चात यथानियम दुग्ध-वितरण किया गया।

हवन और मध्याह्न उपासना

साढ़े दस बजे दैनिक अग्निहोत्र, वैदिक सम्पत्ति से भावना पाठ, गीता का एक अध्याय तथा "युनिटी" मासिक से दैनिक पाठ सुनाया जाकर मध्याह्न उपासना की गई। तत्पश्चात डॉ० नागर ने प्रार्थना के महत्व पर संक्षेप में अपने विचार प्रकट किये। इसके बाद भोजन, विश्रामादि में दो बजे तक का समय व्यतीत हुआ।

योगिराज का उपदेश

दो दिन से सब लोग उत्तराखण्ड के तपस्वी (मूलत. उज्जैन के निवासी) के वायु भक्षी होने की चमत्कार-पूर्ण बात सुनकर उनके दर्शन के लिए उत्सुक हो रहे थे। अत. सबकी इच्छा पूर्ण

करने के लिए दोपहर को दो बजे उन्होंने व्याख्यान-मण्डप में पधारकर सबको दर्शन दिये और लगभग दो घंटे तक ओजस्वी वाणी में योग-साधना के विषय में अपने अनुभव एवं शास्त्रीय प्रमाणों के साथ अत्यन्त उपयोगी प्रवचन दिया। आपने कहा कि "डॉ० दुर्गाशङ्कर जी नागर के विषय में मैंने बड़ौदा एवं अन्यान्य स्थानों में बहुत कुछ बातें सुनीं और सबने मुझे उज्जैन जाकर डॉ० नागरजी के दर्शन करने के लिए कहा। अतएव इस नगरी से पूर्व सम्बन्ध रहने के कारण कई वर्षों बाद मैं उत्सुकतापूर्वक यहाँ आया। किन्तु संयोगवश उनके दर्शन नहीं हो सके। यहीं पता लगा कि दो वर्ष पूर्व वे दिवंगत हो चुके हैं। किन्तु मैं नहीं समझ सका कि उन्होंने कैसे अपनी अपूर्व इच्छा शक्ति द्वारा मुझे यहाँ खींच कर बुला लिया और अपने अनुभव सुनाने के लिए प्रेरणा की।

उत्तराखण्ड की यात्रा करते हुए मैं सभी आचार्यों से मिला और सबने इस तत्व को मान्य किया। मैंने द्वारका मठ के शङ्कराचार्य तथा नर्मदा तट पर रङ्ग अवधूत के दर्शन किये। उपनिषद् पर बातचीत भी की। गगनाथ महादेव के स्थान पर कैलाशनाथ जी ने ही नागरजी का परिचय मुझे दिया। यद्यपि योग साधना करने वाले के लिए बड़ी सभा जोड़ कर लम्बा या उच्च स्वर में व्याख्यान देने की मनाई की गई है, क्योंकि जोर से बोलने पर श्वास की गति बढ़ कर चित्त चञ्चल होने लगता है। इसी प्रकार अत्यन्त योगी के लिए तो यह व्यवहार और भी घातक या हानिकर सिद्ध होता है। फिर भी न जाने क्यों मुझे आप सबके सामने अपने विचार प्रकट करने की प्रेरणा हो रही है। अस्तु

योग साधना में सबसे पहली बात आहार की साधना है। अत्याहार या अधिक भोजन मन, वासना और प्राण तीनों पर प्रभाव डालता है। योगशास्त्र के व्याख्याता महर्षि पतंजलि ने अपने 'योगसूत्र' में चित्त की वृत्ति के निरोध करने (मन को वश में करने) को योग कहा है। योग के अनेक भेद हैं; उनमें हठयोग और राजयोग मुख्य हैं। किन्तु राजयोग में प्रवेश करने के लिए पहले हठयोग की साधना आवश्यक बताई गई है। हठयोग और राजयोग वास्तव में एक ही है। प्राण (वायु) के योग से साधन किया जाने वाला हठयोग है और मन के द्वारा किये जाने वाले योग का नाम राजयोग है। किन्तु मन की स्थिरता के बिना कुछ भी नहीं होगा। इसी प्रकार "आहार शुद्धौ सत्वशुद्धिः" आहार की शुद्धि से सत्व की शुद्धि बताई गई है और सत्व शुद्ध से स्मृति बुद्धि स्थिर होती है। इसलिए योग-साधना की इच्छा रखनेवाले को सबसे पहले आहार-शुद्धि का प्रयत्न करना चाहिए। जन्म बन्धन से मुक्त होने का नाम योग है। इसी प्रकार आत्मा और परमात्मा को मिलाना ही योग की परम सिद्धि कहलाता है।'

इस विवेचन के पश्चात् आपने योगशास्त्र, भागवत एवं अन्यान्य ग्रंथो के श्लोक एवं उनकी व्याख्या करते हुए योग साधना के आरम्भ से लेकर ठेठ समाधि अवस्था तक का वर्णन किया। योग साधना के लिए उत्सुक योगी के लिए मुख्य आहार दूध बतलाया और वह भी इतना गर्म करने को कहा गया कि उस पर मलाई न जमने पावे। प्रारम्भ में ही यदि दूध पर न रहा जा सके तो दो-तीन पतले फुलके दूध में लेना चाहिए। नमक-मिर्च या सब प्रकार के मसाले योगी के लिए वर्जित हैं। केवल दूध पर रहने वाले योगी के लिए तीन छटाँक दूध दिन-रात में पर्याप्त हो सकता है, और गृहस्थाश्रम में रहने वाले योग-साधक तीन पाव दूध पर निर्वाह कर काम चला सकते हैं। इस प्रकार युक्ताहार-विहार का पालन करते हुए योगसाधना करने पर ही सफलता मिल सकती है।

योग के आठों अंग यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान समाधि

पर भी तपस्वीजी ने विस्तारपूर्वक विवेचन कर सब श्रोताओं को उपदेश दिया।

इस प्रकार "प्राकृतिक चिकित्सा" के कार्य-क्रम का समय इस उपदेश में व्यतीत हो गया।

सायंकालीन-कार्यक्रम

सायंकाल ७ बजे यथानियम उपासना, प्रार्थना, भजन कीर्तन हो जाने के पश्चात डॉ० नागर के निवेदन करने पर स्वामी श्री विष्णुतीर्थ जी महाराज ने अपने प्रवचन में बताया कि—

ध्यान कैसे करना चाहिए ?

ध्यान के लिए सबसे पहले साधक को अपनी भूमिका तैयार करनी पड़ती है। क्योंकि बिना भूमिका के कोई भी काम दृढ़ नहीं होगा। और जैसा आप ध्यान करेंगे वैसे ही बन जायेंगे। किन्तु पहले इस बात का विचार करना चाहिए कि ध्यान किस अवस्था में हो सकता है ? मन प्रकृति का अंग होने से उसमें सत्व, रज, तम तीनों ही गुणों का प्रभाव पड़ता रहता है। अतएव केवल सतोगुण का भाव रहने पर ही ध्यान करने से साधक सफलता प्राप्त कर सकता है। क्योंकि तमोगुण रहने पर राक्षसी और रजोगुण रहने पर 'आसुरी ध्यान होगा। अतएव सदैव सत्वगुण का आवाहन करना चाहिए। क्योंकि 'देवोभूत्वा देवंयजेत्' देवता बनकर ही देव की पूजा कर सकते हैं। अर्थात् इसके लिए पहले शुभ विचार करते हुए सात्विक बनना चाहिए। किन्तु विचारों को सात्विक बनाने का साधन सर्वसुलभ नहीं। जैसी जिसकी दिनचर्या हो, उसे ऐसे रूप में ढालनी होगी, जिसमें कि तम या रज प्रभाव न डाल सकें। जब वातावरण शुद्ध हो जायगा, तभी हमारा अन्तःकरण स्वाभाविक रूप से सात्विक रहने लगेगा। फिर किसी से सीखने की आवश्यकता नहीं रहेगी।

भगवान स्वयं सतोगुण रूप हैं, सत्वस्वरूप हैं। शरीर में तमोगुण होने पर आलस्य बढ़ेगा। रजोगुण में क्रोध-मोह आदि विकार होंगे। सतोगुण में आत्मा शान्ति लाभ करेगी।— आत्मा के इन्द्रियों के विषयों की ओर जाने से रजोगुण का विकास होता है। अतएव हमें हमेशा प्रसन्न रहने का प्रयत्न करना होगा। क्योंकि "प्रसादेःसर्व दुःखानां हानिरस्योप जायते" अर्थात् प्रसन्नता के द्वारा समस्त दुःख दूर हो जाते हैं। मन में प्रसन्नता होने पर ही सब प्रकार की साधना में सफलता प्राप्त होती है। किन्तु आजकल की परिस्थिति में मनुष्य प्रसन्न रहना भूल गया है। उसके मन में घुन लग गया है। मन में प्रसन्नता के साथ प्रेम भाव जागृत करना चाहिए। संसार में सब के लिए प्रेम की भावना जागृत कीजिए। प्रेम भगवान का रूप है। जब चित्त प्रेम से भरा हुआ होगा तब वह तम और रजोगुण से मुक्त रहेगा। और तभी वह सतोगुण युक्त होने से ध्यान के उपयुक्त होगा।

ध्यान के लिए प्रातः सायं और सोने से पहले और सवेरे जागने के साथ ही जब कि मन स्वाभाविक रूप से शांत होता है, वही ठीक समय होगा। वैसे प्रातः-सायं सन्ध्या-पूजा का विधान है ही। अर्थात् प्रातः सायं सोने जागने से पहले का समय ही ध्यान के लिए उपयोगी हो सकता है। आसन से बैठकर ध्यान करना चाहिए। हमारे हृदय में भगवान बैठे हैं। आप भी यही भावना मन में लाकर सोचिए कि भगवान आपके हृदय में विराज रहे हैं। भगवान से दिव्य किरणें निकल रही हैं और वे चारों ओर फैली हुई हैं। भगवान के चारों ओर मण्डलाकार प्रकाश बन जाने की भावना करते बैठ जाइए। कुछ दिनों में यही कल्पना साकार हो जायगी। जब ऐसा अनुभव होगा, तभी विश्वव्यापी प्रभाव पड़ सकेगा। गीता में भी भगवान ने यही बात कहते हुए बताया है— 'मय्यावेशित चेतसाम्' अर्थात् मुझ में लीन किये हुए चित्त से ध्यान करने अर्थात् अनन्य भाव से चिन्तन करने पर "तेषामहं समुद्धर्ता मृत्यु संसार

सागरात्" मैं उसका संसार सागर से उद्धार (मुक्त) कर देता हूँ। अर्थात् ईश्वरमय बन कर ध्यान करने से निश्चित ही कल्याण हो सकता है।

शिवजी के उपासक "शिवोऽहम्" के जप के साथ यदि भावना, श्रद्धापूर्वक जप करेंगे तो निश्चित ही शिव-कल्याण रूप बन जायेंगे। इसी प्रकार ध्यान मानसिक, आध्यात्मिक आदि अनेक रूप में होता है। चेतन आकाश का मन में अपने चारों ओर ध्यान करें। गीता के अनुसार 'आत्म संस्थमनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्येत्" अर्थात् मन को आत्मा में विलीन कर अन्य किसी भी विषय का चिन्तन न करे। अर्थात् 'हम ब्रह्म के अंश हैं, चेतन हैं, अतः हम पूर्णरूपेण आनन्द स्वरूप हैं। इस प्रकार मन में भाव उत्पन्न होने पर ही ध्यान करना उचित है। भगवान अनन्त रूप हैं। सूर्य चन्द्र आदि के रूप में भी भगवान का ध्यान कर सकते हैं। जिस वस्तु का ध्यान करेंगे, उसी प्रकार की सफलता प्राप्त होगी।

जप के साथ या जो नाम जपना हो उसके अर्थ की भावना भी अवश्य करनी चाहिए। भगवान के नाम के साथ वाणी का स्वरूप भी आपके सामने अवश्य आना चाहिए। अर्थात् वह नाम (या मन्त्र) जिस अर्थ को व्यक्त करता है, उसी की भावना पर ध्यान रखना आवश्यक है। क्योंकि "यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी" जैसी भावना होगी वैसी ही सिद्धि प्राप्त होगी। जैसा ध्यान करेंगे वैसे ही आप बन जायेंगे। इसी लिए कहा गया है—'तन्मेमनः शिवसंकल्प मस्तु' मेरे मन में सदैव शुभ कल्याणकारी संकल्प हों। सदैव शुभ विचार ही हमारे मन में उत्पन्न होने चाहिए। मन के अनुकूल ध्यान करने से शीघ्र सिद्ध होगा। प्रतिकूल ध्यान करने पर कदापि सफलता नहीं हो सकती।

'वीतराग विषयेः वा चित्तम्' अर्थात् वीतराग होकर विषयों के सम्बन्ध से मुक्त होना चाहिए। रागद्वेष से मुक्त रहने वाला साधक ही ध्यान में सफलता प्राप्त कर सकता है। ऐसे वीतराग महात्मा का ध्यान करने से ही दिव्य शक्ति प्राप्त हो सकती है। अर्थात् ध्यान में रजोगुण या तमोगुण नहीं आने चाहिए। शिवोऽहम के जप के साथ यदि पाप की भावना रखेंगे तो तो उग्रपाप आपका मन दूषित कर देंगे। किंतु गीता के अनुसार 'अपिचेत्सु दुराचारो भजते मामनन्य भाक्।' यदि दुराचारी मनुष्य भी मेरा आनन्द भाव से भजन करें तो वे निश्चित ही संसार से मुक्त हो सकते हैं।

यदि अपने आपको क्षुद्र मानकर ध्यान करेंगे तो अवश्य आप क्षुद्र बन जायेंगे। पाप का ध्यान करने से उसके सम्बन्ध की विकृतियाँ सामने आने लगेंगी। अतएव मन में शुभ संकल्प रखकर शुद्ध भावना के साथ भगवान का ध्यान करना चाहिए।"

इसके पश्चात् डॉ० शिवमंगलसिंह 'सुमन' ने प्रो० गुरुप्रसाद जी टंडन का परिचय देते हुए उन्हें राजर्षि पुरुषोत्तमदास जी टंडन के सुयोग्य पुत्र एवं अपने विद्यागुरु, हिन्दी और हिन्दू धर्म-संस्कृति के अनन्य प्रेमी बतलाया। और तब श्री टंडन जी ने अपनी शांत गम्भीर वाणी में—

भारतीय संस्कृति

पर प्रकाश डालते हुए कहा "आज इस पवित्र सान्दीपन की भूमि पर आने का मुझे दूसरी बार सौभाग्य प्राप्त हुआ है। यहाँ आने पर मन में कितनी ही भावनाएँ जागृत होती हैं। पराधीन भारत में पहले हम अपनी संस्कृति के विषय में कुछ भी रुचि नहीं रखते थे। किन्तु आज भी विदेशियों के प्रभाव के कुचक्र चल ही रहे हैं। विदेशी संस्कृति ने हमें सभी प्रकार से हीन बना दिया है। आजकल भाषा के प्रश्न को लेकर एकीकरण की चेष्टा हो रही है, जब कि प्राचीन समय में संस्कृति का एक ही रूप इसका साधन रहा है।

संस्कृति का सम्बन्ध संस्कार से है। और इसका अर्थ है परिष्कार या शुद्ध करना। अँगरेजी में इसी को कलचर कहते हैं, जिसका अर्थ है

पैदा करना या सुधार करना। किन्तु संस्कृति से हमारे यहाँ जाति के संस्कार का अर्थ लिया जाता है। देश के जलवायु एवं परम्परा के साथ संस्कृति या संस्कारों का क्षेत्र विकसित करने से जो भावना मन में दृढ़ हो जाती है, उसे हम छोड़ना नहीं चाहते। महामना मालवीय जी जब विलायत यात्रा के लिए जाने लगे तब वे अपने संस्कारों को कायम रखने के लिए गंगाजल तथा यहाँ की मिट्टी तक को साथ में ले गये थे। वे भारतीय संस्कृति के अनन्य उपासक थे।

संस्कृति का धर्म से घनिष्ठ सम्बन्ध है। धर्म के सम्बन्ध में हमारा देश अपने को निरपेक्ष मानता है। किन्तु संस्कृति देश पर आधार रखती है। जैसे बंगाली मुसलमान की भाषा बंगाली है और उनकी वेष भूषा भी अन्य बंगालियों जैसी ही होती है। इसी प्रकार मद्रास आदि देशों में बसे हुए मुसलमानों की संस्कृति भी है। वे उसी देश की भाषा बोलते हैं। वैसी ही वेष भूषा में रहने से वे बंगाली या मद्रासी ही माने जाते हैं। जब कि वेष भूषा का सम्बन्ध आजकल सभ्यता के साथ जोड़ा जाता है। किंतु संस्कृति का सम्बन्ध सभ्यता के साथ भी होता है। साधुता पूर्ण व्यवहार भी सभ्यता ही कहलाता है। किन्तु लोग सभ्यता के मूल अर्थ को भूलकर स्थूल अर्थ में पहुँच जाते हैं। कोट पैंट वाले को सभ्य एवं सीधे-सादे फटे-टूटे कपड़े वाले को असभ्य मानने लग जाते हैं। किन्तु वह सभ्यता जो कि संस्कृति के आधार पर नहीं होती, कदापि स्थायी नहीं हो सकती।

हमारी संस्कृति का प्रथम लक्षण आध्यात्मिकता है। परलोक, आवागमन आदि आध्यात्मिकता के आधार हैं। शिवि, दधीचि एवं बलि आदि की कथाएँ उनके अपूर्व त्याग की परिचायक हैं। इन लोगों ने अपना बलिदान कर दिया और अपने नश्वर शरीर का सदुपयोग कर दिखाया। हम आत्मा के सर्वव्यापक स्वरूप को परखते रहे हैं। अर्थात् 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' के अनुसार प्राणिमात्र में वही आत्मा विद्यमान है। इसी प्रकार हमारे यहाँ विश्वधर्म या "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना का भी प्राधान्य रहा है।

अनंत शताब्दियों पूर्व ऋषियों ने आत्मा की एकता का सन्देश दिया था। रामेश्वर से बद्रीनाथ तक और द्वारिका से जगन्नाथपुरी तक एक ही भारतीय संस्कृति का सतत दर्शन होता है। भारतीयता के नाते आत्मभाव से सब में परस्पर एकता दिखाई देती है।

संस्कृति का दूसरा लक्षण है आवागमन में विश्वास। परलोक में विश्वास करने वाले भारतवासी भाग्य के भरोसे बैठ जाने से जहाँ के तहाँ रह गये। भाग्यवाद की भावना के ही साथ साथ पुरुषार्थ के लिए भी उसमें स्थान है। लोग प्रत्येक कार्य को अपने पूर्व जन्म के कर्मों का फल मानकर प्राप्त कर्तव्य में लगे रहते हैं। आवागमन की शृङ्खला बनी रहने से हमारे धैर्य को आघात नहीं लगता और हम कर्तव्यों में जुटे रहते हैं। जो कार्य अपूर्ण रह जाते हैं उन्हें दूसरे जन्म में पूर्ण कर लेने का विश्वास रहता है।

संस्कृति का तीसरा लक्षण है 'समन्वय-बुद्धि'। एकता के सिद्धान्त पर ही आत्मा की एकता में विश्वास करना। इसी प्रकार "सर्व देव नमस्कारः केशवं प्रतिगच्छति" अर्थात् सभी देवताओं को किया हुआ नमस्कार भगवान केशव को ही पहुँचता है। किन्तु इसी के साथ साथ समस्त देवी देवताओं की भावना के पीछे भी एकीकरण का ही सूत्र ग्रथित है। समन्वय के विषय में भी विद्वानों ने समर्थन किया है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भगवान राम के अनन्य भक्त होते हुए भी समस्त देवी-देवताओं की स्तुति की है। उन्होंने सभी मत-पन्थों की चर्चा करके भी ज्ञान और भक्ति में समन्वय किस प्रकार स्थापित किया जा सकता है; इसी पर विशेष रूप से ध्यान दिया है। भक्ति और

ज्ञान को एक साथ रख कर उसका प्रचार समन्वय का सिद्धान्त सामने रखकर किया है। किम्बहुना उन्होंने 'जायसी' का अनुकरण किया है। अर्थात् दोनों ने ही समन्वय का सुंदर आदर्श उपस्थित किया है।

संस्कृति का चौथा लक्षण-वर्णाश्रम विभाग है जो संस्कृति का मुख्य अंग है। अध श्रद्धा बढ़ने से जब जनता में विरोध प्रकट हुआ और बौद्धधर्म के प्रचारादि के कारण जब कर्म काण्ड का विरोध हुआ, तब भगवान शंकराचार्य ने उसे पुनः व्यवस्थित किया।

किन्तु इसके पूर्व ही राजर्षि मनु ने मानवों को विराट् पुरुष के अवयव रूप मानते हुए समाज को चार भागों में विभक्त कर वर्ण व्यवस्था के नियम निर्धारित कर दिये। सभी-को समान मानकर उनके गुण-स्वभावानुसार कर्त्तव्य का निर्देश करके समन्वय स्थापित किया।

(५) 'अंतर्बहिःशुद्धि' संस्कृति का पाँचवाँ लक्षण माना गया है। यद्यपि बहिरंग स्वच्छता पर तो सभी ध्यान देते हैं, किन्तु अंतरंग शुद्धि की ओर बहुत कम लोगों का ध्यान जाता है। अहिंसा, करुणा, मैत्री, विनय आदि का आधार अंतरङ्ग शुद्धि के लिए आवश्यक होता है। छोटों के प्रति दया और बड़ों के प्रति सेवाभावना भारतीय संस्कृति का सामान्य चिन्ह ही है। इसी प्रकार गीता के अनुसार "विद्या विनय सपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनी। शुनिचैव श्वपाकेच पंढिताः समदर्शिनः ॥ अर्थात् विद्या विनय संपन्न व्यक्ति, ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ता और चाण्डाल के विषय में विद्वान या विवेकी पुरुष समदर्शी होते हैं—समान समझते हैं। इसी प्रकार 'सत्यं ब्र यात् प्रियं ब्र यात न ब्र यात् सत्यमप्रियम् ॥ के अनुसार सदैव प्रिय सत्य बोलने का ध्यान रखा जाता है, अप्रिय सत्य भाषण करने से बचने का पूरा पूरा प्रयत्न किया जाता है। इसी प्रकार अहिंसा के सिद्धान्त का पालन होता है। ऐसे ही अन्य विषयों की बात भी है।

(६) प्रकृति प्रेम भी संस्कृति का एक अंग है। जो उज्ज्वल रूप में उपस्थित किया गया है। प्रकृति के प्रत्येक कार्य प्रत्येक प्रयत्न हमें साधना की शिक्षा देते हैं। जीवन संघर्ष हमें प्रकृति में पदे पदे दिखाई देते हैं। ऋतुएँ क्रमशः आकर पृथ्वी को फल फूल से पाट देती हैं। आजकल के कवि जब प्रकृति का वर्णन करते हैं, तब वे उससे तादात्म्य कर लेते हैं। तुलसी, पीपल, बड़, आम आदि वृक्षों को पानी देना भी प्रकृति-पूजा का ही एक रूप है। और इस प्रकार प्रकृति की उपासना सबको कवि बना देती है। हमें परमात्मा के निकट पहुँचा देती है। चंद्र-सूर्य का दर्शन आदि प्रकृति प्रेम के ही चिन्ह हैं। हमारे यहाँ का जीवन पारिवारिकता के रूप में है। और यह भावना हम सब को मिलाकर एक कर देती है।

(७) इसी प्रकार हमारी उत्सव-प्रियता एवं समन्वयशीलता भी हमारी संस्कृति के चिह्न हैं। विदेशियों के प्रभाव से अपने आपको भुला देना, यह सांस्कृतिक दृष्टि से घोर प्रमाद है। अतएव ईश्वर धर्म और नीति के प्रति आज का मनुष्य विश्वास रखे और समस्त शरीर धारियों में आत्म भावना रखकर कर्तव्य पालन करे, यही भारतीय संस्कृति का प्रधान स्वरूप हो सकता है और इसी का नाम आध्यात्मिक संस्कृति भी है। ॐ

इसके बाद भजनादि के साथ द्वितीय दिवस का कार्य क्रम समाप्त हुआ।

तृतीय दिवस

प्रातः कालीन भजन और उपासना के पश्चात् डॉ० नागर ने विचारों के सम्बन्ध में कहा कि "हम बारम्बार विचारों पर इसीलिए जोर देते हैं कि, जिससे वे दृढ़ हो जायँ। क्योंकि जिस प्रकार मकान की नींव दृढ़ न होने से उसके ढह जाने की आशंका रहती है, उसी

प्रकार विचारों के दृढ़ न होने पर हम किसी भी कार्य में सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। एक

डॉ० बालकृष्ण नागरजी

पाप कर लेना उतना बुरा नहीं हो सकता, जितना कि एक बुरे विचार को मन में स्थान देना। क्योंकि रेडियो के समान हमारा मस्तिष्क भी प्रत्येक विचार को ग्रहण कर संसार में फैलाने का काम करता है। इसीलिए कहना पड़ता है कि बुरा विचार हमारी बहुत बड़ी हानि कर सकता है। जब बुरे विचार लगातार मन में आते रहते हैं तो उनका उतना ही बुरा प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। अतएव हमें अपनी नींव को दृढ़ करने का प्रयत्न करें। स्वामी श्री विष्णु तीर्थ जी ने कहा था कि जो जैसी भावना या ध्यान करता है वह वैसा ही बन जाता है। अतः भूल कर भी कभी बुरे विचार मन में मत आने दीजिए। हम स्वयं तो अच्छे विचार करें ही साथ साथ दूसरों को भी शुभ विचारों की प्रेरणा करें। हम सतत शुभ संकल्प ही करें और निरन्तर भगवान का स्मरण करें। यही हमारे जीवन का मुख्य कर्त्तव्य है। अतः विचारों के महत्व को समझिए।

इसके बाद स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने अपनी रसी एवं प्रभावशाली वाणी में कहा—

नाम-स्मरण की महत्ता

"यहाँ पिछले दो दिनों में बहुत मनन हुआ, बहुत कुछ श्रवण भी हुआ और अनेक सुप्त स्मृतियाँ भी जागृत हुईं। विविध विद्वानों के प्रवचन सुनकर मन में एक विचित्र सी भावना जागृत हो रही है, किन्तु ठीक निर्णय नहीं किया जा सकता कि साधक किस बात को ग्रहण करे। क्योंकि प्राय. मानव जाति के प्रमुख साधन रूप धर्मों में ऐसा कोई भी धर्म नहीं है जिसमें इस वर्तमान दशा से उज्ज्वल स्थिति प्राप्त करने के लिए 'नाम' का सहारा न लिया जाता हो। इस विषय में एक विद्वान ने लिखा है कि 'यद्यपि सेतुबंध के समय समस्त वानरगण समुद्र को पार कर गये थे; किन्तु वास्तविक गहराई को तो मंदराचल पर्वत ही जान सकता है।' यहाँ भी सबने अपने अपने गुण, कर्म, स्वभाव एवं भजन आदि पर परिस्थिति के अनुसार भिन्न-भिन्न मत प्रकट किये हैं, किन्तु भजन के प्रभाव को सबने स्वीकार किया है। उद्धव-गोपी संवाद में गोपियों ने कहा था कि जिन नेत्रों में प्रभु की मूर्ति बसी हुई है, उन्हें तुम मूँदने का उपदेश करते हो! यह असंभव है, इसी प्रकार उद्धव ने जब कृष्ण से पूछा कि वेदवाणी एक होते हुए भी उसे विविध रूप में क्यों वर्णन किया गया है? [यहाँ आपने पृथ्वी और परीक्षित के संवाद की भी चर्चा की और आत्मज्ञान के लिए उपनिषदों की चर्चा कर 'आचार्यवान् पुरुषो वेद' आदि पर भी प्रकाश डालते हुए कहा कि—] जिसने आत्म साक्षात्कार कर लिया है, उसी के बताये हुए मार्ग पर जाने से कल्याण होगा। आत्मा बहुत ही अतर्क्य है। विद्वान् लोग भी अपने भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिए चिन्तित रहे हैं। अपनी अपनी साधना और बुद्धि के अनुसार विविध विचार प्रकट करते हैं। किन्तु फिर भी सर्व सम्मत धर्म तो यही बताया है—

श्रुतिस्मृति सदाचारः स्वस्पच प्रियमात्मनः।
अहिंसा सत्य मास्तिक्यंएप धर्म सनातनः॥
अर्थात् श्रुतिस्मृति के वचनों का पालन एवं सब की आत्मा को अपने ही समान प्रिय समझना अहिंसा, सत्य, और आस्तिक भाव, यही सनातन या अशाश्वित धर्म है। किन्तु दो प्रकार की परस्पर विरोधी भावनाओं के होने पर ही गड़बड़ मच जाती है। फिर भी भगवन्नाम जप से बढ़कर कोई जब तप नहीं हो सकता। कलियुग में केवल नाम ही सार है। हठयोग की साधना से भक्तियोग की साधना श्रेष्ठ है। भगवान के नाम को पकड़ने वाला मुक्त हो जाता है। यथार्थ में तो जिससे चित्त को प्रसन्नता हो वही सच्चा योग है। नाम और नामी में भेद नहीं है। प्रभु नाम के पीछे चलते हैं। संसार में नाम से बड़ा कोई नहीं। इसीलिए कहा है कि 'कलियुग केवल नाम अधारा।' चित्त के एक ओर लग जाने का ही नाम ध्यान है। गीता में 'क्लेशोऽधिकतरस्तेषां०' इत्यादि कहते हुए चित्त को वश में करना कठिन बताया है। फिर भी बारम्बार प्रयत्न करके उसे वश में लाने से सफलता प्राप्त हो ही जाती है। भगवान् प्रेम के द्वारा वस में आ जाते हैं। यहाँ तक कि भक्त की चरणरज लेने को वे उसके पीछे पीछे घूमते हैं। नाम के द्वारा सब कुछ सुलभ हो जाता है। प्रेम से सबको वश में कर सकते हो। जो प्रेम आपके मन में है उसे प्रभु में लगाइए तो आपको अपूर्व आनन्द प्राप्त होगा। नाम से मुक्ति हो जाती है। किन्तु नाम वाले मुक्ति से हटकर भक्ति में आ जाते हैं, अतएव प्रभु से भक्ति की याचना करो। नाम का आरम्भिक या अंतिम रूप नहीं है।' भक्ति के आगे मुक्ति पानी भरती है। अतएव भगवन्नाम में सदा तत्पर रहो।

बन्धुद्वय का भजन नाम-स्मरण की महत्ता के सम्बन्ध में हुआ। इसके बाद उद्धवजी ने बतलाया कि "सब प्रकार का ज्ञान वेद माता के द्वारा ही हो सकता है। किन्तु बिना ज्ञान की भक्ति तथा बिना प्रेम का ज्ञान व्यर्थ है। बुद्धियोग ही सर्वश्रेष्ठ है। ज्ञान और भक्ति को मिला देना ही यथार्थ साधना है। हृदय भक्ति और मस्तिष्क ज्ञान का स्थान है। अतएव दोनों को मिलाने से ही साधक यथार्थता को पा सकता है। भगवान कृष्ण के समय में भक्त उद्धव ने यही कार्य किया था; अतएव यह उद्धव भी उसी मार्ग पर चल कर भक्ति और ज्ञान में समन्वय की साधना का मार्ग प्रतिपादन करना चाहता है।'

इसके पश्चात् यथानियम व्यायामादि की क्रियाएँ सिखलाई गईं। तत्पश्चात् १०॥ बजे से ध्यान, मौन जप, हवन आदि दैनिक कार्य यथाविधि सम्पन्न हो जाने के बाद डॉ० नागर ने प्रार्थना की आवश्यकता पर सक्षेप में विवेचन किया। तत्पश्चात् मध्याह्न उपासना हुई और भोजनोत्तर साधकों ने विश्राम किया।

तीसरे पहर गंगाघाट पर खंभात के वयोवृद्ध श्री वल्लभ भाई हरगोविन्द जी पंड्या ने ग्राम्य गुजराती भाषा में "गाँवठी गीता" तथा नरसिंह मेहता की हुंडी सुनाकर सब का मनोरंजन किया। तत्पश्चात् इन्दौर के प्रसिद्ध मानसोपचारक श्री डॉ० उदयभानु जी ने विस्तारपूर्वक—

मानसिक-चिकित्सा

पर प्रकाश डालते हुए कहा "तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्तात्० इत्यादि मन्त्र द्वारा पहले समय में सन्ध्यावन्दन द्वारा जो धार्मिक भावना दृढ़ होती थी, वह आज सर्वथा लुप्त हो गई है। मन्दिर आदि में जाने पर जो पवित्र भाव उत्पन्न होते और चित्त को शान्ति प्राप्त होती थी, उसका आज सर्वथा अभाव है। इसी कारण देश के नौजवानों को सीधा मार्ग न मिलने से वे भटक रहे हैं। सिनेमा ने उन्हें पतन के मार्ग की ओर ले जाने में बहुत बड़ा भाग लिया है। उनमें गन्दी वासना एवं दुराचार की भावना बढ़ाई है। जब कि वेद ने 'आयुर्यज्ञेन कल्पताम्'

इत्यादि मन्त्र के द्वारा जीवन को यज्ञमय बनाने और पवित्र भावनाओं से युक्त करने के लिए आदेश दिया है। इसी प्रकार ब्राह्मण ग्रथ में एक रूपक का वर्णन करते हुए लिखा गया है—"शरीर रूपी रथ में बैठी हुई आत्मा अमरत्व के पथ पर अग्रसर होती है किन्तु भारत का नवयुवक आज मौत के मुँह में जाने को उद्यत है। इस प्रकार की विषमता का कारण हमारी जीवनचर्या का अप्राकृतिक बन जाना ही कहा जा सकता है। क्योंकि जहाँ पहले ब्रह्मचर्यावस्था में शरीर के समस्त अवयव वृद्धिगत होकर पुष्ट एवं सबल होते थे, वहीं आज के नवयुवक अनेक प्रकार के व्यसनों में फँसे हुए, चरित्रहीन एवं दुर्बलकाय तथा निस्तेज दिखाई देते हैं। जो अवस्था कठोर संयम द्वारा जीवन की नींव पुष्ट करने की है, उसे वे वासनाग्रस्त हास-विलास एवं सदाचार हीन-जीवन-क्रम द्वारा एकदम उलटे रूप में बिता रहे हैं। इसी प्रकार युवावस्था में गृहस्थोचित सदाचार एवं धार्मिक-आस्तिक भावना से युक्त जीवन बिताकर इस दूसरे सवन् को समाज सेवा में लगाने की जो योजना की गई थी, उसके स्थान पर आज असंयमी एवं अनाचार युक्त जीवन क्रम ने समाज को रसातल में ले जाने का मार्ग प्रशस्त कर दिया है। थोड़े से स्वार्थ के लिए मनुष्य मनुष्य की हत्या कर डालने में नहीं हिचकता। स्वार्थ एवं संकुचित भावना का सर्वत्र प्राधान्य हो रहा है। रुपया ही परमात्मा बन गया है और प्रत्येक मनुष्य उचित-अनुचित का विचार छोड़कर केवल पैसे बटोरने में लगा हुआ है।

तीसरे सवन् में जब कि शरीर की धातुएँ क्षीण होने लगती हैं; तब घर-द्वार त्यागकर एकदम विरक्त जीवन की साधना एवं आत्मचिंतन की भावना दृढ़ करनी चाहिए, आज का गृहस्थ अपना कर्तव्य भूलकर माया-मोह में फँसा हुआ अपने कर्तव्य को एकदम भूल गया है। आत्म-चिंतन के बदले वह स्वार्थ एवं संकुचित भावना युक्त जीवन व्यतीत करता है।

चतुर्थाश्रम संन्यास तक तो विरला ही पहुँचता है। अधिकांश व्यक्ति तो चौथे सवन तक भी नहीं पहुँच पाते। बीच में ही संसार से विदा हो जाते हैं। और जो अकर्मण्य एवं निरुद्योगी होते है, वे संन्यासी या बाबाजी बन कर पेट भरने के लिए भिक्षा माँगते हुए जीवन बिताते हैं। वे स्वयं अशिक्षित एवं किसी प्रकार का अनुभव न रखने के कारण जब अपना ही भला नहीं कर सकते तब समाज को कल्याणकारी मार्ग कैसे दिखा सकते हैं?

इस प्रकार आधुनिक मानव का सम्पूर्ण जीवन ही विकृत हो चुका है। साथ ही देश में पौष्टिक खाद्य का भी अभाव है। घी-दूध के बदले वनस्पति तेल और नकली दूध का प्रचार होने से मनुष्य रोगी, निर्बल, निस्तेज एवं अशान्तिमय जीवन बिता रहे हैं। अतः जीवन को कार्यक्षम एवं शरीर को बलवान बनाने के लिए उत्तम खाद्य मिलने का प्रबंध होना चाहिए। जीवन को यज्ञरूप बनाने पर उसमें गुप्त कर्तृत्व शक्ति जागृत होगी। और वही जीवन देश या समाज की सेवा के लिए उपयुक्त होगा।

यज्ञ का अर्थ केवल अग्नि में आहुति डालना ही नहीं है। समिधा को अग्नि में डालने का आशय वृद्धि की भावना करना है। मनुष्य देश सेवा के रूप में अपनी शक्ति का विकास करता है। मानसिक चिकित्सा में पहले निदान करके उपचार पद्धति निश्चित करनी चाहिए। शरीर के रोग पर अपना मन लगाइए, उस पर ध्यान लगाइए। ठीक ध्यान लगने पर अवश्य लाभ होगा। मन का प्रभाव शरीर पर अवश्य पड़ता है। मन के भीतर जो शक्ति परमात्मा ने दी है, उससे रोग दूर हो सकता है। किन्तु पहले उसे जागृत करना होगा।

'तन्मे मनः शिव सङ्कल्पमस्तु' के अनुसार सदैव हमारे मन मे शुभ संकल्प, अच्छे विचार ही उत्पन्न होने चाहिए। मानसिक-चिकित्सा धैर्य रखने के लिए कहती है। किन्तु बिना पर-

मात्मा की भक्ति के मन में धैर्य नहीं हो सकता। मानसिक चिकित्सा में इन सब नियमों का पालन करने से ही रोग दूर किये जा सकते हैं।

प्राकृतिक-चिकित्सा

इसके बाद श्री सत्यात्माजी ने 'मानसिक-चिकित्सा' के विषय में बतलाया कि लखनऊ में एक 'रामायण मण्डल' है, जहाँ रामायण की चौपाई से रोग दूर किये जाते हैं। अर्थात् रोगी से उपवास करवाकर फल-दूध एवं रस का आहार दिया जाता और रामायण की एक चौपाई का स्मरण कराया जाता है। और यथार्थ में ही दृढ़तापूर्वक रोग दूर हो जाने की भावना करने से अवश्य रोग दूर हो सकता है। हमारे मन में रोग की भावना आने पर शरीर में रोग आ ही जाता है। रोग का नाम ही दूषित विचार या भावना का दृढ़ होना है। संसार में पशुओं को भी रोग होते हैं; किन्तु उनकी चिकित्सा या इलाज के लिए सब जगह दवाखाने नहीं हैं और जंगल में तो पशु केवल प्राकृतिक जीवन बिताकर ही स्वस्थ हो जाते हैं। किन्तु हमने तो रोग को ही पाल रक्खा है। क्योंकि अनुचित खान-पान से ही रोग उत्पन्न होते हैं। शहरी एवं पालतू पशु इसीलिए बीमार होते हैं कि उन्हें अप्राकृतिक आहार दिया जाता है। गीता में भगवान ने स्पष्ट शब्दों में बतलाया है कि "युक्ताहार विहारस्य०" अर्थात् उचित मात्रा में आहार-विहार होने से ही मनुष्य स्वस्थ रह सकता है। किन्तु जीभ के स्वाद के वश हम अधिक एवं अनुचित आहार सेवन करके रोग को पालते हैं।

इसी प्रकार 'उपवास-चिकित्सा' द्वारा शरीर के भीतर के विकारों को निकाल दिया जाता है। इसके लिए हमें पानी विपुल मात्रा में पीना चाहिए। इसी प्रकार 'जल-चिकित्सा' में भी स्नान एवं जल-पान द्वारा रोग मिटाने का उपाय किया जाता है। पेट की खराबी ही सब रोगों की जड़ है। पेट की खराबी का कारण मन है। अतएव पहले मन को वश में करना होगा। क्योंकि 'मनएव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः' मन ही मनुष्य के लिए बन्धन और मुक्ति का कारण है। मन के साथ साथ बुद्धि भी विवेक-युक्त होनी चाहिए। किन्तु आज कल बुद्धि और विवेक में संघर्ष चल रहा है। हमारा आत्मा द्रष्टा रूप से है। वह सब देखता रहता है। यह संसार का नाटक देखते देखते आत्मा भी मन-बुद्धि रूप हो जाता है। इसलिए आत्मबल बढ़ाने की आवश्यकता है। महापुरुषों के पास जाने से आत्मा पर का आवरण दूर हो जाता है।

इसी प्रकार 'पंचतत्व' की चिकित्सा भी प्राकृतिक चिकित्सा का एक अंश है। प्राकृतिक-चिकित्सा में शकर को सफेद विष बतलाया गया है। और वास्तव में ही यह शरीर के अस्थि-मांस को क्षीण करती है। अतः शकर का सेवन करना छोड़ दीजिए। वायु को शुद्ध करने का साधन यज्ञ है। यज्ञ का सबके साथ सम्बन्ध है। हमारी सभी क्रियाएँ शरीर और मन से सम्बन्ध रखती हैं। हमारे रोगी होने का कारण भोजन की पद्धति में दोष होना ही है। कुछ लोग पिसे हुए एवं पके अन्न को विष रूप समझते हैं। उनके मतानुसार अंकुरित अन्न ही वास्तविक अन्न या आहार है। ऐसा अन्न पके हुए अन्न से आधी मात्रा में खाने पर ही मनुष्य का काम चल जाता है। अन्न को खूब चबाकर खाने से ही वह ठीक तरह पच कर उससे रस-रक्त बन सकते हैं। बिना पूरी तरह चबाये भोजन करने से न तो वह ठीक तरह पचता है और न उससे लाभ होता है; उलटा वह रोग उत्पन्न कर देता है।

चाय सब रोगों की जननी है। मादक वस्तुओं का सेवन भी स्वास्थ्य को नष्ट कर मनुष्य को रोगी बना देता है। आजकल नकली वस्तुओं का बाजार गर्म है। 'डालडा' घी जो कि जमाया हुआ तेल है, सब प्रकार से स्वास्थ्य को बिगाड़ने वाला पदार्थ है।

सारांश, प्राचीन कालीन पद्धति पर आने से और प्राकृतिक जीवन विताने से ही मानव-जीवन आरोग्यमय हो सकता है। हमारे सभी अवयव स्वस्थ रह सकते हैं। वेद की आज्ञानुसार हमें सौ वर्ष का निरोग जीवन बिताना चाहिए।'

इसके बाद श्री शालिग्राम जी ने "मन है अति बलवान" वाला भजन गाया और यह कार्य-क्रम समाप्त हुआ।

सायंकालीन-कार्यक्रम

यथानियम उपासना, भजन, कीर्तन आदि के पश्चात् डा० नागर के निवेदन पर स्वामी श्री *विष्णुतीर्थ जी ने अपने प्रवचन में बतलाया कि*—

गृहस्थ की साधना

"गत दो दिवस मैंने ध्यान के विषय में कहा था। आज गृहस्थाश्रम में रहकर मनुष्य आत्म कल्याण के लिए क्या कर सकता है, इसी पर प्रकाश डाला जायगा। इसके लिए सबसे पहले इस बात का विचार करना होगा कि गृहस्थाश्रम में किस प्रकार रहना चाहिए? हिन्दू संस्कृति के अनुसार वर्ण-व्यवस्था धर्म का मुख्य अंग कहा है। हमारे यहाँ चार वर्ण और चार आश्रम के रूप में समाज-व्यवस्था की गई है। किन्तु इन में से केवल गृहस्थाश्रम में ही सब प्रकार की सुविधा है; अन्य तीनों में अनेक बन्धन हैं। ब्रह्मचर्य मे त्याग, संयम एवं कठोर साधनायुक्त रहते हुए गुरुसेवा के साथ विद्याध्ययन करना पड़ता है। वाणप्रस्थाश्रम में भी तपोमय जीवन विताने की कठोर साधना है। सन्यासाश्रम में प्राप्त अनुभव से जनता को कल्याण के मार्ग पर लगाना पड़ता है। इन सब की अपेक्षा गृहस्थाश्रम श्रेष्ठ है। किन्तु इसमें भी अनेक प्रकार की झंझटे हैं। इसी आश्रम की झंझटों से उकताकर लोग घर से निकल जाते हैं। किन्तु ईसाई और मुसलमानी गृहस्थाश्रम में हिन्दू गृहस्थाश्रम से बड़ा अन्तर है। हमारे यहाँ इसको धर्म का एक प्रधान अंग माना गया है, वहीं ईसाई और मुसलमानों के यहाँ विवाह को सामाजिक विधान में गणना होती है। यही कारण है कि हमारे यहाँ विवाह सम्बन्ध आजीवन बना रहता है, वहीं अन्य समाजों में विवाह-विच्छेद की घटनायें दिन में कई बार होती देखने में आती हैं। इसी प्रकार हमारे यहाँ गृहस्थाश्रम के पालन द्वारा आदर्श जीवन व्यतीत करते हुए आत्म-कल्याण की साधना तक की जाती है। अतएव संसार में रहते हुए हमें ऐसा मार्ग अपनाना है, जिससे हम मुक्तिलाभ कर सके। त्यागवृत्ति धारण करना ही इसका साधन है। संन्यास ही त्याग-मय जीवन का स्वरूप है। इस प्रकार हमारा जो जीवन तप (ब्रह्मचर्य) से आरम्भ होता है, उसका अंत भी त्याग के रूप में ही होता है। किन्तु जीवन का मध्यभाग (गृहस्थाश्रम) त्यागमय कैसे रह सकता है? क्योंकि इस आश्रम में सब प्रकार की प्रवृत्तियाँ ही करनी पड़ती हैं। फिर भी शास्त्रों में विधान है कि संसार में सभी कर्त्तव्यों का पालन करते हुए जल-कमलवत रहो। अर्थात् गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी सांसारिक विषयों में लिप्त न रहना ही हमारा आदर्श होना चाहिए। किन्तु अन्य तीन आश्रमों में संसार होता ही नहीं। अत. समस्त कर्तव्य पालन का स्थान गृहस्थाश्रम ही है।

आज कल ब्रह्मचर्य का लोप सा हो गया है। विद्यार्थी लोग विलासी बन गये हैं। पहले गुरुकुल में रहते हुए विद्यार्थी तपोमय जीवन बिताते थे और ब्रह्मचारी तथा सन्यासी में केवल 'यज्ञोपवीत' का ही भेद होता था। दोनों का जीवन त्याग एवं तपोमय होता था। कुछ लोग आजन्म ब्रह्मचारी रहते और वे नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहलाते थे। अंत में वे सन्यासी बन जाते थे। अन्य लोग ब्रह्मचर्याश्रम के पश्चात् विवाह कर गृहस्थाश्रम स्वीकार करते हुए अपने कर्त्तव्यों के पालन करते थे। इस प्रकार हमारे यहाँ जो गृहस्थाश्रम आदर्श-आश्रम माना जाता था, उससे पतन होकर आज के गृहस्थी लोग-

विलास के दास बन गये हैं। पाश्चात्यों की अन्धी नकल कर हमारे गृहस्थ लोग विलासी एवं स्वच्छन्द जीवन बिताना चाहते हैं— भगवान गृहस्थ-जीवन को शास्त्रानुसार आदर्श रूप में बिताने का उपदेश देते हैं। उससे हट जाने पर पतन होना अनिवार्य है। अर्थात् गृहस्थाश्रम में भी त्याग का मार्ग है ही। अतएव हमें अपनी कमजोरियों को दूर करने के लिए उसी का सहारा लेना होगा। इसी का नाम धर्म है। आत्मकल्याणार्थ जो कर्म या साधना की जाती है वही धर्म है। केवल शास्त्रों के पढ़ने मात्र से ही ज्ञान नहीं होगा। सांसारिक भोगों में रहकर भी उनको धर्म के अनुसार भोगना ही धर्म या तप है। केवल इन्द्रियों को पीड़ित कर आत्मा को कष्ट पहुँचाना तप नहीं कहा जा सकता। इन्द्रियों और मन के संयम के द्वारा जो आचरण किया जाता है, वही यथार्थ धर्म कहलाता है। मनुस्मृति हमारा आदि धर्मशास्त्र है, जिसमें हमारे समाज के लिए नियम निर्धारित किये गये हैं। इनमें कई नियम ऐसे हैं, जिनका समाज में अनिवार्य रूप से पालन किया जाना चाहिए। किन्तु गृहस्थाश्रम में यह बात नहीं है। उसमें अपने धर्मानुसार मनुष्य अपने कर्त्तव्यों का पालन कर सकता है। [यहाँ आपने स्वधर्म पालन करने वाली एक वृद्धा को तीन मास पूर्व अपने मृत्यु काल का ज्ञान हो जाने की घटना सुनाकर कथन को पुष्ट किया।]

हिन्दू धर्म का पालन करने वाला प्रत्येक मनुष्य महात्मा बन सकता है। शास्त्रोक्त दिनचर्या बिताने पर वह महान् साधक भी बन सकता है। उसे फिर अन्य किसी साधना की आवश्यकता नहीं होगी। अतएव गृहस्थाश्रम में ही जो कुछ करना हो वह कर लो। इसमें क्रियात्मक जीवन इस प्रकार बिताना चाहिए, जिससे कि वह आध्यात्मिक बन सके। वृद्धावस्था तक गृहस्थी में पड़े रहने वाले मनुष्य के संस्कार मिट नहीं सकते। अर्थात् गृहस्थाश्रम में धर्म-परायण जीवन होने पर ही शान्ति मिल सकती है। अतएव मनुष्य को विचार करना चाहिए उसका जीवन किस प्रकार का है। आपको पशु बन कर जीवन नहीं बिताना है। मनुष्य और पशु के बीच केवल धर्म की ही विशेषता है। अतएव मोक्ष की प्राप्ति का मार्ग गृहस्थाश्रम ही सिखलाता है। किन्तु आजकल देश में गृहस्था-श्रम के नियमों का पदे पदे उल्लंघन किया जा रहा है और इसी से समाज रोगग्रस्त हो रहा है। अनियमित जीवन के कारण ही घर घर टी० बी० के रोगी हो गये हैं। यह सब अत्यधिक विलासिता का परिणाम है। इसके बाद जीवन से मुक्त होने के लिए ब्रह्म विद्या की शिक्षा (वाणप्रस्थाश्रम में) करनी चाहिए। श्रद्धा-भक्ति के साथ ज्ञान से युक्त होने पर ही उसकी प्राप्ति हो सकेगी। इसमें भी सबसे पहले श्रद्धा के परिपक्व होने पर भक्ति होगी और भक्ति के बढ़ने पर वही ध्यान का रूप बन जायगी। वह अखण्ड धारा ही ब्राह्मी स्थिति कहलायेगी। इसी साधना से ब्रह्मविद्या प्राप्त होगी। और उसके सभी अधिकारी हो सकते हैं। किन्तु उस मनुष्य का जीवन सयमयुक्त होना चाहिए। अर्थात् जीवन को संयत रखकर ठीक मार्ग पर पहुँच जाओगे और उससे हटने पर पतन हो जायगा।

हमारे शासक वर्ग "सत्यमेव जयते" का मोटो (आदर्श) रखकर भी उस पर चल नहीं रहे हैं। किन्तु वास्तव में सत्य ही धर्म है, सत्य के बिना कुछ नहीं है। सत्य ही ब्रह्म है, यही परमात्मा को पाने का मार्ग है। गीता में बतलाया गया है कि देवयान मार्ग से जाने पर मनुष्य मुक्त हो जाता है और अन्य मार्ग पर जाने पर फिर लौट आता है। इस देवयान मार्ग पर सत्य बिखरा हुआ है। इस मार्ग पर चलने वाले को त्याग की साधना करनी होगी। हमारे यहाँ स्त्री पुरुष का संयोग भी धर्म का अंग माना गया है। अतएव उस जीवन में भी धर्म का

पालन करने से गृहस्थ-पुरुष भी ब्रह्मचारी कहा जा सकता है। इसी प्रकार निष्काम भाव से सब कार्य करने वाला ही उस मार्ग पर चल सकता है। इस प्रकार गृहस्थाश्रम सबसे महान् है।

सत्य पर आरूढ़ महात्मा गाँधी ने राजसी जीवन बिताने वाले पं० मोतीलाल नेहरू को सत्याग्रही बना दिया था। जवाहरलाल तो उनसे पहले ही सत्याग्रही बन चुके थे। अर्थात् सत्य के आग्रह या प्रभाव से ही ऐसा हो सका। सत्य में इतनी शक्ति है। सत्याग्रही बनने के लिए संयत जीवन बिताने पर ही आप आदर्श गृहस्थाश्रमी कहला सकेंगे।

इस प्रवचन के पश्चात् श्रीमती सौ० कमला बाई साहिबा किबे ने अपनी प्रभावशाली पद्धति से—

नागरिकता का परिचय

देते हुए कहा "नागरिक जीवन के विषय में आपसे कहना मेरा कर्तव्य है—धर्म है। यहाँ दो ग्रंथ प्रधान माने गये हैं। उनमें महाभारत में एक राष्ट्र की तथा रामायण में एक परिवार की कहानी है। रामायण के मुख्य नायक राम एकवचनी थे। किन्तु आजकल के नवयुवकों की दशा कैसी है! लड़कों की ही तरह लड़कियों की दशा भी शोचनीय हो रही है। दोनों अपने चरित्र से गिर गये हैं। उनके सामने भारतीय आदर्श नहीं है। पाश्चात्यों की नकल करके वे अपने आपको भूल गये हैं। ऐसी दशा में, जहाँ आदर्श नहीं, चरित्र नहीं, वहाँ के युवक 'नागरिक' कैसे कहे जा सकते हैं?

नागरिक कैसे होने चाहिए, तथा नागरिकता की शिक्षा कैसे दी जाती है? इस पर ध्यान देना आवश्यक है। हमारे यहाँ जीवन का एक नियम था। गृहस्थी का जीवन मानवी-मंदिर है। आदर्श नागरिक बनने के लिए हमें प्राचीन आदर्शों को अपनाना होगा। [यहाँ आपने कई उदाहरण देकर अपने विषय का प्रतिपादन किया। आपकी मार्मिक एवं स्पंदन पूर्ण भाषण शैली का श्रोताओं के अंतःकरण पर गहरा प्रभाव पड़ा।]

आपके बाद सतारा के निवासी श्री "विलीनात्माजी" ने बतलाया कि—

पारमार्थिक-साधना क्या है?

"सच्ची चीज संसार में क्या है? किन्तु सत्य वस्तु बताने पर लोगों को विश्वास नहीं होता। जिस प्रकार रज्जु-सर्प के न्यायानुसार रस्सी में सर्प का भ्रम होने पर भी विवेकरूपी प्रकाश के द्वारा उससे सत्य स्वरूप में व्यावहारिक सत्ता का ज्ञान हो सकता है, इसी प्रकार जीवन के प्रत्येक व्यवहार में हमें 'सत्य' को खोजने का प्रयत्न करना चाहिए, तभी हम सफल हो सकेंगे। व्यावहारिक सत्ता में अधिकार हो जाने पर हम पारमार्थिक सत्ता को प्राप्त कर सकेंगे। यह पारमार्थिक सत्ता चिरकाल तक स्थिर रहती है।

पहली अवस्था में जीव गर्भवास से मुक्त होना चाहता है, जबकि दूसरी अवस्था में गर्भ में रहने पर भी यही चाहता है कि जन्म लेने पर प्रभु का नाम मुख पर रहे। तीसरी दशा में यह भावना होनी चाहिए कि हमारा किसी से कोई सम्बन्ध नहीं। चौथी दशा में निराकार की उपासना में प्रवृत्त होना पड़ता है। इस प्रकार जिसका जैसा अधिकार हो, उसे उसी के अनुकूल मार्ग ग्रहण करना चाहिए। इसी प्रकार जिसकी जैसी भूमिका हो, उसी प्रकार का उसे उपदेश दिया जा सकता है। किन्तु संसार में रहते हुए पहले गृहस्थाश्रम का ठीक तरह से पालन करना ही प्रधान कर्तव्य है। अंत समय भगवान का नाम मुख पर रह सके, इसके लिए प्रारंभ से ही सतत नाम स्मरण का अभ्यास करते रहना चाहिए। अर्थात् गृहस्थाश्रमी के लिए पारमार्थिक संस्कार की साधना प्रारम्भ करनी चाहिए। ऐन वक्त पर तत्काल ही संस्कार कोई आकाश से नहीं टपक पड़ेंगे। [यहाँ

आपने एक विद्यार्थी का उदाहरण देकर बतलाया कि अज्ञानी को समझाने के लिए ऐसा ही करना पड़ता है।]

आप के बाद श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने सब लोगों से "श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे। हे नाथ नारायण वासुदेव" की ध्वनिगान कराने के बाद संत-महात्माओं के लक्षण बताते हुए कहा कि "जब कोई जीवात्मा अपनी क्षणिक-जीवन-सत्ता को अनंत सत्ता में मिला देता है, तब उसे लोग संत कहने लगते हैं।' इसके बाद आपने तुलसीदास जी के रामायण में वर्णित संत-असंत के लक्षण सुनाये और आशा-निराशा की व्याख्या की। इसी प्रकार प्रकृति और संस्कृति की भी व्याख्या की। आगे चल कर बतलाया कि "संत लोग अपनी शक्ति से भक्त का अज्ञान दूर कर सकते हैं। ईश्वर की सृष्टि में मनुष्य सबसे उत्कृष्ट है, अतएव ईश्वर नहीं, मनुष्य ही सबसे बड़ा है। फलतः यदि मनुष्य स्वयं संत बन जाय तो ईश्वर उसके पीछे पीछे दौड़ता है। किन्तु संत बनने के लिए कठोर साधना आवश्यक है। इच्छा, भय और क्रोध इन तीनों को जीतने वाला ही सच्चा संत है, वही सदा मुक्त होता है। आप सब भक्ति की साधना कीजिए।

तत्पश्चात् 'भारत सेवा समाज' के अध्यक्ष श्री पं० चाँद नारायण जी राजदाँ ने

ठीक विचार-धारा

पर प्रकाश डालते हुए पिछले दिनों आये हुए अमेरिकन-यात्रियों के अनुभव सुनाकर बताया कि "यहाँ के लोग बोलना बहुत जानते हैं। किन्तु विदेशों में लोग बोलते कम हैं। वे बोलने की अपेक्षा काम करना अधिक जानते हैं। इसी प्रकार आध्यात्मिक साधना के विषय में भी बोलना कम और मनन ही अधिक करना चाहिए। हमारे विचार ठीक होने पर बाकी सब बातें ठीक हो जायँगी। संसार में ज्ञान की ज्योति यहीं (भारत) से फैली है। इसलिए आप लोगों ने यहाँ जो कुछ सुना है, उसमें से जो भी पसंद हो उसे मनन करते रह कर
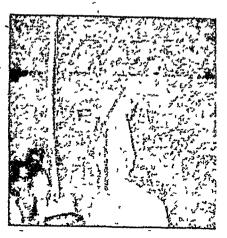
श्री चाँदनारायण जी राजदाँ

जीवन-व्यवहार में लाने का प्रयत्न करते रहिए। यदि अपनी विचारधारा को ठीक लाइन पर डाल दें तो आप ठीक मार्ग से चलकर अपने ध्येय तक पहुँच सकेंगे। विचारों पर अधिकार जमा लेने पर सब कुछ ठीक होगा। आज संसार में अनेक विचारधाराएँ चल रही हैं। उनमें से आप अपनी पसंद की कोई भी एक विचारधारा स्वीकार कर लें और मेरी समझ से आप यदि श्री नागर जी की 'प्रार्थना' वाली धारा को पसंद कर लें और आनन्दम् का जाप एवं मनन करते रहें तो सब कुछ हो सकेगा।

इसके पश्चात् बन्धुद्वय के 'नामस्मरण' पर दो भजन सुनाये जाकर कार्यक्रम समाप्त हुआ और श्री प्रो० विष्णुदत्त जी शास्त्री ने चाय के दुर्गुण बताने वाला, चाय छानने से मैला बना हुआ कपड़ा दिखाकर लोगों को सचेत किया। तत्पश्चात् ताश, हथकड़ी, छुरी निगलने, आग खाने आदि के जादू सम्बन्धी खेल दिखाकर सब का मनोरञ्जन किया। और अंत में जलते हुए तेज अंगारों पर स्वयं चलकर तथा आठ-दस मनुष्यों को चला कर सब को चकित कर दिया।

चतुर्थ दिवस

यथानियम भजन एवं प्रातःकालीन उपासना हो जाने के पश्चात् डॉ० नागर ने कहा कि—"आज समारंभ का चतुर्थ एवं अंतिम दिवस है। तीन दिनों तक लगातार यहाँ जितने साधु, महात्मा तथा विद्वानों के उपदेश आपने सुने हैं और उनसे आपने जो कुछ सीखा है, उसे अपने जीवन में उतारने का—आचरण में लाने का निश्चय कीजिए, और वर्ष भर का लेखा जोखा अगले वर्ष आकर सुनाइए। अपने मन से बुरे विचारों को निकालकर शुभ संकल्प कीजिए। बुरे विचारों को दबाने के बदले जैसे विचार मन में आते हैं, उसके प्रतिकूल विचार मन में लाइए। इस अभ्यास से बुरे विचारों की जड़ कट जाती है। क्योंकि बुरे विचारों को निकालने के लिए प्रयत्न करने पर वे अधिकाधिक जोर लगाकर सामने आवेंगे, अतएव उनके प्रतिकूल विचारों को ही हृदय में स्थान दीजिए। इसके लिए सदैव शुभ संकल्प, उपासना, भजन, प्रार्थना आदि कार्य ऐसे हैं, जिनके द्वारा आप अपने विचारों को ठीक मार्ग पर लगा सकते हैं, सत्संकल्प के साथ, सद्ग्रंथों का अवलोकन भी करें। आत्मभाव को हृदय में स्थान दें।

इसके बाद नीमाड़ के संत श्री रामलाल जी पहाड़ा ने

वैदिक दिनचर्या

पर प्रकाश डालते हुए कहा "भगवान ने चार प्रकार के भक्त बनाये हैं। उनमें से देवताओं का, पितरों का, भूतों का या मेरा स्मरण करने वाले, सभी मुझको प्राप्त होते हैं। भौतिक-विज्ञान ने तीन प्रकार के पदार्थ बताये हैं। किन्तु हमारे यहाँ विज्ञान ने ७ प्रकार के पदार्थ कहे हैं। हमारे प्राचीन विद्वानों ने सूर्य का चिरकाल तक अवलोकन कर उसके अनुसार दिनचर्या निश्चित की थी। प्रातःकालीन सूर्य को ऋग्वेद का, मध्याह्न में यजुर्वेद का और सायंकाल में सामवेद का प्रतीक निर्धारित किया था। इसी लिए प्रातः सवन में वायु का सेवन एवं अग्निहोत्रादि करना बतलाया। यही कारण है कि ऋग्वेद का प्रथम मंत्र "अग्निमीळे पुरोहितं" है। अतः प्रातःकाल सूर्य की उपासना एवं गायत्री मंत्र की साधना से बुद्धि की शुद्धता का प्रयत्न करना बताया गया है। इसी प्रकार यजुर्वेद-द्वारा मन को सुसगठित एवं बलवान बनाने के लिए कहा गया है। सायंकाल को सामवेद-द्वारा स्तुति गान का कार्यक्रम निश्चित किया गया था। किन्तु आज कल यह क्रम नहीं रहा। न वेद की आज्ञा ही कोई मानता है और न किसी को दिनचर्या का ही ध्यान है। सब लोग मनमाने ढग पर जीवन बिता रहे हैं।

वेद का आदेश है 'देवो भूत्वा देवं यजेत्' अर्थात् देव या दिव्यतामय बनकर देवता की पूजा करने को कहा गया है। किम्बहुना दिव्यता सुन्दरता होने से ही उसे 'देव' कहा जाता है। वे देवता गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि हैं, जिनमें जीवात्मा का वास है। इसी नियमानुसार हमारी दिनचर्या निश्चित की गई है। इसी प्रकार हमारे यहाँ प्राणों (श्वास-प्रश्वासों) की भी गणना कर ली गई है। दिन रात में मनुष्य २१६०० बार श्वास-प्रश्वास लेता है। सूर्य के दिन-रात भ्रमण करने की दिनचर्या में ब्रह्मा, विष्णु, गणेश आदि का भी मान होना चाहिए। इसी लिए ६०० श्वास गणेश जी के लिए लगने चाहिए, छः-छः हजार, ब्रह्मा, विष्णु और महेश के तथा तीन हजार जीव; शिव एवं परमगुरु के होंगे। इस प्रकार २१६०० की गिनती पूर्ण हो जाती है। अर्थात् २४ घंटे में यह लेखा पूर्ण होती है।

गणेश जी के क्षेत्र मुँह से लेकर अंतिम रात तक का सम्पूर्ण व्यवहार ऐसा होना चाहिए कि उसमें ४० मिनट (६०० श्वास-प्रश्वास) से अधिक समय न लगने पावे। अर्थात् इतनी देर

में सभी प्रातः कृत्य से निवृत्त हो जाना चाहिए। गणेश जी की प्रिय वस्तु दुर्वा या दूब है, उसका सेवन करने से रोग निवृत्त होते हैं। इसी प्रकार गणेश जी की प्रिय वस्तु भेट करने से जैसे उनका क्रोध शांत होगा उसी प्रकार अंतर्वेद को भी दूब या उसकी प्रिय वस्तु भेट करने से उसके विकार शांत हो सकते हैं। आजकल के समझदार शायद इस बात को नहीं माने, किन्तु यह विज्ञान सच्चा और अत्यन्त गम्भीर है।

ब्रह्मा जी शाकी-उपार्जन या पैदा करने वाली शक्ति के देवता हैं। इनको इसी लिए गणेशजी के पश्चात् ६ घंटा ४० मिनट का समय (६ हजार श्वास) दिया जाना चाहिए। अर्थात् यह समय आसन, प्राणायाम एवं उपासनादि में लगाना चाहिए। इसी प्रकार प्रत्येक कार्य में ७ घंटे का समय दिया गया है। अर्थात् ६ घंटे नींद, ६ घंटे उपार्जन एवं एक घंटा सामाजिक सेवा या शासन के लिए देना चाहिए। इसी प्रकार एक घंटे का समय पूर्ण शांत रहने का होना चाहिए। उसमें परमात्मा का चिन्तन करना चाहिए। सारांश, हमारी दिनचर्या ऐसी होनी चाहिए कि जिसमें हम सब प्रकार के नियमों का समय पर पालन करते हुए जीवन को सफल बना सकें।

अच्युतानन्द गोविन्द का नाम-स्मरण (चिंतन) करते हुए जीवन बिताने से हम स्वर्ग को जा सकते हैं। किन्तु इसके विरुद्ध भावना से ३६ का सम्बन्ध हो जाने से ही जीव चक्कर में पड़ता है। किन्तु नाम-स्मरण से हमारे काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि सभी विकार दूर हो जाते हैं। उपर्युक्त प्रकार से हमारी प्राचीन दिनचर्या चली आती है। अर्थात ६ घटे उपार्जन, ६ घंटे भोग, ६ घंटे विश्राम, १ घंटा समाज-सेवा, २ घंटे स्नान, भोजन तथा शेष ३ घंटे देवपूजा एवं आत्म चिन्तन में लगाने चाहिए।

नामोच्चार-द्वारा मनुष्य अवश्य रोगमुक्त हो सकता है। अग्नि का देवता सूर्य, ज्ञान का चंद्रमा तथा इच्छा का भण्डार मन तो है ही। अतएव मन-प्राण के साथ भगवन्नाम के उच्चारण से अवश्य ही मनुष्य का कल्याण हो सकता है। गोविन्द के नाम का उच्चारण करने से मोह रूपी रोग दूर हो जाता है। रामनाम की भी महिमा बहुत बड़ी है। उसका उच्चारण करते हुए ही हमें उसे प्राप्त करना है। मोह दूर करने का एक ही उपाय है—भगवन्नाम का स्मरण। गोस्वामी जी ने रामायण में राम की महिमा बड़े विस्तार से गायी है। इसीलिए प्रारम्भ में वे कहते हैं "वंदौं राम नाम रघुवर के। हेतु कृशानु भानु हिम करके॥" अर्थात् मैं रामनाम की वन्दना करता हूँ जो कि अग्नि, सूर्य एवं चंद्रमा के हेतु रूप है। अर्थात 'र' 'आ' और 'म' के रूप से बीज मंत्र या अक्षर हैं। इसीलिए राम नाम की महिमा अपार है। भगवन्नाम स्मरण के साथ ही साथ गुरुपद की वंदना भी हमारी दिनचर्या का एक अंग होना चाहिए। सारांश, वैदिक दिनचर्या बिताने से हमारा जीवन सुख शांति एवं समृद्धिमय बन सकता है।

इस प्रवचन के पश्चात् श्री रणछोड़ जी 'उद्धव' ने अपनी पूर्व परम्परा को आगे चलाते हुए उपासना एवं वेद-विज्ञान का प्रतिपादन करने के लिए कहा—

वैदिक उपासना

हमारे यहाँ गणेश जी को प्रथम पूज्य देवता मानकर प्रत्येक कार्य में उनको मनाने का ही विधान पाया जाता है। किन्तु यथार्थ में गणेश जी की पूजा हम ठीक से नहीं करते। जब कि प्रत्येक मंगलकार्य मे गणेश जी की उपासना अनिवार्य बतलाई गई है। इसलिए गणेशजी को ठीक से जान लेना उचित है। उनको यथार्थ रूप में देख कर नमस्कार करना चाहिए अर्थात् पहले वैदिक देवता का दर्शन करो, तत्पश्चात् ही उनकी वन्दना करो। प्रत्येक देवता के प्रत्यक्ष प्रतीक रूप में सूर्य की उपासना करो। सूर्य को जड़ (अचल) मानने वाले स्वयं जड़ हैं। आज

के वैज्ञानिक युग में सभी बातें उसी ढंग से सोचनी चाहिए जिससे कि वे सब ठीक ढंग से समझी जा सकें। मैंने यथाशक्ति सभी धर्मों के तत्वज्ञान का अध्ययन करने के बाद सोचा कि इस ढंग से तो सब के ईश्वर अलग-अलग होने चाहिए, किन्तु वेदों का आदेश है कि ईश्वर तो एक एवं अद्वैत ही है। इसी लिए विद्वानों में विरोध या विद्वेष नहीं होना चाहिए। 'कल्पवृक्ष' नाम ही वेद का है। अतएव नागरजी के चलाये हुए मार्ग पर चलिए और उसमें जो त्रुटियाँ हैं, उनको दूर कीजिए। यहाँ का कार्य वैदिक-पद्धति का है, यहाँ वेद का स्वाध्याय आरम्भ करना चाहिए। अतएव वेद का ही विचार करने से आप अन्य विचार नहीं कर सकेंगे। गणपति ही स्वयं वेद रूप हैं। अतएव वेदों के अनुसार ही सब कार्य सम्पन्न करने चाहिए। गणेशजी की सर्वप्रथम पूजा का यही आशय है कि वेदों को ही सबसे पहले स्थान दिया गया है। अतएव साधकों को गणेश जी की पूजा सबसे पहले करनी चाहिए। गणपति की उपासना का नाम ही सन्ध्या है। संध्याहीन व्यक्ति अपवित्र होता है। अतएव पहले संध्या करके फिर देव पूजा करनी चाहिए। सक्रिय संध्या साधन करने से ही सच्ची उपासना होगी। उससे ही यथार्थ आनन्द प्राप्त होगा।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों देवताओं की उपासना सूर्य के रूप में ही होती है। प्रातःकाल सूर्य-द्वारा ब्रह्मा का कार्य (उत्पादन) होता है, मध्याह्न में विष्णु द्वारा पालन का कार्य होता है। सायंकाल महेश या शिव के द्वारा विश्राम या लय-संहार का कार्य सम्पादन होता है। गायत्री प्रातःकाल में तेजोमयी, मध्याह्न में सावित्री तथा सायंकाल को सरस्वती कहलाती है। अतएव प्रत्येक साधक को त्रिकाल संध्या करना चाहिए। इसके लिए हमें संक्षिप्त सन्ध्या-पद्धति चालू करनी होगी। प्रातःकालीन संध्या करने से हमारे सब कार्य सहज ही सम्पन्न हो सकते हैं। यही नहीं वरन् ७॥ घंटे काम करने की शक्ति भी प्राप्त हो जाती है। वेद का अर्थ सहित अध्ययन करना ही उचित है, और तभी उसका मर्म समझ में आ सकता है।

पाश्चात्यों ने हमारे इतिहास को ही विकृत कर दिया है। पाश्चात्य विद्वान् मैक्समूलर ने वेदों का अध्ययन किया था, किन्तु उनका अध्ययन सद्भावना-पूर्ण नहीं था। क्योंकि पाश्चात्य देश केवल अपने राष्ट्र के उत्थान का विचार करते हैं, किन्तु हमारे यहाँ विश्वकल्याण की भावना की जाती है। वेद विद्या परम गुरु है। हमारे पूर्व पुरुषों ने प्रयत्न करके जो वैदिक साहित्य सुलभ किया है उन वेदों का स्वाध्याय करने से उनका वास्तव-अर्थ समझ में आ जाता है और उससे हम सब कार्य विधिवत् कर सकते हैं। (स्व०) पं० मधुसूदन जी ओझा ने वेद-संशोधन सम्बन्धी जो सेवा की है, वह चिरकाल तक स्मरणीय रहेगी। इस विषय में पाश्चात्य विद्वानों से उनकी प्रत्यक्ष चर्चा हुई थी और उन्होंने उनका मत सादर स्वीकार किया है।

सारांश, सब शास्त्रों का हमें वैदिक दृष्टि से ही अध्ययन करना चाहिए। पुराणों का अर्थ भी वैदिक दृष्टि से करने पर ही उसका मूल आशय भलीभाँति समझ में आ सकता है। इतिहास पुराण वेद की ही व्याख्या रूप में हैं—उन्हीं के भाष्य हैं। दोनों का मिलान करने से ही आनन्द प्राप्त होगा। केवल वेद के द्वारा ही हम सब कुछ जान सकते हैं। गीता को भी वेद के द्वारा ही समझने का प्रयत्न कीजिए। श्री सातवलेकरजी ने वेद के साथ गीता की 'पुरुषार्थ-बोधिनी' टीका की है। वह तो पठनीय है ही; किन्तु (स्व०) पं० मधुसूदन जी ओझा की टीका 'गीता विज्ञान' सर्वश्रेष्ठ है। किन्तु सबसे प्रथम कर्तव्य यही है कि आज से ही सक्रिय सन्ध्या की उपासना आरम्भ कीजिए। क्योंकि "ऋषयो नित्य संध्यत्वात् दीर्घमायुर वाप्नुयात्" (अर्थात्)

ऋषियों ने नित्य नियमित संध्या के द्वारा दीर्घायु प्राप्त की थी। अतएव नित्यप्रति कम से कम आधा घंटा तो संध्या कर्म अवश्य कीजिए। उसी से गणेश जी की सच्ची उपासना होगी।"

इस प्रवचन के पश्चात् हरिद्वार की प्रसिद्ध साध्वी माता श्री ज्योतिदेवी जी ने कहा "हमारे यहाँ वेदान्त में कल्पनाशक्ति पर ही अधिक जोर दिया गया है। यह जगत् भी कल्पना का ही स्वरूप है। क्योंकि जगत् कभी पैदा हुआ ही नहीं। यह सब कल्पना का ही खेल है। यदि जगत् को असत्य नहीं माने तो फिर सत्य तो पैदा हुआ ही नहीं, वह तो त्रिकालाबाध है। इतने पर भी जगत् के विषय में हमारी कल्पना बहुत ही दृढ़ हो चुकी है। किन्तु जो कुछ दीखता है, यह सब माया मात्र है। हमारे यहाँ भावना दृढ़ करने को कहा गया है। इसलिए यदि सब में ब्रह्म की भावना करोगे तो फिर राग-द्वेष का कहीं नाम तक नहीं रहेगा। इस मूल भावना को ग्रहण करने से सब विषाद मिट जाते हैं। जगत् को सत्य मानने से कष्ट ही भोगना होगा। "क्योंकि जगत दिखता भी है और है भी नहीं।" [इस सम्बन्ध में आपने एक भजन गाया।]

इसके पश्चात् बन्धुद्वय द्वारा पाँच मिनट तक कीर्तन होकर कार्य-क्रम समाप्त हुआ। दो घंटे पश्चात् संयमशाला में सब साधकों के उपस्थित होने पर श्री सत्यात्मा एवं श्री गणपत दास जी कदवाने ने विविध प्रकार की व्यायाम सम्बन्धी क्रियाएँ सिखाईं और स्वयं 'धौती' क्रिया करके बतलाई। इसी प्रकार श्री स्वामी नारायण प्रकाश जी ने वज्रो की क्रिया करके दिखलाई। इसी प्रकार आजतक सीखी हुई सभी क्रियाएँ दोहराई गईं। इसी के साथ साथ प्रोफेसर श्री विष्णुदत्त जी शास्त्री ने इन्द्रिय-द्वारा पाँच सेर का पत्थर उठाकर दिखाया। और भी अनेक प्रयोग हुए।

हवन की पूर्णाहुति एवं परिचय

यथानियम, १०॥ बजे से मौनजप, ध्यान एवं यज्ञ के यथाविधि संपन्न होने पर अत्यंत श्रद्धापूर्वक पूर्णाहुति की गई और आरती एवं प्रसाद वितरण के पश्चात् मध्यान्ह उपासना, दैनिक भावना और गीतापाठ किया जाकर समागत साधकों का परिचय कराया गया। इसके बाद डॉ० यशवंतलालजी झा के प्रस्ताव एवं श्री गोवर्धनदास जी के अनुमोदन तथा अन्यान्य दो-एक सज्जनों के समर्थन पर संत नागर जी के स्मारक (अर्धमूर्ति) एवं व्याख्यानशाला तथा समागत साधकों के लिए ठहरने की कोठरियाँ आदि बनवाने के निमित्त चन्दे की अपील की गई, जिसमें नीचे लिखे सज्जनों ने अपनी सहायता लिखाई और लगभग ८०० रुपया तो नकद प्राप्त भी हो गया। साथ ही यह निश्चय किया गया कि अगले वर्ष

समारंभ की रजत जयंती मनाई जाय

क्योंकि अगले वर्ष समारंभ को पच्चीस वर्ष पूरे हो जाते हैं। अतएव इसकी रजत जयंती का उत्सव समारोह-पूर्वक मनाया जाय तथा उस अवसर पर संत नागर जी की मूर्ति का उद्घाटन कराया जाय और इस कार्य के लिए राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद जी से प्रार्थना की जाय।

इस प्रस्ताव को सबने सहर्ष स्वीकार किया और इस प्रकार अपनी सहायता लिखवाई—

१०१) श्री यशवंतलाल जी झा (इन्दौर)
१०१) श्री प० शिवानंद जी, बूँदी
१०१) गुप्तदान भैया सा० वीरेन्द्रसिंह जी साहब मैंसला द्वारा।
१०१) श्री घीसालाल जी पूनमचंद जी, उज्जैन।
१०१) गुप्तदान डॉ० यशवन्तलाल जी झा द्वारा
२०१) श्री गोवर्धनदास जी दम्पत्ति-द्वारा।
२०१) श्री शांतिलाल जी दलाल इंजीनियर सा० पोर्ट ट्रस्ट, बम्बई
१०१) श्री सिद्धेश्वर जी शाण्डिल्य, उज्जैन।
५१) श्री पंढरीनाथ, जगन्नाथ जी, खरगोन
५१) श्री चन्द्रसिंहजी यादव, उज्जैन

५१) श्रीमती पार्वती बाई (देवास)
५१) श्री गंगा बाई (उज्जैन)
२५) श्री मणिभाई वाघनिया
२५) श्री मूलजी भाई, देवास
५१) श्री घीसाराम जी विहारीलाल, बड़ौदा
५१) पन्नालाल जी छोटी बाई बूँदी,
२१) श्री मथुरालाल जी लश्करी, (रतलाम)
५१) श्रीमती माँ साहब दढ़िया, सखी दर्वाजा उज्जैन।
११) प्रो० विष्णुदत्त शास्त्री, (उज्जैन)
११) श्री दिनकर रावजी गोड़ी
११) श्री मूलचन्द्जी चकघेरा
११) श्री पुरुषोत्तम आत्माराम साखरे,(पन्नारखेड़ा)
२१) ,, वल्लभदास कन्हैयालाल, उज्जैन
११) श्रीमती देवकुँवर बाई, नासिक
१०) गुप्तदान डा० यशवन्तलाल जी द्वारा
५१) श्री शालिग्रामजी दुबे, बीना
५) श्री बाबूलालजी, बीजानगरी
२०१) श्री राजकुमारी आनन्द कुमारी जी संतराम पुर
२०१) श्री हरवंसराय जी श्रीवास्तव, होशंगाबाद
१०१) मुरली मनोहरजी कन्हैयालाल जी, बूँदी
१०१) श्री माँजी साहब, जवासिया
१०१) श्री कांताबाई दूधालाल, अहमदाबाद
१०१) मेजोनवाले माँजी साहब, राजस्थान
५१) मदनलाल जी ओंकारजी, इन्दौर
५१) डा० पुराणिक साहब, इन्दौर
५१) श्री भागीरथी बाई, उज्जैन
५१) पं० रामसेवक जी दुबे, उज्जैन
२५) श्री शांताबाई, देवास
२५) ,, माँजी साहब नरवर, उज्जैन
२५) सर्दारसिंह जी राठौर, कानड़
२१) श्री पं० रामचरण जी मिश्र, इन्दौर
३१) ,, जयन्तीलाल जी मोतीलाल जी, कोटा
२१) ,, नारायणलाल जी सहगल, इन्दौर
११) ,, जयनारायण जी, जबलपुर
११) ,, शिवराम जी ठाकुर, बूँदी

११) श्री राजूबाई शंकरलाल व्यास, उज्जैन
२१) ,, प्रभुदयाल जी रणधर, इन्दौर
२१) ,, नेमी चन्दजी गोलछा, बम्बई
१०) ,, गोपीलाल जी मिश्रो
५) ,, राधाकिशन जी, जौरापुर
५) ,, कृष्णदास जी दाधीच, खरगौन
५) ,, घनश्यामसिंह जी वैद्य, ताजपुर

प्रवृत्ति-योग की साधना

भोजनोत्तर दो बजे से उत्तराखण्ड के तपस्वी वायुभक्षी महात्मा ने लगभग ४ घंटे तक आज भी आसन, प्राणायाम, ध्यान एवं समाधि पर शास्त्रीय प्रमाण देकर अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रवचन किया। आपने ब्रह्मचर्य द्वारा वीर्य के दृढ़ होने पर ही ध्यान हो सकने की बात बताई और दुर्बल देह किन्तु तेजस्वी नेत्र वाले को योग का साधक बताया। आपने प्रवृत्ति योग के सम्बन्ध में बोलने की इच्छा प्रकट कर विस्तार पूर्वक अपने विचार प्रकट किये। और अन्त में यह सिद्ध कर दिया कि हमारे योग के समान संसार तो क्या त्रिलोक में भी किसी का सामर्थ्य नहीं है। आपका उपदेश सब लोग बड़ी तन्मयता के साथ सुनते रहे। सायंकाल ५ बजे आपका प्रवचन समाप्त हुआ।

आपके उपदेश की मुख्य बातें जो सर्वोपयोगी हो सकती हैं, वे इस प्रकार हैं:—
"संसार में जितने भी मुख्य स्थान हैं, उनमें हमारा योग ही सर्वप्रधान है। जो यहाँ भी सुख में रखता और अन्त में मोक्ष पद पर पहुँचाता है। किन्तु आजकल योग के जानकार महात्मा न मिलने से ही गड़बड़ होती है। त्याग में ही सब कुछ शक्ति है। जब डॉक्टर रोगी को निराश कर देते हैं और वह मरने लगता है, तब ऐसे प्राणियों को धैर्य-आश्वासन देने वाला केवल योग ही हो सकता है। शरीर को योग द्वारा कायाकल्प या पुनर्जीवित भी कर सकते हैं। यहाँ तक कि योग की क्रियाओं द्वारा साधक जरा-मरण से मुक्त होकर १६ वर्ष

का नवयुवक बन सकता है। आसन प्राणायाम ही रोगी को धैर्य दे सकते हैं। संसार में ऐसा कोई रोग नहीं जो कि योग द्वारा दूर नहीं किया जा सकता। टी० बी० या क्षय जैसे रोग भी योग के द्वारा निवारण किये जा सकते हैं। भयंकर रोग भी योग से दूर हो सकते हैं। योग के लिए स्थिर होने वाले को प्राणायाम करना चाहिए। क्षय रोगी को सीतली प्राणायाम एवं नाड़ी शोधन प्राणायाम (भस्त्रिका) करना चाहिए। दूध पर रहते हुए कायाकल्प किया जा सकता है। टी० बी० का रोग भी दूर हो सकता है। कोढ़ के लिए भी दूध का आहार एवं भस्त्रिका प्राणायाम करना चाहिए। पागलपन में भी दूध पर रहकर भ्रामरी प्राणायाम एवं भस्त्रिका करने की आवश्यकता होती है। नेत्र रोग में पुनर्नवा का सेवन तथा सात्विक आहार करना उचित है। इत्यादि

सायंकालीन कार्य-क्रम

सायकाल को यथानियम उपासना एवं भजन कीर्तन के पश्चात् बंधुद्वय ने "वैष्णव जन तो तेने कहिये०" वाला भजन सुनाया। इसके बाद सबसे "सच्चिदानन्द रूप शिवोऽहम्" का कीर्तन कराया। इसके बाद डॉ० बालकृष्ण नागर ने ब्रह्मविद्या के ज्ञाता आचार्य श्री-बद्रीनारायण जी अग्रवाल से अपने विचार प्रकट करने को कहा। आपने अपनी धीर गंभीर वाणी में बतलाया कि—

आत्मस्वरूप को पहचानो !

आज मेरा विचार बोलने का नहीं था; परन्तु बन्धुद्वय के भजन को सुनकर बोलने की प्रेरणा हुई। जो कीर्तन हम मुँह से करते हैं, उसे अनुभव भी करें, तो उसमें हमें जो आनन्द प्राप्त होगा, वह कहकर नहीं बताया जा सकता। गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है "ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल जीव सुख राशी॥" अर्थात् ईश्वर का अंशरूप जीव अविनाशी, चेतन एवं सुख का समुद्र है। किन्तु माया के वश वही भ्रम या दुःख में पड़ा हुआ है। वैसे भी यथार्थ में जीव का रूप आनन्दमय है। उसे जब हम अनुभव करेंगे, तभी वह सच्चे जीवन का क्षण होगा। हम में सभी दिव्यगुण विद्यमान् हैं, किन्तु उन पर माया-विकारों का आवरण पड़ा हुआ है। जिस प्रकार किसी जलते हुए दीपक पर मिट्टी की नाँद रख दी जाय तो उसका प्रकाश छिप जाता है; किन्तु उसी पर काँच का ग्लोब रख देने से प्रकाश चारों ओर फैल जाता है। उसी प्रकार हम पर से आवरण दूर हो जायँ तो आत्मस्वरूप का ज्ञान सहज ही हो सकता है। उस शुद्ध आत्मा पर मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि के आवरण पड़े हुए हैं। अतः यदि हम एक एक करके उन आवरणों को दूर कर सकें तो आत्मज्योति का दर्शन हो सकता है। हमने अपने आपको आवरणों से ढँके रूप में ही अपना रूप समझ लिया है। अर्थात् माया के फेर में पड़ कर हम अपने उस दिव्य, चेतन एवं शुद्ध स्वरूप को भूल गये हैं।

बन्दर में लोभ की वृत्ति प्रबल होती है, इसीलिए वह बन्धन में पड़ जाता है। अर्थात् उसे पकड़ने के लिए एक बहुत ही सँकरे मुँह के बर्तन में चने रखकर उसे जमीन में गाड़ दिया जाता है और चने के लोभ में फँस कर बन्दर उसमें हाथ डालता और मुट्ठी बाँधकर चने बाहर निकालना चाहता है; किन्तु बँधी हुई मुट्ठी बाहर नहीं निकल पाती और वह पकड़ लिया जाता है। ठीक उसी प्रकार हमने भी माया के फेर में पड़कर अपने आपको बाँध रखा है। अतएव यदि थोड़ी देर के लिए हम अपने सांसारिक स्वार्थ को छोड़ दें तो अपने आत्मरूप को जानकर आनन्दरूप बन सकते हैं। ॐ।

आपके बाद माधव महाविद्यालय के आचार्य पं० त्रिवेणी-प्रसादजी बाजपेयी ने अपनी प्रभावशालिनी वाणी में—

गीता में कर्म, भक्ति और ज्ञान का रहस्य बताते हुए कहा—"गीता में अपने कर्तव्य का ठीक ज्ञान न रहने पर अर्जुन ने भगवान से पूछा कि कर्मकिमकर्मेति कवयोप्यत्र मोहितः ?" और भगवान कृष्ण ने उसे ठीक कर्तव्य का ज्ञान कराया। इसी सिद्धान्त के अनुसार हमारी संस्कृति में मानव जीवन का उद्देश्य या मुख्य ध्येय मोक्ष अथवा ईश्वर की प्राप्ति माना गया है। इस पर पहुँचने के तीन साधन या सीढ़ियाँ हैं—कर्म, भक्ति और ज्ञान। इन तीनों के अपने अपने स्थान हैं। अतएव इनकी क्रम से साधना करनी चाहिए। इसी प्रकार प्रवृत्ति और निवृत्ति के दो मार्ग हैं। निवृत्ति मार्ग में घर द्वार छोड़ कर जंगल में जाने तथा एकान्त में साधना की जाती है, जब कि प्रवृत्ति मार्ग में संसार में रहकर सब काम करते हुए भी हम जीवन-मुक्त हो सकते हैं। अपने कर्तव्य का पालन करते हुए सफल हो सकते हैं। उसका क्रम इस प्रकार है—

आत्मज्ञान की पहली सीढ़ी कर्म की है। कर्म के विषय में गीता में भगवान ने दो बातें बहुत ही अच्छी कही हैं। छोटे लोगों से बहुत विवाद या बहस नहीं करना चाहिए और न उनमें बुद्धि भेद ही उत्पन्न करना चाहिए। अर्थात् उनसे बहस न करके उन्हें कर्म में लगा देना चाहिए। उन्हें शास्त्रों के प्रमाण के आधार पर उत्तमोत्तम नियमों के अनुसार अपने उचित कर्तव्य का ज्ञान करा देना चाहिए। वैसे भी मनुष्य के शरीर के द्वारा कर्म तो होता ही है, उसे ठीक मार्ग बताकर सत्कर्म में लगा देना ही प्रधान कार्य है। प्रत्येक कर्म मन वाणी और इन्द्रियों द्वारा होता है। और इन शक्तियों का हम सदुपयोग तथा दुरुपयोग, दोनों ही कर सकते हैं।' अर्थात् इन्द्रियों के द्वारा हम अच्छे और बुरे, दोनों ही प्रकार के कर्म कर सकते हैं। अतएव शास्त्र के अनुसार सदैव शुभ कर्म करने की ओर हमें विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए।

साधना की दूसरी सीढ़ी भक्ति की है। अतः जिसकी जैसी भावना होगी उसे वैसी ही सिद्धि प्राप्त होगी। किन्तु भक्ति के लिए मन की चंचलता दूर करना आवश्यक है और यह अभ्यास तथा वैराग्य-द्वारा ही दूर होकर मन वशीभूत किया जा सकता है। निवृत्ति मार्ग वाले भावनाओं का दमन करते हैं और प्रवृत्ति मार्ग वाले भावनाओं को अच्छे कार्य अथवा सद् विषयों में लगा देते हैं। अतएव हमें अपनी भावनाओं को भगवान पर टिका देना चाहिए और उसी समर्पण की भावना का नाम भक्ति है। भगवान ने गीता में बतलाया है कि मुझे चार प्रकार के भक्त भजते हैं। (१) आर्त (२) जिज्ञासु (३) अर्थार्थी (४) ज्ञानी। इनमें ज्ञानी को भगवान ने सर्वश्रेष्ठ कहा है। फिर भी गीता को भिन्न-भिन्न लोगों ने भिन्न भिन्न भावों से समझाने का प्रयत्न किया है। किन्तु इन लोगों का दृष्टिकोण गीता के समझने में अत्यन्त संकुचित रहा है। क्योंकि यथार्थ में गीता में भगवान ने साधनाओं का सामञ्जस्य करके बताया है, किन्तु उसे संकुचित भावना या अर्थ के द्वारा नहीं समझाया जा सकता। इस प्रकार श्रद्धा युक्त भक्ति ही आगे चलकर ज्ञान बन जाती है। क्योंकि सब कर्मों का अन्त ज्ञान में होता है।

सारांश, इन्द्रियाँ द्वारा कर्म, मन के द्वारा भक्ति तथा बुद्धि के द्वारा ज्ञान का अनुभव किया जाता है। अतएव अपनी बुद्धि के विकास का प्रयत्न करना चाहिए जिससे कि हम आत्मा के स्वरूप को समझ सकें। सन्ध्या के रूप में हम सविता देवता की उपासना करते हैं और गायत्री-मन्त्र में भी बुद्धि को शुद्ध करने की ही भावना की गई है। इस प्रकार आध्यात्मिकता ही मुख्य वस्तु मानी गई है और आत्मा को ही प्रधानता दी गई है। किन्तु संसार में जिन्हें विशेष महत्व नहीं देना चाहिए, उन्हीं को प्रधानता दी जाती है। वास्तव में सांसारिक वस्तुओं का क्या मूल्य

है ? इसे समझ लेने के बाद ही हम आत्मा को समझ सकेंगे और मन के आत्मानन्द में निमग्न होने पर ही ब्रह्मानन्द का अनुभव हो सकेगा।

इसके पश्चात् राजस्थान के रेडियो-कलाकार श्रीयुक्त चन्द्र गन्धर्व ने अपने सुमधुर स्वर में "मनमन्दिर में आओ, दयामय०" वाला भजन गाकर सबको मुग्ध कर लिया। तदनन्तर श्री डॉ० यशवन्तलाल जी झा ने गायत्री की उपासना पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा कि गायत्री द्वारा सब कुछ प्राप्त हो सकता है। किन्तु सांसारिक लोगों को उचित रूप से माँगने का भी ज्ञान नहीं है। वे साधना के बाद साधारण-सी सांसारिक वस्तु माँग बैठते हैं और यह साधना तुच्छ मूल्य में नष्ट हो जाती है। यदि हमें माँगना हो तो उस चतुर अन्धे की तरह माँगना चाहिए जिसने एक वरदान में 'अपने पौत्र को सोने के कटोरे में खीर खाते हुए देखने' की सम्पदा माँगकर अपनी बुद्धि-चतुराई से भगवान् को भी चकित कर दिया था। अर्थात् हमें भगवान से सद्बुद्धि ही माँगनी चाहिए। क्योंकि 'बुद्धिर्यस्य बलं तस्य'। जिसमें बुद्धि होगी वही बलवान होगा। "निर्बुद्धिस्तुबलंकुतः" बुद्धिहीन में बल कैसे हो सकता है ? सारांश, बुद्धि से सब कुछ प्राप्त हो सकता है। गायत्री मन्त्र में भी यही सार मूल वस्तु अर्थात् सद्बुद्धि माँगी गई है। अतएव हमें नियमित रूप से गायत्री-जप करना चाहिए।' प्रति दिन सन्ध्या करना हमारा परम कर्तव्य है। अतएव गायत्री-माता की आराधना करके अवश्य लाभ उठाना चाहिए।

इसके पश्चात् माधव महाविद्यालय के अध्यापक डा० शिवमंगलसिंह जी 'सुमन' ने अपनी कवित्वमयी वाणी में कहा—

मिलन-वेदना जगाइए

यहाँ प्रार्थना में पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्यपूर्णमादायपूर्ण मेवाऽव शिष्यते॥ का मंत्र बोला जाता है। किंतु इस मंत्र में बड़ा रहस्य भरा हुआ है। अर्थात् पूर्ण में से पूर्ण निकाल लेने पर भी शेषपूर्ण ही रहता है। वह पूर्ण का पूर्ण रूप हमें वेदवाणी एवं सत्पुरुषों के कार्यकलाप तथा उपदेश से ही अभ्यास द्वारा ज्ञान हो सकता है। हमारे उन ऋषियों की वाणी में जो मार्दवता थी वह हम में क्यों नहीं ? इसी लिए कि हम में आज उस साधना का प्रायः आभास-सा है। हमारी निरीक्षण-शक्ति ही नामशेष हो गई है। अन्यथा किसी वस्तु को देखते-देखते प्रतिक्षण नवीनता का अनुभव करने पर ही हम रमणीयता—सुन्दरता का अनुभव कर सकते हैं। (क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति रमणीयतायाः।) अतएव आप सब साधक बन्धुओं से मैं यह पूछना चाहता हूँ कि यहाँ की चार दिन की साधना के बाद वे क्या पाथेय साथ ले जाना चाहते हैं ?

एक विद्वान् का कथन है कि हमारे जीवन में सबसे बड़ी बुराई यही है कि हम आज अमुक त्यौहार है या अमुक पर्व है, अतएव आज का दिन आनन्द और उत्सव के दिन के रूप में बिताने का प्रयत्न करते हैं। किंतु यही भावना हम प्रतिदिन को उत्सव रूप या आनन्दमय बिताने के रूप में ही क्यों न करें ? अर्थात् केवल चार दिन ही यहाँ समारोह में यह भावना न रखकर वर्ष भर तक प्रतिदिन ही आनन्द और उत्सव मनावें तो यहाँ आने का प्रयास सफल हो सकता है। अतएव आज से आप जीवन का प्रत्येक दिन आनन्दमय बनाने का संकल्प कीजिए।

महात्मा लोगों का मार्ग निवृत्ति का है। किंतु हमें तो संसार में रहते हुए अपने कर्तव्य का पालन करना है। अतः संसार को केवल माया ही मत समझो। क्योंकि माया के बिना मायापति भगवान् भी कुछ नहीं कर सकते। जैसा कि महात्मा पुरुष कहते हैं कि संसार में नारी मायारूप में होने के कारण मोक्ष पथ की बाधक है। किंतु नारी को पुरुष के मुक्ति पथ में बाधक

मान कर उससे दूर रहें, तो बेचारी नारी जाति की मुक्ति का क्या उपाय होगा ? यदि नारी भी घर छोड़कर चल दे तो गृहस्थ का भविष्य क्या होगा ?

बुद्धि को ग्रहण करना अच्छा है। किंतु बुद्धि बारम्बार फिसलती है। संसार में जिस विज्ञान के द्वारा हमारी सब प्रकार से उन्नति होनी चाहिए थी; उसके बदले आज उसका उलटा उपयोग हो रहा है। संसार की उन्नति के बदले जन संसार के लिए नित्य नये नाशक शस्त्रास्त्र निर्माण करने में पाश्चात्य राष्ट्रों में होड़ सी लग रही है। किंतु हमारा मार्ग तो अध्यात्म का, अतएव शान्ति का है। अंततः हमें तो इसी प्रकार के विश्वशांति प्रचारक प्रयत्न कर भारतीय अध्यात्म विज्ञान की ओर संसार का ध्यान आकर्षित करना होगा।

इस प्रयत्न की सफलता के लिए हमारे दिल में थोड़ी-सी कसक होनी चाहिए। महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की वाणी में यह कसक विद्यमान थी और कदाचित आज यहाँ भी रवीन्द्र की वाणी या उनकी आत्मा का सन्देश ही मेरे द्वारा सुनाया जा रहा है।

गोस्वामी तुलसीदास ने राम का जो रूप ग्रहण किया है, वह उनके मनोनुकूल हो सकता है। अर्थात् जिसे एक बार मान लिया, वह भला बुरा जो भी हो उनका अपना हो गया। अथवा जिसका जिससे मन लगा हो, वह उसमें अपनी भावना के अनुरूप गुण ही देखता है। इसीलिए गोस्वामी जी ने 'एक भरोसो एक रस, एक नाम विश्वास। स्वाति बिन्दु रघुवर जलद, चातक तुलसीदास।' के रूप में अनन्य भाव से राम को अपनाया है। और इसके बाद तो वे और भी आगे बढ़कर अपनी भावना की पराकाष्ठा करते हुए कहते हैं—'चातक तुलसी के मते स्वातिहु पिये न पानि। प्रेम तृषा बाढ़त भली घटे घटेगी आनि॥ अर्थात् प्रेम की प्यास बढ़ती ही रहने में महत्ता है, घटने पर उसका कोई मूल्य नहीं रहेगा। अतएव ऐसे प्रियतम से प्रेम करो, जिससे कभी मिलन ही न हो। जन्म-जन्मान्तर तक उसके मिलन की आशा—वेदना बनी ही रहे। क्योंकि प्रेम की प्यास का बढ़ना ही अच्छा। उसके घटने से वह आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता।"

[यहाँ कवि ने रसखान की कविता सुना कर कहा कि] 'राधाकृष्ण तो हर एक युग में आते हैं। किन्तु उनके विषय में आप जो भी कल्पना करें, उसमें कजूसी कदापि न करें।' इसके बाद श्री महादेवी वर्मा की कविता सुनाई 'तुम अमर प्रतीक्षा हो मेरा, मैं पथिक पथ का धीमा।' और इसके बाद कहा 'अपने प्रभु प्रियतम के लिए वह दीपक जलाओ, जिसमें आराधना द्वारा ऐसी ज्योति जगे, जो जीवन भर जलती रहे।

"संस्कृति आत्मा है, जो कृतार्थ कर देती है। सभ्यता ऊपरी पोषाक है। संस्कृति गंगा की धारा है। गंगा में अनेक नदियों का जल मिलकर जो विशाल धारा बनी है वह सतत बहती रहती है। और जो भारत के हृदय को छूती है। इसी प्रकार श्रेष्ठ संस्कृति भी वही कहला सकती है, जो निरन्तर प्रवहमान रहे, जहाँ सब का मिलन हो और किसी का विरोध न हो। संस्कृति सबकी है, किसी एक की नहीं हो सकती। इसी प्रकार भावना के क्षेत्र में कोई चीज अपनी पराई नहीं होती।"

इसके बाद कवि ने बगला गीताञ्जलि में से एक गीत पढ़कर उसका भाव बतलाया कि— "यदि प्रभु तुम [illegible] जीवन में नहीं मिल पाये तो भी मरने [illegible] वेदना बनी ही रहे और खटकती [illegible] थे। [illegible] मिटे ! [illegible] नहीं, स्वप्न-[illegible] अंतर की वेदना रूप ज्योति से [illegible] प्राप्त हुए। [illegible]; जो तुम्हारे अंतर के [illegible], सन्त नागर जी का [illegible]।"

आपके [illegible] जी ने, तथा [illegible] ने अपने [illegible] ने समारम्भ में भेंट किया

उपसंहार

के रूप में कहा—"जिस प्रकार आकाश अनन्त है, उसी प्रकार अध्यात्म भी अनन्त है। किन्तु वेदना की मस्ती में सुनना-सुनाना भूल है। फिर भी ऐसी वेदना हमारे मन में क्यों नहीं उत्पन्न हो पाती? इसमें गोस्वामी जी के कथनानुसार 'सो सब नयनन कर अपराधा। निसरत प्राण करहिं हठ बाधा ॥" केवल दृष्टि या नेत्रों का ही दोष कहा जा सकता है। क्योंकि नेत्र अपने प्रियतम के दर्शन के लिए सतत लालायित रहते हैं। अर्थात् योग-विराग में वह बात नहीं जो अनुराग में है। क्योंकि उसमें तो सब त्याग ही त्याग है! अतएव सब प्रकार से कर्म-धर्म त्याग कर केवल श्रीकृष्ण का चिंतन करो। ध्यान के द्वारा जिन्होंने अपने चित्त को वश में कर लिया है, वे ही कृष्ण को सदैव अपने दृष्टिपथ में रखने की भावना दृढ़ कर सकते हैं। भागवत में इसके समर्थक अनेक श्लोक मिलते हैं। सारांश, केवल रामनाम का स्मरण-चिंतन ही जीवन का फल है। विनयपत्रिका में गोस्वामी जी का एक पद महत्वपूर्ण है। जो पै राम चरण रति होती" और सचमुच ही राम के चरणों में श्रद्धाभक्ति होती तो मनुष्य को माया मोह के चक्र में फँसकर ये नाना प्रकार की वेदनायें क्यों भोगनी पड़तीं?" इसके बाद आपने दादू-दयाल की वाणी द्वारा भी इस कथन की पुष्टि की।

इसके पश्चात् चौथ का बरवाड़ा (जयपुर) के राजासाहब मानसिंह जी ने संत नागरजी की मूर्ति के लिए ५०१) तथा अन्य निर्माण कार्य के लिए १०१) रुपये [illegible] घोषणा कराई।

पत्रों [illegible] माधव म[illegible]

पवाँरखेड़ा [illegible] शिवसंगलसिंह श्रीवास्तव ने अपने अनुभव[illegible]मयी वाणी में कहा [illegible] प्रकट की कि संत नाग[illegible]मिलन-वेदना जग पर साधकों को जो पत्र [illegible]र्थना में पूर्णमदः लिए अत्यन्त शांतिप्रद एवं[illegible]। पूर्णस्यपूर्णमादाय[illegible] हुए हैं। कम से कर[illegible] का मंत्र बोला जाता है। [illegible]र इसी लिए मैंने उन पत्रों को बहुत ही सावधानी के साथ सहेज कर रखा है। मेरी तरह अनेक भाइयों के पास भी ऐसे पत्र हो सकते हैं। अतएव बड़ा अच्छा होगा, यदि वे सब पत्र एकत्र किये जाकर 'कल्पवृक्ष' कार्यालय से पुस्तकाकार प्रकाशित किये जा सकें। आशा है, सब भाई इस कार्य में उचित सहयोग देकर उन अमूल्य उपदेशपूर्ण पत्रों को सर्वसुलभ कराने में सहायक होंगे। मैं संत नागरजी के दिये हुए जीवन-दान के बल पर ही यहाँ आ सका हूँ। नागरजी के उपदेशप्रद पत्रों से मुझे अपूर्व शांति, समाधान एवं उलझी हुई समस्याओं का हल मिला है। उन्हें मैं यहाँ अर्पण करता हूँ। आप सब लोग भी अपने-अपने पास के ऐसे पत्र कार्यालय में भेज दें।"

इसके बाद अंत में पुनः राजस्थान के श्री चन्द्रगंधर्व ने सुमधुर स्वर में गाया :—

"एक सहारा तेरा नाम।
लीलाधार अमर सुखधाम ॥"

और बन्धुद्वय के "सच्चिदानन्द ओम्" के गान के साथ समारंभ समाप्त हुआ।

चौबीसवाँ आध्यात्मिक साधन समारम्भ

आय-व्यय विवरण

आय

८२९॥) समारम्भ में आये हुए सदस्यों से प्राप्त शुल्क।

निम्नलिखित सज्जनों ने समारम्भ के सहायतार्थ स्वेच्छा से रकमें दीं :—

२०१) श्री शान्तिलाल जी दलाल, बम्बई
१०१) श्रीमती प्रिन्सेस आनन्द कुमारी जी नाशिक
१०१) श्री राजा मानसिंह जी, चौथ का बरवाड़ा
१०१) „ देवीदत्त जी मोदी, बम्बई
१००) „ मुरली मनोहर कन्हैयालाल जी, बूँदी
८८) „ गिरिराज माहेश्वरी, बम्बई

५५) श्री बालकृष्ण गनपत जी, खरगोन
५१) „ बुधालाल छोटालाल जी मिस्त्री
२५) „ मदनमोहन जानकीलाल जी, बूँदी
२५) „ भँवरलाल जी, कोटा
२५) „ गोवर्धनलाल जी श्रोमर, कानपुर
२५) „ सावित्री देवी जी, उन्नाव
२५) „ हरिवंशप्रसाद जी उपाध्याय, रुपैडिहा
२४॥) „ बी० ए० देसाई, कोयम्बट्टर
२१) „ धर्मराज जी मुनीम, किराकत
२१) „ इकबाल बहादुर जी, महमूदाबाद
२०) „ झालावाड़ा से एक सज्जन द्वारा
११) „ पुरुषोत्तमदास जी, खरगोन
११) „ हरखाभाई जी, बम्बई
११) „ विलासवती जी गुट्टू, लश्कर
११) „ रामेश्वर जी, उज्जैन
१०) „ वीरेन्द्रसिंह जी, उज्जैन
१०) „ डॉ० पुराणिक जी, इन्दोर
१०) „ माँ साहब, नवासिया
१०) „ डॉ० बलदेवप्रसाद जी मिश्र, राजनाँदगाँव
१०) „ भ्रमरी बाई जी दत्त, जबलपुर
१०) „ सरदार मा० वि० किबे साहब, इन्दोर
७) „ डी० एस० चौबे, इन्दोर
५।) „ शालिग्राम जी दुबे, बीना
५) „ उषा शान्तिलाल, बम्बई
५) „ जेठा भाई जी, उज्जैन
५) „ विद्यासागर जी, रामगंज मण्डी
५) „ घनश्यामसिंह जी वर्मा, तानपुर
५) ग्वालियर से किसी सज्जन से
५) श्री मातादीन जी श्रीवास्तव, मनकापुर
५) „ मोहनलाल जी, खरगोन
५) जम्मू से एक ब्राह्मण से प्राप्त
५) श्री अरुण कुमारजी द्विवेदी, कानपुर
५) „ धनवती जी, सिकन्दरपुर
५) „ ठाकुर वंशीसिंह जी, लोहगाजर
२) प्रो० बद्रीनारायण जी, उज्जैन
२) श्री मेघराज जी जैन, पियार
१) „ गजानन्द जी, इन्दोर
१) „ हनुमानप्रसाद जी, तिनसुकिया
१।) „ रतनलाल भगत जी, बम्बई

२०१७॥) कुल आय

व्यय

११०) बाँस बल्ली टट्टों का किराया
१३३) कैम्प बनाने उखाड़ने की मजदूरी
८०) गाड़ी तथा भाड़ा
२२५) बिजली फिटिंग आदि
३३०) आटा
१६०) चावल
१००) दाल
१८७॥) शक्कर
४२२॥=) घी तेल
३६०) दूध
२६) मेवे
६०) फल
२५) सागभाजी
४०) नमक मसाला
४०) ईंधन
७५) भोजन बनाने वाले
२८।) पानी वाले
७६॥) पत्तल दोने
३५) हवन सामग्री
१२५) स्टेशनरी डाक खर्च

२६४९=) कुल व्यय

१—यज्ञ के लिए एक पेला चन्दन के छिलके श्री लक्ष्मीनारायणजी चौरसिया, उज्जैन से प्राप्त हुए।

२—कैम्प बनाने के लिए टाट के थान विनोद मिल्स से रायबहादुर सेठ लालचन्दजी से उधार मिले थे।

३—श्री हरवंसरायजी भीवापुर से २०) के फल भेंट रूप प्राप्त हुए।

४—स्व० सन्त नागर जी का एक तैल चित्र सच्चिदानन्द जी ने, तथा एक चित्र श्री डी० एस० चौबे ने समारम्भ में भेंट किया।

विशेष सूचना

श्री विश्वामित्र वर्मा द्वारा लिखित एवं प्रकाशित साहित्य

१।।) प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान
२) पौरुष और कायाकल्प
।) भोजन निर्णय
।) दिव्य भावना
।) षड्ऋतु भोजन चर्या
१) यौगिक स्वास्थ्य साधन
१) व्यावहारिक अध्यात्म
।।) दिव्य सम्पत्ति
।) जीवन का सदुपयोग

१. ता० १६ जुलाई १९५४ तक आधा मूल्य एडवांस सहित थोक आर्डर आने पर यह सब साहित्य पुस्तक विक्रेताओं को आधे मूल्य में दिया जायगा।

२. प्रत्येक पूरे सेट का आधा मूल्य डाकखर्च सहित कुल सवा चार रुपये मनी-आर्डर द्वारा प्राप्त होने पर ता० १६ जुलाई तक विद्यार्थियों और कल्पवृक्ष के ग्राहकों को दिया जायगा।

३. वी० पी० नहीं भेजी जायगी। ता० १६ जुलाई के बाद यह साहित्य प्राप्य नहीं होगा।

पता :—

श्री विश्वामित्र वर्मा
साधनालय, गंगाघाट, उज्जैन R. S.

आवश्यक सूचना

१—कल्पवृक्ष सम्बन्धी पत्र-व्यवहार में, अगले वर्ष का मूल्य भेजते समय मनीआर्डर कूपन में, तथा पता बदलने के लिए अपने पत्र में अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखें।

२—किसी मास का अंक न मिलने पर, अगले मास में हमें लिखें। तीन चार मास या साल भर बाद लिखने पर कोई ध्यान न दिया जायगा। अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखें।

३—पत्र-व्यवहार मे, जवाबी टिकट या कार्ड अवश्य भेजें।

४—ग्राहक नम्बर न लिखनेवालों की चिट्ठियाँ तथा मनीआर्डर आदि पर कोई कार्य न किया जायगा। इसमें हमारा बहुत समय व्यर्थ जाता है।

५—प्रतिमास प्रतिव्यक्ति का पता अच्छी तरह दुबारा जाँच कर हमारे यहाँ से कल्पवृक्ष भेजा जाता है। डाक की अव्यवस्था से किसी को न मिले तो उसकी शिकायत पोस्ट आफिस से करना चाहिए। हम पर कोई जिम्मेदारी नहीं।

—व्यवस्थापक कल्पवृक्ष कार्यालय, उज्जैन नं० १ (म० भा०)

Registered No. N. 277

आध्यात्मिक मंडल, उज्जैन, म० भा०

की

निम्नलिखित शाखाओं में मानसिक, आध्यात्मिक एवं प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा मुफ्त इलाज होता है :—

स्थान — प्रबन्ध और उपचारक

१ कोटा (राजपूताना) श्रीयुत् पं० नारायणरावजी गोविंद नागर, प्रोफेसर ड्राइंग, श्रीपुरा
२ हींगनघाट (सी० पी०)—आयुर्वेदाचार्य शोभालालजी शर्मा।
३ उदयपुर (१) (राजस्थान) संचालक आयुर्वेदाचार्य पं० जानकीलालजी त्रिपाठी, चिन्तामणि कार्यालय भूपालपुरा, प्लाट नं० २०९।
उदयपुर (२) लाला जेसारामजी, मार्फत श्री देवराज, टी. टी. ई. रेलवे क्वार्टर्स, बी।२, रेलवे स्टेशन
४ खरगोन (मालवा प्रांत) श्री गोकुलजी पंढरीनाथजी सर्राफ मंत्री आध्यात्मिक मंडल।
५ अजमेर (राजपूताना) पंडित सूर्यभानुजी मिश्र, रिटायर्ड टेलिग्राफ मास्टर, रामगंज।
६ नसीराबाद (राजपूताना)—चाँदमलजी बजाज।
७ दोहरी घाट स्टे. ओ. टी. आर. (आजमगढ़ उ. प्र.) संचालक पं० क्षमानन्दजी शर्मा साहित्यरत्न
८ मन्दसौर (मध्य-भारत) दशरथजी भटनागर, खाद्य इन्स्पेक्टर, जनकपुरा।
९ मिट्ठी भेड़ी (देहरादून पो० प्रेमनगर) महावीरप्रसादजी त्यागी।
१० सरगुजा स्टेट (सी० पी०) लालजीप्रसादजी गुप्त।
११ जावरा (मध्य भारत)—विशारद पं० भालचन्द्रजी उपाध्याय, एजेन्ट कोआपरेटिव बैंक।
१२ गोंदिया (मध्यप्रान्त) लक्ष्मीनारायणजी मादुपोते, बी० ए० एल-एल० बी० वकील।
१३ नेपाल-धर्ममनीषी, साहित्यधुरीण, डा० दुर्गाप्रसादजी भट्टराई, डी० डी० दिल्ली बाजार।
१४ पोलायखुर्द (व्हाया अकोदिया मण्डी)—स्वामी गोविंदानन्दजी।
१५ धार (मध्य भारत)—श्री गणेश रामचन्द्र देशपांडे, निसर्ग मानसोपचार आरोग्य-भवन, धार।
१६ खम्भात (Cambay) श्री लल्लूभाई हरजीवनजी पंड्या।
१७ राजगढ़ ब्यावरा (मध्य भारत) श्री हरि ॐ तत्सत्जी।
१८ केकड़ी (अजमेर) पं० किशोरीलालजी वैद्य तथा मोहनलालजी राठी।
१९ बुढ़वल (ओ. टी. आर. जिला बाराबंकी) पं० रामशंकरजी शुक्ल, बुढ़वल शुगर मिल।
२० इन्दौर—श्री बाबू नारायणलाल जी सिंहल, बी० ए०, एल-एल० बी०, श्री सेठ जगन्नाथ जी की धर्मशाला, संयोगितागंज।
२१ आलोट-विक्रमगढ़ (मध्य-भारत) अध्यक्ष सेठ सागरचन्दजी, उपचारक अनोखीलालजी मेहता।
२२ अटरू (कोटा राजस्थान)—पं० मोहनचंद्रजी शर्मा।
२३ बारां (कोटा राजस्थान)—सेठ भेरूलाल जी।

व्यवस्थापक व प्रकाशक—डॉ० बालकृष्ण नागर, कल्पवृक्ष कार्यालय, उज्जैन (मध्य
मुद्रक—भक्त सज्जन, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद–२

वर्ष ३२
संख्या ११

KALPA-VRIKSHA
A MAGAZINE OF DIVINE KNOWLEDGE

जुलाई १९५[illegible]
सं० २०११ वि०

१ उद्वेग से बचने के उपाय—स्वर्गीय सन्त नागर जी

२ वेद विज्ञान सुधा—श्री पं० रणछोड़दास जी 'उद्धव' ... १

३ जीवन में—श्री सुदर्शनसिंह जी ... [illegible]

४ मन्त्र जप का प्रभाव—श्री ज्वालाप्रसाद जी खरे ...

५ परलोक में मन का महत्व—श्री गोपीवल्लभ जी उपाध्याय ... ६

६ मानव-स्वभाव कैसे बदले ?—प्रो० रामचरण महेन्द्र ... [illegible]

७ योग क्या और योगी कौन है ?—एक योगमार्गी ... [illegible]

८ पेट की करुण कथा - श्री पं० ब्रजभूषण जी मिश्र ... [illegible]

९ परमार्थ स्वास्थ्यदाता है—श्री डॉ० विट्ठलदास जी मोदी .. [illegible]

१० हम दवा-दारू क्यों करते हैं ?—श्री लक्ष्मीनारायण जी टण्डन ... [illegible]

११ स्वास्थ्य, सुख और समृद्धि—श्री पं० किशोरीलाल जी दीक्षित ... [illegible]

१२ स्वर्ण-सूत्र एक दिव्य मन्त्र ... [illegible]

Manav

सम्पादक—बालकृष्ण नागर

स्वर्ण-सूत्र

एक दिव्य मन्त्र

परमात्मा से बड़ा कौन है ? उस पर मुसीबत आये तो कौन दूर करेगा ? परमात्मा सर्वज्ञान सर्वसामर्थ्य सर्वरूप महाचेतन तत्व है। मैं उसका प्रतिनिधि स्वरूप आत्मा हूँ। हरेक व्यक्ति, हरेक प्राणी, चाहे जहाँ जिस परिस्थिति में जो भी काम करता है—वह आत्मा है, परमात्मा का प्रतिनिधि स्वरूप है। अतएव सब प्राणी आत्मा बन्धु हैं। कोई स्वयं अलग और किसी से भिन्न नहीं है, भिन्नता है केवल बाह्यरूप रंग प्रकृति और कार्य में, आत्मा में नहीं। कोई स्वयंतः स्वतन्त्र नहीं है। हम सब कैसे जीते हैं, हवा कैसे चलती है, वर्षा कैसे होती है, सृष्टि कैसे स्थिर और विकासशील है, इन सबका कोई नियंता है। अतएव मेरे जीवन का क्या होगा, मैं इसकी चिन्ता नहीं करता। मैं अहंभाव से कोई जिम्मेदारी अपने व्यक्तित्व पर लाद कर परेशान नहीं होता। विश्व के व्यापार का रहस्य बहुत सूक्ष्म है, आँखों से नहीं देखा जाता, बुद्धि से नहीं समझ में आता। इसलिए किसी भी समस्या के विषय में कुछ भी चिन्ता करना छोड़कर, व्यक्तिगत अहंभाव का दृष्टिकोण और जिम्मेदारी का भाव छोड़कर अव्यक्त परमात्मा को सौंपकर मैं उसका निर्देश पाने के लिए ध्यानस्थ हूँ।

मैं अपना जीवन और व्यवहार, बच्चे की तरह श्रद्धा और प्रेमपूर्वक परमपिता परमात्मा के अव्यक्त हाथों में सौंपता हूँ। मेरे लिए जो शुभ है वही होगा। जो कुछ होगा मेरे लिए अच्छा ही होगा।

मेरे लिए परमात्मा की क्या इच्छा है ? वही जो मेरी इच्छा है। परमात्मा मुझसे क्या कराना चाहता है ? वही, जो मैं करना चाहूँ। परमात्मा की इच्छा को कैसे जानें ?

मैं अपनी इच्छा को जानकर विचार विवेकपूर्वक अव्यक्त भाव से उसका निर्णय और निश्चय करता हूँ क्योंकि मैं परमात्मा का प्रतिनिधि आत्मा हूँ। परमात्मा मुझमें ही व्याप्त है, मुझसे अलग नहीं, और वह मुझे मेरे जीवन के प्रत्येक व्यवहार और कार्य में निर्देश और सामर्थ्य देता है।

संस्थापक
स्वर्गीय डॉ० दुर्गाशङ्कर नागर

सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥ गीता ॥

वर्ष ३२ } उज्जैन, जुलाई सन् १९५४ ई०, सं० २०११ वि० { संख्या ११

उद्वेग से बचने का उपाय

स्वर्गीय संत नागर जी

मानस शास्त्री शेल्डन लेविट एम० डी० साहब कहते हैं कि उद्वेग भय का मुख्य अंग है, जिससे मनुष्य और पशु समान दुःख पा रहे हैं। यह दुःखों का बालक है और दुःखों से बचने का सदा प्रयत्न किया करता है। नीचे लिखे अनेकों रूप में यह प्रकट होता है—

ईर्षा
उद्वेग
घृणा
भय
चिड़चिड़ाना
उदासी
घबराहट

देखो यह कैसा बुरा जाल बुना गया है। इसने मनुष्यता को किस बुरी तरह से विश्राम-हीन कर दिया है। परन्तु हम तो भी इनसे बचना नहीं चाहते। कोई मनुष्य भय के साम्राज्य से बाहर होना नहीं चाहता। इसे सब प्रेम करते हैं। उद्वेग को दूर करने का सर्वोत्तम मार्ग यह है कि कल की चिन्ता छोड़ दो। कल क्या खायेंगे, क्या पहिनेंगे इस बात की बिलकुल चिन्ता मत करो। वर्तमान काल में ही आनन्दित रहो।

प्रत्येक दिन अपना कार्य करता है। एक दिन के कार्य से दूसरे दिन को लादना अनुचित है। बहुत से भय हमें [illegible]

लगते हैं पर अन्त में उनका नाम निशान भी नहीं मिलता। यदि मनुष्य अपने जीवन चरित्र को आरंभ से मनन करने लगे तो वह देखेगा कि बहुत सी बातें जिनसे वह डर रहा था बिलकुल ही अस्तित्व में नहीं आईं। जिस प्रकार बहुत से बादल आकाश में घिर जाते हैं। उन्हें देखकर डर प्रतीत होने लगता है। परन्तु जहाँ कि सूर्य का प्रकाश चमका कि वे सब छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। इसी तरह जीवन में भी अनेक भयंकर दुर्घटनाओं का सामना होता नजर आता है। पर वे सब मन पर आनेवाले तूफान हैं जो बिना किसी प्रकार का नुकसान पहुँचाये अपने आप छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। विपत्तियाँ जब आनेवाली होती हैं तो ऐसे कारणों से उत्पन्न हो जाती हैं जिनका हम अनुमान नहीं कर सकते।

जब कभी विपत्तियों का मुकाबला हो जाय तो योग्यता और धैर्य के साथ डटे रहो। यदि आनेवाली विपत्तियों की पहिले ही से चिन्ताएँ करने लगें तो उन विपत्तियों से होने वाले उपकारों से हम वंचित रह जायँगे।

चिन्ता या उद्वेग हमेशा भविष्य-घटनाओं के सम्बन्ध में हुआ करती है और उसके प्रभाव से वर्तमान काल में हमारा स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। और यथार्थ दृष्टि से देख सकें तो मालूम होगा कि ये चिन्ताएँ हमारे भविष्य को और भी भयंकर बना डालती हैं। यह बात युक्ति से सिद्ध हो चुकी है कि भविष्य का भय मनुष्य की वर्तमान परिस्थिति को बिगाड़ देता है और भविष्य भय को विशेष भयंकर बना देता है।

हम बुद्धिपूर्वक विचार करने से इस दुःख से बच सकते हैं और बहुतों ने ऐसा किया भी है, पर कई एक निष्फल भी हुए हैं। इसमें सबसे मुख्य बात अपने भावों को उच्च बनाना है। हम अपने प्रकट मन से गुप्त मन की अवस्था में पहुँचने से अपनी शक्तियों को जान सकते हैं। और उसके प्रकाश में पहुँच जाने से फिर कभी किसी तरह का उद्वेग या भय नहीं रहता।

होरेस फ्लेचर नाम का एक व्यक्ति चिन्ताओं से बहुत ही दुःखी था। किसी जापानी बौद्ध भिक्षु ने उनसे कहा कि तुम क्रोध और चिन्ता इन दो बातों को त्याग दो। उस मनुष्य ने पूछा क्या ये संभव है? भिक्षुक ने कहा जापानी के लिए सब कुछ संभव है। इस उत्तर ने फ्लेचर के हृदय में नवीन भाव उत्पन्न कर दिये और वह चिन्ता के दुःख से सदा के लिए मुक्त हो गया।

सब प्रकार के भयों को दूर करने के लिए हमें अपने ऊपर पूर्ण श्रद्धा चाहिए। जिस समय सब इन्द्रियों को रोक और मन को एकाग्र करके अपने आप में लय कर दिया जाता है उस समय एक आश्वासन देनेवाली आवाज आती है जिससे हमारे सब दुःख और क्लेश सर्वथा नष्ट हो जाते हैं। आत्मिक शक्तियों को जागृत करके वहाँ के प्राप्त ज्ञान के अनुसार जीवन बिताना सीखो तो तुम्हारे भावों में भय और उद्वेग के लिए कोई स्थान खाली न रहेगा।

वेदविज्ञानसुधा (४)

श्री रणछोड़दास 'उद्धव'

स्थिति-गतिलक्षण वेदविज्ञान

मोहन—परम मित्र माधव! आपने यह सुनाया था कि—'यजुर्वेद का यत्‌भाग गति-वाला और जू भाग स्थितिवाला है।' इस विषय को विस्तार से समझाने का कष्ट करेंगे, क्योंकि मुझे यह विषय भी आश्चर्यकारक ज्ञात होता है कि एक ही वस्तु स्थिति और गतिवाली कैसी होती है?...

माधव—जिज्ञासुवर मोहन ! आप ठीक कहते हैं, स्थिति-गतिवाला वेद भी आश्चर्यकारक विषय है, उसे समझाने का यत्न करता हूँ ।

साहित्य कला में निष्णात अतः क्रान्तदर्शी नाम से प्रसिद्ध विश्वनाट्यकला के ज्ञाता कविवर महर्षियों ने अपनी साहित्यभाषा में पुरुष और प्रकृति या ब्रह्म और माया इन दोनों अभिनेताओं के 'स्थिति और गति' ये नाम रक्खे हैं। शान्त अभिनेता स्थिति है और अशांत अभिनेता गति है।

महाविश्व में, विश्व के प्रत्येक पर्व में, पर्व के प्रत्येक पदार्थ में, पदार्थ के प्रत्येक महाभूत में, महाभूत के प्रत्येक रेणु में, रेणु के प्रत्येक अणु में, अणु के प्रत्येक गुण में, गुण के प्रत्येक पुरंजन में, पुरंजन के प्रत्येक पञ्चजन में, पञ्चजन के प्रत्येक विश्वसृट् में, विश्वसृट् के प्रत्येक आत्मक्षर में, आत्मक्षर के प्रत्येक अक्षर में, अक्षर के आलंबन अव्यय में और सर्वाधार परात्पर में सर्वत्र उक्त उन्हीं स्थिति और गतिभावों का साम्राज्य है। स्थिति उस दृश्य का पूर्वभाव है और गति उत्तर भाव है। स्थित रहता हुआ वह दृश्य प्रतिक्षण चल रहा है अर्थात् ठहरा हुआ आगे बढ़ रहा है। साथ ही में मूर्खजन और विद्वज्जन सब को इन दोनों भावों के समान रूप से दर्शन हो रहे हैं। किन्तु 'लोक रुचिर्हि भिन्ना।' एक की दृष्टि में स्थितितत्व ग्राह्य है और गतितत्व निरर्थक है, दूसरे की दृष्टि में गतितत्व ग्राह्य है और स्थिति तत्व निरर्थक है। इसी रुचि भेद का निरूपण करते हुए भगवान् कहते हैं—

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥
(गीता २।६९)

प्रतिक्षण बदलते हुए पदार्थों में न बदलने वाला स्थितितत्व ही हमारा सुप्रसिद्ध अस्तिरूप अमृततत्व है और प्रतिक्षण बदलने वाला गति भाव ही नास्तिरूप सुप्रसिद्ध मृत्युतत्व है। जो महानुभाव (चार्वाकादि) केवल नास्तितत्व को ही प्रधान मानते हैं, जिनका "सर्वमिदं क्षणिकं क्षणिकं, अतएव शून्यं शून्यं, अतएव दुःखं दुःखं, अतएव स्वलक्षणं स्वलक्षणम्।" यह घंटाघोष है, जिनके मतानुसार अस्ति नाम का अमृत लक्षण कोई नित्य तत्व नहीं है, उनके केवल इस नास्तिभाव में ही दोनों भाव आ जाते हैं। आप निरंतर अपने मुख से 'कुछ नहीं है—कुछ नहीं है' यही बोलते रहिये। हम इसी व्यवहार में 'नहीं' और 'है' इन दोनों को दिखला देते हैं। कुछ नहीं मानने वालों को पहले तो हम यही कहेंगे कि जब आपके मतानुसार 'कुछ नहीं है' तो ऐसी अवस्था में 'कुछ नहीं है' इस कोटि में आते हुए आप स्वयं भी 'कुछ नहीं हैं।' जब आप स्वयं कुछ नहीं हैं तो आपके मुख से निकला हुआ—'कुछ नहीं है' यह वाक्य भी कुछ नहीं है, अतएव आपका 'कुछ नहीं है' यह सिद्धांत अपने आप गिर जाता है।

थोड़ी देर के लिए हम आपके 'कुछ नहीं है' इस सिद्धान्त को मान लेते हैं। आप और तो कुछ नहीं मानते, किन्तु 'कुछ नहीं है' यह तो आप भी मानते हैं अर्थात् शब्दों में स्वतन्त्र सत्तावाद को न मानते हुए भी आप 'कुछ नहीं है' इस वाक्य की सत्ता तो अपने मुख से ही मान रहे हैं, अतः आपको 'सत्ता' भाव से युक्त हो जाना पड़ता है। यदि इस आपत्ति से बचने के लिए आप यह कहें कि हमारा 'कुछ नहीं है' यह नास्तिसार होता हुआ "कुछ नहीं है" तो ऐसी अवस्था में आप साक्षाद्रूप से सत्ता मान लेते हैं। कारण—अभाव का अभाव सत्ता है।

'कुछ नहीं है' यही मानिये। इस वाक्य में आपको 'कुछ नहीं' और 'है' ये दो विभाग मानने पड़ेंगे। नास्ति के 'न' और 'अस्ति' इन दो भावों का आप निषेध नहीं कर सकते। नास्तिवाक्य में रहनेवाला 'न' मृत्यु है और 'अस्ति' अमृत है। सत्-स्वरूप अमृत सदा अमृत

ही है और असत्-लक्षण मृत्यु सदा मृत्यु ही है। भावात्मक सत् का कभी अभाव नहीं होता और अभावरूप असत् की कभी सत्ता नहीं होती। इसी का स्पष्टीकरण करते हुए भगवान् कहते हैं—

अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन।
नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्त स्त्वन योस्तत्व दर्शिभिः॥
(गीता २।१६)

दोनों सर्वथा प्रतिद्वन्द्वी हैं, फिर भी वस्तु-एक है। इस प्रकार ज्ञान और क्रियामूर्ति अव्यय के सिवा तीसरी वस्तु का अभाव सिद्ध हो जाता है। अपने विशुद्ध रूप से यही सब में व्याप्त हो रहा है और वेदरूप से यही सब कुछ बन रहा है। यह अव्यय पुरुष कामनाओं का समुद्र बनता हुआ काममय कहलाता है। (ऐ० आरण्यक) इस काममय अव्यय समुद्र में से वेद द्वारा विद्या कर्मरूप अनन्त रत्न निकला करते हैं। विश्व का प्रत्येक पदार्थ उस महासमुद्र में से निकलने वाली एक-एक मणि है। इस प्रकार वेद रूप से वही नाना रूप मणि है और एकांश से वही सूत्र (डोरा) है। मणि-माला की मणिएँ व्यक्त है और सूत्र अव्यक्त है। इसी मणिमाला का दिग्दर्शन कराते हुए भगवान कहते हैं—

मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनंजय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥
(गीता ७।७)

विश्वमूर्ति स्थितितत्व 'जू' भाव है और गतितत्व 'यत्' भाव है। जू भाव सर्वथा अनेजत् (कम्पन रहित) है और यत्भाव सर्वथा राजत् (स्थिति रहित) है। राजत् और अनेजत् की समष्टि यज्जू है, यही यजुर्वेद है। मन प्राण-वाङ्मय अव्यय के कर्मभाग का विकास यजुर्वेद है। विज्ञान ऋग्वेद है और आनंद सबकी आनंदभूमि बनता हुआ सामवेद है। इस प्रकार स्थितिगतिरूपा यह वेदत्रयी सर्वत्र व्याप्त हो रही है। इस वेद को हम 'आत्मधृतिवेद' (आत्मा को धारण करने वाला वेद) एवं 'पुरुषवेद' आदि नामों से भी कह सकते हैं।

जीवन में—

श्री सुदर्शन सिंह

जब मैं जीवन की चर्चा करता हूँ तो मेरा मतलब केवल व्यक्तिगत जीवन से नहीं होता। मेरे जीवन का अर्थ है विश्व का जीवन। फिर भी मैं देखता हूँ कि व्यक्ति एवं विश्व के जीवन के नियमों में कोई विशेष अन्तर नहीं। जीवन—चाहे वह व्यक्ति का जीवन हो, समाज का जीवन हो, धर्म का जीवन हो, भाषा का जीवन हो या राष्ट्र का जीवन हो, सभी एक नियम पर चलते हैं। भोजन करो—इतना भोजन करो जिसे पचा सको। यही जीवन का नियम है। भोजन न करने वाला तो मरेगा ही, जो इतना भोजन या ऐसा भोजन करे कि उसे पचा न सके, उसे अजीर्ण होगा। सारे रोगों की जड़ है उदर-विकृति। अजीर्ण उसे रोगी बना देगा और यदि समय रहते उसकी उचित चिकित्सा न हुई तो वह मृत्यु के मुख में पहुँच जावेगा। ये किसी के भी जीवन एवं मृत्यु के नियम हैं। व्यक्ति में तो इनका उपयोग हम स्पष्ट देखते हैं, व्यक्ति से परे भी इन्हें समझने में कोई कष्ट न होगा यदि हम तनिक विचार से काम लें। जो समाज अनशन कर रहा है, अर्थात् दूसरे आसपास के समाजों से अपने अनुकूल बातें ग्रहण न करके अपनी लकीर पर अड़ा है वह अवश्य नष्ट होगा। इसी प्रकार जो

समाज दूसरों की बातों का अन्धानुकरण करेगा, वह भी नष्ट होगा। दूसरों की उपयोगी बातें लेकर जैसी की तैसी नहीं रखनी चाहिए। उन्हें अपने ढंग से लेना चाहिए। अन्न की भाँति उसे ऐसा पचा लेना चाहिए कि उसकी पृथक् सत्ता न रहनी चाहिए। यदि वह अपने समाज में ज्यों का त्यों रहा, तो समाज को अजीर्ण हो जायगा और वह रोगी बन जावेगा। भारतीय समाज को पश्चिम के इस अन्धानुकरण का रोग लग गया है और वह अजीर्ण का रोगी हो गया है। साथ ही भारत के 'पुराने लोग' नितान्त उपवास के पक्ष में हैं। वे कुछ भी ग्रहण नहीं करना चाहते। इसी प्रकार हिन्दू-धर्म तब उपवास का पक्षपाती हो गया जब उसने दूसरों को ग्रहण करने से अस्वीकार कर दिया। वह पहिले से ऐसा नहीं था। शक, हूण प्रभृति को वह पचा चुका था। आज के वे लोग धर्म के अजीर्ण हैं जो पाश्चात्य प्रभाव में आकर अपने को धर्महीन बतलाते हैं। वे संस्कृति को ग्रहण तो करते हैं, किन्तु उसे पचा नहीं पाते। जो भाषा दूसरी किसी भाषा से एक भी शब्द किसी भी रूप में न लेना चाहे, उसका काम नहीं चलेगा। वह भाषा मृतक हो जायगी। लेकिन दूसरी भाषा के शब्द को अपने ढंग से लेना चाहिए। हिन्दी पत्रों एवं पुस्तकों में रोमन लिपि के शब्द भाषा के अजीर्ण को सूचित करते हैं। लिपि में इतना परिवर्तन हो कि दूसरी भाषा के शब्दों का ठीक उसी प्रकार उच्चारण हो सके जैसे उसके मूलरूप में होता है, इसकी भी कोई आवश्यकता नहीं। यह भी अजीर्ण ही है। बंगला के समान दूसरों के शब्दों को अपने ढङ्ग से ग्रहण करना तथा लिखना या बोलना चाहिए। उसके मूलरूप के अर्थ को रखकर भाषा का भण्डार भरा जाना चाहिए, न कि उसके बाह्य स्वरूप को लेकर। प्राकृतिक स्थिति एवं परंपरा के कारण एक ही भाषा भाषी लोगों में भी उच्चारण भेद होता है। इस प्रकार हम उच्चारण को कहाँ तक रख सकेंगे। ऐसे ही राष्ट्रों का भी जीवन है। जापान उस समय उपवास कर रहा था और फलतः क्षीण हो गया था, जब कि वह अपने को संसार से पृथक् रखने में अपना लाभ देखता था। आज भारत में रशियन साम्यवाद का रूप राष्ट्रीयता का अजीर्ण है। साम्यवाद को जो अच्छा समझते हैं, उन्हें उसे भारत के अनुकूल रूप में पचाना होगा। मैं एक उदाहरण दूँगा, ब्रिटिश जाति, संस्कृति, राष्ट्र और शासन पद्धति अब तक जीवन का प्रमाण देती आ रही है। उनमें अनशन का रोग तो है ही नहीं। वे आस पास की प्रत्येक बात को उदारता से ग्रहण कर लेते हैं। वे जाति, संस्कृति, शासन, भाषा आदि सब में ग्रहण एवं परिवर्तन के पक्षपाती हैं। अंग्रेजी पता नहीं कितनी भाषाओं को लेकर बढ़ी है। ब्रिटिश प्रजातन्त्र अनेक पद्धतियों का समीकरण है। ब्रिटिश संस्कृति भी ऐसी ही है। गुणदोष तो सभी में होते हैं। परन्तु ब्रिटेन की दृष्टि से, ब्रिटेन के लिए उनकी यह जीवन शक्ति प्रभावकारी रही है और इसके बल से ब्रिटिश जाति संसार के अधिकांश भाग में ऊंची उठ सकी है। ग्रहण के साथ पचा लेने की अद्भुत शक्ति हम ब्रिटिश संस्कृति में पाते हैं। उन्होंने जहाँ और जो कुछ भी अपनाया है, अपने ढंग से। इस ढंग से कि हम सहसा नहीं कह सकते कि 'यह' अमुक स्थान से लिया गया है। इस प्रकार के ज्ञान के लिए हमें गम्भीर अन्वेषण करना पड़ेगा। जीवन शक्ति का ठीक यही रूप साधक अपने पथ में भी पाता है। अध्यात्म इस अधिभूत का विरोधी नहीं है। अपितु अधिभूत अध्यात्म का ही प्रत्याभास है। यदि साधक एक साधन को लेकर प्रतिज्ञा कर ले, मैं और कुछ नहीं करूँगा तो उसका पथ रुद्ध हो जायगा। अपने साधन पर स्थिर रहते हुए भी

से आवश्यकता पड़ेगी परिस्थिति से झगड़ने की। ऐसी स्थिति में उसे सहायता चाहिए। सहायता का अर्थ यह नहीं होना चाहिए के वह दुनिया भर की क्रियाएं करे। यह तो फिर दूसरे साधनों का अजीर्ण हो जायगा। उसे दूसरे साधन अपने ढंग से स्वीकार करना चाहिए। जैसे एक नाम जापक है। शुद्धाहार, आसन, ध्यान, प्राणायाम आदि उसे भी चाहिए ही। लेकिन हठयोगी की भाँति इनके पीछे हाथ धोकर पड़ने की आवश्यकता नहीं। साधारण आहार, किसी भी आसन पर कुछ देर बैठ लेने का अभ्यास। मुद्रा आदि के बखेड़े से दूर रहकर नाम में एकाग्रता से जो प्राणायाम हो जाय, उतना प्राणायाम और नामीका ध्यान। इतना उसे भी योग का स्वीकार करना चाहिए। अपने आस पास जो कुछ भी है, उससे उदासीन न रहते हुए उसमें से जो आवश्यक और उपयोगी हो, उसको अपने ढंग से अपना कर पचा लेना। उसके सार अंश को ग्रहण करके शेप को छोड देना। उसको अपने भीतर इस प्रकार एक कर लेना जिसमें उसकी पृथक् सत्ता ही न रह जावे, यह है जीवन का लक्षण।

मंत्र जप का प्रभाव

श्री ज्वालाप्रसाद जी खरे

मंत्र क्या है? मंत्र विशेष शब्दों का एक समूह है जो अपना किसी न किसी प्रकार का अर्थ रखता है। उन शब्दों के अर्थ का साकार होना ही मंत्र का सिद्ध होना कहा जाता है।

मंत्र का जपना अर्थात् भगवत भजन करना प्रत्येक को अत्यंत आवश्यक है, वर्तमान काल के मनुष्यों का मंत्रों से विश्वास उठ गया है और जिनका है भी वे श्रद्धा व विश्वास न होने से उसमें सफल नहीं होते। परंतु यह उनका नितांत भ्रम है, इसी भ्रम के दूर करने के लिए वैज्ञानिक रीति से सिद्ध किया जाता है कि शब्द को गति देने से क्या क्या प्रभाव पड़ता है जिसको अच्छी तरह से समझ लेने पर मंत्र के जपने की प्रत्येक को श्रद्धा हो सकती है।

अनंत आकाश वायु सागर में जीवनशक्ति (अमृत) परिपूर्ण है, जिससे सब प्राणी जीवित हैं, वायु में जीवनशक्ति का होना विज्ञान की दृष्टि से सिद्ध हो चुका है, और यह भी सिद्ध हो चुका है कि प्रत्येक वस्तु के परमाणु हैं और वह सूक्ष्म से सूक्ष्म होने से अदृश्य हैं। वही परमाणु एकत्रित हो जाने से वस्तु साकार हो जाती है। प्रत्येक वस्तु के परमाणु इस अनन्त आकाश वायु सागर में परिपूर्ण जीवन शक्ति द्वारा विचर रहे हैं।

यह भी स्पष्ट है कि शब्द से धक्का लगता है, और शब्द जितना तीव्र तथा कोमल होता है उसी के अनुसार शब्द के धक्के का छोटा व बड़ा प्रभाव पड़ता है। अनंत आकाश वायु सागर में किसी भी प्रकार का शब्द हो, स्पर्श होते ही लहर उठती है और लहर से परमाणुओं में धक्का लगता है।

आयुर्वेद और योगविद्या का खास उद्देश्य यही है कि हमारी प्राणवायु (अमृत शक्ति) शरीर के प्रत्येक मर्म भाग में प्रवेश करे जिससे मन की छिपी हुई ऋद्धियाँ सिद्धियाँ जाग्रत हों और शरीर का स्वास्थ्य ठीक बना रहे। हमारी चेतना इतनी विशाल और ऋद्धियों सिद्धियों की कोष है कि वह उतना काम नहीं कर पाती जितना कि उसे करना चाहिए। अर्थात् हम अपने दिमाग की पूरी शक्ति से काम नहीं ले पाते और न ऐसी तरकीब ही हमें मालूम है कि जिससे दिमाग की सब शक्तियों को जाग्रत कर सकें और वह पूरा पूरा काम दे सकें।

यद्यपि योगविद्या ने प्राणशक्ति से आवश्यकतानुसार काम लेने और निद्रियों को जाग्रत करने की क्रिया को बताया है, परन्तु उस विद्या को हर कोई बिना गुरु के नहीं जान सकता और न उसके जानने की प्रत्येक को श्रद्धा ही है। इससे कुछ महर्षियों ने प्राण उपयोग रहस्य को गुप्त रख कर परमात्मा का नाम (जो ओम् शब्द में विद्यमान है) जपने का उपदेश किया है, और प्रत्येक मनोर्थपूर्ण करने का महत्व नाम जपने में बताया है।

शब्द उच्चारण करने या मंत्र जपने से शरीर के प्रत्येक परमाणु को धक्का लगता है, धक्का लगने से गति होती है, अर्थात परमाणु चलते हैं, और गति से गर्मी उत्पन्न होती है, गर्मी से शरीर का स्वास्थ्य ठीक बना रहता है। अत्यंत गर्मी पहुँचाने से यानी नाम जपने से दिमाग की गुप्त ऋद्धि सिद्धि का कोष खुल जाता है, और उससे हम जैसा चाहें वैसा काम ले सकते हैं। ऐसी क्रिया करने वालों को ही महात्मा कहते हैं और महात्माओं ने उपरोक्त क्रिया को ही तपस्या कहा है, और वह इस लिए कि शब्द उच्चारण से धक्का, धक्का से गति, गति से गर्मी और गर्मी से विकाश प्रत्येक वस्तु का होता है, और यही तप है जो ऋद्धि सिद्धि का देने वाला है।

गर्मी अर्थात् तपस्या ही कुल काम करने वाली है, वह गर्मी शब्दों से उत्पन्न होती है। शब्द या इच्छा मन से होता है, मन प्राण शक्ति के आश्रित है, और प्राणशक्ति आत्मा से संबंधित है तथा आत्मा परमात्मा से। चूँकि गर्मी का कारण सूर्य है और सूर्य का कारण परमात्मा है। अतः मन, आत्मा, प्राण, सूर्य और परमात्मा कार्य व्यवहार में अलग अलग भासते हुए भी एक हैं। एक के बिना दूसरा नहीं रह सकता। इनमें से जहाँ एक है वहीं सब हैं अर्थात् एक ही वस्तु के सब पर्याय-वाची नाम हैं जो शब्दों से जाग्रत किये जाते हैं। जिसकी क्रिया मंत्र जपना (परमात्मा का नाम लेना) है। जैसे कि वेदों ने ईश्वर का रूप नहीं बतलाया बल्कि उसका नाम ॐ शब्द में विद्यमान होना कहा है। इसलिए सब का कारण शब्द ही है।

शब्द उच्चारण करने या मंत्र जपने का प्रभाव सबसे पहिले मंत्र जापक के शरीर पर पड़ेगा अर्थात् सबसे पहिले शरीर के जीवन परमाणु गरम होकर प्रत्येक गुप्त और प्रकट नस नाड़ी और तन्तु इत्यादि तथा इससे भी सूक्ष्म नसाजाल (जिसे आयुर्वेद विज्ञानी भी नहीं जान सके हैं) में गर्मी पहुँचायेंगे, जिससे वे ठीक ठीक स्वास्थ्यवर्धक क्रियाएँ करने लगेंगे। फिर अधिक मंत्र जपने से बाहर के जीवन शक्ति परमाणुओं में धक्का लगना प्रारंभ होगा, और लगातार धक्का लगने से वे वायु परमाणु अत्यत गरम हो जाते हैं। अधिक से अधिक गर्मी पहुँचाने से वह गर्मी अपने कारण में लय होती है, अर्थात सूर्य की तरफ आकर्षित होती है, और फिर कारण (सूर्य) से वह शक्ति जापक को वापिस प्रदान होती है कि जिस इच्छा से शब्द या मंत्र उच्चारण किया गया है। अर्थात् वह इच्छा जापक की पूर्ण हो जाती है। ऐसी ही क्रिया प्रत्येक शुभाशुभ शब्द उच्चारण की है।

तपस्या का रहस्य भी यही है और इसी कारण तपस्वियों के शब्द श्राप तथा आशीर्वाद में तत्काल प्रभाव दिखाते हैं, क्योंकि उनके शब्द अधिक गर्मी पाये हुए होते हैं जो कि एक ही बार उच्चारण करने से ही वायुमंडल के परमाणु गरम होकर साकार क्रिया कर दिखाते हैं।

शास्त्रों, ऋषियों, मुनियों ने कहा है कि पूरे विश्व में एक चैतन्य शक्ति, जिसे आत्मा या ईश्वर कहते हैं, व्याप्त है। हमारा उच्चारण किया हुआ शुभाशुभ शब्द (मन ही मन का अथवा प्रकट का) उसी चैतन्य शक्ति को

साकार कर दिखाता है। यही रहस्य प्रत्येक अंशांश शक्ति के अवतार का है। विशेष शुभ शक्ति अंश होने से साकार आत्मा (सशरीर) ईश्वर अवतार या महात्मा कहलाती है।

शब्दों में रचना करने की बड़ी प्रबल शक्ति है, जो काम हम वर्षों में नहीं कर सकते उसको शब्द शक्ति कुछ क्षण ही में कर दिखाती है। उसी शब्द लहर द्वारा अभिलषित वस्तु आकर्षित होती है और कार्य सिद्ध होता है।

सारांश यह है कि जो शुभ कामना हम चाहते हैं वह सब आकर्षण शक्ति के अधिकार के भीतर है और आकर्षण शक्ति का प्रत्येक वस्तु के परमाणुओं के साथ कंपन या लहर का संबंध है, जो शब्दों द्वारा आकर्षित और विकसित किये जा सकते हैं, अर्थात् सब वस्तुओं के प्राप्त करने का मूल साधन शब्द है और इस प्रकार बड़ी से बड़ी कामना भी जप (मंत्र) द्वारा पूर्ण हो सकती है।

परलोक में मन का महत्व

वक्ता श्री ब्रह्मानंद ब्रह्मचारी अनु०—गोपीवल्लभ उपाध्याय

[इस लेखमाला का प्रथम लेख जुलाई १९५२ के 'कल्पवृक्ष' में देखिए]

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, परलोक में अवचेतन मन और चेतन मन दोनों मिलकर हमारा मन बना हुआ है, इसीलिए हमारे मन की शक्ति बहुत ही अधिक है। यही कारण है कि तुम्हारे बुलाने पर हम एक करोड़ मील दूर होते हुए भी घड़ी भर में आ जाते हैं; यह उस मन की प्रबल शक्ति का ही परिणाम है। जैसे ही हम इच्छा करते हैं कि हमें अमुक जगह जाना है तुरंत ही हम वहाँ पहुँच जाते हैं। अर्थात् इस लोक में 'दूरी' नाम की कोई वस्तु ही नहीं है। इसका भी कारण केवल हमारे मन की क्षमता ही है। लोग सोचते है कि इतनी शीघ्रता से हम कैसे यहाँ आ जाते हैं ? क्योंकि वे सभी बातों को नैसर्गिक कार्य-पद्धति की दृष्टि से ही देखते हैं। किंतु यही उनकी भूल है। क्योंकि यहाँ हम मनोजगत में हैं। अतएव हमारे किसी भी व्यापार (कार्य) को पृथ्वी के माप दंड से नहीं परखना चाहिए। इसीलिए मन की शक्ति के सम्बन्ध में भली भाँति जाने बिना यहाँ के किसी कार्य या गति-विधि को भूलोक के मानव कदापि समझ नहीं सकते और इसीलिए वे उस पर विश्वास भी नहीं करते।

यहाँ परलोक में हम लोग जिन भवनों में निवास करते हैं, वे किन्हीं राजमिस्त्री के बनाये हुए नहीं हैं। वैसे यहाँ खूब राजमिस्त्री खोजने पर अनेक मिल सकते हैं; किंतु जिन वस्तुओं से भवन तैयार किये जाते हैं वे यहाँ कैसे मिल सकती हैं ? और भवन तो हमें चाहिए ही। क्योंकि हमारे मर जाने का अर्थ यह कदापि नहीं हो सकता कि हम किसी वृक्ष के नीचे ही दिनरात काट देते हैं। क्योंकि पृथ्वी पर रहते हुए हमने जिस प्रकार के मकानों में रहने का अभ्यास किया था, वैसे ही भवनों की हमें यहाँ भी आवश्यकता रहती ही है। ऐसी दशा में तुम्हारे सामने यह विकट प्रश्न उपस्थित होना स्वाभाविक है कि, बिना सामग्री के भवन कैसे बनते होंगे ? किंतु हमारे लिए यह एक अत्यंत साधारण कार्य है, जिसे हम प्रतिदिन करते रहते हैं। हमारी इच्छाशक्ति द्वारा यह सब होता है।

अर्थात् हम अपने में इच्छा करते हैं और उसी के अनुसार मृत्युलोक की ही तरह सुविधा-

जनक भवन तत्काल तैयार हो जाता है। उसके लिए हमें ईंट, चूना या लोहे-लक्कड़ की सामग्री नहीं लानी पड़ती। यदि तुम यहाँ के एक भी मकान को देख लो, तो पुलकित हो उठोगे! तुम्हें सब वस्तुएँ उसमें पृथ्वी के मकान जैसी ही मिलेंगी। इस प्रकार यह असंभव कार्य भी केवल मन की शक्ति-द्वारा ही सम्पन्न हो जाता है।

पृथ्वी पर तुम जिन लता वृक्ष एवं नदी-पर्वत या भवन-अट्टालिकादि को देखते हो, वे सब यहाँ केवल मानसिक शक्ति से तैयार हो जाते हैं। पृथ्वी पर तुम पहले से उस वस्तु का कल्पित मानचित्र बनाकर ही उसके लिए सामग्री जुटाते और तब उसको तैयार करते हो। क्योंकि वहाँ सब वस्तुएँ स्थूलरूप में हैं। अतएव तुम उन्हें काट छाँट कर इच्छानुसार सब कुछ निर्माण कर सकते हो। किंतु यहाँ स्थूल वस्तु कैसे मिल सकती है? क्योंकि परलोक तो सूक्ष्म वस्तुओं का देश है। हम भी सूक्ष्म देहधारी हैं; अतएव हमारी सभी वस्तुएँ भी सूक्ष्म पदार्थों से बनी हुई हैं। हमारे शरीर में हाड़-मांस-रक्त आदि स्थूल वस्तु कुछ भी नहीं है। केवल वायु, आकाश, और ईथर से बनी हुई ही सब वस्तुएँ हैं। अथवा यों कहना ठीक होगा कि वे केवल 'गैस' के समान हलकी सामग्री से निर्मित हुई हैं। अतएव मन अपनी 'अभिज्ञता' के अनुसार सब वस्तुएँ निर्माण कर लेता है।

उस अभिज्ञता के बल पर ही वह (मन) अनायास यहाँ मानसिक भवन तैयार कर लेता है। यहाँ प्रश्न हो सकता है कि वह भवन वास्तविक हो सकता है या नहीं? किंतु 'वास्तविक' शब्द ही तुलनात्मक है। क्योंकि तुम्हारे लिए जो वास्तविक (Real) है, वही हमारे लिए अवास्तविक (Unreal) है। जैसे तुम्हारे हिसाब से पृथ्वी (Real) वास्तविक है, जब कि हम उसे अवास्तविक ही मानते हैं, वह क्षणभंगुर ही है। क्योंकि हमारे देश (लोक) में नाशमान तत्व कुछ भी नहीं है। यहाँ मृत्यु, क्षय अथवा ध्वंस का नाम तक नहीं है। इसी लिए तुम्हारी दृष्टि से तुम्हारे भवन वास्तविक (Real) हैं और हमारी दृष्टि से हमारे। किंतु इस पर से यह नहीं समझ लेना चाहिए कि यहाँ के भवन किन्हीं भारी पत्थरों या ईंट लोहे से बनाये जाते होंगे! क्योंकि वैसे भवनों को खड़े रखने के लिए यहाँ आधार (भूमि) ही क्या हो सकता है? यहाँ तो हम ईथर के समुद्र अथवा वायु और आकाश तत्व में विचरते हैं। अतएव हमारे भवन भी मानसिक-कल्पना द्वारा निर्मित हैं। किन्तु हम उन्हें जब चाहें बना लेते हों और जब चाहें तभी भग्न कर सकते हों, ऐसी बात नहीं है। वरन् जब तक हमारी इच्छा हो, तब तक वह बना रहता है। इसके बाद जब उसकी आवश्यकता नहीं रहती; तभी वह अंतर्हित हो जाता है। अर्थात् जिस प्रकार चित्रवत् वह बनता है उसी प्रकार वह अंतर्हित भी हो जाता है। मन की उस धारणा शक्ति को तुम्हारे लिए समझ सकना अत्यंत कठिन है। क्योंकि यदि तुम गंभीरता से विचार करोगे तो ज्ञात होगा कि तुम्हारी पृथ्वी पर आधा भाग मन का है और आधा भाग वस्तु (Matter) का है। किस प्रकार? सो देखिये। तुम किसी वृक्ष या पौधे को देख कर उसे सम्पूर्ण रूप से (Real) वस्तु मानते हो। किंतु यह विचार नहीं करते कि तुम्हारे मन ने उसे वृक्ष या पौधा मान लिया है, इसीलिए तुम उसे उस रूप में देखते हो। किन्तु यदि उससे तुम अपने मन को हटा कर देखोगे तो तुम्हें पता नहीं लगेगा कि वह वृक्ष या पौधा है अथवा नहीं। अर्थात् जिस प्रकार मन के द्वारा तुम्हारे सब काम होते हैं, वैसे ही हमारे भी होते हैं। पृथ्वी पर जिन लोगों को उन्माद हो जाता है, उनका मन वास्तविक दशा में नहीं होता। अर्थात् स्वस्थ मन से तुम जो कुछ देखते हो, उन्मत्त मन में या शिथिल मन के द्वारा वह सब नहीं दिखाई

देगा। अतएव पागल आदमी जो कुछ देखता या बोलता है उस पर तुम हँसने लगते हो! इसीलिए पहले मन की शक्ति को भलीभाँति समझो। यदि हम मन को छोड़ दें तो हमारे लिए कुछ भी शेष नहीं रहता; क्योंकि मन ही हमारा सर्वस्व है। वैसे ही यदि विचार किया जाय तो तुम्हारे लिए भी मन ही सब कुछ है। अंतर केवल इतना ही है कि हमारा मन जितना दूर-प्रसारी है उतना तुम्हारा नहीं, क्योंकि तुम्हारे मन के मार्ग में अनेक बाधाएँ हैं; जबकि हमारा मन सर्वथा बाधामुक्त है और इसीलिए हमारा मन विशेष शक्तिशाली है। इसी प्रकार तुम्हारे मन का द्वितीय भाग है 'अवचेतन मन'; जिसका कोई अस्तित्व नहीं है। यहाँ तो उन दोनों ही भागों को मिलाकर बना हुआ हमारा मन है। इसीलिए वह असीम क्षमताशाली है।

किंतु इस पर से तुम यह प्रश्न कर सकते हो कि इतना शक्तिशाली मन होते हुए भी हम (आत्मिक) अपना नाम धाम आदि परिचय क्यों ठीक से नहीं दे पाते? इसका कारण तुम नहीं जानते। यद्यपि स्मरणशक्ति तो पृथ्वी पर से चलने के पूर्व जैसी थी उसी को लेकर हम यहाँ (परलोक) में आये हैं। किंतु जैसे यदि किसी प्रकार का आघात लगने से किसी की मृत्यु हुई हो तो उसके फलस्वरूप उसका स्नायुकेन्द्र छिन्न-भिन्न हो जाता है। जैसे कि तुम्हारे (मूल लेखक श्री राजेन्द्रलाल आचार्य के) पुत्र रंजन का हुआ है। अर्थात् जापानी कमान का बम् गोला उसके एकदम पास में ही मिकतिला में फूटा और उसमें से भीषण लोहे की किर्चें निकल पड़ीं। उन्हीं में से एक रंजन के पेट में घुसने से वह बुरी तरह घायल हो गया और उसका शरीर काँपने लगा। उसे तुरंत फौजी अस्पताल में ले जाया गया। उसीके मुँह से सुना था कि, उस आघात से बचाने के लिए उसकी शिराओं में नवीन रक्त पहुँचाने तक डॉक्टर ने प्रयत्न किया। किंतु रंजन नहीं बचाया जा सका। यह सब उसने स्वयं हमारे पास उपस्थित होकर अपने मन की भाषा में सुनाया है। अर्थात् इस प्रकार उसका स्नायु-केन्द्र विध्वस्त हो जाने से उसकी स्मृतिशक्ति भी दुर्बल हो गई। अतएव प्रारंभ में वह किसी भी बात को भलीभाँति नहीं सोच सकता था। किंतु जब धीरे धीरे उसकी स्मरणशक्ति लौटी, तब उसका मन क्रमशः बलवान होता चला। और आज तो वह विशेष रूप से कार्यक्षम बन गया है।

सारांश, इस प्रकार जिसकी स्मरणशक्ति नष्ट हो जाती है, वह यदि उसी दशा में यहाँ आता है तो उसे कोई भी बात याद नहीं रहती और यहाँ वह कुछ भी नहीं बता सकता। अवश्य ही वे सब बातें पृथ्वी पर के जीवन की होती हैं। किंतु यहाँ आकर वह जो कुछ जानता है उसे तो भलीभाँति सुना सकता है। अर्थात् वह अपना अतीत भूल जाता है। उसका वर्त्तमान जाग्रत हो जाता है। इसीलिए वह अपना नाम भूल जाय तो आश्चर्य ही क्या!

इस पर यदि पृथ्वी (भूतल) के मानव इसे असंभव बतलाना चाहें तो उन्हें हम यही सलाह देंगे कि वे किसी जीवतत्त्वज्ञ से स्नायविक विधान को भलीभाँति समझ लें। उन्हें हमारे कथन की यथार्थता ज्ञात हो सकती है। यदि वे ऐसा नहीं करते, तो ऐसे सत्य-व्यापार को जिसका कि विश्लेषण वे नहीं कर सकते उसे अविश्वसनीय बताना किसी भी बुद्धिमान मनुष्य के लिए उचित नहीं कहा जा सकता। क्योंकि विज्ञान को छोड़कर इस जगत् में घड़ी भर भी काम नहीं चल सकता। उसी प्रकार तुम्हारी पृथ्वी पर भी विज्ञान को छोड़कर जीवन की रक्षा नहीं की जा सकती। अतएव प्रेततत्त्व को उपेक्षा में न उड़ा देकर विज्ञान की सहायता से उसे समझने का प्रयत्न करना चाहिए।

जैसा कि हमने पहले बताया है यहाँ हमारा मन ही घर-द्वार निर्माण करता है; और जब

अनेक आत्मिकों का आवाहन कर उनसे पूछा जाता है, तो उनमें से कोई अपना घर काठ का बना हुआ बताता है और कोई पत्थर का। इसका कारण भी यही है कि जो अभी अभी यहाँ (परलोक में) आये हैं, उनमें कोई पृथ्वी पर काष्ठ-निर्मित गृहों में रहते थे और कोई ईंट पत्थर के मकानों में, अतएव वे अपनी उसी स्मृति को लेकर यहाँ आने के कारण, यहाँ भी वे वैसे ही मकानों में रहने की बात कहते हैं। क्योंकि उनका मन वैसे ही मकानों की भावना का अभ्यस्त होता है।

इसी प्रकार पृथ्वी पर से जो लोग अपने मन पर जिस प्रकार की छाप लेकर आते हैं, वे यहाँ आकर, उसी का गीत गाते हैं, ठीक ग्रामोफोन के रेकार्ड की तरह। अतएव यदि वह छाप अस्पष्ट हो या उस पर दूसरी कोई छाप लग गई हो अथवा कोई आवरण आ गया हो तो वह गान भी अस्पष्ट या बेसुरा हो जायगा अथवा बिलकुल ही नहीं सुनाई देगा। अर्थात् यदि मन पर पड़ी हुई छाप स्पष्ट हो तो वह व्यक्ति यहाँ आकर कुछ समय तक अपने पूर्व जीवन की अनेक बातें भलीभाँति सुनाता है। किंतु जहाँ ऐसे लोग नहीं होते अर्थात् जिनके मन पर पड़ी हुई छाप मिट जाती या धुँधली पड़ जाती है, वे अपने स्त्री-पुत्रादि के नाम तो दूर की बात, खुद अपना नाम तक भूल जाते हैं।

मान लीजिए कि कोई व्यक्ति पाँच वर्ष पूर्व परलोक में आया है और उन पाँच वर्षों तक उसके कान पर अर्थात् उसके मन के सामने किसी ने उसके आत्मीय स्वजन का नाम नहीं लिया हो, तो वह निश्चय ही उसे भूल जायगा।

इसी प्रकार मृत्यु के पश्चात् वैतरणी पार करने पर प्रायः थक जाने से आत्मिक को नींद आ जाती है। और वह नींद कब टूटेगी, यह भी कोई नहीं जानता। क्योंकि ऐसा भी देखा गया है कि किसी किसी की नींद ५०।६० वर्षों तक भी चलती है। जो भी हो। इस प्रकार की नं[illegible] निद्रा के कारण वह यदि अनेक बातें भूल जाय तो क्या आश्चर्य? किंतु नींद से जागने [illegible] वह अपने आपको एक नये जगत् में पाता [illegible] फिर भी वहाँ के दृश्य-व्यापार अधिकांश भूल[illegible] जैसे ही होते हुए भी वहाँ के विधि-विधा[illegible] आवागमन आदि वह सर्वथा विभिन्न देखता [illegible]

अतएव वह उस नवीन परिवेश के स[illegible] अपने मन को लगाता है और ऐसी दशा में [illegible] धीरे पुरातन को उसका मन स्वभावतः भूल [illegible] है। अर्थात् उसके मन पर यद्यपि सर्वत्र पूर्ण[illegible] से उस नूतन परिवेश का अधिकार नहीं [illegible] जाता, फिर भी वहाँ अवचेतन मन [illegible] अस्तित्व न होने से पुरानी बातों को याद र[illegible] के लिए मन में कोई साधन नहीं रह जाता।

(३)

परलोक में जीवन-क्रम

परलोक में आत्मिक का मन पृथ्वी से [illegible] अभिज्ञता को लेकर आता है, उसी के आधा[illegible] पर वह यहाँ घर-द्वार निर्माण करता है। अर्था[illegible] मन पर पड़ी हुई छाप के अनुसार वह गृहा[illegible] निर्माण कर लेता है। किन्तु वे घर-द्वार [illegible] काल पर्यन्त कैसे टिक सकते हैं? केवल मन क[illegible] प्रबल शक्ति के द्वारा ही यह सम्भव है। हम [illegible] परलोक में केवल खाते-पीते और सोते नहीं [illegible] और न दिन-रात केवल जप या ध्यान ही कर[illegible] रहते हैं। बल्कि हमारा कार्यक्रम इतना उच्च[illegible] है कि तुम लोग उसकी कल्पना तक नहीं क[illegible] सकते। हमारे एक दिन का कार्य तुम्हारे [illegible] महीने के कार्य के बराबर होता है। और [illegible] इसीलिए संभव है कि हमारा आवागमन मन [illegible] द्वारा होने से पहले तो समय की बचत हो जा[illegible] है। दूसरे हम मन को पूर्ण रूप से एकाग्र क[illegible] करते हैं; अतएव उस समय अन्य किसी [illegible] का विचार ही नहीं उत्पन्न होता। इस[illegible] नाम है कर्म में एकाग्रता। तुम भी [illegible] प्रकार एकाग्र होकर पृथ्वी पर काम करो [illegible]

तो इस कथन की यथार्थता का अनुभव कर सकते हो। किन्तु ऐसा न करके तुम मन का थोड़ा सा अंश ही काम में लगाते हो और शेष अंश अनेक प्रकार के विचारों में उलझाये रखते हो। इसी लिए तुम्हारे कार्यों में इतनी भूलें होती हैं। तुम बातें बहुत करते हो, काम बहुत कम। इसलिए तुम इससे उलटा अभ्यास करो। अर्थात् बातें कम करो और काम अधिक करो। व्यर्थ बातों में शक्ति नष्ट कर देने पर तुम कार्य किसके द्वारा कर सकोगे? इसके लिए तुमको प्रतिज्ञा करनी चाहिए। किन्तु प्रतिज्ञा करके पालन करने में बाधाएँ अनेक आती हैं। और उनको दूर करने की शक्ति तुममें तभी आ सकती है, जब कि तुम सोलह आना मन लगाकर काम करने लगोगे।

हम लोग केवल काम ही करते हैं, बातें नहीं करते। इसीलिए जब हमारा मन किसी काम को हाथ में लेता है तो उसे सर्वाङ्ग रूपेण समाप्त किये बिना नहीं छोड़ता। तुम्हारे और हमारे मन में यही अन्तर है। अतः तुम लोग एकाग्र मन से सब काम करो।

हम यहाँ जो कुछ काम करते हैं, वह अपनी किसी सुविधा के लिए नहीं, वरन् सहस्रों आत्माओं के उपकार या हित के लिए ही करते हैं। अर्थात् समस्त परलोकवासी आत्माओं के कल्याण की साधना और उनका हित-चिन्तन ही हमारा कार्य है। इस कार्य में हमें किसी प्रकार की बाधाओं का भी सामना नहीं करना पड़ता। क्योंकि हमें भूख, प्यास या कामना-वासना से कोई प्रयोजन नहीं रहता। केवल समस्त आत्माओं के कल्याण की आकांक्षा ही हमें रहती है। इसी प्रकार परलोक में हमें अर्थ मान, यश या उपाधि प्राप्त करने की भी चिन्ता नहीं और न आहार-विहार के लिए ही कोई आयोजन करना पड़ता है। क्योंकि हम केवल इच्छा करने से ही खाते-पीते या चल-फिर सकते हैं। साथ ही इच्छा करने पर हम अपने समस्त प्रयोजन भी सिद्ध कर सकते हैं। किन्तु यह सब कैसे होता है, उस रहस्य को प्रकट करने का हमें अधिकार नहीं है। सारांश, परलोक में इस प्रकार सभी सुविधाएँ प्राप्त रहने के कारण ही हमारा मन एकाग्र होकर कार्यरत रहता है।

फलतः इस प्रकार की एकाग्रता के साथ जब मन घर-द्वार निर्माण करता है, और स्थिर बनाये रखता है; तब वहाँ ऐसी कोई बाधा या शक्ति नहीं है जो कि उन घर-द्वार को जरा भी इधर-उधर कर सके या तोड़-फोड़ सके। इसी कारण हमारे घर-द्वार, महान स्थिर रहते हैं, पर्दे पर के चित्र की तरह अंतर्हित नहीं हो जाते। हम कहीं भी क्यों न जायँ, और किसी भी कार्य में क्यों न प्रवृत्त हों, किन्तु मन की शक्ति के कारण हमारे भवनादि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता और हम अपने कार्य से लौट कर उस घर में प्रवेश करके यथेष्ट विश्राम कर सकते हैं।

जब तुम लोग परिश्रम करते हो तो जितना शरीर थक जाता है; उतना मन नहीं; किन्तु यहाँ उससे ठीक उलटा क्रम है। यहाँ शरीर नहीं थकता, जो कुछ क्लांति होती है वह केवल मन को ही। उसे हम कुछ देर विश्राम या निद्रा लेकर दूर कर सकते हैं। और वह थकावट अधिक देर तक न रहने के कारण ही हमारा मन सदैव ताजा रहता है। उसकी कर्म प्रवणता किसी प्रकार भी कम नहीं हो पाती।

तुम कहोगे कि परलोक में दिन रात नहीं होते, तब सोते किस समय हो? क्योंकि दिन रात तीव्र प्रकाश रहने पर विश्राम कैसे कर सकते होगे? किन्तु ऐसी बात नहीं। क्योंकि हमारे यहाँ चन्द्र, सूर्य, ग्रह-नक्षत्रादि नहीं हैं, अर्थात् हम उनसे बहुत ऊपर हैं। किम्बहुना हम उस लोक के जीव हैं जहाँ—'न तत्र सूर्योभाति ने मा चन्द्रःकुतोऽयमग्निः' इत्यादि। इसी लिए सूर्य-चन्द्र एवं ग्रह-नक्षत्रादि के प्रकाश पैरों के नीचे ही रह जाते हैं। फिर भी यह सब समझ लेना कि हमारे यहाँ आकाश नहीं है। आकाश

भी है, और वह परम उज्ज्वल है। किन्तु वह तुम्हारे आकाश जैसा नीला नहीं और न वर्षा या बादल से मेघाच्छन्न ही है। न वह कुहरे या सर्दी-गर्मी से युक्त अथवा वासंती पूर्णिमा के आलोक से उज्ज्वल ही है। इसीलिए उसके कृष्णवर्ण होने की कल्पना मत कर लेना। क्योंकि वह एक ऐसे स्वर्गीय आलोक से सदैव उद्भासित रहता है, जिसमें दीप्ति है, किन्तु दाह नहीं। वह प्रकाश कहाँ से आता, इसे हम नहीं बतला सकते। किंतु वह अत्यन्त स्निग्ध और उज्ज्वल है। उससे हमारे नेत्रों को कष्ट नहीं होता। हमारी दृष्टि भी तुम्हारी तरह नहीं है। इसीलिए जहाँ जितना अधिक अन्धकार होता है, वहाँ हम उतनी ही सुगमता से देख सकते हैं। विशेष प्रकाश होने पर कुछ नहीं देख सकते।

जब हमारा मन निरन्तर कार्यरत रहने से थक जाता है, और विश्राम के लिए हम घर आते हैं, तब आकाश की दीप्ति कुछ कम हो जाती है। उसी को हम रात्रि कहते हैं। हमारी रात्रि सर्वदा ज्योत्स्नामयी होती है। हमारे यहाँ अमावास्या का अन्धकार नहीं है। उसे तो हम चोर-डाकुओं के लिए पृथ्वी पर ही छोड़ आये हैं।

उस मृदु आलोक में हम अपने घर में विश्राम करते हैं। किंतु हमारी नींद भी तुम्हारी तरह नहीं होती। वरन् उस नींद में थोड़ी देर के लिए आँखें मूँदकर मन को छुट्टी दे दी जाती है। वह समय कितना कम होता है, इसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। क्योंकि मन यथार्थ में कोई स्थूल पदार्थ नहीं है, हड्देही वस्तु नहीं है। इसी कारण कार्य-लिप्त रहने से उसमें कोई क्षय-क्षति नहीं हो पाती। जिस प्रकार पत्थर को घिसते रहने से वह क्षीण हो जाता है, वैसा हमारा मन नहीं है। वह कैसे ही कठिन कार्य में क्यों न प्रवृत्त रहे, उसकी शक्ति जरा भी क्षीण नहीं होती। इसीलिए कुछ क्षण विश्राम करने से काम चल जाता है। वह तो दिन रात काम ही करते रहना चाहता है। यहाँ हमारे लिए न कोई भोजन देने वाला है और न शय्या ही बिछाने वाला और न आने जाने के लिए कोई रथ-वाहनादि ही यहाँ हैं। अर्थात् मन को ही ये सब काम करने पड़ते हैं और इसीलिए उसके विश्राम का समय बहुत ही कम होता है।

यहाँ शय्या निर्माण करने में मन को जितना श्रम करना पड़ता है, वह थोड़ी देर के विश्राम की दृष्टि से बहुत अधिक होने के कारण अधिकांश आत्मिक उस निरर्थक श्रम के द्वारा अपनी मानसिक शक्ति को क्षीण करना नहीं चाहते। इसीलिए जिसे तुम भूमि पर लेटना कहते हो, वही हम यहाँ करते हैं। किन्तु न तो यहाँ धूली मिट्टी है और न कठोर पत्थर। वरन् यहाँ है मरुत, व्योम और उसमें विचरणशील [illegible] के बिन्दु। इसीलिए उस पर लेटने से हमारे दिन परमानन्द में व्यतीत होते हैं। इसीलिए हमारा मन सदैव स्फूर्ति-युक्त रहता है। और कार्यक्षम रखने के लिए उसे ताजा रखना ही आवश्यक होता है। जैसे कि घास को ताजा रखने के लिए प्रयत्न करना पड़ता है। जहाँ संयम का अभाव होता है वहीं अपचय होता है। तुम्हारे यहाँ संयमहीनता के फलस्वरूप शरीर की ही तरह मन का भी अपचय होता है। किन्तु यहाँ हमारा शरीर सूक्ष्मतत्त्वों से निर्मित होने के कारण उस पर तो असंयम का कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता, किन्तु मन का अनेक रूप में अपचय होता है। इस पर तुम यह जानना चाहोगे कि परलोक में संयमहीनता क्योंकर संभव है? किन्तु इस विषय में अधिक स्पष्टता से हम कुछ भी नहीं कह सकते। फिर भी संयमहीनता के लिए यहाँ भी पर्याप्त अवकाश है। अर्थात् वह संयमहीनता होती है पृथ्वी पर [illegible] की अभिलाषा के रूप में। वहाँ जो मद्यपान करनेवाले थे, वे यहाँ मदिरा खोजते हैं, कामुक लोग कामिनी खोजते हैं। इसी प्रकार जो पेटार्थी हैं, वे यहाँ [illegible]

खाद्य-पेय खोजते हैं। किन्तु ये सब वस्तुएँ यहाँ नहीं मिलतीं। यहाँ तो मन के लाये हुए लता के रस या उसके फल को पाकर ही हम प्रसन्न हो जाते हैं। मन के फल देने पर हम उसे खाते और रस देने पर उसे पीते हैं। क्योंकि यहाँ पृथ्वी पर के आम-अमरूद या नारियल के वृक्षादि नहीं हैं। जब हम दूध पीने की इच्छा करते हैं तो हमारा मन उक्तलता-रस को दूध के रङ्ग और स्वाद से युक्त बना देता है। इसी से यहाँ संयम हीनता की कोई सामग्री नहीं मिल पाती। ऐसी दशा में जो लोग इन सब को खोजते हैं, वे परित्यक्त पृथ्वी की ओर चल देते हैं। और वहाँ वे मदिरालय एवं कामिनी की खोज तथा पेटार्थी भोजपदार्थों के लिए भटकते फिरते हैं। यद्यपि उनके पास उस उपभोग का कोई अवयव नहीं होता, फिर भी भोग की वासना प्रबल होने से वे दूसरों को उपभोग करते देखकर प्रसन्न होते हैं। कभी कभी दूसरो के मन पर अधिकार करके उसके द्वारा भोग भी करते और अपनी तृप्ति कर लेते हैं। अर्थात् इस रूप में उनकी संयमहीनता की चरमसीमा हो जाती है। इस प्रकार सयमहीनता करनेवालों के मन की शक्ति क्षीण हो जाती है।

यहाँ शासन की ऐसी व्यवस्था है कि सहज ही कोई पृथ्वी पर जाकर संयमहीन नहीं हो सकता। पकड़ा जाने पर दंड पाता है। इसी से दंड भय के कारण अधिकतर आत्मिक उधर नहीं जाते। और अनायास उन्हें संयमी बनना पड़ता है। अंततः अधिकांश जीव असंयमी नहीं हो पाते। उन्हें सर्वदा विविध प्रकार के उपदेश दिये जाते हैं। मन की शक्ति बढ़ाने और चरित्र बल का विकास करने के उपायों की ही वहाँ चर्चा होती है। और सब को उसमें सम्मिलित होना पड़ता है, कोई उससे अलग नहीं रह सकता।

इस पर तुम पूछ सकते हो कि करोड़ों व्यक्ति होने पर उन्हें कौन पकड़ सकता होगा? किन्तु यहाँ हजारों ही नहीं लाखों शिक्षक हैं और प्रत्येक के अधीन २०-२५ से अधिक प्राणी नहीं होते। वे ही असंयमी को दंड देते हैं। उन पर भी उच्चस्तर के आत्मिक होते हैं जो देख रेख करते हैं। इस प्रकार कठोर व्यवस्था रहने से कोई उच्छृङ्खल नहीं हो पाता।

प्रत्येक आत्मिक के चतुर्दिक एक तेजोवलय (प्रकाशचक्र Aura) होता है। इसे तुम प्रायः देवी-देवताओं के चित्रों में देख सकते हो। किन्तु यह चक्र सबके आसपास होता है, और हमारे मानसिक चक्षु इतने तीक्ष्ण होते हैं कि उस छटा को हम सहज ही देख सकते हैं। वह छटा शरीर के चारों ओर फुट-डेढ़ फुट तक फैली हुई रहती है। तुम्हें अतीन्द्रिय चक्षु प्राप्त न होने से उसे तुम नहीं देख सकते। इसी प्रकार खाद्या-खाद्य का भी तुम लोग विशेष विचार नहीं रखते और संयम का भी तुम्हारे यहाँ विशेष ध्यान नहीं रखा जाता। इसी से तुम उस छटा को नहीं देख सकते और बहुत छोटे बालकों में कोई कोई जो उसे देख सकता है, वह वाणी द्वारा उसे प्रकट नहीं कर सकता। वह प्रकाशचक्र ही प्रकट कर देता है कि किसके मन में क्या भाव उदय हुआ है। अर्थात् मन पर से उसके चरित्र का भी ज्ञान हो जाता है। इसीलिए उस तेजोवलय को देखते ही हम जान लेते हैं कि वह किधर जा रहा है। मन के परिवर्तन के ही साथ साथ उस छटा में भी परिवर्तन होता रहता है। अतएव पृथ्वी पर रहते हुए जो लोग मौज लूट कर यहाँ आते हैं, वे धोखा देकर यहाँ साधु नहीं बन सकते। फलतः अपने अपने संरक्षकों द्वारा वे अनायास ही पकड़ लिये जाते हैं। और पकड़े जाने पर दंड पाना भी अनिवार्य है; किंतु उसका विवेचन हम नहीं कर सकते। यही समझ लेना चाहिए कि यहाँ दंड-व्यवस्था है और उसे भोगना पड़ता है। इसीलिए यहाँ मन को निरंतर कार्यशील रखना पड़ता है, जिससे कि वह असंयमी न बन सके।

इसी प्रकार मन की हम इस्पात की छुरी से भी तुलना कर सकते हैं। जैसे थोड़े से प्रयत्न से छुरी की धार तेज की जा सकती है, उसी प्रकार मन को भी तेज-तीक्ष्ण बना सकते हैं। वही काम हमें यहाँ करना पड़ता है। जिस प्रकार पृथ्वी पर जितने भी भले मनुष्य हैं, उनको भी खोजने करने पर तुम अनेक प्रकार से मन को प्रखर (तीक्ष्ण-शुद्ध) करते हुए देखोगे। भगवान् रामकृष्ण का नाम तो सुना ही होगा। उन्होंने कहा है कि सोने की घड़ी को भी परिष्कृत न करने पर उसमें मैल जम ही जाता है। मन भी सोने की घड़ी जैसा ही है। उसे भी सदैव स्वच्छ रखना पड़ता है। यहाँ वह क्रिया सतत होती रहने से ही हमारे मन पर मैल नहीं जमने पाता।

हम नेत्र वाले तो हैं, किंतु तुम्हारी तरह केवल दो ही चक्षु नहीं, वरन् इन्द्र की तरह हमारा समग्र शरीर ही चाक्षुष्मान है। फिर भी यह मत समझ लेना कि हमारे शरीर में सर्वत्र ही नेत्र बने हुए हैं। वे नेत्र तो हम पृथ्वी पर ही छोड़ आये हैं। उन्हें तो तुमने हमारे शरीर के साथ ही भस्म कर दिया है। फिर भी हम अनेक योजन दूर की वस्तु सहज ही देख सकते हैं। क्योंकि हमारे सारे शरीर में ही देख सकने की शक्ति विद्यमान है। उसे हम मन की सहायता से काम में लाते हैं। जिस प्रकार कि तुम लोग जिह्वा द्वारा खट्टे मीठे स्वाद चखते हो। शरीर में इंद्रियाँ यंत्र की तरह हैं। किंतु यह सब व्यापार तो पृथ्वी पर चलता है। हमारी समस्त इन्द्रियशक्ति का प्रयोग केवल मन के द्वारा ही होता है। इसीलिए मन ही यहाँ सब कुछ देखता है। मन ही सुनता और सर्दी-गर्मी अनुभव करता है। पृथ्वी पर भी यह शक्ति उसमें विद्यमान थी और यहाँ भी उसकी अभिज्ञता है। हर्ष शोक, हास्य-रुदन आदि सभी मन के धर्म होने से उनकी अनुभूति यहाँ भी होती है। पृथ्वी पर मन के जो धर्म थे, वे सभी यहाँ भी विद्यमान हैं। अंतर केवल इतना ही है कि वहाँ वे कुछ कुंठित (भोंडे) थे, यहाँ वे अधिक तीव्र हो गये हैं।

जिनके मन अतिशय तीव्र शक्तिशाली होते हैं वे 'दूरदर्शन' की शक्ति प्राप्त कर इंग्लैंड अमेरिका ही नहीं संसार भर की बातें अनायास बतला सकते हैं। यह शक्ति ऋषि मुनियों को प्राप्त थी और आज भी किसी किसी को यह देखने में आती है। किंतु यहाँ (परलोक में) अनेक प्राणियों को यह सुलभ है। जो लोग सतत मन को शुद्ध करते रहते हैं उनमें यह शक्ति बढ़ती रहती है। तुम लोग तो इस व्यापार को देखकर चकित हो जाओगे। कुछ लोग इसे अचेतन मन की शक्ति मानते हैं; किंतु यह 'दूर दर्शन' रूपी विशेष शक्ति ही है, यहाँ योगी बन जाने पर यह शक्ति प्राप्त हो सकती है अथवा परलोक में आने पर जब तुम्हारा मन तीक्ष्ण से तीक्ष्णतर बन जायगा, तब तुममें भी यह शक्ति उत्पन्न हो जायगी।

हम यह सब जो कुछ बतला रहे हैं; यह मुँह से बोलकर नहीं; क्योंकि यह शक्ति हमें प्राप्त नहीं। अर्थात् हमारी अत्यंत हलकी जिह्वा तुम्हारी स्थूल वायु में शब्दों का भार नहीं उठा सकती। अतएव हम केवल मन के ही द्वारा यह सब लिखवाते हैं। हमारे विचारों का स्रोत चित्र की तरह मन पर अंकित होता है उसे हम चित्रलेखन कहते हैं। उस चित्र को हमारा मन अपनी शक्ति-द्वारा लेखक के मन और अँगुली पर प्रभाव डालकर उसे शब्दों में व्यक्त करता है। यदि वह कुशल-लेखक न हुआ तो बीच में उसे रुकना भी पड़ता है। किंतु दक्ष होने पर तो वह हमारी भावना के साथ साथ तीव्र गति से लिखता चला जाता है। जब तक तुम यह सब अपनी आँखों से नहीं देख लोगे, तब तक तुम्हें इस कथन पर विश्वास ही नहीं होगा। किंतु बंगाल में यह एक नया प्रयोग-स्वैर लेखन (Auto-writing) के रूप

में आरंभ हुआ है; जिसे हम गुरुकृपा का ही प्रसाद कह सकते है। क्योंकि वे इस प्रकार परलोक-विषयक यथार्थ-ज्ञान का भूलोक-वासियों में प्रचार कराना चाहते हैं। अपनी प्रबल इच्छा-शक्ति द्वारा वे अविरामगति से लेखक में इस शक्ति का संचार कर रहे हैं। इसीलिए लेखक बिना भूल भ्रांति के यथावत् उन भावों को प्रकट कर सकता है। यह सब हमारी इच्छा-शक्ति का परिचायक है—मानसिक बल का सूचक है।

मानव-स्वभाव कैसे बदले ?

प्रो० रामचरण महेन्द्र, एम० ए०

क्या मानव-स्वभाव परिवर्तित हो सकता है ? कई महानुभाव कह उठते हैं, "क्या बताएँ हमारा तो क्रोध का स्वभाव है, हमें जल्दी ही गुस्सा आ जाता है। हम उत्तेजना को रोक नहीं पाते। लड़ बैठते हैं। हमारी किसी से नहीं बनती।" कुछ व्यक्ति दूसरों की टीका-टिप्पणी करने, दोष निकालने, पीठ पीछे बुराई करने में बड़ा आनन्द लेते हैं। वे जानते हैं कि यह उनके स्वभाव का दोष है पर बेचारे स्वभाव से मजबूर हैं।

मानव-स्वभाव को बदला जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति यदि अभ्यास करे, तो वह अपनी पुरानी गन्दी आदतें छोड़ कर अच्छी आध्यात्मिक आदतें धारण कर सकता है। प्रेम, सहानुभूति, मैत्री भाव, इत्यादि प्रत्येक आदत का विकास निरन्तर अभ्यास से होता है।

आदतें हमारा स्वभाव निर्माण करती हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रत्येक आदत एक मानसिक मार्ग है। पुनः पुनः एक कार्य को दोहराने से एक विशेष प्रकार की आदत का निर्माण होता है। प्रत्येक गन्दी आदत का विरोधी शुभ भाव बढ़ाने का अभ्यास करें। इस नवीन आदत को दृढ़ संकल्प से बढ़ाते रहें। जो न्यूनताएँ या असभ्यताएँ आपके चरित्र में आ गई हैं, उन्हें निकालने के लिए उनकी विरोधी शिष्टताओं को धारण कर प्रत्येक व्यक्ति नये व्यक्तित्व का निर्माण कर सकता है।

अशिष्ट आदतों की मानसिक जड़ें बचपन के दूषित कुसंस्कार हैं, जिन्हें बच्चे घर से, मुहल्ले के गन्दे बच्चों तथा स्कूल से सीखते हैं। ये अन्तर्मन में प्रविष्ट होकर जटिल ग्रन्थियाँ बन जाती हैं।

इसके विपरीत जो शिष्टता की आदतें हमारे बचपन में बरबश अन्तर्मन में प्रविष्ट करा दी जाती हैं, वे हमारे आकर्षण का विषय बन जाती हैं। छोटे बच्चों का शिष्टाचार सम्बन्धी शिक्षा न देने के कारण उनका उच्च सोसाइटी में प्रविष्ट होना कठिन हो जाता है। बच्चे निरन्तर हमारा अनुकरण किया करते हैं।

यदि हम अपने बच्चों को शिष्ट, सभ्य, आकर्षक, सुन्दर और उत्तरदायित्वपूर्ण नागरिक बनाना चाहते हैं तो यह आवश्यक है कि हम स्वयं उनके सन्मुख शिष्ट व्यवहार का ऐसा नमूना प्रस्तुत करें जिसका अनुकरण उन्हें जीवन में उत्साह और प्रेरणा प्रदान कर सके। जो माँ बाप स्वयं व्यवहार में ढीले ढाले हैं, प्रातःकाल शय्या त्यागने, दन्तमंजन, स्नान, पूजापाठ, या वस्त्र धारण तथा उन्हें यथास्थान रखने में नियमों का पालन नहीं करते, उनके बच्चे, जो चौबीस घण्टों में १५-१६ घण्टे उनके साथ रहते हैं, किस प्रकार सभ्यता और शिष्टाचार का पाठ पढ़ सकते हैं ?

जैसे हम हैं, वैसा ही हमारा वातावरण भी है। सभ्य व्यक्ति की प्रत्येक वस्तु आपको

यथास्थान, साफ सुथरी, आकर्षक मिलेगी। जूतों से लेकर कमीज, कोट, टोपी या बाल काढ़ने का कंघा तक स्वच्छ रखा मिलेगा। उसके जूतों पर न मैल होगा, न कंघे में बाल लगे हुए होंगे। उसके कोट या पतलून या धोती में शिकन न मिलेगी। वह वस्त्रों की देखभाल, सम्हाल के कारण दूसरों से आधे वस्त्रों में भी आकर्षक प्रतीत होगा। कम खर्च में वह अधिक तरह के सुख प्राप्त कर सकेगा। उसे लम्बा चौड़ा बढ़िया मकान नहीं चाहिए। छोटे से मकान में, या एक कमरे का ही वह इतना उत्कृष्ट प्रयोग करेगा कि उसकी सभ्यता प्रकट हो जायगी। शिष्टाचार का अर्थ यही नहीं कि आप दूसरों के साथ कैसा व्यवहार करते हैं। स्वयं अपने साथ भी आपका व्यवहार उत्तम होना अनिवार्य है। यदि आप अपने साथ दुर्व्यवहार करते हैं, तो बड़ा पाप करते हैं।

आप पूछेंगे कि हम अपने साथ किस प्रकार दुर्व्यवहार करते हैं? इसके अनकों रूप हैं। आप जानते हैं कि ठीक समय पर उठने, व्यायाम करने, टहलने, या विश्राम करने से आपका स्वास्थ्य ठीक रहता है। किन्तु शोक! आप न तो ब्रह्म मुहूर्त में उठते हैं, न व्यायाम, टहलना या विश्राम करते हैं। आप रुपये के लोभ में दिन-रात तेली के बैल की तरह पाई पाई इकट्ठी करने में मारे मारे फिरते हैं। आपके पास पर्याप्त धन है, जिसके द्वारा आप भोजन, वस्त्र, तथा अच्छे मकान का प्रबन्ध कर सकते हैं, किन्तु आप कन्जूसी के कारण इनमें से कोई भी काम नहीं करते। यह सब अपने प्रति दुर्व्यवहार है।

अपने शरीर की बुराई की तरह जानते-बूझते आप अपने बच्चों की आदतों, या मनुष्यता से गिरे हुए व्यवहार को नहीं रोकते, या उनकी गलती पर सजा नहीं देते, तो आप अन्याय करते हैं। अपनी पत्नी की असभ्यताओं को रोकना आपका एक पुनीत कर्त्तव्य हो जाता है। परिवार के और सदस्यों की बुराइयों या अशिष्टताओं का आप शिष्ट रीतियों से परिष्कार कर सकते हैं, अपने मातहत, नौकरों, आदि को अशिष्टता से रोक कर आप समाज में अच्छाइयों के बीज बो सकते हैं। यदि ऐसा नहीं करते, तो यह आपका दुर्व्यवहार है।

आपकी दृष्टि कमजोर है, किन्तु फिर भी आप सिनेमा देखते हैं, मिर्च मसाले, खट्टी चीजों का व्यवहार करते हैं, यह अपने प्रति दुर्व्यवहार हुआ; अपने अन्दर किसी मादक द्रव्य को लेने की आदत डालकर विषपान करना आत्म-घात करने के बराबर गर्हित है।

महत्वपूर्ण निवेदन

यदि इस अंक के साथ आपका वार्षिक मूल्य समाप्त होने की सूचना आपको मिली है तो अगले वर्ष का मूल्य २॥) हमें मनीआर्डर से भेज दीजिए। अन्यथा वी० पी० से आपको ३=) देने होंगे। ग्राहक न रहना हो तो एक पोस्टकार्ड लिखकर हमें सूचित कर दें अन्यथा आपके मौन रहने से हम वी० पी० भेज देंगे और आप वापस कर देंगे तो हमें ॥) डाकखर्च नुकसान होगा। ग्राहक नम्बर अवश्य लिखिए। धन्यवाद!

योग क्या और योगी कौन है ?

श्री 'एक योगमार्गी'

वेदान्त चिन्तन करना ज्ञानयोग है। सेवा-परायणता कर्मयोग है। शरीर का सम्यक् परिचालन हठयोग है। भगवान् के गुणानुवाद करना भक्तियोग है। मन और प्राणों का प्रक्रियात्मक योग राजयोग है। शंकराचार्य ज्ञानयोगी थे। महात्मा गान्धी कर्मयोगी थे। मत्स्येन्द्रनाथ हठयोगी थे। ध्रुव प्रह्लाद भक्त योगी थे। कोई भी स्वरूप अवस्थिति में रहने वाला योगी है। कोई भी सर्वतोभावेन दूसरों का हितचिन्तक योगी है। कोई भी इन्द्रियों का स्वामी होकर रहने वाला योगी है। कोई भी प्रेम हृदय का प्रेमी योगी है। यही है योग और योगी की परिभाषा!

यह कैसा योग! जंगल में गये नहीं। फूस की कुटिया नहीं बनाई। चिलम और चिमटा भी नहीं रखे। फिर योग क्या? क्या इनके बिना भी कोई योगी हो सकता है? हाँ, इनके नितांत अभाव को ही योग कहते हैं। इनसे अलग रहने वाला ही योगी है। नहीं तो हठयोग शठ-योग का कारण बन जाय। राजयोग को राज-रोग कहने लग जायँगे। ज्ञानयोग फिर मोहन भोग हो जायगा और भक्तियोग को भुक्तियोग ही कहना पड़ेगा!

राजयोग के द्वारा प्राणों की परख और तदुपरान्त उसका नियमन करते हैं। प्राण और मन के बीच सम्बन्ध होने से मन की गति का भी रोध हो जाता है। इस धारणा नामक प्रक्रिया से चित्तवृत्ति एकाकार होती है। विक्षेप का नाश होते ही उद्देश्य की परिपूर्ति होती है। किसी न किसी प्रकार चंचल वृत्तियों को एक सूत में पिरो लेना ही महायोग है। और इसी के लिए नाना योग और नाना उपायों की नित नवीन गवेषणाएँ होती जा रही हैं। हठयोग के अभ्यासी क्या करते हैं। शरीर के एक एक तन्तु को यौगिक क्रियाओं द्वारा परि-शुद्ध कर लेते हैं और ऐसे शरीर रूप मन्दिर में मन का देवता पावन और पवित्र होकर बैठता है। ज्ञानयोग के अधिकारी मुमुक्षु को ब्रह्मनिष्ठ सन्त इतना ही उपदेश करता है कि—"वत्स, जो कुछ भी परिदृश्यमान वस्तु-जात हैं, सब चल और नश्वर हैं। इनके द्वारा शाश्वत शान्ति की आशा मत रख। उनका मलमूत्र वत् त्याग करना ही जीवन की समस्या का अन्त है। इसलिए वत्स, वैराग्य को प्राप्त कर!"—साधक का मन एकबारगी जगत् की ओर से आस्था हटाकर निश्चल और निवात दीप वत् हो जाता है। वह गुरु के कहे उपदेशों को कर सकने में सक्षम हो जाता है। और तभी से ज्ञानोदय का प्रकाश उसके हृदय मञ्च पर बिखरने लगता है। भक्तियोग साधना क्या है? एक प्रतीकोपासक अपने इष्ट में अपना सब कुछ अर्पण कर देता है। उसको यंत्री मानकर स्वयं यंत्र सा बन जाता है। अपने अस्तित्व और अहंकार को इस प्रकार न्यौछावर कर देने के परिणाम स्वरूप उसका मनोमालिन्य सर्वथा तिरोहित होता और वह 'भक्त' अपने-पन की भावना से शून्य ही हो जाता है। जग तो सियाराम मय है। यहाँ अपना कुछ नहीं। मैं तो उसके विशाल क्षेत्र का एक तृण हूँ।

रागद्वेष का अभाव योग है। बैर त्याग और मैत्री का अभ्यास योग है। सर्वात्म भावना से कृतकृत्य ज्ञानयोगी किसी से द्वेष कैसे करे! भगवान् को सर्वत्र समभाव से देखने वाला प्रेमयोगी किसी का अहित कैसे करने चलेगा! एक प्रबुद्ध राजयोगी अपने मन में बैर की भावना को कैसे अंकुरित होने देगा। और अपनी बाहुओं को बिल्कुल अपना नहीं समझने

वाला कर्मक्षेत्र का प्रहरी कर्मयोगी कैसे किसी प्राणी की पीड़ा पर तरस खाये बिना रहेगा। कोई भी योगी विश्व-बन्धुत्व की योजना में प्रमुख हाथ दिये बिना नहीं रहेगा। अतः कोई भी योग हमें कन्दरे की ओर इङ्गित नहीं करता। विश्वप्रेम के बिना योग एक कौतुक नहीं तो क्या!

एक सहानुभूतिपूर्ण हृदय का होना 'योग' है। एक सहृदय व्यक्ति 'योगी' है। एकमात्र 'हृदय' ही मनुष्य को योगी बनाता है, महापुरुष बनाता है। इलाहाबाद के पथ पर पत्थर के हृदय पर चोट पड़ते देख, उसकी वेदना को श्री निराला जी कैसे महसूस करने लग गये थे? खप्पर को एक हाथ में थामकर दूसरे हाथ से आँसू के वेग को रोकता हुआ पगडंडी पर यह जो भिक्षुक चला जा रहा है—उससे हमदर्दी के साथ बातें करने के लिए अनेक तो नहीं, कोई एक ही उत्सुक होगा। जिसे हम 'सहृदय' कह लेते हैं और यही तो 'योगी' है। भगवान् बुद्ध अपने इस 'हृदय योग' में पारंगत और आदर्श योगी थे। उदारता और समदर्शिता 'योग' है। एक उदारचेता और समदर्शी सन्त 'योगी' हैं।

नेति धौति भी क्या योग है? मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र को योग कहकर 'योग' शब्द को लांछित करना होगा। नीति और सदाचार ही योग है। सत्य और अहिंसा ही योग है। ज्ञानयोगी कहेंगे—बिना मोक्ष के जन्माभाव नहीं होता और बिना त्याग के मोक्ष नहीं होता। इसलिए सर्वस्व का त्याग ही श्रेय पथ पर चलना है। लेकिन वे समझते नहीं कि 'त्याग' का अर्थ घर परिवार का ही त्याग है क्या? घर और परिवार को प्रेम और श्रद्धा की दृष्टि से देखते हुए भी ऐसे कर्मयोगी देश और समाज में हैं, जो पानी की तरह खून को बहाकर भी कुछ बदले में पाने की इच्छा नहीं रखते। इसलिए 'कर्मफल का त्याग" ही वास्तव में 'त्याग' है। इस त्याग के अनन्तर केवल अरण्य में ही क्यों सब जगह शान्ति है। और इस शान्ति के साथ गंगा किनारे क्यों, कहीं भी मरने से मोक्ष है।

योग को व्यापक अर्थ में लेना चाहिए। एक बुभुक्षु को एक बार अन्न देना भी योग है। एक दलित की आह पर एक बार तरस खाना भी योग है। एक भूले को राह पर लगा देना भी योग है और एक-आँचल में दूध और आँखों में पानी लिये विधवा के आँसू को देखकर पिघल जाना भी योग है। और क्या? संसार एक विशाल कर्मक्षेत्र है और यहाँ भीरुता और कापौरुष को त्याग कर सतत सतर्क और धीर वीर होकर चलने वाले ही योगी हैं। सारा जीवन ही योग है। एक एक क्षण भी योग का अभ्यास है। अपने आप सन्मार्ग पर चलते हुए अनेकों को सन्मार्ग पर ले आना श्रेष्ठ योग है। नैतिकता में अपना विकास करते हुए दूसरों को उसके लिए प्रेरित करने की चेष्टा योग है। कोई अगर हृदय को साक्षी देकर सर्वभूत-हितेरत है तो उसे योगी मानना ही पड़ेगा। अपने कमण्डलु के वियोग में रो देना तो योग नहीं, चाहे वह हिमालय में रहता आया हो या विन्ध्याचल में। उसकी ममता छोटी वस्तुओं में ही है।

आत्मा और परमात्मा के बीच जिस अज्ञान के अपाहरण के द्वारा हम दोनों का संयोग अथवा 'योग' करना चाहते हैं, वह भी तभी सम्भव है—जब मनुष्य मात्र से हम प्रेम करना सीखें शिलावृक्षादियों में भी अपनी आत्मा को देखें।

यस्मिन्सर्वा भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति
सर्वभूतस्थमात्मानं ततो न विजुगुप्सते।'

पेट की करुण कथा

श्री व्रजभूषण जी मिश्र

मैं अपनी गाथा आदि से कहकर अपनी सच्ची स्थिति प्रगट करने में कोई हानि नहीं मानता। जिस समय ब्रह्माजी ने मनुष्य बनाया उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। अपनी कृति पर कौन नहीं प्रसन्न होता? इसी बीच दैवयोग से शिवजी भेंट करने चले आये। उत्साह से मानव का माडल भोलेनाथ जी को दिखलाया गया। सिद्धिसदन जनक देखसुन हर्षित हुए और उन्होंने मेरी आवश्यकता प्रगट की। निर्जीव पुतले को सजीव बनाने के निमित्त, पुष्टि की विचारदृष्टि से, कर्म की संगति लगाने के लिए शिवजी ने हमारी आवश्यकता ब्रह्माजी को समझाई। महाकाल द्वारा इस महाकाल का अस्तित्व विधिमानस द्वारा संसार में प्रत्यक्ष हुआ।

अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना शिष्ट समाज में शोभा नहीं देता। वास्तविकता को प्रगट न करना पाप मानकर केवल निर्देश से काम लेता हुआ मैं आगे बढ़ता हूँ। मेरे द्वारा ही सृष्टि जीवित है। मुझ पेट के खातिर ही कुकर्म कर यमपुरी को सार्थक बनाया गया है। महात्माओं पर भी हमारा आधिपत्य है। बिना हमको आहुति दिये महात्मा भी भजन नहीं कर पाते। सारी क्रियाओं का मूलस्रोत मैं ही हूँ। यदि मैं न होऊँ तो शक्तिसंचार असंभव है। पेट का रह जाना किसे प्रसन्न नहीं करता? पेट का गड़ना, पेट का झरना, पेट का गिरना किसे कष्ट नहीं देता? सृष्टि का आदिस्रोत मुझे ही माना जाता है।

मैं ऐसा महत्त्वपूर्ण हूँ पर मेरी उपेक्षा दिनोदिन बढ़ रही है। मैं शरीर के विविध अंगों व मानसिक वृत्तियों का मूल हूँ अतः शरीर व मन की ज्यादतियों को चुपचाप यथाशक्ति सहन कर लेता हूँ पर विवश अत्याचार को सह नहीं सकता। मैं शरीर के महत्त्वपूर्ण अंगों में प्रधान हूँ और दिन-रात अनवरत अविश्राम कार्यरत रहता हूँ। हाथ को आराम है, पैर विश्राम ले सकता है, चक्षु, श्रवण, मन बुद्धि रात में मौज करते हैं पर "मोहि कहाँ विश्राम" समय-असमय व आवश्यकता नावश्यकता को बिना देखे मेरे कार्य को बढ़ाने में मानव अपना हित समझता है, रसना इसके लिए उत्साहित करती है। इसका परिणाम भोगना पड़ता है मुझे। अत्याहार अत्याचार है।

मैं आपके द्वारा मानव का ध्यान इस ओर आकृष्ट कराना चाहता हूँ कि वह नियम संयम शृङ्खला से बाँधे तभी वह स्वस्थ रह सकता है अन्यथा उसे स्वस्थ (स्वर्गस्थ) होना पड़ेगा। उत्तम तो यह है कि २४ घंटों में दो बार भोजन किया जाय, पर यदि इतने से सन्तोष न हो तो प्रातः और अपराह्न सरस अर्थात् पेय द्रव्य तथा थोड़ा फल मेवा आदि लिया जा सकता है। जब मौका लगा तब, चलते फिरते खाना हमारे प्रयोगशालाओं को नष्ट करना है। अतः मानव स्वहिताय इस झोंकने की आदत से बचे तो अतिश्रम से हमारा पिंड छूटे।

रसना से मेरी सदा खटपट रहती है; एक कारण तो यह है कि वह अन्न का रस लेकर खाद्य पदार्थ की पचने की ओर मेरी क्रिया की ओर कभी दृष्टिपात नहीं करता; दूसरी बात यह है कि रसना स्वाद ग्रहण काल में दाँतों द्वारा खाद्य की जो स्थिति कर देनी आवश्यक है वह नहीं की जाती है। इनका परिणाम यह होता है कि मेरे सतत प्रबल प्रयास करने पर भी खाद्य से जितना पोषण शरीर को मिलना चाहिए नहीं मिल पाता तथा अति कठोर परिश्रम से जो शक्ति का ह्रास होता वह संगठित होकर शरीर को बड़ी भारी हानि पहुँचाता है। यहाँ यदि मैं किन्हीं विशेष पदार्थों की ओर ध्यान दिलाऊँ तो आप उस पर विचार

करें और इस पुनीत क्षिप्रा क्षेत्र में श्री महाकाल के सान्निध्य में यह प्रण करें कि ऐसे पदार्थों का प्रबल विरोध करेंगे तब तो हमारा यह प्रयास सफल माना जा सकेगा।

अर्थ के लोभी, जनहित के प्रधान शत्रु, सरकारी संरक्षण में गौरवान्वित, स्वास्थ्य का प्रबल प्रध्वंसक, जल की सतत माँग करता हुआ कभी तृप्ति न दिलानेवाला, वीर्य तथा मलपात कराने में विशेष पटु तथा मेरे समस्त कार्य में उलट फेर करनेवाले वनस्पति घी का अविलम्ब प्रयोग, धर्म के नाम पर, कर्म के नाम पर, सौहार्द्र के नाम पर तथा प्रबल गणतन्त्र राज्य के नाम पर एक दम निषिद्ध हो जाना चाहिए। मै किसी से नहीं डरता, डरता हूँ तो एकमात्र उस पदार्थ से जिसकी बनावट यदि जान ले तो पवित्रता रखने को उत्सुक महानुभाव इसे ग्रहण न करेंगे ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। यह मैं मान सकता हूँ कि प्रयोक्ता के मान का एकमात्र अवलंब वही है; पर स्वास्थ्य हानि से जब उसकी तुलना की जाती है तो मानहानि पसंगा भर भी नहीं ठहरता। इस विषय को आगे बढ़ाना अनुचित समझ कर मैं श्रोताओं को कल्पवृक्ष के ३० वर्ष की ११ सख्या के १२वें पृष्ठ पर ले जाना चाहता हूँ।

सभ्यता के अन्तर्गत मानी जाने वाली चाय तथा चीनी मेरे काम में प्रबल अवरोध पैदा करनेवाले हैं। इसके साथ ही घी में तले पदार्थों का प्रयोग मेरी शक्ति के ह्रास का मुख्य कारण है। पकवान नाम से अभिहित किये जाने वाले, मेरे शब्दों में, ये विषपुञ्ज मेरे काम में गतिरोध डालने के लिए सदा प्रस्तुत रहते हैं। यदि इन तीन द्रव्यों का प्रयोग बन्द कर दिया जाय तो आज जो औसत आयु है वह अधिक नहीं तो ड्यौढ़ी अवश्य ही अविलम्ब हो जावेगी।

राष्ट्रीयता के नाम पर बाह्योपचार द्वारा राष्ट्र के कथित उत्थान का जो काम हो रहा है वह राष्ट्र का उत्थान कर सकता पर उस राष्ट्र में केवल सजीव सप्राण नर-पुरुषों का अभाव हो जायगा। स्वास्थ्य के गिरने का स्तर जितनी तीव्रता से बढ़ रहा है उस पर केन्द्रीय सरकार की दृष्टि न पड़ने का एक कारण है सर्वसुलभ आकर्षण में वास्तविकता की उपेक्षा।

यहाँ यह वर्णन तो हो चुका कि हमारा आहार किन तत्त्वों से परिपूर्ण होना चाहिए। किन पदार्थों के खा जाने से हम अस्वस्थ होते हैं। बहुधा यह गड़बड़ी होती है कि जिन तत्त्वों का उल्लेख ऊपर किया गया है वे पूरे के पूरे हमें नहीं प्राप्त होते। बहुधा हमें श्वेतसार को पचाने का कार्य अधिक करना पड़ता है। किंचित्सम्पन्न मध्यम वित्त वाले उसके साथ वसा का सम्मिश्रण और कर लेते हैं। श्रेष्ठ तो है गोघृत, दूसरे नम्बर पर तिल का ठंडा तेल और तीसरे नम्बर पर है सरसों का तेल। भैंस का घी आयुर्वेद ने भी निकृष्ट बतलाया है। तेल का गुण खाने की अपेक्षा मर्दन में दस गुना है।

भारतवर्ष में पर्याप्त संख्या हमारे उन भाइयों की है जिन्हें हमको काम देने के लिए काफी मात्रा में आहार नहीं कर पाते; दूसरी ओर ऐसे की कमी भी नहीं है जो हमें सदा कार्य-निरत ही नहीं अतिव्यस्त ही देखने को उत्सुक हैं। काम कर चुकने पर विश्राम द्वारा आगामी कार्य करने की क्षमता को प्राप्त करने का अवसर मिल ही नहीं पाता। काम करते करते जब हम थक जाते हैं तो अनेक सूचनाओं से हम अपनी परिस्थिति व्यक्त करते हैं पर भोला मानव उनकी रंचक परवाह नहीं करता: फिर लाचार हमें रोग की शरण लेनी पड़ती है और फिर चूर्ण एवं अरिष्ट द्वारा हमें सशक्त बनाने की चेष्टा की जाती है। क्षमा करना यदि कुछ कड़वी बात निकल जाय। सज्जनों के समक्ष हृदय पिघल जाता है, फिर कहने से रोक सकना कठिन होता है। स्वार्थ का मूर्तिमान पुतला मानव स्वयं तो परिश्रम करना नहीं चाहता और दूसरे अपने मातहतों पर परिश्रम

लादने की सतत चेष्टा करता है। समवेदना नामक सद्गुण से उसकी भेंट नहीं। भारत सरकार ने साप्ताहिक अवकाश प्रदान कर इधर स्तुत्य प्रयास किया है। क्या हमें १५ दिन में एक बार भी अवकाश नहीं दिया जा सकता? चाहते तो हम भी साप्ताहिक छुट्टी हैं पर यदि ऐसा न हो तो कम से कम पाक्षिक अवकाश में क्यों एतराज होता है? क्यों नहीं एकादशी को अनाहार रखने की बात दिमाग में आती? हाँ, एक बात कह देना अप्रासंगिक न होगा। हमारे एतत्कथित विश्रामकाल में क्या हम वास्तव में आराम करते हैं? नहीं, जो संचित पिछला काम बचा रह जाता है उसे ही पूरा करना पड़ता है। जो कूड़ा करकट अवांछित द्रव्य जमा रह जाता है जिसे अवकाश के अभाव में निकालना संभव नहीं होता, उसे जठराग्नि में दग्ध कर शरीर से बाहर कर देते हैं। इस क्रिया से संभव है सिर दर्द हो जाय, जीभ का स्वाद बिगड़ जाय और कुछ कमजोरी भी महसूस हो जाय। इससे घबड़ाना नहीं चाहिए, विश्राम द्वारा कमजोरी पर काबू करना चाहिए। इस अवकाश में घर की धुलाई के लिए अधिक पानी आवश्यक होता है। फिनाइल, लाइसोल आदि घोलों के स्थान पर पानी, नमकपानी या खट्टा पानी (नींबूजल), थोड़े खट्टे फलरस आदि बहुत हितकर होते हैं। उचित तो है कि इनका प्रयोग किया जाय, यदि न हो तो, कम से कम, अधिक जल की ही व्यवस्था करनी चाहिए। मैं यहाँ अपने अवकाश से मानसिक विकास को कितनी प्रगति देता हूँ विषयान्तरभय से कहना ठीक नहीं समझता। यदि मानव ने ऐसा किया तो वह अपनी कर्तव्यपरायणता को दिखलाते हुए हमारा आशीर्वाद प्राप्त करेगा, स्वस्थ होकर दीर्घायु प्राप्त करेगा।

निरन्तर किसी पदार्थ की बहुत समय तक कमी रहने से विविध रोग हो जाया करते हैं; उनको दूर करने का श्रेष्ठ उपाय है एकाहार, रसाहार या शाकाहार। परिश्रम, अवकाश; रोग के अनुसार इनमें से किसी एक को चुना जा सकता है। इसको भी एक प्रकार की व्रत-संज्ञा ही समझनी चाहिए। जो भारी दीर्घकाल व्यापी रोग शीघ्र अच्छे नहीं होते उनको ठीक करने के लिए, साधारण कार्य में बाधा न डालते हुए एकाहार का प्रयोग अत्यावश्यक है। हमारी आपसे प्रार्थना है कि साल में एक या दो बार एक सप्ताह व नवरात्रि पर एकाहार के लाभ का चमत्कार स्वयं अनुभव कीजिए। हाथ कङ्गन को आरसी क्या? यह तो नकद बात है उधार विश्वास का यहाँ ठिकाना नहीं।

हमको सहायता देने के लिए, रक्त में गति लाने को अंगों में स्फूर्ति छिटकाने के निमित्त अत्यावश्यक व्यायाम के प्रति जिस प्रकार उपेक्षावृत्ति दृष्टिगत हो रही है उसका परिणाम भी सबके चेहरे पर स्पष्ट है। फुरसत का न मिलना, सुविधा का अभाव, स्थान धन सङ्कोच आदि बहाने मात्र हैं। मैं सबको राममूर्ति, गामा, किंगकांग, जिविस्को बनने को नहीं कहता पर कम से कम हमारे हृदय व फेफड़े के अंगोपांगों को सशक्त करने के निमित्त उन्हें ठीक क्रियाशील बनाये रखने के लिए कुछ व्यायाम केवल १५ मिनट का समय १४४० मिनट में निकाला जा सकता है। केवल ९६वाँ भाग की ही तो माँग है। इस विषय में यहाँ अधिक कहना युक्तिसंगत नहीं। प्रयाग से एक पुस्तक निकली है, जिसकी कुछ प्रतियाँ यहाँ भी प्राप्य हैं, उसमें विस्तार से देखी जा सकती है; उसका नाम है '१५ मिनट में स्वस्थ बनो'।

आप हमारी कहानी से ऊब उठे होंगे, और आपका ऊब जाना भी स्वाभाविक है अस्तु यहाँ केवल इस ओर थोड़ा संकेत कर देना चाहता हूँ कि किस व्यक्ति को कितना आहार करना ठीक है। यदि इसका ध्यान रखा गया हो हम और हमारे भाई जो आपके भीतर बैठे हैं,

अनेक धन्यवाद देंगे और परिणामस्वरूप सशक्त दीर्घ जीवन का वरदान प्राप्त होगा।

यदि भार ठीक है तो जितने सेर तौल है उतने माशा प्रोटीन और उसका १/१० घटाकर वसा, और प्रोटीन का ६ गुना कार्बोहाइड्रेट लेना चाहिए। यदि आपका भार ७२ सेर है तो ७२ माशा प्रोटीन, (७२ – ७) ६५ माशा वसा, और (७२ × ६) ४१२ माशा कार्बोहाइड्रेट व चीनी होनी चाहिए।

आशा है इस क्रम को अपनाकर लोग अधिक तन्दुरुस्त जीवन बिताकर दीर्घ जीवन प्राप्त कर समाज का हित करेंगे।

परमार्थ स्वास्थ्यदाता है

श्री विठ्ठलदास मोदी

शरीर के विषमय होने पर ही रोग होते हैं। और शरीर तीन कारणों से विषमय हो सकता है: १—गलत भोजन। २—कम सोना। ३—शरीर की ग्रन्थियों का कार्य अव्यवस्थित हो जाना।

जब हम सोते हैं तो शरीर में थकान की वजह से पैदा हुआ विष दूर होता है। यदि कोई बहुत दिनों तक पूरी नींद न ले तो उसके शरीर में विष इकट्ठा हो जाता है और उसे अपने शरीर को विकार रहित बनाने के लिए न सोये हुए समय के अनुपात के अनुसार कम या अधिक समय तक अपने शरीर के शोधन का कार्य चलाना पड़ता है।

ग्रंथियों का कार्य अव्यवस्थित होने पर शरीर में स्वयं विष बनने लगता है। यदि किसी एक ग्रंथि के वशीभूत होकर शरीर का एक अंग अपना काम ठीक तरह से नहीं करता तो उसकी इस गलती के कारण भी शरीर के अन्य अंग विषयम होने लगते हैं।

अंगों का बढ़ना और उनके सभी कार्य अनजाने होते रहते हैं। सब अंग अपना कार्य पारस्परिक सहयोग द्वारा करते हैं। मस्तिष्क हमारे सभी चेतन कार्यों का नियंत्रण करता है और कई बार वह अंगों से उनकी स्वाभाविक गति के प्रतिकूल काम करा लेता है।

शरीर में विष उत्पन्न होने का कारण मस्तिष्क अथवा नाड़ी-मंडल भी है। यह विष ग्रंथियों के द्वारा पैदा किया जाता है जिनका कार्य नाड़ी-मंडल के वश में होता है।

मान लीजिए एक व्यक्ति प्राकृतिक नियमों के अनुसार चलता है। वह स्वाभाविक भोजन करता है, नींदभर सोता है। इस प्रकार वह बाहरी कारणों से शरीर में विष उत्पन्न नहीं होने देता फिर भी बीमार रहता है। भोजन अथवा नींद संबंधी गलती उसने नहीं की और शरीर में इन दो कारणों से विष उत्पन्न नहीं हुआ। पर शरीर की ग्रंथियों के कारण उत्पन्न हुए विष को न निकाल सकने के कारण वह बीमार पड़ गया। इन ग्रंथियों से विष कैसे उत्पन्न होता है और हम उसे कैसे निकाल सकते हैं?

प्रत्येक व्यक्ति समाज का एक अंग है। यदि वह समाज के लाभ के लिए काम नहीं करता तो उसका शरीर ही उसे सजा देता है। उसका शरीर अंशतः अपना काम बंद कर देता है। जो बाहर समाज में बड़े रूप में दिखाई देता है वह अन्दर शरीर में छोटे पैमाने पर होता है। समाज का सक्रिय या सीधा नुकसान करना आवश्यक नहीं है, बुरे विचार रखने भी उतने ही खतरनाक हैं। इन विचारों एवं भावनाओं का असर बाहर भी पड़ता है और अन्दर भी, जिसकी वजह से शरीर के अन्दर विष-निर्माण होता है। कुछ कोष विद्रोही हो उठते हैं और पूरे शरीर के हित के विरुद्ध काम करने लगते हैं।

परमार्थ स्वास्थ्यदाता है और स्वार्थ रोग का कारण। जब व्यक्ति अपने अंदर निम्नकोटि के अशुभ विचारों को स्थान देता है तो वह उसी प्रकार की बाहरी विचार-धाराओं से अपना सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। ऐसा न समझें कि विचारों की शक्ति नापी नहीं जा सकती। वह तुल चुकी है। विचार-शक्ति शून्य में अन्य शक्तियों की तरह ही गतिमान होती है। प्रत्येक शक्ति एक छोटा-सा बिना तार-के-तार का स्टेशन है जहाँ तार लिये और तार भेजे जाते हैं। जब आदमी हेय विचार धारण करता है तब वह अपने चारों ओर के हेय विचारों से सम्बन्ध स्थापित कर लेता है और वह हेय विचारधारा बनाता है। हताश और निराश व्यक्तियों के संपर्क में आकर मनुष्य स्वय हताश और निराश हो जा सकता है और जब मनुष्य स्फूर्तियुक्त रहता है तब वह सशक्त और सन्तुलित मनुष्यों के संपर्क में ही आता है।

उच्च विचारों से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए मनुष्य को सचेत रहना चाहिए। इस प्रकार वह ग्रंथियों द्वारा उत्पन्न उस भयानक विष से बचा रहेगा जो अनिष्टकारक और स्वार्थमय विचारों के कारण उत्पन्न होता है। इस विष का ही बचाने के लिए सभी धर्म जीव-दया, भ्रातृभाव और विश्वप्रेम की सीख देते हैं।

हम इस महान् धार्मिक और चारित्रिक नियमों को सरल शब्दों में यों कह सकते हैं कि जब हम दूसरों का भला करते हैं तो हमारा भी भला होता है। सचमुच प्रेम का प्रभाव तीव्र रोग निवारक होता है। इसका यह गुण रहस्यमय नहीं है—इसका सम्बन्ध केवल ग्रंथियों के स्थूल कार्य-कलाप पर आश्रित है।

मनुष्य अपने में एक व्यक्ति है—वह समाज और प्रकृति के शरीर का एक अंग है। उसे ये अपने सारे सम्बन्ध विशुद्ध रखने हैं। इनसे उसका सम्बन्ध गलत हो जाने पर उसके सारे सम्बन्ध विश्रृङ्खल हो जाते हैं। इसलिए स्वास्थ्य शास्त्र का सम्बन्ध शरीर से ही नहीं है मस्तिष्क से भी है और समाज से भी है। इन तीनों का ज्ञान प्राप्त करके ही मनुष्य स्वस्थ रह सकता है।

हम दवा-दारू क्यों करते हैं ?

श्री लक्ष्मीनारायण टंडन 'प्रेमी'

हम दवा-दारू क्यों करते हैं? आइए इस प्रश्न पर हम शान्ति तथा गंभीरता के साथ विचार करें। 'दवा' को साधारण रूप से हम दो श्रेणियों में रखते हैं। एक तो वह साधारण जड़ी बूटियों द्वारा सीधा-सादा इलाज जिसे हम घरेलू दवाइयों के अन्तर्गत ले सकते हैं। वैद्य तथा हकीमों द्वारा बताई हुई ऐसी साधारण जड़ी-बूटियों द्वारा इलाज भी इसी के अन्तर्गत है। इस सीमा तक, सीधे सादे दवा के प्रयोग को एक सीमा तक प्राकृतिक चिकित्सक भी अनुमति दे देते हैं। और दूसरा रूप 'दवा' का वह होता है जो एलोपैथिकों के मिक्स्चर, पाउडर या गोलियों के रूप में होता है या वैद्यों की भस्म, रस तथा अन्य कुटी-पिटी किसी रूप में दवाइयाँ। ऐसी ही हकीमों की दवायें तथा होमियोपैथिक दवायें भी हम द्वितीय श्रेणी के अंतर्गत आती हैं। इस द्वितीय रूप के इलाज का ही प्राकृतिक चिकित्सक विरोध करते हैं। बाज दफे अपने सिद्धान्तों के विरुद्ध भी रोगी या उसके अभिभावकों का मन रखने के लिए बेमन से प्राकृतिक-चिकित्सक होमियोपैथिक दवाइयों तक तो अनुमति दे देते हैं पर रस, भस्म तथा मिक्स्चर, पेटेंट दवाइयों और इंजेक्शनों को तो वे बेमन से भी अपनी अनुमति

नहीं देते। हाँ, रोगी या अभिभावकों का कोई हाथ तो पकड़ नहीं सकता। वह तो दूसरी ही बात है।

तो रोगी और अभिभावक ही मिक्सचर और इंजेक्शन आदि को क्यों अपनाते हैं? प्रश्न यह है। इसका उत्तर यह है कि कुछ रोगी तथा अभिभावक प्राकृतिक-चिकित्सा, उसकी उपयोगिता तथा उसकी सरलता आदि से परिचित ही नहीं होते। अज्ञानता ही प्रमुख कारण है प्राकृतिक चिकित्सा की अवहेलना का। ऐसे लोग पूर्ण रूप से क्षम्य हैं। उनका क्या अपराध। इसका उपाय यही है कि प्राकृतिक-चिकित्सा सम्बन्धी साहित्य तथा जानकारी का अधिक से अधिक शिक्षित-अशिक्षित, धनी-निर्धन, स्त्री-पुरुष, सब में समान भाव से अधिक से अधिक प्रचार किया जाय। और कुछ लोग हठधर्मी से ही एलोपैथिक आदि इलाज करते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा के बारे में जानकर भी वे उसकी उपेक्षा करते हैं या इस इलाज पर उनकी आस्था ही नहीं है। यदि उन्हें कुछ बताया या मार्ग-प्रदर्शन किया जाता है तो वह आपकी सुनना ही नहीं चाहते। जो जानना ही न चाहे उसे जबरदस्ती कैसे जनाया जाय। ताली बजने के लिए दोनों हाथों की आवश्यकता है। अतः इस श्रेणी के लोगों के लिए भी हमें कुछ नहीं कहना है। परन्तु मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर इस प्रश्न को समझने पर आपको एक बड़ी मजेदार और महत्वपूर्ण बात ज्ञात होगी। प्राकृतिक-जीवन व्यतीत करने के लिए दृढ़ संकल्प, इन्द्रिय-निग्रह, संयम, धैर्य तथा गंभीरता की आवश्यकता है। और यह गुण सब में नहीं होते। डाक्टर ने कहा 'जब तक इलाज कर रहे हो या जब तक ठीक न हो जाओ तब तक और उसके कुछ दिनों बाद तक फलाँ-फलाँ वस्तु का प्रयोग न करना।' यहाँ तक तो रोगी के लिए संभव है। पर जीवन भर के लिए संयम और नियम से अपने को बाँध लेना, अपनी जीभ के चटोरेपन पर नियंत्रण रखना आदि हर एक के बूते का काम नहीं है। जब तक आपने संयम, नियम तथा सादगी से प्राकृतिक-जीवन व्यतीत किया तब तक तथा उसके कुछ समय तक आपका शरीर विकार-रहित रह सकता है पर जहाँ आपने फिर अंटाँय-सटाँय खाना-पीना और अनियंत्रित तथा अनियमित भोजन तथा जीवन व्यतीत करना प्रारंभ किया कि आपका शरीर रोग तथा मलयुक्त रहने लगा। अतः सदा-सर्वदा को अपने को नियंत्रित रखना हर एक के बूते का काम नहीं है। इसी से प्राकृतिक-चिकित्सा या प्राकृतिक-जीवन से लाभ उठा कर भी इन लोगों को फिर पहले से रोग हो गये हैं जैसे ही इन्होंने प्राकृतिक-जीवन को तिलाञ्जलि दी। अतः प्राकृतिक-चिकित्सा की उपयोगिता को सिद्धान्त रूप से मानते हुए भी ऐसे लोग उसे कार्यरूप में परिणत नहीं कर पाते। मानव-स्वभाव की इस कमजोरी का शिकार ९९% होते हैं।

और एक महत्वपूर्ण बात है। दुनिया इतनी अधिक आगे बढ़ गई है और प्रायः लोग इतने अधिक कार्य-व्यस्त हो गये हैं कि उन्हें इतना समय ही नहीं मिलता कि प्राकृतिक जीवन व्यतीत कर सकें। वे अपनी परिस्थितियों से बाध्य हैं। वे क्रोध के नहीं वरन् दया और सहानुभूति के पात्र हैं। मान लीजिए एक लम्बी गृहस्थी वाला म्यूनिसिपल स्कूल या आफिस का मास्टर या क्लर्क है। उसे ४०) मासिक मिलते हैं। इतने में गृहस्थी कैसे चले। अतः उसे ४-५ ट्यूशन या पार्ट-टाइम और नौकरी करनी पड़ती है। इसमें उसके ५-६ अतिरिक्त घंटे लग जाते हैं। अब बतलाइए वह बेचारा धूप-स्नान, वायु-स्नान, प्रातः-सायं टहलने, हिप बाथ, सिट्ज बाथ आदि के लिए कहाँ से समय लावे। जो तकदीर में होना हो, हो। उसे तो कोल्हू में पिलना और रोग ग्रस्त रहते हुए अल्पायु में मरना ही है। और परिश्रम,

मानसिक अशान्ति, दूध, दही, फल का अभाव। भारत की गरीबी भी प्राकृतिक-चिकित्सा तथा जीवन में बाधक होती है। भले ही पेट-भरे तथा अनुकूल परिस्थितियों में रहने वाले प्राकृतिक-चिकित्सक या प्रेमी इस बात को न मानें। यह उनकी अज्ञानता या हठधर्मी होगी। सत्य, सत्य है।

एक और बात। मध्यम श्रेणी वाले सरविस वाले प्राय: १५ तारीख के बाद फाकेमस्त हो जाते हैं। तनख्वाह पाते ही वह महीना भर के लिए अनाज, घी, लकड़ी आदि तो किसी तरह से रख लेते है घर में। पर फल और तरकारी या दूध-दही के लिए तो नित्य पैसे चाहिए। और १५ तारीख के बाद उनकी जेब खाली रहती है। यदि हर तरकारी, शाक, दूध, दही मल आदि भी महीना भर के लिए एक साथ रखा जा सकता तो सभव है गरीब भी ऐसा ही करते। चादर छोटी है। या पैर ढक लो या सर। कुछ तो खुला ही रहेगा। यह नग्न सत्य है। प्राकृतिक चिकित्सकों का यह कहना कि 'मौसमी फल या तरकारी तो सस्ती होती हैं' उन गरीबों की दयनीय आर्थिक स्थिति का मजाक उड़ाना है। इसे प्राकृतिक-चिकित्सक नहीं, निर्धन भुक्तभोगी ही समझ सकते हैं। जब उनके पास जहर खाने को पैसा नहीं है तो 'सस्ते और मौसमी फलों और शाक तरकारियों' के लिए उनके पास पैसा कहाँ से आयेगा। अतः गरीबी और अभाव जिसमें ९०% लोग फँसे हैं, भी प्राकृतिक-जीवन व्यतीत न करने में एक बाधा है।

अब आप एक ठोस सत्य बात लें। एक क्लर्क को बुखार आया। दफ्तर में उसे २ दिन से अधिक छुट्टी नहीं मिल सकती। क्योंकि यह तो उसके लिए रोज का झगड़ा है। अतः उसे तो जैसे भी हो २-४ दिन में ही ठीक होकर दफ्तर या नौकरी या अपनी दूकान पर पहुँचना है। अतः वह चाहता ही है कि 'कोई ऐसी दवा मिले कि यह रोग 'दब जाय।' तो फिर नौकरी या काम पर तो पहुँच सकूँ। होगा, जो बाद में होगा। देखा जायगा। इस समय तो काम चले।' आप विश्वास रखें कि बहुत से लोग यह जानते हुए भी कि एलोपैथिक दवाओं से रोग दब भर जाता है, अच्छा नहीं होता, वह एलोपैथिक दवा ही करते हैं। समय का अभाव, पैसे का अभाव, उचछूत से बचने की इच्छा आदि एलोपैथिक इलाज करने का कारण हैं। अस्तु मेरा तो विश्वास है कि जब तक भारत से अज्ञानता, गरीबी, अभाव और पश्चिमीय मानसिक गुलामी की मनोवृत्ति दूर नहीं होगी, लोग प्राकृतिक-चिकित्सा के निकट ही नहीं आ पायेंगे, या निकट आकर भी इससे दूर रहने को बाध्य होंगे।

आपको एक निजी उदाहरण दूँ। मेरी कन्या महिला-विद्यालय, लखनऊ की इंटर प्रथम वर्ष की छात्रा है। जबरदस्ती उसके चेचक का टीका लगा दिया गया। घर पर आने पर उसने मुझसे कहा तो मैंने उसे डाँटा कि तुमने क्यों टीका लगवाया। उसने कहा कि 'मैं क्या करूँ। सभी लड़कियों को लगाया गया। मैंने नाहीं किया भी तो अध्यापिका ने डाँटा और जबरदस्ती लगवाया।' अब इसका उत्तर ही मेरे पास क्या है? बचपन में भी इस कन्या के चेचक का टीका लग चुका है। और पाठकों को पढ़कर हँसी आवेगी कि टीका लगने के महीने भर बाद उसके छोटी और बड़ी माता दोनों निकलीं और बेचारी वार्षिक परीक्षा में भी नहीं बैठ पाई। अतः चेचक की रोक टीके से हो जाती है बिल्कुल गलत है। मेरा तो प्रत्यक्ष प्रमाण है। मेरा छोटा पुत्र कालीचरण इंटर कालेज लखनऊ में ९वें का छात्र है। बचपन में उसके भी चेचक का टीका लग चुका है। पर तब भी ३ वर्ष पहले उसके चेचक निकली थी और कन्या के अच्छे होते न होते, इस बच्चे के भी जोरों से छोटी और बड़ी माता निकल आईं

और यह बेचारा भी परीक्षा के दिनों में खाट पर पड़ा रहा। कहीं चेचक की छूत न लगे इससे इसे एक होमियोपैथिक दवा दी जा रही थी। होमियोपैथिक डाक्टर का कहना था कि इस दवा के खाने पर चेचक की छूत का असर नहीं हो पायेगा। पर यह 'दवा' भी गलत या बेमतलब सिद्ध हुई। तो फिर दवा और टीके से लाभ? अब आप देखें कि इंजेक्शन तथा टीके आदि लोग इसलिए लेते हैं क्योंकि सरकार, ऊँचे अफसरों या विद्यालयों के अधिकारियों (यदि छात्र हुए तो) द्वारा इसके लिए बाध्य किये जाते हैं। प्राकृतिक-चिकित्सा के समर्थकों राजर्षि टंडन, आचार्य विनोबा तथा स्वर्गीय बापू की बात कौन सुनता है।

स्वास्थ्य, सुख और समृद्धि

श्री पं० किशोरीलालजी दीक्षित, बी० ए०, एल-एल० बी०

स्वास्थ्य, सुख और समृद्धि ये जीवन के मुख्य लक्ष्य कहे जा सकते है जिनके लिए मनुष्य मात्र प्रयत्न करता है। यदि आत्म-सूचना इनकी प्राप्ति में सहायक होती है तो यह मनुष्य जीवन में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लेती है। यह आत्म-सूचना के विषय के हर एक विद्यार्थी को मानना पड़ता है कि आत्म-सूचना उपरोक्त वस्तुओं की प्राप्ति में सहायक या निरोधक होती है।

रोगनाशक शक्ति की सूचना हरएक मनुष्य के मन में निहित है और इस शक्ति को जाग्रत करने के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष आत्म-सूचना को काम में लाने की आवश्यकता है। इसके लिए किसी दूसरे प्रयोगकर्ता की आवश्यकता नहीं है जिस तरह कोई सूचना का प्रयोग दूसरे पर कर सकता है उसी तरह स्वयं अपने ऊपर भी कर सकता है यदि उसमें इच्छाशक्ति और लगन हो। हरएक मनुष्य का स्वास्थ्य बहुत कुछ उसकी मानसिक अवस्था पर निर्भर है। शारीरिक अवस्था पर मन का बहुत बड़ा प्रभाव होता है। भय, चिन्ता, क्रोध और उदासीनता का प्रत्यक्ष प्रभाव शारीरिक अंगों पर शिथिलता के रूप में दिखाई देता है और आशा, विश्वास, साहस और प्रसन्नता ये शारीरिक कार्यों में उत्साह प्रदान करते है। ऐसा होने पर इसमें कोई शंका नहीं रह जाती कि आत्म-सूचना का उचित अभ्यास कर लेने पर हरएक मनुष्य रोगों को रोककर अपने शरीर को स्वस्थ रख सकता है। उचित आत्म-सूचना एक ऐसी रोग-निवारक रामबाण महौषधि है जिसकी तुलना और किसी औषधि के आविष्कार से नहीं की जा सकती है। यह आत्म-सूचना उचित आदर्श तथा मानसिक चित्र के साथ होना चाहिए। यदि आप अपने आपको स्वास्थ्य की सूचना, स्वास्थ्य के विचार, स्वास्थ्य का चित्र अपने मन में रखेंगे तो आपके शरीर में स्वास्थ्य का प्रदर्शन प्रत्यक्ष दिखाई देगा।

आपका सुख बहुत कुछ आपके स्वास्थ्य पर निर्भर है। अँग्रेजी की कहावत 'As a man thinketh so is he' के अनुसार यदि आप उदासीन और नकारात्मक विचारों को हमेशा भगाते रहें और उत्साहप्रद विचारों का आह्वान करते रहें तो आपको सुख की कुंजी प्राप्त हो सकती है। मनुष्य जिस बात पर अपने विचारों को जमा देता है वह वैसा ही दिखाई देने लगता है। हमेशा प्रकाशमय जीवन की कल्पना का दृढ़ विचार आपके अन्दर ऐसी मानसिक अवस्था उत्पन्न कर देगा जिसमे आप सदैव सुखी रह सकेंगे। जीवन में प्रकाश और अंधकार दोनों है, परन्तु हर मनुष्य को

अधिकार है कि प्रकाश या अंधकार जिस तरफ उसकी इच्छा हो चला जाय। कई मनुष्यों को आदत हो जाती है कि वे जीवन के अंधकार और निराशा की ओर ही देखा करते हैं परन्तु यदि हम चाहें तो प्रकाश और आशा की ही तरफ देखने का अभ्यास कर सकते हैं। यह सब अपनी इच्छाशक्ति और दृढ़ विचार पर निर्भर है। ध्यान से अच्छी या बुरी तरफ जिधर प्रयत्न किया जाय वही प्राप्त होता है। आशावाद और निराशावाद जीवन के दो पृष्ठ हैं आप जिसे चाहें ग्रहण कीजिए। यह आपकी मानसिक अवस्था पर निर्भर है और मानसिक अवस्था आत्म-सूचना से निर्माण की जा सकती है। जैसा कि लोग अधिकतर समझते हैं सुख कोई बाहरी वस्तु नहीं है। हम कई मनुष्यों को धन, प्रभाव और उच्चपद पर देखते हैं पर फिर भी वे दुखी हैं। इसके विपरीत कई मनुष्य इन वस्तुओं के न होते हुए भी अत्यन्त दुखद परिस्थिति में से भी सुख प्राप्त कर लेते हैं। सुख का प्रादुर्भाव आन्तरिक है। यदि आप सुख अपने अन्दर से प्राप्त नहीं कर सकते तो बाहर से कदापि नहीं मिल सकता। सुख का अस्तित्व बाहरी वस्तुओं में कहीं पर भी नहीं है। किसी को पूर्ण सुख बाहरी वस्तुओं से प्राप्त नहीं हुआ है, जिसको भी यह प्राप्त हुआ है अपने ही भीतर से। इसलिए यदि आपने अपने ही में सुख प्राप्ति का साधन कर लिया तो आपको सुख का रहस्य मिल गया और यह साधन आप आत्म-सूचना द्वारा प्राप्त कर सकते हैं।

समृद्धि बहुत सी बातों पर निर्भर है, परन्तु इनमें आन्तरिक मानसिक स्थिति मुख्य है। सफलता के लिए कुछ मानसिक गुणों का होना आवश्यक है। यदि हमारी मानसिक शक्तियाँ विकासहीन और अपरिवर्तित रहती हैं तो अधिकतर हमको असफलता मिलती है परन्तु आत्म-सूचना द्वारा हम इन गुणों का विकास कर सकते हैं और इस प्रकार समृद्धि के मार्ग पर अग्रसर हो सकते हैं। हमारे भीतर एक ऐसी प्रबल आत्मशक्ति निहित है जिसका ज्ञान बहुतों को भूला रहता है और इसलिए वे परिस्थिति के दास बन जाते हैं। एक बार जब हमको इस शक्ति का अस्तित्व अपने भीतर दिखाई देने लगता है तो हमें परिस्थितियों के दासत्व से छुटकारा मिलकर उन पर विजय प्राप्त करने का अधिकार मिल जाता है, यही स्वास्थ्य, सुख और समृद्धि की कुंजी है।

राजयग ग्रंथमाला

अलौकिक चिकित्सा विज्ञान

अमेरिका में योग प्रकारक बाबा रामचरक जी की अंग्रेजी पुस्तक का अनुवाद चित्रमय छपा है। इसमें मानसिक चिकित्सा द्वारा अपने तथा दूसरों के रोगों को मिटाने के अद्भुत साधन दिये हैं। मूल्य २) रुपया, डाक खर्च ॥=)

सूर्य किरण चिकित्सा

सूर्य किरणों द्वारा भिन्न-भिन्न रंगों की बोतलों में जल, तैल तथा अन्य औषधि भर कर सूर्य की शक्ति संचित कर तथा रंगीन काँचों द्वारा सूर्य की किरणें व्याधिग्रस्त स्थान पर डाल कर अनेक रोग बिना एक पाई भी खर्च किये दूर करना तथा रोगों के लक्षण व उपचार के साथ पथ्यापथ्य भी दिये गये हैं। नया संस्करण मूल्य ५) रुपया, डाक खर्च ॥।)

संकल्प सिद्धि

स्वामी ज्ञानाश्रमजी की लिखी हुई यथा नाम तथा गुण सिद्ध करने वाली, सुख, शांति, आनन्द, उत्साह वर्द्धक यह पुस्तक दुबारा छपी है मूल्य २) रुपया, डाक खर्च ॥=)

प्राण चिकित्सा

हिन्दी संसार में मेस्मेरिज्म, हिप्नाटिज्म, चिकित्सा आदि तत्वों को समझाने व साधन बतलाने वाली एक ही पुस्तक है। कल्पवृक्ष के संपादक नागरजी द्वारा लिखित गम्भीर अनुभव-पूर्ण तथा प्रामाणिक चिकित्सा के प्रयोग इसमें दिये गये हैं। जीवन में इस पुस्तक के सिद्धांतों से दीन-दुखी संसार का उपकार कर सकेंगे मूल्य १) रुपया, डाक खर्च ॥=)

प्रार्थना कल्पद्रुम

प्रार्थना क्यों तथा किस प्रकार करनी चाहिये। दैनिक सामूहिक प्रार्थना द्वारा अनिष्ठ स्थिति से मुक्त होने व दूरस्थ मित्रों व मृत आत्माओं को शांति व अलौकी सदेश दिखाने वाली आज के संसार में अपूर्व पुस्तक है। मूल्य ॥) आना।

आध्यात्मिक मण्डल

घर बैठे आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त करने व साधन करने के लिए यह मण्डल स्थापित किया गया है, जिससे स्वयं शारीरिक व मानसिक उन्नति कर अपने क्लेशों से मुक्त होकर दूसरों का भी कल्याण कर सकें। सदस्य बनने वालों को शिक्षा व साधन के लिए प्रवेश शुल्क १०) रुपये हैं और निम्नलिखित पुस्तकें दी जाती हैं :—

१—प्राण चिकित्सा २—प्रार्थना कल्पद्रुम ३—ध्यान से आत्म चिकित्सा ४—प्राकृतिक आरोग्य विज्ञान ५—आरोग्य साधन पद्धति ६—प्राणायाम चिकित्सा पद्धति ७—आटक चार्ट ८—ॐ दर्शन ९—आत्म प्रेरणा १०—कल्पवृक्ष एक वर्ष तक। ११—अमूल्य उपदेश।

कोई भी सदाचारी व्यक्ति प्रवेश फार्म भेज कर सदस्य बन सकता है।

अमूल्य उपदेश

—कल्पवृक्ष में पूर्व प्रकाशित अमूल्य उपदेशों का दूसरा संस्करण। मूल्य ?) डाक खर्च ॥=)

स्व० पं० शिवदत्त शर्मा की पुस्तकें

गायत्री महिमा ॥) ओउम् चमत्कार ॥)
अग्निहोत्र विधि ॥) ध्यान की विधि ॥)
आरोग्य आनंदमय जीवन ॥।) ॐ जाप जप ॥)

विश्वामित्र वर्मा द्वारा लिखित नई पुस्तकें

प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान

रोग क्यों तथा कैसे होता है, तथा दवा दारू, चीर फाड़, और जड़ी बूटी के बिना, दाम कौड़ी खर्च के बिना कैसे जाता है, विख्यात डाक्टरों का अनुभव मूल्य १॥)

यौगिक स्वास्थ्य साधन १)

प्राकृतिक स्वास्थ्य साधन

स्वास्थ्य के नये साधन, पौरपवर्धक नये व्यायामों के २६ चित्र, भोजन की मात्रा व्हाइट चार्ट नवीन वैज्ञानिक व्याख्या तथा नुस्खे। मूल्य २)

व्यावहारिक अध्यात्म

आत्म विकास द्वारा उन्नति और सफलता पाने के लिए दिव्य व्यावहारिक ज्ञान १)

दिव्य सम्पत्ति

दुःखी बच्चे, उलझनों में फंसे, और और निराश लोगों के लिए दिव्य प्रेरणाएं। मूल्य ॥)

भोजन का सदुपयोग (चार्ट) ।)
वस्तुगत भोजन चर्या (चार्ट) ।)
भोजन निर्णय (चार्ट) ।)
दिव्य भावना-दिव्य धारणा (चार्ट) ।)

मिलने का पता—कल्पवृक्ष कार्यालय, उज्जैन नं० १ (मध्य भारत)।

Registered No. N. 277

आध्यात्मिक मंडल, उज्जैन, म० भा०

श्री

निम्नलिखित शाखाओं में मानसिक, आध्यात्मिक एवं प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा मुफ्त इलाज होता है :—

स्थान प्रबन्ध और उपचारक

१ कोटा (राजपूताना) श्रीयुत पं० नारायणरावजी गोविंद नागर, प्रोफेसर ड्राइंग, श्रीपुरा
२ हींगनघाट (सी० पी०)—आयुर्वेदाचार्य गोभालालजी शर्मा।
३ उदयपुर (१) (राजस्थान) संचालक आयुर्वेदाचार्य पं० जानकीलालजी त्रिपाठी, चिन्तामणि कार्यालय भूपालपुरा, प्लाट नं० २०१।
उदयपुर (२. लाला जेमारामजी, मार्फत श्री देवराज, टी. टी. ई. रेलवे क्वार्टर्स, बी।२, रेलवे स्टेशन
४ खरगोन (मालवा प्रांत) श्री गोकुलजी पंडरीनाथजी सर्राफ मंत्री आध्यात्मिक मंडल।
५ अजमेर (राजपूताना) पंडित सूर्यभानुजी मिश्र, रिटायर्ड टेलिग्राफ मास्टर, रामगंज।
६ नसीराबाद (राजपूताना)—चाँदमलजी बजाज।
७ दोहरी घाट स्टे. ओ. टी. आर. (आजमगढ़ उ. प्र.) संचालक पं० क्षमानन्दजी शर्मा साहित्यरत्न
८ मन्दसौर (मध्य-भारत) दशरथजी भटनागर, लाग इन्स्पेक्टर, जनकपुरा।
९ सिट्टी भेड़ी (देहरादून पो० प्रेमनगर) महावीरप्रसादजी त्यागी।
१० सरगुजा स्टेट (सी० पी०) लालजीप्रसादजी गुप्त।
११ जावरा (मध्य भारत)—विशारद पं० भालचन्द्रजी उपाध्याय, एजेन्ट कोआपरेटिव बैंक।
१२ गोंदिया (मध्यप्रान्त) लक्ष्मीनारायणजी मालुर्णाले, बी० ए० एल-एल० बी० वकील।
१३ नेपाल-धर्ममनीषी, साहित्यधुरीण, डा० दुर्गाप्रसादजी भट्टराई, डी० डी० दिल्ली बाजार।
१४ पोलायखुर्द (व्हाया अकोदिया मण्डी)—स्वामी गोविंदानन्दजी।
१५ धार (मध्य भारत)—श्री गणेश रामचन्द्र देशपांडे, निसर्ग मानसोपचार आरोग्य-भवन, धार।
१६ खम्भात (Cambay) श्री लल्लुभाई हरजीवनजी पंड्या।
१७ राजगढ़ ब्यावरा (मध्य भारत) श्री हरि ॐ तत्सत्जी।
१८ केकड़ी (अजमेर) पं० किशोरीलालजी वैद्य तथा मोहनलालजी राठी।
१९ बुढ़वल (ओ. टी. आर. जिला बाराबंकी) पं० रामशंकरजी शुक्ल, बुढ़वल शुगर मिल।
२० इन्दौर—श्री बाबू नारायणलाल जी सिंहल, बी० ए०, एल-एल० बी०, श्री सेठ जगन्नाथ जी की धर्मशाला, संयोगितागंज।
२१ आलोट-विक्रमगढ़ (मध्य-भारत) अध्यक्ष सेठ ताराचन्दजी, उपचारक अनोखीलालजी मेहता।
२२ अटरू (कोटा राजस्थान)—पं० सोहनचंद्रजी शर्मा।
२३ मांगरोल (कोटा राजस्थान)—सेठ भैरूलाल जी।

व्यवस्थापक व प्रकाशक—डॉ० बालकृष्ण नागर, कल्पवृक्ष कार्यालय, उज्जैन (मध्य भारत)
मुद्रक—भक्त सज्जन, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद-२

वर्ष ३२
संख्या ११

KALPA-VRIKSHA

A MAGAZINE OF DIVINE KNOWLEDGE

१ उद्वेग से बचने के उपाय—स्वर्गीय सन्त नागर जी
२ वेद विज्ञान सुधा—श्री पं० रणछोड़दास जी 'उद्धव'
३ जीवन में—श्री सुदर्शनसिंह जी
४ मन्त्र जप का प्रभाव—श्री ज्वालाप्रसाद जी खरे
५ परलोक में मन का महत्व—श्री गोपीवल्लभ जी उपाध्याय
६ मानव स्वभाव कैसे बदले ?—प्रो० रामचरण महेन्द्र
७ योग क्या और योगी कौन है ?—एक योगमार्गी
८ पेट की करुण कथा श्री प० व्रजभूषण जी मिश्र
९ परमार्थ स्वास्थ्यदाता है—श्री डॉ० विट्ठलदास जी मोदी
१० हम दवा-दारू क्यों करते हैं ?—श्री लक्ष्मीनारायण जी टण्डन
११ स्वास्थ्य, सुख और समृद्धि—श्री पं० किशोरीलाल जी दीक्षित
१२ स्वर्ण-सूत्र एक दिव्य मन्त्र

सम्पादक—बालकृष्ण नागर

स्वर्ण-सूत्र

एक दिव्य मन्त्र

परमात्मा से बड़ा कौन है? उस पर मुसीबत आये तो कौन दूर करेगा? परमात्मा सर्वज्ञान सर्वसामर्थ्य सर्वरूप महाचेतन तत्व है। मैं उसका प्रतिनिधि स्वरूप आत्मा हूँ। हरेक व्यक्ति, हरेक प्राणी, चाहे जहाँ जिस परिस्थिति में जो भी काम करता है—वह आत्मा है, परमात्मा का प्रतिनिधि स्वरूप है। अतएव सब प्राणी आत्मा बन्धु हैं। कोई स्वयं अलग और किसी से भिन्न नहीं है, भिन्नता है केवल बाह्यरूप रंग प्रकृति और कार्य में, आत्मा में नहीं। कोई स्वयंतः स्वतन्त्र नहीं है। हम सब कैसे जीते हैं, हवा कैसे चलती है, वर्षा कैसे होती है, सृष्टि कैसे स्थिर और विकासशील है, इन सबका कोई नियंता है। अतएव मेरे जीवन का क्या होगा, मैं इसकी चिन्ता नहीं करता। मैं अहंभाव से कोई जिम्मेदारी अपने व्यक्तित्व पर लाद कर परेशान नहीं होता। विश्व के व्यापार का रहस्य बहुत सूक्ष्म है, आँखों से नहीं देखा जाता, बुद्धि से नहीं समझ में आता। इसलिए किसी भी समस्या के विषय में कुछ भी चिन्ता करना छोड़कर, व्यक्तिगत अहंभाव का दृष्टिकोण और जिम्मेदारी का भाव छोड़कर अव्यक्त परमात्मा को सौंपकर मैं उसका निर्देश पाने के लिए ध्यानस्थ हूँ।

मैं अपना जीवन और व्यवहार, बच्चे की तरह श्रद्धा और प्रेमपूर्वक परमपिता परमात्मा के अव्यक्त हाथों में सौंपता हूँ। मेरे लिए जो शुभ है वही होगा। जो कुछ होगा मेरे लिए अच्छा ही होगा।

मेरे लिए परमात्मा की क्या इच्छा है? वही जो मेरी इच्छा है। परमात्मा मुझसे क्या कराना चाहता है? वही, जो मैं करना चाहूँ। परमात्मा की इच्छा को कैसे जानें?

मैं अपनी इच्छा को जानकर विचार विवेकपूर्वक अव्यक्त भाव से उसका निर्णय और निश्चय करता हूँ क्योंकि मैं परमात्मा का प्रतिनिधि आत्मा हूँ। परमात्मा मुझमें ही व्याप्त है, मुझसे अलग नहीं, और वह मुझे मेरे जीवन के प्रत्येक व्यवहार और कार्य में निर्देश और सामर्थ्य देता है।

संस्थापक
स्वर्गीय डॉ० दुर्गाशङ्कर नागर

सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥ गीता ॥

वर्ष ३२ } उज्जैन, जुलाई सन् १९५४ ई०, सं० २०११ वि० { संख्या ११

उद्वेग से बचने का उपाय

स्वर्गीय संत नागर जी

मानस शास्त्री शेल्डन लेविट एम० डी० साहब कहते हैं कि उद्वेग भय का मुख्य अंग है, जिससे मनुष्य और पशु समान दुःख पा रहे हैं। यह दुःखों का बालक है और दुःखों से बचने का सदा प्रयत्न किया करता है। नीचे लिखे अनेकों रूप में यह प्रकट होता है—

- ईर्षा
- उद्वेग
- घृणा
- भय
- चिड़चिड़ाना
- उदासी
- घबराहट

देखो यह कैसा बुरा जाल बुना गया है। इसने मनुष्यता को किस बुरी तरह से [illegible]-हीन कर दिया है। परन्तु हम तो भी इससे बचना नहीं चाहते। कोई मनुष्य भय के साम्राज्य से बाहर होना नहीं चाहता। इससे सब प्रेम करते हैं। उद्वेग को दूर करने का सर्वोत्तम मार्ग यह है कि कल की चिन्ता छोड़ दो। कल क्या खावेंगे, क्या पहिनेंगे इस बात की बिल्कुल चिन्ता मत करो। वर्तमान काल में ही आनन्दित रहो।

प्रत्येक दिन अपना कार्य करता है। एक दिन के कार्य से दूसरे दिन की [illegible] है। बहुत से भय हमें [illegible]

लगते हैं पर अन्त में उनका नाम निशान भी नहीं मिलता। यदि मनुष्य अपने जीवन चरित्र को आरंभ से मनन करने लगे तो वह देखेगा कि बहुत सी बातें जिनसे वह डर रहा था बिलकुल ही अस्तित्व में नहीं आईं। जिस प्रकार बहुत से बादल आकाश में घिर जाते हैं। उन्हें देखकर डर प्रतीत होने लगता है। परन्तु जहाँ कि सूर्य का प्रकाश चमका कि वे सब छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। इसी तरह जीवन में भी अनेक भयंकर दुर्घटनाओं का सामना होता नजर आता है। पर वे सब मन पर आनेवाले तूफान हैं जो बिना किसी प्रकार का नुकसान पहुँचाये अपने आप छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। विपत्तियाँ जब आनेवाली होती हैं तो ऐसे कारणों से उत्पन्न हो जाती हैं जिनका हम अनुमान नहीं कर सकते।

जब कभी विपत्तियों का मुकाबला हो जाय तो योग्यता और धैर्य के साथ डटे रहो। यदि आनेवाली विपत्तियों की पहिले ही से चिन्ताएँ करने लगें तो उन विपत्तियों से होने वाले उपकारों से हम वंचित रह जायँगे।

चिन्ता या उद्वेग हमेशा भविष्य-घटनाओं के सम्बन्ध में हुआ करती है और उसके प्रभाव से वर्तमान काल में हमारा स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। और यथार्थ दृष्टि से देख सकें तो मालूम होगा कि ये चिन्ताएँ हमारे भविष्य को और भी भयकर बना डालती हैं। यह बात युक्ति से सिद्ध हो चुकी है कि भविष्य का भय मनुष्य की वर्तमान परिस्थिति को बिगाड़ देता है और भविष्य भय को विशेष भयंकर बना देता है।

हम बुद्धिपूर्वक विचार करने से इस दुःख से बच सकते हैं और बहुतों ने ऐसा किया भी है, पर कई एक निष्फल भी हुए हैं। इसमें सबसे मुख्य बात अपने भावों को उच्च बनाना है। हम अपने प्रकट मन से गुप्त मन की अवस्था में पहुँचने से अपनी शक्तियों को जान सकते हैं। और उसके प्रकाश में पहुँच जाने से फिर कभी किसी तरह का उद्वेग या भय नहीं रहता।

होरेज फ्लेचर नाम का एक व्यक्ति चिन्ताओं से बहुत ही दुःखी था। किसी जापानी बौद्ध भिक्षु ने उनसे कहा कि तुम क्रोध और चिन्ता इन दो बातों को त्याग दो। उस मनुष्य ने पूछा क्या ये संभव है? भिक्षुक ने कहा जापानी के लिए सब कुछ संभव है। इस उत्तर ने फ्लेचर के हृदय में नवीन भाव उत्पन्न कर दिये और वह चिन्ता के दुःख से सदा के लिए मुक्त हो गया।

सब प्रकार के भयों को दूर करने के लिए हमें अपने ऊपर पूर्ण श्रद्धा चाहिए। जिस समय सब इन्द्रियों को रोक और मन को एकाग्र करके अपने आप में लय कर दिया जाता है उस समय एक आश्वासन देनेवाली आवाज आती है जिससे हमारे सब दुःख और क्लेश सर्वथा नष्ट हो जाते हैं। आत्मिक शक्तियों को जागृत करके वहाँ के प्राप्त ज्ञान के अनुसार जीवन बिताना सीखो तो तुम्हारे भावों में भय और उद्वेग के लिए कोई स्थान खाली न रहेगा।

वेदविज्ञानसुधा (४)

श्री रणछोड़दास 'उद्धव'

स्थिति-गतिलक्षण वेदविज्ञान

मोहन—परम मित्र माधव! आपने यह सुनाया था कि—'यजुर्वेद का यत्भाग गतिवाला और जू भाग स्थितिवाला है।' इस विषय को विस्तार से समझाने का कष्ट करेंगे, क्योंकि मुझे यह विषय भी आश्चर्यकारक ज्ञात होता है कि एक ही वस्तु स्थिति और गतिवाली कैसी होती है?

माधव—जिज्ञासुवर मोहन ! आप ठीक कहते हैं, स्थिति-गतिवाला वेद भी आश्चर्य-कारक विषय है, उसे समझाने का यत्न करता हूँ।

साहित्य कला में निष्णात अतः क्रान्तदर्शी नाम से प्रसिद्ध विश्वनाट्यकला के ज्ञाता कविवर महर्षियों ने अपनी साहित्यभाषा में पुरुष और प्रकृति या ब्रह्म और माया इन दोनों अभिनेताओं के 'स्थिति और गति' ये नाम रक्खे हैं। शान्त अभिनेता स्थिति है और अशांत अभिनेता गति है।

महाविश्व में, विश्व के प्रत्येक पर्व में, पर्व के प्रत्येक पदार्थ में, पदार्थ के प्रत्येक महाभूत में, महाभूत के प्रत्येक रेणु में, रेणु के प्रत्येक अणु में, अणु के प्रत्येक गुण में, गुण के प्रत्येक पुरंजन में, पुरंजन के प्रत्येक पञ्चजन में, पञ्चजन के प्रत्येक विश्वसृट् में, विश्वसृट् के प्रत्येक आत्मक्षर में, आत्मक्षर के प्रत्येक अक्षर में, अक्षर के आलंबन अव्यय में और सर्वाधार परात्पर में सर्वत्र उक्त उन्हीं स्थिति और गतिभावों का साम्राज्य है। स्थिति उस दृश्य का पूर्वभाव है और गति उत्तर भाव है। स्थित रहता हुआ वह दृश्य प्रतिक्षण चल रहा है अर्थात् ठहरा हुआ आगे बढ़ रहा है। साथ ही में मूर्खजन और विद्वज्जन सब को इन दोनों भावों के समान रूप से दर्शन हो रहे हैं। किन्तु 'लोक हिं भिन्ना।' एक की दृष्टि में स्थितितत्त्व है और गतितत्व निरर्थक है, दूसरे की में गतितत्व ग्राह्य है और स्थिति तत्त्व र्थक है। इसी रुचि भेद का निरूपण करते भगवान् कहते हैं—

निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
ं जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥
(गीता २।६९)

प्रतिक्षण बदलते हुए पदार्थों में न बदलने ा स्थितितत्व ही हमारा सुप्रसिद्ध अस्तिरूप ततत्व है और प्रतिक्षण बदलने वाला गति भाव ही नास्तिरूप सुप्रसिद्ध मृत्युतत्त्व है। जो महानुभाव (चार्वाकादि) केवल नास्तितत्त्व को ही प्रधान मानते हैं, जिनका "सर्वमिदं क्षणिकं क्षणिकं, अतएव शून्यं शून्यं, अतएव दुःखं दुःखं, अतएव स्वलक्षणं स्वलक्षणम्।" यह मतवाद है, जिनके मतानुसार अस्ति नाम का कोई लक्षण कोई नित्य तत्त्व नहीं है, उनके केवल इस नास्तिभाव में ही दोनों भाव आ जाते हैं। आप निरंतर अपने मुख से 'कुछ नहीं है—कुछ नहीं है' यही बोलते रहिये। हम ऐसी व्यवहार में 'नहीं' और 'है' इन दोनों को दिखला देते हैं। कुछ नहीं मानने वालों को पहले तो हम यही कहेंगे कि जब आपके मतानुसार 'कुछ नहीं है' तो ऐसी अवस्था में 'कुछ नहीं है' इस कोटि में आते हुए आप स्वयं भी 'कुछ नहीं हैं।' जब आप स्वयं कुछ नहीं हैं तो आपके मुख से निकला हुआ—'कुछ नहीं है' यह वाक्य भी कुछ नहीं है, अतएव आपका 'कुछ नहीं है' यह सिद्धांत अपने आप गिर जाता है।

थोड़ी देर के लिए हम आपके 'कुछ नहीं है' इस सिद्धान्त को मान लेते हैं। आप और तो कुछ नहीं मानते, किन्तु 'कुछ नहीं है' यह तो आप भी मानते हैं अर्थात् शब्दों में स्वतंत्र सत्तावाद को न मानते हुए भी आप 'कुछ नहीं है' इस वाक्य की सत्ता तो अपने मुख से ही मान रहे हैं, अतः आपको 'सत्ता' भाव से युक्त हो जाना पड़ता है। यदि इस आपत्ति से बचने के लिए आप यह कहें कि हमारा 'कुछ नहीं है' यह नास्तिसार होता हुआ "कुछ नहीं है" तो ऐसी अवस्था में आप साक्षात्रूप से सत्ता मान लेते हैं। कारण—अभाव का अभाव सत्ता है।

'कुछ नहीं है' यही मानिये। इस वाक्य में आपको 'कुछ नहीं' और 'है' ये दो विभाग मानने पड़ेंगे। नास्ति के 'न' और 'अस्ति' इन दो भावों का आप निषेध नहीं कर सकते। नास्तिवाक्य में रहनेवाला 'न' मृत्यु है और 'अस्ति' अमृत है। सत्-स्वरूप अमृत सदा अमृत

ही है और असत्-लक्षण मृत्यु सदा मृत्यु ही है। भावात्मक सत् का कभी अभाव नहीं होता और अभावरूप असत् की कभी सत्ता नहीं होती। इसी का स्पष्टीकरण करते हुए भगवान् कहते हैं—

अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन।
नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्त स्त्वन योस्तत्व दर्शिभिः॥
(गीता २।१६)

दोनों सर्वथा प्रतिद्वन्द्वी हैं, फिर भी वस्तु एक है। इस प्रकार ज्ञान और क्रियामूर्ति अव्यय के सिवा तीसरी वस्तु का अभाव सिद्ध हो जाता है। अपने विशुद्ध रूप से यही सब में व्याप्त हो रहा है और वेदरूप से यही सब कुछ बन रहा है। यह अव्यय पुरुष कामनाओं का समुद्र बनता हुआ काममय कहलाता है। (ऐ० आरण्यक) इस काममय अव्यय समुद्र में से वेद द्वारा विद्या कर्मरूप अनन्त रत्न निकला करते हैं। विश्व का प्रत्येक पदार्थ उस महासमुद्र में से निकलने वाली एक-एक मणि है। इस प्रकार वेद रूप से वही नाना रूप मणि है और एकांश से वही सूत्र (डोरा) है। मणि-माला की मणिएँ व्यक्त है और सूत्र अव्यक्त है। इसी मणिमाला का दिग्दर्शन कराते हुए भगवान कहते हैं—

मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनंजय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥
(गीता ७।७)

विश्वमूर्ति स्थितितत्व 'जू' भाव है और गतितत्व 'यत्' भाव है। जू भाव सर्वथा अनेजत् (कम्पन रहित) है और यत्भाव सर्वथा राजत् (स्थिति रहित) है। राजत् और अनेजत् की समष्टि यज्जू है, यही यजुर्वेद है। मन प्राण-वाङ्मय अव्यय के कर्मभाग का विकास यजुर्वेद है। विज्ञान ऋग्वेद है और आनंद सबकी आनंदभूमि बनता हुआ सामवेद है। इस प्रकार स्थितिगतिरूपा यह वेदत्रयी सर्वत्र व्याप्त हो रही है। इस वेद को हम 'आत्मधृतिवेद' (आत्मा को धारण करने वाला वेद) एवं 'पुरुषवेद' आदि नामों से भी कह सकते हैं।

जीवन में—

श्री सुदर्शन सिंह

जब मैं जीवन की चर्चा करता हूँ तो मेरा मतलब केवल व्यक्तिगत जीवन से नहीं होता। मेरे जीवन का अर्थ है विश्व का जीवन। फिर भी मैं देखता हूँ कि व्यक्ति एवं विश्व के जीवन के नियमों में कोई विशेष अन्तर नहीं। जीवन—चाहे वह व्यक्ति का जीवन हो, समाज का जीवन हो, धर्म का जीवन हो, भाषा का जीवन हो या राष्ट्र का जीवन हो, सभी एक नियम पर चलते हैं। भोजन करो—इतना भोजन करो जिसे पचा सको। यही जीवन का नियम है। भोजन न करने वाला तो मरेगा ही, जो इतना भोजन या ऐसा भोजन करे कि उसे पचा न सके, उसे अजीर्ण होगा। सारे रोगों की जड़ है उदर-विकृति। अजीर्ण उसे रोगी बना देगा और यदि समय रहते उसकी उचित चिकित्सा न हुई तो वह मृत्यु के मुख में पहुँच जावेगा। ये किसी के भी जीवन एवं मृत्यु के नियम हैं। व्यक्ति में तो इनका उपयोग हम स्पष्ट देखते हैं, व्यक्ति से परे भी इन्हें समझने में कोई कष्ट न होगा यदि हम तनिक विचार से काम लें। जो समाज अनशन कर रहा है, अर्थात् दूसरे आसपास के समाजों से अपने अनुकूल बातें ग्रहण न करके अपनी लकीर पर अड़ा है वह अवश्य नष्ट होगा। इसी प्रकार जो

समाज दूसरों की बातों का अन्धानुकरण करेगा, वह भी नष्ट होगा। दूसरों की उपयोगी बातें लेकर जैसी की तैसी नहीं रखनी चाहिए। उन्हें अपने ढग से लेना चाहिए। अन्न की भाँति उसे ऐसा पचा लेना चाहिए कि उसकी पृथक् सत्ता न रहनी चाहिए। यदि वह अपने समाज में त्यों का त्यों रहा, तो समाज को अजीर्ण हो जायगा और वह रोगी बन जावेगा। भारतीय समाज को पश्चिम के इस अन्धानुकरण का रोग लग गया है और वह अजीर्ण का रोगी हो गया है। साथ ही भारत के 'पुराने लोग' नितान्त उपवास के पक्ष में है। वे कुछ भी ग्रहण नहीं करना चाहते। इसी प्रकार हिन्दू-धर्म तब उपवास का पक्षपाती हो गया जब उसने दूसरों को ग्रहण करने से अस्वीकार कर दिया। वह पहिले से ऐसा नहीं था। शक, हूण प्रभृति को वह पचा चुका था। आज के वे लोग धर्म के अजीर्ण हैं जो पाश्चात्य प्रभाव में आकर अपने को धर्महीन बतलाते हैं। वे संस्कृति को ग्रहण तो करते हैं, किन्तु उसे पचा नहीं पाते। जो भाषा दूसरी किसी भाषा से एक भी शब्द किसी भी रूप में न लेना चाहे, उसका काम नहीं चलेगा। वह भाषा मृतक हो जायगी। लेकिन दूसरी भाषा के शब्द को अपने ढंग से लेना चाहिए। हिन्दी पत्रों एवं पुस्तकों में रोमन लिपि के शब्द भाषा के अजीर्ण को सूचित करते हैं। लिपि में इतना परिवर्तन हो कि दूसरी भाषा के शब्दों का ठीक उसी प्रकार उच्चारण हो सके जैसे उसके मूलरूप में होता है, इसकी भी कोई आवश्यकता नहीं। यह भी अजीर्ण ही है। बंगला के समान दूसरों के शब्दों को अपने ढङ्ग से ग्रहण करना तथा लिखना या बोलना चाहिए। उसके मूलरूप के अर्थ को रखकर भाषा का भण्डार भरा जाना चाहिए, न कि उसके बाह्य स्वरूप को लेकर। प्राकृतिक स्थिति एवं परंपरा के कारण एक ही भाषा भाषी लोगों में भी उच्चारण भेद होता है। इस प्रकार हम उच्चारण को कहाँ तक ला सकेंगे। ऐसे ही राष्ट्रों का भी जीवन है। जापान उस समय उपवास कर रहा था और [illegible] क्षीण हो गया था, जब कि वह अपने को संसार से पृथक् रखने में अपना लाभ देखता था। आज भारत में रशियन साम्यवाद का [illegible] राष्ट्रीयता का अजीर्ण है। साम्यवाद को जो अच्छा समझते हैं, उन्हें उसे भारत के अनुकूल रूप में पचाना होगा। मैं एक उदाहरण दूँगा, ब्रिटिश जाति, संस्कृति, राष्ट्र और शासन पद्धति अब तक जीवन का प्रमाण दे रही है। उनमें अनशन का रोग तो है ही नहीं। वे आस पास की प्रत्येक बात को उदारता से ग्रहण कर लेते हैं। वे जाति, संस्कृति, शासन, भाषा आदि सब में ग्रहण एवं परिवर्तन के पक्षपाती हैं। अंग्रेजी पता नहीं कितनी भाषाओं को लेकर बढ़ी है। ब्रिटिश प्रजातन्त्र अनेक पद्धतियों का समीकरण है। ब्रिटिश संस्कृति भी ऐसी ही है। गुणदोष तो सभी में होते हैं। परन्तु ब्रिटेन की दृष्टि से, ब्रिटेन के लिए उनकी यह जीवन शक्ति प्रभावकारी रही है और इसके बल से ब्रिटिश जाति संसार के अधिकांश भाग में ऊंची उठ सकी है। ग्रहण के साथ पचा लेने की अद्भुत शक्ति हम ब्रिटिश संस्कृति में पाते हैं। उन्होंने जहाँ और जो कुछ भी अपनाया है, अपने ढंग से। इस ढंग से कि हम सहसा नहीं कह सकते कि 'यह' अमुक स्थान से लिया गया है। इस प्रकार के ज्ञान के लिए हमें गम्भीर अन्वेषण करना पड़ेगा। जीवन शक्ति का ठीक यही रूप साधक अपने पथ में भी पाता है। अध्यात्म [illegible] अधिभूत का विरोधी नहीं है। अपितु अधिभूत अध्यात्म का ही प्रत्याभास है। यदि साधक एक साधन को लेकर प्रतिज्ञा कर ले, मैं और कुछ नहीं करूँगा तो उसका पथ [illegible] हो जायगा। अपने साधन पर स्थिर रहते हुए भी

उसे आवश्यकता पड़ेगी परिस्थिति से झगड़ने की। ऐसी स्थिति में उसे सहायता चाहिए। सहायता का अर्थ यह नहीं होना चाहिए कि वह दुनिया भर की क्रियाएँ करे। यह तो फिर दूसरे साधनों का अजीर्ण हो जायगा। उसे दूसरे साधन अपने ढंग से स्वीकार करना चाहिए। जैसे एक नाम जापक है। शुद्धाहार, आसन, ध्यान, प्राणायाम आदि उसे भी चाहिए ही। लेकिन हठयोगी की भाँति इनके पीछे हाथ धोकर पड़ने की आवश्यकता नहीं। साधारण आहार, किसी भी आसन पर कुछ देर बैठ लेने का अभ्यास। मुद्रा आदि के बखेड़े से दूर रहकर नाम में एकाग्रता से जो प्राणायाम हो जाय, उतना प्राणायाम और नामीका ध्यान। इतना उसे भी योग का स्वीकार करना चाहिए। अपने आस पास जो कुछ भी है, उससे उदासीन न रहते हुए उसमें से जो आवश्यक और उपयोगी हो, उसको अपने ढंग से अपना कर पचा लेना। उसके सार अंश को ग्रहण करके शेष को छोड़ देना। उसको अपने भीतर इस प्रकार एक कर लेना जिसमें उसकी पृथक् सत्ता ही न रह जावे, यह है जीवन का लक्षण।

मंत्र जप का प्रभाव

श्री ज्वालाप्रसाद जी खरे

मंत्र क्या है? मंत्र विशेष शब्दों का एक समूह है जो अपना किसी न किसी प्रकार का अर्थ रखता है। उन शब्दों के अर्थ का साकार होना ही मंत्र का सिद्ध होना कहा जाता है।

मंत्र का जपना अर्थात् भगवत भजन करना प्रत्येक को अत्यंत आवश्यक है, वर्तमान काल के मनुष्यों का मंत्रों से विश्वास उठ गया है और जिनका है भी वे श्रद्धा व विश्वास न होने से उसमें सफल नहीं होते। परंतु यह उनका नितांत भ्रम है, इसी भ्रम के दूर करने के लिए वैज्ञानिक रीति से सिद्ध किया जाता है कि शब्द को गति देने से क्या क्या प्रभाव पड़ता है जिसको अच्छी तरह से समझ लेने पर मंत्र के जपने की प्रत्येक को श्रद्धा हो सकती है।

अनंत आकाश वायु सागर में जीवनशक्ति (अमृत) परिपूर्ण है, जिससे सब प्राणी जीवित हैं, वायु में जीवनशक्ति का होना विज्ञान की दृष्टि से सिद्ध हो चुका है, और यह भी सिद्ध हो चुका है कि प्रत्येक वस्तु के परमाणु हैं और वह सूक्ष्म से सूक्ष्म होने से अदृश्य हैं। वही परमाणु एकत्रित हो जाने से वस्तु साकार हो जाती है। प्रत्येक वस्तु के परमाणु इस अनन्त आकाश वायु सागर में परिपूर्ण जीवन शक्ति द्वारा विचर रहे हैं।

यह भी स्पष्ट है कि शब्द से धक्का लगता है, और शब्द जितना तीव्र तथा कोमल होता है उसी के अनुसार शब्द के धक्के का छोटा व बड़ा प्रभाव पड़ता है। अनंत आकाश वायु सागर में किसी भी प्रकार का शब्द हो, स्पर्श होते ही लहर उठती है और लहर से परमाणुओं में धक्का लगता है।

आयुर्वेद और योगविद्या का खास उद्देश्य यही है कि हमारी प्राणवायु (अमृत शक्ति) शरीर के प्रत्येक मर्म भाग में प्रवेश करे जिससे मन की छिपी हुई ऋद्धियाँ सिद्धियाँ जाग्रत हों और शरीर का स्वास्थ्य ठीक बना रहे। हमारी चेतना इतनी विशाल और ऋद्धियों सिद्धियों की कोष है कि वह उतना काम नहीं कर पाती जितना कि उसे करना चाहिए। अर्थात् हम अपने दिमाग की पूरी शक्ति से काम नहीं ले पाते और न ऐसी तरकीब ही हमें मालूम है कि जिससे दिमाग की सब शक्तियों को जाग्रत कर सकें और वह पूरा पूरा काम दे सकें।

यद्यपि योगविद्या ने प्राणशक्ति से आवश्यकतानुसार काम लेने और सिद्धियों को जाग्रत करने का क्रिया को बताया है, परंतु उस विद्या को हर कोई बिना गुरु के नहीं जान सकता और न उसके जानने की प्रत्येक को श्रद्धा ही है। इससे कुछ महर्षियों ने प्राण उपयोग रहस्य को गुप्त रख कर परमात्मा का नाम (जो ओम् शब्द में विद्यमान है) जपने का उपदेश किया है, और प्रत्येक मनोर्थपूर्ण करने का महत्व नाम जपने में बताया है।

शब्द उच्चारण करने या मंत्र जपने से शरीर के प्रत्येक परमाणु को धक्का लगता है, धक्का लगने से गति होती है, अर्थात परमाणु चलते हैं, और गति से गर्मी उत्पन्न होती है, गर्मी से शरीर का स्वास्थ्य ठीक बना रहता है। अत्यंत गर्मी पहुँचाने से यानी नाम जपने से दिमाग की गुप्त ऋद्धि सिद्धि का कोष खुल जाता है, और उससे हम जैसा चाहें वैसा काम ले सकते हैं। ऐसी क्रिया करने वालों को ही महात्मा कहते हैं और महात्माओं ने उपरोक्त क्रिया को ही तपस्या कहा है, और वह इस लिए कि शब्द उच्चारण से धक्का, धक्का से गति, गति से गर्मी और गर्मी से विकास प्रत्येक वस्तु का होता है, और यही तप है जो ऋद्धि सिद्धि का देने वाला है।

गर्मी अर्थात तपस्या ही कुल काम करने वाली है, वह गर्मी शब्दों से उत्पन्न होती है। शब्द या इच्छा मन से होता है, मन प्राण शक्ति के आश्रित है, और प्राणशक्ति आत्मा से संबंधित है तथा आत्मा परमात्मा से। चूँ कि गर्मी का कारण सूर्य है और सूर्य का कारण परमात्मा है। अतः मन, आत्मा, प्राण, सूर्य और परमात्मा कार्य व्यवहार में अलग अलग भासते हुए भी एक हैं। एक के बिना दूसरा नहीं रह सकता। इनमें से जहाँ एक है वहीं सब हैं अर्थात् एक ही वस्तु के सब पर्याय-वाची नाम हैं जो शब्दों से जाग्रत किये जाते हैं। जिसकी क्रिया मंत्र जपना (परमात्मा का नाम लेना) है। जैसे कि वेदों ने ईश्वर का रूप नहीं बतलाया बल्कि उसका नाम ॐ शब्द में विद्यमान होना कहा है। इसलिए जप का कारण शब्द ही है।

शब्द उच्चारण करने या मंत्र जपने का प्रभाव सबसे पहिले मंत्र जापक के शरीर पर पड़ेगा, अर्थात् सबसे पहिले शरीर के जीवन परमाणु गरम होकर प्रत्येक गुप्त और प्रकट नस नाड़ी और तंतु इत्यादि तथा दूसरे भी सूक्ष्म नसाजात (जिसे आयुर्वेद विज्ञानी भी नहीं जान सके हैं) में गर्मी पहुंचावेंगे, जिससे वे ठीक ठीक स्वास्थ्यवर्धक क्रियाएं करने लगेंगे। फिर अधिक मंत्र जपने से बाहर के जीवन शक्ति परमाणुओं में धक्का लगना प्रारंभ होगा, और लगातार धक्का लगने से वे बाह्य परमाणु अत्यंत गरम हो जाते हैं। अधिक से अधिक गर्मी पहुँचाने से वह गर्मी अपने कारण में लय होती है, अर्थात् सूर्य की तरफ आकर्षित होती है, और फिर कारण (सूर्य) से वह शक्ति जापक को वापिस प्रदान होती है जिस लिए इच्छा से शब्द या मंत्र उच्चारण किया गया है। अर्थात् वह इच्छा जापक की पूर्ण हो जाती है। ऐसी ही क्रिया प्रत्येक शुभाशुभ शब्द उच्चारण की है।

तपस्या का रहस्य भी यही है और इसी कारण तपस्वियों के शब्द श्राप तथा आशीर्वाद में तत्काल प्रभाव दिखाते हैं, क्योंकि उनके शब्द अधिक गर्मी पाये हुए होते हैं जो कि एक ही बार उच्चारण करने से ही वायुमंडल के परमाणु गरम होकर साकार क्रिया कर दिखाते हैं।

शास्त्रों, ऋषियों, मुनियों ने कहा है कि पूरे विश्व में एक चैतन्य शक्ति, जिसे आत्मा या ईश्वर कहते हैं, व्याप्त है। हमारा उच्चारण किया हुआ शुभाशुभ शब्द (मन ही मन का अथवा प्रकट का) उसी चैतन्य शक्ति को

साकार कर दिखाता है। यही रहस्य प्रत्येक अंशांश शक्ति के अवतार का है। विशेष शुभ शक्ति अंश होने से साकार आत्मा (सशरीर) ईश्वर अवतार या महात्मा कहलाती है।

शब्दों में रचना करने की बड़ी प्रबल शक्ति है, जो काम हम वर्षों में नहीं कर सकते उसको शब्द शक्ति कुछ क्षण ही में कर दिखाती है। उसी शब्द लहर द्वारा अभिलषित वस्तु आकर्षित होती है और कार्य सिद्ध होता है।

सारांश यह है कि जो शुभ-कामना हम चाहते हैं वह सब आकर्षण शक्ति के अधिकार के भीतर है और आकर्षण शक्ति का प्रत्येक वस्तु के परमाणुओं के साथ कंपन या लहर का संबंध है, जो शब्दों द्वारा आकर्षित और विकसित किये जा सकते हैं, अर्थात् सब वस्तुओं के प्राप्त करने का मूल साधन शब्द है और इस प्रकार बड़ी से बड़ी कामना भी जप (मंत्र) द्वारा पूर्ण हो सकती हैं।

परलोक में मन का महत्व

वक्ता श्री ब्रह्मानंद ब्रह्मचारी अनु०—गोपीवल्लभ उपाध्याय

[इस लेखमाला का प्रथम लेख जुलाई १९५२ के 'कल्पवृक्ष' में देखिए]

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, परलोक में अवचेतन मन और चेतन मन दोनों मिलकर हमारा मन बना हुआ है, इसीलिए हमारे मन की शक्ति बहुत ही अधिक है। यही कारण है कि तुम्हारे बुलाने पर हम एक करोड़ मील दूर होते हुए भी घड़ी भर में आ जाते हैं, यह उस मन की प्रबल शक्ति का ही परिणाम है। जैसे ही हम इच्छा करते हैं कि हमें अमुक जगह जाना है तुरंत ही हम वहाँ पहुँच जाते हैं। अर्थात् इस लोक में 'दूरी' नाम की कोई वस्तु ही नहीं है। इसका भी कारण केवल हमारे मन की क्षमता ही है। लोग सोचते हैं कि इतनी शीघ्रता से हम कैसे यहाँ आ जाते हैं ? क्योंकि वे सभी बातों को नैसर्गिक कार्य-पद्धति की दृष्टि से ही देखते हैं। किंतु यही उनकी भूल है। क्योंकि यहाँ हम मनोजगत में हैं। अतएव हमारे किसी भी व्यापार (कार्य) को पृथ्वी के माप दंड से नहीं परखना चाहिए। इसीलिए मन की शक्ति के सम्बन्ध में भली भाँति जाने बिना यहाँ के किसी कार्य या गति-विधि को भूलोक के मानव कदापि समझ नहीं सकते और इसीलिए वे उस पर विश्वास भी नहीं करते।

यहाँ परलोक में हम लोग जिन भवनों में निवास करते हैं, वे किन्हीं राजमिस्त्री के बनाये हुए नहीं हैं। वैसे यहाँ मृत राजमिस्त्री खोजने पर अनेक मिल सकते हैं; किंतु जिन वस्तुओं से भवन तैयार किये जाते हैं वे यहाँ कैसे मिल सकती हैं ? और भवन तो हमें चाहिए ही। क्योंकि हमारे मर जाने का अर्थ यह कदापि नहीं हो सकता कि हम किसी वृक्ष के नीचे ही दिनरात काट देते हैं। क्योंकि पृथ्वी पर रहते हुए हमने जिस प्रकार के मकानों में रहने का अभ्यास किया था, वैसे ही भवनों की हमें यहाँ भी आवश्यकता रहती ही है। ऐसी दशा में तुम्हारे सामने यह विकट प्रश्न उपस्थित होना स्वाभाविक है कि, बिना सामग्री के भवन कैसे बनते होंगे ? किंतु हमारे लिए यह एक अत्यंत साधारण कार्य है, जिसे हम प्रतिदिन करते रहते हैं। हमारी इच्छाशक्ति द्वारा यह सब होता है।

अर्थात् हम अपने में इच्छा करते हैं और उसी के अनुसार मृत्युलोक की ही तरह सुविधा-

जनक भवन तत्काल तैयार हो जाता है। उसके लिए हमें ईंट, चूना या लोहे-लक्कड़ की सामग्री नहीं लानी पड़ती। यदि तुम यहाँ के एक भी मकान को देख लो, तो पुलकित हो उठोगे! तुम्हें सब वस्तुएँ उसमें पृथ्वी के मकान जैसी ही मिलेंगी। इस प्रकार यह असंभव कार्य भी केवल मन की शक्ति-द्वारा ही सम्पन्न हो जाता है।

पृथ्वी पर तुम जिन लता वृक्ष एवं नदी-पर्वत या भवन-अट्टालिकादि को देखते हो, वे सब यहाँ केवल मानसिक शक्ति से तैयार हो जाते हैं। पृथ्वी पर तुम पहले से उस वस्तु का कल्पित मानचित्र बनाकर ही उसके लिए सामग्री जुटाते और तब उसको तैयार करते हो। क्योंकि वहाँ सब वस्तुएँ स्थूलरूप में है। अतएव तुम उन्हें काट छाँट कर इच्छानुसार सब कुछ निर्माण कर सकते हो। किंतु यहाँ स्थूल वस्तु कैसे मिल सकती है ? क्योंकि परलोक तो सूक्ष्म वस्तुओं का देश है। हम भी सूक्ष्म देहधारी हैं; अतएव हमारी सभी वस्तुएँ भी सूक्ष्म पदार्थों से बनी हुई हैं। हमारे शरीर में हाड़-मांस-रक्त आदि स्थूल वस्तु कुछ भी नहीं है। केवल वायु, आकाश, और ईथर से बनी हुई ही सब वस्तुएँ हैं। अथवा यों कहना ठीक होगा कि वे केवल 'गैस' के समान हलकी सामग्री से निर्मित हुई हैं। अतएव मन अपनी 'अभिज्ञता' के अनुसार सब वस्तुएँ निर्माण कर लेता है।

उस अभिज्ञता के बल पर ही वह (मन) अनायास यहाँ मानसिक भवन तैयार कर लेता है। यहाँ प्रश्न हो सकता है कि वह भवन वास्तविक हो सकता है या नहीं ? किंतु 'वास्तविक' शब्द ही तुलनात्मक है। क्योंकि तुम्हारे लिए जो वास्तविक (Real) है, वही हमारे लिए अवास्तविक (Unreal) है। जैसे तुम्हारे हिसाब से पृथ्वी (Real) वास्तविक है, जब कि हम उसे अवास्तविक ही मानते है, वह क्षणभंगुर ही है। क्योंकि हमारे देश (लोक) में नाशमान तत्व कुछ भी नहीं है। वहाँ मृत्यु, क्षय अथवा ध्वंस का नाम तक नहीं है। इसी लिए तुम्हारी दृष्टि से तुम्हारे भवन वास्तविक (Real) हैं और हमारी दृष्टि से हमारे। किंतु इस पर से यह नहीं समझ लेना चाहिए कि यहाँ के भवन किन्हीं भारी पत्थरों या ईंट लोहे से बनाये जाते होंगे। क्योंकि वैसे भवनों को खड़े रखने के लिए यहाँ आधार (भूमि) ही क्या हो सकता है ? यहाँ तो हम ईथर के समुद्र अथवा वायु और आकाश तत्व में विचरते हैं। अतएव हमारे भवन भी मानसिक-स्वरूप द्वारा निर्मित हैं। किंतु हम उन्हें जब चाहें बना लेते हों और जब चाहें तभी भंग कर सकते हों, ऐसी बात नहीं है। वरन् जब तक हमारी इच्छा हो, तब तक वह बना रहता है। इसके बाद जब उसकी आवश्यकता नहीं रहती ; तभी वह अन्तर्हित हो जाता है। अर्थात् जिस प्रकार चित्रवत वह बनता है उसी प्रकार वह अंतर्हित भी हो जाता है। मन की उस धारणा शक्ति को तुम्हारे लिए समझ सकना अत्यन्त कठिन है। क्योंकि यदि तुम गंभीरता से विचार करोगे तो ज्ञात होगा कि तुम्हारी पृथ्वी पर आधा भाग मन का है और आधा भाग वस्तु (Matter) का है। किस प्रकार ? सो देखिये। तुम किसी वृक्ष या पौधे को देख कर उसे संपूर्ण रूप से (Real) वस्तु मानते हो। किंतु यह विचार नहीं करते कि तुम्हारे मन ने उसे वृक्ष या पौधा मान लिया है, इसीलिए तुम उसे उस रूप में देखते हो। किंतु यदि उससे तुम अपने मन को हटा कर देखोगे तो तुम्हें पता नहीं लगेगा कि वह वृक्ष या पौधा है अथवा नहीं। अर्थात् जिस प्रकार मन के द्वारा तुम्हारे सब काम होते हैं, वैसे ही हमारे भी होते हैं। पृथ्वी पर जिन लोगों को उन्माद हो जाता है, उनका मन वास्तविक दशा में नहीं होता। अर्थात् स्वस्थ मन से तुम जो कुछ देखते हो, उन्मत्त मन से या शिथिल मन के द्वारा वह सब नहीं दिखाई

देगा। अतएव पागल आदमी जो कुछ देखता या बोलता है उस पर तुम हँसने लगते हो! इसीलिए पहले मन की शक्ति को भलीभाँति समझो। यदि हम मन को छोड़ दें तो हमारे लिए कुछ भी शेष नहीं रहता; क्योंकि मन ही हमारा सर्वस्व है। वैसे ही यदि विचार किया जाय तो तुम्हारे लिए भी मन ही सब कुछ है। अंतर केवल इतना ही है कि हमारा मन जितना दूर-प्रसारी है उतना तुम्हारा नहीं, क्योंकि तुम्हारे मन के मार्ग में अनेक बाधाएँ हैं; जबकि हमारा मन सर्वथा बाधामुक्त है और इसीलिए हमारा मन विशेष शक्तिशाली है। इसी प्रकार तुम्हारे मन का द्वितीय भाग है 'अवचेतन मन'; जिसका कोई अस्तित्व नहीं है। यहाँ तो उन दोनों ही भागों को मिलाकर बना हुआ हमारा मन है। इसीलिए वह असीम क्षमताशाली है।

किंतु इस पर से तुम यह प्रश्न कर सकते हो कि इतना शक्तिशाली मन होते हुए भी हम (आत्मिक) अपना नाम धाम आदि परिचय क्यों ठीक से नहीं दे पाते? इसका कारण तुम नहीं जानते। यद्यपि स्मरणशक्ति तो पृथ्वी पर से चलने के पूर्व जैसी थी उसी को लेकर हम यहाँ (परलोक) में आये हैं। किंतु जैसे यदि किसी प्रकार का आघात लगने से किसी की मृत्यु हुई हो तो उसके फलस्वरूप उसका स्नायुकेन्द्र छिन्न-भिन्न हो जाता है। जैसे कि तुम्हारे (मूल लेखक श्री राजेन्द्रलाल आचार्य के) पुत्र रंजन का हुआ है। अर्थात् जापानी कमान का बम् गोला उसके एकदम पास में ही मिकटिला में फूटा और उसमें से भीषण लोहे की किरचें निकल पड़ीं। उन्हीं में से एक रंजन के पेट में घुसने से वह बुरी तरह घायल हो गया और उसका शरीर काँपने लगा। उसे तुरंत फौजी अस्पताल में ले जाया गया। उसीके मुँह से सुना था कि, उस आघात से बचाने के लिए उसकी शिराओं में नवीन रक्त पहुँचाने तक डॉक्टर ने प्रयत्न किया। किंतु रंजन नहीं बचाया जा सका। यह सब उसने स्वयं हमारे पास उपस्थित होकर अपने मन की भाषा में सुनाया है। अर्थात् इस प्रकार उसका स्नायु-केन्द्र विध्वस्त हो जाने से उसकी स्मृतिशक्ति भी दुर्बल हो गई। अतएव प्रारंभ में वह किसी भी बात को भलीभाँति नहीं सोच सकता था। किंतु जब धीरे धीरे उसकी स्मरणशक्ति लौटी, तब उसका मन क्रमशः बलवान होता चला। और आज तो वह विशेष रूप से कार्यक्षम बन गया है।

सारांश, इस प्रकार जिसकी स्मरणशक्ति नष्ट हो जाती है, वह यदि उसी दशा में यहाँ आता है तो उसे कोई भी बात याद नहीं रहती और यहाँ वह कुछ भी नहीं बता सकता। अवश्य ही वे सब बातें पृथ्वी पर के जीवन की होती हैं। किंतु यहाँ आकर वह जो कुछ जानता है उसे तो भलीभाँति सुना सकता है। अर्थात् वह अपना अतीत भूल जाता है। उसका वर्त्त-मान जाग्रत हो जाता है। इसीलिए वह अपना नाम भूल जाय तो आश्चर्य ही क्या?

इस पर यदि पृथ्वी (भूतल) के मानव इसे असंभव बतलाना चाहें तो उन्हें हम यही सलाह देंगे कि वे किसी जीवतत्वज्ञ से स्नायविक विधान को भलीभाँति समझ लें। उन्हें हमारे कथन की यथार्थता ज्ञात हो सकती है। यदि वे ऐसा नहीं करते, तो ऐसे सत्य-व्यापार को जिसका कि विश्लेषण वे नहीं कर सकते उसे अविश्वसनीय बताना किसी भी बुद्धिमान मनुष्य के लिए उचित नहीं कहा जा सकता। क्योंकि विज्ञान को छोड़कर इस जगत् में घड़ी भर भी काम नहीं चल सकता। उसी प्रकार तुम्हारी पृथ्वी पर भी विज्ञान को छोड़कर जीवन की रक्षा नहीं की जा सकती। अतएव प्रेततत्व को उपेक्षा में न उड़ा देकर विज्ञान की सहायता से उसे समझने का प्रयत्न करना चाहिए।

जैसा कि हमने पहले बताया है यहाँ हमारा मन ही घर-द्वार निर्माण करता है; और जब

अनेक आत्मिकों का आवाहन कर उनसे पूछा जाता है, तो उनमें से कोई अपना घर काठ का बना हुआ बताता है और कोई पत्थर का। इसका कारण भी यही है कि जो अभी अभी यहाँ (परलोक में) आये हैं, उनमें कोई पृथ्वी पर काष्ठ-निर्मित गृहों में रहते थे और कोई ईंट पत्थर के मकानों में, अतएव वे अपनी उसी स्मृति को लेकर यहाँ आने के कारण, यहाँ भी वे वैसे ही मकानों में रहने की बात कहते हैं। क्योंकि उनका मन वैसे ही मकानों की भावना का अभ्यस्त होता है।

इसी प्रकार पृथ्वी पर से जो लोग अपने मन पर जिस प्रकार की छाप लेकर आते हैं, वे यहाँ आकर उसी का गीत गाते हैं, ठीक ग्रामोफोन के रेकार्ड की तरह। अतएव यदि वह छाप अस्पष्ट हो या उस पर दूसरी कोई छाप लग गई हो अथवा कोई आवरण आ गया हो तो वह गान भी अस्पष्ट या वेसुरा हो जायगा अथवा बिलकुल ही नहीं सुनाई देगा। अर्थात यदि मन पर पड़ी हुई छाप स्पष्ट हो तो वह व्यक्ति यहाँ आकर कुछ समय तक अपने पूर्व जीवन की अनेक बातें भलीभाँति सुनाता है। किंतु जहाँ ऐसे लोग नहीं होते अर्थात् जिनके मन पर पड़ी हुई छाप मिट जाती या धुँधली पड़ जाती है, वे अपने स्त्री-पुत्रादि के नाम तो दूर की बात, खुद अपना नाम तक भूल जाते हैं।

मान लीजिए कि कोई व्यक्ति पाँच वर्ष पूर्व परलोक में आया है और उन पाँच वर्षों तक उसके कान पर अर्थात् उसके मन के सामने किसी ने उसके आत्मीय स्वजन का नाम नहीं लिया हो, तो वह निश्चय ही उसे भूल जायगा।

इसी प्रकार मृत्यु के पश्चात् वैतरणी पार करने पर प्रायः थक जाने से आत्मिक को नींद आ जाती है। और वह नींद कब टूटेगी, यह भी कोई नहीं जानता। क्योंकि ऐसा भी देखा गया है कि किसी किसी की नींद ५०।६० वर्षों तक भी चलती है। जो भी हो। इस प्रकार की मोह निद्रा के कारण वह यदि अनेक बातें भूल भी जाय तो क्या आश्चर्य ? किन्तु नींद से जगने पर वह अपने आपको एक नये जगत् में पाता है। फिर भी वहाँ के दृश्य-व्यापार अधिकांश भूलोक जैसे ही होते हुए भी वहाँ के विधि-विधान, आवागमन आदि वह सर्वथा विभिन्न देखता है।

अतएव वह उस नवीन परिवेश के साथ अपने मन को लगाता है और ऐसी दशा में धीरे धीरे पुरातन को उसका मन स्वभावतः भूल जाता है। अर्थात् उसके मन पर यद्यपि सर्वत्र पूर्ण रूप से उस नूतन परिवेश का अधिकार नहीं हो जाता, फिर भी वहाँ अवचेतन मन का अस्तित्व न होने से पुरानी बातों को याद रखने के लिए मन में कोई साधन नहीं रह जाता।

(२)

परलोक में जीवन-क्रम

परलोक में आत्मिक का मन पृथ्वी से जिस अभिज्ञता को लेकर आता है, उसी के आधार पर वह यहाँ घर-द्वार निर्माण करता है। अर्थात् मन पर पड़ी हुई छाप के अनुसार वह गृहादि निर्माण कर लेता है। किन्तु वे घर-द्वार दीर्घ काल पर्यन्त कैसे टिक सकते हैं ? केवल मन की प्रबल शक्ति के द्वारा ही यह संभव है। हम लोग परलोक में केवल खाते-पीते और सोते नहीं हैं और न दिन-रात केवल जप या ध्यान ही करते रहते हैं। बल्कि हमारा कार्यक्रम इतना उत्तम है कि तुम लोग उसकी कल्पना तक नहीं कर सकते। हमारे एक दिन का कार्य तुम्हारे छः महीने के कार्य के बराबर होता है। और वह इसीलिए संभव है कि हमारा आवागमन मन के द्वारा होने से पहले तो समय की बचत हो जाती है। दूसरे हम मन को पूर्ण रूप से लगाकर काम करते हैं, अतएव उस समय अन्य किसी काम का विचार ही नहीं उत्पन्न होता। इसी का नाम है कर्म में एकाग्रता। तुम भी यदि इसी प्रकार एकाग्र होकर पृथ्वी पर काम करने लगो;

तो इस कथन की यथार्थता का अनुभव कर सकते हो। किन्तु ऐसा न करके तुम मन का थोड़ा सा अंश ही काम में लगाते हो और शेष अंश अनेक प्रकार के विचारों में उलझाये रखते हो। इसी लिए तुम्हारे कार्यों में इतनी भूलें होती हैं। तुम बातें बहुत करते हो, काम बहुत कम। इसलिए तुम इससे उलटा अभ्यास करो। अर्थात् बातें कम करो और काम अधिक करो। व्यर्थ बातों में शक्ति नष्ट कर देने पर तुम कार्य किसके द्वारा कर सकोगे? इसके लिए तुमको प्रतिज्ञा करनी चाहिए। किन्तु प्रतिज्ञा करके पालन करने में बाधाएँ अनेक आती हैं। और उनको दूर करने की शक्ति तुममें तभी आ सकती है, जब कि तुम सोलह आना मन लगाकर काम करने लगोगे।

हम लोग केवल काम ही करते हैं, बातें नहीं करते। इसीलिए जब हमारा मन किसी काम को हाथ में लेता है तो उसे सर्वाङ्ग रूपेण समाप्त किये बिना नहीं छोड़ता। तुम्हारे और हमारे मन में यही अन्तर है। अतः तुम लोग एकाग्र मन से सब काम करो।

हम यहाँ जो कुछ काम करते हैं, वह अपनी किसी सुविधा के लिए नहीं, वरन् सहस्रों आत्माओं के उपकार या हित के लिए ही करते हैं। अर्थात् समस्त परलोकवासी आत्माओं के कल्याण की साधना और उनका हित-चिन्तन ही हमारा कार्य है। इस कार्य में हमें किसी प्रकार की बाधाओं का भी सामना नहीं करना पड़ता। क्योंकि हमें भूख, प्यास या कामना-वासना से कोई प्रयोजन नहीं रहता। केवल समस्त आत्माओं के कल्याण की आकांक्षा ही हमें रहती है। इसी प्रकार परलोक में हमें अर्थ मान, यश या उपाधि प्राप्त करने की भी चिन्ता नहीं और न आहार-विहार के लिए ही कोई आयोजन करना पड़ता है। क्योंकि हम केवल इच्छा करने से ही खाते-पीते या चल-फिर सकते हैं। साथ ही इच्छा करने पर हम अपने समस्त प्रयोजन भी सिद्ध कर सकते हैं। किन्तु यह सब कैसे होता है, उस रहस्य को प्रकट करने का हमें अधिकार नहीं है। सारांश, परलोक में इस प्रकार सभी सुविधाएँ प्राप्त रहने के कारण ही हमारा मन एकाग्र होकर कार्यरत रहता है।

फलतः इस प्रकार की एकाग्रता के साथ जब मन घर-द्वार निर्माण करता है, और स्थिर बनाये रखता है; तब यहाँ ऐसी कोई बाधा या शक्ति नहीं है जो कि उन घर-द्वार को जरा भी इधर-उधर कर सके या तोड़-फोड़ सके। इसी कारण हमारे घर-द्वार, महान स्थिर रहते हैं, पर्दे पर के चित्र की तरह अंतर्हित नहीं हो जाते। हम कहीं भी क्यों न जायें, और किसी भी कार्य में क्यों न प्रवृत्त हों, किन्तु मन की शक्ति के कारण हमारे भवनादि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता और हम अपने कार्य से लौट कर उस घर में प्रवेश करके यथेष्ट विश्राम कर सकते हैं।

जब तुम लोग परिश्रम करते हो तो जितना शरीर थक जाता है; उतना मन नहीं; किन्तु यहाँ उससे ठीक उलटा क्रम है। यहाँ शरीर नहीं थकता, जो कुछ क्लांति होती है वह केवल मन को ही। उसे हम कुछ देर विश्राम या निद्रा लेकर दूर कर सकते हैं। और वह थकावट अधिक देर तक न रहने के कारण ही हमारा मन सदैव ताजा रहता है। उसकी कर्म प्रवणता किसी प्रकार भी कम नहीं हो पाती।

तुम कहोगे कि परलोक में दिन रात नहीं होते, तब सोते किस समय हो? क्योंकि दिन रात तीव्र प्रकाश रहने पर विश्राम कैसे कर सकते होगे? किन्तु ऐसी बात नहीं। क्योंकि हमारे यहाँ चन्द्र, सूर्य, ग्रह-नक्षत्रादि नहीं हैं, अर्थात् हम उनसे बहुत ऊपर हैं। किम्बहुना हम उस लोक के जीव हैं जहाँ—'न तत्र सूर्योभाति ने मा चन्द्रःकुतोऽयमग्निः' इत्यादि। इसी लिए सूर्य-चन्द्र एवं ग्रह-नक्षत्रादि के प्रकाश पैरों के नीचे ही रह जाते हैं। फिर भी यह मत समझ लेना कि हमारे यहाँ आकाश नहीं है। आकाश

भी है, और वह परम उज्ज्वल है। किन्तु वह तुम्हारे आकाश जैसा नीला नहीं और न वर्षा या बादल से मेघाच्छन्न ही है। न वह कुहरे या सर्दी-गर्मी से युक्त अथवा वासंती पूर्णिमा के आलोक से उज्ज्वल ही है। इसीलिए उसके कृष्णवर्ण होने की कल्पना मत कर लेना। क्योंकि वह एक ऐसे स्वर्गीय आलोक से सदैव उद्भासित रहता है, जिसमें दीप्ति है, किन्तु दाह नहीं। वह प्रकाश कहाँ से आता, इसे हम नहीं बतला सकते। किंतु वह अत्यन्त स्निग्ध और उज्ज्वल है। उससे हमारे नेत्रों को कष्ट नहीं होता। हमारी दृष्टि भी तुम्हारी तरह नहीं है। इसीलिए जहाँ जितना अधिक अन्धकार होता है, वहाँ हम उतनी ही सुगमता से देख सकते हैं। विशेष प्रकाश होने पर कुछ नहीं देख सकते।

जब हमारा मन निरन्तर कार्यरत रहने से थक जाता है, और विश्राम के लिए हम घर आते हैं, तब आकाश की दीप्ति कुछ कम हो जाती है। उसी को हम रात्रि कहते हैं। हमारी रात्रि सर्वदा ज्योत्स्नामयी होती है। हमारे यहाँ अमावास्या का अन्धकार नहीं है। उसे तो हम चोर-डाकुओं के लिए पृथ्वी पर ही छोड़ आये हैं।

उस मृदु आलोक में हम अपने घर में विश्राम करते हैं। किंतु हमारी नींद भी तुम्हारी तरह नहीं होती। वरन् उस नींद में थोड़ी देर के लिए आँखें मूँदकर मन को छुट्टी दे दी जाती है। वह समय कितना कम होता है, इसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। क्योंकि मन यथार्थ में कोई स्थूल पदार्थ नहीं है, इहदेही वस्तु नहीं है। इसी कारण कार्य-लिप्त रहने से उसमें कोई क्षय-क्षति नहीं हो पाती। जिस प्रकार पत्थर को घिसते रहने से वह क्षीण हो जाता है, वैसा हमारा मन नहीं है। वह कैसे ही कठिन कार्य में क्यों न प्रवृत्त रहे, उसकी शक्ति जरा भी क्षीण नहीं होती। इसीलिए कुछ क्षण विश्राम करने से काम चल जाता है। वह तो दिन रात काम ही करते रहना चाहता है। यहाँ हमारे लिए न कोई भोजन देने वाला है और न शय्या ही बिछाने वाला और न आने जाने के लिए कोई रथ-वाहनादि ही यहाँ हैं। अर्थात मन को ही ये सब काम करने पड़ते हैं और इसीलिए उसके विश्राम का समय बहुत ही कम होता है।

यहाँ शय्या निर्माण करने में मन को जितना श्रम करना पड़ता है, वह थोड़ी देर के विश्राम की दृष्टि से बहुत अधिक होने के कारण अधिकांश आत्मिक उस निरर्थक श्रम के द्वारा अपनी मानसिक शक्ति को क्षीण करना नहीं चाहते। इसीलिए जिसे तुम भूमि पर लेटना कहते हो, वही हम यहाँ करते हैं। किन्तु न तो यहाँ सूखी मिट्टी है और न कठोर पत्थर। वरन् यहाँ है मरुत्, व्योम और उसमें विचरणशील जड़ वस्तु के बिन्दु। इसीलिए उस पर लेटने से हमारे दिन परमानन्द में व्यतीत होते हैं। इसीलिए हमारा मन सदैव स्फूर्ति-युक्त रहता है। और कार्यक्षम रखने के लिए उसे ताजा रखना ही आवश्यक होता है। जैसे कि घास को ताजा रखने के लिए प्रयत्न करना पड़ता है। जहाँ संयम का अभाव होता है वहीं अपचय होता है। तुम्हारे यहाँ संयमहीनता के फलस्वरूप शरीर की ही तरह मन का भी अपचय होता है। किंतु यहाँ हमारा शरीर सूक्ष्मतत्वों से निर्मित होने के कारण उस पर तो असंयम का कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता, किन्तु मन का अनेक रूप में अपचय होता है। इस पर तुम यह जानना चाहोगे कि परलोक में संयमहीनता क्योंकर संभव है? किन्तु इस विषय में अधिक स्पष्टता से हम कुछ भी नहीं कह सकते। फिर भी संयमहीनता के लिए यहाँ भी पर्याप्त अवकाश है। अर्थात् वह संयमहीनता होती है पृथ्वी पर निवासकाल की अभिरुचि के रूप में। वहाँ जो मद्यपान करनेवाले थे, वे यहाँ मदिरा खोजते हैं, कामुक लोग कामिनी खोजते हैं। इसी प्रकार जो पेटार्थी हैं, वे यहाँ मधुर

खाद्य-पेय खोजते हैं। किन्तु ये सब वस्तुएँ यहाँ नहीं मिलतीं। यहाँ तो मन के लाये हुए लता के रस या उसके फल को पाकर ही हम प्रसन्न हो जाते हैं। मन के फल देने पर हम उसे खाते और रस देने पर उसे पीते हैं। क्योंकि यहाँ पृथ्वी पर के आम अमरूद या नारियल के वृक्षादि नहीं हैं। जब हम दूध पीने की इच्छा करते हैं तो हमारा मन उत्तलता-रस को दूध के रङ्ग और स्वाद से युक्त बना देता है। इसी से यहाँ संयम हीनता की कोई सामग्री नहीं मिल पाती। ऐसी दशा में जो लोग इन सब को खोजते हैं, वे परित्यक्त पृथ्वी की ओर चल देते हैं। और वहाँ वे मदिरालय एवं कामिनी की खोज तथा पेटार्थी भोजपदार्थों के लिए भटकते फिरते हैं। यद्यपि उनके पास उस उपभोग का कोई अवयव नहीं होता, फिर भी भोग की वासना प्रबल होने से वे दूसरों को उपभोग करते देखकर प्रसन्न होते हैं। कभी कभी दूसरों के मन पर अधिकार करके उसके द्वारा भोग भी करते और अपनी तृप्ति कर लेते हैं। अर्थात् इस रूप में उनकी संयमहीनता की चरमसीमा हो जाती है। इस प्रकार संयमहीनता करनेवालों के मन की शक्ति क्षीण हो जाती है।

यहाँ शासन की ऐसी व्यवस्था है कि सहज ही कोई पृथ्वी पर जाकर संयमहीन नहीं हो सकता। पकड़ा जाने पर दंड पाता है। इसी से दंड भय के कारण अधिकतर आत्मिक उधर नहीं जाते। और अनायास उन्हें संयमी बनना पड़ता है। अंततः अधिकांश जीव असंयमी नहीं हो पाते। उन्हें सर्वदा विविध प्रकार के उपदेश दिये जाते हैं। मन की शक्ति बढ़ाने और चरित्र बल का विकास करने के उपायों की ही वहाँ चर्चा होती है। और सब को उसमें सम्मिलित होना पड़ता है, कोई उससे अलग नहीं रह सकता।

इस पर तुम पूछ सकते हो कि करोड़ों व्यक्ति होने पर उन्हें कौन पकड़ सकता होगा? किन्तु यहाँ हजारों ही नहीं लाखों शिक्षक हैं और प्रत्येक के अधीन २०–२५ से अधिक प्राणी नहीं होते। वे ही असंयमी को दंड देते हैं। इन पर भी उच्चस्तर के आत्मिक होते हैं जो देख रेख करते हैं। इस प्रकार कठोर व्यवस्था रहने से कोई उच्छृङ्खल नहीं हो पाता।

प्रत्येक आत्मिक के चतुर्दिक एक तेजोवलय (प्रकाशचक्र Aura) होता है। इसे तुम प्रायः देवी-देवताओं के चित्रों में देख सकते हो। किन्तु यह चक्र सबके आसपास होता है, और हमारे मानसिक चक्षु इतने तीक्ष्ण होते हैं कि उस छटा को हम सहज ही देख सकते हैं। वह छटा शरीर के चारों ओर फुट-डेढ़ फुट तक फैली हुई रहती है। तुम्हें अतीन्द्रिय चक्षु प्राप्त न होने से उसे तुम नहीं देख सकते। इसी प्रकार खाद्या-खाद्य का भी तुम लोग विशेष विचार नहीं रखते और संयम का भी तुम्हारे यहाँ विशेष ध्यान नहीं रखा जाता। इसी से तुम उस छटा को नहीं देख सकते और बहुत छोटे बालकों में कोई कोई जो उसे देख सकता है, वह वाणी द्वारा उसे प्रकट नहीं कर सकता। वह प्रकाशचक्र ही प्रकट कर देता है कि किसके मन में क्या भाव उदय हुआ है। अर्थात् मन पर से उसके चरित्र का भी ज्ञान हो जाता है। इसीलिए उस तेजोवलय को देखते ही हम जान लेते हैं कि वह किधर जा रहा है। मन के परिवर्तन के ही साथ साथ उस छटा में भी परिवर्तन होता रहता है। अतएव पृथ्वी पर रहते हुए जो लोग मौज लूट कर यहाँ आते हैं, वे धोखा देकर यहाँ साधु नहीं बन सकते। फलतः अपने अपने संरक्षकों द्वारा वे अनायास ही पकड़ लिये जाते हैं। और पकड़े जाने पर दंड पाना भी अनिवार्य है; किंतु उसका विवेचन हम नहीं कर सकते। यही समझ लेना चाहिए कि यहाँ दंड-व्यवस्था है और उसे भोगना पड़ता है। इसीलिए यहाँ मन को निरंतर कार्यशील रखना पड़ता है, जिससे कि वह असंयमी न बन सके।

इसी प्रकार मन की हम इस्पात की छुरी से भी तुलना कर सकते हैं। जैसे थोड़े से प्रयत्न से छुरी की धार तेज़ की जा सकती है, उसी प्रकार मन को भी तेज-तीक्ष्ण बना सकते हैं। वही काम हमें यहाँ करना पड़ता है। जिस प्रकार पृथ्वी पर जितने भी भले मनुष्य हैं, उनको भी खोजने करने पर तुम अनेक प्रकार से मन को प्रखर (तीक्ष्ण-शुद्ध) करते हुए देखोगे। भगवान रामकृष्ण का नाम तो सुना ही होगा। उन्होंने कहा है कि सोने की घड़ी को भी परिष्कृत न करने पर उसमें मैल जम ही जाता है। मन भी सोने की घड़ी जैसा ही है। उसे भी सदैव स्वच्छ रखना पड़ता है। यहाँ वह क्रिया सतत होती रहने से ही हमारे मन पर मैल नहीं जमने पाता।

हम नेत्र वाले तो हैं, किंतु तुम्हारी तरह केवल दो ही चक्षु नहीं, वरन् इन्द्र की तरह हमारा समग्र शरीर ही चाक्षुष्मान है। फिर भी यह मत समझ लेना कि हमारे शरीर में सर्वत्र ही नेत्र बने हुए हैं। वे नेत्र तो हम पृथ्वी पर ही छोड़ आये हैं। उन्हें तो तुमने हमारे शरीर के साथ ही भस्म कर दिया है। फिर भी हम अनेक योजन दूर की वस्तु सहज ही देख सकते हैं। क्योंकि हमारे सारे शरीर में ही देख सकने की शक्ति विद्यमान है। उसे हम मन की सहायता से काम में लाते हैं। जिस प्रकार कि तुम लोग जिह्वा द्वारा खट्टे मीठे स्वाद चखते हो। शरीर में इंद्रियाँ यंत्र की तरह हैं। किंतु यह सब व्यापार तो पृथ्वी पर चलता है। हमारी समस्त इन्द्रियशक्ति का प्रयोग केवल मन के द्वारा ही होता है। इसीलिए मन ही यहाँ सब कुछ देखता है। मन ही सुनता और सर्दी-गर्मी अनुभव करता है। पृथ्वी पर भी यह शक्ति उसमें विद्यमान थी और यहाँ भी इसकी अभिज्ञता है। हर्ष शोक, हास्य-रुदन आदि सभी मन के धर्म होने से उनकी अनुभूति यहाँ भी होती है। पृथ्वी पर मन के जो धर्म थे, वे सभी यहाँ भी विद्यमान हैं। अंतर केवल इतना ही है कि वहाँ वे कुछ कुंठित (भोंठे) थे, यहाँ वे अधिक तीव्र हो गये हैं।

जिनके मन अतिशय तीव्र शक्तिशाली होते हैं वे 'दूरदर्शन' की शक्ति प्राप्त कर इंगलैण्ड अमेरिका ही नहीं संसार भर की बातें अनायास बतला सकते हैं। यह शक्ति ऋषि मुनियों को प्राप्त थी और आज भी किसी किसी को यह देखने में आती है। किंतु यहाँ (परलोक में) अनेक प्राणियों को यह सुलभ है। जो लोग सतत मन को शुद्ध करते रहते हैं उनमें यह शक्ति बढ़ती रहती है। तुम लोग तो इस व्यापार को देखकर चकित हो जाओगे। कुछ लोग इसे अचेतन मन की शक्ति मानते हैं; किंतु यह 'दूर दर्शन' रूपी विशेष शक्ति ही है, यहाँ योगी बन जाने पर यह शक्ति प्राप्त हो सकती है अथवा परलोक में आने पर जब तुम्हारा मन तीक्ष्ण से तीक्ष्णतर बन जायगा, तब तुममें भी यह शक्ति उत्पन्न हो जायगी।

हम यह सब जो कुछ बतला रहे हैं; वह मुँह से बोलकर नहीं; क्योंकि वह शक्ति हमें प्राप्त नहीं। अर्थात् हमारी अत्यंत हलकी जिह्वा तुम्हारी स्थूल वायु में शब्दों का भार नहीं उठा सकती। अतएव हम केवल मन के ही द्वारा यह सब लिखवाते हैं। हमारे विचारों का स्रोत चित्र की तरह मन पर अंकित होता है उसे हम चित्रलेखन कहते हैं। उस चित्र को हमारा मन अपनी शक्ति-द्वारा लेखक के मन और अँगुली पर प्रभाव डालकर उसे शब्दों में व्यक्त करता है। यदि वह कुशल-लेखक न हुआ तो बीच में उसे रुकना भी पड़ता है। किंतु दक्ष होने पर तो वह हमारी भावना के साथ साथ तीव्र गति से लिखता चला जाता है। जब तक तुम यह सब अपनी आँखों से नहीं देख लोगे; तब तक तुम्हें इस कथन पर विश्वास ही नहीं होगा। किंतु बंगाल में यह एक नया प्रयोग-स्वैर लेखन (Auto-writing) के रूप

में आरंभ हुआ है; जिसे हम गुरुकृपा का ही प्रसाद कह सकते है। क्योंकि वे इस प्रकार परलोक-विषयक यथार्थ-ज्ञान का भूलोक-वासियों में प्रचार कराना चाहते हैं। अपनी प्रबल इच्छा-शक्ति द्वारा वे अविरामगति से लेखक में इस शक्ति का संचार कर रहे हैं। इसीलिए लेखक विना भूल भ्रांति के यथावत् उन भावों को प्रकट कर सकता है। यह सब हमारी इच्छा-शक्ति का परिचायक है—मानसिक बल का सूचक है।

मानव-स्वभाव कैसे बदलें ?

प्रो० रामचरण महेन्द्र, एम० ए०

क्या मानव-स्वभाव परिवर्तित हो सकता है ? कई महानुभाव कह उठते हैं, "क्या बताएँ हमारा तो क्रोध का स्वभाव है, हमें जल्दी ही गुस्सः आ जाता है। हम उत्तेजना को रोक नहीं पाते। लड़ बैठते हैं। हमारी किसी से नहीं बनती।" कुछ व्यक्ति दूसरों की टीका-टिप्पणी करने, दोष निकालने, पीठ पीछे बुराई करने में बड़ा आनन्द लेते हैं। वे जानते हैं कि यह उनके स्वभाव का दोष है पर बेचारे स्वभाव से मजबूर हैं।

मानव-स्वभाव को बदला जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति यदि अभ्यास करे, तो वह अपनी पुरानी गन्दी आदतें छोड़ कर अच्छी आध्यात्मिक आदतें धारण कर सकता है। प्रेम, सहानुभूति, मैत्री भाव, इत्यादि प्रत्येक आदत का विकास निरन्तर अभ्यास से होता है।

आदतें हमारा स्वभाव निर्माण करती हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रत्येक आदत एक मानसिक मार्ग है। पुनः पुनः एक कार्य को दोहराने से एक विशेष प्रकार की आदत का निर्माण होता है। प्रत्येक गन्दी आदत का विरोधी शुभ भाव बढ़ाने का अभ्यास करें। इस नवीन आदत को दृढ़ सङ्कल्प से बढ़ाते रहें। जो न्यूनताएँ या असभ्यताएँ आपके चरित्र में आ गई हैं, उन्हें निकालने के लिए उनकी विरोधी शिष्टताओं को धारण कर प्रत्येक व्यक्ति नये व्यक्तित्व का निर्माण कर सकता है।

अशिष्ट आदतों की मानसिक जड़ें बचपन के दूषित कुसंस्कार हैं, जिन्हें बच्चे घर से, मुहल्ले के गन्दे बच्चों तथा स्कूल से सीखते हैं। ये अन्तर्मन में प्रविष्ट होकर जटिल ग्रन्थियाँ बन जाती हैं।

इसके विपरीत जो शिष्टता की आदतें हमारे बचपन में बरबश अन्तर्मन में प्रविष्ट करा दी जाती हैं, वे हमारे आकर्षण का विषय बन जाती है। छोटे बच्चों का शिष्टाचार सम्बन्धी शिक्षा न देने के कारण उनका उच्च सोसाइटी में प्रविष्ट होना कठिन हो जाता है। बच्चे निरन्तर हमारा अनुकरण किया करते हैं।

यदि हम अपने बच्चों को शिष्ट, सभ्य, आकर्षक, सुन्दर और उत्तरदायित्वपूर्ण नागरिक बनाना चाहते हैं तो यह आवश्यक है कि हम स्वयं उनके सन्मुख शिष्ट व्यवहार का ऐसा नमूना प्रस्तुत करें जिसका अनुकरण उन्हें जीवन में उत्साह और प्रेरणा प्रदान कर सके। जो माँ बाप स्वयं व्यवहार में ढीले ढाले हैं, प्रातःकाल शय्या त्यागने, दन्तमजन, स्नान, पूजापाठ, या वस्त्र धारण तथा उन्हें यथास्थान रखने में नियमों का पालन नहीं करते, उनके बच्चे, जो चौबीस घण्टों में १५-१६ घण्टे उनके साथ रहते हैं, किस प्रकार सभ्यता और शिष्टाचार का पाठ पढ़ सकते हैं ?

जैसे हम हैं, वैसा ही हमारा वातावरण भी है। सभ्य व्यक्ति की प्रत्येक वस्तु आपको

यथास्थान, साफ सुथरी, आकर्षक मिलेगी। जूतों से लेकर कमीज, कोट, टोपी या बाल काढ़ने का कंघा तक स्वच्छ रखा मिलेगा। उसके जूतों पर न मैल होगा, न कंघे में बाल लगे हुए होंगे। उसके कोट या पतलून या धोती में शिकन न मिलेगी। वह वस्त्रों की देखभाल, सम्हाल के कारण दूसरों से आधे वस्त्रों में भी आकर्षक प्रतीत होगा। कम खर्चे में वह अधिक तरह के सुख प्राप्त कर सकेगा। उसे लम्बा चौड़ा बढ़िया मकान नहीं चाहिए। छोटे से मकान में, या एक कमरे का ही वह इतना उत्कृष्ट प्रयोग करेगा कि उसकी सभ्यता प्रकट हो जायगी। शिष्टाचार का अर्थ यहां नहीं कि आप दूसरों के साथ कैसा व्यवहार करते हैं। स्वयं अपने साथ भी आपका व्यवहार उत्तम होना अनिवार्य है। यदि आप अपने साथ दुर्व्यवहार करते हैं, तो बड़ा पाप करते हैं।

आप पूछेंगे कि हम अपने साथ किस प्रकार दुर्व्यवहार करते हैं? इसके अनकों रूप हैं। आप जानते हैं कि ठीक समय पर उठने, व्यायाम करने, टहलने, या विश्राम करने से आपका स्वास्थ्य ठीक रहता है। किन्तु शोक! आप न तो ब्रह्म मुहूर्त में उठते हैं, न व्यायाम, टहलना या विश्राम करते हैं। आप रुपये के लोभ में दिन-रात तेली के बैल की तरह पाई पाई इकट्ठा करने में मारे मारे फिरते हैं। आपके पास पर्याप्त धन है, जिसके द्वारा आप भोजन, वस्त्र, तथा अच्छे मकान का प्रबन्ध कर सकते हैं, किन्तु आप कन्जूसी के कारण इनमें से कोई भी काम नहीं करते। यह सब अपने प्रति दुर्व्यवहार है।

अपने शरीर की बुराई की तरह जानते-बूझते आप अपने बच्चों की आदतों, या सभ्यता से गिरे हुए व्यवहार को नहीं रोकते, या उनकी गलती पर सजा नहीं देते, तो आप अन्याय करते हैं। अपनी पत्नी की असभ्यताओं को रोकना आपका एक पुनीत कर्त्तव्य हो जाता है। परिवार के और सदस्यों की खराबियों या अशिष्टताओं का आप शिष्ट रीतियों से परिष्कार कर सकते हैं, अपने मातहत, नौकरों, आदि को अशिष्टता से रोक कर आप समाज में अच्छाइयों के बीज बो सकते हैं। यदि ऐसा नहीं करते, तो यह आपका दुर्व्यवहार है।

आपकी दृष्टि कमजोर है, किन्तु फिर भी आप सिनेमा देखते हैं, मिर्च मसाले, खट्टी चीजों का व्यवहार करते हैं, यह अपने प्रति दुर्व्यवहार हुआ; अपने अन्दर किसी मादक द्रव्य को लेने की आदत डालकर विषपान करना आत्म-घात करने के बराबर गर्हित है।

महत्वपूर्ण निवेदन

यदि इस अंक के साथ आपका वार्षिक मूल्य समाप्त होने की सूचना आपको मिली है तो अगले वर्ष का मूल्य २॥) हमें मनीआर्डर से भेज दीजिए। अन्यथा वी० पी० में आपको ३≈) देने होंगे। ग्राहक न रहना हो तो एक पोस्टकार्ड लिखकर हमें सूचित कर दें अन्यथा आपके मौन रहने से हम वी० पी० भेज देंगे और आप वापस कर देंगे तो हमें ।।) डाकखर्च नुकसान होगा। ग्राहक नम्बर अवश्य लिखिए। धन्यवाद!

योग क्या और योगी कौन है ?

श्री 'एक योगमार्गी'

वेदान्त चिन्तन करना ज्ञानयोग है। सेवा-परायणता कर्मयोग है। शरीर का सम्यक् परिचालन हठयोग है। भगवान् के गुणानुवाद करना भक्तियोग है। मन और प्राणों का प्रक्रियात्मक योग राजयोग है। शंकराचार्य ज्ञानयोगी थे। महात्मा गान्धी कर्मयोगी थे। मत्स्येन्द्रनाथ हठयोगी थे। ध्रुव प्रह्लाद भक्त योगी थे। कोई भी स्वरूप अवस्थिति में रहने वाला योगी है। कोई भी सर्वतोभावेन दूसरों का हितचिन्तक योगी है। कोई भी इन्द्रियों का स्वामी होकर रहने वाला योगी है। कोई भी प्रेम हृदय का प्रेमी योगी है। यही है योग और योगी की परिभाषा !

यह कैसा योग ! जंगल में गये नहीं। फूस की कुटिया नहीं बनाई। चिलम और चिमटा भी नहीं रखे। फिर योग क्या ? क्या इनके बिना भी कोई योगी हो सकता है ? हाँ, इनके नितांत अभाव को ही योग कहते हैं। इनसे अलग रहने वाला ही योगी है। नहीं तो हठयोग शठ-योग का कारण बन जाय। राजयोग को राज-रोग कहने लग जायँगे। ज्ञानयोग फिर मोहन भोग हो जायगा और भक्तियोग को भुक्तियोग ही कहना पड़ेगा !

राजयोग के द्वारा प्राणों की परख और तदुपरान्त उसका नियमन करते हैं। प्राण और मन के बीच सम्बन्ध होने से मन की गति का भी रोध हो जाता है। इस धारणा नामक प्रक्रिया से चित्तवृत्ति एकाकार होती है। विक्षेप का नाश होते ही उद्देश्य की परिपूर्ति होती है। किसी न किसी प्रकार चचल वृत्तियों को एक सूत में पिरो लेना ही महायोग है। और इसी के लिए नाना योग और नाना उपायों की नित नवीन गवेषणाएँ होती जा रही हैं। हठयोग के अभ्यासी क्या करते है। शरीर के एक एक तन्तु को यौगिक क्रियाओं द्वारा परि-शुद्ध कर लेते हैं और ऐसे शरीर रूप मन्दिर में मन का देवता पावन और पवित्र होकर बैठता है। ज्ञानयोग के अधिकारी मुमुक्षु को ब्रह्मनिष्ठ सन्त इतना ही उपदेश करता है कि—"वत्स, जो कुछ भी परिदृश्यमान वस्तु-जात हैं, सब चल और नश्वर हैं। इनके द्वारा शाश्वत शान्ति की आशा मत रख। उनका मलमूत्र वत् त्याग करना ही जीवन की समस्या का अन्त है। इसलिए वत्स, वैराग्य को प्राप्त कर !"—साधक का मन एकबारगी जगत् की ओर से आस्था हटाकर निश्चल और निवात दीप वत् हो जाता है। वह गुरु के कहे उपदेशों को कर सकने में सक्षम हो जाता है। और तभी से ज्ञानोदय का प्रकाश उसके हृदय मञ्च पर बिखरने लगता है। भक्तियोग साधना क्या है ? एक प्रतीकोपासक अपने इष्ट में अपना सब कुछ अर्पण कर देता है। उसको यंत्री मानकर स्वयं यंत्र सा बन जाता है। अपने अस्तित्व और अहंकार को इस प्रकार न्यौछावर कर देने के परिणाम स्वरूप उसका मनोमालिन्य सर्वथा तिरोहित होता और वह 'भक्त' अपने-पन की भावना से शून्य ही हो जाता है। जग तो सियाराम मय है। यहाँ अपना कुछ नहीं। मैं तो उसके विशाल क्षेत्र का एक तृण हूँ।

रागद्वेष का अभाव योग है। वैर त्याग और मैत्री का अभ्यास योग है। सर्वात्म भावना से कृतकृत्य ज्ञानयोगी किसी से द्वेष कैसे करे ? भगवान् को सर्वत्र समभाव से देखने वाला प्रेमयोगी किसी का अहित कैसे करने चलेगा ! एक प्रबुद्ध राजयोगी अपने मन में वैर की भावना को कैसे अंकुरित होने देगा। और अपनी बाहुओं को बिल्कुल अपना नहीं समझने

वाला कर्मक्षेत्र का प्रहरी कर्मयोगी कैसे किसी प्राणी की पीड़ा पर तरस खाये बिना रहेगा। कोई भी योगी विश्व-बन्धुत्व की योजना में प्रमुख हाथ दिये बिना नहीं रहेगा। अतः कोई भी योग हमें कन्दरे की ओर इङ्गित नहीं करता। विश्वप्रेम के बिना योग एक कौतुक नहीं तो क्या !

एक सहानुभूतिपूर्ण हृदय का होना 'योग' है। एक सहृदय व्यक्ति 'योगी' है। एकमात्र 'हृदय' ही मनुष्य को योगी बनाता है, महापुरुष बनाता है। इलाहाबाद के पथ पर पत्थर के हृदय पर चोट पड़ते देख, उसकी वेदना को श्री निराला जी कैसे महसूस करने लग गये थे ? खप्पर को एक हाथ में थामकर दूसरे हाथ से आँसू के वेग को रोकता हुआ पगडंडी पर यह जो भिक्षुक चला जा रहा है—उससे हमदर्दी के साथ बातें करने के लिए अनेक तो नहीं, कोई एक ही उत्सुक होगा। जिसे हम 'सहृदय' कह लेते हैं और यही तो 'योगी' है। भगवान् बुद्ध अपने इस 'हृदय योग' में पारंगत और आदर्श योगी थे। उदारता और समदर्शिता 'योग' है। एक उदारचेता और समदर्शी सन्त 'योगी' हैं।

नेति धौति भी क्या योग है ? मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र को योग कहकर 'योग' शब्द को लांछित करना होगा। नीति और सदाचार ही योग है। सत्य और अहिंसा ही योग है। ज्ञानयोगी कहेंगे—बिना मोक्ष के जन्माभाव नहीं होता और बिना त्याग के मोक्ष नहीं होता। इसलिए सर्वस्व का त्याग ही श्रेय पथ पर चलना है। लेकिन वे समझते नहीं कि 'त्याग' का अर्थ घर परिवार का ही त्याग है क्या ? घर और परिवार को प्रेम और श्रद्धा की दृष्टि से देखते हुए भी ऐसे कर्मयोगी देश और समाज में हैं, जो पानी की तरह खून को बहाकर भी कुछ बदले में पाने की इच्छा नहीं रखते। इसलिए 'कर्मफल का त्याग" ही वास्तव में 'त्याग' है। इस त्याग के अनन्तर केवल अरण्य में ही क्यों सब जगह शान्ति है। और इस शान्ति के साथ गंगा किनारे क्यों, कहीं भी मरने से मोक्ष है।

योग को व्यापक अर्थ में लेना चाहिए। एक बुभुक्षु को एक बार अन्न देना भी योग है। एक दलित की आह पर एक बार तरस खाना भी योग है। एक भूले को राह पर लगा देना भी योग है और एक-आँचल में दूध और आँखों में पानी लिये विधवा के आँसू को देखकर पिघल जाना भी योग है। और क्या ? संसार एक विशाल कर्मक्षेत्र है और यहाँ भीरुता और कापौरुष को त्याग कर सतत सतर्क और धीर वीर होकर चलने वाले ही योगी हैं। सारा जीवन ही योग है। एक एक क्षण भी योग का अभ्यास है। अपने आप सन्मार्ग पर चलते हुए अनेकों को सन्मार्ग पर ले आना श्रेष्ठ योग है। नैतिकता में अपना विकास करते हुए दूसरों को उसके लिए प्रेरित करने की चेष्टा योग है। कोई अगर हृदय को साक्षी देकर सर्वभूत-हितेरता है तो उसे योगी मानना ही पड़ेगा। अपने कमण्डलु के वियोग में रो देना तो योग नहीं, चाहे वह हिमालय में रहता आया हो या विन्ध्याचल में। उसकी ममता छोटी वस्तुओं में ही है।

आत्मा और परमात्मा के बीच जिस अज्ञान के अपाहरण के द्वारा हम दोनों का संयोग अथवा 'योग' करना चाहते हैं, वह भी तभी सम्भव है—जब मनुष्य मात्र से हम प्रेम करना सीखें शिलावृक्षादियों में भी अपनी आत्मा को देखें।

यस्मिन्सर्वा भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति
सर्वभूतस्थमात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥

पेट की करुण कथा

श्री व्रजभूषण जी मिश्र

मैं अपनी गाथा आदि से कहकर अपनी सच्ची स्थिति प्रगट करने में कोई हानि नहीं मानता। जिस समय ब्रह्माजी ने मनुष्य बनाया उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। अपनी कृति पर कौन नहीं प्रसन्न होता? इसी बीच दैवयोग से शिवजी भेंट करने चले आये। उत्साह से मानव का माडल भोलेनाथ जी को दिखलाया गया। सिद्धिसदन जनक देखसुन हर्षित हुए और उन्होंने मेरी आवश्यकता प्रगट की। निर्जीव पुतले को सजीव बनाने के निमित्त, पुष्टि की विचारदृष्टि से, कर्म की संगति लगाने के लिए शिवजी ने हमारी आवश्यकता ब्रह्माजी को समझाई। महाकाल द्वारा इस महाकाल का अस्तित्व विधिमानस द्वारा संसार में प्रत्यक्ष हुआ।

अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना शिष्ट समाज में शोभा नहीं देता। वास्तविकता को प्रगट न करना पाप मानकर केवल निर्देश से काम लेता हुआ मैं आगे बढ़ता हूँ। मेरे द्वारा ही सृष्टि जीवित है। मुझ पेट के खातिर ही कुकर्म कर यमपुरी को सार्थक बनाया गया है। महात्माओं पर भी हमारा आधिपत्य है। बिना हमको आहुति दिये महात्मा भी भजन नहीं कर पाते। सारी क्रियाओं का मूलस्रोत मैं ही हूँ। यदि मैं न होऊँ तो शक्तिसंचार असंभव है। पेट का रह जाना किसे प्रसन्न नहीं करता? पेट का गड़ना, पेट का झरना, पेट का गिरना किसे कष्ट नहीं देता? सृष्टि का आदिस्रोत मुझे ही माना जाता है।

मैं ऐसा महत्वपूर्ण हूँ पर मेरी उपेक्षा दिनोदिन बढ़ रही है। मैं शरीर के विविध अंगों व मानसिक वृत्तियों का मूल हूँ अतः शरीर व मन की ज्यादतियों को चुपचाप यथाशक्ति सहन कर लेता हूँ पर विवश अत्याचार को सह नहीं सकता। मैं शरीर के महत्वपूर्ण अंगों में प्रधान हूँ और दिन-रात अनवरत अविश्राम कार्यरत रहता हूँ। हाथ को आराम है, पैर विश्राम ले सकता है, चक्षु, श्रवण, मन बुद्धि रात में मौज करते हैं पर "मोहि कहाँ विश्राम" समय-असमय व आवश्यकता नावश्यकता को बिना देखे मेरे कार्य को बढ़ाने में मानव अपना हित समझता है, रसना इसके लिए उत्साहित करती है। इसका परिणाम भोगना पड़ता है मुझे। अत्याहार अत्याचार है।

मैं आपके द्वारा मानव का ध्यान इस ओर आकृष्ट कराना चाहता हूँ कि वह नियम संयम श्रृङ्खला से बाँधे तभी वह स्वस्थ रह सकता है अन्यथा उसे स्वस्थ (स्वर्गस्थ) होना पड़ेगा। उत्तम तो यह है कि २४ घंटों में दो बार भोजन किया जाय, पर यदि इतने से सन्तोष न हो तो प्रातः और अपराह्न सरस अर्थात् पेय द्रव्य तथा थोड़ा फल मेवा आदि लिया जा सकता है। जब मौका लगा तब, चलते फिरते खाना हमारे प्रयोगशालाओं को नष्ट करना है। अतः मानव स्वहिताय इस झोंकने की आदत से बचे तो अतिश्रम से हमारा पिंड छूटे।

रसना से मेरी सदा खटपट रहती है; एक कारण तो यह है कि वह अन्न का रस लेकर खाद्य पदार्थ की पचने की ओर मेरी क्रिया की ओर कभी दृष्टिपात नहीं करता; दूसरी बात यह है कि रसना स्वाद ग्रहण काल में दाँतों द्वारा खाद्य की जो स्थिति कर देनी आवश्यक है वह नहीं की जाती है। इनका परिणाम यह होता है कि मेरे सतत प्रबल प्रयास करने पर भी खाद्य से जितना पोषण शरीर को मिलना चाहिए नहीं मिल पाता तथा अति कठोर परिश्रम से जो शक्ति का ह्रास होता वह संगठित होकर शरीर को बड़ी भारी हानि पहुँचाता है। यहाँ यदि मैं किन्हीं विशेष पदार्थों की ओर ध्यान दिलाऊं तो आप उस पर विचार

करें और इस पुनीत क्षिप्रा क्षेत्र में श्री महाकाल के सान्निध्य में यह प्रण करें कि ऐसे पदार्थों का प्रबल विरोध करेंगे तब तो हमारा यह प्रयास सफल माना जा सकेगा।

अर्थ के लोभी, जनहित के प्रधान शत्रु, सरकारी संरक्षण में गौरवान्वित, स्वास्थ्य का प्रबल प्रध्वंसक, जल की सतत माँग करता हुआ कभी तृप्ति न दिलानेवाला, वीर्य तथा मलपात कराने में विशेष पटु तथा मेरे समस्त कार्य में उलट फेर करनेवाले वनस्पति घी का अविलम्ब प्रयोग, धर्म के नाम पर, कर्म के नाम पर, सौहार्द्र के नाम पर तथा प्रबल गणतन्त्र राज्य के नाम पर एक दम निषिद्ध हो जाना चाहिए। मैं किसी से नहीं डरता, डरता हूँ तो एकमात्र उस पदार्थ से जिसकी बनावट यदि जान लें तो पवित्रता रखने को उत्सुक महानुभाव इसे ग्रहण न करेंगे ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। यह मैं मान सकता हूँ कि प्रयोक्ता के मान का एकमात्र अवलंब वही है; पर स्वास्थ्य हानि से जब उसकी तुलना की जाती है तो मानहानि पसंगा भर भी नहीं ठहरता। इस विषय को आगे बढ़ाना अनुचित समझ कर मैं श्रोताओं को कल्पवृक्ष के २० वर्ष की ११ संख्या के १२वें पृष्ठ पर ले जाना चाहता हूँ।

सभ्यता के अन्तर्गत मानी जाने वाली चाय तथा चीनी मेरे काम में प्रबल अवरोध पैदा करनेवाले हैं। इसके साथ ही घी में तले पदार्थों का प्रयोग मेरी शक्ति के ह्रास का मुख्य कारण है। पकवान नाम से अभिहित किये जाने वाले, मेरे शब्दों में, ये विषपुञ्ज मेरे काम में गतिरोध डालने के लिए सदा प्रस्तुत रहते हैं। यदि इन तीन द्रव्यों का प्रयोग बन्द कर दिया जाय तो आज जो औसत आयु है वह अधिक नहीं तो ड्यौढ़ी अवश्य ही अविलंब हो जावेगी।

राष्ट्रीयता के नाम पर बाह्योपचार द्वारा राष्ट्र के कथित उत्थान का जो काम हो रहा है वह राष्ट्र का उत्थान कर सकता पर उस राष्ट्र में संबल सजीव समान नागरिकों का अभाव हो जायगा। स्वास्थ्य के गिरने का स्तर जितनी तीव्रता से बढ़ रहा है उस पर केन्द्रीय सरकार की दृष्टि न पड़ने का एक कारण है नागरिक सुलभ आकर्षण में वास्तविकता की उपेक्षा।

यहाँ यह वर्णन तो हो चुका कि हमारा आहार किन तत्त्वों से परिपूर्ण होना चाहिए। किन पदार्थों के आ जाने से हम प्रबल होते हैं। बहुधा यह गड़बड़ी होती है कि जिन तत्त्वों का उल्लेख ऊपर किया गया है वे सब के सब हमें नहीं प्राप्त होते। बहुधा हमें श्वेतसार को पचाने का कार्य अधिक करना पड़ता है। किंचित्सम्पन्न मध्यम वित्त वाले उसके साथ वसा का सम्मिश्रण और कर लेते हैं। श्रेष्ठ तो है गोघृत, दूसरे नम्बर पर तिल का ठंडा तेल और तीसरे नंबर पर है सरसों का तेल, भैंस का घी आयुर्वेद ने भी निकृष्ट बतलाया है। तेल का गुण खाने की अपेक्षा मर्दन में दस गुना है।

भारतवर्ष में पर्याप्त संख्या हमारे उन भाइयों की है जिन्हें हमको काम देने के लिए काफी मात्रा में आहार नहीं कर पाते; दूसरी ओर ऐसे की कमी भी नहीं है जो हमें सदा कार्य-निरत हो नहीं अतिव्यस्त ही देखने को उत्सुक हैं। काम कर चुकने पर विश्राम द्वारा आगामी कार्य करने की क्षमता को प्राप्त करने का अवसर मिल ही नहीं पाता। काम करते करते जब हम थक जाते हैं तो अनेक सूचनाओं से हम अपनी परिस्थिति व्यक्त करते हैं पर भोला मानव उनकी रंचक परवाह नहीं करता; फिर लाचार हमें रोग की शरण लेनी पड़ती है और फिर चूर्ण एवं अरिष्ट द्वारा हमें सशक्त बनाने की चेष्टा की जाती है। क्षमा करना यदि कुछ कड़वी बात निकल जाय। सज्जनों के समक्ष हृदय पिघल जाता है; फिर अपने को रोक सकना कठिन होता है। स्वार्थ का मूर्तिमान पुतला मानव स्वयं तो परिश्रम करना नहीं चाहता और दूसरे अपने मातहतों पर परिश्रम

लादने की सतत चेष्टा करता है। समवेदना नामक सद्गुण से उसकी भेंट नहीं। भारत सरकार ने साप्ताहिक अवकाश प्रदान कर इधर स्तुत्य प्रयास किया है। क्या हमें १५ दिन में एक बार भी अवकाश नहीं दिया जा सकता? चाहते तो हम भी साप्ताहिक छुट्टी हैं पर यदि ऐसा न हो तो कम से कम पाक्षिक अवकाश में क्यों एतराज होता है? क्यों नहीं एकादशी को अनाहार रखने की बात दिमाग में आती? हाँ, एक बात कह देना अप्रासंगिक न होगा। हमारे एतत्कथित विश्रामकाल में क्या हम वास्तव में आराम करते हैं? नहीं, जो संचित पिछला काम बचा रह जाता है उसे ही पूरा करना पड़ता है। जो कूड़ा करकट अवांछित द्रव्य जमा रह जाता है जिसे अवकाश के अभाव में निकालना संभव नहीं होता, उसे जठराग्नि में दग्ध कर शरीर से बाहर कर देते हैं। इस क्रिया से संभव है सिर दर्द हो जाय, जीभ का स्वाद बिगड़ जाय और कुछ कमजोरी भी महसूस हो जाय। इससे घबड़ाना नहीं चाहिए, विश्राम द्वारा कमजोरी पर काबू करना चाहिए। इस अवकाश में घर की धुलाई के लिए अधिक पानी आवश्यक होता है। फिनाइल, लाइसोल आदि घोलों के स्थान पर पानी, नमकपानी या खट्टा पानी (नींबूजल), थोड़े खट्टे फलरस आदि बहुत हितकर होते हैं। उचित तो है कि इनका प्रयोग किया जाय, यदि न हो तो, कम से कम, अधिक जल की ही व्यवस्था करनी चाहिए। मैं यहाँ अपने अवकाश से मानसिक विकास को कितनी प्रगति देता हूँ विषयान्तरभय से कहना ठीक नहीं समझता। यदि मानव ने ऐसा किया तो वह अपनी कर्त्तव्यपरायणता को दिखलाते हुए हमारा आशीर्वाद प्राप्त करेगा, स्वस्थ होकर दीर्घायु प्राप्त करेगा।

निरन्तर किसी पदार्थ की बहुत समय तक कमी रहने से विविध रोग हो जाया करते हैं; इनको दूर करने का श्रेष्ठ उपाय है एकाहार, रसाहार या शाकाहार। परिश्रम, अवकाश; रोग के अनुसार इनमें से किसी एक को चुना जा सकता है। इसको भी एक प्रकार की व्रत-संज्ञा ही समझनी चाहिए। जो भारी दीर्घकाल व्यापी रोग शीघ्र अच्छे नहीं होते उनको ठीक करने के लिए, साधारण कार्य में बाधा न डालते हुए एकाहार का प्रयोग अत्यावश्यक है। हमारी आपसे प्रार्थना है कि साल में एक या दो बार एक सप्ताह व नवरात्रि पर एकाहार के लाभ का चमत्कार स्वयं अनुभव करिए। हाथ कङ्गन को आरसी क्या? यह तो नकद बात है उधार विश्वास का यहाँ ठिकाना नहीं।

हमको सहायता देने के लिए, रक्त में गति लाने को अगों में स्फूर्ति छिटकाने के निमित्त अत्यावश्यक व्यायाम के प्रति जिस प्रकार उपेक्षावृत्ति दृष्टिगत हो रही है उसका परिणाम भी सबके चेहरे पर स्पष्ट है। फुरसत का न मिलना, सुविधा का अभाव, स्थान धन सङ्कोच आदि बहाने मात्र हैं। मैं सबको राममूर्ति, गामा, किंगकांग, जिबिस्को बनने को नहीं कहता पर कम से कम हमारे हृदय व फेफड़े के अंगोपांगों को सशक्त करने के निमित्त उन्हें ठीक क्रियाशील बनाये रखने के लिए कुछ व्यायाम केवल १५ मिनट का समय-१४४० मिनट में निकाला जा सकता है। केवल ९६वाँ भाग की ही तो माँग है। इस विषय में यहाँ अधिक कहना युक्तिसंगत नहीं। प्रयाग से एक पुस्तक निकली है, जिसकी कुछ प्रतियाँ यहाँ भी प्राप्य हैं, उसमें विस्तार से देखी जा सकती है; उसका नाम है '१५ मिनट में स्वस्थ बनो'।

आप हमारी कहानी से ऊब उठे होंगे, और आपका ऊब जाना भी स्वाभाविक है अस्तु यहाँ केवल इस ओर थोड़ा संकेत कर देना चाहता हूँ कि किस व्यक्ति को कितना आहार करना ठीक है। यदि इसका ध्यान रखा गया हो हम और हमारे भाई जो आपके भीतर बैठे हैं,

अनेक धन्यवाद देंगे और परिणामस्वरूप सशक्त दीर्घ जीवन का वरदान प्राप्त होगा।

यदि भार ठीक है तो जितने सेर तौल है उतने माशा प्रोटीन और उसका $\frac{9}{10}$ घटाकर वसा, और प्रोटीन का ६ गुना कार्बोहाइड्रेट लेना चाहिए। यदि आपका भार ७२ सेर है तो ७२ माशा पुत्तनक, (७२ – ७) ६५ माशा वसा, और (७२ × ६) ४१२ माशा कार्बोज व चीनी होनी चाहिए।

आशा है इस क्रम को अपनाकर लोग अधिक तन्दुरुस्त जीवन बिताकर दीर्घ जीवन प्राप्त कर समाज का हित करेंगे।

परमार्थ स्वास्थ्यदाता है

श्री विट्ठलदास मोदी

शरीर के विषमय होने पर ही रोग होते हैं। और शरीर तीन कारणों से विषमय हो सकता है: १—गलत भोजन। २—कम सोना। ३—शरीर की ग्रन्थियों का कार्य अव्यवस्थित हो जाना।

जब हम सोते हैं तो शरीर में थकान की वजह से पैदा हुआ विष दूर होता है। यदि कोई बहुत दिनों तक पूरी नींद न ले तो उसके शरीर में विष इकट्ठा हो जाता है और उसे अपने शरीर को विकार रहित बनाने के लिए न सोये हुए समय के अनुपात के अनुसार कम या अधिक समय तक अपने शरीर के शोधन का कार्य चलाना पड़ता है।

ग्रंथियों का कार्य अव्यवस्थित होने पर शरीर में स्वयं विष बनने लगता है। यदि किसी एक ग्रंथि के वशीभूत होकर शरीर का एक अंग अपना काम ठीक तरह से नहीं करता तो उसकी इस गलती के कारण भी शरीर के अन्य अंग विषयम होने लगते हैं।

अंगों का बढ़ना और उनके सभी कार्य अनजाने होते रहते हैं। सब अंग अपना कार्य पारस्परिक सहयोग द्वारा करते हैं। मस्तिष्क हमारे सभी चेतन कार्यों का नियंत्रण करता है और कई बार वह अंगों से उनकी स्वाभाविक गति के प्रतिकूल काम करा लेता है।

शरीर में विष उत्पन्न होने का कारण मस्तिष्क अथवा नाड़ी-मंडल भी है। यह विष ग्रंथियों के द्वारा पैदा किया जाता है जिनका कार्य नाड़ी-मंडल के वश में होता है।

मान लीजिए एक व्यक्ति प्राकृतिक नियमों के अनुसार चलता है। वह स्वाभाविक भोजन करता है, नींदभर सोता है। इस प्रकार वह बाहरी कारणों से शरीर में विष उत्पन्न नहीं होने देता फिर भी बीमार रहता है। भोजन अथवा नींद संबंधी गलती उसने नहीं की और शरीर में इन दो कारणों से विष उत्पन्न नहीं हुआ। पर शरीर की ग्रंथियों के कारण उत्पन्न हुए विष को न निकाल सकने के कारण वह बीमार पड़ गया। इन ग्रंथियों से विष कैसे उत्पन्न होता है और हम उसे कैसे निकाल सकते हैं?

प्रत्येक व्यक्ति समाज का एक अंग है। यदि वह समाज के लाभ के लिए काम नहीं करता तो उसका शरीर ही उसे सजा देता है। उसका शरीर अशतः अपना काम बंद कर देता है। जो बाहर समाज में बड़े रूप में दिखाई देता है वह अन्दर शरीर में छोटे पैमाने पर होता है। समाज का सक्रिय या सीधा नुकसान करना आवश्यक नहीं है, बुरे विचार रखने भी उतने ही खतरनाक हैं। इन विचारों एवं भावनाओं का असर बाहर भी पड़ता है और अन्दर भी, जिसकी वजह से शरीर के अंदर विष-निर्माण होता है। कुछ कोष विषाक्त हो जाते हैं और पूरे शरीर के हित के विरुद्ध काम करने लगते हैं।

परमार्थ स्वास्थ्यदाता है और स्वार्थ रोग का कारण। जब व्यक्ति अपने अन्दर निम्नकोटि के अशुभ विचारों को स्थान देता है तो वह उसी प्रकार की बाहरी विचार-धाराओं से अपना सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। ऐसा न समझे कि विचारों की शक्ति नापी नहीं जा सकती। वह तुल चुकी है। विचार-शक्ति शून्य में अन्य शक्तियों की तरह ही गतिमान होती है। प्रत्येक शक्ति एक छोटा-सा बिना तार-के-तार का स्टेशन है जहाँ तार लिये और तार भेजे जाते हैं। जब आदमी हेय विचार धारण करता है तब वह अपने चारों ओर के हेय विचारों से सम्बन्ध स्थापित कर लेता है और वह हेय विचारधारा बनाता है। हताश और निराश व्यक्तियों के संपर्क में आकर मनुष्य स्वयं हताश और निराश हो जा सकता है और जब मनुष्य स्फूर्तियुक्त रहता है तब वह सशक्त और सन्तुलित मनुष्यों के संपर्क में ही आता है।

उच्च विचारों से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए मनुष्य को संचेत रहना चाहिए। इस प्रकार वह ग्रंथियों द्वारा उत्पन्न उस भयानक विष से बचा रहेगा जो अनिष्टकारक और स्वार्थमय विचारों के कारण उत्पन्न होता है। इस विष को ही बचाने के लिए सभी धर्म जीव-दया, भ्रातृभाव और विश्वप्रेम की सीख देते हैं।

हम इस महान् धार्मिक और चारित्रिक नियमों को सरल शब्दों में यों कह सकते हैं कि जब हम दूसरों का भला करते हैं तो हमारा भी भला होता है। सचमुच प्रेम का प्रभाव तीव्र रोग निवारक होता है। इसका यह गुण रहस्यमय नहीं है—इसका सम्बन्ध केवल ग्रंथियों के स्थूल कार्य-कलाप पर आश्रित है।

मनुष्य अपने में एक व्यक्ति है—वह समाज और प्रकृति के शरीर का एक अंग है। उसे ये अपने सारे सम्बन्ध विशुद्ध रखने हैं। इनसे उसका सम्बन्ध गलत हो जाने पर उसके सारे सम्बन्ध विशृङ्खल हो जाते हैं। इसलिए स्वास्थ्य शास्त्र का सम्बन्ध शरीर से ही नहीं है मस्तिष्क से भी है और समाज से भी है। इन तीनों का ज्ञान प्राप्त करके ही मनुष्य स्वस्थ रह सकता है।

हम दवा-दारू क्यों करते हैं ?

श्री लक्ष्मीनारायण टंडन 'प्रेमी'

हम दवा-दारू क्यों करते हैं ? आइए इस प्रश्न पर हम शान्ति तथा गंभीरता के साथ विचार करें। 'दवा' को साधारण रूप से हम दो श्रेणियों में रखते हैं। एक तो वह साधारण जड़ी बूटियों द्वारा सीधा-सादा इलाज जिसे हम घरेलू दवाइयों के अन्तर्गत ले सकते हैं। वैद्य तथा हकीमों द्वारा बताई हुई ऐसी साधारण जड़ी-बूटियों द्वारा इलाज भी इसी के अंतर्गत है। इस सीमा तक, सीधे सादे दवा के प्रयोग को एक सीमा तक प्राकृतिक चिकित्सक भी अनुमति दे देते हैं। और दूसरा रूप 'दवा' का वह होता है जो एलोपैथिकों के मिक्चर, पाउडर या गोलियों के रूप में होता है या वैद्यों की भस्म, रस तथा अन्य कुटी-पिटी किसी रूप में दवाइयाँ। ऐसी ही हकीमों की दवायें तथा होमियोपैथिक दवायें भी इस द्वितीय श्रेणी के अंतर्गत आती हैं। इस द्वितीय रूप के इलाज का ही प्राकृतिक चिकित्सक विरोध करते हैं। बाज दफे अपने सिद्धान्तों के विरुद्ध भी रोगी या उसके अभिभावकों का मन रखने के लिए बेमन से प्राकृतिक-चिकित्सक होमियोपैथिक दवाइयों तक तो अनुमति दे देते हैं पर रस, भस्म तथा मिक्चर, पेटेंट दवाइयों और इंजेक्शनों को तो वे बेमन से भी अपनी अनुमति

नहीं देते। हाँ, रोगी या अभिवावकों का कोई हाथ तो पकड़ नहीं सकता। वह तो दूसरी ही बात है।

तो रोगी और अभिवावक ही मिक्सचर और इंजेक्शन आदि को क्यों अपनाते हैं? प्रश्न यह है। इसका उत्तर यह है कि कुछ रोगी तथा अभिवावक प्राकृतिक-चिकित्सा, उसकी उपयोगिता तथा उसकी सरलता आदि से परिचित ही नहीं होते। अज्ञानता ही प्रमुख कारण है प्राकृतिक चिकित्सा की अवहेलना का। ऐसे लोग पूर्ण रूप से क्षम्य हैं। उनका क्या अपराध। इसका उपाय यही है कि प्राकृतिक-चिकित्सा सम्बन्धी साहित्य तथा जानकारी का अधिक से अधिक शिक्षित-अशिक्षित, धनी-निर्धन, स्त्री-पुरुष, सब में समान भाव से अधिक से अधिक प्रचार किया जाय। और कुछ लोग हठधर्मी से ही एलोपैथिक आदि इलाज करते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा के बारे में जानकर भी वे उसकी उपेक्षा करते हैं या इस इलाज पर उनकी आस्था ही नहीं है। यदि उन्हें कुछ बताया या मार्ग-प्रदर्शन किया जाता है तो वह आपकी सुनना ही नहीं चाहते। जो जानना ही न चाहे उसे जबरदस्ती कैसे जनाया जाय। ताली बजने के लिए दोनों हाथों की आवश्यकता है। अतः इस श्रेणी के लोगों के लिए भी हमें कुछ नहीं कहना है। परन्तु मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर इस प्रश्न को समझने पर आपको एक बड़ी मजेदार और महत्वपूर्ण बात ज्ञात होगी। प्राकृतिक-जीवन व्यतीत करने के लिए दृढ़ संकल्प, इन्द्रिय-निग्रह, संयम, धैर्य तथा गंभीरता की आवश्यकता है। और यह गुण सब में नहीं होते। डाक्टर ने कहा 'जब तक इलाज कर रहे हो या जब तक ठीक न हो जाओ तब तक और उसके कुछ दिनों बाद तक फलाँ फलाँ वस्तु का प्रयोग न करना।' यहाँ तक तो रोगी के लिए संभव है। पर जीवन भर के लिए संयम और नियम से अपने को बाँध लेना, अपनी जीभ के चटोरेपन पर नियंत्रण रखना आदि हर एक के बूते का काम नहीं है। जब तक आपने संयम, नियम तथा सादगी से प्राकृतिक-जीवन व्यतीत किया तब तक तथा उसके कुछ समय तक आपका शरीर विकार-रहित रह सकता है पर जहाँ आपने फिर अटाँय-सटाँय खाना-पीना और अनियंत्रित तथा अनियमित भोजन तथा जीवन व्यतीत करना प्रारंभ किया कि आपका शरीर दोष तथा मलयुक्त रहने लगा। अतः सदा-सर्वदा को अपने को नियंत्रित रखना हर एक के बूते की बात नहीं है। इसी से प्राकृतिक-चिकित्सा या प्राकृतिक-जीवन से लाभ उठा कर भी उन लोगों को फिर पहले से रोग हो गये हैं जैसे ही उन्होंने प्राकृतिक-जीवन को तिलाञ्जलि दी। अतः प्राकृतिक-चिकित्सा की उपयोगिता को सिद्धान्त रूप से मानते हुए भी ऐसे लोग उसे कार्यरूप में परिणत नहीं कर पाते। मानव-स्वभाव की इस कमजोरी का शिकार ९९% होते हैं।

और एक महत्वपूर्ण बात है। दुनिया इतनी अधिक आगे बढ़ गई है और प्रायः लोग इतने अधिक कार्य-व्यस्त हो गये हैं कि उन्हें इतना समय ही नहीं मिलता कि प्राकृतिक-जीवन व्यतीत कर सकें। वे अपनी परिस्थितियों से बाध्य हैं। वे क्रोध के नहीं वरन् दया और सहानुभूति के पात्र हैं। मान लीजिए एक लम्बी गृहस्थी वाला म्युनिसिपल स्कूल या आफिस का मास्टर या क्लर्क है। उसे ४०) मासिक मिलते हैं। इतने में गृहस्थी कैसे चले। अतः उसे ४-५ ट्यूशन या पार्ट-टाइम और नौकरी करनी पड़ती है। इसमें उसके ५-६ अतिरिक्त घंटे लग जाते हैं। अब बताइए वह बेचारा धूप-स्नान, वायु-स्नान, प्रातः-सायं टहलने, हिप यासिट्ज बाथ आदि के लिए कहाँ से समय लावे। जो तकदीर में होना हो, हो। उसे तो कोल्हू में पिलना और रोग ग्रस्त रहते हुए अल्पायु में मरना ही है। घोर परिश्रम,

मानसिक अशान्ति, दूध, दही, फल का अभाव। भारत की गरीबी भी प्राकृतिक-चिकित्सा तथा जीवन में बाधक होती है। भले ही पेट-भरे तथा अनुकूल परिस्थितियों में रहने वाले प्राकृतिक-चिकित्सक या प्रेमी इस बात को न मानें। यह उनकी अज्ञानता या हठधर्मी होगी। सत्य, सत्य है।

एक और बात। मध्यम श्रेणी वाले सरविस वाले प्रायः १५ तारीख के बाद फाकेमस्त हो जाते हैं। तनख्वाह पाते ही वह महीना भर के लिए अनाज, घी, लकड़ी आदि तो किसी तरह से रख लेते हैं घर में। पर फल और तरकारी या दूध-दही के लिए तो नित्य पैसे चाहिए। और १५ तारीख के बाद उनकी जेब खाली रहती है। यदि हर तरकारी, शाक, दूध, दही मठा आदि भी महीना भर के लिए एक साथ रखा जा सकता तो सभव है गरीब भी ऐसा ही करते। चादर छोटी है। या पैर ढक लो या सर। कुछ तो खुला ही रहेगा। यह नग्न सत्य है। प्राकृतिक चिकित्सकों का यह कहना कि 'मौसमी फल या तरकारी तो सस्ती होती हैं' उन गरीबों की दयनीय आर्थिक स्थिति का मजाक उड़ाना है। इसे प्राकृतिक-चिकित्सक नहीं, निर्धन भुक्तभोगी ही समझ सकते हैं। जब उनके पास-जहर खाने को पैसा नहीं है तो 'सस्ते और मौसमी फलों और शाक तरकारियों' के लिए उनके पास पैसा कहाँ से आयेगा। अतः गरीबी और अभाव जिसमें ९०% लोग फँसे हैं, भी प्राकृतिक-जीवन व्यतीत न करने में एक बाधा है।

अब आप एक ठोस सत्य बात लें। एक क्लर्क को बुखार आया। दफ्तर में उसे २ दिन, से अधिक छुट्टी नहीं मिल सकती। क्योंकि यह तो उसके लिए रोज का झगड़ा है। अतः उसे तो जैसे भी हो २-४ दिन में ही ठीक होकर दफ्तर या नौकरी या अपनी दूकान पर पहुँचना है। अतः वह चाहता ही है कि 'कोई ऐसी दवा मिले कि यह रोग 'दब जाय।' तो फिर नौकरी या काम पर तो पहुँच सकूँ। होगा, जो बाद में होगा। देखा जायगा। इस समय तो काम चले।' आप विश्वास रखें कि बहुत से लोग यह जानते हुए भी कि एलोपैथिक दवाओं से रोग दब भर जाता है, अच्छा नहीं होता, वह एलोपैथिक दवा ही करते हैं। समय का अभाव, पैसे का अभाव, उचापत से बचने की इच्छा आदि एलोपैथिक इलाज करने का कारण हैं। अस्तु मेरा तो विश्वास है कि जब तक भारत से अज्ञानता, गरीबी, अभाव और पश्चिमीय मानसिक गुलामी की मनोवृत्ति दूर नहीं होगी, लोग प्राकृतिक-चिकित्सा के निकट ही नहीं आ पायेंगे, या निकट आकर भी इससे दूर रहने को बाध्य होंगे।

आपको एक निजी उदाहरण दूँ। मेरी कन्या महिला-विद्यालय, लखनऊ की इंटर प्रथम वर्ष की छात्रा है। जबरदस्ती उसके चेचक का टीका लगा दिया गया। घर पर आने पर उसने मुझसे कहा तो मैंने उसे डाँटा कि तुमने क्यों टीका लगवाया। उसने कहा कि 'मैं क्या करूँ। सभी लड़कियों को लगाया गया। मैंने नाहीं किया भी तो अध्यापिका ने डाँटा और जबरदस्ती लगवाया।' अब इसका उत्तर ही मेरे पास क्या है? बचपन में भी इस कन्या के चेचक का टीका लग चुका है। और पाठकों को पढ़कर हँसी आवेगी कि टीका लगने के महीने भर बाद उसके छोटी और बड़ी माता दोनों निकलीं और बेचारी वार्षिक परीक्षा में भी नहीं बैठ पाई। अतः चेचक की रोक टीके से हो जाती है बिलकुल गलत है। मेरा तो प्रत्यक्ष प्रमाण है। मेरा छोटा पुत्र कालीचरण इंटर कालेज लखनऊ में ९वें का छात्र है। बचपन मे उसके भी चेचक का टीका लग चुका है। पर तब भी ३ वर्ष पहले उसके चेचक निकली थी और कन्या के अच्छे होते न होते, इस बच्चे के भी जोरों से छोटी और बड़ी माता निकल आई

और यह बेचारा भी परीक्षा के दिनों में खाट पर पड़ा रहा। कहीं चेचक की छूत न लगे इससे इसे एक होमियोपैथिक दवा दी जा रही थी। होमियोपैथिक डाक्टर का कहना था कि इस दवा के खाने पर चेचक की छूत का असर नहीं हो पायेगा। पर यह 'दवा' भी गलत या बेमतलब सिद्ध हुई। तो फिर दवा और टीके से लाभ? अब आप देखें कि इंजेक्शन तथा टीके आदि लोग इसलिए लेते हैं क्योंकि सरकार, ऊँचे अफसरों या विद्यालयों के अधिकारियों (यदि छात्र हुए तो) द्वारा इसके लिए बाध्य किये जाते हैं। प्राकृतिक-चिकित्सा के समर्थकों राजर्षि टंडन, आचार्य विनोबा तथा स्वयं स्वर्गीय बापू की बात कौन सुनता है।

स्वास्थ्य, सुख और समृद्धि

श्री पं० किशोरीलालजी दीक्षित, बी० ए०, एल-एल० बी०

स्वास्थ्य, सुख और समृद्धि ये जीवन के मुख्य लक्ष्य कहे जा सकते हैं जिनके लिए मनुष्य मात्र प्रयत्न करता है। यदि आत्म-सूचना इनकी प्राप्ति में सहायक होती है तो यह मनुष्य जीवन में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लेती है। यह आत्म-सूचना के विषय के हर एक विद्यार्थी को मानना पड़ता है कि आत्म-सूचना उपरोक्त वस्तुओं की प्राप्ति में सहायक या निरोधक होती है।

रोगनाशक शक्ति की सूचना हरएक मनुष्य के मन में निहित है और इस शक्ति को जाग्रत करने के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष आत्म-सूचना को काम में लाने की आवश्यकता है। इसके लिए किसी दूसरे प्रयोगकर्ता की आवश्यकता नहीं है जिस तरह कोई सूचना का प्रयोग दूसरे पर कर सकता है उसी तरह स्वयं अपने ऊपर भी कर सकता है यदि उसमें इच्छाशक्ति और लगन हो। हरएक मनुष्य का स्वास्थ्य बहुत कुछ उसकी मानसिक अवस्था पर निर्भर है। शारीरिक अवस्था पर मन का बहुत बड़ा प्रभाव होता है। भय, चिन्ता, क्रोध और उदासीनता का प्रत्यक्ष प्रभाव शारीरिक अंगों पर शिथिलता के रूप में दिखाई देता है और आशा, विश्वास, साहस और प्रसन्नता ये शारीरिक कार्यों में उत्साह प्रदान करते हैं। ऐसा होने पर इसमें कोई शंका नहीं रह जाती कि आत्म-सूचना का उचित अभ्यास कर लेने पर हरएक मनुष्य रोगों को रोककर अपने शरीर को स्वस्थ रख सकता है। उचित आत्म-सूचना एक ऐसी रोग-निवारक रामबाण महौषधि है जिसकी तुलना और किसी औषधि के आविष्कार से नहीं की जा सकती है। यह आत्म-सूचना उचित आदर्श तथा मानसिक चित्र के साथ होना चाहिए। यदि आप अपने आपको स्वास्थ्य की सूचना, स्वास्थ्य के विचार, स्वास्थ्य का चित्र अपने मन में रखेंगे तो आपके शरीर में स्वास्थ्य का प्रदर्शन प्रत्यक्ष दिखाई देगा।

आपका सुख बहुत कुछ आपके स्वास्थ्य पर निर्भर है। अँग्रेजी की कहावत 'As a man thinketh so is he' के अनुसार यदि आप उदासीन और नकारात्मक विचारों को हमेशा भगाते रहें और उत्साहप्रद विचारों का आह्वान करते रहें तो आपको सुख की कुंजी प्राप्त हो सकती है। मनुष्य जिस बात पर अपने विचारों को जमा देता है वह वैसा ही दिखाई देने लगता है। हमेशा प्रकाशमय जीवन की कल्पना का दृढ़ विचार आपके अन्दर ऐसी मानसिक अवस्था उत्पन्न कर देगा जिससे आप सदैव सुखी रह सकेंगे। जीवन में प्रकाश और अंधकार दोनों हैं, परन्तु हर मनुष्य को

अधिकार है कि प्रकाश या अंधकार जिस तरफ उसकी इच्छा हो चला जाय। कई मनुष्यों को आदत हो जाती है कि वे जीवन के अंधकार और निराशा की ओर ही देखा करते हैं परन्तु यदि हम चाहें तो प्रकाश और आशा की ही तरफ देखने का अभ्यास कर सकते हैं। यह सब अपनी इच्छाशक्ति और दृढ़ विचार पर निर्भर है। ध्यान से अच्छी या बुरी तरफ जिधर प्रयत्न किया जाय वही प्राप्त होता है। आशावाद और निराशावाद जीवन के दो पृष्ठ हैं आप जिसे चाहें ग्रहण कीजिए। यह आपकी मानसिक अवस्था पर निर्भर है और मानसिक अवस्था आत्म-सूचना से निर्माण की जा सकती है। जैसा कि लोग अधिकतर समझते हैं सुख कोई बाहरी वस्तु नहीं है। हम कई मनुष्यों को धन, प्रभाव और उच्चपद पर देखते हैं पर फिर भी वे दुखी हैं। इसके विपरीत कई मनुष्य इन वस्तुओं के न होते हुए भी अत्यन्त दुखद परिस्थिति में से भी सुख प्राप्त कर लेते हैं। सुख का प्रादुर्भाव आन्तरिक है। यदि आप सुख अपने अन्दर से प्राप्त नहीं कर सकते तो बाहर से कदापि नहीं मिल सकता। सुख का अस्तित्व बाहरी वस्तुओं में कहीं पर भी नहीं है। किसी को पूर्ण सुख बाहरी वस्तुओं से प्राप्त नहीं हुआ है, जिसको भी यह प्राप्त हुआ है अपने ही भीतर से। इसलिए यदि आपने अपने ही में सुख प्राप्ति का साधन कर लिया तो आपको सुख का रहस्य मिल गया और यह साधन आप आत्म-सूचना द्वारा प्राप्त कर सकते हैं।

समृद्धि बहुत सी बातों पर निर्भर है, परन्तु इनमें आन्तरिक मानसिक स्थिति मुख्य है। सफलता के लिए कुछ मानसिक गुणों का होना आवश्यक है। यदि हमारी मानसिक शक्तियाँ विकासहीन और अपरिवर्तित रहती हैं तो अधिकतर हमको असफलता मिलती है परन्तु आत्म-सूचना द्वारा हम इन गुणों का विकास कर सकते हैं और इस प्रकार समृद्धि के मार्ग पर अग्रसर हो सकते हैं। हमारे भीतर एक ऐसी प्रबल आत्मशक्ति निहित है जिसका ज्ञान बहुतों को भूला रहता है और इसलिए वे परिस्थिति के दास बन जाते हैं। एक बार जब हमको इस शक्ति का अस्तित्व अपने भीतर दिखाई देने लगता है तो हमें परिस्थितियों के दासत्व से छुटकारा मिलकर उन पर विजय प्राप्त करने का अधिकार मिल जाता है, यही स्वास्थ्य, सुख और समृद्धि की कुंजी है।

राजयग ग्रंथमाला

अलौकिक चिकित्सा विज्ञान

अमेरिका में योग प्रकारक बाबा रामचरक जी की अंग्रेजी पुस्तक का अनुवाद चित्रमय छपा है। इसमें मानसिक चिकित्सा द्वारा अपने तथा दूसरों के रोगों को मिटाने के अतुल साधन दिये हैं। मूल्य २) रुपया, डाक खर्च ।।=)

सूर्य किरण चिकित्सा

सूर्य किरणों द्वारा भिन्न-भिन्न रंगों की बोतलों में जल, तैल तथा अन्य औषधि भर कर सूर्य की शक्ति सचित कर तथा रंगीन काँचों द्वारा सूर्य की किरणें व्याधिग्रस्त स्थान पर डाल कर अनेक रोग बिना एक पाई भी खर्च किये दूर करना तथा रोगों के लक्षण व उपचार के साथ पथ्यापथ्य भी दिये गये हैं। नया संस्करण मूल्य ५) रुपया, डाक खर्च ।।।)

संकल्प सिद्धि

स्वामी ज्ञानानन्दजी की लिखी हुई यथा नाम तथा गुण सिद्ध करने वाली, सुख, शांति, आनन्द, उत्साह वर्द्धक यह पुस्तक दुबारा छपी है मूल्य २) रुपया, डाक खर्च ।।=)

प्राण चिकित्सा

हिन्दी संसार में मेस्मेरिज्म, हिप्नाटिज्म, चिकित्सा आदि तत्वों को समझाने व साधन बतलाने वाली एक ही पुस्तक है। कल्पवृक्ष के संपादक नागरजी द्वारा लिखित गम्भीर अनुभव-पूर्ण तथा प्रामाणिक चिकित्सा के प्रयोग इसमें दिये गये हैं। जीवन में इस पुस्तक के सिद्धांतों से दीन-दुखी संसार का उपकार कर सकेंगे मूल्य २) रुपया, डाक खर्च ।।=)

प्रार्थना कल्पद्रुम

प्रार्थना क्यों तथा किस प्रकार करनी चाहिये। दैनिक सामूहिक प्रार्थना द्वारा अनिष्ट स्थिति से मुक्त होने व दूरस्थ मित्रों व मृत आत्माओं को शांति व अनोखा सन्देश दिखाने वाली आज के बाजार में अपूर्व पुस्तक है। मूल्य ।।) आना।

आध्यात्मिक मण्डल

घर बैठे आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त करने व साधन करने के लिए यह मण्डल स्थापित किया गया है, जिससे स्वयं शारीरिक व मानसिक उन्नति कर अपने क्लेशों से मुक्त होकर दूसरों का भी कल्याण कर सकें। सदस्य बनने वालों को शिक्षा व साधन के लिए प्रवेश शुल्क १०) रुपये हैं और निम्नलिखित पुस्तकें दी जाती हैं:—

१—प्राण चिकित्सा २—साधना [illegible] ३—ध्यान से काम चिकित्सा ४—प्राकृ[illegible] विज्ञान ५—आरोग्य साधन पद्धति ६—अध्यात्म शिक्षा पद्धति ७—त्राटक चार्ट ८—ॐ दर्शन ९—आत्म प्रेरणा १०—कल्प वृक्ष एक वर्ष तक। ११—अमूल्य उपदेश।

कोई भी सदाचारी व्यक्ति प्रवेश फार्म मँगा कर सदस्य बन सकता है।

अमूल्य उपदेश

कल्पवृक्ष में पूर्व प्रकाशित अमूल्य उपदेशों का दूसरा संस्करण। मूल्य २) डाक खर्च ।।=)

स्व० पं० शिवदत्त शर्मा की पुस्तकें

गायत्री महिमा ।।) — सोहम् चमत्कार ।।)
अग्निहोत्र विधि ।।) — ध्यान की विधि ।।)
आरोग्य आनंदमय जीवन ।।।) — ॐ कार जप ।।)

विश्वामित्र वर्मा द्वारा लिखित नई पुस्तकें

प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान

रोग क्यों तथा कैसे होता है, तथा दवा दारू, चीर फाड़, और जड़ी बूटी के बिना, शाम कौड़ी खर्च के बिना कैसे जाता है, विख्यात डाक्टरों का अनुभव मूल्य १।।)

यौगिक स्वास्थ्य साधन १)

प्राकृतिक स्वास्थ्य साधन

स्वास्थ्य के नये साधन, पौरुषवर्धक नये व्यायामों के २६ चित्र, भोजन की काया कल्प कारक नवीन वैज्ञानिक व्याख्या तथा नुस्खे। मूल्य २)

व्यावहारिक अध्यात्म

आत्म विकास द्वारा उन्नति और सफलता पाने के लिए दिव्य व्यावहारिक अध्यात्म १)

दिव्य सम्पत्ति

दुःखी थके, कलहों में फँसे, भीत और निराश लोगों के लिए दिव्य प्रेरणाएँ। मूल्य ।।)

जीवन का सदुपयोग (चार्ट) ।)
ऋतु-ऋतु भोजन चर्या (चार्ट) ।)
भोजन निर्णय (चार्ट) ।)
दिव्य भावना-दिव्य वाणी (चार्ट) ।)

मिलने का पता—कल्पवृक्ष कार्यालय, उज्जैन नं० १ (मध्य भारत)।

Registered No. N. 277

आध्यात्मिक मंडल, उज्जैन, म० भा०

की

निम्नलिखित शाखाओं में मानसिक, आध्यात्मिक एवं प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा मुफ्त इलाज होता है :—

स्थान प्रबन्ध और उपचारक

१ कोटा (राजपूताना) श्रीयुत पं० नारायणराव जी गोविंद नागर, प्रोफेसर ड्राईंग, श्रीपुरा

२ हींगनघाट (सी० पी०)—आयुर्वेदाचार्य मोहनलालजी शर्मा।

३ उदयपुर (१) (राजस्थान) संचालक आयुर्वेदाचार्य प० जानकीलालजी त्रिपाठी, चिन्तामणि कार्यालय भूपालपुरा, प्लाट नं० २०१।

उदयपुर (२ लाला जेठारामजी, मार्फत श्री देवराज, टी. टी. ई. रेलवे क्वार्टर्स, बी।२, रेलवे स्टेशन

४ खरगोन (मालवा प्रांत) श्री गोकुलजी पंढरीनाथजी मराठे मंत्री आध्यात्मिक मंडल।

५ अजमेर (राजपूताना) पंडित सूर्यभानुजी मिश्र, रिटायर्ड टेलिग्राफ मास्टर, रामगंज।

६ नसीराबाद (राजपूताना)—चाँदमलजी बजाज।

७ दोहरी घाट स्टे. ओ. टी. आर. (आजमगढ़ उ. प्र.) संचालक पं० क्षमानन्दजी शर्मा साहित्यरत्न

८ मन्दसौर (मध्य-भारत) दशरथजी भटनागर, खाद्य इन्स्पेक्टर, जनकपुरा।

९ मिट्ठी बेड़ी (देहरादून पो० प्रेमनगर) महावीरप्रसादजी त्यागी।

१० सरगुजा स्टेट (सी० पी०) लालजीप्रसादजी गुप्त।

११ जावरा (मध्य भारत)—विशारद पं० भालचन्द्रजी उपाध्याय, एजेन्ट कोआपरेटिव बैंक।

१२ गोंदिया (मध्यप्रान्त) लक्ष्मीनारायणजी माहुपोते, बी० ए० एल-एल० बी० वकील।

१३ नेपाल-धर्ममनीषी, साहित्यधुरीण, डा० दुर्गाप्रसादजी भट्टराई, टी० टी० दिल्ली बाजार।

१४ पोलायखुर्द (व्हाया अकोदिया मण्डी)—स्वामी गोविंदानन्दजी।

१५ धार (मध्य भारत)—श्री गणेश रामचन्द्र देशपांडे, निसर्ग मानसोपचार आरोग्य-भवन, धार।

१६ खम्भात (Cambay) श्री वल्लभाई हरजीवनजी पंड्या।

१७ राजगढ़ ब्यावरा (मध्य भारत) श्री हरि ॐ तत्सतजी।

१८ केकड़ी (अजमेर) पं० किशोरीलालजी वैद्य तथा सोहनलालजी राठी।

१९ बुढ़वल (ओ. टी. आर. जिला बाराबंकी) पं० रामशंकरजी शुक्ल, बुढ़वल शुगर मिल।

२० इन्दौर—श्री बाबू नारायणलाल जी सिहल, बी० ए०, एल-एल० बी०; श्री सेठ जगन्नाथ जी की धर्मशाला, संयोगितागंज।

२१ आलोट-विक्रमगढ़ (मध्य-भारत) अध्यक्ष सेठ ताराचन्दजी, उपचारक अनोखीलालजी मेहता।

२२ अटरू (कोटा राजस्थान)—पं० मोहनचंद्रजी शर्मा।

२३ बारां (कोटा राजस्थान)—सेठ गेंदालाल जी।

व्यवस्थापक व प्रकाशक—डॉ० बालकृष्ण नागर, कल्पवृक्ष कार्यालय, उज्जैन (मध्य भारत)
मुद्रक—भक्त सज्जन, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद-२

प्रति संख्या ।=) अस्थान, मध्यभारत एवं मध्य प्रान्त के शिक्षा-विभाग द्वारा स्वीकृत वार्षिक मूल्य

वर्ष ३२
संख्या १२

KALPA-VRIKSHA

A MAGAZINE OF DIVINE KNOWLEDGE

अगस्त १९५४
सं० २०११ वि०

१	बैंतीसवाँ वर्ष—संपादक	...	१
२	वेद विज्ञान सुधा (५)—श्री प० रणछोड़दास जी 'उद्धव'	...	२
३	हिन्दी सार्थ ज्ञानेश्वरी—प्राचार्य शं० वा० दांडेकर जी एम० ए०	...	६
४	एक प्राचीन अवैज्ञानिक अनोखा साधन—श्री विश्वामित्र वर्मा	...	८
५	परलोक में मन का महत्व—पं० गोपीवल्लभ जी उपाध्याय	...	११
६	स्वर्ग में असन्तोष —'योग वासिष्ठ से'	...	१६
७	प्रेरणा—श्री हरिनारायण जी मलतारे, बी० ए०	...	१७
८	अल्प और दीर्घ—श्री शिवशंकर जी मिश्र, एम० ए०	...	१८
९	मृत्यु के लिए—श्री सुदर्शन सिंह जी	...	२०
१०	बिखरे विचार—डॉ० बलदेव प्रसाद जी मिश्र, एम० ए०	...	२२
११	जीवन बीत रहा है—श्री शान्तिलाल जी छाजेड़	...	२६
१२	स्वर्ण-सूत्र— मनुष्य होकर मैं धन्य हूँ !		कवर के दूसरे पृष्ठ पर

मनुष्य होकर मैं धन्य हूँ !

मैं धन्य हूँ क्योंकि मैं मनुष्य हूँ !

इस धरती पर मेरे अतिरिक्त बड़े, छोटे और सूक्ष्म अन्य प्रकार और प्रकृति वाले भयंकर, घातक और विषाक्त जीवधारी भी हैं जो आपस में एक दूसरे को मारकर खा जाते हैं। बहुत से सूक्ष्म कीट-पतंगों का जीवन तो इतना थोड़ा है कि अँधेरे में पैदा होकर उजेला देखते ही मर जाते हैं, कुछ तो पैदा होकर शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। और कतिपय तो पृथ्वी के गर्भ में तथा गहरे सागर में रहते हैं जो अन्धकार-प्रकाश का भेद भी नहीं जानते। कितने ही तो गन्दगी से उत्पन्न होकर उसी में पलते हैं। इन सबको उतनी इन्द्रियाँ नहीं हैं कि अपनी परिस्थिति को जानें, और उससे मुक्त होने तथा जीवन यापन की सामग्री का स्वतन्त्र साधन से उपार्जन कर सकें। इस सब विचित्र रचना और प्रकृतिमय संसार में मैं कितना धन्य हूँ कि मैं मनुष्य हूँ, अन्य कोई इतर जीव नहीं हूँ। और यदि दस कर्म और ज्ञानेन्द्रियों में एकाध मुझमें न भी हो, मैं अंधा, बहरा या अपंग भी होऊँ तो भी मैं धन्य हूँ क्योंकि इतनी कर्म और ज्ञानेन्द्रियों से सम्पन्न, स्वतंत्र इच्छा, बुद्धि, और आत्म-विचार की प्रेरणा मुझमें है। मुझे किसी का भय नहीं, मेरा जीवन क्षणभंगुर नहीं है।

मैं धन्य हूँ कि मुझे मनुष्य जन्म मिला है। मैं कितना श्रेष्ठ, शक्तिशाली, ज्ञान और साधन सम्पन्न हूँ कि मैं सृष्टि की तथाकथित चौरासी लाख प्रकार के जन्म-मरण चक्र से मुक्त होने तथा आत्म-कल्याण करने के लिए तत्पर हूँ।

और अपने ज्ञान विज्ञान के अनुसन्धान में जब मैं धरती और असीम अनन्त आसमान के बीच सूर्य चन्द्र ग्रह नक्षत्रादि लोकों की नाप तौल और सृष्टि की उत्पत्ति-प्रलय का विचार करता हूँ तो सोचता हूँ कि जन्म के समय मैं कैसा था, जन्म से पूर्व मैं क्या था, मेरी क्या दशा थी, और आज जो कुछ हूँ उसके बाद क्या होऊँगा ! आह ! अपनी गर्भावस्था की, उस अज्ञानमय संकीर्ण, अन्धकारपूर्ण परिस्थिति में—अपनी कल्पना ! जननी ने नन्हें रूप इस शरीर को अपने में से ही विधाता के रहस्यमय विधान से रचकर प्रसव किया, जन्मभूमि ने आश्रय दिया ! स्वर्ग से भी बड़ी जननी और जन्मभूमि को नमस्कार करते हुए विधाता को धन्यवाद देता हूँ कि मुझे आत्मज्ञान और साधन-सम्पन्न मनुष्य जन्म मिला है जिसके द्वारा विवेक सहित मैं मन वचन कर्म से अब प्रतिक्षण चौरासी के चक्र से मुक्त होने के लिए इस अनमोल मनुष्य जीवन को सफल करने का प्रयत्न कर रहा हूँ। मुझे स्वर्ग या पुनर्जन्म की भी इच्छा नहीं।

संस्थापक
स्वर्गीय डॉ० दुर्गाशङ्कर नागर

ॐ

कल्पवृक्ष

इस अंक के साथ ... वर्ष समाप्त है

अध्यात्म-विद्या का मासिक-पत्र

सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥ गीता ॥

वर्ष ३२ } उज्जैन, अगस्त सन् १९५४ ई०, सं० २०११ वि० { संख्या १२

तैंतीस वर्ष

संम्पादक

'कल्पवृक्ष' के बत्तीस वर्ष, इस मास के अंक के साथ सफलतापूर्वक पूर्ण हुए। इतने काल के प्रकाशन में 'कल्पवृक्ष' में शारीरिक, स्वास्थ्य, मनोबल, आत्मविकास, तथा जीवन को अधिकाधिक उन्नत बनाने के हेतु कितने ही विद्वानों, योगियों और जिज्ञासुओं के सन्देश साधन और अनुभव इसमें प्रकाशित हुए हैं जिनसे अब तक अनगिनत पाठकों को जीवन में नवीन प्रेरणाएँ मिली हैं, नवीन प्रकाश और नया मार्ग मिला है। इसके सन्देश से सत्संगी पाठकों को आत्म जागृति हुई है और अनेक ने शारीरिक, मानसिक कष्टों से मुक्त होकर नया जीवन प्राप्त किया है। कितने ही निराश होकर आत्महत्या की तैयारी में लगे हुए लोगों के मनोविकार दूर हुए, आत्मशुद्धि हुई और उन्हें जीने के लिए नवीन प्राण मिला है। यह सब हमने नहीं किया, वरन् परस्पर संयोग से परमपिता परमात्मा की कृपा से हुआ है। हम परमपिता को उसकी महती कृपा के लिए धन्यवाद देते हैं, और साथ ही साथ उन सहयोगी विद्वज्जनों के भी हम कृतज्ञ हैं जिन्होंने अपने ज्ञान, साधना और अनुभव प्रकाशन के लिए दिये हैं और दे रहे हैं।

'कल्पवृक्ष' के पाठकों में कितने ही ऐसे पुराने अध्यात्म प्रेमी है जो प्रारंभ से कल्पवृक्ष के ग्राहक अब तक बने हुए हैं तथा सदा अपने

मित्रों और परिचितों में कल्पवृक्ष का प्रचार करते हैं और समय समय पर अज्ञात प्रेरणा से स्वयं 'कल्पवृक्ष' के प्रकाशन में सहायता देते रहते हैं और मित्रों से दिलाते रहे हैं। हम ऐसे प्रेमियों और उत्साह देने वाले सहयोगियों के कृतज्ञ हैं कि उन्होंने हमारे इस निष्काम योग में हाथ बटाया। इस महँगाई के जमाने में, कल्पवृक्ष का प्रकाशन हमारे लिए व्यावसायिक लाभ का साधन न होकर, हमेशा की तरह, उसी मूल्य में पाठकों के पास पहुँच रहा है।

आगे हम पुरातन ज्ञान और साधना, नवीनतम सहजसाधन की भाषा में व्यावहारिक दृष्टिकोण से उपयोगी सामग्री पाठकों को भेंट करते रहेंगे। मनुष्य इस संसार में रहस्यमय शक्तिसम्पन्न चेतन प्राणी है, इसी का रहस्योद्घाटन करने का हम अगले अंकों में प्रयत्न करेंगे, कि मनुष्य क्या है, क्या कर सकता है, क्या हो सकता है तथा अब तक लोगों ने क्या किया और कैसे किया जिससे सबको प्रेरणा मिले और जीवन का सुधार हो।

बीते हुए वर्ष की पुरानी बीती बातें, चिन्ताओं शंकाओं निराशाओं को पुराने फटे कपड़े की तरह उतार, निकाल, फेंकिए। इनसे अब कुछ लाभ नहीं। अगले अंक से कल्पवृक्ष नवीन तैंतीसवें वर्ष में प्रवेश करेगा। नवीन वर्ष के संदेश की प्रतीक्षा करें और नवीन बनने की तैयारी करें।

आशा है अध्यात्मप्रेमी हमें सदैव की भाँति सहयोग देते रहेंगे।

इस वर्ष प्रेस की असावधानी से प्रिय पाठकों की सेवा में कल्पवृक्ष के अंक समय पर नहीं पहुँच सके इसका हमें हार्दिक दुःख है। नवीन वर्ष में हमारा प्रयत्न सदैव यह रहेगा कि कल्पवृक्ष पाठकों की सेवा में नियमित रूप से यथा समय पहुँचे। विगत वर्ष में जिन श्रद्धालु महानुभावों ने कल्पवृक्ष को आर्थिक सहायता दी है उनके हम हृदय से आभारी हैं।

वेदविज्ञानसुधा (५)

श्री रणछोड़दास जी 'उद्धव'

ब्रह्म-ज्ञान और यज्ञ-विज्ञान

मोहन - मित्रवर माधव! आपने 'पहले कहा था कि—"अग्नीसोमात्मक यज्ञ से संपूर्ण सृष्टिएँ होती हैं, एवं अग्नि-सोम में चारों वेद आ जाते हैं तथा वेदों का नाम ब्रह्म है। 'संपूर्ण विश्व ईश्वरमय है' इस ज्ञान के पहले 'संपूर्ण विश्व एक प्रजापति का वैभव है' यह विज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है", इत्यादि में कथित ब्रह्म, यज्ञ, ज्ञान और विज्ञानादि शब्दों का कृपया विशेष स्पष्टीकरण करिए।

माधव—प्रियवर मोहन! मुझे तात्त्विक चर्चा करने में कभी भी कष्ट नहीं होता है, अतः आप निःसंकोच पूछते रहिए, मैं यथाशक्ति सुनाता रहूँगा। प्रस्तुत विषय का स्पष्टीकरण करता हूँ।

आपका प्रश्न विद्या से सम्बन्ध रखता है। सर्व विद्याओं का आत्मविद्या और विश्वविद्या में ही अन्तर्भाव होता है।

सब खंडविद्याओं का आत्मविद्या और विश्वविद्या इन दो विद्याओं में ही अन्तर्भाव है। इन दोनों में आत्मविद्या मौलिक विद्या है और विश्वविद्या यौगिकविद्या है। मौलिक तत्व को विज्ञान भाषा में "ब्रह्म" कहा जाता है अतः आत्मविद्या को "ब्रह्मविद्या" कहते हैं और यौगिकतत्व को "यज्ञ" कहा जाता है अतः विश्वविद्या को "यज्ञविद्या" कहते हैं। सृष्टिदशा में ब्रह्म ही यज्ञरूप में परिणत होता है और प्रलयदशा में वही यज्ञ ब्रह्मरूप में परिणत हो जाता है। ब्रह्म के आधार पर यज्ञ प्रवृत्त होता है और यज्ञ को लक्ष्य बनाकर

ब्रह्मप्राप्ति होती है। ब्रह्मदशा में एकत्व है और यज्ञदशा में नानात्व प्रधान है। ये ही सुप्रसिद्ध ज्ञान एवं विज्ञानतत्व हैं। ब्रह्म से यज्ञ की ओर आना, आत्मा से विश्व की ओर आना, एकत्व से अनेकत्व की ओर आना और अमृत से मृत्यु की ओर आना विज्ञान है एवं यज्ञ से ब्रह्म की ओर जाना, विश्व से आत्मा की ओर जाना, अनेकत्व से एकत्व की ओर जाना और मृत्यु से अमृत की ओर जाना ज्ञान है। दोनों दोनों के उपकारक हैं। केवल ज्ञान भी निरर्थक है और केवल विज्ञान भी क्षणिक विज्ञान कोटि में प्रविष्ट होता हुआ नाश का ही कारण है। ज्ञान और विज्ञान का समन्वित रूप ही अभ्युदय तथा निःश्रेयस का साधक है। दोनों के सम्यक् परिज्ञान से ही ज्ञान-विज्ञानमूर्ति (सदसद्मूर्ति, अमृत-मृत्युमूर्ति, आत्म-विश्वमूर्ति, ब्रह्मकर्ममूर्ति या अनिरुक्त-निरुक्तमूर्ति) विश्वेश्वर का सम्यक् परिज्ञान होता है। यही योगमायायुक्त पुरुष का परम पुरुषार्थ है। दोनों के परिज्ञान के बाद कुछ भी जानने योग्य शेष नहीं रह जाता। जैसा कि ज्ञान-विज्ञानाचार्य भगवान् कृष्ण कहते हैं—

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥

—गीता ७।२

ज्ञानप्रधान आत्मविद्याशास्त्र ही दर्शनशास्त्र है और विज्ञानप्रधान विश्वविद्याशास्त्र ही यज्ञ-शास्त्र है। दोनों का नित्य सम्बन्ध है। ये ही दोनों शास्त्र पश्चिमी विद्वानों में फिलॉसफी (दर्शन) और सायन्स (विज्ञान) नाम से प्रसिद्ध हैं। ब्रह्म नाम का मौलिकतत्वविभाग ही वहाँ फिजिक्स नाम से और यज्ञ नाम का यौगिक-तत्वविभाग ही केमिस्ट्री नाम से, कहा जाता है। पश्चिमी विद्वान् जहाँ केवल यज्ञविद्यात्मक विज्ञान का आश्रय लेते हुए क्षणस्थायी लौकिक वैभव से युक्त होते हुए नित्य शान्त-आनन्द से वञ्चित रहते हुए प्रतिक्षण नाश की ओर जा रहे हैं, वहाँ भारतीय विद्वान् ब्रह्मविद्यात्मक केवल ज्ञान का ढोल पीटते हुए "कलौ वेदान्तिनः सर्वे" अर्थात् 'कलि में सब वेदान्ती हैं' इस न्याय को पूर्ण यथार्थ करते हुए अर्थात् दरिद्रता के अनन्य उपासक बनते हुए सब ओर से पथभ्रष्ट हो रहे हैं। होना यह चाहिए कि—"अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन।" इत्यादि भगवान् के आदेशों को शिरोधार्य कर हम उस नित्यविज्ञान का आश्रय लें, जिसके मूल में निरंतर ज्ञानधारा बह रही है और उस ज्ञान के शरण जायँ, जिसके आधार पर इस लोक की उन्नति का साधन यज्ञरूप विज्ञान स्थित है। यही तो वेदशास्त्र का सर्वोच्च महत्व, भारतवर्ष का जगद्गुरुत्व और आर्यसंस्कृति का सर्वशिरोमणित्व है।

वेदि के समीप कुण्ड बनाकर उसमें अग्नि स्थापित कर स्वाहापूर्वक घृत-तिलादि की आहुति दे देने मात्र को ही यज्ञ समझनेवाले विद्वान् यह भूल जाते हैं कि यह एक ऐसा श्रेष्ठतम कर्म है, जिसके आधार पर नवीन विश्व का निर्माण किया जा सकता है। मौलिक तत्वों के रासायनिक संयोग में उत्पन्न यौगिक भाव ही यज्ञ है। सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा०' इत्यादि स्मार्त सिद्धान्त के अनुसार यज्ञ से ही सारे लोक, लोकों में रहनेवाली प्रजादि सब कुछ उत्पन्न हुए हैं। सृष्टि निर्माण करनेवाले प्राकृतिक नित्य नियम का ही नाम यज्ञ है। प्राकृतिक यज्ञ के परिज्ञान से हम भी प्रकृति के समान नवीन रचना करने में समर्थ हो सकते हैं। यज्ञ हमारे लिए इष्टकामधुक् है। यज्ञकर्म में प्रधान रूप से दो तत्वों का समन्वय ही अभिप्रेत है। प्रश्नोपनिषद् में ये दोनों योषा और वृषा क्रम से रयि और प्राण नामों से कहे हैं। वहाँ रयि और प्राण के समन्वय से ही संपूर्ण ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति बतलाई गई है। अन्नरूप योषातत्व सोम है, यह दाह्य है। अन्नादरूप वृषातत्व अग्नि है, यह दाहक है।

दाहक अग्नि उष्णतत्व है और दाह्य सोम शीत-तत्व है। गर्मी और सर्दी का मिथुनभाव ही ऋतु है और ऋतुओं की समष्टि ही संवत्सर है। संवत्सर ही यज्ञप्रजापति है। यही यज्ञप्रजापति त्रैलोक्य का उत्पादक है। इसी प्राजापत्य यज्ञविज्ञान का स्पष्ट शब्दों में निरूपण करते हुए श्रौतवचन हमारे सामने आते हैं—

१—"यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।"

—यजुर्वेद ३१।१६

'प्रकृतियज्ञ के सञ्चालक प्राणदेवताओं ने और मनुष्यविध भौमदेवताओं ने संवत्सरमूर्ति यज्ञ के आधार पर ही प्रजोत्पादक यज्ञ और दैवात्मा का उत्पादक वैधयज्ञ का संचालन किया था। यह धर्म (यज्ञकर्म) बहुत प्राचीन थे (हैं)। अर्थात् सृष्टि के आरम्भ में इसी यज्ञकर्म का सहारा लिया गया था।

२—"ऋतुरस्मि, आर्तवोऽस्मि। आकाशायोनेः संभूतो भार्यायैरेतः संवत्सरस्य तेजो, भूतस्यात्मभूतस्य त्वमात्मासि, यस्त्वमसि, सोऽहमस्मि।" —कौ० उपनिषद् १।६

३—"स एष संवत्सरः प्रजापतिः षोडशकलः।" —शतपथ १४।४।३।२२

४—"संवत्सरसम्मितो वै यज्ञः। पञ्च वा ऋतवः संवत्सरस्य तं पञ्चभिराप्नोति, तस्मात् पञ्च जुहोति।"

—शत० ११।१।१।१

५—"तस्मादाहुः संवत्सरस्य सर्वे कामाः।"

—शत० १०।२।४।१

६—"ऋतवः संवत्सरः।"

—तै० ब्राह्मण ३।६।६

७—"पुरुषो वै संवत्सरः।"

—शत० १२।२।१

"संवत्सर से उत्पन्न पुरुष वास्तव में संवत्सर (की प्रतिमा) है।"

आर्य महर्षियों ने अपने तपोयोग से इस अलौकिक यज्ञविद्या का दर्शन किया और लोक-कल्याण के लिए उसी यज्ञविद्या को वैधयज्ञरूप से हमारे सामने रखा। ऐसे अमूल्य धन को खोकर सचमुच आज हम अपने हाथों ही अपना सर्वनाश करा रहे हैं। आज इस नित्यविद्या का अवसान हमने आग में दो-चार मन घी डालने पर ही मान रखा है।

वेद वास्तव में विज्ञान का अद्भुत खजाना है। किन्तु वेद स्वाध्याय से विमुख होकर सचमुच हमने—

"जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः"

को पूर्ण चरितार्थ कर अपने हाथों से अपना सर्वनाश करा लिया है। कुछ समय से (जब से वैदिक स्वाध्याय छूटा है तब से) यहाँ के विद्वानों की ऐसी प्रवृत्ति हो गई है कि उन्होंने अपने घर में अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए जो अपना कल्पित सिद्धान्त बना रखा है, उसके विरुद्ध वे एक अक्षर भी सुनना नहीं चाहते, चाहे फिर वह विचार शास्त्र और युक्तिसङ्गत ही क्यों न हो। यद्यपि—

"आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राविरोधिना।
यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेद नेतरः॥

—मनु० १२।१०६

अर्थात् 'ऋषियों के कहे हुए धर्मोपदेश का वेदशास्त्र के अविरोधी तर्क से जो अनुसंधान करता है, वही धर्म को जानता है दूसरा नहीं जान सकता।' यह भी उन्हीं के आप्त पुरुषों का सिद्धान्त है, परन्तु आजकल उनकी दृष्टि में इस सिद्धान्त का भी कोई मूल्य नहीं है। यहाँ का तर्क भी साधारण मानवों का अशिक्षित तर्क नहीं है। जिसने वेद और शास्त्रों का पठन-पाठन किया है एवं वेद और शास्त्रों की प्रतिपादन शैली का जिसको पूर्ण पता है, उसका तर्क यहाँ है।

महाभारतकाल के पीछे से सर्वशास्त्रमूर्धन्य वेदशास्त्र का पठन-पाठन विरलप्राय बन रहा है। केवल पारायण पर ही वेदशास्त्र की इतिकर्तव्यता समाप्त मान ली जाती है। वेद में किन

मौलिक तत्वों का विचार हुआ है ? इस सम्बन्ध में सायण, माधव और हरिहर आदि वेद-व्याख्याता भी मौन हैं। केवल कर्मकाण्ड का समन्वय ही उपलब्ध वेदभाष्यों का परम पुरुषार्थ है। इधर कुछ समय पूर्व ऐसे व्याख्याता उत्पन्न हुए हैं, जिन्होंने वेद में तार टेलीफोन आदि के निरूपण में ही वेद का ममत्व माना है। भारतवर्ष में आज वेदविद्या की चर्चा बिलकुल रुकी हुई है। संस्कृत विद्या के अगाध विद्वानों की समस्त आयु व्याकरण, न्याय, ज्योतिष, साहित्य आदि में समाप्त है। इन्हें वेदार्थ पर दृष्टि देने का अवसर ही नहीं मिलता। अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत और द्वैत आदि सम्प्रदायों के अनुयायी सांप्रदायिक ग्रन्थों को ही सर्वेसर्वा मानते हुए वेदस्पर्श में भी पाप समझते हैं। कुछ समय से भारतीय विद्वानों ने वेदार्थ के सम्बन्ध में कुछ प्रयास किया भी है तो वह दूसरे की सम्पत्ति होने से उच्छिष्ट मात्र है। पश्चिमी विद्वानों ने वेदार्थ के सम्बन्ध में जो विचार प्रकट किये हैं, उन्हीं के आधार पर कुछ लिखनेवालों के विचार भी हमारी जिज्ञासा को पूर्ण करने में असमर्थ हैं। जब विद्वन्मण्डली की यह दशा है तो साधारण जन समाज का तो कहना ही क्या है। इस प्रकार आर्यजाति का सर्वस्व वेदशास्त्र आज असुर्यलोक में पड़ा हुआ हमारी भाग्यसंपत् को अभिशाप दे रहा है। किन्तु आर्यजाति का चिरन्तन सत्य विश्वास है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
॥गीता ४.७॥

'जब जब ग्लानि धर्म की होती
और पाप का बढ़े प्रचार।
हे भारत! तब-तब मैं आकर
स्वयं लिया करता अवतार ॥'

उसी के फलस्वरूप वेदमूर्ति विश्वेश्वर की कृपा से और आर्यजाति के सौभाग्य से वर्तमान युग में स्वनामधन्य विद्यावाचस्पति, समीक्षाचक्रवर्ती परमपूज्य श्रीमधुसूदनजी ओझा अवतीर्ण हुए। ओझाजी ने ईश्वराज्ञा पत्ररूप वैदिक तत्वों को संसार के सामने रखकर सुप्तप्राय भारतवर्ष को पुनः प्रकाशित किया है। आज भारतवर्ष के एवं युरोप के उच्चकोटि के सभी विद्वान् यह मान गये हैं कि उक्त महापुरुष ने सचमुच वेदार्थ के सम्बन्ध में एक नया युग उपस्थित किया है। जो वैदिकतत्व भाष्यकारों और विद्वानों के लिए स्वप्नजगत् की वस्तु थी, वही आज जाग्रत-अवस्था में आकर हमारे आश्चर्य का कारण बन रहे हैं। श्रीमधुसूदनजी महाराज ने अपनी अप्रतिम ईश्वरप्रदत्त प्रतिभा के बल से वेदार्थ के स्पष्टीकरण के लिए भिन्न-भिन्न विषयों पर लगभग २०० ग्रन्थ लिखे हैं। आपके सभी ग्रन्थ अमरभारती (संस्कृत) को अलंकृत कर रहे हैं। यह देश का दुर्भाग्य है कि उक्त ग्रन्थों में से १२-१५ ग्रन्थ ही प्रकाशित हुए हैं। शेष सम्पत्ति उन सम्पत्तिशालियों की विशेष बुद्धिमानी से भारतवर्ष को वञ्चित किये हुए है। हमारा विश्वास है कि जगदीश्वर की दया से जिस दिन उक्त वैदिक साहित्य पूर्ण प्रकाश में आ जायगा, उस दिन समस्त मानवजाति का एकमात्र आराध्य वेद पुरुष ही रह जायगा। अतः प्यारे मोहन! मानवमात्र के कल्याणार्थ अपने इष्टमित्रों में और सर्वत्र वेदविज्ञान का प्रचार करना अपना प्रधान उद्देश्य होना चाहिए।

हिन्दी सार्थ ज्ञानेश्वरी

[जिस प्रकार उत्तर प्रदेश में गोस्वामी तुलसीदासजी की रामायण घर घर पढ़ी जाती है उसी प्रकार महाराष्ट्र में श्री संत ज्ञानेश्वर महाराज जी की ज्ञानेश्वरी पढ़ी जाती है। साहित्य की दृष्टि से तो वह सर्वोत्तम है ही, शान्ति प्रदान करने का भी सर्वोत्कृष्ट साधन है। मराठी भाषा में उस पर कई टीकाएँ प्रसिद्ध हैं। हाल में ही वारकरी सम्प्रदाय के अध्वर्यु, श्रीज्ञानेश्वर महाराजजी के अनन्य भक्त और ज्ञानेश्वरी के परम अभ्यासी ह० भ० प० प्राचार्य शं० वा० दांडेकर महाराजजी, एम० ए० की साम्प्रदायिक ज्ञानेश्वरी की सार्थ टीका प्रकाशित हुई है। हिन्दी भाषा में ज्ञानेश्वरी की मूलसहित सार्थ टीका उपलब्ध नहीं है। इस कमी की पूर्ति के लिए श्री दांडेकर महाराजजी की ज्ञानेश्वरी की सार्थ टीका के हिन्दी अनुवाद का पवित्र कार्य जारी है। उसमें से नीचे एक नमूना दिया हुआ है। पाठक उसके संबंध में अपनी राय 'ज्ञानेश्वरी अनुवाद कार्यालय, ७।२।९ डेक्कन जिमखाना, पूना' इस पते पर अवश्य भेजने की कृपा करें।—सम्पादक]

यज्ञशिष्टाशिनः संतो मुच्यंते सर्वकिल्विषैः।
भुजंते ते त्वघं पापा ये पचत्यात्म कारणात् ॥३-१३॥

यज्ञ से शेष बचे हुए अन्न को खानेवाले सज्जन सब पापों से मुक्त होते हैं। जो यज्ञ न करके केवल अपने लिए ही पाकसिद्धि करते हैं वे पापी लोग तो पाप को ही खाते हैं।१३।

देखा विहित क्रियाविधि। निर्हेतुकाबुद्धि। जो असतिये समृद्धि। विनियोगु करी। ॥११९॥

देख, निर्हेतुक बुद्धि से स्वधर्माचरण करने में जो अपने पास होनेवाले धन का विनियोग करता है, ११९।

गुरु गोत्र अग्नि पूजी। अवसरीं भजे द्विजीं। निमित्तादिकीं यजी। पितरोद्देशें ॥१२०॥

जो गुरु, गोत्र और अग्नि की पूजा करता है, योग्य अवसर पर ब्राह्मणों की सेवा करता है और पितरों के लिए श्राद्धादि नैमित्तिक कर्म करता है, १२०।

या यज्ञक्रिया उचिता। यज्ञेशीं हवन करितां। हुतशेष स्वभावतः। उरे जें जें ॥१२१॥

उपरनिर्दिष्ट विहित कर्माचरणरूपयज्ञ से यज्ञपुरुष की सेवा में यजन करके जो यज्ञशेष अनायास ही रहेगा, १२१।

तें सुखें आपुलां घरीं। कुटुंबेसीं भोजन करी। कीं भोग्यचि तें निवारी। कल्पषातें ॥१२२॥

उसका अपने घर में अपने कुटुंबसहित जो सुख से सेवन करता है, वह सेव्य ही उसके पाप का नाश करता है। १२२।

ते यज्ञावशिष्ट भोगी। म्हणोनि सांडिजे तो अघीं। जयापरी महा रोगीं। अमृतसिद्धि ॥१२३॥

वह यज्ञ करके बचा हुआ अन्न सेवन करता है। इसीलिए जिस प्रकार अमृत प्राप्त होने से बड़े बड़े रोग भी रोगी को छोड़कर चले जाते हैं, उसी प्रकार पाप उसे छोड़कर चला जाता है। १२३।

कीं तत्त्वनिष्ठु जैसा। नागवे भ्रांति-केशा। तो शेषभोगी तैसा। नाकले दोषा ॥१२४॥

या, जिस तरह ब्रह्मनिष्ठ पुरुष भ्रांति को (देहतादात्म्यको) थोड़ा भी वश नहीं होता है, उसी तरह यज्ञ का शेष भोगनेवाला पापके घाव में नहीं आता है। १२४।

म्हणोनि स्वधर्में जें अर्जे। तें स्वधर्मेंचि

विनियोगिजे । मग उरे ते भोगि जे । संतो-पेंसीं ॥१२५॥

इसलिए स्वधर्माचरण से जो मिलेगा उसको स्वधर्म करने में ही खर्च करना चाहिए और जो शेष बचेगा उसको आनंद से भोगना चाहिए । । १२५ ।

हें वांचूनि पार्था । राहाटों नये अन्यथा । ऐसी आध हे कथा । मुरारी सांगे ।।१२६॥

अर्जुन, इस रीति के बर्ताव के अतिरिक्त अन्य प्रकार से आचरण न करना चाहिए, ऐसी यह आद्य कथा श्रीकृष्ण ने कही । १२६ ।

जे देहचि आपणपें मानिती । आणि विषयांतें भोग्य म्हणती । या परतें स्मरती । आणिक कांहीं ॥१२७॥

इस देह ही. है ऐसा मानकर जो लोग विषय को भोग्य वस्तु समझते हैं और जिनको इसके परे दूसरी कुछ भी कल्पना नहीं होती है, १२७।

हें यज्ञोपकरण सकल । नेणतसांते वरल । अहंबुद्धी केवल । भोगूं पाहती ॥१२७॥

ऐसे भ्रांत लोग अपने पास की संपत्ति आदि सब कुछ यज्ञ की सामग्री है ऐसा न समझकर उसका स्वयं ही अहङ्कार से उपभोग करने के लिए प्रवृत्त होते हैं ।१२७।

इंद्रियरुचीसारखे । करविती पाक निके । ते पापिये पातकें । सेविती जाण ॥१२९॥

वे इन्द्रियों को भानेवाले पदार्थ बनाते हैं। वे पापी लोग इन पदार्थों के रूप में वास्तव में पाप को ही सेवन करते हैं, ऐसा समझ । १२९ ।

जे संपत्तिजात आघवें । हें हवनद्रव्य मानावें । मग स्वधर्मयज्ञें अर्पावें । आदि-पुरुषीं ॥१३०॥

वास्तव में जितनी अपनी संपत्ति है उतनी सब यज्ञ के उपयोग में आनेवाली सामग्री है ऐसा समझकर उसको स्वधर्मरूप यज्ञ से पर-मेश्वर को अर्पण करना चाहिए । १३० ।

हें सांडोनिया मूर्ख । आपणपें याजागीं देख । निपजविती पाक । नानाविध ॥१३१॥

इस प्रकार से आचरण करना छोड़कर वे मूर्ख लोग अपने लिये ही विभिन्न प्रकार के पक्वान बनाते हैं । १३१ ।

जिहीं यज्ञु सिद्धी जाये । परेशा तोषु होये । तें हें सामान्य अन्न न होये । म्हणो-नियां ॥१३२॥

जिस खाद्यवस्तु से यज्ञ सिद्ध को प्राप्त होता है और परमेश्वर संतुष्ट होता है, इसलिए वह खाद्यवस्तु साधारण नहीं है । १३२ ।

हें न म्हणावें साधारण । अन्न ब्रह्मरूप जाण । जे जीवनहेतु कारण । विश्वा यया ॥१३३॥

उसको साधारण न समझना चाहिए । अन्न ब्रह्मरूप है ऐसा तू समझ । कारण अन्न सब संसार को जीवित रखने का साधन है । १३३ ।

अन्नाद्भवंति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्म समुद्भवः ॥१४॥

संपूर्ण प्राणि अन्न से उत्पन्न होते हैं। अन्न की उत्पत्ति वृष्टि से होती है । वृष्टि यज्ञ से होती है और यज्ञ की उत्पत्ति कर्म से होती है । १४ ।

रोग नाश, स्वास्थ्य लाभ और दीर्घायु प्राप्ति के लिए

एक प्राचीन, अवैज्ञानिक, अनोखा साधन

श्री विश्वामित्र वर्मा

सभी प्राणी श्वास लेते हैं। प्राण ही सब का जीवन आधार है, प्राण पर ही प्रधानतः आश्रित होने के कारण सब शरीरधारी प्राणी कहलाते हैं। प्राण से ही विश्व स्थिर और चलायमान है। प्राण से ही सृष्टि हुई, प्राण से ही सब कुछ चेतन है। प्राणाकर्षण अर्थात् श्वास प्रश्वास की क्रिया सृष्टि के आरम्भ से प्रचलित है। इस सृष्टि में कभी कोई ऐसा मनुष्य नहीं हुआ जो श्वास के बिना उत्पन्न हुआ है, प्राण के बिना जीता रहा हो, और श्वास लेने पर मर गया हो। मनुष्य तो क्या संसार के सब चेतन जीवधारी श्वास लेते है, कीड़े मकोड़े, जलजन्तु और भूगर्भ में पाये जाने वाले जीव भी स्वल्पाधिक अपनी प्रकृति अनुसार प्राणाकर्षण करके ही जीते हैं। जो प्राणहीन है, जो श्वास नहीं लेता उसे हम जड़ मानते हैं, अर्थात् वह चलायमान और वर्धमान नहीं होता। इस प्रकार विज्ञान द्वारा सिद्ध हो चुका है कि पेड़ पौधे जो उगते, बढ़ते, फूलते, फलते हैं वे भी श्वास प्रश्वास करते है, वे चेतन प्राणी हैं। पत्थर, मिट्टी, धूल और वायु का एक एक सूक्ष्मातिसूक्ष्म कण अणु परमाणु प्राणयुक्त चेतन चलायमान है। भारतीय "वेद" के अनुसार सब कुछ चेतन, ब्रह्मस्वरूप है, जड़ कुछ भी नहीं। ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्चित जगत्यां जगत्" और सर्वं खलु इदं ब्रह्म, त्वं ब्रह्म, इत्यादि।

आधुनिक स्वास्थ्य विज्ञान का यह सिद्ध मत है कि श्वास प्रश्वास की क्रिया को सतत चलते रखे बिना मनुष्य जी नहीं सकता। जरा सा भी श्वास रुकने या रोकने से उसका दम घुटने लगता है। पानी में डूबने से, बन्द जगह में रहने से, ऊँचे पर्वतों पर अथवा आसमान में वायुयान में बहुत ऊंचे उड़ने पर भी श्वास के लिए प्राणवायु न मिलने पर मनुष्य मर जाता है।

प्रकृति की इस सतत स्वाभाविक आवश्यक क्रिया और वैज्ञानिक सिद्धान्त के विपरीत हमारे एक प्राचीन महर्षि पातञ्जलि द्वारा प्रचलित शास्त्र और साधन अष्टांग योग के नाम से विख्यात है जिसके अन्तर्गत प्राणायाम की क्रिया उसकी चौथी भूमिका है जिसमें रोग नाश, शरीर शोधन, स्वास्थ्य वर्धन, आत्म विकास, आत्मकल्याण और आत्म साक्षात्कार के आकांक्षी साधक को अनेक प्रकार से, श्वास रोकने और श्वास को शरीर के विभिन्न भागों में भरकर रोकने अर्थात् प्राणायाम करने के विधान बताये हैं जिनसे बहुत प्रकार के लाभ और चमत्कार होते हैं, मनुष्य की अनेको सुप्त सूक्ष्म शक्तियाँ जाग्रत होती हैं, जो साधारण सतत श्वास प्रश्वास करने वालों को सुलभ साध्य नहीं हैं। यथा प्राणायामी साधक (योगी) के नाक मुँह आँख बन्द कर दो, तो कान के मार्ग से श्वास प्रश्वास कर लेते हैं। श्वास प्रश्वास किये बिना 'केवल कुंभक' में स्थिर रहते हैं। कोई भी संसारी व्यक्ति हाथ पाँव हिलाये बिना पानी में नहीं रह सकते, किन्तु हाथ पाँव बँधे जाने पर भी योगी पानी में स्थिर अचल रहते हैं। संसारी अधोगामी होते हैं, जबकि प्राणायाम और अपानायाम युक्त साधनों से योगी ऊर्ध्वरेता होता है और इसी से वह उपस्थेन्द्रिय द्वारा वायु जल दुग्ध घृत मधु और पारद का भी आकर्षण कर लेता है। ऐसे ही एक योगी साधनालय गंगाघाट, उज्जैन में हैं। प्राणायाम के विशेष साधन से ही कतिपय साधक अपनी छाती पर चार-पाँच मन वज़न

का भारी पत्थर रखवा कर घन की चोट लगवा कर तोड़ते हैं और गले में फाँसी लगाने पर भी नहीं मरते। योगी कई दिनों की समाधि लगाते हैं अर्थात् आँख कान नाक मुँह बन्द किये जाकर ज़मीन में गाड़ देने पर भी वे कई दिन तक निष्क्रिय अचेतन मुर्दावत रहकर बाद में सजीव चेतन हो कर उठ बैठते हैं। योगी दीर्घजीवी होते हैं।

योग कहता है श्वास लेने से आयु घटती है, खत्म होती है, श्वास रोको और आयु बढ़ाओ। आधुनिक विज्ञान कहता है कि श्वास से आयु बढ़ती है, श्वास लेते रहो, रोकोगे तो दम घुट जायगा, मर जाओगे। श्वास लेने से शरीर के अन्तरंग जीवन संचालक यंत्र-हृदय फेफड़े आदि चेतन और स्वस्थ रहते हैं, इन पर ही जीवन निर्भर है। श्वास रोकने से इन अंगों में विष विकार फैलता है और रोग होता है। एक आधुनिक वैज्ञानिक योगी (?) तो कहते हैं कि प्राणायाम अस्वाभाविक अनावश्यक क्रिया है, श्वास निरोध से—प्राणवायु न पाने से ये भीतरी अंग जर्जर होकर सड़ने भी लगते हैं। पातञ्जलि तो पुराने अवैज्ञानिक जमाने के साधक थे जिन्होंने ऐसी अप्राकृतिक कठोर कष्टदायक विधियों का प्रचार किया है।

अस्तु, नये-पुराने, पूर्व-पश्चिम, शास्त्र और विज्ञान के इस झगड़े में न पड़कर हम देखते हैं कि आधुनिक विज्ञान का पोषक सारा सभ्य संसार है, और योगविद्या तो भारतवर्ष का निराला, प्राचीन और संसार में एकमात्र ऐसा विज्ञान है जो किन्हीं बाह्य-उपकरणों के बिना सारे संसार के विज्ञान से टक्कर लेता है, क्योंकि यह देखा जाता है कि आधुनिक विज्ञानी डॉक्टर मरणासन्न व्यक्ति को अपने साधनों द्वारा आक्सीजन प्राणवायु देकर भी नहीं बचा पाता, जिन्दा नहीं कर पाता, जब कि प्राणायामी योगी 'केवल कुंभक' साधता है और श्वास रोककर समाधिगत होकर कई घंटों या दिनों तक स्थूलतः निष्क्रिय और अचेतन रहकर पुनः चेतन चलायमान हो जाता है जिसके सूक्ष्म आत्म संयम के रहस्य को आधुनिक विज्ञान नहीं पहुँच पाया है। भौतिक विज्ञान और आत्मविज्ञान में यही भेद है।

यह रहस्यमय सृष्टि परस्पर प्रतिकूल विज्ञानों से भरी है। संसार के सब लोग श्वास लेते हुए भी बहुधा रोगी और अल्पायु होते हैं जब कि योगी श्वास निरोध से स्वस्थ और दीर्घायु होता है। दोनों ही विज्ञान और साधन हमारे सामने हैं। योग विद्या स्वयं एक स्वतंत्र और निराला विज्ञान है, हमारे अतीत पूर्वजों का सनातन प्रसाद है जो इहलोक के साथ हमारा पारलौकिक कल्याण भी करता है।

योगी कहते हैं कि शरीर कच्ची मिट्टी का पुतला है, योगाग्नि में पकाकर इसे दृढ़, उपयोगी और अमर बनाओ। जैसे अधिक भार वहन करने या दौड़ने से कोई भी प्राणी थक जाता है वैसे ही अधिक दौड़ने से प्राण भी थक कर हमें त्याग देता है। अतएव जैसे हम चौबीस घण्टे में बारह घण्टे विश्राम लेते हैं, प्राण को भी एक-दो या पाँच-दस मिनट स्थिर कर विश्राम देना उचित है, अन्यथा यह सतत प्राणों का अथक परिश्रम और विप्लव अन्याय है, मृत्यु का कारण है।

प्राणायाम प्राणों का व्यायाम है। इससे प्राणमय कोष और सूक्ष्म शरीर पुष्ट होते हैं, शरीर हलका और कोमल, कठोर और भारी भी हो सकता है जिससे अग्नि आकाश पृथ्वी जल बाधक नहीं हो सकते। जितना पसीना अर्थात् विकार एक सौ दण्ड बैठक करने से शरीर से निकलता है, उतना परिश्रम और पसीना पाँच प्राणायाम से हो जाता है।

मुख्यतः प्राणायाम के दो भेद हैं—बाह्य कुंभक और अन्दर कुंभक। आगे चलकर इनके तीन भेद हैं—पूरक-कुंभक और रेचक। फिर आगे और भी आठ भेद हो गये हैं—सूर्य भेदी,

उज्जायी, सीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और प्लाविनी। इसके अतिरिक्त दो और हैं—समवृत्ति और केवल कुंभक।

जैसे साइकिल या मोटर के चक्कों में हवा धीरे धीरे करके पूरी भर दी जाकर उसे भीतर ही बन्द कर दिया जाता है तभी वह उपयोगी और गतिमान होती है, तथा उसमें से हवा एकदम निकल जाने से निरुपयोगी और गतिहीन हो जाती है, ठीक वैसा ही इस शरीर में प्राणायाम की क्रिया का रहस्य है। शरीर को प्राण से धीरे धीरे सम्पूर्ण भरना, भरे हुए को स्थिर करना, और बहुत धीरे धीरे रेचक करना। अधूरा जल भरा घड़ा छलकता है, वैसे ही अधूरा श्वास प्रश्वास करने वाले का जीवन डगमगाता है। साइकिल मोटर के चक्कों में केवल थोड़ी सी हवा भरने से, अथवा श्वास-प्रश्वास की भाँति बार बार भरने-निकालने से काम नहीं चलता, वरन् पूरी वायु भर कर ठोस बनाकर उसे उसमें बन्द करना होता है, वायु की स्थिरता से उसमें गति होती है, यही कुंभक है, कुंभक पर ही जीवन और गति है। कुंभक से योगी मृत्युञ्जय बनते हैं, मृत्यु समय भी वे अपना प्राण रोके रखते हैं। कुंभक ही विश्व का जीवन है।

सब प्राणायाम और सम्पूर्ण योग साधन केवल गुरु गम्य है। ये सब कैसे किये जायँ तथा उनसे क्या लाभ हैं, कौन से रोग नाश होते हैं, अतिरिक्त सर्वव्याधि नाशक, श्वास खाँसी अपस्मार, रक्त विकार, कुष्ट रोग, मुख जिह्वा रोग, क्षय रोगादि नाशक, उदर वीर्य संशोधक, पेट घटाने छाती बढ़ाने, हृदय बाहु-कण्ठ विकासक प्राणायाम, अपानायाम आदि साधन विषयों का अनुभूत विवेचन महात्मा आनन्द स्वरूप जी ॐ ने अपनी पुस्तक "प्राणायाम तत्व" में विस्तार से किया है जो किताब घर, सोजती द्वार बाहर, जोधपुर, राजस्थान से, डाकखर्च सहित एक रुपये आठ आने में मिल सकती है। जिज्ञासु लोग हठयोगी स्वामी नारायण प्रकाशजी, साधनालय गंगाघाट, उज्जैन (मध्यभारत) से प्राणायाम इत्यादि साधन—स्वरोग नाश एवं स्वास्थ्य लाभार्थ स्वयं सीख सकते हैं, कोई फीस नहीं ली जाती। पत्र व्यवहार कल्पवृक्ष कार्यालय से पहले कर लेना चाहिए।

महत्वपूर्ण निवेदन

यदि इस अंक के साथ आपका वार्षिक मूल्य समाप्त होने की सूचना आपको मिली है तो अगले वर्ष का मूल्य २॥) हमें मनीआर्डर से भेज दीजिए। अन्यथा वी० पी० से आपको ३=) देने होंगे। ग्राहक न रहना हो तो एक पोस्टकार्ड लिखकर हमें सूचित कर दें अन्यथा आपके मौन रहने से हम वी० पी० भेज देंगे और आप वापस कर देंगे तो हमें ।।) डाकखर्च नुकसान होगा। ग्राहक नम्बर अवश्य लिखिए। धन्यवाद।

स्वैर-लेखन (Auto-writing)

परलोक में मन का महत्व

पं० गोपीवल्लभ जी उपाध्याय

हमारा प्रत्येक विचार एक शब्द के वेष में अपने आपको प्रकाशित करता है। आगे-आगे विचार या भाव और उसके पीछे परिच्छद या प्रकाशयोग्य शब्द रहता है। किन्तु पृथ्वी पर आकर हम ऐसा नहीं कर सकते। इसीलिए मन के भावों को किसी श्रुतियोग्य शब्द या वेष में सज्जित नहीं कर सकते। हमारे विचारों के ही साथ साथ ध्वनिहीन शब्द होता है। इसीलिए कहना पड़ता है कि यह विचार-रूपी शब्दमाला तो लेखक के कानों तक पहुँचती नहीं, हाँ उसके मन पर अवश्य प्रभाव डालती है। अर्थात् लेखक के मन पर ध्वनिहीन शब्द का प्रभाव पड़ता है। किन्तु इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि ध्वनिहीन शब्द सुन-सुनकर लेखक लिखता चला जाता है। क्योंकि वह हमारी भाषा लिखता है, उसकी अपनी नहीं। अर्थात् उसकी विचारधारा के साथ हम जो कुछ बोलते हैं, उसका कोई सम्बन्ध नहीं होता। वह तो हमारे मन के विचारों को ही हमारी भाषा में लिखता जाता है। उसकी अँगुलियों को हमारा मन ही चलाता है। किन्तु उसी के साथ विचार के वेष का आभास-उसके मन में अवश्य होता है। इसीलिए वह अन्य कोई बात नहीं लिख सकता। यह हुआ 'स्वैर-लेखन' का एक स्वरूप।

इसी प्रकार उसका दूसरा स्वरूप यह है कि लेखक हम जो कुछ बोलते हैं, वही लिखता है अथवा अन्य कोई आत्मा आकर हमें हटा देती और हमारे आसन पर बैठकर अपने विचार लिखवाती है। कभी कभी ऐसा अवश्य होता है। अर्थात् जब विचार-सन्देश प्रेषण करनेवाली आत्मा दुर्बल होती है; तब उसे हटाकर कोई प्रबल आत्मा उसका स्थान ग्रहण कर लेती है। इस विपत्ति से बचने का उपाय यही हो सकता है कि लिखते समय लेखक के मन में केवल उसी विषय का ध्यान रखना चाहिए जो कि वह पहले से लिखता आ रहा है। ऐसा होने पर उसके मन का आकर्षण उसी आत्मा को अपने स्थान पर बैठाये रख सकता है। उस दशा में किसी अन्य आत्मा का आगमन असंभव हो जाता है। यदि वह वहाँ आ भी जाय तो पूर्वागत आत्मा को स्थानभ्रष्ट नहीं कर सकती। क्योंकि पूर्वागत आत्मा के साथ जब तक लेखक का योग सूत्र स्थापित रहता है, तब तक उसे कोई छिन्न नहीं कर सकता। अर्थात् योगसूत्र विच्छिन्न होने पर ही अनेक प्रकार के विभ्रष्ट हो सकते हैं।

रेडियो (यन्त्र) तो सबने देखा ही होगा। उसमें प्रेरक-यन्त्र लगा रहता है और उसी स्थान से जो गान-वाद्य एवं संवाद प्रक्षेप होते हैं उन्हें विविध देशों के रेडियो यन्त्र ग्रहण कर लेते हैं। किन्तु स्मरण रहे कि ग्राहक-रेडियो (Receiving Radio) प्रेरक (Transmitting) रेडियो से उस समय सम्बद्ध रहता है। एक ही गति-तरङ्ग (Wavelength) को दो जगह भी एक ही स्वर में प्रवाहित हो जाती है। अतएव दोनों गतितरङ्ग पर एक ही बात सुनी जा सकती है। यदि ग्राहक-यन्त्र इस प्रकार सम्बद्ध न हो तो उसके द्वारा प्रेरक-यंत्र द्वारा प्रक्षेप किये हुए गाने या संवाद आदि कुछ भी नहीं सुने जा सकते। इसीलिए उसमें स्वर-सम्बद्धता होना परमावश्यक है। ठीक उसी प्रकार से परलोकवासियों के साथ पृथ्वी वासियों की स्वर-सम्बद्धता होनी चाहिए। यदि ऐसा न हो तो इहलोक की आत्मा परलोकगत आत्मा की बात नहीं सुन सकती। इसीलिए जहाँ स्वर-योग नहीं होता वहाँ हजार बार पुकारने पर भी हमारी आवाज कोई नहीं सुन सकता। इसीलिए जब

तुम हमें पुकारोगे, बुलाओगे तब तुम प्रेरक-यन्त्र के रूप में होगे और हम ग्राहक-रूप में। और आज जब कि हम तुम्हें सम्वाद लिखा रहे हैं, हम प्रेरक रूप में हैं और तुम ग्राहक रूप में। इसी से कहना पड़ता है कि तुम्हारा और हमारा मन यदि एक भाव से परिचालित हो तो हमारे कथन (भावों) को तुम कदापि लिख नहीं सकते।

इसी प्रकार छोटे बच्चों को भी साधारण बातें ही लिखवा सकते हैं, किन्तु कोई गम्भीर विषय उन्हें नहीं लिखा सकते। क्योंकि उनका मन उससे समरस नहीं होता। अर्थात् उनका मन उस विषय का विचार (चिन्तन) नहीं कर सकता। क्योंकि वे उस विषय की कोई बात नहीं जानते। अतएव उसकी ज्ञान परिधि के अनुसार ही उसके द्वारा स्वैर-लेखन कराया जा सकता है। इसीलिए हमें पहले यह देखना पड़ता है कि लेखक के मन की दौड़ कहाँ तक है। क्योंकि हम मन के भीतर के भावों को भी देख सकते हैं। और उसी के अनुसार उससे स्वैर-लेखन करवाते हैं। जहाँ हम माध्यम के देह, मन, मस्तिष्क प्रभृति पर अधिकार कर लेते हैं, तब अलग बात है। क्योंकि उस समय हम उसे अज्ञान बनाकर उसके मुख से अपना मन्तव्य प्रकट करा देते हैं। किन्तु इसका नाम स्वैर-लेखन नहीं, वरन् स्वैर-आलाप है। इस प्रकार माध्यम का दायित्व बहुत बड़ा है।

अब हम यह बतलाना चाहते हैं कि मन पर किस प्रकार अधिकार जमाते हैं। जब हम किसी के मन पर अधिकार कर लेते हैं; तब उसकी अपनी विचार-शक्ति काम नहीं कर पाती। अर्थात् हम उसे जो कुछ भी करने को कहेंगे, उसके विरुद्ध करने की शक्ति उसमें नहीं हो सकती। अनेक बार दुष्ट आत्माएँ इस प्रकार लोगों के मन पर पूर्ण आधिपत्य जमाकर उसके द्वारा जो चाहें करा सकती हैं। उस दशा में वह मनुष्य भी विवश होकर कोई बाधा नहीं दे सकता। इस प्रकार अनेक बार अनेक हत्या-काण्ड आदि भी हो जाते हैं। कई लोग आत्म-हत्या भी कर लेते हैं। अन्यान्य पापाचरणों की तो कोई गिनती ही नहीं। किन्तु भले आदमियों अथवा साधु पुरुषों पर ऐसी आत्माएँ कोई प्रभाव नहीं डाल सकतीं। फिर भी यदि वे लोग दिन रात अनुचित विचार-धारा में बहते रहें, तो उनके द्वारा भी ऐसी ही आत्माएँ अनेक दुष्क्रियाएं करा लेती हैं। हमारे मन की इतनी प्रबल शक्ति है। किन्तु इस बात को पृथ्वी पर के लोग ठीक से नहीं जानते, इसीलिए वे मन की शक्ति पर विश्वास नहीं करते। मनुष्य का स्वभाव ही इस प्रकार का है कि वह पंचेन्द्रियों पर ही अधिक विश्वास करता है। वह समझता है कि और सभी भूल कर सकते हैं; किन्तु उसके आँख, नाक, कान कभी धोखा नहीं दे सकते। किन्तु यथार्थ में देखा जाय तो प्रतिदिन ही वह अपने नेत्रों द्वारा ठगा जाता है। अर्थात् वह प्रतिदिन ही सूर्य को पूर्व में उदय होकर पश्चिम में अस्त होना बताता है। किन्तु यथार्थ में यह बात नहीं है। क्योंकि पृथ्वी ही सूर्य के चारों ओर प्रदक्षिण करती है। यह बात विज्ञान ने प्रमाणित कर दी है। ऐसी ही और भी अनेक बातें सिद्ध हो चुकी हैं। अस्तु! विज्ञान को छोड़कर जब तुम्हारे जीवन की यात्रा ही नहीं चल सकती; तब हमारे लिए भी वैज्ञानिक 'सत्य' प्रस्तुत करता है—और अनेक बातें जो वैसे समझ में नहीं आतीं उन्हें विज्ञान अत्यन्त सुगम और सरल बना देता है।

हम जो इस पार (परलोक में) आ गये हैं, सो तुमसे दूर नहीं हो गये हैं। तुमसे हम यदि दस पाँच दिन पहले यहाँ आ गये हैं; तो आगे पीछे तुमको भी यहाँ आना ही है। इसलिए पर-लोक की बातें सुनकर उन्हें हँसी में मत उड़ा देना। यह ठीक है कि यहाँ की अनेक बातें भूलोक से मिलती हुई नहीं हैं, कितनी ही बातों को तुम ठीक से समझ भी नहीं पाते। फिर भी तुम्हें यह नहीं मान लेना चाहिए कि उनका

अस्तित्व ही नहीं है। क्योंकि आँख और कान से भी हर समय सभी बातें ठीक ठीक प्रमाणित नहीं हो पाती हैं। अतः तुम्हें भी उसी मानसिक प्रमाण पर आस्था रखने का यत्न करना चाहिए, जिससे कि जीवन में परमशांति लाभ कर सको और तुम्हारा मृत्यु-विषयक भय दूर हो जाय।

यहाँ हम यह भी बता देना उचित समझते हैं कि आत्मिक-द्वारा कराये जानेवाले लेखन कार्य को भी अनेक भागों में विभक्त किया जा सकता है। उनमें एक स्वरूप यह है कि लेखक अपनी भावना-द्वारा किसी वस्तु या विषय का वर्णन करता है। साथ ही वह उसकी आंतरिक स्थिति का भी विवेचन करता है। दूसरे रूप में वह प्रभावित होकर लिखता है; इस दशा में वह जो कुछ लिखता है, तब सब दैववाणी की तरह होता है। इसी प्रकार तीसरा रूप है और-लेखन पद्धति का। इस पद्धति में कभी कभी लेखक के मस्तिष्क में आकर आत्मा उसकी अँगुलियों-द्वारा अपने भाव अंकित कराती है। अर्थात् उसके स्थूल-रूप मस्तिष्क के ही साथ साथ उसकी अँगुलियों पर भी अपना अधिकार जमाकर आत्मा अपने मन्तव्य लिखवा देती है। चौथा स्वरूप ऐसा है, केवल लेखक की अँगुलियों पर आत्मा अपना पूर्ण अधिकार जमाती है और उससे अपने विचार लिखवाती है।

इसके अतिरिक्त मन ही मन बोलने की भी व्यवस्था है। हमारा मन अन्य व्यक्ति या माध्यम के मन में कुछ कह जाता है और तब वह कहता है कि अमुक आत्मा आकर मुझे अमुक बात कह गई है। इसमें भूल होने की बहुत सम्भावना रहती है, क्योंकि माध्यम कुछ का कुछ सुन लेता है और उसे बोलकर बतलाते समय भी सब बातें ठीक से नहीं बतला पाता। इसी प्रकार एक लेखन पद्धति और भी है जिसमें आत्मा स्वयं लिखती है। इसमें माध्यम अंधकारमय स्थान में टेबल पर कागज पेन्सिल रखकर आत्मा का आवाहन करता है और वह आकर कागज पर कुछ लिख देती है। किन्तु इस पद्धति से वह केवल अपने हस्ताक्षर या अन्य साधारण सी ही बात लिख सकती है। हम जो वक्तृतादि लिखाते हैं, वे सब नहीं लिखी जा सकतीं। एक प्लेट पर दूसरा प्लेट रखकर दोनों के बीच पेन्सिल रखने के बाद उन्हें बाँध दिया जाय और कोई 'माध्यम' भलीभाँति उन्हें हाथ में लेकर आत्मा से अनुरोध करे तो भी अवश्य वह साधारण दो चार बातें लिख सकती है। किन्तु इससे कोई विशेष उद्देश्य सिद्ध नहीं होता। केवल इतना ही हो सकता है कि आत्मा के आकर लिख जाने से लोगों में थोड़ा-सा कुतूहल उत्पन्न हो जाय। सारांश, अपने कार्यानुरूप लिखवाने के लिए तो केवल दो ही उपाय अबतक ठीक प्रमाणित हुए हैं। उनमें से एक है माध्यम को अचेत करके उसके मुख से अभीष्ट प्रश्नों के उत्तर कहलवाना। उन बातों को सुनकर यदि चाहें तो तत्काल संकेत-लिपि-लेखक (स्टीनोग्राफर) लिख भी सकता है।

विदेशों में प्रायः ऐसा किया जाता है। किन्तु इसके उपयुक्त माध्यम मिलना अत्यन्त कठिन होता है। और यदि मिल भी जाय तो अधिक दिनों तक प्रयोग करने से उस (माध्यम) के शरीर और मन को विशेष क्षति पहुँचने का भय है। दूसरा उपाय है केवल अँगुली पर अधिकार जमाकर लिखवाना, जिस प्रकार यह वक्तृता लिखाई जाती है। इसमें किसी प्रकार की हानि का भय नहीं और इस रीति से अत्यंत शीघ्रतापूर्वक लिखा भी जा सकता है, भले ही लेख का विषय कितना ही विस्तृत क्यों न हो। साथ ही उस दीर्घ लेखन से लेखक के मस्तिष्क पर भी कोई भार नहीं पड़ता। क्योंकि उसे विशेष रूप से कोई कल्पना या विचार नहीं करना पड़ता। इसी प्रकार अँगुली को भी

विशेष श्रम नहीं पड़ता; क्योंकि उसकी मांसपेशी हमारी इच्छाशक्ति के प्रभाव से कार्य करती है। इसीलिए जो कुछ श्रम होता है, वह अनुभव नहीं हो पाता।

(५) आत्मिक की ऊर्ध्वगति और पुनर्जन्म

परलोक में केवल मन के द्वारा ही सब कार्य सम्पन्न किये जाने के कारण हमें उसकी शक्ति को सजीव रखने का विशेष प्रयत्न करना पड़ता है। साथ ही एक कारण यह भी है कि हमारा मन जितना ही विशाल एवं उन्नत होता जाता है, उतनी ही शीघ्रता से हम एक स्तर से दूसरे स्तर पर उठते जाते हैं। क्योंकि मन के विस्तृत होने से हमारा शरीर भी हलका होता जाता है—वह सूक्ष्म से सूक्ष्मतर हो जाता है। यदि ऐसा न हो तो हम उन्नति नहीं कर सकते। अतएव क्रमोन्नति के लिए हमारे मन का सुधार आवश्यक है। जब कि संपूर्णरूप से मन पर ही हमारी उन्नति निर्भर है, अतएव प्रत्येक आत्मिक को इस विषय की ओर विशेष रूप से ध्यान देना पड़ता है। सारांश, जिन आत्मिकों का भाग्य मन्द होता है, वे इस दिशा में कोई प्रयत्न नहीं करते, इसीलिए उनको ऊर्ध्वगति प्राप्त करने में विशेष विलंब होता है। यहाँ निम्नगति तो अनायास हो सकती है; किंतु ऊर्द्ध्वगति के लिये तो मन का उन्नत होना ही आवश्यक है।

अब हम यह बतलाना चाहते हैं कि मन को शिक्षित कैसे बनाया जाता है? इसके लिए प्रत्येक दल पर एक अभिभावक होता है, उससे प्रतिदिन सत्शिक्षा लाभ करते हैं। छोटे बड़े सभी आत्मिकों को इस प्रकार शिक्षा दी जाती है। स्त्रियों के लिए भी यही नियम है। अभिभावकों से ऊपर उन्नत स्तर के महात्मा होते हैं। वे प्रायः आकर सभाएँ करते और सब को उपदेश देते हैं। उन सभाओं में सभी बड़े बड़े विद्वान्, कवि, वक्ता आदि भाग लेते हैं। और अपने सुमधुर स्वर में सब को उपदेशामृत पान कराते हैं। यहाँ के वातावरण की तरंगें सब प्रकार के स्वरों की सृष्टि कर सकती हैं। सभाओं में हजारों आत्मिक एकत्र होते और उस शिक्षा से लाभ उठाते हैं।

इस प्रकार धर्म-शिक्षा प्राप्त करनेवाले आत्मिक क्रमशः उन्नति करते चले जाते हैं। और साथ ही उनका शरीर भी हलका होता जाता है। जब तक उसपर का मैल नहीं कटता तब तक वह हलका नहीं हो सकता। इसीलिए पहले मन का मैल हटाना पड़ता है। और तब उसी अनुपात से देह का स्थूलांश या आवर्जना दूर होती चली जाती है। जब ऐसा होता है, तब वह ऊर्ध्वलोक में चला जाता है, उसी को परलोक में आत्मिक की मृत्यु कहते हैं। क्योंकि इस अवस्था का समावेश भी मृत्यु में किया गया है।

क्योंकि इतने दिनों तक वह आत्मिक सबके साथ रहता, काम करता और हँसता खेलता था, अतएव हठात् जब वह नहीं दिखाई देता तो सब लोग समझ लेते हैं कि वह उन्नत लोक में चला गया। यद्यपि वे उसका स्मरण करते और उसके सौभाग्य पर आनन्दित भी होते हैं; किन्तु बन्धुविछोह के स्वाभाविक मनोधर्मानुसार दुखित भी होते हैं। क्योंकि जो यहाँ से चला गया है, वह फिर लौटकर नहीं आ सकेगा। तुमने अपने किसी आत्मीय की मृत्यु को देखकर रोते हुए लोगों को यही कहते सुना होगा कि उसका अब यहाँ कुछ भी शेष नहीं रह गया है। वह अब लौटकर यहाँ आ भी नहीं सकेगा। किन्तु तुम नहीं जानते कि मृत आत्मिक बहुत ही अच्छे स्थान में चला गया है। वह वहाँ पर सुखी रहेगा। किन्तु जैसे तुम मृत्यु को देखकर दुखी होते हो वैसे हम उसके उच्चस्तर पर चले जाने से खिन्न नहीं होते वरन् उसे भाग्यवान समझते हैं। वह अमर है, उसका ध्वंस नहीं होगा।

उच्चस्तर पर जाने से आत्मिक विशेष सुखानुभव करता है। इसी कारण उसके गमन पर हम प्रसन्न होते हैं। यद्यपि विछोह का दुःख तो चिरकाल बना ही रहता है तथापि सभी उसको सहते हैं। क्योंकि यह तो मन का स्वभाव-धर्म ही है। जैसा तुम्हारा मन है, ठीक वैसा ही हमारा मन भी है। इसीलिए तुम्हारी तरह हम भी मन ही मन सुख-दुःख का अनुभव करते हैं। अंतर केवल इतना ही है कि तुम लोग दुःखी होने पर हाथ-पाँव पछाड़ते हो, रोने लगते और हताश हो जाते हो; जबकि हमारा दुःख क्षणिक होता है। अर्थात् अपने साथी आत्मिक को उच्चस्तर पर जाते देखकर हम लोग भी उत्साहित होते हैं और अपने-अपने मन को उन्नत बनाने का प्रयत्न आरम्भ कर देते हैं, जिससे कि उन्नत मन के द्वारा हम भी शीघ्र ही अपने बंधु का अनुगमन कर सकें।

यहाँ तुम प्रश्न कर सकते हो कि कई आत्मिक मन को यथानियम उन्नत बनाने के पूर्व ही फिर पृथ्वी पर आकर जन्म कैसे धारण कर लेते हैं? सो यह ठीक है। क्योंकि जिसके लिए जब जन्म लेने का समय आ जाता है, तब उसे जन्म लेना ही पड़ता है। कौन कब जन्म लेगा? इसे न तो कोई कह सकता है और न जानता है। फिर भी जैसे एक न एक दिन सब को यहाँ आना ही पड़ता है, उसी प्रकार समय आने पर सबको यहाँ से पृथ्वी पर जाकर जन्म भी लेना पड़ेगा।

इस पर फिर यह जिज्ञासा हो सकती है कि यह नियम कैसे और क्यों बनाया गया? इसका कारण यही है कि सब प्रकार के नवीन ज्ञान एवं नयी नयी अभिज्ञता तथा मन की नानाविध उन्नति लाभ कर सकने की कर्म भूमि यह पृथ्वी अथवा भूलोक ही है। अतएव इन सब की प्राप्ति के लिए आत्मिक का पुनर्जन्म होना अनिवार्य है। इस प्रकार जन्म लेने से जन्मान्तर में—अथवा अनेक जन्मों के पश्चात् मनुष्य का मन सर्वथा निर्मल हो जाता है। उसी समय वह प्रभु के चरणों में पहुँच सकता है। जब तक वह प्रभु-मिलन नहीं होता, तब तक इन्द्र, चन्द्र, वायु, वरुण, यम आदि सभी को पृथ्वी पर आकर जन्म लेना पड़ता है और वहाँ से योग्य शिक्षा प्राप्त करने के बाद यहाँ (परलोक) में आना पड़ता है। यहाँ आकर उसे सप्त लोकों में से सबसे नीचे के लोक से अपना नवीन जीवन आरम्भ नहीं करना पड़ता, वरन् जो जिस योग्यता को लेकर आता है उसे उसके उपयुक्त लोक में स्थान प्राप्त होता है। वहाँ पहुँचकर वह फिर आत्मिक साधना आरम्भ कर देता है। यह सम्पूर्ण गतागति, शिक्षालाभ एवं यह आत्मगठन मन की अवस्था पर ही आधार रखता है। इसीलिए परलोक में ही नहीं वरन् भूलोक में मन को शुद्ध करना साधना का प्रधान रूप है। जब तक मन शुद्ध नहीं होगा, तब तक जप, ध्यान या पूजा सभी निरर्थक होंगे। क्योंकि ये सभी कार्य मन को मार्जित कर उज्ज्वल बनाने के लिए ही किए जाते हैं। इनका अन्य कोई उद्देश्य नहीं है। भक्ति जो इतनी मधुर है, उसका भी प्रथम फर्ज है मन का मार्जन कर मधुरता लाभ करना। क्योंकि मन के शुद्धि के बिना कुछ भी नहीं हो सकता। अतएव, जब तक पृथ्वी पर रहते हो तब तक समस्त जीवन मन को शुद्ध कर आत्म-नियोग में ही लगाना उचित है। इस विषय में शिथिलता होने से यहाँ आने पर बड़ी मुश्किल होगी। अर्थात् यहाँ आने पर तुम देखोगे कि निम्नस्तर के सिवाय तुम्हारे लिए कहीं स्थान नहीं है। और जो स्थान है वह भी एकदम निम्नस्तर में अंधकार एवं दारुण शीत से युक्त है।

यह एक ऐसा स्थान है जहाँ गुरु-शिष्य नहीं दिखाई देते। जिसका जैसा जैसा कार्य होता है, वैसा ही वह फल भोगता है। अतएव यदि तुम यह समझते हो कि प्रतिदिन देव-पूजा

या फल-पुष्पादि से अर्चना करने के बाद हमारे लिए चिन्ता ही क्या हो सकती है! भले ही मन शुद्ध हो या न हो! गुरुदेव या भगवान हमारा उद्धार कर ही देंगे? किन्तु यह सब कुछ भी नहीं होनेवाला है। गुरुदेव उसी को अपनी शरण में लेते हैं, जिसका मन शुद्ध होता है। क्योंकि वे केवल मन को देखते हैं, अन्य पूजोपचार को नहीं देखते। यहाँ आकर भी तुम यही व्यवस्था देखोगे। केवल मन—और उसके सिवाय कुछ भी नहीं है। मन का जागरण ही प्रधान व्रत है। और जागृत मन को लेकर जो कुछ किया जायगा वही लाभप्रद होगा। मन छोड़कर काम नहीं चल सकता। न यहाँ और न वहाँ ही। पहले बतलाया जा चुका है कि प्रत्येक व्यक्ति के चतुर्दिक उसकी चरित्र-निर्देशक छटा या आलोक (वलय) मण्डल होता है। अतएव वह तेजोवलय तुम्हारे परिचय को सूक्ष्म देह के साथ लेकर यहाँ आता है और उसे देखकर ही यहाँ तुम्हारे लिए स्थान निर्णय हो जाता है। अतएव पृथ्वी पर रहते हुए जीवन का व्रत ही मन को परिष्कृत बनाने का होना चाहिए। मन की उन्नति, उसकी शुद्धि और उसका विकास एवं विशाल स्वरूप बनाने की साधना ही प्रमुख कर्तव्य होना चाहिए। यदि यह कार्य नहीं हुआ और पृथ्वी के विद्यालय की उपेक्षा करके यहाँ आये, तो यहाँ के महाविद्यालय में तुम अपना स्थान बहुत ही निम्न श्रेणी में पाओगे। और उसे छोड़कर तुम किसी भी उपाय से उच्चस्थान पर आसीन नहीं हो सकोगे।

मन के विषय में इतना विस्तृत विवेचन तुम्हारे कल्याण के लिए ही किया गया है, जिससे कि तुम पृथ्वी पर मन की उपेक्षा कर अंत में अपने आपकी भी दुर्गति न कर बैठो।

आजकल पृथ्वी पर मुख्यतः भारत में धर्म-भावना नामशेष होती दिखाई दे रही है। यदि किसी से पूछा जाय और यदि वह सत्यवादी हो तो—किसी प्रकार भी यह नहीं बता सकेगा कि—वह आस्तिक ईश्वरवादी है। किन्तु इसी के साथ साथ वह यह भी नहीं कह सकेगा कि—वह नास्तिक है!! यह सब परिणाम विदेशी-शिक्षा दीक्षा एवं अपनी संस्कृति के विषय में अज्ञान का ही है। क्योंकि यह सम्पूर्ण शिक्षा ही जड़-वादी है। आशा, आकांक्षा, कर्म, चिन्तन (विचार) आदि जो कुछ है—वह सब वस्तुतंत्र से पूर्ण है। ऐसे नीरस क्षेत्र में आध्यात्मिकता का अंकुर वहाँ कैसे पनप सकता है? किम्बहुना वह उत्पन्न ही नहीं हो सकता। इसी दुर्दशा के कारण आज देश को अनेक-विध संकटों का सामना करना पड़ रहा है और लोगों का जीवन अशान्तिमय बन गया है। प्रभु, मानव जगत को सुबुद्धि दे यही कामना है।

स्वर्ग में असन्तोष

स्वर्ग में बड़े बड़े दिव्य भोग हैं। जो बड़े पुण्यवाले होते हैं वे स्वर्ग के उत्तम सुख पाते हैं। मध्यम पुण्यवाले मध्यम सुख, और कनिष्ठ पुण्य वाले कनिष्ठ सुख।

स्वर्ग के दोष : जो अपने से उत्तम सुख पाते, उच्च आसीन हैं उन्हें देख ताप उत्पन्न होता है, जो अपने समान सुख पाते हैं उन्हें देख क्रोध होता है कि ये मेरे बराबर क्यों बैठे हैं, जो अपने से नीचे बैठे निम्न सुख पाते हैं उन्हें देख अभिमान होता है कि मैं इनसे श्रेष्ठ हूँ।

एक और भी दोष है कि जब पुण्य भोगते भोगते खत्म हो गया तो तत्काल जीव को मृत्युलोक में गिरा देते हैं, एक क्षण भी नहीं रहने देते।

अतएव हमें स्वर्ग की इच्छा नहीं।

—योगवासिष्ठ से

प्रेरणा

श्री० हरिनारायण मलतारे, बी० ए०, साहित्यरत्न

बुझे हुए दिलों को, निराशा के भरे हुए नेत्रों को, हिम्मत टूटे हुए सैनिक को, पुनर्जीवन कैसे मिला? एक तेजस्वी बलवान आत्मा द्वारा यथा समय डूबते को तिनके का सहारा, प्रेरणा का ही तो सूक्ष्म स्वरूप है।

हम में से—बहुत कम लोग प्रेरणा की अमोघ शक्ति से परिचित हैं। बहुत कम लोग इस कला से परिचित हैं। यह वह डायनामाइट है जो निर्जीव हृदय के तारों को पुनः झंकृत कर विद्युत संचार द्वारा जीवन दान देता है।

यथा समय प्रेरणा पाकर अनेक व्यक्तियों के जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गये। गंगाराम नामक युवक अपने हिसार जिले के डिस्ट्रिक्ट इंजीनियर सा० के द्वारा विद्यार्थी जीवन में उच्चपद के हेतु अनुप्राणित किये गये, उत्साहित किये गये। परिणाम स्वरूप उन्होंने अधिक परिश्रम अध्यवसाय-संयम आदि गुणों से युक्त होकर उन्हीं इंजीनियर सा० से डिस्ट्रिक्ट का चार्ज लिया। और गंगाराम ही सर गंगाराम बने। यह सजीव उदाहरण प्रेरणा का ज्वलन्त प्रमाण है।

इस संसार के ९० प्रतिशत महान कार्य संपन्न होने का किये जाने का श्रेय उन महान आत्माओं को दिया जाना चाहिए, जिन्होंने अपनी बलवती इच्छा से, सद्भावना से प्रेरित होकर, होनहार युवकों को अपने वचन, चरित्र व कार्यों द्वारा प्रेरणा दी।

मारुत पुत्र हनुमान अगर त्रिजटा द्वारा यथा समय प्रेरणा न पा जाते तो उनके लिए समुद्र लाँघना दुष्कर होता। प्रेरणा का यह अत्यन्त सजीव उदाहरण है। फ्रांस देश के वेरिटन का दुर्ग—विशाल सिंहगढ़ दुर्ग की दिवारों को क्या तोपों ने ध्वंस किया? यह समझना भूल है। बड़े बड़े गोले बरसाने वाली तोपों के पीछे अप्रत्यक्ष रूप से मानव का सूक्ष्म हृदय ही तो कार्यशील पाया जाता है। प्रेरणा का मूल स्रोत हमारा हृदय है और जीवन स्रोत भी यही है, अनेक बुझे हुए दिलों में ज्योति जाग्रत करने में प्रधान कारण सत् प्रेरणा ही है।

दिल के सम्हालने से, सम्हलता है आदमी।
जिसने दिल सम्हाल लिया, वह सम्हल गया॥

पर्यटन बाह्य संसार का ज्ञान, अध्ययन, तथा सतर्कता के कारण मनुष्य प्रेरणा पाता है।

राजनैतिक चेतना, विचारों की क्रान्ति, धार्मिक जागृति, विदेशी व्यापार तथा आधुनिकतम विज्ञान का ज्ञान इन सब की मानसिक प्रतिलिपि प्रेरणा पाकर ही हम कर पाते हैं। विषैले जन्तु, परमाणु बम, हिंसक पशुओं द्वारा समाज को उतनी हानि नहीं पहुँचती जितनी कि निराशा वाले व्यक्ति में दिल बुझे हुए मनुष्य से। यह व्यक्ति अपने निराशा भरे विचारों को अपने तक ही सीमित रखे तो कोई हर्ज नहीं। परन्तु जब उसके निराशा के विचार समाज के हित में सक्रामक सिद्ध होते हैं, ऐसी दशा में यह व्यक्ति अत्यन्त ही खतरनाक है। अचानक ही हिंसक जन्तुओं के बीच में पड़कर आदमी जीवित निकल सकता है। समुद्र की चपेटों से थपेड़े खाकर जीवन धन की रक्षा कर सकता है; परन्तु निराशाजनक वातावरण से उबर जाना दुष्कर है। जन साधारण के लिए कठिन है, असम्भव है।

प्रेरणा देने का अवसर, यह पुण्य पर्व हमारे हाथ से न चला जाय इसका ध्यान रखें। जब कभी अवसर आवे आप सत् प्रेरणा दें,

आप स्वयं स्फूर्ति के स्रोत बनो, विद्युत प्रवाह सतत समाज में प्रसरित होता रहे। जो कोई भी आपके सम्पर्क में आवे उसको आपसे प्रेरणा मिले, निर्बल मन सबल हो जावे, निराशा भरी आँखों में ज्योति चमकने लग जाय। आप तेजोमय वातावरण अपने आसपास तैयार कर लें, इस महान पुण्य कार्य को सतत करते रहें। निराशों का आशा बँधाना, हिम्मत हारे हुए सैनिकों को साहस देना पुण्य कार्य है। आप उसका जीवन सफल बना देंगे, ध्यान रहे आप ज्योति-पुञ्ज हो जायँगे, प्रकाश स्तम्भ बन जायँगे। किनके लिए? उन निराश हिम्मत हारे हुए जनों के लिए, जो इस महान विश्व पयोनिधि में, निराशा के समुद्र में डूबते हुए मानवों के लिए। हे भगवान्! हमको प्रेरणा का साकार स्वरूप बना दे जिससे मानव का यह मौतिक शरीर प्रेरणा का ही पर्याय वाचा हो।

अल्प और दीर्घ

श्री शिवशंकर मिश्र, एम० ए०, साहित्यरत्न, शास्त्री

हम भोजन को खाते हैं और भोजन हमारी शक्ति को खाता है, यह संबंध विचित्र होते हुये भी सत्य है। इसी सत्य के आधार पर हम यह भी कह सकते हैं कि यदि हम कम खायें तो हमारी कम जीवन-शक्ति नष्ट होगी और हम अधिक दिनों तक जीवित रह सकेंगे। कुछ दिनों पूर्व तक हमारे पास इस सत्य की पुष्टि के लिए कोई प्रमाण नहीं था और अनेकों ही भौतिकवादियों ने इस सिद्धांत का जी भर उपहास भी किया था, किंतु अब तो कई वर्षों के प्रयोग के उपरांत सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डा० मेक्के ने यह स्पष्ट रूप से प्रमाणित कर दिया है कि कम भोजन करने वाले अधिक काल तक जीवित रहते हैं। कम भोजन से डा० मेक्के का तात्पर्य भूखे रहने से नहीं है अपितु अपनी भूख से कम खाने से है। वस्तुतः हमारी वास्तविक भूख लगने वाली भूख से बहुत कम होती है और वास्तविक भूख का यथेष्ट ज्ञान न होने के कारण हम लगनेवाली भूख को ही तुष्टि देने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। डा० मेक्के ने अपने भोजन और आयु संबंधी प्रयोगों को चूहों पर किया था। उसने यह देखा कि जिन चूहों का उनकी इच्छा के अनुकूल भोजन दिया जाता है कम समय तक जीवित रहते हैं। संयत और नियमित भोजन पाने वाले चूहे दीर्घायु होते हैं। इसके अतिरिक्त डा० साहब को यह भी ज्ञात हुआ कि अधिक भोजन करने वालों की मस्तिष्क क्रिया अशक्त और शारीरिक शक्ति क्षीण होती है। उनमें आलस्य अधिक और कार्य करने की प्रेरणा भी पर्याप्त नहीं होती।

आइए हम डा० मेक्के के सिद्धांत को अधिक ग्राह्य बनाने का प्रयत्न करें। आयु का संबंध हमारी जीवन-शक्ति से होता है और हम कितने दिनों अपनी जीवन-शक्ति स्थिर रख सकते हैं इस पर ही हमारा जीवन-काल अवलंबित रहता है। जीवन-शक्ति का संचय उसके उपार्जन और उसके उपयोग पर आश्रित है। उपार्जन से उपयोग को घटा कर हम जीवन-शक्ति के कोष का अनुमान लगा सकते हैं। सच तो यह है कि वही व्यक्ति सब से अधिक समृद्धि-शाली है जिसका जीवन शक्ति कोष सब से अधिक है। जीवन-शक्ति का उपार्जन सूक्ष्म भोजन तथा स्थूल भोजन के उपयोग से होता है। आकाश-तत्व, वायु-तत्व, अग्नि-तत्व तथा जल-तत्व द्वारा हम सूक्ष्म भोजन प्राप्त करते हैं। स्थूल भोजन के अंतर्गत हमारे दैनिक जीवन के अन्य सभी खाद्य पदार्थ आते हैं। साधारणतः हम सूक्ष्म

भोजन के महत्व से अनभिज्ञ रहने के कारण उसके लाभ से वंचित रह जाते हैं और जीवन-शक्ति का एक स्रोत हमारे लिए सर्वथा अप्राप्य हो जाता है। धूप-स्नान, वायु-जल-सेवन, योग एवं आसन सूक्ष्म भोजन प्रदान करने के प्रमुख उपाय हैं। सूक्ष्म भोजन की सब से प्रमुख विशेषता यह रहती है कि हमारे लिए वह सर्वत्र विद्यमान है और हम उसे अपनी आवश्यकता के अनुसार उचित मात्रा में बिना किसी व्यय के प्राप्त कर सकते हैं।

स्थूल भोजन की भिन्न भिन्न वस्तुओं के गुण पृथक पृथक होते हैं किंतु व्यापक रूप से हम उन्हें दो भागों में बाँट सकते हैं—(१) क्षार प्रधान (२) अम्ल प्रधान। मनुष्य को ८० प्रतिशत क्षार तथा २० प्रतिशत अम्ल चाहिए। फल तथा हरी भाजियाँ क्षार प्रधान होती हैं। उनका अधिक सेवन शरीर को अधिक क्षार देता है। अनाज, दाल, चावल इत्यादि अम्ल प्रधान होते हैं। संयत भोजन में क्षार तथा अम्ल का यह ८० और २० वाला अनुपात अत्यंत आवश्यक है।

हमारे धार्मिक ग्रन्थों में अनेकों इस प्रकार के आख्यान हैं जहाँ बिना स्थूल भोजन के कई वर्षों तक जीवित रहने का उल्लेख है। भौतिकवादी उसे कवि-कल्पना और मनगढ़न्त समझते हैं। इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि यदि मनुष्य अपने को सूक्ष्म भोजन का अभ्यासी बना ले और अपनी जीवन-शक्ति का ह्रास अनावश्यक रूप से न होने दे तो वह बिना स्थूल भोजन के पर्याप्त काल तक जीवित रह सकता है। योग के सहारे यह जीवन-काल और भी अधिक बढ़ाया जा सकता है। मुझे बतलाया गया है कि कोई पाश्चात्य महिला कई मासों से केवल सूक्ष्म भोजन पर ही जीवन-यापन कर रही हैं। यह सब कुछ कठिन अवश्य है किंतु उसे असंभव कहने का कोई कारण नहीं है।

यह सब कुछ तो हुई उपार्जन वाली बात। अब इस शक्ति के उपयोग पर दृष्टिपात करें। शक्ति का विभाजन—मस्तिष्क की एवं शारीरिक के रूप में हो सकता है। अध्ययन, चिन्तन, ध्यान मस्तिष्क की शक्ति के उपयोग के उचित ढंग हैं। क्रोध, वासना, अतृप्ति, ईर्ष्या, जलन द्वारा इसका अपव्यय एवं नाश होता है। दैनिक जीवन में शारीरिक अंगों के संचालन द्वारा शारीरिक शक्ति का उपयोग होता है। अति मैथुन, व्यर्थ के घूमने फिरने, लड़ाई झगड़े आदि से शारीरिक शक्ति का दुरुपयोग होता है। शारीरिक एवं मानसिक दोनों प्रकार की शक्तियों का अभिन्न सम्बन्ध है। एक के विनाश का तात्पर्य स्पष्ट रूप से दूसरे का क्षीण होता है। बुद्धिजीवियों की शरीर की उपेक्षा करने वाली प्रवृत्ति आत्म-घाती है। उसी प्रकार मूर्ख रह कर पहलवान बनने की अभिलाषा भी सराहनीय नहीं। इस सम्बन्ध में एक सत्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है और वह यह है कि दोनों प्रकार की शक्तियों के उचित उपयोग से उनका विकास होता है—अनुपयोग से वे कुंठित हो जाती हैं, उन पर जंग लग जाती है। शक्ति-रक्षा का स्पष्टतः आलस्य से कोई सम्बन्ध नहीं।

उपार्जन एवं उपयोग के आधारभूत सिद्धांतों को समझ लेने के उपरांत हमें यह भी समझ लेना चाहिए कि हम अधिक दिनों तक जीवित रहने की इच्छा क्यों करें। मृत्यु से भय, जीवित रहने की इच्छा नहीं। नाटककार शेक्सपीयर ने ठीक ही कहा है कि कायर अपने जीवन-काल में ही कई बार मर चुकते हैं। रवींद्र कवींद्र ने सदैव ही मृत्यु का स्वागत किया है। वे तो यहाँ तक कहते हैं कि 'जा किछु मोर संचित धन एक दिनेर आयोजन।' सन्त राम कृष्ण परमहंस ने जीवन एवं मृत्यु के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में कहा है कि जीवन का सही रूप वही है जिस रूप में वह मृत्यु के सम्मुख उपस्थित होता है। मृत्यु निश्चित है—एक दिन व्यक्ति का जीवन ब्रह्मानन्द में लय हो जायेगा

यह सब जान कर भी जीवन की उपादेयता कम नहीं होती। मानव जीवन परम पिता की सर्वोत्तम एवं सब से मूल्यवान देन है और उसका उचित उपयोग न करना उसके प्रति अन्याय करना होगा। सच है 'अनन्ते ससारे विचरति भयसक्ति रहितः। तथा निमपि वै निज गति विधीनां प्रकुरुते।'

जीवन का लक्ष्य बहुत दूर है—बहुत दूर। हमारा सम्पूर्ण जीवन-काल हमें उस तक पहुँचा देने के लिए पर्याप्त नहीं। हम तो केवल उसकी ओर अग्रसर हो सकते हैं। यदि हम अधिक आयु पा सके और हमारे चरणों की गति ने हमारा साथ दिया तो हम लक्ष्य के अधिक निकट पहुँच सकते हैं। सम्भवतः वहाँ तक पहुँच जायें जहाँ स्वयं भगवान हमें यह कह कर अपने पास बुलावें—

'तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शांति स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥'

इस प्रकार आप अपनी जीवन-शक्ति को बढ़ाकर, अपने चरणों को लक्ष्य पथ-पर अविकल रूप से बढ़ाते हुए लक्ष्य में तन्मय हो जाइए। सिद्ध द्रोणाचार्य ने एक बार जब अर्जुन से पूछा कि तुम्हें चिड़िया की ओर निशाना साधते समय क्या दिखाई देता है तो अर्जुन ने कहा—'केवल चिड़िया की आँख।' सच है जिनकी दृष्टि केवल लक्ष्य की मध्य विन्दु में केन्द्रित हो जाती है वही लक्ष्य प्राप्त कर सकते हैं।

प्रसंगवश हम अपने 'अल्प और दीर्घ' विषय से कुछ आगे बढ़ आये हैं। फिर हम अपने मूल विषय की ओर लौट कर कह सकते हैं कि भोजन के लिए जीवन नहीं अपितु जीवन के लिए भोजन होता है। अधिक भोजन विष है जो हमें धीरे धीरे मृत्यु की ओर ले जाता है। एक चिकित्सक ने ठीक ही कहा है कि भूखे रहने से संसार में कम लोग मरते हैं किन्तु अधिक खाने से अधिक। सार रूप में इस प्रकार कह लीजिए कि 'हमारा भोजन सरल और संयत होना चाहिए। उसकी मात्रा इतनी हो कि हमें आलस्य, डकार या मचली न आये। स्थूल भोजन के साथ हम सूक्ष्म भोजन का अवश्य सेवन करें। जीवन-शक्ति को ह्रास या क्षय होने से यथा संभव बचायें। दीर्घायु होने की अभिलाषा रखते हुए अपने जीवन को लोक कल्याण में लय कर दें।'

मृत्यु के लिए

श्री सुदर्शन सिंह जी

मृत्यु के लिए सोचने से पहिले हमें यह तो जानना ही है कि मृत्यु का क्या अर्थ? वर्तमान जीवनधारा का अभाव। मृत्यु के पश्चात् क्या होता है, जीवन रहता है या नहीं, मैं इस उलझन में नहीं पड़ूंगा। मुझे तो इतना जानना पर्याप्त है कि यह जीवन समाप्त होगा। इस बात को सब जानते हैं। फिर मृत्यु के लिए हमारे हृदय में भय और आतंक क्यों है? क्या हम इस जीवन से स्नेह और मोह करते हैं? हम मरना नहीं चाहते? जीवित रहना चाहते हैं? ऐसा क्यों? जीवन में कोई सुख है? कोई आनन्द है? कोई विशेष प्रयोजन है? हो सकता है कि कुछ लोगों के लिए ऐसा भी हो, परन्तु मैं ऐसे बहुत लोगों को जानता हूँ, जिनके जीवन में पीड़ा, कष्ट, श्रम के अतिरिक्त कुछ नहीं। कुछ आवेगा भी, इसकी भी कोई आशा नहीं। रोग, दारिद्र्य, अपमान, असफलता, वियोग, भय प्रभृति समस्त प्रकार की बाधाओं से एक साथ घोषणायें आक्रान्त तथा उनके परित्राण की सम्पूर्ण आशा से शून्य लोगों को भी मैं देखता

हूँ। लेकिन मैं आश्चर्य से देखता हूँ कि वे भी मरना नहीं चाहते। उन्हें भी जीवन पसन्द है। मुख से वे भले मृत्यु की इच्छा प्रकट करें, लेकिन मृत्यु का अवसर आते ही भाग खड़े होते हैं। वैसे मृत्यु कुछ कठिन तो है नहीं। प्रत्येक व्यक्ति बड़ी सरलता से जब चाहे तब मर सकता है। मरने के लिए सब कहीं साधन उपलब्ध हैं। फिर भी कोई मरता नहीं। अत्यन्त पीड़ित लोग भी मरते नहीं। तब क्या मृत्यु में बड़ा कष्ट है? ऐसा तो नहीं जान पड़ता। पीड़ा से तड़पते लोगों को देखने पर, किसी घोर दुख में तिल तिल कर जलते व्यक्तियों को ध्यान में रख कर यह प्रतीत नहीं होता कि मृत्यु में इससे भी अधिक कष्ट होगा। तब लोग क्यों जीना चाहते हैं? किस आशा के आधार पर वे जीते हैं? ऐसी कौन सी प्रेरणा है जिसे न जानते हुए भी वे उसकी पूर्ति का लोभ छोड़ने में समर्थ नहीं? जीवन का कोई परिणाम होना चाहिए। ऐसा परिणाम जो एक क्षण में भी, अत्यन्त निरीह एवं अशक्त तथा पीड़ाकुल समय में भी हो सके। केवल मृत्यु उससे हमें दूर कर सकती हो। तब जीवन से मोह एवं मरण से भय को हम सरलता से समझ सकेंगे। जीवन यह विपुल सुन्दर जीवन क्या मरण के लिए ही प्राप्त हुआ है? कुछ दिन इधर उधर नश्वर कार्यों में लुढ़कते हुए स्वयं भी विलीन हो जाने के लिए इसको उद्भव प्राप्त हुआ है। बुद्धि चाहे कुछ भी न बता सके, लेकिन हृदय इसे स्वीकार कर नहीं सकता। जीवन का कुछ परिणाम होना चाहिए। कुछ ऐसा परिणाम होना चाहिए जो काल से परे हो। जिसे मृत्यु नष्ट न कर सके, जो अनश्वर हो, स्थायी हो। उसे ही प्राप्त करने के लिए जीवन बना है और वह अत्यन्त आकुल पीड़ित अवस्था में एक क्षण में भी प्राप्त हो सकता है। तभी तो मृत्यु के अन्तिम क्षण तक लोग जीवन को दोनों हाथों से दृढ़तापूर्वक पकड़े रहना चाहते हैं। तब ऐसा परिणाम क्या है? यह टेढ़ी खीर है। मैं सोचता हूँ कि यह लिखने या कहने का विषय नहीं। सम्पूर्ण अध्यात्मशास्त्र इसी का संकेत करता है। सभी धर्म इसी के लिए प्रवृत्त होते हैं। इसके लिए सदा अभीप्सु रहना ही इसे प्राप्त करने का उपाय है। अभीप्सा जो कि कितनी भी आकुल स्थिति में हो सकती है, तं प्रतम होने पर एक ही क्षण में इस तक पहुँचा देती है। इतना समझ लेने पर मृत्यु के लिए और कुछ सोचना शेष नहीं रह जाता। उसके लिए भीत होने की कोई आवश्यकता नहीं रहती। जीवन एक विनोद रह जाता है। ऐसा तटस्थ विनोद जिसके रहने या न रहने का तनिक भी आग्रह नहीं रहता। जीवन की उत्पत्ति ही आसक्ति से हुई है, अतएव जीवन के प्रति पूर्ण तटस्थ होते ही उसे स्वयं समाप्त हो जाना चाहिए। मृत्यु के लिए मुझे स्वयं प्रस्तुत होने की अपेक्षा मृत्यु को ही मेरे लिए प्रस्तुत होना है।

बिखरे विचार

डा० श्री बलदेवप्रसाद जी मिश्र,

(१)

योग का अर्थ है मेल। आत्मा का परमात्मा से मेल ही योग कहाता है। मन ही इन दोनों के बीच का अड़ङ्गा है। उसको समाधि दे दो—मन को महामौन हो जाने दो, फिर तुमको स्वतः अनुभव हो जायगा कि आत्मा और परमात्मा कभी अलग थे ही नहीं। मन को मौन थमाने का नित्य थोड़ा थोड़ा अभ्यास करते जाओ। शरीर एकदम ढीला छोड़ दो और बुद्धि से कोई बात न सोचो। चित्त में शान्ति के सिवाय और कोई भावना न आने दो। पाँच ही मिनट बाद तुम को अनुभव होने लगेगा कि मन मौन हुआ जा रहा है।

[२]

विचारों के संकल्प में स्वतः कोई खास बल नहीं होता। मनुष्य अच्छी अच्छी बातें सोच लेता है परन्तु वह उन बातों के अनुसार काम कर नहीं पाता। क्यों नहीं कर पाता यह वह अपने ही मन से पूछे। जब तक मन अपना जोर न लगावेगा तब तक काम आसानी से पूरा न होगा और मन का जोर लग जाय इसके लिए जरूरी है कि मनुष्य अपने उन विचारों की तरफ अपना प्रेम खूब बढ़ा ले अथवा वह कुछ दिनों तक जबरदस्ती वैसे ही काम करने की आदत डाल ले।

[३]

आप अपनी विपत्तियों की गाथा सुनाकर किसी से कुछ सहायता अथवा सहानुभूति की आशा रखेंगे तो आपको कई बार निराश होना पड़ेगा। दुनिया में हर किसी के पास अपनी अपनी विपत्तियाँ हैं। वह दूसरों की विपत्तियाँ सुनकर खुद हैरान होना नहीं चाहता। हाँ, आप मीठी बातें कह कर, कोई मधुर तान सुना कर, प्रसन्न मुख मुद्रा की आकर्षक आकृत दिखा कर, या और किसी तरह सुख शान्ति का एक वातावरण तैयार कर दीजिए फिर तो हर कोई आप पर रीझ कर आपकी हर मुराद पूरी कर देगा। चाहे वह मुलाजिमत हो चाहे वह रोजगार हो, हर कहीं वही सफल होता है जो मुस्कुराहट से भरा रहता है। ईद के चाँद बनो न कि मुहर्रम की रात। द्वितीया के चंद्र बनो न कि चौथ के चंदे।

[४]

काम और आराम में गहरा सम्बन्ध है। एक आदमी का काम दूसरे के लिए आराम की बात बन सकता है। डाक्टर के लिए डाक्टरी काम है और रेडियो इंजिनियरी आराम की बात हो सकती है। परन्तु इंजिनियरी के लिए रेडियो इंजिनियरी काम है और दवाइयाँ देना शौक की बात, आराम की बात हो सकती है। आराम के इस तरह के रास्ते ढूँढ निकालो और जब अपने काम से थक जाओ तब उनका भरपूर उपयोग करो। इस तरह तुम निठल्ले भी न रहने पाओगे और थकावट भी दूर रखते जाओगे। खाली दिमाग ही विपत्तियों की बातें सोचा करता है। जो निठल्ला नहीं है उसे चिन्ताओं के स्वागत करने का अवकाश ही कहाँ है।

[५]

मन लगाना सीखो। और नहीं तो वृक्षों, लताओं, फूल पत्तों, पशु पक्षियों की स्थिति गति में मन लगाओ और उनके रूप में रचे हुए प्रकृति के चमत्कारों को जानने समझने का प्रयत्न करो। सङ्गीत है, साहित्य चित्रकारी है, गपशप है—मन लगाने के कई अङ्ग हैं जो हानिकारक नहीं प्रत्युत तन और मन दोनों ही के लिए लाभकारक हैं। उनमें मन लगाओ। मौज के लिए मन लगाओ न कि कर्तव्य का

बोझ समझकर। कर्तव्य समझ कर जिस ओर तुमने मन लगाया वह होगा तुम्हारा काम और मौज समझ कर जिस ओर तुमने मन लगाया वह होगा तुम्हारा आराम। काम थकावट लाता और आराम ताजगी लाता तथा जीवन को सरस बनाता है।

[६]

शौर्य और धैर्य अथवा दृढ़ता और अध्यवासय (धुन के साथ लगे रहना) ही इच्छाशक्ति के गाड़े को आगे बढ़ाने वाले पहिये हैं। शौर्य और धैर्य के सहारे, (१) अंगज अनुभावों पर विजय प्राप्त करो (२) मन को केन्द्रित करना सीखो (३) अच्छी आदतों का निर्माण करो। (४) इच्छाओं के संयम का अभ्यास करो। (५) विचार और आचार का सम्बन्ध परिष्कृत करो (६) उद्देश्य की स्थिरता को भी चरितार्थ करते चलो।

(७)

अपने को छोटा न मानो, अपनी शक्तियों को कभी संकीर्ण दृष्टि से न देखो। तुम परमात्मा के अंश हो, अमृत के पुत्र हो। अपवित्रताएँ और असफलताएँ तुम्हारा स्वरूप नहीं। दुःख और अशान्तियाँ तुम्हारे लिए नहीं हैं। तुम उन्हें व्यर्थ क्यों समेटना चाहते हो? दूसरों के श्याम पक्ष को नहीं किन्तु उज्ज्वल पक्ष को विशेष रूप से देखो और आत्मविश्वास पर सुदृढ़ रह कर सदैव आशावादी बने रहो। जो आत्मविश्वासी है वही सच्चा परमात्मविश्वासी है। जिसे अपने पर भरोसा नहीं है उसे भगवान् पर क्या भरोसा होगा?

(८)

दर्शन का अर्थ है असलियत को देख लेना। जिन शास्त्रों के जरिये असलियत देखी जा सके वे हैं दर्शन शास्त्र। इदं के क्षेत्र की असलियत या तो विचार-जगत की होगी या व्यवहार जगत (वस्तु-जगत) की न्याय शास्त्र विचार-जगत की असलियत दिखाता है—सही सही सोचना विचारना निष्कर्ष निकालना समझाना आदि सिखाता है, और वैशेषिक शास्त्र वस्तु जगत् की असलियत परमाणुवाद के रूप में दिखा देता है। इन दोनों शास्त्रों का एक जोड़ा है। अहं के क्षेत्र की असलियत या तो जीव के रूप से सम्बद्ध होगी या उसकी शक्ति से। रूप की असलियत दिखाने के लिए सांख्य शास्त्र है जो 'पुरुष' को स्पष्ट करता है। और शक्ति का स्पष्टीकरण करने के लिए योग शास्त्र है। इन दोनों शास्त्रों का एक जोड़ा है। तत् के क्षेत्र की असलियत या तो नियम के सम्बन्ध की होगी या नियामक के सम्बन्ध की। तत् का क्षेत्र ही सार्वभौम क्षेत्र है जिसमें इदं और अहं दोनों समाये हुए हैं। सार्वभौम नियम का स्पष्टीकरण करने वाला हुआ मीमांसा शास्त्र और सार्वभौम नियामक का स्पष्टीकरण करने वाला शास्त्र कहलाया वेदान्त शास्त्र। कहने के लिए ये छहों शास्त्र अलग-अलग हैं परन्तु हैं ये सब ही असलियत का दर्जे व दर्जे दर्शन करा देने वाले शास्त्र। इसीलिए सब क्रमबद्ध हैं, सब परस्पर-सम्बद्ध हैं, सब एक दूसरे के पूरक हैं। सत्य एक है अविच्छिन्न है, उसका दर्शन कराने वाला दर्शन शास्त्र भी वस्तुतः एक ही हो सकता है। साधक की उपयोगिता के अनुसार उसके अलग अलग दर्जे भले ही हो जायँ। रहे खण्डन मण्डन से भरे हुए वादों से विवाद सो ये सब तो दिमागी पहलवानी के लिए अखाड़े बना दिये गये हैं जिनमें उतर कर कौतूहली लोग कुछ शक्ति संचय कर लिया करें—ऐसी शक्ति जो शायद किसी समय किसी दर्जे में उनके दर्शन की दृष्टि को कुछ सहायता पहुँचा सके। केवल मात्र इतना ही उनका उपयोग समझिए।

(९)

शरीर-स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है कि उभय सन्ध्याओं का समय शुद्ध वायु सेवन के लिए रखा जाय। ५ से ६ तक खुली हवा में घूमिए अथवा शुद्ध वायु को प्राण वायु के रूप

में ग्रहण कीजिए। शुद्ध और शान्तिप्रद विचारों से भी प्राणवायु शुद्ध होती है। यही तो प्राणायाम है। यही तो योग है। जीवस्वास्थ्य के लिए आवश्यक है कि समय का सदैव सदुपयोग होता रहे। एतदर्थ आवश्यक है कि दिन श्रम में बीते रात शान्ति में। दिन काम के लिए हो, रात आराम के लिए। दिन गप्पों में खोना मूर्खता है और रात चिन्ता में खोना मूर्खता है। जो लोग दूसरों के हित अनहित का विचार न कर मौके बे मौके गप लगाने पहुँच जाते हैं और शाम का घूमना भी बन्द करा देते हैं। उनके सकेत के लिए यदि निम्न पंक्तियाँ साइन बोर्ड के रूप में टँगी रहें तो कितना उत्तम हो:—

"जो संध्या को न टहलता है
अस्वास्थ्य शीघ्र अपनाता है
जो गप में दिन के क्षण खोये
जीवन वह व्यर्थ गवाता है।"

(१०)

विपत्ति मनुष्य को मनुष्य की परख करा देती है। वह मनुष्य की सहन शक्ति बढ़ाती और सघर्ष का साहस देती है। इसलिए उसके आते ही चिन्ताग्रस्त न बनो किन्तु उसका सहर्ष, सामना करो वह निर्बल है तो एकदम टल जायगी, प्रबल है तो धीरे धीरे टलेगी परन्तु साथ ही तुम्हें संघर्षों के लिए सबल बनाती जायगी। और यदि वह अटल है तो तुम्हारी, संघर्ष-क्षमता से मुग्ध होकर वह निश्चय ही तुम्हारे साथ समझौता कर लेगी। वह तुमसे समझौता कर ले या तुम उससे समझौता कर लो, बात एक ही है। चिन्ताग्रस्त हो जाने अथवा घबरा उठने से तो विपत्ति टाली नहीं जा सकती। उसे टालने के लिए तो संघर्ष का साहस अथवा समझौता करने की सूझ बूझ ही चाहिए।

(११)

आत्मविश्वास ही सब सिद्धियों की जड़ है। आत्मविश्वास ही परमात्म विश्वास है। प्रत्येक परिस्थिति में धैर्य, प्रसन्नता विवेकबुद्धि, चित्त की शान्ति, आशावादिता परमात्मा की कल्याणमयता, परमात्मा की उदारता, आत्मा की असीम शक्ति पर अटूट विश्वास रखो और इनमें से किसी का सहारा अपने पास से हटने न दो। तुम देखोगे कि इसी एक साधना के सहारे तुम सभी प्रकार की सिद्धियों के स्वामी हो जाओगे।

(१२)

मधुर जीवन ही सफल जीवन है। व्यवसाय की सफलता, पदप्रतिष्ठा की सफलता, जीविका की सफलता, भौतिक आध्यात्मिक सभी तरह की सफलता जीवन की माधुरी पर निर्भर है। और मधुर जीवन वह है जिसके विचार, उच्चार और आचार में माधुरी हो। तुम कल्याणमय विचारों ही को अपने मन में स्थान दो, कल्याणमयी प्रिय वाणी ही में बात करो और प्रत्येक मनुष्य के साथ प्रेम और प्रसन्नतापूर्वक शिष्ट तथा सभ्य ढङ्ग ही पर व्यवहार करो। यही विचार उच्चार और आचार की मधुरता है। तुम्हारी यह मधुरता तुम्हारे लिए न केवल तुम्हारे अन्तस्तल से मधुरता और सफलता के स्रोत खोल देगी किन्तु संसार की अनेक अनजानी दिशाओं से भी वह उनके प्रवाह ढकेला देगी। तुम देखोगे तुम्हारे अपरिचित लोग भी तुम्हारी सफलता के सहायक होने के लिए तुम्हारी ओर दौड़े चले आवेंगे।

(१३)

संसार की कोई भी परिस्थिति जब तुम्हें अपनी ओर खींचे, संसार की किसी भी घटना का जब तुम हाल सुनो, तब क्षणभर के लिए यह अवश्य सोच लो कि इस सम्बन्ध में तुम्हारा क्या कर्तव्य होगा। यदि तुममें वह कर्तव्य पूरा करने की अनुकूलता है तो उस कर्तव्य को पूरा करने में तुरन्त जुट जाओ। आज की बात कल पर टालने की आदत रखने वाला मनुष्य जीवन में कभी सफल नहीं होता।

(१४)

एक एक पल अपनी उपयोगिता में अनमोल है। समय की कीमत सीखो। जो मनुष्य कहता है मेरे पास समय नहीं है, निश्चय समझो कि वह अपना बहुत सा समय बरबाद कर रहा है। महापुरुषों ने लोक-सेवा के महान से महान कार्य करते हुए भी समय की शिकायत नहीं की। सामान्य व्यवहार में हम लोग कितना समय व्यर्थ ही बरबाद कर दिया करते हैं? आठ बजे की सभा नौ दस बजे प्रारम्भ हुआ करती है, दस मिनट में समाप्त हो सकने वाला वक्तव्य दस घण्टे ले लिया करता है, हा हा ही ही और संकल्प विकल्प की भूमिकाओं में ही बड़े बड़े सम्मेलन अटक कर रह जाया करते हैं। अजीब तमाशा है।

(१५)

आत्म सूचना (Auto suggestion) (इच्छा किस हद की हो इसकी सूचना) तन्मयतापूर्ण दृढ़ ध्यान (Visualisation) (इच्छित वस्तु की पूरी पूरी मानसिक कल्पना) और ध्यानानुसारी दृढ़ प्रयत्न (Acting-out the part) (उस वस्तु की प्राप्ति के पूर्ण प्रयत्न) ही इच्छाशक्ति को प्रबल बनाने के माध्यम हैं और इच्छाशक्ति को प्रबल बना लेने की कला हम में आ गई तब तो फिर संसार में कोई बात दुर्लभ नहीं रह जाती। "जो इच्छा करि हौ मन माहीं, रामकृपा कछु दुर्लभ नाहीं।"

(१६)

यह शरीर एक ही दिन के भोजन से सदा के लिए अथवा दो चार महीनों के लिए भी पुष्ट नहीं हो जाता। उसे तो प्रति दिन दाना पानी देना पड़ता है और उस दाना पानी से उस दिन के अनुकूल शक्तिमात्र पाता है। मन भी भजन प्रार्थना और सद्विचारों का दाना पानी रोज-रोज क्यों नहीं माँगता और अपनी शक्ति के अनुसार ही रोज-रोज का काम वह क्यों नहीं निपटाता?

(१७)

सब कुछ आज ही सोच लिया जाय और सब काम इसी समय निपटा दिया जाय, ऐसी चिन्ता में चूर रहनेवाला मनुष्य कभी कुछ नहीं पूरा कर पाता। सोते समय यह न सोचो कि मेरे इतने काम अधूरे रह गये; हाय, अब कल क्या होगा किन्तु यह सोचो कि परमात्मा ने आज हमें जितनी तन अथवा मन की शक्ति दी थी उसका हमने सदुपयोग ही किया है अतएव अब हम शान्तिपूर्वक अपने को उस जगत् पिता की गोद में सौंप रहे हैं। अब कल वह हमें जो पथ दिखावेगा उस पर हम उसी की दी हुई शक्ति के अनुसार आगे बढ़ेंगे।

(१८)

दूसरे को सुखी बनाना ही अपने को सुखी बनाने का सब से बढ़िया उपाय है। हँसमुख रहने की आदत डालो। इस आदत के लिए तुम्हें न तो पैसे ही खर्च करने पड़ेंगे न बहुत मिहनत ही लगेगी परन्तु यदि एक बार यह आदत बन गई तो तुम जहाँ जाओगे वहीं प्रसन्नता का सागर उमड़ाते चलोगे। हर कोई तुम्हारे साथ का इच्छुक होगा। तुम न केवल दूसरों में आनन्द का उल्लास बिखेरोगे किन्तु अपने ही बिखरे हुए उस आनन्द से प्रभावित होकर अपनी विषम अवस्थाओं में भी सुखी ही रहा करोगे।

(१९)

सबेरे उठते ही इस बात का अनुभव करो कि परमात्मा ने समूचे संसार को और तुम्हें भी कितनी ताजगी दे दी है। संकल्प करो कि उसकी दी हुई शक्ति का तुम हर तरह सदुपयोग करोगे। रात्रि को सोते समय एक क्षण के लिए विचार कर लो कि तुमने वह संकल्प कहाँ तक पूरा किया और परमात्मा की शरण हो जाओ। यह निश्चय समझो कि रात्रि को वह तुम्हारी सारी थकावट चुपचाप हटा कर सबेरा आते आते तुम्हें फिर नई ताजगी से भर देगा।

(२०)

मनुष्य सोते समय अपने को ही संबोधन करके—अपना ही नाम लेकर कहता है "मुझे चार बजे सुबह उठा देना" और सचमुच ही चार बजे सुबह उठ पड़ता है मानों किसी ने उसे जबरदस्ती जगा दिया हो। तब सोने वाला मैं अलग हुआ और उठाने उठाने वाला मैं अलग हुआ। यह दूसरा मैं बड़ा रहस्यमय है। इसके रहस्यों को जानने का प्रयत्न करो। यही पहले वाले मैं का बनाने विगाड़ने वाला रहा करता है। इसी का नाम है उपचेतन मन अथवा अन्तर्मन।

जीवन बीत रहा है

श्री शान्तिलाल छाजेड़

जीवन बीत रहा है।

आपका-मेरा, इसका-उसका, पड़ौसी-पड़ौसी का, राष्ट्र का, विश्व का और समय का जीवन बीत रहा है। विश्व की प्रत्येक जड़ तथा चेतन वस्तु का जीवन बीत रहा है। जीवन का अर्थ है जब तक इस वन में (जग में) हम जीवें तब तक का समय—चेतनामय समय ही जीवन है और जो बिना रुके जल्दी-जल्दी बीतता ही जा रहा है। जीवन एक योगी का भी होता है और एक सम्राट् का भी, एक गरीब का भी और एक अमीर का भी अर्थात् प्रत्येक श्रेणी के मनुष्यों का जीवन होता ही है। परन्तु इनमें आपस में कितनी भिन्नता है? अनुमान लगाइए। स्पष्ट शब्दों में जीवन एक सुन्दर कहानी है, जो हँसने और रोने से भरी पड़ी है। और इस कहानी की भूमिका उतनी ही चौड़ी है जितने समय तक हम विश्व में अपने इस स्थूल शरीर का अस्तित्व स्थापित करके उसे अन्तिम समय तक थामे रहते हैं।

धन्य है वह सर्वज्ञ प्रभु जिसने हमें मनुष्य बनाया है। मनुष्य होने के नाते से हम रोज़ उठते हैं, नहाते-धोते हैं और अपना-अपना पेट भरते हैं। कमाते हैं और खाते हैं। बड़ी लम्बी-चौड़ी बातें करते हैं। हाँ में हाँ भी खूब मिलाते हैं। ऊपरी टीम-टाम, अपना बड़प्पन दिखलाने को बहुत करते हैं। केवल इस लिए कि हमारी गिनती सभ्य लोगों में—बीसवीं सदी के सभ्य लोगों में हो।

इसके साथ ही साथ यद्यपि मस्तिष्क ने कुछ जागृति प्राप्त कर ली है पर वह फिर भी सुस्ती करता है और नित्य प्रति क्षण-क्षण बिना सोचे समझे जीवन की चक्की में पीसा चला जा रहा है। ऐसे समय में हम भी रोजमर्रा की टोकरी में दैनिक कामों के रूप का आटा लिये हवा में—धूल में—मिलाते रहते हैं और फिर जैसे के तैसे भूखे बने रहते हैं। ऐसे भूखे कि अन्तिम दम तक अपूर्ण से रह जाते हैं।

अब आप और हम ऐसे जीवन के बारे में कुछ सोचें-समझें और उसे हल करने का प्रयत्न करें।

अखबारों में नित नई खबरें आया करती हैं, पर अपनेराम को इतनी फ़ुरसत कहाँ कि उनसे शिक्षा लें और उन पर मनन करें। जिधर देखो उधर की हालत ही ऐसी हो रही है कि बस, जी बड़ा उकता जाता है। ऐसी खबरों के जरा उदाहरण देना भी नैतिकता से भ्रष्ट होना है। कलियुगीय अमित घटनाओं को सुनते पढ़ते सिर लज्जा से झुक जाता है। शरीर में, रोम-रोम में, बेचैनी फैल कर रोएँ खड़े हो जाते हैं। फिर हम सोचते भी हैं कि यह भी कैसे जमाने आ गये हैं।

वास्तव में जिस समय में यह जीवन बीत रहा है वह कलियुग है। अहा! हमारा भी कैसा सौभाग्य है! ऐसे कलियुग को हमें सतियुग अर्थात् सत्य से पूर्ण रूपेण भरा हुआ युग बनाना है। वह कैसे? विवेक से प्रत्येक बात को तौलेंगे, नापेंगे, कसौटी पर कसेंगे, और फिर विवेक से कहेंगे कि हम भी ऐसे युग में "राम" रूप धारण करके तैयार हैं।

वह है नैतिकता का ध्यान रखना। याद रखो, शरीर नश्वर है पर आत्मा अमर है। किसी भी मूल्य में अपनी आत्मा का हनन मत होने दो। फिर तुम्हें स्वतः सुख मिलेगा। इस सुख की प्राप्ति के लिए हर समय सद्विचारों से सुसज्जित रहो। कभी भी इस दुनिया की चोटों के सामने सिर मत झुकाओ। अपने वास्तविक स्वाभिमान की रक्षा करते रहो। इस शरीर से घृणा करो, पर इसके महत्व को ध्यान में रख कर उसको घृणा से कई गुणा बढ़कर प्यार करो। बस, तभी तुम ईश्वरीय नियमों को प्यार कर सकोगे। ईश—दूतों से, महापुरुषों से, सिद्धों से और सत्य अहिंसा से अपना नाता, अज्ञान के पर्दे को हटा कर जोड़ सकोगे।

जब इतना हो चुके, तन, मन और वचन से हो चुके, तब मैं फिर अपने उसी प्रश्न को फिर से दुहराऊँ कि "क्या जीवन बीत रहा है?"... तो उसी क्षण आपको मौन रहना पड़ेगा। साथ ही एक लम्बी आह भर कर आप कह सकेंगे कि "हाँ! जीवन बीत रहा है!" पर उस समय इस उत्तर के साथ ही साथ हमारा मानसिक स्तर कल्पनातीत ऊँचा मिलेगा। विचार आयेगा कि हम सत्य की ओर कितना प्रवृत्त हो चुके हैं, कितने बढ़ चुके हैं, कितने पीछे हैं। बस, ऐसे सोच-विचार करते करते हम जीवन में चलेंगे। कर्त्तव्य-पालन करते-करते उस अनन्त की ओर जो हमें चुम्बक-सा खींचेगा और खींचता। उस समय दिव्य हँसी से हम वास्तविक अनुभव प्राप्त कर लेने के बाद दुख-सुख से परे की आकृति को धारण कर लेंगे। हमारे शब्दों में कितना रहस्य होगा, कितनी सार्थकता होगी और विशाल अर्थ होगा जब हम कहेंगे कि "जीवन बीत रहा है।"

जीवन के प्रेमियो! प्रतिपल जीवन का सदुपयोग कीजिए। जीवन के सदुपयोग का अर्थ सच्चे अर्थों में कर्मयोगी बनना है। भारत के उन कर्मयोगियों की तरह बनना है जैसे कि प्रातःस्मरणीय पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण, मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम, प्रचण्ड योगी श्री जनक प्रभृति महापुरुष थे। हम कर्मयोग की सीढ़ियों पर अविचल बिना विश्राम किये तब तक चलते रहें जब तक कि स्वयं "सोऽहम्" न बन बैठें। फिर भला पंचभूत जीवन के बीतने का क्या डर रहेगा? सारे जीवन को ईश्वरार्पण-भाव से उपयोग में लाइए और जीवन का शुद्ध उपयोग कीजिए।

कल्पवृक्ष की सहायतार्थ प्राप्त

११) अमोलकचंद जी घुरका
२॥) जनार्दन प्रसाद जी उमरेठ
२०) डॉ० इन्द्रलाल जी देहरादून
६।=) डॉ० डी० वी० गोयल ठोल
७) भीकमचंदजी स्वर्णकार धामनगॉव
५) घनश्यामसिंहजी वैद्य ताजपुर
२॥) मोहनलाल जी पारीख खानपुर
२५) विद्यावतीजी देहली
५४।=) रणछोड़जी जीवनजी जोहन्सबर्ग (अफ्रीका)
२०॥=) राजपूत युवक मंडल जोहन्सबर्ग (अफ्रीका)
१॥=) मूलचंद्र माणिकलालजी भावसार बंबई २
११) सौ० गीता मालानी नागपुर
५) साधुरामजी यमुना नगर
१०) सौ० भ्रमरीबाई जी दत्त जबलपूर
११) सागरमल शुभकर्णजी बंबई
५) पूनमचंदजी हरदोई
५) राणावतीजी भाडोल
१५) धनराजजी केराकत
२१) इकबाल बहादुरजी मेहमुदाबाद
२॥) गिरजाशंकर जी बिनधीतरजी खुसारी
११) देवराजजी उदयपुर

२५८=)

समारम्भ में सहायतार्थ प्राप्त

११) श्री मुन्नालाल भागीरथदासजी हस्ते सेठ लक्ष्मीनारायणजी

प्राप्ति स्वीकार

साधनालय के सहायतार्थ प्राप्त

१०) रामशंकर जी शुक्ल बुढ़वल
१०) रामशंकर जी शुक्ल
१०) रामशंकर जी शुक्ल
५) रामशंकर जी शुक्ल

३५)

खर्च साधनालय

३६०) नौकर का वेतन
१५०) तॉगा खर्च
१५०) आगन्तुक भोजन खर्च एवं दूध
६०) हवन सामग्री (माचीस, अगरबत्ती, प्रसाद आदि)
६०) मरम्मत तथा दिवाल की पुताई
५१) घी हवन के लिए ऽ१।) प्रति माह ५ प्रति सेर
६०) रोशनी खर्च

८९१)

श्री संत नागरजी स्मारक निधि

५) गिरधारी लाल जी बिहारी लाल जी पीरपैंती
१) हनुमान प्रसाद जी खंडेलवाल हस्तखेड़ा
५) लक्ष्मणजी गणेशजी कोलम्बेकरजी बम्बई २८
५) नेतरामजी यादव जयपुर
५) डी० एस० रावलजी नैनीताल
१०) श्रीमती सावित्री देवीजी उलाव
५) रामशंकर जी कैराती जोरावरडीह
५) ईश्वरदेवी जी मिर्जापुर
१०२) श्रीमती शांतिदेवीजी पित्ती बंबई २६
५) अरुणकुमारजी बिल्हौर कानपुर

१४८)

राजयग ग्रंथमाला

अलौकिक चिकित्सा विज्ञान

अमेरिका में योग प्रचारक बाबा रामचरक जी की अंग्रेजी पुस्तक का अनुवाद चित्रमय छपा है। इसमें मानसिक चिकित्सा द्वारा अपने तथा दूसरों के रोगों को मिटाने के अद्भुत साधन दिये हैं। मूल्य १) रुपया, डाक खर्च ॥=)

सूर्य किरण चिकित्सा

सूर्य किरणों द्वारा भिन्न-भिन्न रंगों की बोतलों में जल, तैल तथा अन्य औषधि भर कर सूर्य की शक्ति संचित कर तथा रंगीन काँचों द्वारा सूर्य की किरणें व्याधिग्रस्त स्थान पर डाल कर अनेक रोग बिना एक पाई भी खर्च किये दूर करना तथा रोगों के लक्षण व उपचार के साथ पथ्यापथ्य भी दिये गये हैं। नया संस्करण मूल्य ५) रुपया, डाक खर्च ॥।)

संकल्प सिद्धि

स्वामी ज्ञानानन्दजी की लिखी हुई यथा नाम तथा गुण सिद्ध करने वाली, सुख, शांति, आनन्द, उत्साह वर्द्धक यह पुस्तक दुबारा छपी है मूल्य १) रुपया, डाक खर्च ॥=)

प्राण चिकित्सा

हिन्दी संसार में मेस्मेरिज्म, हिप्नाटिज्म, चिकित्सा आदि तत्वों को समझाने व साधन बतलाने वाली एक ही पुस्तक है। कल्पवृक्ष के संपादक नागरजी द्वारा लिखित गम्भीर अनुभव-पूर्ण तथा प्रामाणिक चिकित्सा के प्रयोग इसमें दिये गये हैं। जीवन में इस पुस्तक के सिद्धांतों से दीन-दुखी संसार का उपकार कर सकेंगे मूल्य १) रुपया, डाक खर्च ॥=)

प्रार्थना कल्पद्रुम

प्रार्थना क्यों तथा किस प्रकार करनी चाहिये। दैनिक सामूहिक प्रार्थना द्वारा अनिष्ट स्थिति से मुक्त होने व दूरस्थ मित्रों व मृत आत्माओं को शांति व अनोखी संदेश दिलाने वाली आज के संसार में अपूर्व पुस्तक है। मूल्य ॥) आना।

आध्यात्मिक मण्डल

घर बैठे आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त करने व साधन करने के लिए यह मण्डल स्थापित किया गया है, जिससे स्वयं शारीरिक व मानसिक उन्नति कर अपने क्लेशों से मुक्त होकर दूसरों का भी कल्याण कर सकें। सदस्य बनने वालों को शिक्षा व साधन के लिए प्रवेश शुल्क १०) रुपये हैं और निम्नलिखित पुस्तकें दी जाती हैं :—

१—प्राण चिकित्सा २—प्रार्थना कल्पद्रुम ३—ध्यान से प्राण चिकित्सा ४—प्राकृतिक आरोग्य विज्ञान ५—आरोग्य साधन पद्धति ६—अध्यात्म शिक्षा पद्धति ७—साधक चार्ट ८—ॐ दर्शन ९—आत्म प्रेरणा १०—कल्प वृक्ष एक वर्ष तक। ११—अमूल्य उपदेश।

कोई भी सदाचारी व्यक्ति प्रवेश फार्म मँगा कर सदस्य बन सकता है।

अमूल्य उपदेश

कल्पवृक्ष में पूर्व प्रकाशित अमूल्य उपदेशों का दूसरा संस्करण। मूल्य १) डाक खर्च ॥=)

स्व० पं० शिवदत्त शर्मा की पुस्तकें

गायत्री महिमा ॥) सोहम् चमत्कार ॥)
अग्निहोत्र विधि ॥) ध्यान की विधि ॥)
आरोग्य आनंदमय जीवन ॥।) ॐ कार जप ॥)

विश्वामित्र शर्मा द्वारा लिखित नई पुस्तकें

प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान

रोग क्यों तथा कैसे होता है, तथा दवा दारू, चीर फाड़, और जड़ी बूटी के बिना, दाम कौड़ी खर्च के बिना कैसे जाता है, विख्यात डाक्टरों का अनुभव मूल्य १॥)

यौगिक स्वास्थ्य साधन १)

प्राकृतिक स्वास्थ्य साधन

स्वास्थ्य के नये साधन, पौरुषवर्धक नये व्यायामों के २५ चित्र, भोजन की काया कल्प कारक नवीन वैज्ञानिक व्याख्या तथा नुस्खे। मूल्य १)

व्यावहारिक अध्यात्म

आत्म विकास द्वारा उन्नति और सफलता पाने के लिए दिव्य व्यावहारिक अध्यात्म १)

दिव्य अनुभूति

दुःखी थके, कुकर्मों में फँसे, और और निराश लोगों के लिए दिव्य प्रेरणाएँ। मूल्य ॥)

जीवन का सदुपयोग (चार्ट) ।)
बच्चों को भोजन चर्या (चार्ट) ।)
भोजन निर्णय (चार्ट) ।)
दिव्य भावना-दिव्य वाणी (चार्ट) ।)

मिलने का पता—कल्पवृक्ष कार्यालय, उज्जैन नं० १ (मध्य भारत)।

Registered No. J. 223

आध्यात्मिक मंडल, उज्जैन, म० भा०

की

निम्नलिखित शाखाओं में मानसिक, आध्यात्मिक एवं प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा मुफ्त इलाज होता है :—

स्थान	प्रबन्ध और उपचारक

१ कोटा (राजपूताना) श्रीयुत पं० नारायणरावजी गोविंद नायर, प्रोफेसर ड्राइंग, श्रीपुरा

२ हींगनघाट (सी० पी०)—आयुर्वेदाचार्य शोभालालजी शर्मा।

३ उदयपुर (१) (राजस्थान) संचालक आयुर्वेदाचार्य पं० जानकीलालजी त्रिपाठी, चिन्तामणि कार्यालय भूपालपुरा, प्लाट नं० २०९।

उदयपुर (२) लाला जेसारामजी, मार्फत श्री देवराज, टी.टी.ई. रेलवे क्वार्टर्स, बी।२, रेलवे स्टेशन

४ खरगोन (मालवा प्रांत) श्री गोकुलजी पंढरीनाथजी सर्राफ मंत्री आध्यात्मिक मंडल।

५ अजमेर (राजपूताना) पंडित सूर्यभानुजी मिश्र, रिटायर्ड टेलिग्राफ मास्टर, रामगंज।

६ नसीराबाद (राजपूताना)—चाँदमलजी बजाज।

७ लौहरी घाट स्टे. ओ. टी. आर. (आजमगढ़ उ. प्र.) संचालक पं० क्षमानन्दजी शर्मा साहित्यरत्न

८ मन्दसौर (मध्य-भारत) दशरथजी भटनागर, खाद्य इन्स्पेक्टर, जनकपुरा।

९ मिट्टी भेड़ी (देहरादून पो० प्रेमनगर) महावीरप्रसादजी त्यागी।

१० सरगुजा स्टेट (सी० पी०) कालजीप्रसादजी गुप्त।

११ जावरा (मध्य भारत)—विशारद पं० भालचन्द्रजी उपाध्याय, एजेन्ट कोआपरेटिव बैंक।

१२ गोंदिया (मध्यप्रान्त) लक्ष्मीनारायणजी माढ़ुपोर्वे, बी० ए० एल-एल० बी० वकील।

१३ नेपाल-धर्ममनीषी, साहित्यधुरीण, डा० दुर्गाप्रसादजी भट्टराई, डी० डी० दिल्ली बाजार।

१४ पोलायखुर्द (व्हाया अकोदिया मण्डी)—स्वामी गोविंदानन्दजी।

१५ धार (मध्य भारत)—श्री गणेश रामचन्द्र देशपांडे, निसर्ग मानसोपचार आरोग्य-भवन, धार।

१६ खम्भात (Cambay) श्री वल्लभाई हरजीवनजी पंड्या।

१७ राजगढ़ ब्यावरा (मध्य भारत) श्री हरि ॐ तत्सतजी।

१८ केकड़ी (अजमेर) पं० किशोरीलालजी वैद्य तथा मोहनलालजी राठी।

१९ बुढ़वल (ओ. टी. आर. जिला बाराबंकी) पं० रामशंकरजी शुक्ल, बुढ़वल शुगर मिल।

२० इन्दौर—श्री बाबू नारायणलाल जी सिंहल, बी० ए०, एल-एल० बी०, श्री सेठ जगन्नाथ जी की धर्मशाला, संयोगितागंज।

२१ आलोट-विक्रमगढ़ (मध्य-भारत) अध्यक्ष सेठ ताराचन्दजी, उपचारक छगनलालजी मेहता।

२२ अटरू (कोटा राजस्थान)—पं० मोहनचंद्रजी शर्मा।

२३ बारां (कोटा राजस्थान)—सेठ भैरूलाल जी।

व्यवस्थापक व प्रकाशक—डॉ० बालकृष्ण नागर, कल्पवृक्ष कार्यालय, उज्जैन (मध्य भारत)
मुद्रक—भक्त सज्जन, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद—२

KALPA-VRIKSHA

वार्षिक मूल्य ७॥) A MAGAZINE OF DIVINE KNOWLEDGE प्रति संख्या ।=)

उज्जैन, अक्टूबर सन् १९५४ ई. सं. २०११ वि. { संख्या २

इच्छामात्र से अगाध शक्ति प्राप्त करने का साधन ... ... स्व० सन्त नागरजी ... १
समाधि ... ...
आत्मनिरीक्षण: हम मृत्यु से डरें क्यों ? ... ब्रह्मनिष्ठ स्व. पं. शिवदत्तजी शर्मा ... २
आप दुःखी क्यों हैं ? ... आचार्य नरदेवजी शास्त्री वेदतीर्थ
मन की शक्ति ... ... स्वामी विष्णुतीर्थजी महाराज ... ५
योग के मौलिक सिद्धान्त ... ... लालजी राम शुक्ल ... ६
उपासना कैसे ? ... ... वेदानन्द वेदवागीश ... ७
जीवन निर्माण कला के मूल तत्त्व ... सुदर्शनसिंहजी ... ९
सभ्य जगत का रोग कब्ज ... ... 'अज्ञात' ... १५
परलोक में मन का महत्व ... ... डॉ० लक्ष्मीनारायण टण्डन 'प्रेमी' ... १७
आर्थिक सफलता के मानसिक संकेत ... गोपीवल्लभजी उपाध्याय ... २१
प्रो० रामचरण महेन्द्र एम. ए. ... २५
... २७

सम्पादक—बालकृष्ण नागर

स्वाध्याय-सूत्र

ईश्वर-भावना

लेखक:—स्व० डा० दुर्गाशङ्करजी नागर

मैंने अपने अन्दर घुस कर और अन्तर्मुख होकर यह अनुभव कर लिया है कि परमेश्वर मेरे भीतर है। मेरा शरीर ईश्वर का पवित्र मन्दिर है। मेरे अन्तस्थ प्रभु मेरी आत्मा की आत्मा है यह परम आत्मा मेरी आत्मा में व्यापक है। सत्य ज्ञान का प्रवेश मेरी आत्मामे हो रहा है और उसे मैं अपनी आत्मा में धारण कर रहा हूं मन से, शरीर से, इन्द्रिय से जो कुछ मैं करता हूँ वह सब ईश्वरार्पण बुद्धि से करता हूँ। मेरा हृदय सर्वदा सत्यनिष्ठ और पवित्र है इसलिए उसमें सदा ईश्वरीय सङ्कल्प ही प्रकट होते हैं। मेरा मन ईश्वर भावना से इतना शुद्ध और प्रबल हो गया है कि उसमें कोई भी पाप विचार या प्रलोभन कभी उठ नहीं सकता। मैं बिलकुल निर्विकार निष्काम और परम पवित्र हो गया हूं। संसार की विघ्न बाधाएं मेरी समताको नष्ट नहीं कर सकती। परमात्मा मेरे जीवनके जीवन हैं परमात्मा की मुझ पर असीम कृपा है। जिस मनुष्य की आवश्यकता मेरे कल्याणके लिये होती है वहीवस्तु कहीं न कहीं से आ जाती है। परमात्मा की अपार दया, करुणा और अनन्त उपकारोंका प्रतिफल स्मरण करके मेरा हृदय प्रेम से गद्गद् हो जाता है। उसकी दया से और अनुग्रह से मैं पाप, दुःख, राग द्वेष के विकराल पञ्जे से छुटकारा पा सका हूँ और निष्पाप होकर विशुद्ध जीवन के मार्गका सच्चापथिक बना हूँ। मुझ निर्बल के केवल एकमात्र सहायक और मेरे एक मात्ररक्षक परमात्मा निरन्तर मेरा परमहित कर रहे हैं और प्रत्येक क्षण सर्वदा मेरेसाथ हैं। मुझमें अटल विश्वास है कि हर घड़ी और हर वक्त परमात्मा मेरा कल्याण ही करने वाले हैं। परमात्मा के परम पावन नाम स्मरण के पवित्र संस्पर्शसे मैं पवित्र हो गया हूं और मेरा जीवन कृत-कृत्य हो गया है।

हे संसार सागर से तारने वाले परमदेव। मेरा मलरहित निर्लेप आत्मा सर्वतोभाव से मनसा, वाचा कर्मणा तुझे समर्पित है।

नोट:— प्रतिदिन प्रातःकाल अथवा सायंकाल, एकान्त स्थान में शांत चित्त हो, नेत्र मूंदकर बैठ जाओ। शरीर और मन [illegible] करलो। सब ओर से विचारों को हटाकर "ईश्वर भावना" पर दस मिनिट चित्त को एकाग्र करो। दृढ़ता से उपरोक्त भावना पर मनको लगाओ। तुममें "ईश्वर भावना" का दृढ़ संचार होगा।

कल्पवृक्ष

अध्यात्म विद्या का मासिक पत्र

सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः॥ —गीता

वर्ष ३३] अक्टूबर सन् १९५४ ई. सं.२०११ वि. [संख्या २

इच्छामात्रसे अमोघ शक्ति प्राप्तकरनेका साधन

स्व० सन्त श्री नागर जी

यदि कोई मनुष्य नित्य कई बार इस तरह के भावना या आत्म संकेत अपने आपको देता रहे और वैसाही मानता भीर हे कि "मैं विश्व-शक्ति के अनन्त-भण्डार से शक्ति प्राप्त कर रहा हूँ" तो निश्चय ही थोड़े दिनों में उसके शरीर और मन बलवान होते, बल प्राप्त करते अनुभव होने लगेंगे। पर यह सदा ध्यान में रखना चाहिए कि जिस प्रकार के भावना या आत्म संकेत कहे जाएँ, जिस अर्थ के वाक्य दोहरायें जावें उसी प्रकार की मन की भावना भी हो। जैसी भावना होती है वैसी सिद्धि होती है।

यादृशी भावना यस्य सिद्धर्भवति तादृशी।

भावना किस प्रकार फल देती है, यह एक दृष्टांत देकर स्पष्ट करते हैं। बहुत से मनुष्य प्रार्थना करते हैं। प्रार्थना में अपने गुप्त से गुप्त भाव भी ईश्वर के आगे रख देते हैं, पर पश्चात् वे सोचने लगते हैं कि हमारे प्रारब्ध में अमुक वस्तु नहीं होगी तो ईश्वर कहाँ से देगा, अथवा हम अमुक वस्तु ईश्वर से माँगें तो वह कहीं नाराज तो न हो जाय। इस तरह ईश्वर की सारी शक्ति की तौल अपनी बुद्धि से कर डालते हैं और जिस वस्तु की प्रार्थना करते हैं उसकी प्राप्ति में

उन्हें सन्देह ही बना रहता है। इसी तरह की भावना को निर्बल भावना कहते हैं, और निर्बल भावना से की गई प्रार्थना कभी सफल नहीं होती।

यदि कोई ईश्वर से धनवान होने की याचना करे तो उसे इतनी ही प्रार्थना करने की आवश्यकता है कि, "हे ईश्वर! हमे धन दे" और मन में ऐसा दृढ़-विश्वास रखे कि ईश्वर की प्रार्थना कभी निष्फल नहीं होती, मैं अवश्य धनी होऊँगा। इस सबल भावना के स्थान में यदि वह अपने मन से ही गढ़ ले कि ईश्वर से धन माँगना अच्छा नहीं, इससे ईश्वर शायद बुरा मान जायगा और अपने को धन नहीं मिलेगा ऐसी उल्टी भावना का परिणाम भी उल्टा ही होगा, वह दरिद्र रहेगा।

जो कुछ तुम्हारी आवश्यकता हो—इच्छा हो, तुम्हें अपने पिता परमात्मा से माँगने का पूर्ण अधिकार है। तुम उसके पुत्र हो जो कुछ तुम माँगोगे अवश्य मिलेगा, ऐसी बलवती भावना रक्खो; फिर देखो तुम्हारी इच्छित वस्तु तुम्हें प्राप्त होती है या नहीं?

जिस वस्तु की तीव्र इच्छा होती है वह अवश्य प्राप्त होती है। (law of nature) प्रकृति का नियम है। प्रकृति की जिस-जिस वस्तु को तुम प्राप्त करना चाहो उस-उस की प्राप्ति के नियम जानना चाहिये।

उनमें सबसे प्रधान और मुख्य नियम यह है कि जिस वस्तु को तुम प्राप्त करना चाहते हो उसका एक ऐफर्मेशन बना लो। तुम से हो सके उतने अधिक बार उस (ऐफर्मेशन) का जप करते रहो—दुहराते रहो।

जैसे तुम्हें बल प्राप्त करना है तो "मैं बलवान हूँ" इस ऐफर्मेशन को बार-बार दुहराया करो जब तक कि वह विश्वास के रूप में न बदल जाए और मन में यह भावना बनाए रक्खो कि मैं विश्वशक्ति के भण्डार से बल प्राप्त कर रहा हूँ।

इस अभ्यास से थोड़े ही दिनों में तुम्हारे शरीर और मन में आश्चर्यमय उन्नति होने लगेगी—जिनका तुम्हें इस समय न तो विश्वास और न अनुमान ही हो सकता है।

—o—o—

समाधि

लेखक—ब्रह्मनिष्ट स्व० पं शिवदत्तजी शर्मा

अंग्रेजी में क्लेरोवायन्स के अर्थ है साफ साफ देखना। इसकी सब अवस्थाओं के यथार्थ वर्णन करना बडी बात है। वास्तव में इसका असली आशय आत्मदर्शन है। परन्तु नीची अवस्थाओं में इसका सम्बन्ध आत्मा से उतना घनिष्ट नहीं होता, जहां तक यह पञ्च ज्ञानेन्द्रियों के सम्बन्ध में चक्कर काटता रहता है। समाधि की यथार्थ अवस्था वह है जिसमें उन शक्तियों का ज्ञान अथवा दर्शन हो, जिसे हम अपनी ज्ञानेन्द्रियों की शक्ति से अथवा साधारण दृष्टि से नहीं जान सकते, नहीं देख सकते।

समाधि के द्वारा मनुष्य की सूक्ष्म शक्तियों का विकास होता है, मनुष्यों को सूक्ष्म अव

स्थाओं को ही सात लोक कहते हैं। इन्हीं को वेदान्त शास्त्र में सात भूमिका कहा है। समाधि ही एक ऐसी अवस्था है जिसमें से क्रमवार चढ़ते हुए अपने चरम लक्ष्य तक योगी पहुँचता है।

समाधि अवस्था दो तरह की होती है उच्च अवस्था और नीच अवस्था। उच्च अवस्था उच्च साधनों द्वारा प्राप्त समाधि वालों की होती है, और नीच साधनों द्वारा समाधि वालो की नीच अवस्था है। बहुत से अनपढ़, असभ्य और जङ्गली समाधि अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं। पर उनके विचार नीच ही होते हैं। ऊँचे विचार ऊंची अवस्था की समाधि वालो को ही हो सकते हैं।

समाधि के ज्ञान का मुख्य वाहक ईथर तत्व है। सहानुभूति की नाड़ियो में ईथर तत्व बहुत अधिकता से रहता है। इसी से कभी-कभी वह ज्ञान पशु-पक्षियों में तथा तीव्र बुद्धि के मनुष्यो में बिना ही किसी प्रकार के साधन किए उत्पन्न हो जाता। परन्तु इस प्रकार के ज्ञान से जीव, ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा एवं प्रकृति के अनेक रहस्य रूपी उच्च विचार उत्पन्न नहीं होते। उच्च विचार और ऊंचे दर्जे की शक्तियां तभी प्राप्त होती हैं जब उत्तम साधनों से समाधि सिद्ध होती है, और उसी समाधि से इच्छा-शक्ति यानी विल पावर बढ़ती है।

भजन, पूजन, ध्यान करने वालो को अक्सर समाधि अवस्था की झलक कभी-कभी हो जाती है, जो भी उनका लक्ष्य समाधि प्राप्त करने का नहीं होता है। ऐसी अवस्थाओं की प्राप्ति इस बात का चिन्ह है कि वह पुरुष यदि प्रयत्न करे तो शीघ्र ही उसे समाधि सिद्ध हो सकती है। परन्तु चित्त शुद्धि के बिना समाधि अवस्था का प्राप्त होना एक प्रकार का शाप समझना चाहिए, क्योंकि जिस मनुष्य की चित्त शुद्धि नहीं हुई है, उससे जगत की भलाई की अपेक्षा बुराई ही अधिक होने की सम्भावना है।

साधारण-समाधि—साधारण समाधि अवस्था मे मनुष्य उन वस्तुओं को देख सकता है जिन्हें हम साधारण दृष्टि से नहीं देख सकते। जैसे मनुष्यों का "औरा" अर्थात् तेजोमण्डल, विचार लहरो का गमनागमन और कम्पन इत्यादि। परन्तु दूरदर्शन और भूत, भविष्य का ज्ञान इस अवस्था मे कुछ नहीं होता।

दूरदर्शक समाधि—इसके सिद्ध होने पर मनुष्य दूर के हालात और गुप्त वस्तुओं को जान सकता है। जैसे एक पत्र में क्या लिखा है बगैर लिफाफा खोले वह कह देगा। पुस्तक के बिना खोले जिस पत्र का विषय पूछो बतला देगा अथवा सन्दूक मे क्या चीज बन्द है, बिना सन्दूक खोले ही वह सब बतला सकेगा।

भूत समाधि—इस समाधि की अवस्था में उसे भूतकाल की सारी घटनाएं वर्तमानकाल के समान प्रतीत होती है।

भविष्य समाधि—इस समाधि के सिद्ध होने पर भविष्य काल का कुछ हाल उसके सन्मुख वर्तमान-काल के समान मालूम होता है। ऊपर कही गई समस्त समाधियों से इस समाधि का प्राप्त करने वाला विरला ही मिलता है। यह अवस्था उन लोगों को प्राप्त होती है, जिन्होने दीर्घकाल तक साधन करके अपनी आत्मशक्ति पर अधिकार कर लिया है।

समाधि प्राप्त करने के मार्ग—बाहर की इंद्रियों का बाहर के जगत से सम्बन्ध छुड़ा कर ध्यान की अवस्था में बैठने से समाधि अवस्था प्राप्त होती है।

किसी वस्तु की तरफ टकटकी बांध कर लगातार देखते रहने से एकाग्रता होकर समाधि अवस्था प्राप्त होती है।

हिप्नाटिज्म या मेस्मेरिज्म का जानने वाला अपने शक्ति से दूसरे की अवस्था प्राप्त करा देता है।

इन सब मार्गों में सबसे उत्तम और श्रेष्ठ मार्ग वह है जिसमे क्रम क्रम से साधन करते हुए चित्त शुद्ध होकर समाधि अवस्था प्राप्त की जाती है। यदि साधक धैर्य के साथ साधन करता चला जाए तो समय पर अपने आप वह अवस्था प्राप्त हो जायगी। परन्तु यह देखा जाता है कि मनुष्य जिस अवस्था मे घुटनो के बल नहीं चल सकते, उस अवस्था मे दौडना चाहते हैं। वे चाहते है कि आज ही साधन आरम्भ किया कि और कल ही उन्हें समाधि हो जाय, भूत, भविष्य, सब कुछ मालूम हो जाय दुनियां भर की दौलत लूट कर खूब चैन से जिन्दगी गुजारदे। ऐसे जल्दबाजों को, अधीरों को, स्वार्थियों को समाधि अवस्था के प्राप्तकरने की जितनी फिक्र, जितनी चिन्ता रहती है, उतनी फिकर, उतनी चिन्ता साधनों के करने की नहीं होती।

बहुत से मनुष्य समझते हैं कि जब तक बेहोशी की हालत न हो, तब तक समाधि नहीं होती। इसीलिए वे अनेक यत्नों से वे अपने को बेहोश करना चाहते हैं कि जल्दी समाधि होजाय यह समझ भी भ्रान्तिपूर्ण है। वे होशी में अज्ञान रहता है, निद्रा लग जाती है, उससे और समाधि की अवस्था से कोई सम्बन्ध नहीं।

बहुत से गांजा, भांग, शराब पीकर उसमें जो नशे की लहर उठती है, उसे समाधि अवस्था मान लेते हैं। बहुत से सिर हिला कर अपने शरीर में किसी आत्मा का सञ्चार बतलाते हुए उस अवस्थाको ही समाधि अवस्थामानते हैं परन्तु ये सब निकम्मी और निर्थक बातें हैं।

दूसरेसे अपने को मेस्मेराइज या हिप्नाटाइज (संमोहित) कराना भी उसी हालत में उचित है जब मनुष्यपर अर्थात् मेस्मराइज्ञ या हिप्नाटाइज करने वाले के चरित्रों पर पूर्ण विश्वास हो, और बिना वैसा किए काम ही न चल सकता हो।

अगले लेख मे यह बतलाया जायगा कि समाधि अवस्था के प्राप्त करने का सर्वोत्तम मार्ग कौनसा है? यह मनुष्य को जानना चाहिए। बहुत मनुष्यों में इसके प्राप्त करने की योग्यता रहती है, और वे इसे प्राप्त करके संसार का बड़ा उपकार कर सकते हैं।

अध्यात्म जीवन का मूल तत्व यम और नियम है। योग दर्शन यम नियम को योग की पृष्ठ भूमि मानता है। प्रत्येक मर्यादित व्यवहार उच्च हृदय का आन्तरिक प्रकाश है। यह प्रकाश अपनी ही निरन्तर साधना से प्रकट होता है।

आत्म परीक्षण : हम मृत्यु से डरें क्यों?

आचार्य नरदेवजी शास्त्री वेदतीर्थ

किसी नीतिकार ने ठीक ही कहा है कि

मृत्योर्बिभेषि किं बाल।
न स भीतं विमुञ्चति॥
अद्य वा, शताब्दे वा।
मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः॥

हे अज्ञानी प्राणी, तुम मृत्यु से क्यों डरते हो। इसीलिए न कि वह तुमको उठा ले जाता है। हम पूछते हैं कि क्या उससे डरने से वह तुम्हे छोड़ देगा। कदापि नहीं, कदापि नहीं। फिर क्यों डरना, आज हो या सौ वर्षों में हो, जब वह किसी न किसी समय ले ही जायगा, तब डरना क्यों। जो बात अवश्यम्भावी है उससे शङ्का में पड़कर मृत्यु के आने के पूर्व ही अधमरे क्यों होना।

यह भी विचारणीय है कि मृत्यु ने आज तक किसी को छोड़ा भी है? किसी को बख्शा भी है? किसी को नहीं, फिर क्यों डरना। तुम महात्माओं के सच्चे गुरुओं के सङ्ग से यह अनुभव प्राप्त कर लोगे, तुम्हें जरा सा भी आभास मिल जाय कि हम तो अमृत पुत्र हैं, तुम्हारा भय जाता रहेगा।

वस्तुतः मृत्यु ऐसी वस्तु नहीं है जिससे डरने की आवश्यता है। मनुष्य के तीन जन्म होते हैं। प्रथम पिता के ही गर्भ में वीर्यरूपेण। द्वितीय माता के गर्भ में जाकर। तृतीय जन्म रूप में बाहर आकर। इसीलिए ऐतरेय उपनिषद् में कहा है कि—

तदस्य तृतीयं जन्म

वह मृत्यु तो तीसरा जन्म है—जो मरेगा स्व कर्मानुसार कहीं न कहीं जन्मेगा ही, एक शरीर जिसका भोग बीत चुका है, जो अपना भोग भोगचुका है, उसको छोड़े बिना—मृत्यु तो स्वयं छुड़ाएगी उसकी तुम्हें क्या चिन्ता—दूसरा शरीर कैसे बनेगा, कैसे मिलेगा।

जो यह तत्व का कि हम अमृत पुत्र हैं इसका अनुभव न करेगा, वह संसार चक्र में बहता ही रहेगा, बहता ही जायगा, "जायस्व म्रियस्व" अब यहां जी, अब यहां मर इसप्रकार जन्म मरण के चक्र में घूमता ही रहेगा। इसी-लिए संसार के कामों को करते हुए भी, कुछ काल महात्माओं के सत्सङ्गमे भी बितायाकरो। न जाने उनका कौनसा शब्द तुम्हारे कान में पड़े और तुम्हारा उद्धार हो जाय—संसार से भागने की आवश्यकता नहीं, भागोगे भी तो कहां भागोगे, संस्कार तुम्हारा पीछा छोड़ेंगे नहीं इसलिए महात्माओं के सत्सङ्ग से मृत्यु से तरने की विद्या सीखो।

o———o

हमारी नश्वर अन्तरात्मा के अभ्यन्तर प्रभु के अमर संगीत की ध्वनि गूँज रही है। परन्तु हम अपनी प्रकृति के विकारों के कारण उसे सुनने में लाचार है।

आप दुःखी क्यों हैं ?

लेखक—स्वामी विष्णुतीर्थजी महाराज

आध्यात्मिक प्रगति ही वास्तविक धर्म है, कोई चाहे उसे Religion नाम दे,अथवा,मजहब और उसका ध्येय आत्म साक्षात्कार है। क्योंकि आत्मा का अन्तरात्मा ही परमात्मा है। आत्मा मर्त्य नहीं, मर्त्य है भौतिक देह । आत्मा मन और बुद्धि से भी परे है।

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यःपरं मनः
मनसस्तु परा बुद्धि र्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥
गीता ३।४२

देह की अपेक्षा इन्द्रियां सूक्ष्म हैं,इंद्रियों से सूक्ष्म मन है मनसे सूक्ष्म बुद्धि है और जो बुद्धि से सूक्ष्म है वह है आत्मा। कर्मेन्द्रियों से युक्त वह कर्ता कहलाता है और ज्ञानेन्द्रियों एवं मन से युक्त होने पर भोक्ता। आत्मा के शुद्ध स्वरूप में न कर्तृत्व का भाव है न भोक्तृत्व अभिमान।

परमात्मा ज्ञानस्वरूप है जैसे एक सूर्य अखिल ब्रह्माण्ड के पदार्थों को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार सब पदार्थों का और साथ ही अपनी देह, इन्द्रियों, मन और बुद्धि का ज्ञान परमात्म-ज्ञान-ज्योति के कारण होता है। वह इन्द्रियों, मन और बुद्धि की सीमाओं में एक देशी होने के कारण व्यक्तित्व अहङ्कार का रूप ग्रहण कर लेता है। सुषुप्ति में उसका मन और बुद्धि से वियोग हो जाने से अहंकार भी विलीन हो जाता है। और अहङ्कार के विलीन होने पर सुख दुःख, जो बाह्य संसर्ग के कारण अनुभव में आते हैं, नहीं होते। परन्तु निद्रा का सुख वहां रहता है।

यदि कोई शंका करे कि निद्रा में ज्ञान नहीं रहने से निद्रा का भी सुख काल्पनिक कथन मात्र है, परन्तु ऐसा नहीं है, यदि मनुष्य को किसी कारण से निद्रा आना बन्द हो जाय तो वह दुनियां के सब सुखों के बदले कुछ देर निद्रा के लिए बेचैन हो उठेगा। अर्थात् संसार के सब सुखों से अधिक निद्रा का सुख है, यह सिद्ध हुआ। वह सुख है आत्मा का इससे यह भी सिद्ध होता है कि निद्रा के सुख की अपेक्षा बाह्य सुख दुःख रूप ही हैं परन्तु दुःखों की अपेक्षा से सुख रूप प्रतीत होते हैं। इसी अभिप्राय से श्री भगवान गीता में कहते हैं

येहि संस्पर्शजा भोगा दुःख योनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुध:॥
(५।२२)

जितने इन्द्रियों के स्पर्श से उत्पन्न होने वाले भोग हैं वे सब दुःख के घर हैं, आदि अंत वाले हैं, हे अर्जुन बुद्धिमान उनमें रमण नहीं करता।

जब आप किसी परिचित आगन्तुकसे स्वागतार्थ पूछते हैं—'आप आनन्द से तो हैं' तो प्रायः 'हां' में उत्तर मिलता है। परन्तु जब वह अपने दुखों की कहानी कह कर अपना चित्त हल्का करने लगता है, तब जान पड़ता है कि उसका उत्तर औपचारिक मात्र था। बुरा स्वास्थ्य, दैनिक आवश्यकताओं का अभाव और अनेक प्रकार का भय, तीन मुख्य कारण हैं जो मनुष्य की जीवनयात्रा को दुःखमय बनाए रखते हैं। चिन्ता का सम्बन्ध किसी वांछनीय

वस्तु के अभाव के कारण हुआ करती है। शोक भी स्नेहियों के वियोग में होता है। बहुधा देखा जाता है कि प्रायः लोग अभाव न रहने पर भी काल्पनिक अभाव से त्रस्त रहते हैं और विपरीत इसके ऐसे भी धैर्यवान पुरुष हैं जो कभी किसीप्रकारका अभाव नहींमानते चाहे घरमेंपेट भरभोजन का भी अभाव हो,उनकी मुखमुद्राको कोई सांसारिक घटना म्लान नहीं कर पाती, सदा हंसमुख उदार सौहार्दता आपके स्वागतार्थ बनी रहती है। परिस्थितियां उनके चित्त को क्षुब्ध करने में असमर्थ रहती हैं। परिस्थितियां यदि अपने वश मे न हों, तो क्या हम परिस्थितियों के प्रवाह मे बहते रहें, वे कहते हैं'। ऐसे ही लोग धन्य हैं और महान हुआ करते हैं और वे योग भक्ति कुछ भी न करने अध्यात्म पथ मे शीघ्र ही कृत कार्य हो जाते हैं।

o———o

मन की शक्ति

लेo—श्री लालजी रामशुक्ल

मन की शक्ति मनुष्य की इच्छा के विजय पर निर्भर करती है। इच्छा मनुष्य के व्यक्तित्व को सीमित कर देती है। प्रत्येक मनुष्य जब किसी दूसरे के पास जाता है तो वह किसी इच्छा को लेकर जाता है। अपने मन में इच्छा की उपस्थिति होने के कारण वह दूसरे के पास जाने पर छोटा हो जाता है। मनुष्य के व्यक्तित्व का बल उतना ही होता है जितना वह अपनी इच्छाओं के ऊपर जाता है। जब हम किसी इच्छा को लेकर दूसरे व्यक्ति के पास जाते हैं तो हम दूसरे व्यक्ति के मन में उसी प्रकार के भाव उत्पन्नकर देते हैं जिस प्रकार के भावों का हमारे मन में भय रहता है। इच्छा को लेकर जाने वाले व्यक्ति का मन दबा हुआ होता है। उसे अपने संकल्प की सफलता में अनेकसन्देह होते ह इच्छाके अभाव में सन्देहों का भी अभाव हो जाता है। इसके कारण मन की रचनात्मक शक्ति बेहद बढ जाती है।

किसी भी मनुष्य का दूसरे मनुष्य पर प्रभाव आंतरिक-एकता की अनुभूति के ऊपर निर्भर करता है। स्वार्थी मनुष्य अपने ही दृष्टिकोण से दूसरे को देखने की चेष्टा करता है। वह दूसरे व्यक्ति को अपने काम का साधन मात्र बनाने की इच्छा रखता है। इससे दूसरा व्यक्ति ऐसे व्यक्ति से सशंक हो जाता है. और वह जो बात कहता है उसका उल्टा प्रभाव सुनने वाले व्यक्ति के मन पर पड़ता है। इच्छायुक्त व्यक्ति का मन उद्विग्न रहता है। इस कारण भी ऐसे व्यक्ति का प्रभाव दूसरे व्यक्ति पर नहीं पड़ता। किसी व्यक्ति के शांत विचार और शांत भावनाओं का ही प्रभाव दूसरे व्यक्ति पर पड़ता है।

हमारे सभी विचार आसपास के लोगों को हमारे जाने अथवा अनजाने प्रभावित करते रहते हैं। प्रबल विचार न केवल समीपवर्ती लोगों को प्रभावित करते वरन् दूर के लोगों को भी प्रभावित करते हैं। हम अपनी मानसिक शक्ति का कम ज्ञान रखने के कारण दीन हीन अवस्था में बने हुए हैं। यदि हम अपनी मानसिक शक्ति का पूरा ज्ञान करलें तो हमारी शक्ति अमिट हो जाय। हमारे संकल्प अनेक प्रकार के

फलित होते हैं। सच्चे संकल्प न केवल ज्ञात सामग्री को काम में ले आते हैं वरन् अज्ञात सामिग्री भी उनके कारण इकट्ठी हो जाती है।

मनुष्य केवल अपने भौतिक बल का ज्ञान रखता है। उसे अपने आध्यात्मिक बल का ज्ञान नहीं है। भौतिक दृष्टि से कोई व्यक्ति बिलकुल निर्बल हो सकता है। उसे न तो धन का, न समाज के ऊपर प्रभाव का ही भरोसा हो सकता है; परन्तु वह यदिअपने आध्यात्मिक बल का ध्यान रखेतो वह अपने आप में अमित बल पावेगा। उनके संकल्पों को सफल बनाने के लिये अज्ञात प्रकृति दूर-दूर से सहायता भेज देती है। शुभ संकल्पों में अपने आप सफल होने की शक्ति होती है।

प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में अनुभव हुआ होगा कि अपनी उन्नति के लिये किये गये उसके प्रयत्न विफल हुए परन्तु दूसरे लोगों की उन्नति के लिये किये गए प्रयत्न सफल हो गये। अपनी उन्नति के विचारों में सन्देह की भावना भी रहती है। जब मनुष्य दूसरे व्यक्ति की अथवा राष्ट्र की भलाई के लिये कार्य करने लगता है तो वह केवल अपनी ही शक्ति से कार्य नहीं करता; उसे विश्वात्मा की शक्ति मिल जाती है। जिस व्यक्ति की जितनी व्यापक भावना होती है उसका मानसिक बल उतना ही बढ़ा चढ़ा रहता है। मक्खी को मारने के लिये तोप नहीं चलाई जाती। इसी प्रकार प्रकृति केवल स्वार्थ साधन के लिये मनुष्य को शक्ति नहीं देती।

जब हम किसी लेख को लिखते हैं तो उसका प्रभाव उतनी ही दूर तक होता है जितनी दूर तक उनके लिखने का हेतु होता है। कुछ लोग पैसे कमाने के लिये लेख अथवा पुस्तकें लिखते हैं, कुछ नाम कमाने के लिये, और कुछ संसार के मौलिक लाभ के लिये। मनुष्य का जैसा हेतु होता है उसे सफलता भी उसी प्रकार की मिलती है। पैसे कमाने की बुद्धि से लिखने वाले लोगों को न तो यश मिलता है और न उनकी बातें देर तक लोगों के मन को प्रभावित करती हैं। यश कमाने के हेतु लिखी गई बातें यश अवश्य लाती हैं, परन्तु जनता का स्थायी लाभ इनसे भी नहीं होता। जनता का मौलिक लाभ उन्हीं विचारों से होता है जो विश्व के कल्याण के लिये प्रकाशित किये जाते हैं। भगवान् बुद्ध, ईसा, सुकरात आदि महात्माओं ने हजारों वर्ष पूर्व अपने विचार जनता के समक्ष प्रकाशित किये। ये विचार आज की जनता के जीवन के आधार बने हुए हैं।

हमारा मन उसी प्रकार अनंत शक्ति का केन्द्र है जिस प्रकार एक जड़ अणु कल्पनातीत शक्ति का केन्द्र है। जड़ अणु में इतनी शक्ति है कि वह एक भारी नगर को क्षण भर में ध्वस्त कर सकता है और यदि रचनात्मक कार्य करे तो लाखों टन कोयले की शक्ति का काम कर सकता है मनुष्य के मन में इसी प्रकार कल्पनातीत शक्ति है। यह शक्ति यदि एक ओर विश्व का संहार सकती है तो दूसरी ओर उसकी रक्षा भी कर सकती है। कार्लमार्क्स के एक विचार ने सारे संसार में उथल-पुथल मचा दी। बड़े-बड़े राजे समाजवाद की आँधी के सामने तृण के समान उड़ गये। कार्ल मार्क्स अपनी इच्छा-शक्ति के बल के कारण संसार के अनेक प्रतिभावान पुरुषों के विचारों को अपनेविचारों केअनुरूप बनाने में समर्थ हुआ। उसके विचार का विरोधी पक्ष ने दमन किया। जैसे-जैसे उसका दमन होता गया वह और भी शक्ति-शाली बनता गया। आज मार्क्स का विचार संसारके कौने कौने मेंफैल गया है औरसंसार भर के पूंजीवादी उसके कारण भय-भीत हो रहे हैं वे सुख की नींदें नहीं ले पाते।

ध्वंसात्मक विचार में जैसी शक्ति है वैसी ही शक्ति रचनात्मक विचारों में भी है। ध्वंसात्मक विचार तेजी से कामयाब होता है; रचनात्मक विचार अपने कामयाब होने में सदियाँ लगा देता है। बुद्ध भगवान और ईसा के विचारों के संसार में फैलने में कई

भी लग गई थी। भले विचार को कार्यान्वित करने के लिये बुरे विचार की अपेक्षा अधिक धैर्य की आवश्यकता होती है। जो व्यक्ति अपने शुभ संकल्पों के विषय में जितना धैर्य रखता है वह उन्हें उतना ही बना लेता है किसी प्रकार की जल्दी करना अपने आत्म विश्वास की कमी को दर्शाता है।

मन की शक्ति का कार्य आरोग्य लाभ और मानसिक रोगियों की चिकित्सा में भली प्रकार से देखा जाता है। कई बार रोगी के प्रति चिकित्सक की शुभ कामना मात्र से ही रोगी को लाभ हो जाता है। इस प्रकार की शुभ कामना में जितना अधिक निस्वार्थ भाव होता है लाभ भी उतना ही अधिक होता है। शुद्ध प्रेम के विचार बड़े प्रबल होते हैं। इससे रोगी के मन में चमत्कारिक परिवर्तन अनायास हो जाते हैं। इस प्रकार के परिवर्तन से शारीरिक व्याधियों का भी शीघ्र ही अन्त हो जाता है। सच्चे प्रेम में त्याग की प्रधानता होती है और झूठे में स्वार्थ भाव कहीं न कहीं छिपा रहता है। छिपे स्वार्थ को दूसरों की दृष्टि से चाहे जैसे ओझल किया जाय वह व्यक्त हो ही जाता है। जिस किसी व्यक्तिने कोई महान कार्य किया, उसमें अपने स्वार्थ त्याग के बल पर किया है। मनुष्य स्वार्थ का जितना ही त्याग कर करता है उतना ही उसका मानसिक बल अधिक बढ़ जाता है। स्वार्थ का त्याग मनुष्य के विचारों को प्रभाव शाली बनता है। दूर-दूर के लोग ऐसे व्यक्ति के विचारों से लाभ उठाते हैं।

योग के मौलिक सिद्धान्त

श्री वेदानन्द वेदवागीश

गतांक से आगे

एक योगाभ्यासी के लिए यह मल-बद्धता दोषसर्वथा असह्य है। यह निश्चित समय पर निज आसन पर असीन नहीं होने देता; यदि समय का व्यतिक्रम करके उपासक बैठता भी है, तो अधिक देर 'तक नहीं बैठ सकता। गुदा-द्वार का भंवर ऊपर को आकुञ्चित हो जाने से प्राणायाम के समय मूलबन्ध भी ठीक तरहनहीं लग पाता। उड्डियानबध-बन्धनमें भो कमी आ जाती है। बिना इन दोनों बन्धनों के, प्राण-गति ऊर्ध्व नहीं होती। बिना उर्ध्व गति हुए वीर्य भी उर्ध्वगामी नहीं बन पाता; जिससे सुषुम्णा द्वार अवरुद्ध रहता है। सुषुम्णा-द्वार खुले बिना एक साधक अपने योग-पथ में आगे पगनहीं रख सकता, उन्नति स्तब्ध रहती है।

इसी प्रसङ्गमें मैं आपकाध्यान एकदूसरी ओर आकर्षित करने लगा हूं—सभी दार्शनिक व उपनिषदें यह मानती आई हैं कि शरीर के जिस भाग में मन होता है, वहाँ प्राण पहुँच जाता है। उदाहरणार्थ—यदि हम अपने मन को कुवासना में लगाते हैं, तो प्राण की गति एक दम नीचे होजाती है और वह प्राणमूत्रेन्द्रिय को खड़ा व कठोर कर देता है। प्राण के साथ-साथ वीर्य भी अधोगत हो जाता है और शरीर से किसी न किसी रूप में बाहर निकल जाता है। शरीर के उपरिस्थ भागों में वीर्य न रहने से मस्तिष्क में चक्कर व दर्द प्रारम्भ हो जाते है और बुद्धि निर्बल होने लगती है। इसके ठीक विपरीत, यदि मन को भृकुटि में स्थिर करके प्राण की गति ऊर्ध्व बना दी जावे, तो वीर्य गति ऊपर हो जायगी। जैसे प्राण मूत्रेन्द्रिय में आकर उसमें अपनी क्रिया आरम्भ करता है; ठीक वैसे ही पृष्ठ वंशके अन्तर्गत सुषुम्णा नाड़ी में प्रविष्ट होकर

पृष्ठ वंश को सीधा एवं कठोर बना देता है, तब उपासक पर्याप्त समय तक अपने एक ही आसन पर बैठ सकता है। अधिक देर बैठे रहने में भी उसे कोई कठिनाई अनुभव नहीं होती। मन शान्त होने लगता है और आनन्द की लहर दौड़ पड़ती है। वीर्य उर्ध्व-गामी बन कर मस्तिष्क को चक्करों व दर्दों से रहित रखता हुआ सदा तरो ताजा व बुद्धि को प्रखरअवस्था में रखता। उस समय की सूझ त्रिकालबाध्य, सत्य व संयम-शून्य होती है। परन्तु ऐसा कर लेना शीघ्र सम्भव नहीं है। वीर्य-प्रधान शरीर इस अवस्था को शीघ्र ही थोड़े काल में प्राप्त कर लेते हैं;पर वीर्य-क्षीण पुरुषों के लिए समय की कोई अवधि निर्धारित नहीं की जा सकती। यह वीर्य कम-अधिक क्षीणता पर निर्भर है। न्यून क्षीण वीर्य पुरुष, यदि दृढ़ता के साथ उस कमी को पूरा करने में कटिबद्ध हो जाएँ, तो सफलता उनके समीप ही है; पर अधिक क्षीण वीर्य व्यक्तियों के लिए सफलता प्राप्त करना एक टेढ़ी खीर है। उनकी कठिनाई में प्रधान कारण उनके अङ्गो प्रत्यङ्गों का टेढ़ा हो जाना है। पृष्ठवंश के टेढ़ा हो जाने से प्राण की गति ऊर्ध्व नहीं हो सकती, उनके लिए विशेष चिकित्सा की आवश्यकता पड़ेगी।

धातु-क्षीणता से अस्थियों के टेढ़ा होने में कारण

पहले निर्देश किया है कि वीर्य में बड़ी गरमी है, जो शरीर के ताप-मान को स्थिर रखती है। ताप-मान के स्थिर न रहने से शरीर में ठण्ड का आवास हो जाता है। जो शीतलता को अपनी ओर आकर्षित करता रहता है। यह एक वैज्ञानिक सिद्धान्त है कि प्रत्येक पदार्थ स्वप्रकृति की ओर ही आकर्षित होता है जैसे—अग्नि-शिखा को आप कितना भी नीचे कीजिए सूर्य की ओर ऊपर ही जायगी, चाहे सूर्य दृष्टिगत हो या न हो। मिट्टी का ढेला ऊपर फेंका हुआ अनन्तः पृथ्वी पर ही आयगा; क्योंकि उसकी प्रकृति ही पृथ्वी है। ठीक इसी प्रकार पानी का आकर्षण भी पानी की ओर ही होता है और अन्ततः वह समुद्र में पहुँच जाता है। पूर्णिमा के दिन चन्द्र-कलाएँ पूर्ण हो जाने पर समुद्र में ज्वार-भाटा आने का कारण भी यही है।

हमारा शरीर भी पंच भौतिक है। यदि इसमें पित्त (गर्मी) का साम्राज्य रहे तो वीर्यरूपी गरमी बढ़ती रहेगी और यदि वीर्याभाव में यदि वात प्रधान हो जाय, तो वात का साम्राज्य जड़ पकड़ने लगेगा। वात की प्रधानता में प्यास अधिक सताती है; पानी अधिक पिये जाने से शरीर में पानी की मात्रा अधिक पहुच जाती है। अन्तः स्थित पानी बाहर से और पानी खींचना चाहता है; अतः प्यास शान्त नहीं होती। शरीर के भीतर गई हुई पानी की अधिक मात्रा शरीर को शीतल बनाए रखती है। उस शीतलता के निवारणार्थ जन साधारण कपड़ों व गरम पदार्थ भक्षण का भिन्न-भिन्न उपाय करते हैं; पर वीर्य की गरमी के मोटे सिद्धान्त को नहीं समझते। धातु-क्षीणता में जहां ये उपद्रव खड़े होते हैं, वहां शीत प्रधानता में शरीर-रूप अस्थियें भी सिकुड़ जाती हैं; साथ ही टेढ़ी भी हो जाती हैं। धातु दौर्बल्य जब सीमा को अतिक्रान्त कर जाता है, तब शरीर में आकस्मिक लकवा मार जाता है। हाथ पैरों की अगुलिएँ एक-दूसरे पर चढ़ने लगती हैं। किसी-किसी के शरीर में कम्पन प्रारम्भ हो जाते हैं. शरीरस्थ सन्धियों में दर्द स्थिर रहने लगता है। यह सब कुछ इसीलिए संकेत किया जा रहा है कि साधक ब्रह्मचर्य-संरक्षण के गुण तथा विनाश से उत्पन्न हानियो के सिद्धान्त को भली-भांति समझ जायें। साधक थोडी-बहुत साधना अवश्य करता है; अतः उसके जीवन में यहां तक नौबत नहीं आने पाती। परन्तु धातु-दौर्बल्य पृष्ठ वंश को टेढ़ा अवश्य बनाए रखता है। पृष्ठवंश ही नहीं, अन्य अङ्ग-प्रत्यङ्ग भी टेढ़े-पड़े हुए होते हैं, जिनका पता नहीं लगता। विशेषज्ञ ही उन्हें जान सकते हैं। डाक्टर, वैद्यों की वहां पहुच नहीं है। योग के लिए कैसे शरीर की आवश्यकता है, यह वे नहीं जान पाएँगे।

मैं इसे कुछ और अधिक समझानेकी चेष्टा करूंगा पृष्ठ वन्श के सीधा होने का यह तात्पर्य नहीं, कि फिर वह झुकाने से भी नहीं झुकता। यदि ऐसा हो, तो सब कार्य प्रणाली ही बन्द हो जावे।

यह पृष्ठवंश सभी का टेढ़ा होता है, बालकों का भी होता है; परन्तु दोनों में अन्तर इतना है कि बालक के पृष्ठवन्श की टेढ़ को ब्रह्मचर्य-संरक्षता की सावधानता से सीधा व लचकीला स्वतः बनाया जा सकता है; जैसे पौधे की हरी शाखा को सावधानी से सभालते रहने पर वह सीधी भी हो जाती है और लचकीली भी बनी रहती है; किन्तु यदि वह सूख जाय तब उसे पूर्वावस्था में लाने के लिए विशेष क्रिया की अपेक्षा है। यह भी सम्भव है कि वह हरी हो ही न न सके। इसी प्रकार धातु-क्षीणता में हड्डियां ऐसी सूख व सिकुड़ जाती हैं कि उन्हें पुनः उसी अवस्था में लाने के लिए विशेष चिकित्सा की अपेक्षा रहती है। कम सूखी और सिकुड़ी हुई अस्थियां थोड़े उपचार में अपनी पूर्वास्था में आ जाती है; परन्तु उनके अधिक सिकुड़ जाने (लकवा आदि मार जाने) पर औषधोपचार का वाह्य विषय बन जाती है; उनकी चिकित्सा वाह्य बन जाती है; उसकी चिकित्सा नहीं हो पाती। इस रोग से ग्रसित व्यक्ति को आजीवन कष्ट के दर्शन करने पड़ते हैं। उसका जीवन पराश्रित बन जाता है। अपने देखा या सुना होगा—वैद्य एवं डाक्टर लोग ऐसे रोगियों की चिकित्सा करते हुए भस्मों व अन्य गरम औषधियों का प्रयोग इसीलिए करते हैं कि ठण्ड के कारण सिकुड़ी हुई अस्थियां गरमी पाकर सीधी हो जायें।

अब हम प्रसङ्ग दूर नहीं जाना चाहते, साधक के लिए अनिवार्य हो जाता है कि वह आरम्भ से ही अपने आपको सँभाले रक्खे। प्रत्येक व्यक्ति के भोज्य पदार्थों में अनेक विध पदार्थों का सम्मिश्रण रहता है। कुछ पदार्थ वातकारक भी हुआ करते हैं; साधक एक के लिए वे अपथ्य समझना चाहिए। वे मल-बद्धता व धातु-क्षीणता में शनैः-शनै कारण बनते हैं, अतः साधक को अपने भोजन में वातनाशक पदार्थों का समन्वय अवश्य रखना चाहिए। यह लोगों की गलत धारणाएँ हैं कि गरम पदार्थ साधक के लिए अपथ्य हैं वे उत्तेजना उत्पन्न करते हैं। ऐसे भाव अन्तः पटल पर अङ्कित हो जानेसे ही उन्हें वैसा होनेलगता है और अपनी सावधानता के पराङमुख हो जाते हैं। यदि वे इससे विपरीत भावना करेंगे और अपने संस्कारों को बलवान्-पवित्र बनाएँगे तो, उनके लिए वे ही पदार्थ अमृत-तुल्य सिद्ध होंगे। एक ही पदार्थ भोगी के लिए विलास का साधन है और योगी के लिए साधना का। भस्में शक्ति बढ़ा कर भोगी के लिए विलासता का साधन बनती हैं; परन्तु साधक के लिए वे ही भस्में शारीरिक दोषों को भस्म कर अन्न, दुग्ध, घृत के प्रचुर प्रयोग से वीर्य संवर्धन का साधन बन योग के मार्ग को अग्रसर करती हैं। शरीरावयवों को सुचारुरूपेण सुव्यवस्थित रखने के लिए ही ऋषि-महर्षियों ने भस्मो का प्रचलन किया था। ऋषि की पदवी पर आसीन होकर क्या आप उनसे यह आशा कर सकते हैं कि उन्होंने अपने लिए उनका निर्माण न कर भोगविलासियों के लिए ही उसकी उपयोगिता समझी होगी।

शरीर का सौष्ठव व सङ्गठन शरीर से पसीना निकलते रहने पर भी स्थिर रहता है। जिन्हें धातु दौर्बल्य का रोग लग गया है, उनके शरीर में पूरी मात्रा में पसीना निकलना बन्द हो जाता है और रोग के ग्रास बन जाते हैं; अतः साधक के लिए यह नितान्त आवश्यक हो जाता है कि वह यहाँ आहार का ध्यान रक्खे, वहाँ विहार से भी मुख न मोड़े। व्यायामों में सबसे उत्तम व्यायाम आसनों का है; किन्तु कई एक साधक उन्हें अच्छी तरह करना नहीं जानते। यदि वे जानुशीर्षासन करते हैं, तो उन्हें एक आधे घण्टे तक जानु पर से सिर नहीं उठाना चाहिए। उन्हें प्रयत्न करना चाहिए कि जमीनसे पैर उठाये बिना वे अपने मस्तक को जानु से आगे बढ़ा कर पिण्डली तक

पहुंचाएँ तथा पेट, छाती सभी अवयव टाँगों से सटा (चिपका) दें। दोनों के मध्य में अन्तर न रहनेपावे इस प्रकार दस पन्द्रह मिनट करने पर ही पसीने की धाराएँ प्रवाहित होने लगेंगी। शरीर की नीरोगता के साथ-साथ यह आसन पृष्ठ वंश के सीधा करने में भी विशेष सहायक है। अत किसी भी आसन में शीघ्रता से काम न लीजिए, भले ही आप दो-चार कर पाएँ पर जितने भी करें, अच्छी तरह करें। उससे ही आपके शरीर में हल्कापन व फुर्तीलापन दीखने लगेगा। फिर भी मैं निवेदन करूँगा कि प्रत्येक वस्तु का अभ्यास शनैः-शनैः बढ़ाना ही श्रेयस्कर है। प्रसह्य करने से हानि की सम्भावना बनी रहती है। इस मार्ग के अभ्यासी को एक ही दिन में पारङ्गत हो जाने की भावना को ताक में रख देना चाहिए। साधक की साधना का क्रम धीरे धीरे ही उन्नति की ओर अग्रसर हुआ करता है। इस पथ में धैर्यवान् की अधिक आवश्यता है।

बहुत से साधु आज भी धूनी तापते हैं। पहले यह प्रथा कुछ अधिक थी। जब से लोग इस महत्व को भूल गए और इसे ढोंग बताना प्रारम्भ किया, यह निर्मूल सी होती जा रही है। धूनी तपवा साधु इसे योग समझते हैं और अब तो यह अनपढ़ साधुओं तक ही सीमित रह गई है। विद्वान् साधु इसे हेय की दृष्टि से देखते हैं; पर मेरी दृष्टि से जैसे प्राणायाम आदि योग के अङ्ग हैं, धूनी तापना भी योग का एक अङ्ग यह ऋषियों की योग पद्धति में योग का एक साधन है। जैसे प्राणायाम करने, आसन पर बैठने, व्यायाम के आसन करने व पारिश्रमिक अन्य कार्य करने से शरीर से प्रस्वेद प्रवाहित होकर गरमी का आधान, वीर्य को स्थापन वायु का निःसरण और शरीर का सौन्दर्य बढ़ाता है; ठीक उसी प्रकार धूनी तपने से शारीरिक दोष निर्मूल होकर नाड़ियो में प्राण का सञ्चार होता है। हड्डियो में गरमी पहुचती है, वे सिकुड़ी हुई सीधी हो जाती हैं उनसे पृथक हुआ मांस पुनः चिपटने लगता है और शरीर सुगठित-बड़ा बनना प्रारम्भ हो जाता है। वैद्य महानुभाव जानते हैं कि भस्में हड्डियों में उष्णता पहुचा कर अस्थिगत जल को सुखाती है और उनकी सिकुड़न हटाती है; अतः प्यास लगने पर एक दम पानी नहीं दियाजाता। इसी प्रकार धूनी तपने वाले साधक कोष्ठ शुद्धि करके बीच में बैठते हैं और खान-पान का लंघन रखते हैं। शरीर बहुत जोखम में न चला जाय, दिन भर में पाव-डेढ़पावदूध पीते हैं। इससे उनके शरीरमें अधिक मात्रा में गया हुआ जल अग्नि-ताप द्वारा पसीने में बाहर निकल जाता है और अस्थियें सीधी होकर योगके योग्य शरीर बन जाता है। यह धूनी-तपन का कार्य योग्य गुरू की देख-रेख में हो सके, तो अधिक अच्छा है।

सुना जाता है, शिवकम में एक स्थान ऐसा है, जहां योगियों का वास है। साधारण-जन वहाँ नहीं पहुंच पाते। वे महानुभाव अपना किसी को कुछ पता भी नहीं देते। वहाँ उनका अपना हस्तलिखित एक पुस्तकालय भी है। गुरु शिष्य दोनों ही यहाँ इकट्ठे रहते हैं। महाभारत-कालीन भी कुछ योगी वहाँ विराजमान हैं और समाधि में रत है। उनकी जटाएं पाद तल को स्पर्श कर रहीहैं। उनके दो शिष्य छःमहीने में एक बार किसी एक बार किसी मण्डी में, जो छः मास पश्चात् ही लगती है, अन्न लेने आते हैं। वे परस्पर तो संस्कृत में सम्भाषण करते हैं; पर दूसरों के सामने मौनावलम्बी बन जाते हैं। कुछ बङ्गालियों को जो योगियों की खोज में थे, उनका पता लगा। दोनों शिष्य सिर पर गठरी उठाये अपने गन्तव्य स्थान की ओर तेजी से बढ़ रहे थे। बङ्गालियों ने उनका पीछा किया; पर वे हाथ नहीं आये। कुछ दूर पर मार्ग दो भागों में विभक्त था, बङ्गाली संशय में पड़ गये; नहीं समझ सके कि योगियों ने किस मार्ग का अवलम्बन किया है? दोनों मार्गों पर पद-चिन्हों द्वारा पता लगाना चाहा; पर लगा न सके। अन्ततः निराश हो, वे वापिस लौटे और लोगों से पता लगाया कि छः मास पश्चात् ही पीठ लगने पर महात्मा इधर आते हैं तथा

छः महीने की सामग्री इकठी ले जाते हैं। बङ्गालियों की उत्कण्ठा अब और दुगनी हो गई। उन्हों ने दृढ़ सङ्कल्प कर लिया कि अब की बार हम इनकी शरण में अवश्य पहुँचेंगे। प्रयत्न और उपाय ही हमारा साथी है।

वे पीठ लगने के दिनों की प्रतीक्षा करने लगे, अन्त में वह दिन भी आ ही गया। वे पहले ही उस स्थान पर, जहां से दो मार्ग फटते थे, पहुँच गये। योगियों को मण्डी की ओर आते देखा। जिस रास्ते से वे आ रहे थे, उनके निकल जाने पर बंगाली उसी पगडण्डी पर कुछ आगे और पहुंच गये तथा एक ऊंचे पेड़ पर चढ़ कर बैठ गये। अब उन्हें विश्वास था,-यदि योगियों ने अपनी शरण हमें न भी दी, अपने साथ वे हमें न भी ले चले, तो हम अब इस योग्य हैं कि कई मीलों तक उनका पीछा कर सकते हैं। गत मार्ग की थकावट से हमारे अङ्ग-प्रत्यङ्ग विश्रान्ति पा चुके हैं। इस प्रकार प्रतीक्षा करते-करते योगीवर आते दिखाई दिये। बंगाली सावधान हो गये व एक लक्ष्य से उन्हें निहारने लगे। जब कुछ अन्तर रह गया, वे पेड़ से नीचे उतर आये। योगियों को अभिवादन कर, साथ चलने का आग्रह किया; पर वे मौनावलम्बी ही रहे और चल दिये। बंगालियों ने उनका पीछा किया, योगी अतिवेग से जा रहे थे, बंगाली उनके पीछे दौड़ रहे थे, दौड़ते-दौड़ते वे थक गये। अन्त में योगियों को दया आई और उन्हें लौट जाने के लिए बाधित किया; पर बंगाली अनुनय-विनय करते ही रहे और अपने सङ्कल्प पर दृढ़ रहे। कृपालु योगियों ने बंगालियों को अपना हाथ पकड़ा दिया और सर्वथा शान्त रहने का आदेश दिया। कुछ ही मिनट बीते होंगे कि बंगाली एक ऐसे बीहड़ जंगल में जा पहुँचे, जो बड़ा ही भयानक था। बीस-बीस मील की दूरी तक कोई पगडण्डी दृष्टिगत न होती थी योगिवरों ने उन्हें अपने गुरु-स्थान पर जा पहुंचाया और बाहर ही उपस्थित रहने का आदेश दिया। सूर्यास्त हो चुका था। शिष्य जनों ने साभिवादन गुरुजनों से निवेदन किया कि आपकी आज्ञा से बंगाली यहां पहुंच गये हैं और बाहर उपस्थित हैं। †

बंगाली बहुत थक चुके थे। भूख बड़े जोरों पर थी। वे इस इच्छा में थे, हमें कुछ खाद्य पदार्थ मिले। शिष्य मंडल ने उन्हें एक बड़ा पतीला, जिसमें दस-पन्द्रह सेर पानी आ सके, तथा दो छटांक चावल लाकर दे दिये। और पानी लकड़ी व अग्नि का स्थान बताकर वापिस लौट गये; यही उनका आतिथ्य था बंगाली बड़े आश्चर्य में थे कि हम क्षुधा-पीड़ितों का इन मुट्ठी पर चावलों से क्या होगा और पतीला इतना बड़ा कि चावलों का इसमें पता भी न लगेगा। लज्जा वश वे योगिवरों से कुछ निवेदन भी न कर सके। अस्तु, पतीले में पानी भर, मुट्ठी मात्र तण्डुल उसीमें डाल, अग्नि प्रज्वलित कर चूल्हे पर चढ़ा दिया। थोड़ी देर में क्या देखते हैं, पतीला पके चावलों से पूरा भर गया है। उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। भोजन किया, तो वे बड़े स्वादिष्ट थे। सर्वथा तृप्त हो जाने पर भी बहुत सी सामग्री शेष रह गई। मार्ग की थकान तो थी ही, जैसे-के तैसे निद्रा देवी की गोद में जा विराजे। प्रातः काल सजग होने पर शिष्य वर्ग ने गुरु वर्ग के दर्शनों से उन्हें उपकृत किया। अन्दर प्रवेश कर उन्हें एक भारी पुस्तकालय दिखाया जिसमें सम्पूर्ण पुस्तकें हस्त-लिखित थी। आगे चलकर एक ऐसे कमरे में पहुचे, जो कन्द-मूल से पूरित था। जब साधक मंडल की कुटीर में पदार्पण किया, तो कई एक को ऐसा समाधिस्थ देखा, जिनकी जटाएं पैरों का चुम्बन कर रही थी। पूछने पर पता चला कि इनमें बहुत से साधक महाभारत से ही समाधिस्थ है।

शिष्यों को आदेश मिला कि ये योग-मार्गी हैं और अभिलाषी भी; अतः इन्हें शुद्ध कर लिया जाय।

---

† प्रतीत होता है, गुरु-शिष्य अपनी योग-शक्ति से परस्पर दूरस्थ होते हुए भी विचार-विमर्श कर लेते हैं।

शोधन-प्रक्रिया वही थी, जिसका आज मखौल उड़ाया जाता है। तीन दिन पर्यन्त धूनी तापित कर उन्हें शोधित करते रहे। तदन्तर गुरुवर्ग ने उन्हें अग्रिम प्रक्रिया की शिक्षा से दीक्षित किया। वे साधक वन वहीं अभ्यास- रत हो गए। कुछ महीनों के अभ्यास से योग-विद्या के अभ्यास में इतने पारङ्गत हुए कि पानी पर चल-फिर सकते थे। पुनः वे वहां से चले आए और को सर्व-साधारण की जानकारी के लिए पत्र मे प्रकाशित करा दिया।

इसी प्रकार शरीर-शोधन के लिए कुछ दवाइयां भी हैं। एक मालिश का तेल ऐसा है, जिसके सामने अङ्ग-प्रत्यङ्ग की टेढ़ तो क्या, लकवे तक ठीक कर देता है, पर उससे चिकित्सा करना योग्य चिकित्सक का ही काम है। उससे केवल विशेष नसों पर मालिश की जाती है और वह भी केवल अंगूठे से ही कितनी बार अंगूठा नस पर फेरना है, उसकी संख्या भी निर्धारित है ? कितना अंगूठे का बल लगाना है, यह भी निश्चित है ? तात्पर्य यह है— मालिश करने की विधि, नस-परिज्ञान तथा तैल निर्माण-प्रक्रिया जब तक अवगत न हो, साधारण जन उससे लाभ नहीं उठा सकते। लेखक तैल-निर्माण-प्रक्रिया व मालिश-विधिसे अभिज्ञ है; पर रोगी को उसमें ऐसा कड़ा पथ्य करना पड़ता है, जो साधारण व्यक्तियों से असह्य है। सात दिन पर्यन्त पानी न पीना, स्नान करना तो दूर, पैर तक मे पानी न लगने देना, तिस पर भस्मे और ऊपर से खिलाना और वह भी जाड़े-बरसात में नहीं, गरमियों में, परन्तु फिर भी रोगी मरता नहीं, जीवित ही रहता है। बुलन्दशहर जिला अन्तर्गत अनूप शहर से चार मील दूर भृगु क्षेत्र में यह चिकित्सा आज कल भी की जाती है। रुपये पैसे तथा पथ्य की दृष्टि से यह चिकित्सा महंगी अवश्य है, पर शरीर निर्दोष हो जाता है।

इसी प्रकार "ओजोलीन" एक विशेष औषध है, जो वीर्यवर्धक बुद्धिवर्धक तथा रसायन है। शरीर के किसी भी स्थल में कैसा भी दर्द हो, उसके सेवन से सर्वथा निर्मूल होजाता है। कब्ज को हटाती हुई, स्वप्नदोष को दूर करती है। नया यौवन पुनः प्रारम्भ होने लगता है, मनुष्य स्वर्ण-समान सुन्दर व शक्तिमान हृष्ट-पुष्ट बन जाता है। सफेद बाल काले पड़ने लगते हैं। लटकी हुई खाल पुनः सुदृढ़ हो जाती है। नीरस तरु जैसे पानी पीकर हरा हो जाता है, यह औषधि भी शरीर में एक दम वैसा ही काम करती है। इससे दुबले-पतले शरीर सुगठित और चरबी वाले सुव्यवस्थित हो जाते हैं।

नित्य प्रति इसका सेवन रोगी होने से बचाता है। ऐसी औषधियें एक साधक के लिए जहां योग का साधन बनती हैं, वहां भोगी के लिए विलास का साधन हो जाती हैं। आयी हुई शक्ति को योगी संभालता है और भोगी गंवाता है। बालक इसका सेवन करते हैं, तो मेधावी बनते हैं। युवकों का तो कहना ही क्या। यह गरमी भी नहीं करती। गरम पदार्थ इसमें अवश्य है, पर दूसरी औषधियों से ऊष्णता हटा दी गई है। जिससे औषध समशीतोष्ण बन गई है और लाभ अधिक करती है।

आबाल वृद्ध सभी स्त्री-पुरुषों की सभी अवस्थाओं में सेवनीय है। पथ्य भी विशेष अपेक्षित नहीं। मिलने का पता —'ओजोलीन फार्मेसी चित्तोड़गढ़ है।

साधक को इतनी जानकारी देने का प्रयोजन यही है कि वह ब्रह्मचर्य संरक्षण की ओर अधिक ध्यान दे। यही उसकी कठिन तपस्या है। इसी में उसके उद्देश्य की सफलता निहित है। विदुर प्रजागर मे कहा गया है "सत्ये रतानां दान्तानां सततमूर्ध्वरेतसाम्। ब्रह्मचर्यं दहेद्राजन् सर्वं पापान्युपासितम्॥" (जत्यनिष्ठ, बिजि-

तेन्द्रिय तथा उर्ध्वरेता महात्माओं का ब्रह्मचर्य सब पापों को भस्मीभूत कर देता है) । शरीर ठीक है, तो सब धर्म-कर्म सरल हैं। शरीर की नीरोगता मे द्रव्योपार्जन की भी विशेष आवश्यकता नहीं । भोग मे रोग है और रोग में निवृत्ति के लिए धन-सञ्चय अति अपेक्षित है, जिनकी चिन्ता साधक के लिए उसके मार्ग में अत्यन्त बाधक है ।

यम-नियमों की सामान्य व्याख्या करने के पश्चात् अब हम पातञ्जल योग के "तृतीय अङ्ग 'आसन' पर कुछ लिखने को अपनी लेखनी को व्याप्त करते हैं— बैठने का उचित आसन पद्मासन ही है। इसकी विशेषता का वर्णन पूर्व पंक्तियों मे किया जा चुका है। यम नियमो से आसन की सिद्धि तथा आसन की सिद्धि से यम-नियमों का पालन, अन्योन्याश्रय भाव से सुन्दर होता रहता है। साधारण जन व बहुत- से साधक भी पद्मासन लगा कर सीधे बैठ जाने मात्र को आसन मान बैठते हैं; पर वस्तुतः इतना कर लेना ही पर्याप्त नहीं है।

क्रमशः

—o—o—

उपासना कैसे ?

श्री सुदर्शनसिंह

स्वरूप तो एक और अखंड है । यदि उपासना का अर्थ समीप बैठना है तो इसका अर्थ है कि स्वरूप से सन्निकट रहना उपासना है। स्वरूप की अखण्ड स्मृति रहे, यह तो स्थिति हुई समाधि की। स्वरूप से नीचे आकर भी हम स्वरूप के समीप ही रहें, इसका नाम है उपासना। स्वरूप से नीचे आकर अर्थात् शरीर, मन, चित्त आदि मे तादात्म्य करके भी स्वरूप के पास कैसे रहा जा सकता है ? इसके लिए उस सच्चिदानन्द घन को जो सर्वरूप है, सगुणरूप में उपलब्ध करते है और मन को उसमें लगाए रहते हैं। वही देहदृष्ट्या "दासोऽहं" वाली बात है। सगुणरूप में उस एक रस निर्गुण को उपलब्ध करने के उद्देश्य है मन की, वृत्तियों को जो विलीनावस्था मे नहीं है, उसी में लगाए रखा जावे। हम उस आत्म रूप से दूर होकर उसे विस्मृत न हो जावें। क्योंकि आनन्दरूप से दूर होते ही कष्टों का आक्रमण होता है और कष्टों से बचने के लिए तथा आनन्द की उपलब्धि के लिए ही सब प्रकार की प्रवृत्ति होती है। उपासना के इस उद्देश्य को सम्मुख रखने पर यह आवश्यक हो जाता है कि उस सर्वरूप को हम उसी रूप में उपलब्ध करें जो हमें सर्वाधिक प्रिय हो। जसमें हमारे मन की रुचि हो। जो स्वतः मन को आकर्षित करता हो। भगवान के सौम्य, उग्र प्रभृति अनेकों रूपों की धारणा इसी से शास्त्रों में बतलाई गई है। प्रत्येक व्यक्ति की रुचि भिन्न होती है, अतः उसे अपनी रुचि

के अनुरूप आराध्य के रूप को चुन लेना होगा। एक बात और मनका स्थायी आकर्षण ममत्व में होता है। अपना कुरूप पुत्र भी सदा सुन्दर लगता है। ममत्व की सीमा से बाहर मन नित्य नवीन का पिपासु है। सुन्दर से सुन्दर भी थोड़े दिन में उसके लिए आकर्षक नहीं रह जाता। वह उससे कम सुन्दर किन्तु नवीन को पसन्द करने लगता है। अतएव यदि आराध्य हमारे ममत्व के दायरे में नहीं आ जावे तो मन के लिये उनमें सदा आकर्षण नहीं रह सकेगा। मन उस रूप से ऊब जायगा और किसी दूसरे रूप की मांग करने लगेगा। इस प्रकार किसी भी निष्ठा की स्थापना नहीं हो सकेगी। चाहिये यह कि हम आराध्य को अपना बनालें। उनसे कोई सम्बन्ध स्थापित करलें। यह बतलाना बड़ा सरल है कि उनसे कौनसा सम्बन्ध रखा जावे। मनका जिस सम्बन्ध की ओर अधिक झुकाव है, जिसे हम बहुत चाहते हैं, आराध्य को वही मानलें। इसमें किसी भी सोच संकोच को स्थान नहीं। भगवान तो सर्व रूप हैं और उन्होंने खुली छुट्टी देदी है, "ये यथा मां प्रपद्यन्ते, तांस्तथैव भजाम्यहम्" जो भी पिता, पुत्र भाई, सेवक, स्वामी, मित्र, पति पत्नी आदि अपने को सर्वाधिक प्रिय हो, आराध्य को वही मान लेना चाहिये। जितनी भी भावनायें उठें, उनका सम्बन्ध उन्हीं से करना चाहिये। देवर्षि नारद के शब्दों में "कामक्रोधादिकमपि तस्मिन्नेव करणीय" उपासना में अन्ध परम्परा को स्थान नहीं। ऐसी संकीर्णता कि मेरे पिता इस रूप में, इस भाव से उपासना करते थे, अतः मैं भी ऐसा ही करूंगा" उपासना को सार हीन बना देती है। इससे कोई लाभ नहीं होता। सब धान बाइस पसेरी से जो भी आवे उसे एक मन्त्र, एक रूप और एक भाव में लगाये जाने वाली साम्प्रदायिकता उपासना के लिये बहुत प्रतिकूल सिद्ध हुई है। अधिकार निर्णय करके ही कुछ होना चाहिये। अधिकार एक ही परिवार के व्यक्तियों के भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, क्योंकि उसका आधार है हृदय। हृदय सबका पृथक पृथक भाव रखता है। बहुत निपुण एवं सूक्ष्म दृष्टि महात्मा ही किसी दूसरे के अधिकार को ठीक-ठीक समझ सकता है। यह काम दुरूहतम है। अच्छा यही है कि व्यक्ति अपने अधिकार का निर्णय स्वतः ही करे। जितनी सरलता से हमारा मन आराध्य में लगा रहे उतना ही अच्छा। भाव और रूपों में कोई उच्च या निम्न का तारतम्य नहीं है। अतएव सुलभतर रूप और भाव जो अपने लिये हो, चुन लेना चाहिये। उद्देश्य केवल इतना ही है कि हम स्वरूप से दूर न हो जावें। देहादि में तादात्म्य के समय भी उसके पास रहें।
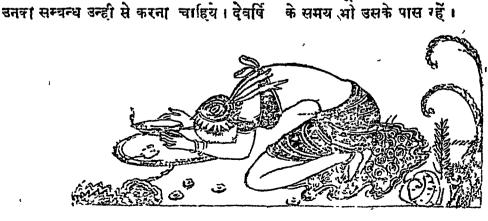
जीवन निर्माण कला के मूलतत्व

श्री 'अज्ञात'

जीवन निर्माण कला के महत्व और उपयोगिता को विश्वके बड़े-बड़े विचारशील विद्वानों ने हृदय से स्वीकार किया है। नीतिविज्ञान, समाजविज्ञान, राजनीति विज्ञान, धर्मतत्व इत्यादि तो इसके उपकरणमात्र हैं। जीवन निर्माण कला का क्षेत्र बहुत विशाल है। इसका प्रभाव बड़ा व्यापक है। जीवन (Life) सम्बन्धिनी प्रत्येक बात से इसका सम्बन्ध है। अनेकों पण्डित इसके सिद्धान्तों का अन्वेषण करने में प्रयत्नशील हैं, और वे इसके गम्भीर रहस्यों को प्रकाश में लाने का अथक उद्योग कर रहे हैं। कई मनुष्य इस कला का अध्ययन करके अपनी जीवन शक्ति को जागृत, विकसित और व्यवस्थित बना रहे हैं। युरोप में जो विचार स्वातन्त्र्य और कृति स्वातन्त्र्य इत्यादि वादों की लहरें पैदा हो गई हैं, वे इसी जीवन निर्माण कला के अध्ययन और अनुशीलन का परिणाम है। मानव जाति का इतिहास हमें बतलाता है कि जीवन तत्व को समझने-समझाने का प्रयत्न सबसे पहले इस भारतवर्ष में हुआ था। लोकमान्य तिलक के मतानुसार ईसा से १०००० वर्ष पहले ऋग्वेद मन्त्रद्रष्टा महर्षियोंने 'जीवन-तत्व' को समझने का प्रयत्न किया था। फिर ब्राह्मणगृन्थ, आरण्यक और उपनिषदों में इस तत्व का खूब विवेचन किया गया। पाश्चात्य दर्शन शास्त्रियों ने भी इस विषय में कम परिश्रम नहीं किया है। कान्ट, वर्क्ले और हीगल का परिश्रम इतिहास प्रसिद्ध है। डार्विन का विकासवाद और निश्चे की दिव्य मानव की कल्पना इसी जीवन कला की प्रकाशरश्मियों को समझने का प्रयत्न है।

जीवन की तात्विक रूपरेखा

दार्शनिकों का मत है कि जीवन भक्तितत्व, ज्ञानतत्व और भावतत्व का समन्वयात्मक विकसित रूप है और यह क्रियाशीलता, विचारशीलता और भावशीलता इन तीन महाशक्तियों से परिवेष्टत है। यह अत्यन्त गहनतत्व है और इसे पूर्णतः समझ लेना कोई सरल बात नहीं है। फिर भी विद्वत्समाज ने इस पर खूब विचार किया है। इसी अन्वेषण परम्परा के परिणामस्वरूप उसने बहुत से सिद्धान्त स्थिर किए हैं और कई सिद्धान्त तो काल, स्थान, मानसवृत्तियों और व्यवहार परम्परा के भेद के कारण एक दूसरों के सर्वथा विरोधी जान पड़ते हैं। उदाहरणार्थ कोई निवृत्ति परायणता को ही जीवन मानते हैं और कोई प्रवृत्ति परायणता को ही। कोई विशुद्ध आत्म चैतन्य को ही जीवन मानते हैं तो कोई इस देह स्थिति को ही। इस प्रकार अनेकों भेद हैं। किन्तु यह सर्वसम्मत सिद्धान्त है कि जीवन एक दिव्यतम तत्व है। इसकी सत्ता सर्वत्र व्याप्त है। सत्, चित् और आनन्द ये तीनों तत्व जीवन के मुख्य लक्षण हैं।

पूर्ण जीवन की कल्पना

यह तो मानी हुई बात है कि यह संसार शतशः दुःखों का निवासस्थान है। अनेकों भीषण

त्रिमीपिकाओं की यह क्रीडास्थली है। आधि-भौतिक, आधिदैविक आध्यात्मिक ताप इसे अपना भोजन बना रहे हैं। इस प्रकारके समस्त तापों से विमुक्त शान्त और समस्त जीवन की कल्पना ही पूर्ण जीवन की कल्पना है। योग दर्शनकार की दृष्टि में क्लेश, कर्म, विपाक और आशय—इन वैकल्पित भावनाओं से रहित हो जाना ही जीवन की वास्तविक जागृति है। सांख्यशास्त्र 'ज्ञाननिष्ठा' को ही जीवन की पूर्णता मानता है। "निःश्रेयसम् अत्यन्तिकी दुख-निवृत्तिः। शङ्करमिश्रकृत वैशेषिक सूत्रो पस्कार ।१।१।२॥" इस सूत्र मे शान्तिमय और प्रबुद्ध जीवन का विधान बता कर जीवन के पूर्ण विकास की ओर संकेत किया गया है। भगवान् श्रीकृष्ण ने तो 'जीवनं सर्वभूतेषु (गीता ७।९ कह कर जीवन तत्व को ईश्वर की एक दिव्य विभूति के रूप में स्वीकार किया है। इसप्रकार भारतीय दर्शनशास्त्रियों ने जीवन की सत्य, शिव और सौन्दर्यमयी शक्तियों के पूर्णविकास पर गम्भीर विचार प्रकट किए हैं और इसे प्रकृति के त्रिगुणात्मक विकारों से रहित निरंतर सत्वशील आत्मतत्व उद्घोषित किया है।

जीवन निर्माण कला

जिस कार्यपद्धति के द्वारा मनुष्य अपनी पूर्णता को प्राप्त कर सके, तथा इस पूर्णता की ओर प्रगतिसाधन कर सके, इसे जीवन निर्माण कला कहते हैं। मानव जीवन की पूर्णोन्नति इसकी त्रिविध महाशक्तियों—क्रियाशक्ति, ज्ञानशक्ति और भावशक्ति के पूर्ण विकास पर ही अवलम्बित हैं महाशय J. Thamos कहते हैं:— "The art of self improving helps a man to obtain his perfection when he tries to awake his bodily mentaly of vital forces" अब यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि जिस कार्य पद्धतिसे मनुष्य अपनी पूर्ण स्थिति को प्राप्त करने में सफलता प्राप्त कर सके—अपनी आन्तरिक पवित्रता और ज्ञानस्थिति का अनुभव कर सके उसे जीवन निर्माण कला कहते हैं। यहां इसी जीवन निर्माण कला के मूल तत्वों पर विचार करते हैं।

विवेक कला

विवेक कला जीवन निर्माण कला का प्रधान सहायक तत्व है। इसके सम्यग् विकास के विना जीवननिर्माण की कल्पना करना एक मिथ्या विचार है। मनोविज्ञान के आचार्यों का मत है कि वास्तविक मनुष्य इसके विचार ही हैं। विचार अणुओं (Vibrating) का अन्त प्रवाह ही और बाह्यप्रवाहही मनुष्य जीवन का निर्माण करते हैं। क्रियातत्व और अनुभूतितत्व विचारों के बाह्याभ्यन्तर प्रवाह का ही परिणाम है। विचारकम्पन का निश्चित रूप ही मनुष्यको जीवन पथ का प्रदर्शन करता है और उसके हृदय में जीवन ज्योति को प्रकट करता है। इन विचारों के व्यवस्थित एवं निश्चित रूप को विवेक कहते हैं। विवेक-कला विचार शक्ति का सङ्कलन और सञ्चालन होता है। विवेक-कला के क्रियात्मक रूप पर जब हम विचार करते हैं तो इसमें तीन तत्व दिखाई देते हैं:—

१. वैज्ञानिक विचार पद्धति
२. विचार स्वातन्त्र्य
३. मानसिक निर्मलता

वैज्ञानिक विचार पद्धति

वैज्ञानिक विचार पद्धति जीवन निर्माण के लिए कितनी आवश्यक और उपयोगी वस्तु है है यह किसी भी विचारशील विद्वान से छिपी हुई बात नहीं है। जब तक मनुष्य को ठीक तरह से विचार करना नहीं आता तब तक वह

अन्धकार में ही रहता है। सत्य का दिव्य आलोक उसके जीवनमें प्रति बिम्बित होही नहीं सकता। वैज्ञानिक विचार पद्धतिका अभ्यास ही मनुष्य को सत्यासत्य का निर्णय करने के योग्य बनाता है। इसे हम दार्शनिक परिभाषा में 'विवेकदृष्टि' और गीता के शब्दों मे दिव्य-चक्षु' कहते हैं। वैज्ञानिक विचारपद्धति के द्वारा ही सत्य की सुन्दरता और मनोहरता की अनुभूति होती है—जो कि जीवन निर्माण का एक खास तत्व है।

१. विचार स्वातन्त्र्य

विचार-स्वातन्त्र्य विवेक कला का दूसरा मौलिक तत्व है। विचार स्वातन्त्र्य वैज्ञानिक विचार पद्धति का आधार है। इसके बिना विवेक कलाका विकास नहीं हो सकता। विचार स्वातन्त्र्य के अभाव में मनुष्य की विचारधारा का प्रवाह रुक जाता है—उसकी स्वयं निर्णय करने की शक्ति का विकास-क्रम नष्ट हो जाता है और उसके मस्तिष्क की मौलिक शक्तियां बरबाद हो जाती है। विचार स्वातन्त्र्य के बिना मनुष्य घातक रूढ़ियों और परम्पराओं का गुलाम बना रहता है। जो इसके जीवन निर्माण का विघातक तत्व है।

२. मानसिक निर्मलता

विवेक कला के सम्यग विकास के लिए मानसिक निर्मलता भी एक अनिवार्य आवश्यक वस्तु है। मानसिक निर्मलताके अभावमें हमारी विचारधारा पाशवबृत्तियों के रूप में बदल जाती है, और हम उठने के स्थान पर नीचे की ओर गिरने लग जाते हैं। यह कह सकते हैं कि मानसिक निर्मलता के न रहने पर हमारा मनुष्यत्व ही नष्ट हो जाता है और हम हमारे ध्येय—जीवन-निर्माण से बहुत पीछे हट जाते हैं। मानसिक निर्मलता से हमारा जीवन दिव्य और पुनीत बनता है और हमारी आत्मकलिका सत्य के मधुर प्रकाश को देखकर प्रस्फुटित हो जाती है। हमारी अनन्त शक्तियां जागृत हो जाती हैं। हमारी संस्कृति का विकास होता है और हम जीवन की उस दिव्य स्थिति का अनुभव करने लगते हैं जिसका अनुभव किसी बिरले ही भाग्यशाली को होता है।

३. हृदय-तत्व का विकास

हृदय तत्व का विकास भी जीवननिर्माण कला का एक आवश्यक उपकरण है। आत्म-तत्व का साक्षात्कार और सार्वभौम धर्म का प्रत्यक्षीकरण इसके अङ्गोपाङ्ग हैं। विश्वप्रेम और विश्व सेवा की पवित्र भावनाओं से परिपूर्ण हृदय के बिना आन्तरिक जीवन के विकास की कल्पना केवल भ्रम है।

हमारी आन्तरिक सृष्टि ही खास प्रकार की प्रक्रिया में गुजर कर वाह्यजीवन का रूपधारण करती है। इसी कारण यदि हमारा अन्तर्जीवन दिव्य और सुन्दर न हो तो हमारे वाह्यजीवन में सौन्दर्यतत्व और मदनीयता का आविर्भाव नहीं हो सकता और हमारी जीवन शक्ति सौन्दर्य से खाली रह जाती है। इसकी रमणीयता और मनोहरता विनष्ट हो जाती है। दर्शनशास्त्र हृदय की इस विकास प्रक्रिया को 'अन्तर जागृति' शब्द से सम्बोधित करता है। बौद्ध-दर्शन में इसका नाम 'मेधाजनन' है। एक विद्वान के शब्दों में इस आन्तरिक कला की दिव्य रश्मियां ही मनुष्य के जीवन पथ का परिष्कार करती है और उसे कार्यक्षम बनाती हैं।"

क्रियाशक्ति का व्यवस्थित रूप

जीवननिर्माण के लिए मनुष्य की क्रियाशक्ति का व्यवस्थित रूप में होना अत्यन्त आवश्यक है। इसके बिना वह एक असफल वैज्ञानिक प्रमाणित होगा। व्यवस्था तत्व के

के अभाव में कोई भी महत्वपूर्ण कार्यक्रम सफल नहीं बनाया जा सकता। व्यवस्था सफलता प्राप्त करने का एक आवश्यक साधन है। यदि किसी कार्यक्रम में सफलता प्राप्त करना हो तो उसकी क्रियाशक्ति को व्यवस्थित करना ही पड़ेगा। अनियन्त्रित शक्ति जीवन के लिए विघातक है। व्यवस्थित क्रियाशक्ति को अधिक प्राणमय बनाने के लिए उसमें महत्वाकांक्षा, कार्यपटुता, कृतिस्वातन्त्र्य और आशावाद का सम्मिश्रण करना भी एक सफल प्रयोग होगा। इसके साथ ही अपने उत्तरदायित्व का भान भी मनुष्य की क्रियाशक्ति को अधिक जीवनमय और प्रबल बनाता है। इस प्रकार व्यवस्थित क्रियाशीलता का निरन्तर प्रवाह मनुष्य को अपनी लक्ष्य सिद्धि में निश्चित रूप से सहायता देता है। क्रियाशक्ति से ही मनुष्य का जीवन शक्ति सम्पन्न बनता है। क्रियाशक्ति-व्यवस्थित-क्रियाशक्ति से रहित जीवन नहीं कोई और ही वस्तु है।

सहयोग भावना

सहयोग भावना भी जीवन निर्माण कला का एक क्रियात्मक तत्व है। यह व्यक्ति से सामाजिक जीवनका निर्माण करने मे सहायता देता है। इसके योग से व्यक्ति की सहस्रों कठिनाइयाँ हल हो जाती हैं। समाज विज्ञान के आचार्य इस तत्व के मनुष्य के सामाजिक जीवन का शक्ति केन्द्र समझते हैं। मनुष्य की शिक्षा-दीक्षा; समाज परायणता दाम्पत्यस्नेह इत्यादि जीवन के निर्माण की आवश्यक बातें इसी सहयोग भावना पर अवलम्बित है। गुरु शिष्य का सहयोग, समाज के सदस्यों का पारस्परिक सहयोग और पति-पत्नि का सहयोग ही व्यक्ति के शिक्षा संस्कार समाज परायणता और दाम्पतिक प्रेम का आधार है। सहयोग भावना के आधार पर की गई समाज-व्यवस्था स्थायी और प्राणपोषक होती है। हमारी चातुवर्ण्य व्यवस्था इसी तत्व के आधार पर निर्मित है, और यही कारण है कि यह व्यवस्था मानवजाति के ज्ञान इतिहास में सबसे प्राचीन होने पर भी अन्य सब सामाजिक व्यवस्थाओं में अधिक बलवती है और कई अंशों में तो उनकी जननि है। समाज के कलह और विग्रह सहयोग भावना के अभाव को सूचित करते हैं। सहयोग भावना सामाजिक जीवन का प्राण है, उसकी गतिविधि है, उसका सर्वस्व है।

नैतिक बन्धन

नैतिक बन्धन भी जीवननिर्माण कला का एक मौलिक तत्व है। यह हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन को विशुद्ध और चिरस्थायी बनाता है। नीतिशास्त्र मनुष्य के सामाजिक जीवन का विज्ञान है और व्यक्तिगत जीवन का भी। यह शास्त्र मनुष्य के वैयक्तिक जीवन निर्णय और सामाजिक जीवननिर्माण में सामञ्जस्य स्थापित करता है। यह शास्त्र जीवनशक्ति के अनुचित उभार को नियन्त्रित करता है और उसे जीवनपोषक बनाता है। नीतिधर्म का पालन जीवन को संयत और पवित्र बनाते हैं। विश्व-कल्याण में आत्म कल्याण समझने की भावना जीवन को एक दम उन्नत बनाने वाली है। इससे हमारा जीवन यज्ञमय बनता है। इससे हमारे जीवन में 'आत्मप्रभा' का आविर्भाव होता है; शक्ति का अवतरण होता है, शान्ति के दर्शन होते हैं, और हम ईश्वरमय बन जाते हैं। हमारी आन्तरिक प्रेमकला प्रादुर्भूत होकर जीवन में माधुरी की अमृत वर्षा करती है। हमारा जीवन पूर्णतया संस्कृति सम्पन्न; सत्यमय और विशुद्ध बन जाता है इस प्रकार नैतिक बन्धन हमारे जीवनको शक्तिसम्पन्न और उर्ध्वगामी बनाता है। इसके द्वारा हम लौकिक अभ्युदय और पारलौकिक निःश्रेयस को प्राप्त कर सकते हैं। यही जीवन का श्रेयमार्ग है। संसारयात्री इस पर चल कर अपने अभिलाषित स्थान पर पहुंचने में समर्थ हो सकते हैं।

उपनिषदों का मन्तव्य

जीवन तत्व की उपलब्धि के सम्बन्ध में उपनिषदों मे बहुत सुन्दर विचार प्रकट किए हैं। इस

सम्बन्ध में उपनिषदों का दृष्टिकोण अत्यन्त सात्विक और निर्मल है। यहाँ हम केवल मुण्डकोपनिषत् के एक मन्त्र को उद्धृत करते हैं। इससे पाठकों को जीवन निर्माण कला सम्बन्धी उपनिषदों का मन्तव्य विदित हो जायगा। वह मन्त्र निम्न प्रकार है –

सत्येनलभ्यस्तपसा ह्यषे आत्मा
सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्
अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयोहि शुभ्रो
यंपश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः

।मुण्ड० ३ १।५।

अर्थात् मनुष्य अपने जीवनतत्व की उपलब्धि सत्यशीलता तपस्या, यथार्थ ज्ञान और निष्कामता के द्वारा कर सकता है और साथ ही उसे इसके लिए क्षीणदोष और दिव्यदृष्टि युक्त होना चाहिए। कैसा दिव्य सन्देश है। आत्मजागृति का कैसा पवित्र आदर्श है। म० गाँधी के शब्दों में "जो आत्मा की इस दिव्य ध्वनि को सुन कर भी भ्रमपूर्ण और विकारमय विचारों के आधीन रहता है वह सूर्य के सन्मुख अन्धकारके अस्तित्व को स्वीकार करनेका प्रयत्न करता है।" हमें चाहिए कि हम इस दिव्य अमृत का पान करें और जीवन तत्व के द्रष्टा बनें, तभी हम अपने जीवन का निर्माण कर सकेंगे।

o——o

सभ्य जगत का रोग कब्ज

श्री डॉ. लक्ष्मीनारायण टण्डन 'प्रेमी'

—o—o—

कहावत प्रसिद्ध है कि पेट ही हमारा कब्रिस्तान है। अर्थात् इस पेट के कारण ही हम अपनी मृत्यु शीघ्र बुलाते हैं। यदि हम भोजन न करें तो कुछ दिनों के बाद मृत्यु अनिवार्य है। अर्थात् पेट ही हमारा जीवन रक्षक है पर कम खाने वालों से ज्यादा खाने वाले ही अधिक मरते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि पेट ही हमारा रक्षक और भक्षक दोनों हुआ। यदि हम सयंम, नियम, और समझदारी से पेट का उपयोग करते हैं वह हमें स्वास्थ्य, बल तथा जीवन देगा और यदि अपने पेट को हम किराये का या गैर का पेट समझ कर लोभ के वशीभूत हो कर अपनी अक्ल को ताक पर रख देंगे तो हमारा पेट हमें रोगी, निर्बल, अशक्त और अस्वस्थ्य करेगा और प्राण भी अन्त में ले लेगा।

समस्त रोगों, समस्त विकारों की जड़ यही कब्ज है। यदि हम यह समझ लें कि कब्ज कैसे हो जाता है, तो जिन कारणों से वह होता है उन कारणों को ही हम दूर कर देंगे तो फिर कब्ज होगा ही नहीं। यदि हम नियमित समय पर निश्चित् मात्रा में भोजन करें, इसका ध्यान रखें कि हम ठूस-ठूस कर पेट में भोजन भर लें, वरन् पानी तथा हवा के लिए भी कुछ स्थान छोड़ रखें, मिर्च-मसाला, चाट [illegible] चीजें, बेमेल भोजन आदि न करें तो हमारा हाजमा खराब न होगा। इस सम्बन्ध में अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि इस विषय पर [illegible] समझदार पाठक सभी जानते हैं। पर कुछ लोग

प्रयत्न करने पर भी कब्ज को दूर नहीं कर पाते। यदि ऐसे सज्जन निम्न लिखित साधारण बातों का ध्यान रखें तो उन्हें अवश्यमेव लाभ होगाः—

(१) रात्रि को सोते समय एक गिलास जल पीकर सोवें। यदि हल्का, खूब सा गुनगुना जल हो तो और अच्छा है। अच्छा हो इसमें आधा नीबूँ निचोड़ लें या जरा सा नमक डाल लिया करें। जो सोते समय गरम दूध पीने के आदी हैं, वे दूध में आधी छटाक मुनक्के उबाल लिया करें और मुनक्के समेत दूध पिलें। पर दूध हर एक को नहीं पचता। पर पानी तो प्रत्येक को पचेगा ही।

(२) सूर्योदय के पूर्व उठने पर खूब कुल्ली और गरारा करलें पहले क्योंकि इससे रात के समय जीभ पर एकत्रित विषैला पदार्थ दूर हो जायगा। यदि पेट में यह गन्दगी चली जायगी तो पेट की पाचन-शक्ति का नाश होगा। अतः कुल्ली करके एक गिलास (तांबे के बर्तन में रात का रखा बासी जल हो तो उत्तम) पानी में आधा नीबूँ निचोड़ कर पी लें। पीने के बाद दो मिनट बाँई करवट फिर दो मिनिट दाँई करवट तथा फिर एक मिनट बाँई करवट लेट रहें। तब उठें और शौच को जाय। कुछ लोग जल पीकर पाँच मिनट टहलना पसन्द करते हैं। जिसे जिससे लाभ हो वह करें। कुछ लोगों को ठन्डे जल से लाभ नहीं होता वे गुन-गुना जल पियें तो अत्यन्त लाभ होगा। कुछ लोग पाश्चात्य सभ्यता की नकल कर के bed tea लेते हैं। यह गन्दी आदत है।

(३) यदि नित्य नहीं तो प्रातः हड़-बहेड़ा आँवला का चूर्ण सोने के पूर्व फाँकलें या रात के भिगोये चूर्ण के जल को प्रातः पीलें। पेट तथा आँखों के लिए यह चूर्ण अमृत के समान लाभप्रद सिद्ध होगा।

(४) यदि सप्ताह में एक बार गुनगुने पानी का एनेमा ले लिया जाया करे तो पेट प्रायः ठीक रहता है।

(५) प्रातः सो कर जगने पर, सर तकिये से उठा कर पेट पर धीरे धीरे हाथों की मुठियों से, जहाँ से पसलियाँ मिलती हैं वहाँ से मसले तोदीं के नीचे तक जाओ। फिर सर रख कर तकिये पर नीचे से ऊपर तक वैसा ही करो। १० से १०० बार तक धीरे धीरे बढ़ा कर करो। इससे मर्म-चिकित्सा के साथ साथ पेट की कसरत भी हो जाती है।

(६) अस्तु। फिर सर उठा रहे। पेट को दोनों हाथों की खुली हथेलियों से दबाते हुए ऊपर से नीचे मलो हथेली खुली रहे। सर उठा रहे। १० से १०० बार तक धीरे धीरे बढ़ा कर करो। ऐसा करने से रक्त का संचालन तीव्र गति से होने लगता है तथा पेट के अवयव सजग हो कर कार्य करने लगते हैं।

(७) फिर सर तकिए पर रहे। दाहने हाथ की बन्द मुठी से दाहनी तरफ तोदी से ऊपर को पसली के किनारे-किनारे दबाते हुए ले आना और बाँये हाथ की मुठी से बाँई तरफ यानी Acoending colon, Transverse colon तथा deseenbing colon पसली के किनारे, तोदी के नीचे दबाते हुए १० से १०० बार तक धीरे धीरे बढ़ा कर करें। इससे पेट की नसों को कार्य-क्षमता का अभ्यास बढ़ता है तथा आँतें क्रिया-शील होने लगती हैं।

(८) अब सर उठालें दोनों हाथों को बगलों में रखेंइधर-उधर। फिर धीरे-धीरे पैर उठावें जितना उठा सके पैर मिले रहें पञ्जों का move-ment करें जितना कियाजाय। जबथकने लगे,पैर नीचे करलें। यदि ५, ६, ७ तथा ८ कसरत नित्य कोई करे तो चाहे जैसा कब्ज हो कुछ दिनों में अवश्य दूर हो जायगा। पर हां, यह नहीं कि इधर इन्हें भी करता जाय और उधर प्राकृतिक नियमों की अवहेलना भी करता जाय। वे तो सर्वोपरि हैं।

(९) प्रात· सायं एक चुटकी शुद्ध बालू फाँकें। उस पर पानी पीलें इससे कब्ज को लाभ होगा।

(१०) शौच-स्नान आदि के पश्चात् कुछ टहलें या दौड़ें अवश्य। पेट के लिए टहलने और दौड़ने से बढ़कर कोई कसरत नहीं है। प्रातः का घूमना अत्यन्त लाभ-प्रद है पेट के लिए। अँगरेजी कहावत भी आपने सुनी ही होगी 'After dinner vest a while, after supper walk a mile'

दस छोटे-छोटे नियम हैं। उनका पालन करें। (१) नियत समय पर भोजन करो। (२) अधिक भोजन न करो। (३) शुद्ध स्थान में पवित्रता से भोजन करो (४) भोजन के पात्र ढंके हुए और साफ हों। (५)१० बजे रात को सोना, ४ बजे प्रातः उठना। (६) भोजन काफी चबावे (७) भोजन करते समय क्रोध आदि न करे(८)भोजन के बाद आधा तोला गुड़ खायें ९) स्नान के पूर्व और भोजन के बाद पेशाब करें बाएँ करवट से लेटने से भोजन पचता है।"

मैंने पहले कहा था कि कब्ज सभ्यता का रोग है। ९९ प्रतिशत लोग इसमें फँसे रहते हैं। और लुत्फ तो यह है कि कब्ज को लोग रोग ही नहीं समझते। कब्ज के कुछ कारण ध्यान देने योग्य हैं। (१) पैखाना; पेशाब का मारना (२) काफी कसरत न करना (३) अधूरी साँस लेना (४) चलने-फिरने की आदत छोड़ना (५) कम पानी पीना (६) अयुक्त भोजनकरना (७) अधिक मांस, दूध, सफेद चीनी, मैदा, बारीक आटा तथा अन्य श्वेत सारमय चीजों का अधिक मात्रा में प्रयोग (८) भूख से अधिक खाना (९) बँधे समय शौच न जाना (१०) रेचक दवाइयों का प्रयोग (११) चौबीस घण्टे में एकही बार शौच जाना (१२) तम्बाकू, शराब आदि का प्रयोग (१३) तथा दवाइयों का अधिक प्रयोग आदि :—

याद रखिए:--(१) आमाशय मे पाचन में ३-४ घन्टे लगते हैं। एक भोजन करने के ५-६ घण्टे तक दूसरा भोजन न करें(२)साधारण तथा किया हुआ भोजन तरल अवस्था मे १६घन्टे बाद बड़ी आतों में पहुँचता है (३) २० या २४ घन्टे में मल का कचरा आँतों में न रहे (४) जितने बार भोजन करे उतनी बार पैखाने जाय (५) कम बार शौच जाना, २४ घण्टे में एक बार भी शौच का न होना, मल की मात्रा का कम होना, नमी की कमी होना—यह चिह्न कब्ज के द्योतक हैं। कब्ज छोटी आंतों का भी हो सकता है और बड़ी आँतों का भी (६) शौच को बाहर करने की शक्ति स्नायु तथा माँस पेशियों की शक्ति पर निर्भर है (७) मल मार्ग का ठीक न होना, बवासीर भगन्दर आदि भी कब्ज के कारण हैं (८) मल सम्बन्धी किसी भी गड़बड़ी से कब्ज रहता है।

आप विश्वास करें कब्ज की दवा है ही नहीं। डाक्टर, वैद्य तथा हकीम तो आपको दवा देकर अपने पैसे सीधे करेंगे ही। पर उसका इलाज प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा ही सम्भव है। निम्नलिखित बातों पर ध्यान दो:--(१) अधिक जल पियो—सोते समय, जागने पर भी (२) चाय मत पियो (३) भाप से उबाली पालक और हरी तरकारी आदि खाओ (४) सेव, नासपाती तथा मौसमी फल खाओ (५) [illegible]

तैरने, घुड़सवारी, तेज चलने से कब्ज दूर होती है (६) पुराने रोगियों को कब्ज के मालिश जल-चिकित्सा से पेडू स्नान तथा wet pack विद्युत चिकित्सा से लाभ होगा (७) कब्ज पैदा करने वाले पदार्थ माँस, अण्डा, दूध, चीनी, गुड़, मैदा, बादी और देर से हज्म होने वाली वस्तुओं, प्रत्येक प्रकार के प्रोटीन और श्वेत सार के अधिक प्रयोग आदि का त्याग (८) रेचक पदार्थों के प्रयोग का त्याग (९) सन्तरा, अँगूर, हरी तरकारियों, टमाटर, ककड़ी, गाजर, प्याज, पालक, शहद, नीबू, मखनिया, दूध, मठा आदि का अधिक प्रयोग (१०) मेल वाले भोज्य पदार्थों का प्रयोग (११) पेट का आसन,व्यायाम,प्राणायाम,गहरी साँसें आदि की उपयोगितासमझें(१२)पैखाना,पेशाब नरोकें १३)प्रोटीन और श्वेत सार जितना खाना हो उसका आधा करदे तथा फल तरकारी बढ़ा कर दुगनी-तिगुनी करदे (१४) बँधे समय पर शौच(१५)भोजनोंके बीच में पर्याप्त पानी पियें।

केवल एक चीज में काफी मतभेद विद्वानों में है पाठकस्वयं अपने ऊपर परीक्षा करके जो उन्हें लाभप्रद प्रतीत हो करें। अधिकतरलोगों का कहना है कि भोजन के साथ या बाद में पानी न पियें। जल भोजन करनेके दो-तीन घण्टे बाद नहीं तो एक घण्टे बाद पियें। अन्यथा पेट में कीचड़ हो जाती है और भोजन ठीक से पच नहीं सकता। कुछ लोगों का कहना है कि भोजन के मध्य में तो नहीं पर भोजनोपरान्त तुरन्त अवश्य थोड़ा सा जल पियें। कुछ वैद्य तो भोजन के मध्य में जल का पीना अत्यन्त आवश्यक बताते हैं। अतः इस बात का निर्णय मैं विद्वान पाठकों पर छोड़ता हू किन्तु मेरा तो विश्वास यही है कि भोजनके बाद एक घन्टे जल न पियें। अभ्यास से यह सम्भव है। यदि न रहा जाय तो भोजनोपरान्त थोड़ा सा जल पिलें किन्तु भोजन के बीच-बीच में कभी जल न पियें। अँग्रेजी की कहावत Drink your food and eat your water' समझाने की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि विद्वान पाठकगण जानते ही हैं इसके अर्थ।

सप्ताह में एक बार उपवास या एकादशी, प्रदोश, अमावस्या तथा पूर्णमासी आदि के व्रत भी कब्ज के शत्रु हैं।

परलोक में मन का महत्व

श्री गोपीवल्लभजी उपाध्याय

सेवा और प्रेम की साधना

तुमलोगों को पृथ्वी पर नवीन-नवीन ज्ञान प्राप्त कर अपने आपको परलोक के लिए तैयार करना चाहिए सेवा और प्रेम ही उसके उपाय है बात तो यह अत्यन्त साधारण सी प्रतीत होती है। किन्तु तुम यह जानना चाहोगे कि पृथ्वी पर किस प्रकार का आचरण करने से सुविधा हो सकती है? कल्पना करो कि किसी को अन्न कष्ट हो रहा है; तो उस दशा में तुम क्या करोगे? यदि यथार्थ में ही सेवा करना चाहो तो अपने लिए प्रस्तुत भोजन की थाली उसे देदेना होगी! ऐसे अवसर पर यही सेवा हो सकती है। इसी प्रकार अन्य अनेक रूप में सेवा की जा सकती है। अन्न वितरण की अपेक्षा ज्ञान-वितरण विशेष महत्व की सेवा कही जा सकती है।

क्योंकि जो लोग अज्ञान एवं मूढ़ हैं उनकी आँखें कभी खुल नहीं सकतीं। वे चिरकाल तक अन्धे बने रहते । इसीलिए धर्माधर्म, पापपुण्य, अच्छी-बुरी किसी बात का ज्ञान उन्हें नहीं रहता, उसका तो जीवन नष्ट हो जाता है। अतएव उसे विद्या दान करना महत्वपूर्ण कार्य हो सकता है।

इसी प्रकार अनेक रूपों में तुम जन सेवा कर सकते हो केवल यही देखना चाहिए कि तुम्हारा मन अपनी ही ओर न ताकता रहे, उसे तो सदैव दूसरों की ओर ही देखने में लगाये रखो। अपने सुख-दुःख की ओर ही मन को पूर्ण रूप से न लगाये रखकर उसको विशेष रूप से दूसरों के लिए ही प्रवृत्त रखो। यदि ऐसा कर सके तो मनका उत्कर्ष स्वयमेव सिद्ध होने लगेगा। तुम्हारा मन स्वयं ही विशाल, विस्तृत एवं विश्वव्यापी हो जायगा। इसी का नाम जन-सेवा है। अर्थात् सदासर्वदा मन में परोपकार का भाव रखो। लोक दिखावे के लिए नहीं, वरन् सच्चे रूप से उपकार करने के लिए। यदि तुम्हारे पास द्रव्य है तो उसे अच्छे कार्य में लगाओ। अपने लिए तोउसका उपयोग करो ही, किन्तु उसका यथेष्ट भाग परोपकार में व्यय करो। दूसरों को अपना बनाना ही सेवा का मूल मन्त्र है। अपने स्त्री-पुत्रादि को भुला देने की बात मैं नहीं कहता। उनकी भी उसी प्रकार यथोचित् सेवा करो जैसी कि तुम अपने पड़ौसी, अपने ग्राम, नगर या देश की सेवा करते हो। मन में यह भावना दृढ़ रखो कि तुम पर जितना इनका दायित्व है, उतना ही दूसरों का भी है। इसलिए दूसरे किसी को उससे वञ्चित न करो। यदि ऐसा किया गया तो तुम्हारे सेवा व्रत पर कलंक लग जायगा। साथ ही तुम्हारे मन की शक्ति भी क्षीण हो जायगी। उस दशा में मन को नवीन शक्ति प्रदान करने के लिए तुम्हें अत्यधिक साधना करनी पड़ेगी। जन-सेवाव्रत को अपने दायित्व से मुक्त होने का व्रत बनाने से काम नहीं चलेगा। यह तो होगा तुम्हारे जीवन वेद का मन्त्र। और नित्य का सङ्गी। किन्तु यह बातें तुम्हारे लिए असाध्य कोटि की नहीं बतलाई जा रही है। क्योंकि साध्य होने पर भी यदि तुम मन में यह कल्पना करलो कि वह असाध्य है, तो उसे कर सकने का सामर्थ्य तुम में नहीं हो सकता। अतएव मन मे इस प्रकार की भावना कर लेना केवल आत्म प्रवञ्चना ही कहा जायगा।

यदि तुम लेखक हो और प्रसिद्ध लेखक हो, तो संसार को ऐसी वस्तु भेंट करो जिससे वह धार्मिक बने, शक्तिशाली बने, महान् बन सके। तभी इस दिशा में तुम्हारी सेवा आरम्भ हो सकेगी। यदि ऐसा न करके तुमने अपनी शक्ति का अपव्यय किया और केवल दो पैसे के लोभ से तुम, निकम्मी पुस्तके लिखते रहे, तो यह सब स्वार्थ के लिए तुम्हारी शक्ति का दुरुपयोग ही कहा जायगा। स्वार्थ के लिए तुम अपनी शक्ति को पाठकों के नैतिक पतन में लगा रहे हो। अर्थात् तुम्हारी वह सेवा अत्यन्त दूषणीय कही जायगी। तुम स्वयं भी घृणित एवं दूसरों को भी वैसा ही बनाना चाहोगे। उस दशा में तुम मानव-समाज के निश्चय ही शत्रु ही सिद्ध होंगे।

इस दृष्टि से विश्लेषण करने पर दिखाई देगा कि अवस्था विशेष में ही सेवा के नाम भी भिन्न-भिन्न होजाते हैं। हम जिस रूप में सेवाव्रत को प्रचलित करना चाहते हैं, तुम्हें उससे भी अधिक मात्रा में उस व्रत को पालन कर उसका उद्यापन करना चाहिए। क्योंकि इसमें छोटे बड़े या न्यूनाधिक का विचार नहीं। जो कुछ भी कर सको; वही सही। केवल निस्वार्थ भाव से करो। सम्पूर्ण व्रत का फल निःसकोच भगवान के चरणों में अर्पण करो। तुम केवल कर्म करने के अधिकारी हो, अन्य किसी बात पर तुम्हारा अधिकार नहीं। यदि मन में फल पर अपना अधिकार होने की कल्पना की, तो तुम्हारा कार्य विफल हो जायगा। और उसके इष्टसिद्ध के लिए यदि तुमने इच्छा की, तो तुम अपने को आपही शृङ्खला से बद्ध कर लोगे।

अतएव पृथ्वी पर रहने हुए दृढ़-बन्धन को काटना ही तुम्हारी साधना होनी चाहिए। नवीन बन्धन

पहनने की व्यवस्था होने पर वह तुम्हारी पापमति का परिचायक होगा। यहाँ रहते हुए ऐसी मति होने से यहाँ आने पर तुम्हें सर्वत्र अन्धकार दिखाई देगा। सारांश, मनके द्वारा ही सब कुछ बनाया और बिगाड़ा जा सकता है। अच्छा भी और बुरा भी। उसी मनके तुम भी अधिकारीहो, अर्थात् वह शक्ति तुममें वर्तमान है। यदि इच्छा करोगे तो तुम दानव निर्माण कर सकते हो, और देवताकी भी सृष्टि कर सकते हो। तुम्हें एक घड़ी की देर नहीं लगेगी।

सारांश, तुमप्रतिदिन्भगवान से प्रार्थना करते रहो कि हे दयामय,हमें अमुक वस्तु दो, हमें धनरत्नादि दो, भोज्यपयोदि दो। और अन्त में इन सब वस्तुओं में से कुछ तुम्हें मिल भी जाती हैं। उस समय तुम यह सोचते हो कि यह सब तुम्हारी प्रार्थनाके बल पर हुआ है और भगवानने अञ्जलि भर कर तुम्हारी प्रार्थित वस्तु प्रदान की है। किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है, उन्होंने तुम्हें एक दाना भी नहीं दिया। तुम्हारे मन में ही वह सब विद्यमान था। और गम्भीर भाव से उस प्रकारकी प्रार्थना करते-करते तुम्हारे मन के भाव ही मूर्तिमान बन कर 'वर' रूप में तुम्हारे सामने उपस्थित हो गए। अतः जो कुछ चाहते हो उसके लिए आकुल होकर प्रयत्न करने से अपने मन के बल पर वह सब प्राप्त कर सकोगे।

हम तो यहाँ प्रतिक्षण ही इस प्रकार अनेक वस्तुओं की सृष्टि करते रहते हैं। अनेक प्रकार के पत्र-पुष्प, पक्षी, लता वृक्षादि अपनी मानसिक शक्ति के बल पर निर्माण करते हैं। किन्तु जिनमें इतनी शक्ति नहीं होती, वे ऐसी वस्तुओं की रचना नहीं कर सकते। सभी स्तर के आत्मिकों में मन के शक्ति भेद से इस प्रकार सृष्टि वैचित्र्य घटित होता है। इसीलिए यहाँ आनेपर वे समझ लेते हैं कि ऐसे सुन्दर स्थानको छोड़कर पृथ्वी परफिर से कौन आने की इच्छा करेगा? किन्तु जिनका मन उन्नत नहीं बन सका है, वे यहाँ आने पर इसस्थान को दुःखमय अनुभवकरते हैं। यदियहाँसे भाग जानेका उपाय होता तो अवश्य दौड़ लगाते। किन्तु उपाय न होने से वे बेचारे विवश होकर यहाँ रोते रहते हैं किन्तु कोई दयालु महात्मा इस बात को जान लेने पर उसके मन की उन्नति का साधन करने में तत्पर हो जाते हैं और कुछ दिनों की शिक्षा के बाद उस मृतमना आत्मिक को फिर चैतन्य बना देते हैं। तब उसे यहाँका सब कुछअच्छा लगना आरम्भहो जाता है। वह भी हम सब की तरह पत्र पुष्प, लता-वृक्षादि देखने लगता है और उन्हें देख कर तृप्ति लाभ करता है। इसे तुम केवल काल्पनिक मत मान लेना। तुम्हारी पृथ्वी पर भी ऐसा हो सकता है। क्योंकि कई लोगों की दृष्टि में पृथ्वी से बढ़ कर सुखदा स्थान और नहीं है, तो कई उसे दुःखमय भी मानते हैं; किन्तु ऐसा क्यों होता है? केवल मन की शक्ति और भावना के कारण ही। यह बात तो तुमने पहले भी सुनी होगी; किन्तु उसके रहस्य को तुम नहीं समझ सके होगे। अथवा जानने पर भी तुमने समझने का प्रयत्न नहीं किया होगा। क्योंकि यदि क्षणभर के लिये बिजली चमककर तुम्हारे मन पर प्रकाश भी डाले तो तुम उस प्रकाश में अपना मार्ग खोजने का यत्न न कर आखें मूँद लेते हो। समय और सुविधा सभी हस्तगत होने पर भी खो देते हो। किंतु इससे काम नहीं चल सकता। प्रकाश तो मन पर सदैव पड़ता ही है। महा पुरुषों की वाणी और उनकी जीवनी निरन्तर आलोक प्रदान करती रहती है। कर्मवीरों की कथा और कर्म का इतिहास भी निरन्तर आलोक संपात करता ही है। किंतु जब कोई कठिनाई बाधक जान पड़ती हो; तब उसके दूर होने पर ही मन पर अभिज्ञता का प्रकाश पड़ता है। फिर भी उसे कितने व्यक्ति देख पाते है? ठोकर खाकर भी तुम सावधान नहीं होते केवल नेत्र युक्त अन्धों की तरह टटोलते हुए आगे बढ़ते हो। चलना है-इसलिये चले जा रहे हो। सन्मार्ग कोनसा है और कांकटमय पथ कोनसा? यह भी नहीं समझते।—

यह भारवाही पशु की तरह भेड़िया धसान है। अतएव यदि इसे छोड़कर पृथ्वी और परलोक में सुख चाहते हो। शांति और तृप्ति और भगवान की कृपा

चाहते हो, तो सच्चे सेवक बनने पर सब पा सकते हो। तुम अपने आपको पृथ्वी के समस्त जीवों की माता के रूप में मानकर खाने-पीने को दो और उन्हें मनुष्य समझकर अपना सर्वस्व देने में भी संकोच न करो। उनके मुख पर प्रसन्नता देखकर तुम्हारा मातृ हृदय हर्ष से नाच उठे। जब तुम्हारा मन इस प्रकार का बन जाय; तभी समझो कि उसकी शक्ति अपराजेय हो गई है। वह मन जो कुछ चाहता है वही पा लेता है। उसके मार्ग को कोई रोक नहीं सकता और न उसकी इच्छा को ही विफल कर सकता है। वह कर्मवीर-धर्मवीर बन जाता है और प्रेम की गंगा यमुना बहाने लगता है। वह भगवान का सच्चा सहचर बन जाता है—सच्चा सेवक—सच्चा दास! केवल पत्र पुष्प से पूजा या उपवास करने आदि से धर्म नहीं होता। प्रत्येक समय अपने मन को तौलते रहो। दूसरों से तुलना करने पर समझ सकोगे कि तुम कहाँ थे और कहाँ आ पहुंचे हो। वेद-उपनिषद अत्यन्त मूल्यवान अवश्य हैं; किन्तु उनके आधार पर कोई घर-संसार नहीं चला सकता। क्योंकि वे [illegible] दिखावे की वस्तु बन गये हैं सभा समितियों में तथा लेख-व्याख्यानादि में उनकी आवश्यकता होती है। जहाँ पाण्डित्य दिखाने की आवश्यकता होती है। वहीं उनका उपयोग होता है। आज वे जीवन के सहचर नहीं रह गये हैं। अतएव दिखावे को छोड़कर आँखें खुली रखते हुए अपने आपको देखो कि तुम कहाँ हो? इस प्रकार अपना आचरण-[illegible] पर तुम देखोगे कि उपनिषदों की वाणी तुम्हारे जीवन में, कर्म और विचारों में—यहाँ तक की तुम्हारे सर्वग्रासी मन में स्वयमेव फलित होने लगती है, जिससे तुम्हारी [illegible] होना अनिवार्य है। अतएव सदैव कार्यरत रहो। और वह [illegible] होना चाहिये जगत के हितार्थ होना चाहिये। [illegible] गोविन्द को प्रणाम कर मुख से उच्चारण करो "जगद्धिताय गोविन्दाय नमोनमः॥ ॐ॥

आर्थिक सफलता के मानसिक सङ्केत

प्रो० रामचरण महेन्द्र एम. ए.

आप आर्थिक रूप से सफल होना चाहते हैं, तो समृद्धि के विचारों को बहुतायत से मनो मन्दिर में प्रविष्ट होने दीजिये। यह मत समझिये कि आपका सरोकार दरिद्रता, क्षुद्रता, नीचता से है। संसार में यदि कोई चीज सबसे निकृष्ट है तो वह विचार-दारिद्रय ही है। जिस मनुष्य के विचारों में दरिद्रता प्रविष्ट हो जाती हैं, वह रुपया पैसा होते हुए भी सदैव भाग्य का रोना रोया करता है। दरिद्रता के अनिष्टकारी विचार हमें समृद्धिशाली होने में रोकते हैं; दरिद्री ही बनाये रखते हैं।

आप दरिद्री, गरीब या अनाथ दीन [illegible] में रहने के हेतु पृथ्वी पर नहीं जन्मे हैं आप [illegible] भर अनाज या वस्त्र के लिए दासवृत्ति करते रहने को उत्पन्न नहीं हुए हैं।

गरीब क्यों सदैव हीनावस्था में रहता है? [illegible] प्रधान कारण यह है कि वह उच्च [illegible] पवित्र कल्पनाओं, स्वास्थ्यदायक [illegible] को नष्ट कर देता है; आलस्य [illegible] जाता है, हृदय को संकुचित [illegible] निराश बना लेता है। हीनावस्था [illegible]

जीवन ठहर सा जाता है, प्रगति अवरुद्ध हो जाती है, मनुष्य ऋण से दब कर निष्प्रभ हो जाता है, उसे अपने गौरव स्वाभिमान को भी सुरक्षित रखना दुष्कर प्रतीत होता है। दरिद्री विचार वाले असमय में ही वृद्ध होते देखे गये हैं। जो बच्चे दरिद्री घरों में जन्म लेते हैं, उनके गुप्त मन में दरिद्रता की गुप्त मानसिक ग्रन्थियाँ इतनी जटिल हो जाती हैं कि वे जीवन में कुछ भी उच्चता या श्रेष्ठता प्राप्त नहीं कर सकते। दरिद्रता कमल के समान तरोताजा चेहरों को मुर्झा देती है, सर्वोत्कृष्ट इच्छाओं का नाश हो जाता है। यह दुस्सह मानसिक दरिद्रता मनुष्य को पीस देने वाली है। सैंकड़ों मनुष्य इसी क्षुद्रता के गर्त में डूबे हुए हैं।

आर्थिक सफलता के लिए भी एक मानसिक परिस्थिति, योग्यता एवं प्रयत्न शीलता की आवश्यकता है। लक्ष्मी का आवाहन करने के हेतु भी मानसिक दृष्टि से आपको कुछ पूजा का सामान एकत्रित करना होता है।

दीपावली के लक्ष्मी-पूजन के अवसर पर आप घर झाड़ते, लीपते, पोतते, सजाते हैं। नई-नई तसवीरें, कलात्मक वस्तुओं से घर को चित्रित करते हैं, अपने शरीर पर सुन्दर वस्त्र और आभूषण धारण करते हैं। इसी भांति मानसिक पूजा भी किया कीजिये। अर्थात् मन के कोने कोने से दरिद्रता, गरीबी, परवशता, क्षुद्रता, संकुचितता, ऋण, के जाले विवेक की झाड़ू से साफ कर दीजिये; मानसिक पटल को आशावादिता की सफेदी से पोत लीजिये। मानसिक घर में आनन्द, आशा, उत्साह, प्रसन्नता, हास्य, उत्फुल्लता, खुशमिजाजी के मनोरम चित्र लगा लीजिये। फिर श्रम और मितव्ययता के नियमों के अनुसार लक्ष्मी देवी की साधना कीजिये। आर्थिक सफलता आपकी होगी। सब विद्याओं में शिरोमणि वह विद्या है जो हमें कुत्सित और निकृष्ट विचारों से मन को साफ करना सिखाती है।

परम पिता परमात्मा की कभी यह इच्छा नहीं कि हम आर्थिक दृष्टि से भी दूसरों के गुलाम बने रहें। हमें उन्होंने विवेक दिया है, जिसे धारण कर हम उचित अनुचित खर्चों में अन्तर समझ सकते हैं, विषय वासना और नशीली वस्तुओं से मुक्त हो सकते हैं; अपने अनुचित खर्चे, विलासिता और फैशन में कमी कर सकते हैं, घर में होने वाले नाना प्रकार के अपव्यय रोक सकते हैं। अपनी आय वृद्धि करना हमारे हाथ की बात है। जितना हम परिश्रम करेंगे, योग्यताओं को बढ़ायेंगे, अपनी विद्या में सर्वोत्कृष्टता (Ex ellence), मान्यता निपुणता प्राप्त करेंगे, उसी अनुपात में हमारी आय भी बढ़ती चली जावेगी। संसार में अन्याय नहीं है। सबको अपनी-अपनी योग्यता और निपुणता के अनुसार धन प्राप्त होता है। फिर क्यों न हम अपनी योग्यता बढ़ायें और संघर्षमें अपने आपको हरप्रकारसे योग्य प्रमाणितकरें।

श्री ओरिसन मार्डन ने अपनी पुस्तक "शान्ति, शक्ति, और समृद्धि' (Peace, Powea & Planty) में कई आवश्यक तत्वों की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए लिखा है—

"विश्व के अनेक दरिद्री लोगों के कारण को खोजो तो पता लगेगा कि उन्हें आत्म विश्वास नहीं, उन्हें यह श्रद्धा नहीं है कि वे दरिद्रता से छुटकारा पा सकते हैं। हम गरीबों को बताना चाहते हैं कि वे ऐसी कठोर स्थिति से भी अपने आप को उन्नत बना सकते हैं। सैंकड़ों नहीं प्रत्युत: हजारों ऐसी स्थिति में उन्नत धनवान् बने हैं और इसलिए हम कहते हैं कि इन गरीबों के लिए भी आशा है। दुर्धर्ष परिस्थिति को बदल सकते हैं। संसार में आत्म विश्वास ही ऐसी कुञ्जी है कि सफलता का द्वार खोल देती है।

प्रकृति ने मनुष्य को ऊपर देखने की आज्ञा प्रदान की है नीचे की ओर नहीं। मानव जन्म ऊपर चढ़ने के लिए हुआ है, नीचे गिरने के लिए नहीं।

दरिद्रता वास्तव में मानसिक रोग है इस रोग से प्रयत्न करने पर प्रत्येक व्यक्ति छुटकारा पा सकता है। एक गरीब युवक ने अमीर बनने के लिए अपनी आत्मा और योग्यता पर भरोसा करना प्रारम्भ किया। उसने निश्चय किया कि उसके अन्दर वह योग्यता-शक्ति विद्यमान है जिसके द्वारा मनुष्य संसार में नामांकित होते हैं। वह निरन्तर अपनी शुभ्र कल्पनाओं को साकार रूप देता गया। और सफलता के उच्चतम शिखर पर पहुंच गया।" आशा, हिम्मत और सतत उद्योग के उत्पादक और उत्साही वातावरण में रहने से प्रत्येक मनुष्य समृद्धिशाली बन सकता है।

आध्यात्मिक मण्डल, उज्जैन सी. आई.

की

निम्नलिखित शाखाओं में मानसिक, आध्यात्मिक एवं प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा मुफ्त इलाज होता है :—

स्थान	प्रबन्ध और प्रचारक

१ कोटा ः राजपूताना , श्रीयुत् पं. नारायणरावजी गोविंदजी नावर, प्रोफेसर ड्राइंग हरबर्ट कालेज

२ हींगनघाट (सी पी)—आयुर्वेदाचार्य शोभालालजी शर्मा।

३ उदयपुर (मेवाड़) संचालक पं. जानकीलालजी त्रिपाठी, श्रीमान पं. यमुनालालजी दशोरे बी० ए० एल० एल० बी० सेशन जज अध्यक्ष

४ खरगोन (मालवा प्रांत) श्री गोकुलजी पंढरीनाथजी सराफ मन्त्री आध्यात्मिक मंडल

५ अजमेर (राजपूताना) पं सूर्यभानुजी मिश्र, रिटायर्ड टेलीग्राफ मास्टर, रामगन्ज।

६ नसीराबाद (राजपूताना)-चांदमलजी बजाज।

७ चित्तौड़ मेवाड़ श्री लाभेन्द्रजी शुक्ल वकील।

८ नैरोबी (ब्रि. ई. अफ्रीका) प्रो जी. एम शर्मा साहब, श्री हनुमान योग प्रचारक आश्रम

९ मिट्टी मेरी (देहरादून प्रो. प्रेमनगर)-महावीर प्रसादजी त्यागी।

१० खरगुआ स्टेट (सी. पी) लालजीप्रसाद गुप्त।

११ रतलाम (मध्यभारत)-साहित्यभूषण पं. बालचन्द्रजी उपाध्याय, एलंट कोआपरेटिव बैंक

१२ नाथद्वारा मेवाड)-घनश्यामदासजी सांचोरा।

१३ नेपाल धर्मसनिधी, याहीरधुरीख, डा. दुर्गाप्रसादजी भट्टराई, डो. डी दिल्ली बाजार।

१४ सोनायखुर्द (कन्हाया अकोदिया मन्डी) स्वामी गोविंदानन्दजी।

१५ धार (सी. आई. -श्री योगेश रामचन्द्र देशपांडे; निसर्ग मानसोपचार आरोग्यभवन धार।

१६ खंभात (cambay) श्री लल्लूभाई हरजीवनजी पंड्या।

१७ राघवगढ़-ब्यावरा (सी आई) श्री हरि ॐ तत्सत्जी।

१८ केकड़ी (अजमेर) पं किशोरीलालजी वैद्य तथा मोहनलालजी राठी।

१९ बुढ़वल (ओ टी. आर. जिला बाराबंकी) पं रामशंकरजी शुक्ल बुढ़वल शुगर मिल

२० इन्दौर—श्री बाबू नागरमलदासजी सिंहल बी ए, एलएल. बी श्री सेठ जगन्नाथजी की धर्मशाला संयोगितागन्ज।

२१ बून्दी (कोटा)-पं. निरंजनलालजी शर्मा श्रीजी के मंदिर के पास।

व्यवस्थापक व प्रकाशक— डा० बालकृष्ण नागर कल्पवृक्ष कार्यालय उज्जैन म० भा०
मुद्रक—मोहनप्रिंटिंग प्रेस, माधवनगर उज्जैन।

वर्ष ३३ } KALPA-VRIKSHA { नव०-दि० १९५९
[illegible]या ३-४ } A MAGAZINE OF DIVINE KNOWLEDGE { मं०२०१६ वि०

विचार बल से रोग दूर करना—स्व० सन्त नागरजी ... १
वेद विज्ञान सुधा (५)—श्री पं० रणछोड़दास जी 'उद्धव' ... २
सदाचार और ईश्वर भक्ति—श्री स्वामी विष्णुतीर्थ जी महाराज ... ४
अपना कर्तव्य समझो—आचार्य श्री नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थ ... ६
समाधि—स्व० प० शिवदत्त जी शर्मा ... ८
नैतिकता की अवहेलना—प्रो० लालजीराम शुक्ल एम० ए० बी० टी० ... ९
व्याधि क्यों होती है ?—प्रो० एल० जी० नाबर साहब ... १३
हमारी नयी भारतीय सभ्यता की प्रगति—श्री विश्वामित्र वर्मा ... १८
परलोक में मन का महत्व—पं० गोपीवल्लभ जी उपाध्याय ... २१
अनुभूति के लिए—श्री सुदर्शन सिंह जी ... २४
नदी स्नान—डॉ० लक्ष्मीनारायण जी टण्डन, एम० ए० ... २५
व्यवहार में आध्यात्मिकता लाइये—प्रो० रामचरण जी महेन्द्र, एम० ए० ... २७
स्वर्ण-सूत्र—मौन भावना ... कवर के दूसरे पृष्ठ पर

सम्पादक—गोलकृष्ण नागर

स्वर्ण-सूत्र

मौन भावना

मैं प्रण करता हूँ कि अपनी संचित शक्ति को व्यर्थ की थोथी बातें करने में व्यय न करूँगा। मैं जानता हूँ कि मौन में शक्ति है। मैं समझता हूँ कि केवल जिह्वा को बन्द रखना ही यथार्थ मौन नहीं है, यथार्थ मौन तो मन को शान्त रखना है। मैं वलिष्ठ हूँ, शान्त हूँ और मौनी हूँ। जब कभी मैं बोलूँगा तब किसी अर्थ और उद्देश्य से बोलूँगा। मैं ऐसे वचन मुख से कभी नहीं निकालूँगा जिनसे दूसरों को दुःख पहुँचे या हानि हो। मैं सच्चिदानन्द परमात्मा के चिन्तन में तल्लीन रहता हूँ।

मैं किसी के द्वारा सताये जाने पर भी चुप रहूँगा, मैं कभी उत्तेजित न होऊँगा। मैं मौन और शान्ति की असीम शक्ति का साधक हूँ। मैं अभिमान, अहंकार इत्यादि अशान्ति के संचारक प्रभावों को अपने हृदय से निकाल देता हूँ।

मौन से मेरे जीवन में नवीन शक्ति और जीवन का नित्य संचार हो रहा है।

नित्य प्रातः उठते समय और रात्रि को सोते समय मौन भावना के अभ्यास का निश्चय कीजिए, और दैनिक जीवन में व्यवहार कीजिए।

संस्थापक
स्वर्गीय डॉ० दुर्गाशङ्कर नागर

सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥ गीता ॥

वर्ष ३३ } उज्जैन, नव०-दिस० सन् १९५४ ई०, सं० २०११ वि० { संख्या ३-४

विचार बल से रोग दूर करना

स्व० सन्त नागर जी

प्रत्येक मनुष्य में अपने और दूसरे के रोग दूर करने का, दुर्बल शरीर को बलवान् बनाने का, अपने और दूसरों के दुर्गुण एवं दुर्व्यसन मिटाने का अद्भुत सामर्थ्य है। गुप्तमन बड़ी प्रबल शक्तिवाला है। इसे प्रकट मन की आज्ञा में चलना पड़ता है। मानसिक चिकित्सा द्वारा यह शक्ति स्वयं जाग्रत की जा सकती है, या अन्य व्यक्ति चिकित्सा द्वारा जाग्रत कर सकता है। प्रत्येक स्त्री पुरुष में अपने रोग निवारण करने की शक्ति, गुप्त रूप से मस्तिष्क में वर्तमान रहता है। भय और शङ्का से सारे शरीर में जड़ता छा जाती है।

शोक द्वेष ईर्षा क्रोध और घृणा के विचार मस्तिष्क के विद्युत प्रवाह संचार में रुकावट पैदा कर देते हैं जिससे विद्युत् प्रवाह रुग्ण स्थान में उचित वेग से संचार नहीं करता और उस स्थान में रक्त आवश्यक परिमाण में नहीं पहुँचता। ज्ञान तन्तुओं, नसों नाड़ियों में, अणु अणु में संचार करने वाला विद्युत प्रवाह मस्तिष्क में अटूट भरा हुआ है। रुधिर ही प्राणियों का जीवन है। रक्त द्वारा ही शरीर के सब भागों का पोषण, वृद्धि एवं रचना होती है। रक्त का पोषण न मिले तो शरीर का कोई

की गति मन्द पड़ने से शरीर के सभी अवयवों का व्यापार शिथिल हो जाता है और कोई व्याधि उठ खड़ी होती है। और जब तक रुधिर की गति मन्द रहती है तब तक रोग बना रहता है। कई ऐसे मनोविकार हैं जिनका मन में विचार करने से हृदय की गति तेज या मन्द पड़ जाती है।

एक मानसिक भाव गालों को गुलाबी बना देता है, दूसरे से शरीर एकदम पीला पड़ जाता है। पाचन-क्रिया पर मनोविकार का अत्यन्त प्रबल प्रभाव होता है। दुःखदायक दृश्य देखने या उसका स्मरण मात्र करने से भूख की रुचि नष्ट हो जाती है। शोक-समाचार सुनने से पाचन-शक्ति नष्ट और भूख मन्द हो जाती है। क्रोध, चिड़चिड़ापन और अप्रसन्नता से मन्दाग्नि रोग होता है, मल मूत्र साफ नहीं होता। भय और द्वेष से मुँह का स्वाद बिगड़ जाता है। निराशा और चिन्ता से पेट की आँतें बिगड़ जाती हैं। गिरी हुई मानसिक दशा के कारण क्षय रोग बड़ी प्रबलता से उत्पन्न होता है। घृणा और बदला लेने के भावों से मस्तिष्क के तन्तु बिगड़ जाते हैं, पागलपन तथा अन्य कई मानसिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

अगम्य गुरु परमहंस टायगर महात्मा ने अपनी विलायत यात्रा में संकल्प बल से अपने हृदय की धड़कन बिलकुल बन्द करके लन्दन के सुप्रसिद्ध डॉक्टरों की सभा में प्रयोग बतलाकर सबको चकित कर दिया था। इससे आप जान सकते हैं कि शरीर के अवयवों पर मन का कितना आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ता है। विचारों के साथ नाड़ी चक्रों का घनिष्ट सम्बन्ध है। हमारी मानसिक स्थिति के अनुसार ही शरीर की रचना होती है।

अमेरिका में एक महाशय विलियम हृदय रोग से पीड़ित थे। बड़े बड़े डॉक्टरों द्वारा इलाज होने पर भी उनकी प्रकृति में कुछ भी सुधार नहीं हुआ। डॉक्टरों ने उन्हें बिस्तर पर लेटे रहने की सलाह दी, आहार के लिए काँजी नाम का बहुत हलका पदार्थ दिया जाता था। जिस होटल में विलियम रहता था उसमें आग लगने लगी, लोग अपना अपना सामान लेकर भागने लगे। यह सब देखकर विलियम को अपने जीवन रक्षा और सामान बचाने का विचार उत्पन्न हुआ। इस विचार से उसमें तुरन्त बल उत्पन्न हुआ, और अपना सामान उठाकर सात मंजिले होटल पर से सात बार नीचे उतरा चढ़ा उस दिन उसके स्वास्थ्य में विलक्षण परिवर्तन हो गया। जो हलका पदार्थ नहीं पचा सकता था वह भारी पदार्थ पचाने लगा।

इस विषय तथा अन्य महत्वपूर्ण विवरण के लिए स्व० सन्त नागर जी द्वारा लिखित पुस्तक "प्राण चिकित्सा" देखिए। मूल्य २)

वेदविज्ञानसुधा

श्री रणछोड़दास जी उद्धव

मोहन—प्रिय माधव ! उपनिषद् का क्या अर्थ है ?

माधव—मित्र मोहन ! उपनिषद् के तीन विभाग हैं—"१उप—२नि—३षद्" इन तीन विभागों का क्रम से १ उपपत्ति यानी संगति, २ निश्चय और स्थिति यह अर्थ है। जिस उपपत्ति ज्ञान के प्रभाव से जो कर्तव्यकर्म कर्तव्यदृष्टि से मनुष्य के हृदय में दृढ़मूल हो जाता है, वह उपपत्ति ज्ञान ही उस कर्तव्यकर्म की उपनिषद् है।

मोहन—किसी उदाहरण के द्वारा इस विषय को स्पष्ट करने की कृपा करिए।

माधव—जैसे "धनलोभी पश्चिमी राष्ट्रों के प्रबल वेग से बढ़ते हुए शस्त्रास्त्र-संग्रह को देखकर निकट भविष्य में ही महायुद्ध छिड़नेवाला है, इस लिए अभी से सस्ते भाव से वस्तुएँ खरीद लो।" युद्ध के कारण उन राष्ट्रों के साथ होनेवाला वस्तुओं का क्रय-विक्रय बन्द हो जाता है, अतः देशों का व्यापार शिथिल हो जाता है; इसीलिए वस्तुओं में महँगाई अवश्य होनेवाली है, अतएव लाभ होना स्वाभाविक है। युद्ध के समय लाभ क्यों होगा? इसकी यही उपनिषद् है। इस उपपत्ति से दृढ़निश्चयी बनकर व्यापारी उस कर्म में स्थित हो जाता है। इसीलिए छांदोग्य उपनिषद् में कहा है—"नाना तु विद्या चाविद्या च। स यदेव विद्यया करोति, श्रद्धया, उपनिषदा, तदेव वीर्यवत्तरं भवति।" (०।१।१।१०)

एक और उदाहरण सुनाता हूँ। हम किसी भी श्रेष्ठ व्रतादि कर्म के पहले तीन बार जल से आचमन करते हैं। उसे व्रतोपायनकर्म कहते हैं। उसका रहस्य सुनिए—श्रुतिसिद्धान्त के अनुसार देव सत्यसंहिता वाले हैं और मनुष्य अनृतसंहिता वाले हैं। "सत्यसंहिता वै देवाः अनृतसंहिता मनुष्याः" (शत० १।१।२) आत्मसृष्टि करनेवाली मन, प्राण और वाक् इन तीनों कलाओं में से मनःकला सब के भीतर है। अनृत यानी असत्यभाषण से विचार दूषित हो जाते हैं, भावना बिगड़ जाती है, इसी रहस्य को लक्ष्य में रखकर भीतर की पवित्रता के लिए—"तेन पूतिरन्तरतः" यह कहा गया है। अनृत संहित (झूठ बोलने का अभ्यासी) मनुष्य इसी अनृतभाव के कारण अमेध्य और अपवित्र बना रहता है। किसी दूसरे दिव्य संस्कार का मन के साथ संगम न होना ही मन की अमेध्यता है और दूषितभावों का समावेश होजाना ही अपवित्रता है। यज्ञकर्ता यजमान विधियुक्त यज्ञ के द्वारा दिव्यलोक के सौरदेवताओं का अपने आत्मा के साथ सम्बन्ध कराना चाहता है, परंतु अनृतमूलक अमेध्य और अपवित्र भाव के कारण उन देवताओं का संस्कार नहीं होता। इस दोष को हटाने के लिए ही मंत्र से पवित्र हुए पानी का आचमन किया जाता है।

पानी में दोनों गुण हैं। वस्त्र चिकना है, इसलिए वह अमेध्य और अपवित्र है। पानी चिकनाहट को दूर कर वस्त्र को पवित्र बना देता है। वस्त्र पवित्र हो गया, परन्तु अभी वह मेध्य-मिलनेवाला नहीं बना। इसमें वर्ण (रंग) संस्कार को ग्रहण करने की योग्यता नहीं हुई। इसके लिए भी पानी का ही आश्रय लेना पड़ेगा। वस्त्र को पानी में डाल दीजिए, उसी समय वह मेध्य (संगमनीय) होता हुआ, रंग-संस्कार को ग्रहण कर लेगा, रंग चढ़ जायगा। दोषमार्जन करने के कारण पवित्र और संस्कार-ग्रहण करने की योग्यता सम्पादन करने के कारण मेध्य गुण से युक्त पानी के आचमन से एवं मंत्रशक्ति के सहयोग से आत्मा अवश्य ही मेध्य और पवित्र हो जायगा।

मोहन—जब मिला लेने का और पवित्र करने का गुण पानी में है तो फिर मंत्रशक्ति के सहयोग की क्या आवश्यकता है? और केवल तीन आचमन के थोड़े से पानी से पूर्ण पवित्रतादि गुण कैसे हो सकेंगे? उसके लिए गहरे पानी का प्रयोग क्यों न किया जाय? तथा तीन बार आचमन क्यों किया जाता है?

माधव—मोहन! तुम ठीक पूछ रहे हो। साधारण अयज्ञिय और अमन्त्रक पानी कितना भी लिया जाय उसमें वह विशेषता कदापि नहीं है। है, परंतु बहुत थोड़े प्रमाण में। मननशक्ति युक्त मंत्रवाणी ही इस विशेषता को विकसित करने में समर्थ है। देवता तीनों कालों में सत्य हैं, इसलिए पानी का उपस्पर्श भी तीन ही बार किया जाता है। व्रतोपायनकर्म की यही उपनिषद् है।

मोहन—उपनिषद् का लक्ष्य क्या है ? अध्यात्मविद्याप्रतिपादक वेद के अंतिम भाग को ही उपनिषद् कहते हैं क्या ?

माधव—नहीं, गीता को भी गीतोपनिषद् कहते हैं। ब्राह्मणग्रंथो में और आरण्यकग्रंथों में "उपनिषद्" शब्द प्रयुक्त हुआ है—"तस्य वा एतस्याग्नेर्वागेव-'उपनिषत्'" (शत०ब्रा०१०।४।५।१) "अथ खल्वियं सर्वस्यै वाच "उपनिषत्" (ऐतरेय आरण्यक ३।२।५) इसलिए उपनिषद् शब्द केवल वेद के अंतिमभाग में ही रूढ़ है और अध्यात्मविद्यात्व ही इसका अवच्छेदक, भेदक या लक्ष्य है; यह मान बैठना निरी भ्रांति है।

उपनिषद्, आरण्य और ब्राह्मण इन तीनों की अभिन्नविषयता के कारण सुप्रसिद्ध शतपथ-ब्राह्मण में तीनों का समावेश देखा जाता है। १०० अध्यायों में विभक्त इसलिए शतपथ नाम से प्रसिद्ध इस ब्राह्मण के १४ कांड हैं। १३ कांडों में यज्ञकर्मों का निरूपण हुआ है, यही वास्तव में ब्राह्मणभाग है। चौदहवें कांड में आरण्यक और उपनिषद् का समावेश है। शतपथ ब्राह्मण का १४ वां काण्ड ही पृथकरूप से बृहदारण्यको पनिषद् नाम से प्रसिद्ध है। इन सब कारणों से विज्ञान सिद्धान्त को उपनिषद् का अवच्छेदक, भेदक या लक्ष्य मानना चाहिए।

मोहन—उपनिषद् का उक्त रीति से अन्य विद्वानों ने भी उपयोग किया है क्या ?

माधव—हाँ, महाभारत के सुप्रसिद्ध व्याख्याता नीलकण्ठ ने भी "एषा तेऽभिहिता सांख्ये" (गीता २।३९) इस श्लोक की व्याख्या में उपनिषद् शब्द के उक्त विज्ञानसम्मत अर्थ में ही अपनी सम्मति प्रकट की है। वे व्याख्या में लिखते हैं—"सांख्ये सम्यक् ख्यायते कथ्यते वस्तुतत्वमनयेति संख्या उपनिषत्। तत्र विदिते सांख्ये औपनिषदे ब्रह्मणि" (गी० नीलकण्ठी) भगवान् व्यास ने तो एक स्थान पर स्पष्ट ही विज्ञानदृष्टिका पूर्णरूप से समर्थन कर डाला है। उसमें लिखा है—

"वेदस्योपनिषत् सत्यं, सत्यस्योपनिषद्दमः।
दमस्योपनिषद्दानं, दानस्योपनिषत् तपः॥ १॥
तपसोपनिषत्त्यागस्त्यागस्योपनिषत् सुखम्।
सुखस्योपनिषत् स्वर्गं, स्वर्गस्यो पनिषच्छमः॥ २॥

(महाभा० शांति० मोक्ष० २५१।११-१२

व्यासदेव सत्य, दम, दान, तप, त्याग, सुख, स्वर्ग और शम भावों को उपनिषद् शब्द से कहते है। यदि प्राचीनों के मतानुसार उपनिषद् को केवल ईश, केनादि का ही वाचक मान लिया जाय तो उक्त व्यासवचन का कोई मूल्य ही न रहे। ईश, केन, कठादि उपनिषदों में कर्म और ज्ञान का मौलिक रहस्य ही प्रधानता से निरूपण किया है, इसलिए यह वेदान्त-समूह उपनिषद् शब्द से कहा गया है।

नित्यसिद्ध विज्ञानसिद्धान्त को ही 'उपनिषद्' कहते हैं। जिस मौलिक सिद्धान्त के आधार पर हमारा मन श्रद्धासूत्र द्वारा प्राप्तव्यतत्व के समीप निश्चयरूप से बैठ जाता है, दूसरे शब्दों में जिस तत्व के परिज्ञान से हमारा आत्मा उस प्राप्तव्य की ओर झुक जाता है, वही उस कर्म की उपनिषद् है। उपनिषद् पुस्तक का नाम नहीं है, वरन् विज्ञानसिद्धान्त ही उपनिषद् है। यदि किसी विषय का हमें विज्ञानसिद्धान्त मालूम हो जाता है अर्थात् उस विषय की उपपत्ति (मौलिक रहस्य) हम जान लेते हैं तो उसकी ओर हम आकर्षित हो जाते हैं। यज्ञोपवीत क्यों पहनना चाहिए ? इस क्यों का सम्यक् समाधान करनेवाला विज्ञानरहस्य ही यज्ञोपवीत की उपनिषद् है। जिसके लिए पाश्चात्य भाषा में 'प्रिन्सिपल' शब्द प्रयुक्त हुआ है, यावनी भाषा जिसे 'उसूल' कहती है, वही हमारी 'उपनिषद्' है।

मोहन—ईशादि उपनिषदों में किन विज्ञानरहस्यों का वर्णन है?

माधव—आत्मप्रपञ्चक रस और बल के ग्रथिबन्धन के तारतम्य से १ निर्विशेष, २ परात्पर, ३ अव्यय, ४ अक्षर, ५ आत्मक्षर, ६ विकारक्षर, ७ विश्वसृट्, ८ पञ्चजन, ९ पुरंजन, १० पुर और ११ प्रजापति भेद से ११ भागों में विभक्त हो जाता है। एक आत्मा का उक्त ११ रूपों में परिणत हो जाना ही विज्ञान है। उपनिषद्शास्त्र उद्देश्यरूप से भिन्न-भिन्न स्थलों में इन सभी नानारूपों का विशदरूप से वर्णन करता है।

सभी उपनिषदों में प्रधानरूप से 'अध्यात्मतत्व' का निरूपण किया गया है अर्थात् उपनिषदों में प्रधानरूप से जीवात्मा का ही निरूपण है। प्रज्ञापराध के कारण नित्यशुद्ध, नित्यबुद्ध और नित्यमुक्त ईश्वर के अंश अतएव तद्रूप जीवात्मा पर अविद्या, अस्मिता, रागद्वेष और अभिनिवेश इन अविद्यामूलक दोषों का आक्रमण होता है। इससे शुद्ध जीवात्मा भी मेघ से ढके हुए सूर्य के समान अज्ञान अँधेरे से आवृत हो जाता है। सभी उपनिषदें इन कारणमूलक अविद्याभावों को दूर करने का उपाय बतलाती हैं। उन उपायों के द्वारा जीवात्मा अपने आगन्तुक दोषों को हटाकर शुद्ध होता हुआ—

"यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति। एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम ॥" (कठ० २।१।१५

'जिस प्रकार शुद्ध जल में डाला हुआ शुद्ध जल वैसा ही हो जाता है उसी प्रकार, हे गौतम! विज्ञानी मुनि का आत्मा भी हो जाता है' इस सिद्धान्त के अनुसार उस कारण शुद्धव्यापक तत्व में लीन हो जाता है।

सदाचार और ईश्वर-भक्ति

स्वामी विष्णुतीर्थ जी महाराज

कुछ लोगों को कहते सुना जाता है कि ईश्वर-भक्ति से पाप धुल जाते हैं, इसलिए प्रायः यह धारणा ऐसे लोगों के हृदय में जो विचारशील नहीं है झट घर कर लेती है कि दुनिया को धोखा देते रहो, मद्यमांस का सेवन करते रहो, ब्रह्मचर्य की आवश्यकता नहीं, वह तो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है बस भगवान की भक्ति से सब क्षम्य हो जायगा, इसलिए थोड़ी देर मंदिर में जाकर भगवान के दर्शन कर आना, कभी कभी कीर्तन भजन में शामिल हो जाना, गिरजाघर में पादरी साहेब के सामने पापों की कहानी सुना आना, ५ बार या ७ बार नमाज़ पढ़कर क्षमा याचना कर लेना काफी है। ईश्वर सब पापों को क्षमा कर देंगे, और नहीं मानेंगे तो पैगम्बर साहब की सिफारिश से उसे मानना पड़ेगा। ईसा मसीह ने तो आने वाले सब पापियों को बचाने के लिए स्वयं को क्रॉस पर चढ़ाकर पहिले ही प्रायश्चित्त कर लिया है। इत्यादि इत्यादि धारणाएं हिन्दू, जैन, ईसाई सब में पाई जाती हैं। मानों सब धर्म पाप करने की खुली छूट दे रहे हैं। गीता में भी भगवान के वाक्य इस सम्बन्ध में बड़ी हिम्मत बढ़ाते हैं और पाप करने वालों को पासपोर्ट देते प्रतीत होते हैं। वाक्य इस प्रकार हैं—

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्। साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः। सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ॥

क्या धर्माचार्यों ने ईश्वर की उपासना,

मंदिर, मस्जिद, गिरजाघरों की रचना पापों पर परदा डालने के लिए की है ? गरीबों का खून चूस चूस कुछ भाग दान देकर दानी कहलाने, तिलक लगाकर भोली भाली जनता में भगत जी कहलाने, और हाथ में गोमुखी लटकाये इधर से उधर की लगाने वालों की कमी नहीं है। मैं तो यह समझने लगा हूँ कि ये सब अपने दुष्कृत्यों को छुपाने के लिए ढोंगाचारी हैं। आज का हमारा समाज ऐसे ईश्वर-भक्तों से भरा पड़ा है। ईश्वर-भक्ति का अर्थ ईश्वर को खुशामद द्वारा प्रसन्न करना नहीं है, वरन् ईश्वर की याद में सांसारिक वासनाओं से ऊपर उठकर ब्रह्मभाव की प्राप्ति करना है। इसीलिए कहा गया है कि 'देवो भूत्वा देवं यजेत'। मनोविज्ञान का सिद्धान्त है कि मनुष्य के जैसे विचार होते हैं, वैसा ही वह बन जाता है। उपासना का अर्थ है निकट रहना। सांसारिक विचार मनुष्य को संसार की गोद में ले जाते हैं और ईश्वर का प्रेम व चिन्तन ईश्वर से तादात्म्य करा देता है।

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

अर्थात्—दुनिया का अहंकार, पौरुष, दर्प, कामनायें, क्रोध और शरीर की आवश्यकता से अधिक सामान का संचय करना, इन सब को छोड़ने पर ममता रहित शान्त भाव में रहता हुआ मनुष्य ब्रह्मभाव को प्राप्त होता हो।

ऐसा मनुष्य पाप क्यों करेगा ? इसलिए सदाचार भक्ति का अनिवार्य रूप से पूर्वाङ्ग है, बिना सदाचरण के भक्ति नहीं हो सकती। यदि कीर्तनादि के प्रसङ्ग से क्षणिक कंठावरोधादि सात्विक भाव आ भी जाते हों तो भी वे दुराचारों में आसक्त मनुष्य को विशेष उन्नत नहीं कर सकते। भगवान तो यहाँ तक कहते हैं कि न मांदुष्कृतिनो मूढ़ा प्रपद्यन्ते नराधमा। अर्थात् मूढ़ नराधम दुराचारी जन तो निश्चय पूर्वक मेरी ओर प्रवृत्त भी नहीं हो सकते। भक्ति करना तो कोसों दूर की बात है। भगवान चराचर जगत में व्याप्त हैं, वे प्राणि मात्र के अन्तरात्मा हैं। जो मनुष्य निःस्वार्थ लोक हितार्थ अपनी दिन्यचर्या का लक्ष्य रखते हैं, वे भी ईश्वर की ही उपासना करते हैं। श्री भगवान ने कहा भी है—ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्व भूत हिते रताः। और जो ध्यान द्वारा हृदयस्थ ईश्वर को साक्षात करना चाहते हैं, उनको अपने हृदय से सब कूड़ा कचरा साफ करना चाहिए, अनेक प्रकार के कुत्सित विचारों, संकल्पों और वासनाओं की गंदगी में भगवान कैसे प्रकट हो सकते हैं। इसलिए शुद्ध अन्तःकरण और सदाचार दोनों ईश्वर की आराधना के अनिवार्य रूप से आवश्यक अंग हैं।

आत्म-निरीक्षण

अपना कर्तव्य समझो

आचार्य श्री नरदेवजी शास्त्री वेदतीर्थ

जब तुमको अपने शुभाशुभ कर्मफलों के अनुसार संसार में आना ही पड़ेगा, रहना ही पड़ेगा, फल भोगना ही पड़ेगा तब संसार से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं। संसार में ही रहना और संसार के कार्यों को यथावत् करते हुए, संसार से ऊपर उठे रहने में ही कल्याण है। संसार के सुख दुःखों के भयों से संत्रस्त होकर संसार से भाग खड़े होने में कायरता है। कायर पुरुष को भय और भी सताते रहते हैं। भीतर से भी भय और बाहर से भी भय। यदि बिना विवेक के संसार से भाग खड़े होगे, जंगल में चले जाओगे तो

तुम्हारी भीतरी वासनाएँ, तुम्हारे संस्कार वहाँ भी चैन से नहीं बैठने देंगे। रागी पुरुष को वहाँ भी राग सूझेंगे। यदि गुरुपदेश से वैराग्य प्राप्त करके फिर कहीं चले जाओगे और अभ्यास करते रहोगे तो मन भी निश्चल होकर तुम्हारी सहायता करेगा, नहीं तो यह मनीराम तुम्हें कहीं भी चैन से बैठने नहीं देगा। उठाये उठाये फिरेगा, इस प्रकार तुम न घर के रहोगे न घाट के। उभयभ्रष्ट होकर अपने को नष्ट कर लोगे। फिर उन वीर पुरुषों को भी देखो जो संसार में भी रहे और संसार से ऊपर उठे रहे, स्वयं तरे और औरों को भी तार गये। जिनके पूर्वजन्म के संस्कार इतने अधिक तीव्र रहे कि जरा समझ आते ही बाल्यावस्था से ही वैराग्य हुआ अथवा जब कभी तीव्र संस्कार उठा तभी संसार से विमुख होकर परमपिता की खोज में चल दिये उन पुण्यात्माओं की और बात है। वे जब चाहे जा सकते हैं—जा सकते हैं क्या जाते ही हैं। वे जब चाहे छोड़ सकते हैं—छोड़ सकते हैं क्या, छोड़ ही देते हैं। इसलिए कच्चे वैराग्य में, क्षणिक वैराग्य में कोई काम नहीं कर बैठना चाहिए। गुरुपदेश से तथ्य, हित, सत्यमार्ग को समझकर अभ्यास वैराग्य द्वारा मन की चञ्चलता का निरोध करते रहना चाहिए क्योंकि मन ही तो बन्धन का कारण है, मन ही तो मोक्ष का कारण है। इसी मनीराम को वश रखने की विद्या सीखनी चाहिए। कहा भी है कि—

"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध-मोक्षयोः"

मन की गति कुलालचक्र (कुम्हार का चक्र) की भाँति अति वेगवती रहती है, उससे भी अधिक वेगवती रहती है। क्षणार्द्ध में कहीं का कहीं हो आता है, कभी क्षण भर को भी चैन से बैठने नहीं देता है। उठाये उठाये फिरता है। पर वश में रक्खो तो संसार की समस्त ऋद्धि-सिद्धि-समृद्धियों को प्राप्त करा देता है—मोक्ष तक पहुँचा देता है। इसलिए आहार शुद्धि द्वारा इसके सत्व शुद्धि हो, तब इसकी स्मृति दृढ़ हो, तब इसके काम ठीक-ठीक बनें। सत्व शुद्धि का अभिप्राय यह है कि यह सदा सत्व, रज, तम, इन तीनों गुणों के प्रभाव में रहता है। कभी कोई गुण बढ़ जाता है, कभी कोई गुण बढ़ जाता है। इस सत्वगुण रजोगुण और तमोगुण के प्रभाव से हटने लगे तब समझ लेना कि सत्वशुद्धि होने लगी है। सच्ची श्रद्धा, सच्ची गुरुसेवा से क्या कुछ सिद्ध नहीं किया जा सकता। पापाचरण से पापबुद्धि होती रहती है और उसके प्रभाव से पापयोनि मिलती है फिर चला जन्ममरण का चक्र। शुभाचरण से बुद्धि शुद्ध होकर पुण्ययोनि मिलती है। सबसे पुण्ययोनि है मनुष्य योनि—मनुष्य बनकर भी हम पशुतुल्य ही रहे तो हम जैसा अभागा कौन होगा।

समाधि

स्व० पं० शिवदत्त जी शर्मा

साधक को सावधान रखने के लिए अनुचित मार्गों से शीघ्र समाधि अवस्था प्राप्त करने की हानियाँ बतलाई जा चुकी हैं। जिन्हें अपनी सूक्ष्म शक्तियाँ जागृत करने की इच्छा हो; उनके लिए समाधि अवस्था प्राप्त करने के उचित मार्गों का इस लेख में विवेचन करेंगे।

'बेहोशी की दशा हुए बिना समाधि अवस्था प्राप्त नहीं होती,' इस मिथ्या विश्वास को दूर कर देना विद्यार्थी का सबसे पहिला कर्तव्य है। यद्यपि बहुत से समाधि अवस्था में प्रवेश होने के पूर्व बेहोशी की दशा में हो जाते हैं यह बिलकुल सत्य है। परन्तु जो समाधि

अवस्था का सर्वोत्तम परिणाम प्राप्त करना चाहें; इन्हें बिना ही बेहोशी की दशा में गये समाधि अवस्था प्राप्त होती है, और वही सर्वोत्तम और उचित मार्ग है। बहुत से समाधि सिद्ध पुरुष बिलकुल जागृत अवस्था में रहकर भी अपने विचारों की एकाग्रता से समाधि अवस्था के लाभों को प्राप्त कर सकते हैं। बेहोशी प्राप्त करना एक तरह की आदत है। और समाधि अवस्था का संबंध एकाग्रता से है।

समाधि अवस्था को प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले को अपनी देखने सुननेवाली वृत्तियों को शिक्षित करना चाहिए। इच्छाशक्ति के शिक्षित होने से ही ये शिक्षित हो सकती है। इच्छाशक्ति एकाग्रता शक्ति के वश में है। इसलिए जिसने एकाग्रता शक्ति पर अपना प्रभुत्व जमा लिया, वह इच्छा शक्ति को अपने आधीन कर सकता है। और इच्छा-शक्ति के आधीन न होने से देखने सुनने वाली वृत्तियाँ अपने आधीन हो सकती हैं। यही समाधि अवस्था के प्राप्त करने का सर्वोत्तम साधन है।

एकाग्रता संपादन करने का सुलभ मार्ग यह है कि किसी प्रिय वस्तु पर अपना मन लगाया जाय। उसी एक वस्तु के सिवाय दूसरी कोई वस्तु मन में न आने दे।

लोग कहते हैं कि सर्वसाधारण से ऐसा अभ्यास बनना असंभव है। उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि यह नई बात नहीं है। हरएक मनुष्य अपने नित्य के जीवन में इसका अभ्यास करता रहता है। अनेक बार तुम देखते हुए भी नहीं देखते और सुनते हुए भी नहीं सुनते हो। किसी वस्तु को देखते या सुनते समय मन कहीं और ही जगह लगा हुआ हो; तो सन्मुख की वस्तु ही नहीं देख पड़ती।

इससे यह सिद्ध है कि देखने सुनने की सारी क्रिया मन के आधीन है। कुदरती नियम है कि मन जिस तरफ लगाओगे उसी तरफ का ज्ञान होगा। केवल अभ्यास की जरूरत है। बिना अभ्यास किये कुछ नहीं हो सकता।

अभ्यास करने के सुलभ नियम नीचे लिखे अनुसार है :—

(१) बाहरी चेतना भुला देने के लिए मन को किसी एक ही वस्तु पर लगा दो।

(२) मन प्रिय वस्तु पर ही अधिक लगता है, अतएव जिसको जो वस्तु प्रिय हो, उसी पर एकाग्रता करो।

(३) मन एक ही वस्तु पर अधिक देर तक नहीं ठहर सकता। इसलिए जिस वस्तु पर मन लगाया जाय, वह ऐसी हो जिसमें एकता में अनेकता हो।

जैसे एक चमकती हुई चिनगारी की अपेक्षा किसी मूर्तिमान सावयव पदार्थ पर मन अधिक देर तक ठहर सकेगा। क्योंकि वहाँ मूर्ति तो एक ही है, परन्तु उसके आँख, नाक, कान आदि अनेक अवयवों के होने से मन को स्थानान्तर होने का अवकाश मिलता जायगा। और मूर्ति से बाहर न जा सकने से एक वस्तु में एकाग्रता भी संपादित हो सकेगी।

यद्यपि चमकती हुई ज्योति पर ठहरना विशेष लाभदायक है। और वैदिक उपासनाओं में वही ग्रहण भी की गई है। उपनिषदों में दहराकाश की, और गायत्री में सूर्य की उपासना इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

परन्तु वर्तमान काल में साधनों की कमी के कारण मनस्तत्व में इतनी गड़बड़ पड़ गई है कि बिना किसी मूर्तिमान् पदार्थ के सन्मुख हुए, मन का एकाएक ठहरना कठिन ही नहीं, बल्कि असम्भव हो गया है।

(४) जिस वस्तु पर मन लगाओ, उस वस्तु के सब भागों में मन को घूमने दो। उसके बाहर मत जाने दो। तुम्हें उस वस्तु में अनेक विलक्षता, अनेक सूक्ष्मता दृष्टिगोचर होगी, और मन भी शीघ्रता से न थकेगा। और जैसे-जैसे सूक्ष्म में अधिक-अधिक प्रवेश होता जायगा, वैसे ही

वैसे वह बाहरी चेतना को, भान को, खोटता जायगा।

(५) मन को इस प्रकार एक वस्तु में लगाने के लिए जिस शक्ति का उपयोग करना पड़ता है, उसी का नाम दृढ़-इच्छा या तीव्र इच्छा है। इसी को अंग्रेजी में 'स्ट्रांग विल' कहते हैं।

(६) पहले स्थूल पर ध्यान जमाओ। फिर सूक्ष्म पर भी जमने लगेगा। जिसने ध्यान की शक्ति प्राप्त कर ली उसे बेहोशी में उतरने को आँखें मूँद कर बैठने की आवश्यकता नहीं रहती। वह दूसरों की दृष्टि में देखता, सुनता हुआ होकर भी अपने आप में ध्यानस्थ रहता है।

(७) जब मन की अवस्था अत्यन्त सूक्ष्म हो जाती है, तब सूक्ष्म लोकों का परदा उसके सामने से हट जाता है। जब तक सूक्ष्म लोकों का परदा न हटे, तो समझ लेना चाहिए कि मन की अवस्था अभी स्थूल है, अपरिपक्व है।

अक्सर समाधि के जिज्ञासु पूछते हैं कि समाधि की अवस्था प्राप्त होने के प्रथम कौन सी अवस्था होती है? जिससे यह पता लग जाय कि हम उचित मार्ग पर हैं। इसका सबके लिए एक ही उत्तर होना असम्भव है।

किसी को तो एक प्रकार के नशे की सी अवस्था प्राप्त होती है; और उसी अवस्था में कुछ चमत्कार भी उसके दृष्टिगोचर होते हैं। किसी को सूक्ष्म आकाश अपने चारों तरफ और सर्वत्र नजर आता है। किसी को चमकती हुई ज्योति दिखती है। किसी को किसी प्रकार के रंग दिखते हैं।

जो इनसे ऊपर पहुँचते हैं उन्हें किसी विशेष प्रकार के मनुष्य और देश दिखाई देते हैं। उनके प्रश्नों का कोई उत्तर देता है, जिसे वे स्पष्ट सुनते हैं।

परन्तु शयन अवस्था में या समाधि की पहिली अवस्था में जो कुछ वे देखें, सुनें, वह वैसा का वैसा ही याद रहने लगे तो समझो कि वही समाधि की पहिली अवस्था है। ऐसा समाधि सिद्ध पुरुषों का अनुभव सुना जाता है।

इस लेख में समाधि अवस्था का सार दिया गया है। यदि पुस्तक के आकार में लिखा जाय तो भी इन्हीं बातों को विस्तार करके कहना होता है। इसमें दिये गये सिद्धान्तों के अनुसार साधना कर लेने से ही सब सिद्धि होती है।

नैतिकता की अवहेलना

प्रो० लालजी रामजी शुक्ल, एम० ए०

नैतिकता मानव स्वभाव का अनिवार्य अंग है। जिस प्रकार मनुष्य के मन में व्यक्तिगत सुख की इच्छायें होती हैं और इनके कारण वह अनेक प्रकार के कामों में लगता है, इसी तरह उसके मन में दूसरों का सम्मान प्राप्त करने की इच्छा भी है। इसके कारण मनुष्य अपने व्यक्तिगत सुख का त्याग करके दूसरों की सेवा करता है। दूसरों का सम्मान प्राप्त करने की इच्छा ही मनुष्य का नैतिकता का आधार है। जहाँ तक किसी व्यक्ति में सोचने की शक्ति है वह ऐसे विचारों का चिन्तन करता है जो न केवल उसे भले लगते हैं, जिन्हें वे लोग भी सही मानते हैं। इसी प्रकार मनुष्य अपने आचरण को अपने आसपास के दूसरे लोगों की दृष्टि से देखने की चेष्टा करता है। वह अपने कार्यों की आलोचना उसी प्रकार करता है जिस प्रकार वे उसके कार्यों की आलोचना करेंगे अथवा वह स्वयं अपने से भिन्न लोगों के आचरण की आलोचना करता है। अपने आचरण को उसी दृष्टि से देखना जिस दृष्टि से हम दूसरे

व्यक्तियों के आचरण को देखते हैं। यही मनुष्य की नैतिक बुद्धि अथवा धर्म बुद्धि है। जितना कठोर मनुष्य दूसरों के आचरण की आलोचना में होता है उतना ही कठोर उसे अपने आचरण की आलोचना में होना पड़ता है।

मनुष्य की यह नैतिक बुद्धि समाज-व्यवस्था का आधार है। दार्शनिकों मनोवैज्ञानिकों के कथनानुसार मनुष्य को नैतिक बुद्धि जन्म से ही आती है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मनुष्य की यह बुद्धि उसके सामाजिक वातावरण और शिक्षा दीक्षा का परिमाण है। परन्तु यह सभी मनोवैज्ञानिक जानते हैं कि मनुष्य की नैतिक बुद्धि उसके चेतन मन की वस्तु नहीं, वह उसके अचेतन मन की वस्तु है। कई दिनों के संस्कार और अभ्यास के परिणाम स्वरूप मनुष्य में विशेष प्रकार की नैतिक बुद्धि उत्पन्न होती है। मनुष्य की नैतिक बुद्धि के बनने में उसके बचपन के संस्कार बड़े महत्व का स्थान रखते हैं। जिस प्रकार कोरे घड़े पर लिखे गये चित्र घड़े पर से पोंछे नहीं जाते इसी प्रकार बचपन के नैतिक संस्कार व्यक्ति के मन से सरलता से नहीं जाते। मान लीजिए किसी व्यक्ति को बचपन से जीव हिंसा करना अथवा पर-स्त्री गमन बड़ा पाप बताया गया है, उसने कभी मांस नहीं खाया और न विद्यार्थी जीवन तक कोई व्यभिचार किया, जब ऐसा व्यक्ति नये वातावरण में पड़ जाता है जहाँ मांसाहार करना बुरा नहीं माना जाता और न पर-स्त्री गमन को ही बुरा समझा जाता है तो वह प्रायः अपने पुराने सस्कारों के अनुसार ही आचरण करता है। जब कभी वह इस के प्रतिकूल आचरण करता है तो उस की अन्तरात्मा भर्त्सना करने लगती है। वह अपने स्वतंत्र चिन्तन में इन बातों में कोई दोष नहीं देखता, परन्तु उसके बचपन के संस्कार शिक्षा दीक्षा तथा अभ्यास उसके नये आचरण के प्रतिकूल होने के कारण वे उसे बेचैन बना देते हैं। अपने मित्र की सलाह में आकर जब महात्मा गांधी ने अपनी किशोरावस्था में मांस खाया तो उनकी आत्मा उन्हें भर्त्सना करने लगी। इसी प्रकार जब वे अपने एक दूसरे मित्र के साथ अपनी प्रौढ़ावस्था में वेश्या के घर गये तो इन की अन्तरात्मा ने उन्हें व्यभिचार में पड़ने से रोक लिया। वे इन कृत्यों को बड़ी घृणा की दृष्टि से देखने लगे। संभवतः उनकी इस घृणा की मनोवृत्ति ने ही उनकी जीवन-धारा को विशेष ओर मोड़ दिया।

जो लोग अपनी अन्तरात्मा की आवाज की अवहेलना करते हैं अर्थात् जो अपनी बचपन की नैतिक शिक्षा के प्रतिकूल आचरण कर बैठते हैं वे अनेक प्रकार की दुर्घटनाओं, आपत्तियों से शारीरिक और मानसिक रोगों के भागी होते हैं। नैतिकता की अवहेलना राज्य के द्वारा दंडित होती है। परन्तु जब राज्य इन का पता नहीं लगा पाता तो इस अवहेलना का दण्ड मनुष्य को दूसरे प्रकार से मिलता है। सुदामा जी ने अपनी नैतिक शिक्षा के प्रतिकूल कृष्ण से चुराकर बचपन में चने खा लिये थे। इसके परिणाम-स्वरूप उन्हें अपना आर्थिक जीवन गरीबी में ही काटना पड़ा। वे सदाचारी व्यक्ति तो थे ही अतएव उन्हें अपनी नैतिकता की अवहेलना खूब अखरी। परन्तु उन्होंने अपने इस अपराध का प्रायश्चित्त न कर के उसे भुलाने की ही चेष्टा को। यही कारण है कि उन्हें उनके अनजाने ही दण्ड के रूप में अपने पुराने कृत्य का प्रायश्चित्त करना पड़ा। उनकी गरीबी तब तक नहीं गई जब तक कृष्ण के समक्ष उन्हें अपने पुराने पाप का स्मरण नहीं हुआ। अपने मित्र सुदामा को कृष्ण भी तब तक उनकी गरीबी से मुक्त नहीं कर पाये जब तक सुदामा अपनी बचपन की भूल को पहचान न सके। अपनी स्त्री की भेजी चावल की भेंट को जब सुदामा जी छिपाने की चेष्टा कर रहे थे तभी भगवान कृष्ण ने उन चावलों को सुदामा से छीन कर खा लिया। साथ ही साथ

उन्होंने सुदामा जी को मुस्कराते हुए यह भी कहा कि ये भेंट गुरु जी के दिये हुए चने नहीं है जो आप स्वयं ही खा लेंगे ये तो हमारी भाभी की भेंट है और इस पर आप का कोई अधिकार नहीं है। कृष्ण जी के ये वाक्य मार्मिक थे। इन वाक्यों ने सुदामा जी को अपने पुराने कपट व्यवहार का स्मरण करा दिया और स्मृति की चेतना के ऊपर आते ही उन्हें अपना सच्चा पुरुषार्थ स्मरण हो आया। अब उनकी पाप भावना नष्ट हो गई और चेतन और अचेतन मन का एकीकरण हो गया। फिर गरीबी का नष्ट होना उनका स्वाभाविक परिणाम था।

मेगडूगल महाशय ने भी अपनी एब-नार्मल साइकलाजी नामक पुस्तक में इसी प्रकार का उदाहरण दिया है। बचपन की फलों की चोरी के कारण एक प्रतिष्ठित व्यक्ति में अपने पीछे देखने की झक सवार हो गई थी। यह झक तीस वर्ष तक रही, परन्तु उसका एकाएक अन्त उस समय हो गया जब उस सौदागर ने जिसकी उक्त व्यक्ति ने फलों की चोरी की थी, एक दिन कुशलता पूछते हुए मुसकराते हुए कहा कि अब तो तुम फल नहीं चुराते हो ? यह व्यक्ति अपने अनैतिक आचरण की स्मृति को भूल चुका था। उस समय उसे वह पुरानी स्मृति एकाएक आ गई और तभी से उनके रोग का भी अन्त हो गया।

अपनी दृढ़ नैतिक धारणाओं की अवहेलना जब कोई मनुष्य करता है तब उसे दण्ड अवश्य ही मिलता है। मनुष्य प्रारम्भ में इस प्रकार की अवहेलना को युक्त-संगत सिद्ध करने की चेष्टा करता है। परन्तु इस प्रकार अपने आपको अथवा दूसरों को धोखा देने की चेष्टा करने से अपनी नैतिक बुद्धि के प्रतिकूल जाने के दुष्परिणाम से मनुष्य अपनी बचपन की नैतिक शिक्षा के प्रतिकूल दूसरों को हानि पहुँचाने का यत्न करता है, वह अपने आपको दयनीय अवस्था में डाल देता है। जो लोग अपने हाथ का दुरुपयोग करते हैं वे लँगड़े हो जाते हैं, जो आँखों का दुरुपयोग करते हैं वे अंधे हो जाते हैं, जो वाणी का दुरुपयोग करते हैं वे गूँगे हो जाते हैं अथवा हकलाने लगते हैं, जो लोग दूसरों की ओर देखकर मुँह बनाते हैं उनका लकवा से मुँह टेढ़ा हो जाता है। दुराचरण के कारण कितने ही लोगों को कोढ़ हो जाता है और कितने ही लोग समय के पूर्व काल कवलित हो जाते हैं।

प्रत्येक मनुष्य से समाज कुछ आशा करता है। जो व्यक्ति समाज की इस आशा की पूर्ति करता है वह अपने आप में नई शक्ति का नित्य प्रति जागरण होते देखता है। जो व्यक्ति समाज की आशा की पूर्ति नहीं करता वह अपनी शारीरिक और मानसिक शक्तियों को धीरे-धीरे खो देता है। समाज की सेवा करना अपनी ही समष्टि भावना को संतुष्ट करना है। अपनी समष्टि भावनाओं को संतुष्ट करने से मनुष्य में नई शक्ति का अनुभव होता है। मनुष्य की समष्टि भावना में ही नैतिकता का आधार है।

अभी हाल ही की बात है कि लेखक के बच्चों को घर पर पढ़ाने वाले शिक्षक ने अपना काम ठीक से नहीं किया। इनके कारण बच्चे परीक्षा में अपने प्रश्नों का उत्तर ठीक से नहीं लिखते थे। बच्चों की पढ़ाई की जिम्मेदारी इसी शिक्षक के ऊपर थी। यह शिक्षक स्वयं एक होनहार नवयुवक है। इसकी नैतिक शिक्षा अच्छी हुई है। वह लेखक को श्रद्धा की दृष्टि से भी देखता है। लेखक द्वारा उसके काम की आलोचना होने पर उसने अपनी सफाई देने की चेष्टा की। परन्तु उसका आन्तरिक मन अपराध का अनुभव कर रहा था। बालकों की परीक्षा पूरी होने के पूर्व ही लेखक ने शिक्षक को कहा कि वह अब बालकों को न पढ़ावे, अब वे स्वयं ही अपनी तय्यारी कर लेंगे। इस बात से उसके मन पर भारी धक्का लगा और वह लेखक के घर से जाकर अपने घर पर बीमार

हो गया। वह पन्द्रह दिन तक बीमार ही रहा। पर जाते समय उसे लू लग गई थी। यह रोग का भौतिक कारण था। उसका मानसिक कारण शिक्षक के मन का कमजोर बन जाना था। शिक्षक का मन अपने आपको दण्ड का भागी समझता था, अतएव उसे अनायास ही दण्ड मिल गया।

लेखक के एक सम्बन्धी को कहीं कुछ गड़ा धन मिल गया। इसके कारण घर के लोगों का अपनी पतोहू के प्रति दुर्व्यवहार होने लगा। यह पतोहू रूपवान नहीं थी। वह अपने जीवन से परेशान होकर पानी में डूबकर मर गई। इस पाप को छिपाने के लिए उक्त सम्बन्धी ने भारी प्रयत्न किया। वे उसे छिपाने में सफल हुए। परन्तु इस घटना के थोड़े दिन बाद ही उन्हें लकवा का रोग हो गया और उसी के कारण उनकी मृ यु हो गई।

नैतिकता के विरुद्ध आचरण करने पर मनुष्य का भीतरी मन उसे कोसने लगता है। मनुष्य अपनी आत्म-भर्त्सना को भुलाने की चेष्टा करता है। वह अपने अनुचित कार्य के लिए प्रायश्चित न करके उसे उचित सिद्ध करने की चेष्टा करता है। इस प्रकार वह अपनी धर्मबुद्धि को चुप करने में समर्थ हो जाता है। परन्तु अब उसकी धर्मबुद्धि उससे दूसरे प्रकार से बदला लेने लगती है। वह मनुष्य के स्वभाव में ही परिवर्तन कर देती है। वह नम्र की जगह अभिमानी बन जाती है और शांत की जगह चिड़चिड़ा हो जाता है। वह अनेक प्रकार की भूलें करने लगता है। इसके परिणाम-स्वरूप कोई बाहरी आपत्ति में वह पड़ जाता है और फिर उसे अपने अनैतिक आचरण के लिए दण्ड भोगना पड़ता है।

मनुष्य अपने अनैतिक आचरण को जगत की आँखों से छिपाना चाहता है परन्तु उसका अनैतिक आचरण किसी न किसी प्रकार प्रगट हो जाता है। मनुष्य जितना ही अपनी अनैतिकता को भुलाने की चेष्टा करता है उसकी मानसिक जटिलता उतनी ही बढ़ती जाती है। यदि कोई मनुष्य अपने नैतिकता के अभिमान का त्याग करके वह जैसा अपने भीतरी मन से है वैसा अपने आपको स्वीकार करे तो वह अपने आप सुधार करने में समर्थ हो। अनेक प्रकार के मानसिक क्लेश में वह व्यक्ति पड़ता है जो बाहर से ऊँचा नैतिकता रखता है पर जिसके भीतरी मन में प्रबल विषय वासनाएँ हैं और जिनका अवरोध किसी अनैतिक घटना के कारण हो गया है। मनुष्य अपनी पाशविक वृत्तियों के कारण होनेवाली भूलों को तभी सुधार सकता है जब वह उन भूलों को न भुलाकर उनके लिए प्रायश्चित करने के लिए तैयार हो। इसके लिए अपने नैतिकता के अभिमान को कम करना आवश्यक होता है।

अनैतिकता की अवहेलना मनुष्य की बाहरी चेष्टा में किस प्रकार प्रकाशित हो जाती है इसके अनेक उदाहरण आधुनिक मनोविज्ञान के प्रयोगों से मिलते हैं। स्टैफिल महाशय का अपनी पुस्तक टेकनीक आफ साइकोथ्रेपी में से एक उदाहरण यहाँ उल्लेखनीय है।

एक तेईस वर्ष की युवती को किसी व्यक्ति के सामने अत्यधिक शरमाने की आदत थी। वह अपने पिता के सामने एक शब्द भी नहीं बोल सकती थी। उसकी शरमाने की आदत के कारण उसका समाज में जाना कठिन हो गया। उसे अनेक प्रकार की अकारण चिन्ताएँ और भय भी थे। वह जब मनोविश्लेषण के लिए स्टैफिल महाशय के पास आई तो उसके मानसिक अध्ययन से पता चला कि अपने बालपन में जब वह अपने पिता माता के साथ एक ही बिस्तर पर सो रही थी तो पिता ने उसे कामोत्तेजित होकर स्पर्श किया। इसके लिए उसकी माँ ने पिता की भर्त्सना की। अतएव यह स्मृति उसके अचेतन मन की वस्तु बन गई। फिर वह अनेक प्रकार के व्यभिचार में

पड़ गई। उसे किसी प्रकार के प्रेम सम्बन्ध में सन्तोष नहीं होता था। जब उसके मन में पड़ी पाप की ग्रन्थि का निराकरण हो गया तो उसका जीवन रसमय बन गया।

मनुष्य जितना ही अधिक अपने अनैतिक आचरण को भुलाने की चेष्टा करता है वह अपने आपको उतना ही दुःखी बनाता है। यदि मनुष्य अपने आपमें उपस्थित उक्त वासना को स्वीकार कर ले जिसके कारण उसने अनैतिक आचरण किया तो अपनी वासना पर विजय प्राप्त करना और उसकी शक्ति को सन्मार्ग पर लगाना सरल हो गया। किसी भी अनैतिक आचरण का प्रायश्चित अपनी शक्ति को भले मार्ग पर लगाना है ताकि पुराने आचरण के लिए पश्चाताप अथवा आत्म भर्त्सना न करना पड़े। पश्चाताप और आत्म भर्त्सना से मनुष्य की इच्छाशक्ति और भी निर्बल हो जाती है। दिनोंदिन वह उसी काम को जिसके लिए वह पश्चाताप करता है बार बार करता है। इसलिए ही हॉलैंड के प्रसिद्ध दार्शनिक स्पिनोज़ा महाशय ने कहा था कि पश्चाताप दो तरह से बुरा है, वह इच्छाशक्ति की कमज़ोरी को दर्शाता है, और उसे और भी कमजोर बनाता है।

आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार अपने अनैतिक आचरण के लिए पश्चाताप करना विकृत रूप से अपनी भोग वासना को तृप्त करना है, पश्चाताप से भी वही प्रवृत्ति तुष्ट होती है जिसके प्रबल होने के कारण अनैतिक आचरण किया जाता है। कितने ही लोग अनेक प्रकार के व्यभिचार करते हैं और उनके लिए सदा पश्चाताप करते रहते हैं परन्तु समय आने पर वही काम फिर से करने लग जाते हैं जिसके लिए उन्होंने पश्चाताप हाल ही में किया। इस प्रकार उनकी इच्छाशक्ति अनैतिक आचरण करने और फिर उसके लिए पश्चाताप करने से दिन प्रतिदिन निर्बल होती जाती है। ऐसे ही लोगों को अनेक प्रकार के मानसिक रोग हो जाते हैं। यदि उन्हें यह समझा दिया जाय कि अपने कुकृत्य के लिए पश्चाताप करना उतना ही बुरा है जितना उन कुकृत्यों को करना बुरा है, और इस प्रकार उनके चरित्र का कोई भी सुधार नहीं हो सकता तो वे अपने आपको पश्चाताप करने से रोक सकें और फिर वे पश्चाताप से बची मानसिक शक्ति के बल से अपने आपको कुकृत्य से भी रोकने में समर्थ हों। इन महाशय की शिक्षा है कि बुरे काम का प्रायश्चित, उसके लिए पश्चाताप करना नहीं है वरन् भले काम में अपनी शक्ति लगाना है। आधुनिक मनोविज्ञान की दृष्टि से यही सत्य भी है। अपनी नैतिक बुद्धि को सतोष देने का सर्वोत्तम उपाय मानसिक शक्ति को परोपकार में लगाना है। यह उस शक्ति का उदात्तीकरण कहलाता है। जो शक्ति अवरोध की अवस्था में अनैतिक आचरण का कारण बनती है उदात्तीकरण की अवस्था में संसार का महान् कल्याण करता है और मनुष्य के व्यक्तित्व को सम्मानित बना देती है।

व्याधि क्यों होती है ?

प्रो० एन० जी० नाबर

आरोग्य पर ही मनुष्य के समस्त सुखों का आधार निर्भर है। इसलिए मनुष्य को रोग होने के कारण जानने की अत्यन्त आवश्यकता है।

वैद्यक शास्त्र में हजारों प्रकार के रोग बताये गये हैं। किन्तु विचार कर देखा जाये तो रोग नहीं होता है और हजारों जाति के रोग एक ही रोग के भिन्न-भिन्न रूप हैं। शरीर में अन्दरूनी

उत्पन्न करने वाले कारण जब फेफड़े में प्रकट होते हैं तो क्षय अथवा श्वास नाम से संबोधित किये जाते हैं, जठर में प्रकट होते हैं तो अपचन कहलाते हैं, गुदा में प्रकट होते हैं तो अर्श, भगंद्र अतिसार आदि नाम से प्रकट होते हैं। और जोड़ों में प्रकट होते हैं तो सधिवात, गठिया कहलाते हैं। इस तरह भिन्न-भिन्न अवयवों में भिन्न-भिन्न रूप से प्रकट होने के कारण वे व्याधि एक दूसरे से भिन्न ज्ञात होते हैं। वस्तुतः भिन्न नहीं होते किन्तु एक ही कारण के भिन्न-भिन्न कार्य हैं। इससे स्पष्ट है कि विविध रूप का व्याधियों के भिन्न-भिन्न कारण मानना हमारी भूल है।

किन्तु विविध प्रकार की व्याधियाँ क्यों होती हैं, यह हमारा मुख्य प्रश्न है। इसका उत्तर भी सरल है। व्याधियाँ अनेक नहीं है। व्याधि एक ही है तो उसकी उत्पत्ति का कारण भी एक ही है और वह कारण शरीर में कचरे का संचय होना ही है।

हमारा शरीर सात धातुओं का बना हुआ है। इन सात धातुओं के अतिरिक्त शरीर में अन्य जो कुछ संचित होता है वही कचरा है। शरीर में उत्पन्न होने वाला कचरा शरीर में से साफ न किया जावे तो वह रोग का कारण होता है। व्याधि उत्पन्न होने के और भी कारण माने जाते हैं। जैसे अति शोक, चिन्ता आदि। चाहे जो कारण गिने जावे किन्तु सभी में कचरा संचय होने का कारण सदा कायम रहता है क्योंकि अति शोक में खाया हुआ अन्न हजम नहीं होता और इससे शुद्ध रुधिर नहीं बनता और इस तरह क्रमशः शरीर में मल का संचय हो कर व्याधि उत्पन्न होती है।

अंतर बाह्य, शरीर जब स्वच्छ होता है, तो मनुष्य आरोग्य का अनुभव करता है। बाह्यतः दो तीन बार स्नान करने से मनुष्य रोग से निर्भय नहीं रह सकता। आरोग्य तो अंतर तथा बाह्य दोनों प्रकार के स्नान करने से ही लाभ हो सकता है।

शरीरस्थ कचरे या मल के संचय को प्रकृति जरा भी नहीं सहन कर सकती, और जब इस तरह संचय होता रहता है तो प्रकृति उसको निकाल देने के लिए विशेष प्रयत्न करती है। संचित मल को, शरीर के बाहर निकालने का प्रकृति का विशेष प्रयत्न रोग कहलाता है। वह मल शरीर में तीन रूप से देखने में आता है। वायु रूप में, प्रवाही रूप में और घन रूप में, किसी भी रूप से शरीर में रहकर शरीर की नियमित क्रिया में अव्यवस्था उत्पन्न कर देती है। और परिणाम स्वरूप कुछ न कुछ थोड़ा या बड़ा रोग उत्पन्न हो जाता है। घड़ी में यदि ज्यादा कचरा या धूला भर जाता है तो घड़ी खराब हो जाती है। तो मनुष्य शरीर में मल का संचय होने पर उसकी कैसी अवस्था होनी चाहिए इसका अनुमान लगाना कठिन नहीं है। शरीर जैसे व्यवस्थित काम में जगह जगह मल का संचय प्रतिदिन महीनों तक एकत्रित होते रहने से शरीर में कैसी अव्यवस्था रहती होगी इस बात का थोड़ा विचार करो। और विचार करो कि मनुष्य के आजतक खोज कर निकाले हुए सब नाजुक से नाजुक यन्त्रों में मनुष्य शरीर ही अधिक नाजुक है।

शरीर में नित्य एकत्रित होने वाला कचरा मुख्यत. तीन भाँति से शरीर से बाहर निकाला जाता है। मल, मूत्र पाखाना करने के अवयवों द्वारा शरीर के रंध्रों द्वारा और फेफड़ों द्वारा। किन्तु इसमें सबसे अधिक भार मल, मूत्र त्याग करने वाले अवयवों पर पड़ता है। यह अवयव जब अपना काम व्यवस्थित रीति से नहीं कर सकते अर्थात् मोटे नल में मल का संचय होता है तो शरीर भिन्न-भिन्न प्रकार की व्याधियों से ग्रसित हुए बिना नहीं रहता। एक दिन भी साफ दाँत न होने के कारण कितनी बेचैनी शरीर में होती है इसका अनुभव किसे नहीं है।

मोटे नल में नित्य एकत्रित होने वाले कचरे को निकाल डालने की प्रकृति ने उन अवयवों की बहुत अच्छी योजना कर रक्खी है। किन्तु अनियमित आहार या अयोग्य खान-पान से मनुष्य जब शरीर में अधिक कचरा उत्पन्न करता है तो वह मोटे नल में भी जाता है। और यह कचरा उस अवयव को प्रतिक्षण अपनी क्रिया करने में बाधा उपस्थित करता है। और इस अवयव में अव्यवस्था हो जाती है। और बद्धकोष्ठता उत्पन्न हो जाती है इस तरह मोटा नल भरता जाता है और इस कारण से पहिले उससे जितनी जगह घिरती थी उससे दुगुना और तिगुनी जगह घिरती है। इसी कारण से यकृत, जठर आदि की क्रिया अच्छी तरह से नहीं चल सकती उनको संकुचित होना पड़ता है और उनमें भी अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है। पचनेन्द्रिय पर मोटे नल का दबाव पड़ने के कारण खाया हुआ पदार्थ जठर में जितनी देर रहना चाहिए उससे अधिक समय रहता है और वहाँ वह सड़ने लगता है। सुबह खाये हुए पदार्थ की शाम को किसे खट्टी डकारें नहीं आई होंगी। वह खट्टी डकारें जठर में रुके हुए खूराक की सूचना देती हैं। अपच और अजीर्ण का मुख्य और साक्षात् कारण मोटे नल में संचित कचरा ही है।

जठर में जितनी उष्णता होती है उतनी उष्णता वाली स्थिति में घंटों तक अन्न नल में पड़ा रहने के कारण उसमें सड़ान पैदा होती है और उससे वायु उत्पन्न होती है। और शरीर में वायु का संचय होने से आरोग्य को जो हानि पहुँचती है उसे बहुत थोड़े मनुष्य जानते हैं। प्रयोगों द्वारा सिद्ध हो गया है कि कार्बोनिक एसिड गैस अथवा हाइड्रोजन का प्रवाह जब किसी स्नायु पर छोड़ा जाता है तो वह अवयव लकवा मार जाने की भाँति रह जाता है। जठर आदि अत्यन्त उपयोगी अवयवों पर इस वायु का नित्यशः प्रभाव पड़ने के कारण इन अवयवों की कैसी दुर्दशा होती होगी। यह बात पाठकों को बिना कहे ही समझ में आने लायक है। खाया हुआ अन्न न पचने होने के कारण स्थान स्थान पर वायु उत्पन्न होकर पक्षाघात होना क्या संभव नहीं है? यह वायु उसके पास वाली शिराओं में प्रवेश करती है यह बात अब सिद्ध हो चुकी है। और ज्ञान तंतु सम्बन्धी अनेक व्याधि इस वायु के कारण ही होते हैं।

किन्तु प्रवाहित रूप में जो तत्व शरीर में उत्पन्न होता है और रुधिर से मिलकर जो हानि करता है, वह और भी भयानक होता है क्योंकि रुधिर शरीर का जीवन है। जीवन बिगड़ने पर मनुष्य का आयुष्य और आरोग्य दोनों का नाश होता है। यह मल एक प्रकार का विष ही है और विष जिस तरह प्राण को हरे बिना नहीं रहता उसी तरह यह मल भी प्राण को हरे बिना नहीं रहता। अब यह प्रमाणित तो हो चुका है कि यदि इस मल को न निकाल डाला जावे तो उसका पौन-हिस्सा रुधिर में मिश्रित हो जाता है। मोटे नल में रहने वाला यह प्रवाही मल और रुधिर दोनों साथ साथ शरीर में फिरते हैं यह बात हाल ही में प्रमाणित हो चुकी है। मोटे नलों में होकर जब रक्त प्रवाहित होता है उस समय रोगजनक अनेक जन्तु उसमें मिलते हैं और उसको अशुद्ध और बिलकुल विषमय कर देते हैं।

व्याधि होने का कारण क्या है यह बात विचारवान् पाठकों के ध्यान में आ गई होगी। हजारों प्रकार के रोगों से मनुष्य पीड़ित होता है और मर जाता है। इसका मुख्य कारण शरीर में मल संचित होना है। पक्षाघात, जलोदर, क्षय आदि प्राय. हर रोग परमात्मा ने नहीं दिये हैं। किन्तु मनुष्यों के अयोग्य आचरण के ही कारण उत्पन्न हुए हैं। मल से भरे हुए मोटे नल वाले मनुष्य को ऐसे ही अनेक रोग हो जाते हैं। मोटे नल मल से भर जाने के कारण खाया हुआ भोजन हजम नहीं होता और शरीर को

पोषण न मिलने के कारण वह दुर्बल रहता है और फिर अनेक औषधियाँ लेने पर भी लाभ नहीं होता इसमें दोष किसका ? शरीर में नित्य उत्पन्न और संचित होने वाला मल, बाहर न निकलकर अन्दर ही अन्दर धातुओं में ही घुला करता है और महीनों बाद जब किसी व्याधि से शरीर पीड़ित होता है तो परमात्मा और भाग्य को दोष देते रहना कहाँ तक ठीक है ? जुलाब की दवा लेकर शरीर में भरे हुए इस मल को बाहर निकाल डालने के लिए या रक्त-शुद्धि की दवाइयाँ खाकर रुधिर की शुद्धि करने का प्रयत्न करता रहता है। किन्तु अनुभव से अब यह सिद्ध हो चुका है कि जुलाब की औषधि शरीर में भरे हुए कचरे को संपूर्ण अंश मे निकालने से असमर्थ है और इसी तरह जब मोटा नल मल से लगभग आधा भर जाता है तो रुधिर को साफ करने की चाहे जैसी दवा की जावे तो भी रुधिर साफ नहीं होता।

मोटे नल को गरम पानी से धो डालने से उसमें भरा हुआ कचरा पूर्णतया निकल जाता है। किन्तु मनुष्य तीन चार सेर पानी से ही नल को साफ करता है किन्तु इतने पानी से तो, उसका तीसरा हिस्सा ही साफ होता है। बाकी दो हिस्से मल से भरे रह जाते हैं। आठ दस सेर पानी से नलों को धोये बिना वह पूरी तरह कभी नहीं धोया जाता। और वह पूर्णतया धुले बिना, शरीर अन्दर से कभी साफ नहीं होता। जब बड़ा नल आठ दस सेर पानी से पूरी तरह धोया जाता है तो रुधिर शुद्ध होने लगता है और पचनेन्द्रिय आदि समस्त अवयव अपना अपना काम ठीक करने लगते हैं। और इस तरह शरीर के समस्त अवयव अपना अपना काम जब ठीक करने लगते हैं तो जो जो व्याधियाँ हुई रहती हैं वह मिट जाती हैं और पूर्ण आरोग्य प्राप्त होता है।

मोटे नल में पाँच छः सेर पानी तो प्रत्येक मनुष्य बड़ी सरलता से भर सकता है। इससे अधिक भरने का काम कइयों को बड़ा कठिन जान पड़ता है। क्योंकि ऐसा करने से मोटे नल में थोड़ी देर तक भारीपन मालूम होता है किन्तु आरोग्यता की इच्छा रखने वाले मनुष्य को ऐसे भारीपन से न डरना चाहिए। धीरे-धीरे कष्ट सहकर आठ दस सेर पानी भर ही लेना चाहिए। महीनों और वर्षों तक व्याधि के दुखों को सहने की अपेक्षा थोड़ी देर कर जरा-सा दुःख सह लेना कोई बड़ी बात नहीं है। दृढ़ मन की इसके लिए आवश्यकता है।

२६/२

हमारी नयी भारतीय सभ्यता की प्रगति

श्री विश्वामित्र वर्मा

इतिहास पढ़ने से हमें एक पुराने जमाने का परिचय मिलता है कि तब अन्न दूध घी आदि दैनिक खपत की वस्तुएँ बहुत सस्ती थीं और कुछ पैसों में ही एक परिवार सुखी रहता था। लोगों के सात्विक निरोगी खानपान के साथ उनका ईमान भी इतना सच्चा सीधा था कि लोग घरों मे ताले भी नहीं लगाते थे और कोई पराई वस्तु या बहू-बेटी पर नजर नहीं डालता था। परन्तु ये सब बातें पुरानी कथा बन गई और आज इन्हें सुनकर हमें उनकी सत्यता पर विश्वास नहीं होता, क्योंकि अब जमाना बदल गया है। मैं विचार करता हूँ और आपसे भी पूछता हूँ कि क्या जमाना सचमुच बदल गया है ? जमाना कैसे बदलता है ? दिन रात, मौसम, धरती, आसमान और दुनिया के पञ्च महाभूत का बहुरूपी भण्डार—सब वैसे ही तो हैं, फिर बदला क्या ? घी दूध मक्खन तेल आटा यहाँ तक कि बीमारों की दवाओं में भी मिलावट ! सूखे अन्न, साग भाजी लकड़ी लोहा आदि के अतिरिक्त दैनिक खपत की असली कौन सी

चीजें मिलती हैं जो स्वस्थ या बीमार व्यक्ति को संतोष दें? इन सब को किसने बदल दिया? क्यों बदलते हैं? घी दूध शक्कर की कमी और महँगाई क्यों है?

इन सबका व्यवहार और व्यापार करने वाला मनुष्य के अतिरिक्त कौन है? चाय को प्रचलित हुए कितने वर्ष हुए जबकि चाय कम्पनी ने पहले यत्रतत्र मुफ्त में चाय पिला कर लोगों को चाय का स्वाद चखाया और लाभ सुनाया। हम भारतीय लोग पश्चिम वालों की बहुत सी बातों में नकल करते हुए इस विषय में इतने आगे बढ़ गये हैं कि अब तो चाय के बिना सवेरे आलस्य आता है, बात बात में दिन भर मित्रों और मेहमानों में चाय का आदर व्याप्त हो गया है। चाय को दूध और शक्कर चाहिए। देश में अधिकाधिक चाय के प्रसार से दूध और शक्कर की खपत केवल शौक से, व्यसन के रूप में अथवा अनावश्यक नई सभ्यता के रूप में बढ़ गई। शक्कर की कमी और महँगाई से ताड़गुड़ का निर्माण, और दूध की खपत से घी की कमी हुई, और इस कमी को पूरा करने के लिए मूँगफली और तिली आदि के तेलों को जमाकर बहुरूपिये डालडा का जन्म हुआ।

आयुर्वेद भारत की कोई नई विद्या नहीं है, इसमें हमारे देश की प्रकृति के अनुकूल स्वास्थ्य बनाये रखने अथवा रोगनाश के लिए प्राचीन वैज्ञानिक ऋषियों द्वारा प्रणीत सूक्ष्म विज्ञान भरा पड़ा है। आयुर्वेद के मत के अनुसार दो या अधिक प्रकार के तेल या घी का मिश्रण शरीर के पाचक अवयवों और स्वास्थ्य के लिए विष तुल्य हानिकर है। परन्तु नई सभ्यता और नये विज्ञान की चमक दमक में अपने घर की सलाह भूलकर, घर की चीज की उपेक्षा कर, हम नवीन प्रचलित वस्तुओं चाय, सिगरेट, डालडा, बरफ, ट्रैक्टर, और क्रोम लेदर काफ लेदर आदि से अपने शरीर, अपने घर, अपने देश को आभूषित कर रहे हैं।

देश-व्यापी सस्ते डालडा के सामने गाय भैंस के असली शुद्ध घी का मिलना असम्भव सा हो रहा है, और मोदी जब कहता है कि "बाबू जी आप घी ले जाइए, इसे खाकर आप को मालूम होगा मानो घर की भैंस का घी खाया है।" इस "मानो" शब्द में कल्पना और भुलावा है, मोदी "सच" बोलता है, वह घी के असली होने की "गारण्टी" नहीं देता। घी तो डालडा के रूप में कारखानों में बनने लग गया, विलायत में एक लोहे की गाय बनी है, इस मशीन में कुछ घास, पानी और शक्कर डालने से दूध निकलता है, शायद यह गाय के शरीर के भीतर की रासायनिक क्रिया की नकल है। जैसे गाय घास खाकर पानी पीकर दूध देती है; वैसे ही यह मशीन भी। पहले बैलों का उपयोग खेती में—जमीन जोतने और गाड़ी में भार वहन करने के लिए होता था और अब भी गरीब भारत के गाँवों में होता है। परन्तु जबकि ट्रक-ट्रैक्टर से यह काम अधिक तीव्रता से सस्ते में और बढ़िया तरीके पर होता है तो गाय बैलों के उत्पादन पालन की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। मशीन युग के इन चमत्कारों के साथ गाय बैलों की कमी होती जा रही है। सरकारी नौकरी २५-३० साल कर लेने पर या ५५-६० वर्ष की उम्र तक पहुँच जाने पर इन्सान "पेन्शन" का हकदार हो जाता है और घर बैठे शेष जिन्दगी सरकारी पेंशन पर गुजारता है। यह सब "अवसर प्राप्त" और "सेवा निवृत्त" का कानून मानव ने मानव के लिए बनाया है, गाय बैल भैंस घोड़े गधों के लिए यह कानून नहीं है, क्योंकि हम उनके गूँगेपन के कारण उनकी निरर्थक आवाज में उनके दुःख दर्द नहीं समझते, और शायद वे फरियाद करते भी हों तो हम अपनी कानूनी बुद्धि से उसे नहीं सुन या समझ पाते, वे हमारी

भाषा और हमारे कानून से बात नहीं करते यही कारण है कि जब गाय बूढ़ी होकर अब अधिक बछड़े या दूध देने योग्य नहीं रहती, और जब बैल बूढ़ा होकर खेत जोतने या भार वहन करने को बिलकुल लाचार हो जाता है तो कसाईखाने से हम अपने उस माल पर, उसके मांस और खाल का मूल्य वसूल करते हैं। जब तक गौ माता और बैल बाप जवान रहते हैं हमें अन्न दूध देकर, वह कर्ज और उपकार हमें चुकाते हैं जो हम घास और सुरक्षा के रूप में उन्हें देते हैं। अथवा समझिए कि उन पर हमारा कोई पूर्वजन्म का कर्ज था कि हमारी शरण में पालन पोषण पाकर वे हमारा ही पालन पोषण करते हैं।

भोजन विज्ञान के अनुसार हमें शक्ति और पोषण के लिए "प्रोटीन" चाहिए, वह प्रोटीन "दूध" में विशेष रहता है, परन्तु दूध न देने के कारण उसे हम गाय बैल आदि के मांस से लेते हैं, और उसके मरने पर उसकी खाल का जूता बनाकर अपने पाँवों की रक्षा धूप से करते हैं, और अपने उस गौमाता और बैल बाप के मरने पर उसकी खाल को अपने पैरों तले तपती जलती धरती पर रगड़ते चलते आराम पाते हैं।

आधुनिक समय में चमड़े के बूट चप्पल सेंडल सूटकेस व हण्टर आदि जो हमारे काम नित्य आते हैं उनकी कहानी लिखते हुए एक गो सेवक ने लिखा है—वैसे तो पशुओं को काटने में किसी खास विधि या विधान की आवश्यकता नहीं, छुरी मारी, समाप्त। परन्तु चमड़े के लोभी मानव ने व्यापार के नफे के लालच से पशुवध का निर्दयता एवं निर्ममता-पूर्ण जो अमानुषिक और नृशंस ढङ्ग अपना रखा है वह मानवता से परे है तथा सर्वथा करुणा-जनक और कँपा देने वाला है। बूट चप्पल बक्स हण्टर आदि बनाने को चमड़ा तैयार करने के लिए बूढ़े बैल गाय भैंस आदि पशुओं को पानी के नल के नीचे खड़ा करके उसके पाँव और सिर को मजबूती से बाँध दिया जाता है जिससे वह हिल-डुल न सके और मानव की नृशंसता के विरोध में एक शब्द भी न बोल सके। पश्चात् उन पर पानी छिड़का जाता है और लपलपाती बेंतों से उन्हें खूब पीटा जाता है, ऐसी दशा में भूख प्यास से व्याकुल होकर पशु गोबर मूत्र त्यागने लगता है, उसकी सितारे सी चमकीली आँखें बाहर निकल आती हैं, अत्याचारों के प्रति आँसुओं की अविरल धारा निकलने लगती है, वह घायल छटपटाता है, किन्तु चमड़े के लोभी मानव को यह सब दिखता सूझता नहीं। भूख प्यास की तीव्रता और लगातार बेंतों की मार से उसका शरीर फूल जाता है, चमड़े पर खून लहराने लगता है, चमड़ा इससे नरम और मोटा हो जाता है, शरीर पर रक्त दिखलाई देने लगता है और टपकने लगता है तब उसका मरण समय आ जाता है, उसी समय कसाई कटार माथे पर चुभाकर उसके शरीर को बीचों बीच चीरता हुआ पूँछ तक पहुँच जाता है और खाल उतार ली जाती है।

साधारण क्वालिटी से ऊपर के जो जूते चप्पल और अन्य चीजें बनती हैं वे इनसे कुछ महँगी होती हैं और जवान गाय बैल आदि पशुओं की खालों से तैयार की जाती हैं। पहले पशु को भरपेट चराकर होशयार करते हैं फिर उसका मुँह बाँधकर उसके सारे शरीर पर खूब गरम पानी डालते हैं जिससे उसके रोएं जल जाते हैं, फिर उसकी चमड़ी को गरम पानी से धोते हैं. रक्त संचार बढ़ जाने से चमड़ी पर खून झलकने लगता है तब तेज छुरी से चीरकर उसका चमड़ा निकाला जाता है।

"काफलेदर" से बने हुए जूते "बछड़े के चमड़े" से बनते हैं जो बड़े नरम और कीमती होते हैं। जवान बछड़े और बछड़ियों को खूब साफ करके साबुन लगा कर पानी से नहलाकर पश्चात् छलकदार बेंतों से मन्दगति से धीरे-धीरे

खूब पिटाई की जाती है, ताजा खून उबल उठता है तब एक कठघरे में खड़ा करके एक मशीन की कांटेदार चक्र उसके शरीर पर आकर जम जाती है और मशीन का पहिया छिलके की तरह उसकी खाल खींच लेता है, मांस सहित केवल उसका अस्थिपंजर खड़ा रह जाता है, कसाई आकर उस मांस को छुरी से काटकर निकाल ले जाता है। इस प्रकार कॉफ या क्रोमलेदर बनता है।

इससे भी मुलायम नाजुक और कीमती शौकीनी चीजें कोट स्वेटर बृजिश दस्तानें बढ़िया बटुए आदि जो बनती हैं वे भेड गाय बकरी भैंस गाय के गर्भपात करवा कर उन्हें मारकर उनके गर्भ का कोमल भ्रूण निकाल कर उसके चमड़े से बनती हैं। पहले स्वाभाविक मौत से मरे पशुओं के चमड़े से ही जूते बनते थे और वे चमड़े वृक्षों की छालों से रँगे जाया करते थे परन्तु अब पशुओं को निर्दयतापूर्वक मारा जाता है और उनके चमड़े को उनके ही खून से रँगा जाता है। चमड़े की जो बढ़िया चीजें लाल या ब्राउन रंग की होती हैं वे खून से ही रँगी होती हैं और वह रंग पक्का होता है। खून निकालने के लिए मशीन होती है। स्वस्थ गाय, जवान बछड़े बछड़ियों को मशीन के पास खड़ा करके, उसकी नस को काटकर मशीन की नली से जोड़ देते हैं, वह मशीन धीरे-धीरे सारा खून खींचकर चूस लेती है, दो तीन घण्टे में पशु चल बसता है। वह खून दवा के काम आता है और उससे चमड़ा भी रँगा जाता है।

सोलहवीं शताब्दि का हाल आइने अकबरी में लिखा है कि साधारण गाय २० सेर दूध देती थी, बैल २४ घण्टे में १२० मील चलता था, और इतना लम्बा चौड़ा और बड़ा होता था कि बैठाकर उसे लादा जाता था। अब बैल बहुत कमजोर हैं और गाय औसत एक सेर या इससे भी कम दूध देती है।

खेती और पशुपालन, दूध घी और अन्न का यह प्रश्न केवल हिन्दुओं के लिए ही नहीं परन्तु हिन्दुस्तान की मिट्टी और पानी में पले सब मानव शरीर धारी विभिन्न सम्प्रदाय वालों के लिए है जो अपना पेट भरते हैं। डालडा, ट्रक और ट्रेक्टर, बढ़िया जूते चप्पल और सूट केस का क्या हमारी खेती और पशुपालन से अधिक महत्व है! डालडा का विषकारक प्रभाव देश में बढ़ती हुई पेट की नई नई अजीब असाध्य बीमारियों से साफ दिख रहा है। ट्रक और ट्रैक्टर क्या हमें जीवन संजीवनी दूध, मक्खन, दही, घी, और खेतों के लिए गोबर मूत्र खाद देंगे और इनसे हमारा राष्ट्र स्वस्थ सम्पन्न होगा! मानव का स्वास्थ्य ही राष्ट्र का गौरव है, और गाय बैल ही राष्ट्र की उन्नतिशील सम्पत्ति है, साम्यवाद हो या साम्राज्यवाद हो, कोई भी राष्ट्र इन्हीं दोनों प्रकार की सम्पत्ति से स्वस्थ जीवित और उन्नतिशील हो सकता है।

कोई भी सम्प्रदायवादी सरकार हो, यह सब इस प्राचीन देश की कृषिप्रधान और धर्मप्रधान निष्ठा का प्रश्न है कि आधुनिक सभ्यता के भुलावे में हम जो कुछ कर रहे हैं वह हमारी कृषि और धर्मनिष्ठा तथा मानवता को कितना सार्थक करता है, इन बातों का विचार करते हुए ही हम डालडा, और कॉफ या क्रोम लेदर की वस्तुओं को आश्रय दें या खेती और पशुपालन को प्रोत्साहन दें। गौमाता और बैल बाप पर हमारी क्या उपकार मान्यता है?

इतना यह सब करते हुए हम भारतीय उद्योगपति यह समझते हैं कि हम भारत की उन्नति कर रहे हैं। हम देश में उद्योग बढ़ा रहे हैं, विदेशों से मशीनें मँगाकर देश में नये अनुसन्धान और आविष्कारों से जनता की बेकारी दूर कर रहे हैं, सम्पत्ति बढ़ा रहे हैं, परन्तु यह विचार नहीं आता कि नकली बनी वस्तुओं से स्वास्थ्य नष्ट हो रहा है। देश में क्षय रोग के रुग्णालय सर्वत्र यत्रतत्र बनाये जा रहे हैं, क्षय रोग भारत जैसे सूर्य उस मुल्क के अन्नदूध से भरे देश में क्यों बढ़ रहा है?

शराब में विटामिन—चार लाख पर लात !

इस विषय में मुझे एक अमरीकी वात याद आ गई। हम पश्चिमात्यों को भ्रष्ट समझते हैं परन्तु निम्न घटना से उनकी तुलना में वर्तमान भारतीय नैतिक पतन या चरित्र निष्ठा का अनुमान आप लगा सकते हैं।

एण्डू इवी साहब अमेरिका की इलीनॉय यूनिवर्सिटी के वाइस प्रेसिडेण्ट हैं, वैज्ञानिक हैं, मनुष्य शरीर में दो नयी ग्रन्थियों का पता लगाया है, और उस विश्वविद्यालय की प्रयोग-शाला में अनुसन्धान करनेवाले पैंतीस वैज्ञा-निकों के अध्यक्ष हैं।

किसी बड़े शराब के कारखाने के अध्यक्ष एण्डू साहब के पास पहुँचे और कहा कि शराब फलों से बनती है, फलों में विटामिन होते हैं, अतएव फलों से शराब बनाने में विटामिनों का सूक्ष्मसार शराब में मौजूद रहता है। फल हर मौसम में हर जगह नहीं मिलते, और शराब तो तैयार होकर सब देशों में सब ऋतुओं में सुरक्षित रह सकती है, फल खाने की अपेक्षा शराब पीना सहज है, इसकी थोड़ी मात्रा से बहुत लाभ होता है। आप इस तथ्य को लेकर एक छोटी पुस्तक या लेख लिख दें, उसे प्रकाशित करूँगा, और आपको एक लाख डालर (पौने पाँच लाख रुपये) दूँगा।

विज्ञानाचार्य एण्डू साहब ने रुपया लेना और लेख लिखना इंकार कर दिया। यह बात बाद में एक सभा में उन्होंने खोल दी। उन्होंने कहा, "मेरे लिए ऐसा लेख लिखना सहज बात है। मेरे कुछ ही शब्दों का प्रभाव देशव्यापी हो जायगा। लोग मुझे जानते हैं, और शराब में विटामिन होने के विषय में जो वक्तव्य मैं दूँगा, उसे बिना सोचे समझे लोग मान लेंगे, किन्तु इसके पूर्व इस विषय पर मुझे कुछ सोच लेना मेरी बड़ी जिम्मेदारी है। मैं सोचता हूँ कि मेरे वक्तव्य से लोगों में शराब के प्रति श्रद्धा बढ़ जायगी, लोग फलों को छोड़कर खूब शराब पीना आरम्भ कर देंगे, शराब का उद्योग और विक्रय बढ़ेगा और सहज ही मुझे पौने पाँच लाख रुपये मिल जायँगे। फिर सभी शराब बनाने वाले मुझसे लेख लिखावेंगे और खूब रुपये देंगे। मैं संसार में विख्यात और धनवान हो जाऊँगा। परन्तु मेरे कुछ शब्दों का आगे और नतीजा क्या होगा? वही, जो हम प्रत्यक्ष शराब का परिणाम देख रहे हैं। देश की जनता का शरीर जर्जर हो जायगा, उनका नैतिक पतन हो जायगा, अगणित गृहस्थों का घर बरबाद हो जायगा, लोगों की कमाई शराब में स्वाहा होगी, जीवन बरबाद होगा। शराब नशे की चीज है, नशे में दिमाग बिगड़ जाता है और दिमाग बिगड़ने से सब बिगड़ जाता है। आजकल संसार में जो सुख शान्ति सुव्यवस्था और वैज्ञानिक चमत्कार दिख रहे हैं वे सब होश हवास के दिमाग से हुए हैं, नशे का नतीजा नहीं। शराब का इतना कुप्रभाव जानते हुए मैं पौने पाँच लाख रुपये की लालच में एक छोटा सा लेख लिखकर शराब की प्रशंसा करूँ तो यह मेरी मानसिक बेईमानी है, देश को धोखा देना है, देशद्रोही और सारी मानव जाति का हत्यारा बनना है।

लगभग पाँच लाख रुपये लेकर मैं बेईमान बनूँ, देश को जर्जर बनाऊँ, देशद्रोही और हत्यारा बनूँ! मैं एक वैज्ञानिक और समझदार होकर भी ऐसा करूँ? ऐसे वैज्ञानिक को धिक्कार है जो ऐसा करे। ऐसे वैज्ञानिक को जन्म लेना और जीना पाप है। इससे तो अवैज्ञानिक होना ही अच्छा।

एण्डू साहब तब से एक शराब विरोधी संस्था के अध्यक्ष बनाये गये, और अब वे बड़े हर्ष और जोश से, मुफ्त में, शराब के विरुद्ध साहित्य प्रकाशित करते हैं। उन्होंने कहा—शराब की उपयोगिता पुष्ट कराने के लिए मुझे कोई पाँच लाख रुपये में नहीं खरीद सकता, और मैं किसी भी भाव, किसी भी कीमत पर

बेईमान, देशद्रोही और हत्यारा बनने को बिलकुल तैयार नहीं हूँ। जो लोग मुझे इस प्रकार खरीदना चाहते हैं, और ऐसी वस्तुएँ बनाते हैं और उनका प्रचार करते हैं तथा उसकी आमदनी पर मौज उड़ाते हैं उन्हें धिक्कार है, वे देशद्रोही हैं, और मानव-समाज के हत्यारे हैं।

जो कुछ शराब के विषय में अमेरिका में सत्य है वही तमाखू, चाय, डालडा, कॉफ और क्रोम लेदर के विषय में हिन्दुस्थान में भी सत्य है। ये सब मानव को नपुंसक और अल्पायु बनाने वाली चीजें हैं, इनका प्रभाव शरीर पर शनैः शनैः पड़ता है। ये वस्तुएँ मनुष्य को प्यार से, मीठेपन से धीरे धीरे मारती हैं, और मनुष्य प्रसन्नतापूर्वक धीरे धीरे इनसे मरता है। मनुष्य को इस प्रकार धीरे धीरे नपुंसक और अल्पायु बनाने वाले इन तमाखू चाय डालडा वनस्पति घी का उद्योग और प्रचार करने वाले अपने मन में क्या समझते हैं और जो सरकार इन उद्योग धन्धों से प्रति वर्ष करोड़ों रुपये टैक्स लेती इन्हें प्रोत्साहन देती है—इन दोनों को हम क्या समझें? और जो लोग रोज तमाखू चाय वनस्पति कॉफ क्रोम लेदर की खपत करते हैं—इन्हें हम क्या समझें! इनमें से हर एक को कुछ सोचना, समझना और करना चाहिए।

परलोक में मन का महत्व

पं० गोपीवल्लभ जी उपाध्याय

मन की अद्भुत शक्ति

यद्यपि विश्वकल्याण के लिए ही सब काम कर सकना सब के लिए सम्भव नहीं, फिर भी इस बात का ध्यान तो सभी रख सकते हैं कि कुछ भी छोटा बड़ा कार्य हो वह अपने लिए ; वरन् दूसरे के भले के लिए ही किया । और ऐसा करने से वह सकल जनहिताय सकता है। ऐसा होने पर तुम्हारा मन अपने जगत् में सम्प्रसारित हो जायगा। साथ उसकी शक्ति भी बढ़ेगी और तब तुम्हारे न-कर्तव्य की सफलता भी लोक-परलोक में हो सकेगी।

मन की विशाल शक्ति का सदैव स्मरण । यह संसार कितनी विचित्र वस्तुओं, नदी, त, वन, उपवन, विविध प्रकार के प्राणियों सज्जित है। किन्तु ये सभी तुम्हारी मानसिक क से ही सृष्ट हुए हैं। यहाँ तक कि मन शक्ति से ही जगत् का आविर्भाव हुआ है। ांद तुम ही इसके सृष्टिकर्ता हो। अतः यदि वस्तु को अलग रख दिया जाय तो शेष केवल तुम्हारा मन ही रह जाता है और जैसे मन एक शक्ति है उसी प्रकार वस्तु भी शक्ति रूप है। फलतः शक्ति से ही शक्ति उत्पन्न होती है। जल से ही भाफ बनती है और जल से ही बर्फ। दूध से बर्फ नहीं हो सकता और न दूध से भाफ या जल निर्माण हो सकता है। इसीलिए तुम्हारे मन की शक्ति से ही सब वस्तुओं की सृष्टि होने की बात कही गई है। अर्थात मन की अतुल शक्ति का एक बार भली भाँति अनुभव करो। तुम यहाँ शंका कर सकते हो कि एक पत्थर या लौह खण्ड जैसी जड़ या ठोस वस्तु को शक्तिरूप कैसे मान लिया जाय! किन्तु वह भी शक्ति रूप ही है। तुम्हारे वैज्ञानिकों ने 'इलेक्ट्रोन' और 'प्रोटोन' का आविष्कार कर दिखा दिया है कि सब कुछ शक्ति है—केवल विकास का तारतम्य मात्र है। यद्यपि मनुष्य, लता वृक्ष एवं पत्थर पानी आदि भिन्न पदार्थ

अवश्य हैं; किन्तु सब का मूल है शक्ति (Force)। यह शरीर भी शक्ति रूप है तुम्हारा भी और हमारा भी, केवल तरङ्ग का ही अंतर है।

किन्तु शक्ति भी कम्पन या किसी आधार के विना कोई क्रिया नहीं कर सकती। फिर भी उस (शक्ति) को तुम नहीं देख सकते। जैसे कि बिजली को न देख सकने पर भी तार-टेलिग्राफ आदि यन्त्रों में उसकी शक्ति तुम्हें दिखाई देती है। ठीक यही दशा मन की भी है, उसे भी शक्ति रूप में होने से तुम नहीं देख सकते। किन्तु वही मन जब विचार करता है, तब तुम देख सकते हो कि अभी वह यहाँ है तो दूसरे ही क्षण अमेरिका में पहुँच जाता है। इसी प्रकार जब वह, शीत-ग्रीष्म या सुख-दुःख का अनुभव करता है, तभी तुम उसकी शक्ति को समझ सकते हो। अतः जब मन स्वस्थ और सबल होगा तभी तुम्हारा शरीर भी सब प्रकार कार्यक्षम होगा। जब वह अस्वस्थ या चंचल होगा तभी चंचलता प्रकट करेगा। जब वह दुःखित होगा तो नेत्रों से जल बरसने लगेगा; और शान्त होगा तब तुम्हारे चित्त में शान्ति का अनुभव होगा। उसे यदि बुरे विचारों में लगाओगे तो तुम्हारी इन्द्रियाँ कुकर्म में प्रवृत्त होंगी। अतएव मन को भगवच्चरणों में समर्पण कर दो।

जैसा तुम्हारा मन है वैसा ही हमारा भी है, अतएव तुम्हारी तरह हमें भी परलोक में आकर मन को सब प्रकार शक्तिशाली बनाने का प्रयत्न करना पड़ता है। फिर भी पृथ्वी और परलोक का साधनपथ एक ही है। मन को शिक्षित एवं माँज-धोकर सुसंस्कृत बनाना ही हमारा मुख्य कार्य है। मन पर दाग लगते देर नहीं लगती। अतएव मन को निर्मल बनाये रखना तुम्हारा प्रथम कर्तव्य होना चाहिए। इसके लिए पदे-पदे तुमको सदसत् विचार करना होगा। भला क्या है और बुरा क्या? इसका निर्णय विचार-द्वारा करके तदनुसार आचरण करना चाहिए। तुम वह विचार करने के अधिकारी हो, इसीलिए जीव जगत् में मानव रूप में श्रेष्ठ माने गये हो।

अब हम यह बतलाना चाहते हैं कि पृथ्वी छोड़कर यहाँ आने पर मन की क्या अवस्था होती है। पृथ्वी पर रहते हुए उस पर जितने दाग या धब्बे लगे हैं, सामाजिक, पारिवारिक या व्यावहारिक, उन सब को वह धोकर दूर कर देता है। और यह कार्य होता है—सेवा-परायण बनाने के लिए! मन से स्वार्थ या अहं को सर्वथा दूर कर देने के लिए। परलोक में प्रवेश करते ही अनेक दाग या धब्बे तो अपने आप दूर हो जाते हैं। इसीलिए इस पार आने पर उस पार की बातें उसे स्मरण नहीं रहतीं। यहाँ तक कि कई आत्मिक तो अपना नाम भी भूल जाते हैं। इस विस्मृति में उनके मोह या निद्रा सहायक हो जाते हैं, जो कि उन्हें वैतरणी पार करने के बाद कुछ समय तक भोगने पड़ते हैं।

अतएव जब तुम किसी आत्मिक का आवाहन करने पर ठीक से उत्तर न पा सको या उसमें भूल हो जाय तो यह मत समझो कि आत्मा का आविर्भाव नहीं हुआ है। वरन् यह समझ लेना चाहिए कि उसकी स्मृति नष्ट हो गई है। इसके दो एक कारण बतला देना उचित होगा, विस्तार की आवश्यकता नहीं। प्रथम तो यह कि वह पृथ्वी पर अत्यन्त यातना अथवा कठिन रोग भुगत कर यहाँ आया होगा और इससे उसका मन दुर्बल बनकर स्मृति शक्ति नष्ट हो गई होगी। जैसे यदि उसे वात-श्लैष्मिक ज्वर हो गया हो तो उसमें स्वभावतः मस्तिष्क एवं स्मृतिशक्ति शिथिल हो जायँगे। उसी शैथिल्य को लेकर यहाँ आने से वह पृथ्वी पर की किसी भी बात को स्मरण नहीं रख सकता। किन्तु अधिक समय तक यहाँ रहने पर धीरे-धीरे उसकी स्मृति एवं मन सबल होने लगते हैं।

है कि मन
वह कोई
है सेवन करने के
पुरुषों के उपदेश के
नाने के रूप में ही है।
जितनी देर लगती है,
वल बनाने में उससे
है। अतएव किसी
देखकर या सुनकर
हे सकने पर विस्मित
कर लो। किन्तु यदि
तुम उसपर विश्वास
भी निराश-सुदीर बन
दें वह तुम्हारा निकट
जन हुआ, तो तुम्हारे
एकदम मर्माहत हो
सी आत्मिक की स्मृति
और उसे एक एक बात
में पुनरुद्दीप्त करना
उसे अविश्वासी मान
यक नहीं कहा जा

जो परलोक में प्रधान
ही पृथ्वी पर भी वह

सब धर्मों का सार बताया गया है। अतएव पृथ्वी पर रहते हुए देव पूजा भले ही करो, किन्तु इसमें प्रधानता दो निःस्वार्थ सेवा और प्रेम को। किन्तु इसका आशय यह नहीं कि भक्ति भाव से पूजा न करके केवल सेवा और प्रेम में ही मतवाले हो जाओ। वरन् पृथ्वी पर रहते हुए मन को शिक्षा दो कि निःस्वार्थ सेवा ही भगवान की पूजा और प्रेम ही धर्म की परम सार्थकता है। जो सच्चा सेवक बन जाता है, वही भगवान की पूजा करता है और दूसरे सब लोग खरीद बिक्री का व्यापार करते हैं। जो प्रेमिक बन जाता है वही सर्वश्रेष्ठ निःस्वार्थ सेवक है और वही भगवान को प्राप्त करता है। क्योंकि भगवान प्रेम के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं। अतएव सबके साथ प्रेम रखकर सेवा करो।

किसी भी बात पर बिना पूर्वा पर विचार किये सहसा अविश्वास प्रकट मत करो। यद्यपि अपने स्वभाववश मनुष्य किसी संस्कार को दृढ़ता से ग्रहण कर लेने पर उसके विरुद्ध किसी युक्ति को सुनना नहीं चाहता; फिर भी जब यथार्थता का बोध होता है; तभी उसे अपनी भूल मालूम होती है। अतएव परलोक-विद्या के विषय में अविश्वासी बनने से काम नहीं चल सकता।